एम.ई.सी.-06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

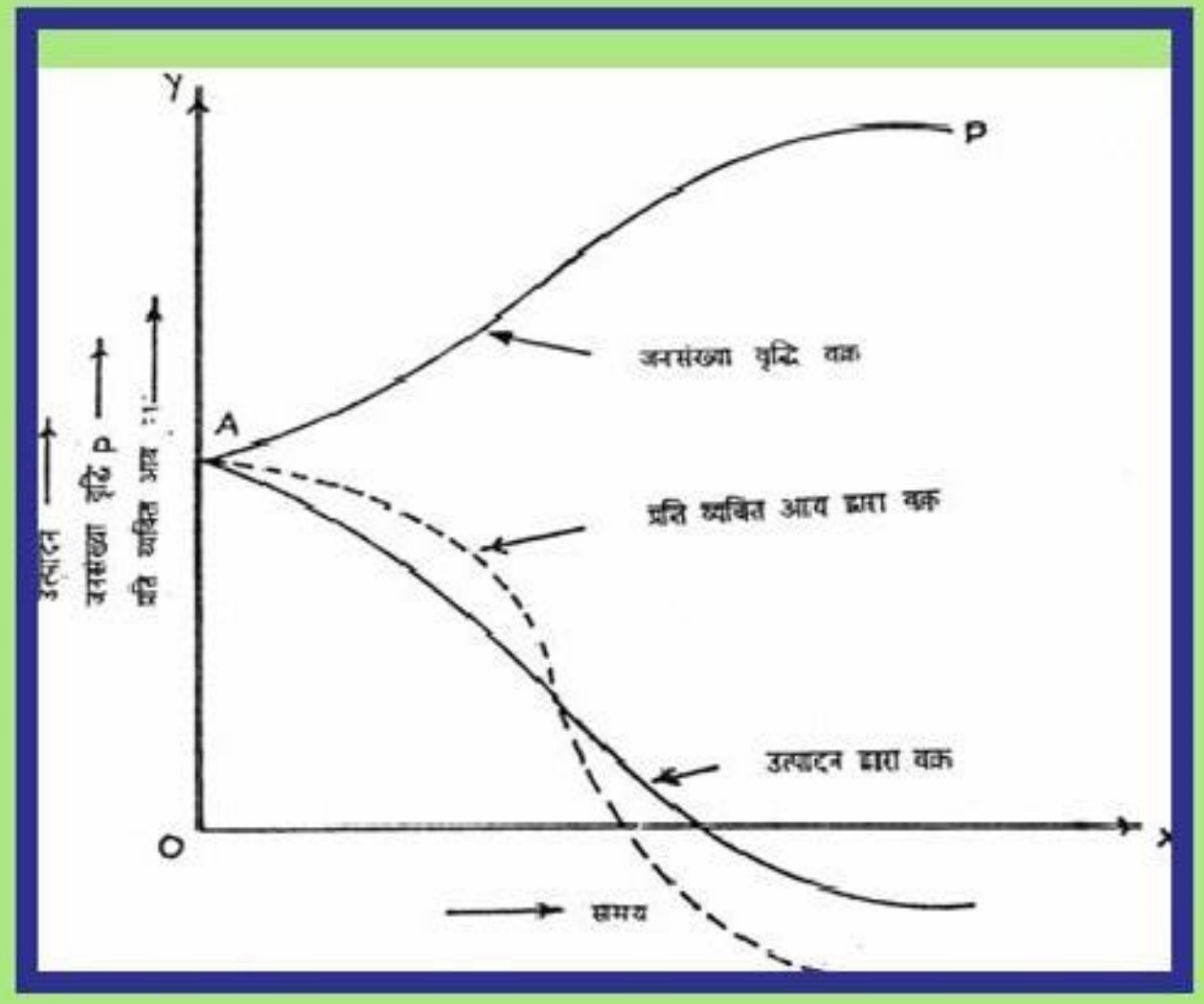

भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास

पूर्व पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा कुलपति कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**प्रोफेसर ए.के. सिंह** गिरि इंस्टीट्यूट ऑफ डवलपमेंट स्टडीज लखनऊ
प्रोफेसर एस.एस. आचार्य निदेशक, विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर	**डॉ. प्रमोद वर्मा**, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट अहमदाबाद
प्रोफेसर डी.डी. नरूला मानद वरिष्ठ अध्येता विकास अध्ययन संस्थान जयपुर	**डॉ. एम.के. घड़ोलिया (संयोजक)** सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. श्याम नाथ फ़ेलो,एन.आई.पी.एफ़. पी, नई दिल्ली	**डॉ. रामेश्वर प्रसाद शर्मा** सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा
प्रो. अमिताभ कुन्डु सी.एस.आर.डी. जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली	**डॉ. जे.के. शर्मा** सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम संशोधन अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. एल.आर. गुर्जर

निदेशक अकादमिक

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक

डॉ. जे.के. शर्मा

आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. फरीदा शाह, आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय , उदयपुर	**डॉ एन. के. दशोरा,** अर्थशास्त्र विभाग, राजीव गाँधी जनजाति विश्वविद्यालय, उदयपुर
डॉ. धीरेश कुलश्रेष्ठ सह - आचार्य हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़	**डॉ.हेमा मंगलानी,** सहायक आचार्य, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर
डॉ. सुरेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	

सम्पादन एवं पाठ लेखन

संपादक

डॉ. एम.के. घड़ोलिया

सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष

अर्थशास्त्र विभाग

पाठों के लेखक

डॉ. के.पी.एम. सुन्दरम नई दिल्ली	**डॉ. जी.डी. माथुर** अलवर
डॉ. धर्मेश शर्मा डूंगरपुर	**डॉ. एल.एन. अग्रवाल** कृषि अर्थशास्त्र विभाग , राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर
डॉ. लक्ष्मीनारायण नाथूरामका जयपुर	**डॉ. के.के. सक्सेना** आई.आई.टी. कानपुर
डॉ. अयोध्या सिंह सेवानिवृत्त प्रोफेसर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस	**डॉ. ए.ए. सिद्धकी** अलीगढ़

डॉ. एम.सी. गुप्ता जयपुर	**प्रोफेसर आर.के. अग्रवाल** जबलपुर
प्रो. अमिताभ कुन्डु जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	**डॉ. एच.एल. भाटिया** नई दिल्ली
डॉ. मंसूर अली रुड़की विश्वविद्यालय रुड़की	**सीमा सोरल** कोटा
डॉ. एस.सी. श्रीवास्तव विलासपुर	**श्री के. आर. चौधरी, (इकाई 13,14, 29,31)** सहायक आचार्य, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
श्री शिव शर्मा, (इकाई 27, 28) व्याख्याता अर्थशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय,थानागाजी, अलवर	**श्री राकेश कुमार,** **(इकाई 1, 2, 6, 7, 9, 10, 11)** सहायक आचार्य, कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज, दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ.राजेश जांगिड (इकाई 24,25) व्याख्याता अर्थशास्त्र, राजकीय एल. बी.एस. महाविद्यालय, कोटपूतली, जयपुर	**डॉ. मानक सिंगारिया (इकाई 36, 37)** व्याख्याता अर्थशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय,जैतारण, पाली
अनुवाद	
डॉ. एम.एम. जैन कोटा	**प्रो. मंसूर अली** रुड़की
श्रीमती अरुणा कौशिक कोटा	**श्रीमती कान्ता सोनी** अजमेर
डॉ. मोहन सिंहल जोधपुर	

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.अशोक शर्मा कुलपति **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**प्रो.(डॉ.) एल.आर. गुर्जर** निदेशक, अकादमिक **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**डॉ अरविंद पारीक** निदेशक, सामग्री उत्पादन और वितरण **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

पुनःउत्पादन : मई 2017 ISBN NO- 13/978-81-8496-452-3

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

MAEC-06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

खण्ड -1

भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड -1 : आर्थिक विकास		
इकाई - 1	आर्थिक वृद्धि एवं विकास : आधारभूत अवधारणाएं	1-15
इकाई - 2	समावेशी विकास	16-19
इकाई - 3	विकास का प्रतिष्ठित सिद्धांत	20-29
इकाई - 4	कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास मॉडल	30-42
इकाई - 5	आर्थिक विकास का महालनोबिस मॉडल	43-48
खण्ड -2 : आर्थिक संवृद्धि के सिद्धान्त		
इकाई - 6	आर्थर लुईस: श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास का मॉडल	49-54
इकाई - 7	फाई-रेनिस का दोहरी अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त	55-65
इकाई - 8	जॉन राबिन्सन का पूँजी संचय सिद्धान्त	66-75
इकाई - 9	अन्तर्जात संवृद्धि सिद्धान्त	76-82
इकाई - 10	हैरड- डोमर के मॉडल	83-100
इकाई- 11	सोलो मॉडल	101-109
खण्ड -3 : भारतीय अर्थव्यवस्था एवं नियोजन		
इकाई - 12	भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि की प्रवृत्तियां	110-132
इकाई -13	भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन	133-151
इकाई -14	भारत में आधारभूत संरचना का विकास	152-188
इकाई -15	भारत में नियोजन एवं विकास प्रक्रिया-नियोजित विकास की समीक्षा	189-208
इकाई -16	विकेन्द्रित नियोजन-पद्धति	209-227
इकाई -17	भारत में शिक्षा का विकास	228-238
इकाई -18	जनसांख्यिकीय आयाम एवं आर्थिक विकास	239-265
खण्ड -4 : निर्धनता, बेरोजगारी , कृषि एवं उद्योग		
इकाई -19	भारत में निर्धनता व असमानता आकार, प्रकृति, कारण तथा इनको कम करने के उपाय	266-290
इकाई -20	बेरोजगारी स्वरूप तथा आकार-उद्योगीकरण तथा रोजगार एवं रोजगारनीति	291-313
इकाई -21	कृषि भूमि सम्बन्ध एवं भूमि सुधार	314-340
इकाई -22	हरित क्रान्ति	341-350

इकाई -23	भारतीय कृषि विकास की उपलब्धियां तथा कमियाँ	351-362
इकाई -24	खाद्य सुरक्षा तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली	363-377
इकाई -25	विश्व व्यापार संगठन व भारतीय कृषि	378-390
इकाई -26	भारत में औद्योगक विकास की प्रवृति एवं समस्याएं की	391-399
इकाई -27	नई औद्योगिक नीति	400-407
इकाई -28	लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व व समस्याएँ	408-418
खण्ड -5 : आर्थिक नीति		
इकाई -29	नवीन आर्थिक नीति : एक विश्लेषण	417-444
इकाई -30	भारतवर्ष में बहुराष्ट्रीय निगम	445-456
इकाई -31	विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र : एक अवलोकन	457-471
इकाई -32	भारतवर्ष की समानान्तर अर्थव्यवस्था	472-483
इकाई -33	भारत का भुगतान सन्तुलन	484-503
इकाई -34	निर्यात सम्बर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन	504-523
इकाई -35	भारत में सार्वजनिक व्यय का उदभव, वृद्धि, प्रवृत्तियाँ एवं मूल्यांकन	524-537
इकाई -36	नीति आयोग	538-551
इकाई -37	चौदहवें वित्त आयोग की सिफारिशें	552-567

खण्ड परिचय

इस पुस्तक के प्रथम दो खण्डों में आर्थिक विकास से संबंधित सिद्धान्तों का अवलोकन किया जायेगा। जिसमें सर्वप्रथम इकाई 1 में आर्थिक वृद्धि एवं विकास की अवधारणाओं का अध्ययन करेंगे तथा वर्तमान में सबसे महत्वपूर्ण समावेशी विकास का अध्ययन इकाई 2 में किया जायेगा । इसके बाद विकास के प्रतिष्ठित सिद्धान्त का अध्ययन इकाई 3 में करेंगे जिसमें इकाई 4 में कार्ल माक्र्स के आर्थिक विकास माडल का अध्ययन किया जायेगा। अर्थ व्यवस्था के दो क्षेत्रीय माडल जिसमें कृषि और उद्योग दो महत्वपूर्ण क्षेत्र होते है। इनका अध्ययन लुईस के दृष्टिकोण को इकाई 6 व फाई रेनिस के दृष्टिकोण को इकाई 7 में पढ़ा जायेगा । आर्थिक विकास में पूंजी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। तथा समय समय पर विभिन्न माडल इस बात का परिचय देते रहे है। जिसमें जान रोबिनसन के माडल का अध्ययन इकाई 8 में व इकाई 9 में अन्तर्जात संवृद्धि माडलों का अध्ययन किया जायेगा। हैरड. डोमर के मॉडल का अध्ययन इकाई 10 में व सोलो मॉडल का अध्ययन इकाई 11 में किया जायेगा।

इकाई 12 में भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि की प्रवृत्तियां की पिछले सत्तर वर्षों में उपलब्धियां एवं प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। इस तथ्य से तो हम सभी परिचित हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत ने द्रुत आर्थिक विकास के उद्देश्य से नियोजन मार्ग चुना।

इकाई 13 भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन इकाई 14 भारत में आधारभूत संरचना का विकास अध्ययन किया जायेगा

अब तक हम बारहवीं पंचवर्षीय योजनाएं पूरी कर चुके हैं । इन वर्षों में विभिन्न योजना के लक्ष्यों एवं उपलब्धियों पर इकाई 15 में चर्चा की गई है। नियोजन के दौरान अर्जित वृद्धि दरों को विभिन्न दशकों में अलग-अलग प्रदर्शित किया गया है। इस प्रश्नपत्र की सामग्री में आकड़ों की अनुपलब्धता व तेजी से परिवर्तन होते हैं। अत: आपसे अपेक्षा है कि आप अपने स्रोतो से नवीनतम जानकारी एकत्रित कर पाठ्य सामग्री में उसे यथा स्थान प्रयुक्त करें। प्रतिवर्ष प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ जैसे भारत, आर्थिक सर्वेक्षण, रिजर्व बैंक से प्रकाशित आँकड़ों का आप आसानी से प्रयोग कर सकते हैं।

भारत में नियोजन एवं विकास प्रक्रिया व नियोजित विकास की उपलब्धियों की चर्चा इकाई संख्या में दो में की गई है। इस इकाई में नियोजित आर्थिक विकास की विशेषताओं एवं उपलब्धियों की चर्चा के साथ-साथ नियोजन की विफलताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। हमें इन विफलताओं से सबक लेकर विकास के मार्ग की बाधाओं को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

इकाई संख्या तीन में विकास की व्यूह रचनाओं भारी उद्योग बनाम मजदूरी वस्तुओं की चर्चा की गई है। विकास के ये विभिन्न मार्ग सत्तर के दशक में काफी चर्चा में रहे। भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्राप्त सफलता के कारण आयोजन अधिकारी कृषि को छोड़कर विकास के आधार भूत ढाँचे के निर्माण के लिए भारी उद्योगों पर बल देना चाहते थे। प्रो.प्रशान्त चन्द्र महालनोबिस ने द्वितीय योजना में भारी उद्योग मण्डल पर आधारित विकास मार्ग अपनाने की सलाह दी। इसे भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने काफी पसंद किया। इसके विपरीत विकास का एक मार्ग मजदूरी वस्तुओं पर आधारित था। जिसे वस्तुत: लागू नहीं किया गया। परन्तु भारतीय परिस्थितियों में यह आज भी विचारणीय एवं प्रासंगिक है। इन विभिन्न मॉडलों के बारे में आप इस खण्ड में जानकारी प्राप्त करेंगे।

इसके अतिरिक्त चतुर्थ इकाई मे आपका परिचय एक अन्य विकास व्यूह रचना से कराया जाएगा। इसमें केन्द्रित एवं विकेन्द्रित नियोजन पद्धति का अर्थ एवं इसकी उपलब्धियों एवं समस्याओं की चर्चा की जाएगी। इकाई पाँच में भारत मे शिक्षा का विकास विषय पर चर्चा की गई है। आज के बढ़ते वैज्ञानिक युग में शिक्षा के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा की अहम भूमिका है। आज कम्प्यूटर क्रांति के युग में पारम्परिक शिक्षा के साथ-साथ सूचना क्षेत्र मे हो रही क्रांति के साथ चलना होगा। इसके लिए हमे अपने पाठ्यक्रमों मे भी आवश्यक परिवर्तन लाना होगा। शिक्षित वर्ग ही इस तकनीकी का समुचित प्रयोग कर विकास की दोड़ में आगे निकल सकता है।

विकास के लिए आवश्यक आधारभूत संरचना के निर्माण में आ रही बाधाओं एवं अन्य समस्याओं जैसे गरीबी, बेरोजगारी, आय की असमानता, पूँजी की कमी व जनसंख्या की वृद्धि जैसी समस्याओं एवं आर्थिक विकास के साथ इन चरों की अन्तर्क्रियाओं पर इस खण्ड में आपका ध्यान आकर्षित किया जाएगा।

इकाई संख्या 18 में जनसांख्यिकी आयाम एवं आर्थिक विकास के अन्तर्सम्बन्धों की चर्चा की गई है। जनसंख्या एवं आर्थिक विकास में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इस इकाई में जनसंख्याके विभिन्न आयामों जैसे जन्मदर, आप्रवास एवं उत्प्रवास एवं आर्थिक विकास के मध्य सम्बन्ध में भारत दृष्टिगोचर प्रवृत्तियों की चर्चा की गई है।

इकाई संख्या 19 में भारत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या निर्धनता एवं असमानता का अध्ययन किया गया है। निर्धनता एक ऐसी समस्या है जिसे सभी अनुभव करते हैं। यह एक सापेक्ष शब्द है। हर व्यक्ति अपने से धनी व्यक्ति को देखकर अपने को गरीब समझता है। परन्तु अर्थशास्त्रियों के लिए इसका विशेष अर्थ है। निर्धनता की परिभाषा निर्धनता-रेखा के सम्बन्ध में की जाती है। निर्धनता की परिभाषा जीवननिर्वाह के लिए आवश्यक न्यूनतम कैलोरी भोजन के लिए आवश्यक आय के सन्दर्भ में की गई है। इसे समय-समय पर सूचकांक के साथ बढ़ाया जाता रहा है। निर्धनता एवं असमानता के कारणों का अध्ययन करने के बाद इस इकाई में समस्या के हल के लिए कुछ सुझाव दिए गए है।

इकाई 20 में आज के युवा वर्ग के लिए सर्वाधिक ज्वलंत समस्या बेरोजगारी की चर्चा की गई है। निर्धनता की तरह बेरोजगारी की परिभाषा करना भी कठिन कार्य है। इस इकाई में आपको बेरोजगारी के स्वरूप एवं इसके लिए उत्तरदायी कारणों की जानकारी दी गई है। इकाई के अन्त में औद्योगिकरण तथा रोजगार एवं भारत सरकार की रोजगार नीति की चर्चा की गई है।

इकाई संख्या 21 में कृषि भूमि सम्बन्ध एवं भूमि सुधार कार्यक्रमों का विवेचन किया गया है। इस इकाई में कृषि भूमि सम्बन्धों का अर्थ, इसके विभिन्न प्रकारों को वर्णन करने के बाद समय के साथ इन सम्बन्धों मे हुए परिवर्तनों की चर्चा की गई है। इसके साथ ही भूमि सुधारों का अर्थ तथा विभिन्न भूमि सुधार कार्यक्रमों की चर्चा करने के बाद भूमि सुधारों की असंतोषजनक प्रगति के कारणों पर प्रकाश डाला गया है।

इकाई संख्या 22 में हरित क्रांति का अर्थ तथा इसके विभिन्न अवयवों का वर्णन करने के बाद हरित क्रांति के आर्थिक व सामाजिक प्रभावों की चर्चा की गई है।

इकाई संख्या 23 में भारतीय कृषि विकास की उपलब्धियों एवं कमियों की चर्चा की गई है। नियोजन काल में कृषि की उपलब्धियों में कृषि उत्पादन में वृद्धि, कृषि का आधुनिकरण एवं खाद्यान्न में

आत्मनिर्भरता प्रमुख रही हैं। इसकी प्रमुख कमियों में क्षेत्रीय असंतुलन प्रमुख है। इकाई संख्या 24 में खाद्यान्न आहरण व सुरक्षित भण्डार बनाने की भारत सरकार की नीति के बारे में विवेचन किया गया है एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर विस्तार से चर्चा की गई है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के क्रम में भारत में औद्योगिक विकास एवं कृषि तथा उद्योग के मध्य व्यापार शर्तों का अध्ययन किया गया है। उदारीकरण के वर्तमान युग में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका बढ़ती जा रही है। विश्व के विकसित देश व्यापार के साथ कई शर्तें जोड़ना चाहते हैं, परन्तु विकासशील देश इनका विरोध कर रहे हैं। इस प्रकार विश्व राजनीति में अब उद्योग एवं व्यापार का शीर्ष स्थान हो गया है। आज विश्व का कोई देश विश्व व्यापार संगठन से बाहर रहकर अपने देश के उद्योग धन्धों को विकसित नहीं कर सकता है। नब्बे के दशक में उद्योगों की समस्याएं भी बदल गयी हैं। आज विकासशील देश शिशु उद्योगो का तर्क देकर अपने उद्योगों को संरक्षण नहीं दे सकते है। विश्व में समान व्यापार संहिताएं एवं मानदण्ड लागू किए जा रहे हैं। अमेरिका में विश्व व्यापार संगठन में सिएटल में हुई मंत्रीस्तरीय बैठक में श्रम मानदण्डों एवं पर्यावरण के मुद्दों को व्यापार के साथ जोड़ने का भारत ने कड़ा विरोध किया। भारत के साथ अन्य विकासशील देशों द्वारा परमाणु परीक्षण किए जाने के तुरन्त बाद लगाए गए आर्थिक प्रतिबन्धो से उद्योग एवं व्यापार के समस्याएं बढ़ गई हैं। इन प्रतिबन्धो में अब धीरे-धीरे छूट दी जा रही है।

इकाई संख्या 26 में भारत में संतुलित औद्योगिक विकास की नीतियों पर चर्चा की गई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत को उद्योगों का एक कमजोर एवं पिछड़ा हुआ ढाँचा विरासत में मिला। इस ढांचे को त्वरित करना एक बड़ा कार्य था। 1950 में योजना आयोग कि स्थापना के बाद देश में नियोजित विकास का मार्ग अपनाया गया। इसमें क्षेत्रीय संतुलन पर अधिक बल दिया गया। साधनों के संतुलित हस्तान्तरण के लिए योजना आयोग एवं वित्त आयोग बनाए गए। इस बात पर विशेष बल दिया गया कि आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण मुट्ठीभर लोगों के हाथों में न हों। पिछड़ें क्षेत्रो में उद्योगो को प्रोत्साहित किया गया। लाइसेन्सिग नीति के द्वारा उद्योगों कि स्थापना का स्थान निर्धारण को प्रभावित किया गया। स्वतन्त्रता के बाद लगभग चालीस वर्षों तक सरकारी नियन्त्रण एवं नियमन का युग रहा परन्तु नब्बे के दशक के प्रारम्भ से उदारीकरण कि प्रक्रिया प्रारम्भ कि गई व भारतीय उद्योगों को विश्व प्रतिस्पर्धा के लिए खुला छोड़ किया गया।

इकाई -27 नई औद्योगिक नीति, इकाई -28 लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व व समस्याएँ, इकाई -29 नवीन आर्थिक नीति : एक विश्लेषण का अध्ययन किया जायेगा

इकाई 30 में भारत वर्ष में कार्यरत बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश व विकास के मार्ग में आई बाधाओं का विवेचन किया गया है। अब उदारीकरण के युग में सभी राज्य सरकारें अपने–अपने राज्यों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को आकर्षित करने कि योजनाएं बना रही हैं। आधारभूत एवं भरी उद्योगों में बहुराष्ट्रीय निगमों को आमन्त्रित किया जा रहा है।

इकाई 32 में भारतवर्ष कि समानान्तर अर्थव्यवस्था एवं इसके आकार कि चर्चा की गई है। इस इकाई में कालेधन की उत्पत्ति के कारणों एवं इसके निवारण के उपायों की चर्चा की गई है। देश में चल रहा भ्रष्टाचार कालेधन के बढ़ने का प्रमुखकारण है।

इकाई संख्या 33 में विभिन्न योजना अवधियों में भुगतान सन्तुलन की स्थिति की चर्चा की गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लगातार भारत का भुगतान सन्तुलन विपक्ष में रहा है। इस इकाई में भुगतान सन्तुलन को ठीक करने की उपायों पर भी चर्चा की गई है।

इकाई संख्या 34 में भारत में निर्यात संवर्द्धन के लिये किए गए प्रयासों की चर्चा की गई है। आयात प्रतिस्थापन साठ के दशक में भारत की प्रमुख नीति रही। भारतीय उद्योगों को संरक्षण देकर विदेशी प्रतिस्पर्धा से उनकी रक्षा कर आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं का उत्पादन देश में ही किया गया।

वर्तमान समय में सरकार ने भूमण्डलीकरण (Globalization) तथा उदारीकरण की नीति अपनाई है। अब देश के उद्योगों को विदेशी चुनौती के लिए तैयार रहने को कहा जा रहा है। भारत विश्वव्यापार संगठन का सदस्य है एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्वबैंक के निर्देशन में आर्थिक सुधारों का दूसरा दौर प्रारम्भ कर चुका है। इकाई संख्या 35 भारत में सार्वजनिक व्यय का उदभव, वृद्धि, प्रवृत्तियाँ एवं मूल्यांकन, इकाई संख्या 36 नीति आयोग इकाई संख्या 37 चौदहवें वित्त आयोग की सिफारिशें कार्यप्रणाली अध्ययन किया जायेगा

इकाई - 1

आर्थिक वृद्धि एवं विकास : आधारभूत अवधारणाएं

(Economic Growth and Development: Basic Concepts)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 आर्थिक वृद्धि: आशय एवं परिभाषा

1.4 आर्थिक विकास की अवधारणा

1.5 आर्थिक विकास का आधुनिक दृष्टिकोण

1.6 विकास के तीन मुख्य मूल्य

1.7 आर्थिक विकास के मापदण्ड

1.8 कुल राष्ट्रीय उत्पाद या आय के मापदण्ड में सावधानियां

1.9 सूचकांक का चुनाव

1.10 मानव विकास सूचकांक

1.11 व्यक्तिगत सूचकांकों का निर्माण

1.12 जीवन गुणवत्ता सूचकांक

1.13 आर्थिक संवृद्धि और विकास में अन्तर

1.14 सारांश

1.15 संदर्भग्रन्थ

1.15 संदर्भग्रन्थ

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- आर्थिक वृद्धि : आशय एवं परिभाषा समझ सकेंगे।
- आर्थिक विकास की अवधारणा क्या जान सकेगें।

- विकास के तीन मुख्य मूल्य कौन कौन से है समझ सकेगें।
- आर्थिक विकास के मापदण्ड की जानकारी हासिल कर सकेंगे।
- कुल राष्ट्रीय उत्पाद या आय के मापदण्ड में सावधानियां कौनसी है जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- सूचकांक का चुनाव व मानव विकास सूचकांक के बारे में समझ सकेगे।
- व्यक्तिगत सूचकांकों का निर्माण व जीवन गुणवत्ता सूचकांक के बारे में समझ सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना (Introduction)

आज के प्रगतिशील आधुनिक युग की सबसे महत्वपूर्ण समस्या आर्थिक विकास की समस्या जो वर्तमान शताब्दी का केन्द्र बिन्दु माना जा चुका है। विकास का अर्थशास्त्र अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की समस्याओं से संबंधरखता है। यद्यपि आर्थिक विकास के अध्ययन ने वाणिज्यवादियों तथा एडम स्मिथ से लेकर माक्र्स और केन्ज तक सभी अर्थशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया था, फिर भी उनकी दिलचस्पी प्रमुख रूप से ऐसी समस्याओं में रही जिनकी प्रकृति विशेषतया स्थैतिक थी और विशेषत: अधिकतर सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के पश्चिम यूरोपीय ढ़ाचे से संबंधरखती थी। 20वीं शताब्दी के पॉचवे दशक में और विशेष रूप से दूसरे विश्व युद्ध के बाद ही अर्थशास्त्रियों ने अर्द्धविकसित देशों के आर्थिक विकास में अधिक रूचि लेना शुरू किया। इसका प्रमुख कारण विकसित व सम्पन्न राष्ट्र इस बात का अनुभव करने लगे थे। ''किसी स्थान की दरिद्रता अन्य स्थानों की सम्पन्नता के लिए खतरा है।''

मायर एवं बाल्डविन के अनुसार ''राष्ट्रों की निर्धनता का अध्ययन राष्ट्रों के धन के अध्ययन से भी महत्वपूर्ण है'' परन्तु अल्पविकसित देशों की विशाल दरिद्रता को दूर करने में धनी राष्ट्रों की किसी मानव हितवादी उद्देश्य को लेकर नहीं जाग्रत हुई है । अन्य देशों के मुकाबले में अधिक सहायता देने का वचन देकर प्रत्येक देश अल्पविकसित देशों का समर्थन और वफादारी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

आज विश्व अमीर और गरीब राष्ट्रों के बीच बटा हुआ है एक तरफ विकसित तथा अमीर राष्ट्र और दूसरी तरफ अल्पविकसित या निर्धन राष्ट्रों का समूह है जिनके निवासियों की न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी नहीं होती है। इसे ही पॉल डैमनी ने उत्तर - दक्षिण की समस्या कहा है।

इस अध्याय में हम आर्थिक समृद्धि और विकास की अवधारणाओं का अध्ययन करने जा रहे हैं। प्रारम्भ में आर्थिक संवृद्धि और विकास का एक अर्थ निकाला जाता या दोनों को एक ही समझा जाता था कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि या राष्ट्रीय आय और उत्पादन में वृद्धि से लिया जाता था। परन्तु समय के साथ-साथ नये खोजो से यह जानकारी प्राप्त हुई कि दोनों में भेद है।

1.3 आर्थिक वृद्धि: आशय एवं परिभाषा

आर्थिक संवृद्धि (Growth) से अभिप्राय किसी समयावधि में किसी देश की अर्थव्यवस्था में होने वाली वास्तविक आय की वृद्धि से है । सामान्यतया यदि सकल राष्ट्रीय उत्पाद, सकल घरेलू उत्पाद तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हो रही हो तो हम कह सकते हैं कि आर्थिक संवृद्धि को आर्थिक विकास के एक भाग के रूप में देखा जाता है । संवृद्धि एक संकुचित और परिमाणात्मक परिवर्तन से संबंधितहै जो एक वस्तुनिष्ट अवधारणा है । आर्थिक संवृद्धि चाहे कितना भी महत्वपूर्ण क्यों न हो पर यह अपने में साध्य नहीं हो सकता है । आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth) केवल परिणात्मक परिवर्तन (राष्ट्रीय उत्पादन के आकार में परिवर्तन) (आर्थिक चरों, जिनका परिमाणत्मक माप संभव हो, में परिवर्तन)

प्रो. साइमन कुजनेट्स (Simon Kuznets) ने आर्थिक संवृद्धि की परिभाषा देते हुए इसे प्रति व्यक्ति अथवा प्रति श्रमिक उत्पादन की स्थिर वृद्धि से संबंधित किया जो बहुधा जनसंख्या में होने वाली वृद्धि एवं संरचनात्मक परिवर्तनों के पूर्णांक के साथ-साथ होती है । तदुपरान्त कुजनेट्स ने एक दम की आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth) को पूर्ति क्षमता में होने वाली दीर्घकालीन वृद्धि के द्वारा परिभाषित किया जिसके द्वारा जनसंख्या को विभिन्न आर्थिक वस्तुओं की पूर्ति करना संभव बनता है । यह बढ़ी हुई उत्पादन क्षमता तकनीक के उन्नत होने एवं संस्थागत व वैचारिक समायोजनों पर निर्भर करती है जो इसकी मांग करते हैं।

साइमन कुजनेट्स की परिभाषा में तीन घटक महत्वपूर्ण है -

I. एक राष्ट्र की आर्थिक संवृद्धि वस्तुओं की पूर्ति में होने वाली वृद्धि के द्वारा अभिव्यक्त की जा सकती है ।
II. तकनीक के व्यापक व समर्थ प्रयोग एवं इसे विकास हेतु संस्थागत एवं वैचारिक समायोजन आवश्यक है ।
III. आर्थिक वृद्धि हेतु उन्नत तकनीक महत्वपूर्ण घटक है । उन्नत(High) तकनीक जिसे कुजनेट्स ने Permissive source of growth कहा है ।

आर्थिक संवृद्धि के लक्षण (Main Feature of Economic Growth) आर्थिक संवृद्धि के मुख्य लक्षण निम्न बिन्दुओं द्वारा व्यक्त किए जा सकते है । जो निम्न है-

I. यह बढ़ती हुई राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय को सूचित करती है ।
II. सह क्रमिक व दीर्घकाल में स्थिर रहती है ।
III. इसके अधीन प्रणाली के एक या अधिक आयामों में विस्तार होता है ।
IV. सामन्यत: इसे विकसित देश की समस्याओं से संबंधितकिया जाता है ।
V. यह एक मात्रात्मक प्रक्रिया है ।
VI. आर्थिक संवृद्धि धनात्मक के साथ-साथ कभी-कभी ऋणात्मक भी हो सकती है ।
VII. नवीन तकनीक एक संस्थागत सुधारों का अभाव

आर्थिक संवृद्धि के मापक - आर्थिक संवृद्धि के मापक जो इस प्रकार हैं-

1. वास्तविक राष्ट्रीय आय - मौद्रिक आय को जब मूल्य स्तर से भाग देते हैं तो वास्तविक घरेलू आय प्राप्त होती है

$GDP = \frac{GDPt - GDPt-1}{GDPt-1}$ x 100

$GDPt$= सकल घरेलू उत्पाद चालू समय में

$GDPt - 1$ = सकल घरेलू उत्पाद एक वर्ष पहले

2. प्रति व्यक्ति आय (Per Capita income)- प्रति व्यक्ति आय आर्थिक संवृद्धि का दूसरा महत्वपूर्ण मापक है। इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आय को जनसंख्या विभक्त करते हैं

$PCI = \frac{Total\ National\ Income}{Total\ Populatin}$,प्रति व्यक्ति आय $= \frac{\text{कुल राष्ट्रीय आय}}{\text{जनसंख्या}}$

1.4 आर्थिक विकास की अवधारणा

आर्थिक विकास की निश्चित और सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है । क्योंकि विभिन्न लेखकों ने इसकी परिभाषा आर्थिक विकास के विभिन्न मापों पर दी है । सुविधा की दृष्टि से हम इन विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन दो दृष्टिकोणों से करते हैं

आर्थिक विकास सम्बन्धी दृष्टिकोण	
परम्परागत दृष्टिकोण	आधुनिक दृष्टिकोण

1. परम्परागत दृष्टिकोण - परम्परागत दृष्टिकोण से संबंधी अर्थशास्त्री समझते है कि आर्थिक विकास की परिभाषा राष्ट्रीय या प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने के रूप में की जाती है । जो प्रो. साइमन कुजनेट्स, पॉल अल्बर्ट, योग्सन ओर मेयर एवं वाल्डविन।

कुछ अर्थशास्त्री समझते हैं कि आर्थिक विकास प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से संबंधित है जो है हिगिन्स, आर्थर लुईस,लीबिस्टीन आदि।

श्री मेयर बाल्डविन के शब्दों में ''आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा दीर्घकाल में एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से तीन बातों पर अधिक जोर दिया गया -

1- प्रक्रिया, 2- वास्तविक राष्ट्रीय आय, 3- दीर्घकाल

आलोचना-

1- आर्थिक विकास की ये परिभाषाएं भी संकुचित परिभाषाएं हैं इसके आर्थिक विकास केवल एक पक्ष अर्थात् प्रति व्यक्ति आय का ही अध्ययन किया गया है।
2- प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि से यह आवश्यक नहीं कि जीवन स्तर ऊंचा हो जाएगा। क्योंकि हो सकता है कि राष्ट्रीय आय का बंटवारा उचित रूप से न हो।
3- किसी विदेशी मुद्रा के रूप में एक अर्थव्यवस्था की प्रति व्यक्ति आय को व्यक्त करके आर्थिक विकास की अन्तरराष्ट्रीय तुलना सदैव उचित नहीं होती है।

1.5 आर्थिक विकास का आधुनिक दृष्टिकोण

1960 तक आर्थिक साहित्य में आर्थिक वृद्धि को आर्थिक विकास के पर्याय के रूप में प्रयोग करते थे। आर्थिक विकास की धारणा आर्थिक विकास सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, गुणात्मक एवं परिमाणात्मक सभी परिवर्तनों से संबंधित है । आर्थिक विकास आर्थिक वृद्धि के अतिरिक्त महत्वपूर्ण दरों में निश्चित परिवर्तन है जो लोगों के जीवन को बेहतर बनाते है । इसलिए आर्थिक विकास परिमाणात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तनों से संबंधित है और व्यक्तिनिष्ट अवधारणा है और आर्थिक विकास तभी कहा जाएगा जबकि जीवन गुणवत्ता में सुधार हो। आर्थिक विकास के लिए आर्थिक संवृद्धि आवश्यक है तथा आर्थिक विकास की प्राप्ति में मददगार सिद्ध होगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) के अनुसार ''विकास मनुष्य की केवल भौतिक आवश्यकताओं से नहीं बल्कि उसके जीवन की सामाजिक दशाओं की समुन्नति से भी संबंधितहै । विकास का अर्थ केवल आर्थिक वृद्धि नहीं है बल्कि उसमें सामाजिक, सांस्कृतिक संस्थागत तथा आर्थिक परिवर्तन भी सम्मिलित है ।''

1.6 विकास के तीन मुख्य मूल्य

प्रो. गौलेट और अन्य के अनुसार आर्थिक विकास के अतिरिक्त अर्थ समझने के लिए तीन मुख्य घटक जो की तथ्य आधारित और व्यवहारिक दिशा निर्देश है उसे समझना चाहिए।

1- जीवन निर्वाह (Life Substance) - सभी लोगों कि न्यूनतम आवश्यकताएं है जिनके बिना जीना मुश्किल है । जिसमें भोजन, मकान, स्वास्थ्य और सुरक्षा। सभी देश अभावग्रस्त और निर्धन लोगों को भोजन, मकान, स्वास्थ्य और सुरक्षा उपलब्ध करता है । इसलिए आर्थिक विकास जीवन की गुणवत्ता में सुधार की आवश्यक दशा है ।

2- आत्म सम्मान - अच्छी जीवन के लिए दूसरा सार्वभौमिक घटक है स्व-सम्मान ।

3- गुलामी से स्वतंत्रता - तीसरा सार्वभौमिक मूल्य स्वतंत्रता है ।

1.7 आर्थिक विकास के मापदण्ड

आर्थिक विकास दीर्घकालीन परिवर्तन की प्रक्रिया है यद्यपि आर्थिक विकास के मापदण्ड के अनेक मापदण्ड और सिद्धान्त है आर0जी0 लिप्से ने बरकरार रखा की देश के विकास की डिग्री के कई संभव माप है । प्रति व्यक्ति आय, बिना प्रयोग किये साधनों का प्रतिशत, प्रति व्यक्ति पूँजी, प्रति व्यक्ति बचत, सामाजिक पूंजी की मात्रा आदि। परन्तु आर्थिक विकास के माप के कई सामान्य मापदण्ड है जैसे राष्ट्रीय आय में वृद्धि, प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय तुलनात्मक तथ्य, जीने का स्तर और समुदाय का आर्थिक कल्याण आदि।

1. राष्ट्रीय आय (National Income) -

कुछ अर्थशास्त्री राष्ट्रीय आय में वृद्धि को आर्थिक विकास का सही माप मानते है जैसे साइमन कुजनेट्स मायर और वाल्डविन आदि। प्रो. कुजनेट्स इस पद्वति के आधार पर आर्थिक विकास के माप का समर्थन करते है।

किसी देश में एक वर्ष के अन्दर पैदा कि गयी समस्त वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को कुल राष्ट्रीय उत्पादन करने के लिए जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है । उसमें घिसावट या मूल्य ह्रास होता है । अत: यदि कुल राष्ट्रीय उत्पादन में से सम्पति की घिसावट का मूल्य घटा दिया जाये तो शेष शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन होगा। पर कुल राष्ट्रीय उत्पादन आर्थिक विकास की उचित कसौटि नहीं है । क्योंकि कुल राष्ट्रीय उत्पादन में सम्पति की प्रतिस्थापना पर ध्यान नहीं दिया जाता है शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन या आय ही आर्थिक विकास का मापदण्ड है । यदि किसी राष्ट्र में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ रहा है तो वह उसकी बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय व आर्थिक विकास का संकेतक है।

1.8 कुल राष्ट्रीय उत्पाद या आय के मापदण्ड में सावधानियां

1- आर्थिक विकास के लिए स्थिर मूल्य पर आय की गणना के आधार पर मूल्यांकन उपयुक्त होगा।
2- उत्पादन के सही आंकड़े संकलित किये जाने चाहिए।
3- राष्ट्रीय आय में दोहरी गणना की समस्या का समापन करना चाहिए।
4- जिन उत्पादों का बाजार में विक्रय नहीं होता है उन वस्तुओं के मूल्य को अनुमानित किया जाये।
5- आय मापांकन के लिए विभिन्न विधियाँ जैसे उत्पादन गणना, आय गणना, मिश्रित मूल्यांकन प्रणालियों का सन्तुलित प्रयोग करके राष्ट्रीय आय का सही अनुमान लगाया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय आय वृद्धि मापदण्ड पक्ष में तर्क - आर्थिक विकास की माप के लिए इसके समर्थक अर्थशास्त्री वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि को आर्थिक विकास की सर्वश्रेष्ठ कसौटी मानते हैं।

1- विकास की वास्तविक एवं तुलनात्मक स्थिति का अध्ययन हम राष्ट्रीय आय के आधार पर कर सकते हैं प्रति व्यक्ति आय के आधार पर नहीं।
2- प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय आय पर निर्भर करती है । चूंकि प्रति व्यक्ति आय में करने के लिए वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना आवश्यक होता है । इसलिए मायर एवं बाल्दविन का मत है कि प्रति व्यक्ति आय की अपेक्षा राष्ट्रीय वृद्धि को आर्थिक विकास का अभिसूचक मानना श्रेष्ठ होगा।

सीमाएं (Limitation) - किसी देश की राष्ट्रीय आय का आंकलन करना कठिन समस्या है । जिसमें निम्न कठिनाइयां पायी जाती है :-

1- दोहरी गणना।
2- हस्तांतरण भुगतान - राष्ट्रीय आय में हस्तांतरण भुगतान आदि को सम्मिलित करने में कठिनाई उत्पन्न होती है।
3- सार्वजनिक सेवाएं - राष्ट्रीय आय कि परिगणना में बहुत सी सार्वजनिक सेवाएं जैसे पुलिस व सैनिक सेवाएं भी ली जाती है। जिनका ठीक से हिसाब लगाना कठिन है।
4- अवैध क्रियाएं - राष्ट्रीय आय में अवैध क्रियाओं से प्राप्त आय सम्मिलित नहीं की जाती है।
5- पूँजीगत लाभों की जटिलताएं - जो सम्पत्ति मालिकों को उनकी पूंजी परिसंपत्तियों के बाजार मूल्य में वृद्धि, कमी या मांग परिवर्तनों से होती है वे GNP में शामिल नहीं की जाती है। क्योंकि ये परिवर्तन चालू आर्थिक क्रियाओं के कारण नहीं होते हैं।

2. प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income) -

कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि राष्ट्रीय आय को आर्थिक विकास का द्योतक नहीं माना जा सकता। इस प्रकार वे कहते है आर्थिक विकास का अर्थ है कि समग्र उत्पादन में वृद्धि इस प्रकार आर्थिक विकास परिभाषित किया जा सकता कि दीर्घकाल तक प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की प्रक्रिया है । कुछ अर्थशास्त्री लेबिस्टन, राष्ट्रो, बाटन, बुकैजन आदि प्रति व्यक्ति आय को आर्थिक विकास के सूचक के रूप में प्रयोग करने के पक्ष में है । किडल्बर्जर ने भी प्रति व्यक्ति आय को आर्थिक विकास के माप के रूप में सुझाया है।

प्रति व्यक्ति आय के पक्ष में तर्क -

1- जीवन स्तर में सुधार
2- आर्थिक कल्याण में वृद्धि
3- प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि

प्रति व्यक्ति आय के विपक्ष में तर्क

1- प्रति व्यक्ति आय केवल औसत - प्रति व्यक्ति आय औसत है । जो राष्ट्रीय आय को जनसंख्या के द्वारा विभाजन से प्राप्त होती है । परन्तु यह समूह की सरंचना तथा उसके वितरण का परिचायक नहीं है।
2- अविश्वसनीय माप - प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि रहन सहन के स्तर का विश्वसनीय माप नहीं है । यह जरूरी नहीं है कि PCIमें वृद्धि से रहन सहन सुधरेगा। यदि आप इसका बड़ा अंश उपभोग की बजाय बचत में लगा देते हो तो रहन सहन का स्तर नहीं सुधरेगा।
3- जनसंख्या का स्वरूप - प्रति व्यक्ति आय ज्ञात करने के लिए राष्ट्रीय आय को जनसंख्या से विभाजित करते हैं और यह ज्ञात नहीं किया जाता है कि कुल जनसंख्या में कितना अनुपात उत्पादक है और अनुउपात्दक।

3 तुलनात्मक अवधारणा (Comparative Concept)-

आर्थिक विकास तुलनात्मक अवधारणा है और इसे आसानी से समझा और मापा जा सकता है । तुलनात्मकता को दो तरीके से समझा जा सकता है-

i. देश में तुलनात्मक अध्ययन

ii. देश का दूसरे देश के साथ तुलना

i-देश में तुलनात्मक अध्ययन - किसी देश के आर्थिक विकास की तुलना किसी समय में कर सकते हैं। हम एक समय अवधि लेगे और भिन्न भिन्न भागों में बांटलेते हैं।

उदाहरण के लिए किसी देश की राष्ट्रीय आय 1970 में 1000 करोड़ थे जो 1975 में बढ़कर 1200 करोड़ और 1980 में 1800 करोड़ रूपये हो गयी। तथा 1985 में यह राशि बढ़कर 2250 करोड़ रूपये हो गयी। इसलिए पांच वर्ष की अवधि में 1970 से 75, राष्ट्रीय आय में वृद्धि 20 प्रतिशत हुई है । 1975 से 80 तक 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। 1980 से 1985 में 25 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। इसे रेखाचित्र की सहायता से समझा जा सकता है ।

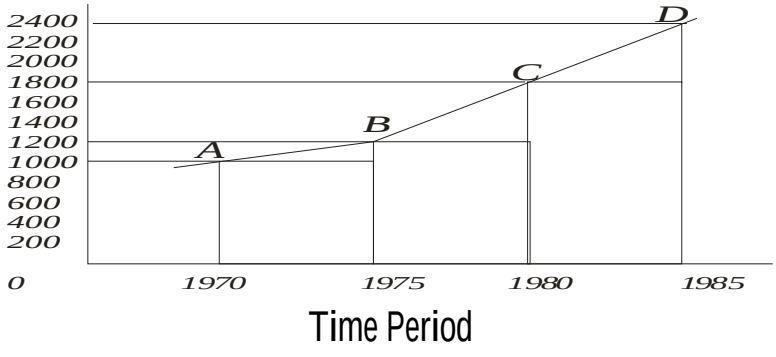

रेखाचित्र 1.1 से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय 1970 में 1000 करोड़ रू0 जो 1975 में 10 प्रतिशत बढ़कर 1200 करोड़ रू0 और 1980 में 1800 करोड़ रू0 हो गयी।

ii दूसरेदेश के साथ तुलना

दूसरे देश के साथ तुलना को निम्न रेखाचित्र के द्वारा समझा जा सकता है ।

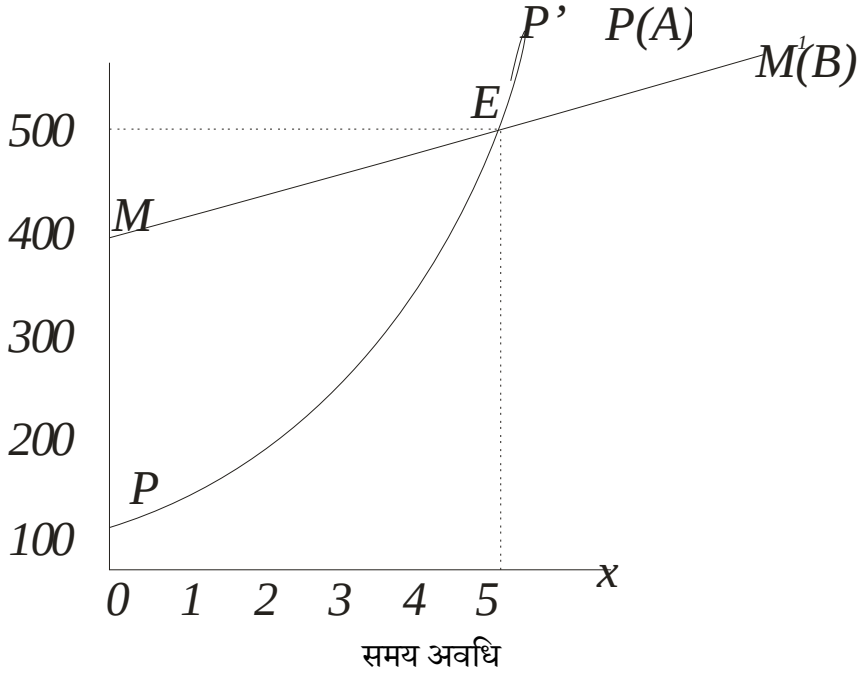

रेखाचित्र 1.2 में Ox अक्ष पर समय अवधि और Oy अक्ष पर राष्ट्रीय आय को लिया गया है । वक्र pp^1 देश A के आर्थिक विकास के पक्ष को दिखाता है और वक्र mm^1 देश B के आर्थिक विकास के पक्ष को दिखाता है । प्रारम्भिक स्तर पर देश की राष्ट्रीय आय देश A की राष्ट्रीय आय से अधिक है । परन्तु उसी समय के दौरान देश A की विकास दर देश B से ज्यादा है । बिन्दु E, समय अवधि 5 पर दोनों देश की राष्ट्रीय आय समान है । दीर्घकाल में बिन्दु E के बाद राष्ट्रीय आय देश A का देश B से अधिक है । रेखाचित्र के द्वारा हम कह सकते हैं कि देश A ज्यादा विकास वाला देश है देश B की तुलना है ।

4 आर्थिक कल्याण

कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक कल्याण को आर्थिक विकास का उचित मापदण्ड माना है उनके अनुसार ऐसी प्रक्रिया को आर्थिक विकास माना जाता है । जिससे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय व उपभोग में वृद्धि होती है । और उसके साथ-साथ आय की असमानताओं का अन्तर कम होता है तथा देश के निवासियों को अधिकतम संतुष्टि मिलती है । संक्षेप में हम कह सकते है कि जीवन स्तर मुख्यत: उपभोग के स्तर पर निर्भर करता है । इसलिए देश में बढ़ता हुए उपभोग का जीवन स्तर ही आर्थिक विकास का अभिसूचक है ।

सीमाएं (Limitation) :-

1. यह आवश्यक नहीं कि वास्तविक राष्ट्रीय वृद्धि का अर्थ कल्याण में सुधार ही हो क्योंकि हो सकता है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय बढ़ने पर भी उसका वितरण सही नहीं जिसके फलस्वरूप गरीबों के उपभोग स्तर में किसी प्रकार की वृद्धि न हो।

2. उपभोग व जीवन स्तर अत्यंत ही भ्रामक शब्द है जिनकी निरपेक्ष माप संभव नहीं है।

5. जीवन स्तर मापदण्ड (Standard of living criterion)-

एक अन्य मापदण्ड जीवन स्तर जो आर्थिक विकास का मापक है । इस दृष्टिकोण के अनुसार जीवन स्तर और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं हो तथा राष्ट्रीय आय को आर्थिक विकास का संकेतक समझना चाहिए। आर्थिक विकास मुख्य लक्ष्य लोगों को अच्छा जीवन प्रदान करना, जीवन स्तर में सुधार के द्वारा दूसरे शब्दों में इस मतलब है व्यक्तिगत उपभोग स्तर में वृद्धि।

विकास के सूचक (Indicator of Development) - विकास के स्तर के माप के तीन महत्वपूर्ण संकेतक है:-

i- जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचक (Physical quality of life Index PQLI))

ii- मानव विकास का सूचक (Human Development Index)

iii- जीवन की गुणवत्ता का सूचक(Quality of Life Index)

अर्थशास्त्रियों ने तीन संकेतों को लेकर मानव विकास के सीमित सूचकों के निर्माण के लिए मूल आवश्यकताओं के सामाजिक सूचकों को मापने का प्रयास किया है । भौतिक जीवन-कौटि निदेशांक (Physical quality of life Index PQLI)) मौरिस डी. मौरिस ने 1979 में मिश्रित जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचकांक का निर्माण किया। उन्होंने जीवन प्रत्याशा तथा मृत्युदर, साक्षरता दर तीन सूचकांको को लेकर इस आधार पर 23 विकसित और विकासशील देशों के आर्थिक विकास का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया।

1.9 सूचकांकका चुनाव

i- जीवन प्रत्याशा सूचकांक (Life Expectancy Index)

ii- शिशु मृत्यु दर सूचकांक (Infant Mortality rate Index)

iii- आधारभूत साक्षरता दर सूचकांक (Literacy rate Index)

प्रत्येक सूचकांक के तीनों घटकों को शून्य से 100 तक के पैमाने पर रखा गया है । जिसमें शून्य को निम्नतम तथा 100 को सर्वोत्तम प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है । HDI की गणना तीनों घटकों को समान भार देते हुए औसत निकाल कर की जाती है तथा सूचक को भी शून्य से 100 के पैमाने पर रखा गया है । इन निर्देशांक के आधार पर देश में विकास होने या न होने का पता चलता है । यदि जीवन निर्देशांक में स्थायी तौर से वृद्धि होती है जो कि सम्भव है जबकि देश में कुल राष्ट्रीय उत्पादन का वितरण और उपभोग इस ढंग से हो कि अधिकाधिक लोग लाभ उठा सके और फलस्वरूप शिशु मृत्यु दर घटे तथा प्रत्याशित आयु और साक्षरता बढ़े तो यह इस बात का सूचक होगा कि देश में आर्थिक विकास हो रहा है।

मौरिस के अनुसार तीनों सूचकों में प्रत्येक सूचक परिणाम है। उसके अध्ययन के अनुसार-

1. जीवन प्रत्याशा और शिशु मृत्यु दर में उच्च डिग्री का ऋणात्मक सह सम्बन्ध गुणांक प्राप्त है।
2. शिक्षा और शिशु मृत्यु दर में भी उच्च डिग्री का ऋणात्मक सह सम्बन्ध प्राप्त है।
3. शिक्षा और जीवन प्रत्याशा में उच्च डिग्री का धनात्मक सह सम्बन्ध प्राप्त है अर्थात् शिक्षा के साथ-साथ जीवन प्रत्याशा में वृद्धि होती है।

सीमाएं-

1. PQLI मूल आवश्यकताओं को केवल एक सीमा तक ही मापता है । यह आर्थिक वृद्धि को मापने का काम भी नहीं करता है।
2. यह मापदण्ड सामाजिक और आर्थिक संगठन के बदलते हुए ढांचे को भी नहीं प्रदर्शित करता है। अत: यह आर्थिक विकास को नहीं मापता है।
3. इसके अन्तर्गत केवल तीन सूचकों को लिया गया है और अनेक सूचकों को छोड़ दिया गया है जो जीवन की गुणवत्ता को प्रमाणित करते हैं।
4. PQLI कुल कल्याण को नहीं मापता।

उपर्युक्त सीमाओं के होते हुए भी PQLI जीवन की गुणवत्ता को मापता है जो गरीबों के लिए बहुत आवश्यक है। साथ ही यह अल्पविकास के उन विशेष क्षेत्रों का पता लगाने तथा सामाजिक नीतियों की असफलता तथा उपेक्षा की शिकार समाज के विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त करने में सहायक हो सकता है । सरकार ऐसी नीतियां अपना सकती है जिससे PQLI में भी शीघ्र वृद्धि हो तथा आर्थिक विकास त्वरित हो।

1.10 मानव विकास सूचकांक(Human Development Index)

1990 में संयुक्त राष्ट्र विकास संगठन (UNDP) के साथ जुड़े हुए अर्थशास्त्री महबूत-उल-हक तथा उनके अन्य सहयोगी अर्थशास्त्री प्रमुखतया नोबल पुरस्कार सम्मानित ए.के.सेन तथा प्रो. सिंगर हंस के नेतृत्व में अर्थशास्त्रियों ने एक समूह ने मानव विकास सूंचकांकविकसित किया।

मानव विकास सूचक (HDI) तीन सामाजिक, अभिसूचकों अथवा मापदंडों का एक मिश्रित सूचक है। जिसमें वास्तविक प्रतिव्यक्ति GDP का भी ध्यान रखा जाता है। किसी देश के HDI का मूल्य निकालने के लिए निम्नलिखित तीन सूचकों को लिया जाता है।

1- **दीर्घायु (Longevity)** - इसे जन्म के समय जीवन की प्रत्याशा द्वारा मापा जाता है। जिसे वर्तमान समय में अर्थशास्त्रियों द्वारा न्यूनतम 23 वर्ष तथा अधिकतम 85 वर्ष दर्शाया जा रहा है।

2- **शैक्षणिक उपलब्धियां** - शैक्षणिक उपलब्धियों की माप निम्नलिखित दो चरों द्वारा की जाती है।

I. **प्रौढ़ साक्षरता दर** - इसमें 15 वर्ष या उससे अधिक आयु के 100 व्यक्तियों में से कितने व्यक्ति साधारण कथन को पढ़ लिख सकते हैं। उसे प्रौढ़ साक्षरता दर कहते हैं।

II. **सकल नामांकन दर -** (GER) कुल जनसंख्या का वह भाग जिसका नामांकन प्राथमिक स्कूल मिडिल स्कूल, हायर सैकेण्डरी स्कूल या विश्वविद्यालय स्तर पर हुआ है । उसे सकल नामांकन दर कहते हैं।

शैक्षणिक योग्यताओं की प्राप्ति प्रौढ़ शिक्षा का 2/3 भार तथा प्राथमिक, माध्यमिक व क्षैत्रीय विद्यालयों में नामांकन अनुपातों के 2/3 भार के मिश्रण के रूप में मापा जाता है ।

3- **वास्तविक प्रति व्यक्ति (GNI)** - जीवन स्तर को क्रयशक्ति क्षमता पर आधारित प्रति व्यक्ति GNI द्वारा मापा जाता है । H.D.R. 2010 के पूर्व इन तीनों चरों के आधार पर निम्नांकित सूत्र के आधार पर HDI की गणना की जाती है ।

1.11 व्यक्तिगत सूचकांकोंका निर्माण

HDI के निर्माण के लिए आवश्यक है कि तीनों सूचकांकों का अलग अलग सूचकांक का निर्माण किया जाये। व्यक्तिगत सूचकांकों के निर्माण के लिए निम्न आयाम (विस्तार) सूत्र निम्न प्रकार है –

$$\text{सूचकांक} = \frac{\text{वास्तविक मूल्य} - \text{न्यूनतम मूल्य}}{\text{अधिकतम मूल्य} - \text{न्यूनतम मूल्य}}$$

हम प्रत्येक चर का सूचकांक ज्ञात करते हैं। इस प्रकार हमें तीन सूचकांकों को जीवन प्रत्याशा सूचकांक, शैक्षणिक उपलब्धि सूचकांक तथा क्रय शक्ति समायोजित प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू आय सूचकांक प्राप्त करते हैं।

तीनों सूचकांकों का सरल औसत लेना –

HDI = $\frac{1}{3}$ (जीवन प्रत्याशा सूचकांक + शैक्षणिक उपलब्धि सूचकांक + क्रय शक्ति समायोजित प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय सूचकांक)

HDR 2010 तथा उसके बाद तीन नये बहुआयामी मापक - मानव विकास रिपोर्ट 2010 में UNDP ने विषमता तथा गरीबी के तीन बहुआयामीय मापों को प्रस्तुत किया, ये हैं -

a. विषमता समायोजित HDI
b. लिंगिक विषमता सूचकांक (Gender inequality Index GII)
c. बहुआयामी गरीबी सूचकांक (Multi poverty Index)

तीन सूचकांकों जीवन प्रत्याशा सूचकांक (High life Expectancy), शिक्षा (Education) तथा GNI सूचकांक समग्रित सूचकांक या औसत सूचकांक है । HDR 2010 के अनुसार HDI इन तीन आयामों के सूचकांकों के सूचकाकों का ज्यामितीय औसत है -

HDI = $\sqrt[3]{Ilife\ x\ IEdu\ x\ IGNI}$ I = Index

ज्यामितीय औसत के प्रयोग के कारण अधिकतम मूल्य सापेक्षित मूल्य को नहीं प्रमाणित करते हैं।

HDI की गणना के लिए रिपोर्ट के विभिन्न आयामों के संबंधनिम्न मूल्य लिये गए है

उल्लेखनीय है कि HDI का अर्थ मूल्य 0 और 1 के बीच होता है, तथा अधिकतम मूल्य 1 के बराबर है।

संकेतक	न्यूनतम मूल्य	अधिकतम मूल्य
i. जीवन प्रत्याशा	25	85
ii. प्रौढ़ साक्षरता दर	0%	100%
iii. सकल नामांकन दर	0%	100%
iv. क्रय शक्ति क्षमता पर पर आधारित दर	$100	$40000

HDI के सम्बन्ध में HDR 2013 के कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष:- 2012 में HDI की गणना के सम्बन्ध में 186 देशों को लिया गया है।

HDI के मूल्य के आधार पर HDR 2013 में देशों को चार वर्गों में रखा गया है

(I). 0.773 और उससे अधिक, अत्यधिक उच्च HDI वाले देश
(II). 0.466 से 0.773 तक उच्च मानव विकास वाले देश
(III). 0.466 से 0.640 मध्यम विकास वाले देश
(IV). 0.466 से कम अल्प मानव विकास वाला देश

186 देशों में भारत को HDI 0.554 के साथ 136 स्थान प्राप्त हुआ। अत: भारत मध्यम विकास वाला देश है।

सीमाएं -

(i). विभिन्न कालों में इन तीनों सूचकांकों के आंकड़े अपर्याप्त व अधूरे हो सकते हैं।
(ii). आर्थिक विकास कि प्रक्रिया में इन तीनों सूचकांकों के अलावा, देश की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को भी शामिल करना चाहिए।
(iii). आर्थिक संस्थाएं बदलती रहती हैं या बदलती हुई परिस्थितियों अपनाती है जिसके कारण विकास का क्रमबद्ध माप संभव नहीं है।

1.12 जीवन गुणवत्ता सूचकांक

अर्थव्यवस्था में लोगों के जीवन स्तर के माप के लिए जीवन गुणवत्ता सूचकांक आवश्यक है। यह राष्ट्रीय आय हमारे लोगों के प्रति व्यक्ति आय द्वारा प्रभावितहै। कुछ अन्य घटक जैसे उपभोग,

शिक्षा, उत्पादन, स्वास्थ्य, पर्यावरण, शिक्षा, स्वतंत्रता सुरक्षा, शांत माहोल आदि आर्थिक विकास प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है । राष्ट्रीय आय अकेला कल्याण का मापक नहीं है ये सारे घटक संयुक्त रूप से जीवन की गुणवत्ता के मापक है । परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सारे घटक एक साथ उपयोग किये जाते हो।

1.13 आर्थिक संवृद्धि और विकास में अन्तर

लम्बे समय तक 'आर्थिक विकास' शब्द का प्रयोग आर्थिक संवृद्धि, आर्थिक प्रगति, आर्थिक कल्याण आदि शब्दों में समानार्थी शब्दों के प्रयोग रूप में प्रयोग किया जाता रहा है । शुम्पीटर ने अपनी पुस्तक "The Theory of Growing Development" में आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास इन दोनों शब्दों को अलग अलग स्पष्ट रूप से परिभाषित किया।

आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास में अन्तर

क्र.सं.	आधार	आर्थिक संवृद्धि	आर्थिक विकास
1	प्रकृति	आर्थिक संवृद्धि संभावितक्रमिक व स्थिर गति वाला परिवर्तन होता है	आर्थिक विकास प्रेरित एवं औसतन गतिवाला परिवर्तन होता है। इसके उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ तकनीकी एवं संस्थागत परिवर्तन का होना आवश्यक है।
2	समाजिक न्याय	आर्थिक संवुद्धि के साथ-साथ सामाजिक न्याय आवश्यक नहीं है।	आर्थिक विकास में उत्पादन एवं आय में वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक न्याय की आवश्यकता है।
3	माप	आर्थिक संवृद्धि मात्रात्मक सुधार से सम्बंधित है|	आर्थिक विकास मात्रात्मक के साथ साथ गुणात्मक सुधार से समबन्धित है
4	धनात्मक व ऋणात्मक	आर्थिक संवृद्धि धनात्मक और ऋणात्मक हो सकती है ।	आर्थिक विकास की कल्पना सामान्यत: धनात्मक वृद्धि के रूप में की जाती है।

1.14 सारांश

सम्पूर्ण अध्ययन से हम इस बात पर पहुँचे है कि आर्थिक विकास आर्थिक संवृद्धि दोनों अलग-अलग हैं। प्रारम्भ में कई अर्थशास्त्री एक रूप में प्रयोग करते थे। पर बाद में दोनों का अर्थ अलग-अलग स्पष्ट हुआ है । आर्थिक संवृद्धि का एक आयाम है उत्पादन अथवा राष्ट्रीय आय में

वृद्धि लेकिन यह नहीं बताता की आय में वृद्धि सभी लोगों की हो रही है या इसमें विषमता है । लेकिन आर्थिक विकास बहुआयामी अवधारणा है । इसमें आर्थिक संवृद्धि के साथ साथ सामाजिक कल्याण का भी ध्यान रखा जाता है ।

1.15 संदर्भ ग्रन्थ

1- डॉ. मृगेश पाण्डे - आर्थिक वृद्धि एवं विकास सिद्धान्त नीति एवं समस्याऐं
2- एम.एल. झिगन - आर्थिक विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन
3- डॉ. वी.सी. सिन्हा - आर्थिक संवृद्धि और विकास
4- पुरी व एस.एन. लाल - भारतीय अर्थव्यवस्था
5- डॉ. एस.के. लाल - सर्वेक्षण एवं विश्लेषण
6- आर.के. लेखी - The Economics of Development and Planning

1.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1- आर्थिक विकास को परिभाषित कीजिए। आर्थिक विकास के विभिन्न मापों का विवेचन कीजिए। इनमें से आप किसको सर्वाधिक उपयुक्त समझते हैं और क्यों?
2- क्या आप सोचते हैं कि आर्थिक वृद्धि और आर्थिक विकास में कोई अन्तर है । आप इस अन्तर को कैसे स्पष्ट करेगें। समझाइयें।
3- आर्थिक संवृद्धि और विकास में अन्तर स्पष्ट कीजिए। आप आर्थिक विकास को कैसे मापेगें?

इकाई 2

समावेशी विकास
Inclusive Growth

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 समावेशी विकास के माप

2.3 समावेशी विकास को प्राप्त करने की चुनौतियाँ

2.4 सारांश

2.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.6 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न बिन्दुओं के बारे में जान सकेंगे —

- समावेशी विकास के माप
- समावेशी विकास को प्राप्त करने की चुनौतियाँ

2.1 प्रस्तावना

समावेशी विकास, विकास का मुख्य विचार बन चुका है । समावेशी विकास का अर्थ सामान्यत: दो शब्दों में किया जा सकता है जो दोनों है एक अर्थव्यवस्था की गति और ढ़ॉचा। इस विषय पर साहित्य प्रत्यक्ष आय वितरण या साझा विकास और समावेशी विकास के बीच भेद करता है । समावेशी विकास एक दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य है जो उत्पादकीय रोजगार पर जोर देता है बजाय प्रत्यक्ष आय वितरण के इसके अर्थ है जो समूह बाहर है उनकी आय वृद्धि करना। समावेशी विकास, विकास का विवरणात्मक पहल जो केवल इससे सम्बन्धित नहीं कि आर्थिक वृद्धि दर क्या, कितनी ऊँची और न केवल इसमें संबंधितहै कि जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो रहा है कि नहीं और न ही इससे संबंधितकी मानव विकास सूचकांक उच्च रहा है कि या नहीं। बल्कि इससे संबंधितहै । की उच्च आर्थिक वृद्धि दर से अर्थव्यवस्था का अधिक बड़ा वर्ग जो गरीबी तथा जीवन की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से वंचितहै । लाभान्वित हो रहा है या नहीं।

हम कह सकते है कि समावेशी विकास एक बहुआयामी अवधारणा है जो अर्थव्यवस्था मे पायी जाने वाली असमानता जैसे गरीब-अमीर, स्त्री-पुरूष, ग्रामीण-शहरी आदि को शामिल करती है । जिनका आर्थिक विकास की मुख्य धारा में सबको जोड़ना होता है जिससे आर्थिक विकास से सभी समान रूप से लाभान्वित हो सकें। कोई वंचित न रह ना जाये इसे समावेशी विकस कहते हैं। समावेशी विकास की नीतियाँ जो सरकारी रणनीतियाँ का महत्वपूर्ण घटक है टिकाऊ विकास के लिए है । उदाहरण के लिए एक देश की अर्थव्यवस्था एक दशक से लगातार वृद्धि कर रही है लेकिन गरीबी में पर्याप्त कमी नहीं हुई है तो आवश्यकता है विशेष तोर से इसके विकास रणनीति के समावेशन की।

समावेशी विकास की प्रक्रिया के तीन पहलू होगे -

1- आर्थिक विकास की ऊँची वृद्धि दर जिससे राष्ट्रीय उत्पाद का आकार बढ़े।
2- आर्थिक विकास से उत्पन्न लाभ का बंटवारा जिससे शहरी तथा ग्रामीण कमजोर वर्ग अधिक लाभान्वित हो।
3- वित्तीय समावेशन जिससे, विकास की प्रक्रिया तथा सरकार की विभिन्न योजनाओं से लोगों को प्राप्त आय का उन लोगों तक पहुंचना सुनिश्चित हो।

यूएनडीपी ने समावेशी की वकालत शुरू कर दी, जब अवधारणा स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं है विशेषत: विकासशील देशों में इस लाभ को प्राप्त करने के लिए विकास नीति में स्वीकृत प्रदान कर दी है । यह अन्तर्निहित विश्वास है कि इसका मुख्य लक्ष्य एक रणनीति बनाना है जो आर्थिक और सामाजिक रूप से वंचित लोगों को अर्थव्यवस्था की मुख्य धारा में शामिल करना और इसे विकास प्रक्रिया से जोड़ना। 'समावेशी विकास की रणनीति का नीति मूल्यांकन जो इस प्रकार आय और उपभोग की अभावग्रस्तता से संबंधित माप जैसे प्रतिव्यक्ति आय और उपभोग इस सन्दर्भ में बड़े पैमाने पर बाहर आये हैं। इस प्रकार यह महत्वपूर्ण है कि समावेशी विकास की अवधारणा को परिभाषित करे और इसकी सांख्यकीय माप करने से पहले समावेशी विकास के लिए नीति निर्माण आवश्यक है जो कि आर्थिक रूप से जारी है । समावेशी विकास के लिए यह आवश्यक है कि ऊँची वृद्धि दर के साथ आय का प्रभावी वितरण हो। इसलिए समावेशी विकास के लिए बाजार और राज्य की संबंधित भूमिका आवश्यक है । इस वर्ग की आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की सुपुर्दगी सरकार सुनिश्चित नहीं कर सकती है । इसलिए राज्य की बाजार तथा निजी क्षेत्र के सुचारू रूप से क्रियाशीलन में भूमिका निभानी चाहिए जिससे सरकार

1- बाजार के लिए एक वातावरण पैदा करे जिससे व्यक्तिगत उद्यमी बढ़े।
2- उन लोगों की सहायता करना जो अपने से अच्छा नहीं कर सकते।

इस प्रकार हमें ऐसी सरकार चाहिए तो न्यूनतम हस्तक्षेप के साथ खड़ी रहे तथा साथ ही गरीबों की शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं तथा पर्याप्त मात्रा में पोषण तथा भोजन प्रत्यक्ष मुहैया कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करे। पर इतना निश्चित है कि समावेशी विकास की प्रक्रिया में राज्य की भूमिका

आवश्यक होगी क्योंकि लाभ दर से निर्देशित बाजार समावेशी विकास नहीं प्रदान कर सकता और यह मानकर चलना की आर्थिक वृद्धि दर स्वत: नीचे तक पहुच जायेगी यह बेमानी होगी।

समावेशी विकास स्थापित करने के निम्न महत्वपूर्ण घटक

समावेशी विकास प्राप्त करने के लिए निम्न पर बल देना आवश्यक है

i. आधारभूत आवश्यक वस्तुओं तक सभी की पहुँच।

ii. शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बेरोजगार लोगों को रोजगार प्रदान करना।

iii. कृषि और ग्रामीण विकास सुनिश्चित करना जिसके लिए इस क्षेत्र में निवेश में वृद्धि तथा इसके परिणामस्वरूप आय में वृद्धि होगी।

iv. अल्पसंख्यक या किसी कमजोर वर्ग तथा निर्धनों, महिलाओं तथा बच्चों का सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण करना।

v. शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास तथा खाद्य सुरक्षा पर सार्वजनिक व्यय करना।

vi. कमजोर वर्ग के सभी लोगों के संबंधमें ऐसे उपाय सुनिश्चित करना जिससे उनके ऊपर मूल्य स्तर में स्फीतिक वृद्धि का प्रभाव कम से कम हो।

2.2 समावेशी विकास के माप

समावेशी विकास के माप का प्रभावी तरीका देश के विकास को इसके निचले तबके तक मापना। समावेशी विकास मूलत: जनसंख्या के निचले गरीब तबके से संबंधित है जो तीव्र आर्थिक से लाभान्वित हुआ कि नहीं, हुआ तो कहां तक लाभान्वितहुआ इससे संबंधितहै ओर इन लोगों की गरीबी में कमी आयी की नहीं और इन लोगो के जीवन की गुणवत्ता में सुधार हुआ की नहीं इसके अध्ययन से संबंधितहै । यदि सामाजिक क्षेत्र के विभिन्न घटकों मुख्यत: शिक्षा, स्वास्थ्य पोषक खाने की उपलब्धता, सामाजिक सुरक्षा आदि में होने वाला सुधार इन लोगों की गुणवत्ता में सुधार लाता है । और प्रति व्यक्ति आय बढ़ रही हो तो हम कह सकते हैं कि समावेशी विकास हुआ है । समावेशी विकास को हम निम्न आधार पर माप सकते हैं:-

1. **प्रति व्यक्ति आय के आधार पर -** हम प्रति व्यक्ति आय को कुल राष्ट्रीय आय में जनसंख्या का भाग को प्राप्त करते हैं। यदि प्रति व्यक्ति आय के जनसंख्या के निचले हिस्से की भी आय बढ़ रही है तो हम कह सकते है कि समावेशी विकास हो रहा है । स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था में ऊँची वृद्धि दर के साथ ही यदि इस निचले तबके की आय बढ़ रही है तो यह कहा जा सकता है कि आर्थिक वृद्धि के साथ साथ् ही समावेशी विकास हो रहा है । इस वर्ग की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि यह सुनिश्चित नहीं करती की इस वर्ग की जीवन गुणवत्ता में सुधार हो रहा है ।
2. **मानव विकास सूचकांकके आधार पर -**मानव विकास सूचकांक को आर्थिक विकास का सबसे विश्वसनीय माप माना जाता है । क्योंकि यह अर्थव्यवस्था के सभी चरों दीर्घ आयु, शिक्षा क्रय शक्ति क्षमता को आधार मानता है जो सामाजिक क्षेत्र के विकास को प्रभावितकरते हैं।

समग्र रूप से मानव विकास सूचकांक इस पर प्रकाश डालता है कि आर्थिक विकास हो रहा है और लोगों की जीवन गुणवत्ता में सुधार हो रहा है।

3. **बहुआयामी गरीबी सूचकांक**-HDI रिपोर्ट 2010 में विकसित किया गया। जिसके अनुसार गरीबी का अर्थ यह नहीं की हम कैलोरी के आधार पर गरीबी का माप करें। उन्होंने गरीबी को अभावग्रस्तता से जोड़ा। उनके अनुसार बहुआयामी गरीबी का अर्थ है कि भोजन के अलावा, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छ पानी आदि एक व्यक्ति को प्राप्त हो रहे हैं की नहीं। 2010 में आंकलित MPI के आधार पर भारत में 41.6% गरीबी अनुपात है।
4. **सामाजिक और ग्रामीण क्षेत्र में होने वाला व्यय** - आर्थिक विषमता ने ग्रामीण और शहरों के बीच काफी अन्तर पैदा कर दिया जो एक नुकसान देह है। इस भेद करने के लिए क्या सरकार ग्रामीण क्षेत्र निवेश कर रही है कि नहीं ? यह सभी बातें समावेशी विकास को प्रभावित करती है। भारत सरकार 12वीं पंचवर्षीय योजना से सबसे ज्यादा व्यय सामाजिक योजनाओं पर कर रही है।
5. **ग्रामीण क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी में वृद्धि** - ऐसी अर्थव्यवस्था जहां अधिकतर 50% से ऊपर जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में विकास करती है और वहां इस क्षेत्र मे बढ़ती वास्तविक मजदूरी को समावेशी के रूप में देखा जा सकता है।

2.3 समावेशी विकास को प्राप्त करने की चुनौतियाँ

भौतिकवादी युग में समावेशी विकास को प्राप्त करने में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है-

1. जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि
2. बढ़ती आर्थिक और सामाजिक अस्थिरता
3. भ्रष्टाचार
4. गुड गवर्नेन्स का अभाव

2.4 सारांश

समावेशी विकास एक बहुआयामी अवधारणा है यह देश की समृद्धि के लिए आवश्यक है। निम्न चुनौतियों के बावजूद अगर सरकार की इच्छा शक्ति दृढ़ हो तो इसे प्राप्त किया जा सकता है।

2.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Rahul Anam, Mishra, J.Peiis 'Inclusive Growth : Measurement and Development'
2. K.C. Chakrabarty "What is Inclusive Growth"
3. Raneiriand Ramos " Inclusive Growth : A Building up a concept"

2.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1- समावेशी विकास क्या है? इसके माप और चुनौतियों को समझाइये?

इकाई – 3

विकास का प्रतिष्ठित सिद्धांत

Classical Theories of Development

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 एडम स्मिथ का विकास सिद्धान्त
  3.2.1 मुख्य विशेषताएँ
  3.2.2 कमियाँ
3.3 डेविड रिकार्डो का आर्थिक विकास सिद्धान्त
3.4 जे.एस. मिल का आर्थिक विकास सिद्धान्त
3.5 सारांश
3.6 बोध प्रश्न
3.7 कुछ उपयोगी पुस्तक

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो एवं जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के आर्थिक विकास संबंधी विचारों से आपको अवगत करना है।

3.1 प्रस्तावना

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों से,पूर्व प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के संबंध में अपनी विचारधारा प्रस्तुत की जिसे परिमार्जित करने का श्रेय प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों को रहा, तथा उन्होने दीर्घकालीन आर्थिक विकास के स्वरूप के प्रति रूचि प्रकट की।

3.2 एडम स्मिथ का विकास सिद्धान्त Adam Smith Theory For Development

एडम स्मिथ को, राजनीतिक अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है। उन्हें एक क्लासिकल अर्थशास्त्री के रूप में जाना जाता है। उनकी मुख्य पुस्तक (An inquiry into the nature and causes of the wealth of nation) है जो मुख्यतः आर्थिक विकास की समस्याओं से सम्बन्धित है।

एडम स्मिथ ने अपने विकास सिद्धान्त को व्यक्त करने के लिए एक साधारण उत्पादक फलन का उपयोग किया जो इस प्रकार है।

$y = f(L, K, N)$ यहाँ y = उत्पादन, N = भूमि, K = पूंजी, L = श्रमिक

यह फलन यह व्यक्त करता है कि उत्पादन श्रम, भूमि और पूंजी आदि पर निर्भर करता है।

मान्यताएँ (Assumption)

1. जनसंख्या, जिसे प्रारम्भिक समय में अन्तर्जात चर माना जाता था।
2. निवेश भी अन्तर्जात चर है जो बचत की दर पर निर्भर करता है।
3. भूमि विकास जो नई भूमि पर निर्भर करती है। जो की बंजर भूमि को तकनीकि सुधार द्वारा उसकी उर्वरता को बढ़ाया जा सकता है।
4. तकनीकि प्रगति जो की सम्पूर्ण वृद्धि दर के स्तर को बढ़ा सकती हैं।
5. स्मिथ ने पाया की तकनीकि सुधार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वृद्धि के इंजन है।
6. स्मिथ ने पूर्ण प्रतियोगिता के अस्तित्व को स्वीकार किया।

3.2.1 मुख्य विशेषताएँ (Main Feature)

1. श्रम विभाजन (Division of Labour) - आर्थिक विकास की दर श्रम और श्रम की उत्पादकता के आकार द्वारा निर्धारित होती है और श्रम की उत्पादकता देश तकनीकि प्रगति पर निर्भर करती है और तकनीकि प्रगति श्रम विभाजन पर निर्भर करती है इसी कारण से स्मिथ ने श्रम विभाजन को आर्थिक प्रक्रिया में मुख्य स्थान दिया। श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण से निम्न लाभ है।

(a) श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है।
(b) वस्तुओं के निर्माण में कम समय लगता है।
(c) अच्छी मशीनों और उपकरण का आविष्कार होता है।

श्रम विभाजन से निपुणता और कार्य कुशलता बढ़ती है जो कि उत्पादन के स्तर को बढ़ाने के लिए आवश्यक है। श्रम विभाजन से वस्तुओं का आदान-प्रदान है जिसमें वस्तुओं के व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है और बाजार का आकार भी विस्तृत होता है।

2. प्राकृतिक नियम (Natural Law) - एडम स्मिथ ने अपने सिद्धान्त में प्राकृतिक नियम को प्रस्तुत किया। उन्होंने स्वतंत्र और रोक-टोक रहित कार्य करने की नीति की वकालत की। उनके अनुसार समाज में प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक क्रियाओं को करने की आजादी हो तो वह अपनी योग्यता से अधिक उत्पादन कर सकता है यह समाज की बेहतरी के लिए अच्छा होता।

स्मिथ ने आर्थिक क्रियाओं सरकारी हस्तक्षेप का विरोध किया साथ ही वह मुक्त व्यापार नीति और अहस्तक्षेप नीति का समर्थन किया। उनका मानना था कि प्राकृतिक नियम राज्य के द्वारा बनाये नियमों से सर्वोपरी है और वैधानिक नियम और इंसान द्वारा बनाये गये नियम कभी भी समाज के लिए पूर्ण और लाभकारी नहीं हो सकते हैं।

3. अहस्तक्षेप नीति (Laissez Fair)- स्मिथ का विकास सिद्धान्त मुख्यतः अहस्तक्षेप नीति पर आधारित है जिसके लिए आवश्यक है कि राज्य को व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर रोक नहीं लगाना चाहिए उनके अनुसार विकास का सिद्धान्त बचत, श्रम विभाजन और बाजार के विस्तार पर आधारित है। बचत और पूँजी संचय इसके शुरूआती बिन्दु है। अहस्तक्षेप नीति उत्पादक को छुट देती की वह चाहे जितना उत्पादन कर सकता है और इच्छा के अनुसार आय कमा सकता है और जीतना चाहे बचत कर सकता है। एडम स्मिथ का विश्वास था कि ''अदृश्य हस्त'' द्वारा अर्थव्यवस्था का संचालन और नियंत्रण हमेशा सुरक्षित होता है अर्थात् प्रतियोगिता की शक्तियों को काम की छुट हो तो विकास हेतु बचत और निवेश अधिकतम हो सकता है।

4. पूँजी संचय (Capital Accumulation) - एडम स्मिथ के सिद्धान्त का केन्द्र बिन्दु पूँजी संचय है और वृद्धि फलनात्मक रूप से निवेश की दर से सम्बन्धित है।एडम स्मिथ के अनुसार धन-सम्पत्ति को बढ़ाने को मुख्य साधन उत्पादन है जिसे अधिक पूंजी निवेश के द्वारा बढ़ाया जा सकता है जिसके लिए अधिक पूँजी और अधिक पूँजी के लिए ज्यादा बचत करनी चाहिए। इसलिए स्मिथ बचत पर ज्यादा ध्यान दिया क्योंकि यह पूँजी संचय का आधार है।

5. विकास का एजेंट (Agents of Growth)- स्मिथ के अनुसार किसान उत्पादक और व्यवसायी आदि आर्थिक विकास के मुख्य एजेंट है। इन तीनों का कार्य एक-दूसरे से सम्बन्धि है। कृषि का विकास जो की निर्माण कार्य और वाणिज्य में वृद्धि करता है। आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप जब कृषि आधिक्य में वृद्धि होती है तो इससे वाणिज्य सेवाओं और विनिर्माण वस्तुओं की मांग में वृद्धि होती है इससे वाणिज्य प्रगति और विनिर्माण उधोगों की स्थापना होती है। दुसरी तरफ इनका विकास कृषि क्षेत्र के उत्पादन में वृद्धि करता है और किसान उन्नत तकनीकि का प्रयोग करता है।

6. प्राकृतिक संसाधनों की कमी- स्मिथ के अनुसार विकास की प्रक्रिया संचयी होती है। कृषि, विनिर्माण उद्योग और वाणिज्य में प्रगति के कारण समाज में समृद्धि आती है। जिससे पूंजी संचय, तकनीकि प्रगति, बाजार विस्तार, श्रम विभाजन और लाभ में वृद्धि होती है। लेकिन यह प्रक्रिया अनंत नहीं है। क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों के दुर्लभता के कारण एक दिन आर्थिक विकास अवरुद्ध होना ही है। व्यवसायीयों के बीच प्रतियोगिता लाभ में कमी लाती है इससे निवेश में कमी होगी जिसके परिणामस्वरूप पूंजीवाद गतिहिन, लाभ निम्नतम, मजदुरी जीवन निर्वाह स्तर पर होगी। इससे प्रति व्यक्ति आय उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं होगा और इससे अर्थव्यवस्था गतिहीन हो जायेगी।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

स्मिथ ने आर्थिक विकास सिद्धान्त में महत्वपूर्ण बिन्दु चिन्हित किये कि ''कैसे आर्थिक वृद्धि होगी और कौन से साधन और नीतियाँ इसे अवरुद्ध करेगी।'' उन्होंने अपने सिद्धान्त में बचत, पूंजी संचय, तकनीकि प्रगति श्रम विभाजन, बाजार विस्तार और किसान, व्यापारी और उत्पादन के बीच अन्तर निर्भरता की सन्तुलन कि प्रक्रिया आदि के महत्व का वर्णन किया था।

3.2.2 कमियाँ

1. **स्थिर मॉडल-** हिक्स के अनुसार स्मिथ का मॉडल विकास का मॉडल है यह जैसा लगता है लेकिन वास्तविकता में है नहीं इसके कोई परिणाम दिखाई नहीं देते इसलिए यह स्थिर मॉडल है।
2. राज्य की भूमिका को नजरअंदाज किया है।
3. यह एक तरफा बचत आधारित मॉडल है।
4. **पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित-** स्मिथ ने अपने सिद्धान्त में पूर्ण प्रतियोगिता की अहस्तक्षेप नीति को अपनाया जो कि किसी अर्थव्यवस्था में नही अपनाया है। क्योंकि राज्य नीजि क्षेत्र पर बहुत से प्रतिबन्ध लगाता रहता है।
5. **समाज का कठोर विभाजन-** स्थिम का सिद्धान्त सामाजिक और आर्थिक वातावरण पर आधारित है। उन्होंने माना कि समाज में पूंजीपति और श्रमिकों के बिच विभाजन का अस्तित्व है परन्तु आधुनिक समाज में मध्यम वर्ग का अस्तित्व है जो यह सिद्धान्त नजरअंदाज करता है।

3.3 डेविड रिकार्डो का आर्थिक विकास सिद्धान्त (Ricardian Theory of Economic Development)

डेविड रिकार्डो (1772-1823) का व्यक्तित्व-बहुमुखी प्रतिभा का धनी था। वे अपनी तर्कशैली और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध था। उन्होंने विकास के पुराने सिद्धान्त को अपनी तर्कशैली से नया रूप दिया। विकास के बारे में उनके विचार प्रसिद्ध पुस्तक। (Principal of Political Economy and Taxation) 1817 में मिलते है। आर्थिक विकास के बारे में उनके विचार कुछ भिन्न थे।

एडम स्थिम का अधिक ध्यान राष्ट्रों की सम्पत्ति बढ़ाने की ओर था जबकि रिकार्डो का ध्यान आय के वितरण और विदेशी व्यापार पार अधिक केन्द्रित रहा था। इस प्रकार स्मिथ का विकास मॉडल क्लासीकल समय में प्रमुख सिद्धान्त रहा था इसको रिकार्डो ने (1817) में संशोचित किया साथ ही इसमें भूमि के घटते प्रतिफल को शामिल किया।

मान्यताएँ

1. भूमि का प्रयोग अनाज उत्पादन के लिए किया जायेगा
2. भूमि पर घटते प्रतिफल का नियम लागु होगा
3. अनाज की माँग की लोच पूर्णयता बेलोच है
4. भूमि और पूँजी दोनों पर चर आगम है
5. तकनीकि को दिया हुआ माना गया
6. सभी मजदुरों को जीवन निर्वाह मजदुरी दी जायेगी
7. अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है
8. श्रमिकों की माँग पूँजी संजय पर निर्भर करती है।
9. माँग और पूर्ति की कीमतें श्रम की सीमान्त उत्पादकता से स्वतंत्र है

10. श्रम की पूर्ति को दिया हुआ या स्थिर माना गया है

11. पूँजी संचय लाभ का परिणाम है।

रिकार्डो ने कृषि को अर्थव्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत माना गया है उन्होंने माना कि किसी देश में सबसे महत्वपूर्ण समस्या बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए योजन की व्यवस्था करना। रिकार्डो के अनुसार अर्थव्यवस्था के तीन मुख्य समुह भूमि मालिक पूँजीपति और श्रमिक जिनके बीच उपजाऊ भूमि का वितरण किया जायेगा। पूँजीपति अपने लाभ अर्थव्यवस्था में पुनः निवेश करके आर्थिक विकास प्रक्रिया की शुरूआत करता है और इस प्रकार पूँजी निर्माण में वृद्धि होती है।

1. लगान, लाभ और मजदुरी-

(a) लगान जो भूमि के उत्पादन का हिस्सा जो भूमि मालिक को प्राप्त होता है। रिकार्डो औसत उत्पादन और सीमान्त उत्पादन में भेद करता है।

(b) मजदुरी दर जो मजदुरी फंड को मजदुर जो जीवन निर्वाह मजदुरी पर काम कर रहे उसे विभक्त कर निर्धारित कि जाती है।

उत्पादन फलन

$y = f(L, K, N)$ यहाँ y = उत्पादन, N = भूमि, K = पूंजी, L = श्रमिक

यह उत्पादन फलन हासमान सीमान्त उत्पादकता पर आधारित है।

$$\frac{\partial^2 f}{\partial K^2} < 0, \frac{\partial^2 f}{\partial L^2} < 0, \frac{\partial^2 f}{\partial N^2} < 0$$

2. पूँजी संचय (Capital Accumulation) - रिकार्डो के अनुसार पूँजी संचय लाभ का परिणाम है जो बचन के लिए प्रेरित करता है जो बाद में पूँजी निर्माण के लिए उपयोग की जाती है पूँजी निर्माण बचत और बचत की क्षमता पर निर्भर करती है जो बहुत महत्वपूर्ण है। लाभ आधिक्य जितना बड़ा होगा उतनी ही बचत करने की क्षमता होगी।

3. लाभ की दर (The Profit Rate)- लाभ की दर कार्यरत पूँजी के लाभ के समान है। यदि लाभ की दर घनात्मक है तो पूँजी संचय होगा जो वास्तविकता में लाभ मजदुरी पर निर्भर करता है मजदुरी अनाज की कीमत पर, अनाज की कीमत भूमि उत्पादकता पर निर्भर करती है। इसलिए लाभ और मजदुरी में ऋणात्मक सम्बन्ध है। जब कृषि उत्पादकता में सुधार होने अनाज की कीमत में कमी होगी जिससे जीवन निर्वाह मजदुरी में कमी होगा और उससे लाभ बढ़ेगा जो पूँजी संचय का कारण है यह श्रम की माँग में वृद्धी करती है। जिससे मजदूरी बढ़ेगी और लाभ में कमी होगी।

4. मजदूरी में वृद्धि (Increasing the Wage) - रिकार्डो के अनुसार श्रमिक और पूँजी मजदुरी निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। मजदुरी की दर श्रमिकों की संख्या और मजदुरी फंड पर निर्भर करती है। मजदुरी दर में कमी होगी जब श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होगी इसका उल्टा भी सही है। मजदुरी की दर में कमी होती तब जनसंख्या में कमी होने लगाति है इसलिए मजदुरी की दर और जनसंख्या में धनात्मक सम्बन्ध होगा।

मजदुरी में वृद्धि होने के साथ ही जनसंख्या में वृद्धि होगी जो अनाज की कीमतों में वृद्धि कर देगा। इसलिए मजदुरी वृद्धि से लाभ कमी होगी। यह प्रवृत्ति अपने आप पूँजी संचय में कमी लाता है।

5. दुसरे उद्योगों के लाभ में कमी- अर्थव्यवस्था में कृषि के लाभ की दर उद्योगों के लाभ की दर को निर्धारित करता है उद्योग श्रमिकों की मजदुरी बढा देते है जब अनाज की कीमतों में वृद्धि होती जो की उद्योगों के लाभ को घटाती है जब कृषि क्षेत्र में लाभ में कमी आती है तो सभी व्यापार घट जाते हैं।

पूँजी संचय अन्य स्रोत- रिकार्डो के अनुसार विकास उत्पादन और उपभोग के अन्तर पर निर्भर करता है। पूँजी में वृद्धि होगी जब उत्पादन में वृद्धि होती है ओर उपभोग में वृद्धि होने से लाभ में कमी होगी। श्रम की उत्पादकता को तकनीकि परिवर्तन और अच्छे संगठन द्वारा बढ़ायी जा सकती है इस तरीके से पूँजी संचय में वृद्धि की जा सकती है परन्तु मशिनों के उपयोग से श्रमिकों की संख्या में कमी होगी जिससे बेरोजगारी बढ़ती है और मजदुरी में कमी से श्रमिकों की आर्थिक स्थिती में कमी आती है। रिकार्डो के अनुसार तकनीकि स्थति दी हुइ है।

(a) कर (Tax) - कर सरकार के पास पूँजी संचय का साधन होता है। रिकार्डो के अनुसार कर उपभोग में कमी करने लिए लगाया जाता है। कर पूँजीपति, भूमि मालिक और श्रमिक पर लगा कर साधनों को सरकार तरफ स्थानान्तरण किया जाता है। जो निवेश को प्रभावित करता है इसलिए रिकार्डो कर लगाने पक्ष नहीं है।

(b) मुफ्त व्यापार (Free Trade) - रिकार्डो मुफ्त व्यापार के पक्षधर थे। अनाज के आयात में कमी करके लाभ को बचा लिया जाता है। जिससे पूँजी संचय में लगातार वृद्धि होती है।

6. स्थिर अवस्था (Stationary State)- रिकार्डो के अनुसार यह स्वभाविक प्रवृति है की लाभ की दर गिरने से अर्थव्यवस्था अपने-आप स्थिर अवस्था में पहुँच जाती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था गतिहीन अवस्था में प्रवेश करती है जब कृषि में घटते प्रतिफल के कारण वृद्धि नहीं होती है। स्मिथ की भांति रिकार्डो ने स्वीकार किया कि विकास पूंजी संचय पर आश्रित है और पूँजी संचय लाभ के पुनः निवेश पर आधारित है लाभ तब बढ़ते है जब खाद्य पदार्थों की कीमते बढ़ती है तो घटते प्रतिफल के कारण भूमि की उपज घटती है और सीमान्त लागते बढ़ती है।

इस प्रक्रिया को रेखाचित्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

रेखाचित्र 3.1

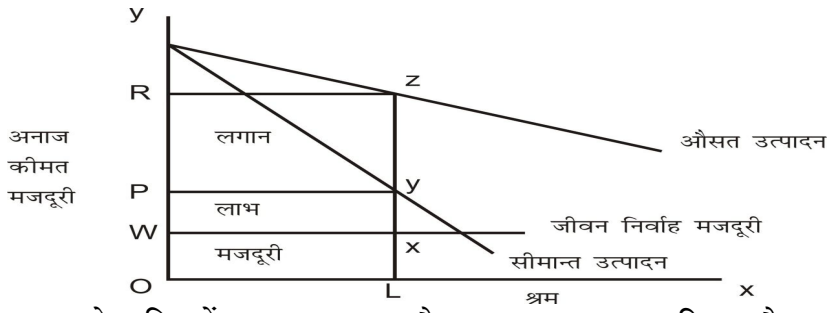

रेखाचित्र में अक्ष- x पर श्रम और y- अक्ष पर उत्पाद, कीमत और मजदुरी को दिखाया गया है। OL श्रमिको को रोजगार पर लगाया गया है और कुल उत्पादन ORZL के बराबर है OL श्रमिको को औसत उत्पादन और सीमान्त उत्पादन के अन्तर को किराया (Rent) कहते हैं।

ORZL - OPYL = PRZY के बराबर, कुल मजदुरी OWXL के बराबर है। कुल उत्पादन में से किराया और मजदुरी घटा दी जाये तो लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

ORZY - (PRZY + OWXL) = WPYX , जैसे उत्पादन बढ़ता है तो श्रम की सीमान्त उत्पादकता घट कर निर्वाह मजदुरी L_1 के बराबर हो जाती है और लाभ समाप्त हो जाता है सन्तुलन अवस्था (L_1) में कृषि के लाभ समाप्त हो जाने के कारण पूँजी उद्योगो की ओर स्थानान्तरित हो जायेगी और उद्योगों में प्रतियोगिता के कारण लाभ का स्तर घट जायेगा। रिकार्डो के अनुसार मजदुरी अर्थव्यवस्था में असन्तुलन पैदा करती है अर्थात् मजुदी बढ़ती है तो लाभ शुन्य हो जाता है और पुँजी संचय रूक जाता है जिससे गतिहीन अवस्था पैदान होती है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

रिकार्डो आधुनिक अर्थशास्त्रियों का पूर्वज था उसके आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचारों को उन्होंने अपनाया। रिकार्डो ने अपने सिद्धान्त में पूँजी संचय, लाभ दर, बचत की वृद्धि के महत्व पर प्रकाश डाला। इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं करता है। इन सब अच्छी बातों के बावजुद रिकार्डो के सिद्धान्त में कुछ कमियाँ पाई गई।

1. तकनीकि के प्रभाव को नजरअंदाज किया- रिकार्डो ने अपने सिद्धान्त में चिन्हित किया कि औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकि सुधार से श्रमिक बैरोजगार हो जाते हैं और भी बुरे प्रभाव पड़ते हैं परन्तु इन्होंने इस बात पर जोर नहीं दिया की तकनीकि सुधार से नये विकसित देशों उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ा।

2. स्थिर अवस्था की गलत धारणा- रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसर अर्थव्यवस्था अपने आप स्थिर अवस्था में पहुँच जाती है जो की आधारहीन है।

3. ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता नियम को अनावश्यक महत्व दिया गया- क्योंकि विकसीत देशों में कृषि क्षेत्रों की उत्पादकता में तेजी से वृद्धि हुई है। रिकार्डो तकनीकि सुधार को कम आंका था।

4. रिकोर्डो का सिद्धान्त विकास सिद्धान्त की बजाय वितरणात्मक-सिद्धान्त है जो श्रमिक, भूमि मालिक और पूंजीपति के हिस्से का निर्धारण करता है।

3.4 जे.एस.मिल का आर्थिक विकास सिद्धान्त (J.S. Mill Theory of Economic Development)

जे.एस.मिल ने आर्थिक विकास के सिद्धान्त में बहुमूल्य योगदान दिया । उनके ग्रन्थ- (Principal of Political Economy with some of their application to social philosophy) में एडम स्मिथ और रिकार्डो का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

उन्होंने आर्थिक विकास के विभिन्न साधनों का विश्लेषण किया उनका मानना था कि आर्थिक विकास भूमि, पूँजी और श्रमिकों का फलन है। जबकि भूमि और श्रमिक आर्थिक विकास

के दो मूल साधन है पूँजी जो की पूर्व के श्रमिकों के उत्पादन के संचय का स्टॉक है। मिल के अनुसार किसी देश की सम्पत्ति में वृद्धि होती है यदि उनके उत्पादन का बढ़ाने भूमि और पूँजी, श्रमिकों की बजाय ज्यादा सहायता करे। सम्पति उन वस्तुओं को कहा जाता है जिसे प्रयोग में लाने से पहले पास रखा जा सकता है। इससे हम उपकरण, मशीन, श्रम शक्ति के कौशल को शामिल करते हैं। मिल उत्पादकिय उपभोग और अनुपादकिय उपभोग में भेद करते हैं। उत्पादकिय उपभोग उसे कहते हैं जो समाज में उत्पादन शक्ति को बढ़ाता है केवल उत्पादित उपभोक्ता ही उत्पादन शक्ति को बढ़ाता है। उत्पादित उपभोक्ता ही उत्पादित श्रमिक है परन्तु सार उपभोग उत्पादित नहीं है।

1. जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण:- मिल, माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। जनसंख्या वृद्धि का सिद्धान्त प्रकाश डालता है कि जिने के साधनों की तुलना में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। परिणाम यह हुआ की जनसंख्या वृद्धि पर रोक वलाकल की गई और उन्होंने अतिरिक्त जनसंख्या की समस्या का प्रवास ही प्रभावी सामाधान बताया है।

2. मजदुरी निधी (Wage Fund)- मजदुरी की वृद्धि की तुलना में श्रम की पूर्ति की लोच बहुत उच्च है मजदुरी साधारणतया निर्वाह स्तर से उच्च होती है और माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। मजदुरी की दर से कोई बदलाव पूँजी और जनसंख्या में बदलाव द्वारा निर्धारित होता है। पूँजी में वृद्धि जनसंख्या से अधिक और जनसंख्या में वृद्धि पूँजी से अधिक है। यह मजदुरी कमी और वृद्धि द्वारा निर्धारित होता है। मिल के अनुसार ''वस्तुओं के लिए माँग है श्रम के लिए माँग नहीं है' इसका मतलब यह है कि आय पहले श्रम की मजदुरी पर निवेश की जाये तो वह रोजगार पैदा करती है और आय उपभोक्त वस्तु पर खर्च नहीं की जाये। उपयोग में वृद्धि से निवेश में कमी होगी इसका उल्टा भी सही है।

3. पूँजी संचय- पूँजी को पूर्व श्रमिकों के उत्पाद के संचय के स्टॉक के रूप में परिभाषित की जा सकता है। अधिक पूँजी का मतलब मजदुरी फंड का बढ़ जाना और उत्पादित श्रमिकों की माँग अधिक होना। पूँजी बचत का परिणाम है और बचत का मतलब है कि भविष्य की वस्तुओं के उपभोग के लिए वर्तमान उपभोग से परहेज करना है।

मिल के अनुसार पूँजी संचय निर्भर करता है जो निम्न है

1. फंड की मात्रा जिससे बचत की जा सकती है।
2. बचत की प्रवृत्ति की शक्ति जो की प्रतिफल की दर और लाभ की दर और लाभी की दी गई दर पर बचत करने की इच्छा पर निर्भर करती है।

लाभ श्रमिकों की लागत पर निर्भर करता है। इसलिए लाभ की दर, लाभ और मजदुरी का अनुपात है। जब लाभ की दर में वृद्धि और मजदुरी में कमी जिसका मतलब लाभ की दर में वृद्धि होती है जो पूँजी संचय की दर को बढ़ाती है।

4. **लाभ की दर-** मिल के अनुसार 'अर्थव्यवस्था में यह प्रवृति पाई जाती है कि जब कृषि क्षेत्र में ह्रासमान प्रतिफल और जनसंख्या की दर में वृद्धि के कारण लाभ की दर में गिरावट होगी। कृषि क्षेत्र में तकनीकि सुधार में कमी और जनसंख्या की दर उच्च हो तब पूँजी संचय में कमी होगी और अर्थव्यवस्था स्थिर अवस्था में पहुँच जायेगी।

5. **राज्य की भूमिका-** रिकार्डो और स्मिथ की तरह मिल भी अहस्तक्षेप की नीति के समर्थक थे। मिल आर्थिक मामलों में राज्य की भूमिका के कम से कम समर्थक थे मिल ने अहस्तक्षेप नीति में कुछ अपवाद की पहचान की और उन्होंन सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता महसुस की जैसे शिक्षा सुविधा आदी। मिल ने मुक्त व्यापार का समर्थन किया और उन्होंने शिशु उद्योग के बचाव और सुरक्षा के लिए जो कर लागु किया जाता है उसका विरोध किया।

आलोचनात्मक मूल्यांकन- मिल ने उन सभी साधनों की चर्चा की जो वर्तमान समय में आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है उन्होंने कुछ साधनों की आवश्यकता पर जोर दिया जैसे बचत, लाभ, पूँजी संचय, तकनीकि सुधार, मुक्त व्यापार, बाजार का विस्तार, समान वितरण और संस्थागत बदलाव आदि।

कमियाँ

1. माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त गलत- माल्थस की जनंसख्या वृद्धि का सिद्धांत विकसित देशों पर लागु नहीं होता है।
2. अहस्तक्षेप नीति व्यवहारिकता में लागु नहीं होती है- क्योंकि ऐसी कोई अर्थव्यवस्था नहीं है जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता हो और जो राज्य के हस्तक्षेप बिना चल रही हो।
3. ह्रासमान पैमाने का नियम कार्य नहीं करता है- अपने सिद्धान्त में मिल सीमित साधन की चर्चा करता है और साथ ही भूमि की सीमित पुर्ति को प्रदर्शित करता है। जिससे सीमित उत्पादन पैदा होता है जो सीमित पूँजी संजय और जनसंख्या वृद्धि में बदल जाता है।

3.5 सारांश

संक्षेप में, प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री भौतिक वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि को विकास का सूचक मानते थे, जब उत्पादन बढ़ता है तो राष्ट्रीय आय बढ़ती है । वे संगठनकर्ता व साहसी मे भेद नहीं करते । पूंजी को भी विकास का मुख्य साधन माना हैं । अधिक पूंजीनिर्माण विकास में अभिवृद्धि करता है तथा पूंजी निर्माण का स्रोत लाभ है । अधिक लाभ प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि मजदूरी कम प्रदान की जावे क्या मजदूरों की जनसंख्या मे वृद्धि भी कम होनी चाहिये । अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतियोगिता; स्वहित, व निर्बाधावादी नीति आर्थिक विकास की गति को तीव्रतर करती है । इसके अतिरिक्त अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार मिलता है तथा मांग व पूर्ति में सामंजस्य भी ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विकास संबंधी विचार अत्यंत महत्वपूर्ण थे । उन्होंने स्पष्ट किया कि पूंजी विकास के लिए आवश्यक है जिसे बढ़ाने का पूर्ण प्रयास किया जाना चाहिए । अर्थव्यवस्था में उत्पादन प्रक्रिया में उन्नत तकनीकी का प्रयोग विनियोग की मात्रा पर अवलंबित है और अधिक विनियोग लाभ की मात्रा से प्रभावित होते है, अस्तु पूंजी निर्माण पर काफी जोर दिया ।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के आर्थिक विकास मॉडलो में कई कमियां खटकती है - जनसंख्या वृद्धि से वे आतंकित थे, वस्तुत: मानवीय संसाधन उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन है व उसकी प्रत्येक वृद्धि देश के लिये हानिप्रद न हो, यह आवश्यक नहीं । जिन देशों में कम जनसंख्या है वहां जनसंख्या

की वृद्धि एक ओर उत्पादन बढ़ाती है व दूसरी ओर विकास में उत्तरोत्तर वृद्धि करती है। अव्यावहारिक मन्यताओं जैसे निर्बाधवादी नीति, पुर्ण प्रतियागिता पर उन्होने जोर दिया। बेरोजगारी व व्यापार चक्र का उचित समाधान करने में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री। असमर्थ पाये गये। कम मजदूरी से लाभ अधिक उत्पन्न होते है। जिससे कि पूंजी निर्माण में वृद्धि होती है, ऐसा विचार तर्कपूर्ण व व्यावहारिक नहीं जान पड़ता बल्कि इससे मज़दूरों की कार्य-कुशलता पर कुप्रभाव पड़ता है।

अनेक कमियों के होते हुए भी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने विवाद के संबंध में बुनियादी तथ्यों को बताया। जो निश्चय ही उनका अमूल्य योगदान कहा जावेगा।

3.6 बोध प्रश्न

(1) "अपने राष्ट्रों की संपति" नामक ग्रन्थ ने एडम स्मिथ ने श्रम विभाजन व पूजा संचय घटकों को देश की संपन्नता के लिये महत्वपूर्ण मानते है।" कथन की विवेचना कीजिये।

(2) एडम स्मिथ के आर्थिक विकास मॉडल को स्पष्ट करें।

(3) "रिकार्डो आर्थिक विकास व का उचित मॉडल प्रस्तुत करने ये असमर्थ रहे है।" कथन का परीक्षण कीजिये।

(4) प्रतिष्ठित आर्थिक विकास सिद्धांत का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत कीजिये।

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- J.A. Schumpeter – History of Economic Analysis, Part II, Chapter 2.
- J.M Letiche – Theories of Economic Growth (Ed), B.F. Hoseltz.
- Piero Sraffa (Ed) The works and correspondence of David Ricardo Vol. I (Cambridge University Press, 1975)
- The Indian Economic Journal 'The Relevance of Ricardian Economics, July-September 1977, No. 1, Vol. 25.
- The Indian Economic Journal: Adam Smith in Retrospect, conference Number 1976, No. 5, Part I, Volume 24.

इकाई – 4

कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास मॉडल

Karl Marx's Economic Development Model

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या
4.3 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
4.4 वर्ग संघर्ष
4.5 अतिरेक मूल्य का सिद्धान्त
4.6 पूंजी संचय
4.7 पूंजीवादी संकट
4.8 मार्क्स के पूंजीवादी आर्थिक विकास के मॉडल का आलोचनात्मक परीक्षण
4.9 विकासशील देशों में मार्क्स मॉडल की उपादेयता
4.10 शब्दावली
4.11 बोध प्रश्न
4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य कार्ल मार्क्स के सैद्धान्तिक विचारों से आपका परिचय कराना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- जान सकेंगे कि कार्ल मार्क्स के पूंजीवादी आर्थिक विकास के संबंध में क्या विचार है एवं
- आज विकासशील देशों के संदर्भ में ये विचार कितने प्रासंगिक है

4.1 प्रस्तावना

कार्ल मार्क्स एक ऐसा अर्थशास्त्री थे जिसने अपनी विचारधारा से करोड़ों लोगों को प्रभावित किया है। मार्क्सवाद ने एक धर्म का रूप ले लिया गया है। रूस, चीन, क्यूबा जैसे देशों में मार्क्सवादी क्रांतियाँ के तथा इन देशों के अतिरिक्त और भी कई देशों की नीतियों के निर्माण में इसका गंभीर प्रभाव देखा जा सकता है। मार्क्सवाद आज भी एक लोकप्रिय विचारधारा है। यह बात अलग है कि रूस के साथ ही कई समाजवादी देशों में आज सुधारवाद की धारा बह रही है, लेकिन फिर भी

मार्क्स के विचारों की पकड़ ढीली नहीं पड़ी है चीन इसका प्रमाण है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मार्क्स द्वारा किया गया पूंजीवादी आर्थिक विकास का विश्लेषण वैज्ञानिक और तर्कसंगत रहा है।

कार्ल मार्क्स का जन्म सर 1818 ई० में जर्मनी में हुआ था जहां उन्होंने बोन और बर्लिन विश्वविद्यालय में दर्शन शास्त्र का अध्ययन किया था। उसके समय के प्रसिद्ध दार्शनिक हीगल के 'द्वंद्वात्मक सिद्धान्त' से मार्क्स बहुत प्रभावित थे और आगे चलकर इस सिद्धान्त को 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' का एक नया रूप देकर उन्होंने इसे अपने आर्थिक विकास के मॉडल का आधार बनाया। डाक्टरेट तक की शिक्षा ग्रहण करने के बाद उन्होंने पत्रकारिता का कार्य प्रारम्भ किया किन्तु अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण मार्क्स को जर्मनी छोड़कर पेरिस जाना पड़ा। वे फ्रान्स गये जहां से उन्होंने पुन: एक पत्रिका का संपादन किया। इममें प्रकाशित 'वर्ग-संघर्ष के इतिहास के सिद्धान्त' में वर्णित उनके क्रांतिकारी विचारों के लिए मार्क्स को पेरिस से भी निकाल दिया गया। तब वह ब्रूसेल्स चले गये। इसी बीच मार्क्स की अर्थशास्त्र के अध्ययन में रूचि उत्पन्न हुई तथा सन् 1844 ई० में उनकी भेंट फ्रेड्रिक एन्जिल से हुई, जिन्होंने परम्परावादी अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। इन दोनों की मित्रता जीवन-पर्यन्त रही तथा मार्क्स की रचनाओं में एंजिल्स का बराबरी का सहयोग रहा। सन् 1848 में मार्क्स लंदन पहुंच गये और वहां ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी में अनवरत् अध्ययन करते हुए उन्होंने अपनी उस प्रसिद्ध कृति का निर्माण किया जो 'पूंजी' (Das Kapital) के शीर्षक से चार खण्डों में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का केवल प्रथम खण्ड मार्क्स के जीवन काल में 1867 में प्रकाशित हुआ था जबकि दूसरा खण्ड उनकी मृत्यु के बाद एन्जिल्स द्वारा 1885 में प्रकाशित किया गया। बाद के दोनों खण्ड एन्जिल्स द्वारा संपादित किये गये थे जो क्रमश: 1894 तथा 1910 में प्रकाशित हुए। इसी 2500 पृष्ठ के वृहद ग्रन्थ में मार्क्स ने अपने आर्थिक विकास मॉडल क्या प्रतिपादन किया है।

यहां हम मार्क्स के व्यापक चिन्तन का अध्ययन न करके केवल उनके आर्थिक विकास मॉडल पर ही अपना ध्यान केंद्रित करेंगे। सर्वप्रथम हम मार्क्स के आर्थिक विकास मॉडल के आधार को समझेंगे।

4.2 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या: -

मानव समाज के सामाजिक विकास के इतिहास का विश्लेषण करने हेतु मार्क्स ने भौतिकवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उसने सामाजिक विकास की आध्यात्मिक व्याख्या और मनोवैज्ञानिक (अथवा चेतनागत्) व्याख्या का तिरस्कार किया है। मार्क्स ने सामाजिक विकास की आध्यात्मिक व्याख्या का तिरस्कार इस आधार पर किया कि वह रहस्यमय व्याख्या है, जिसका अस्तित्व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सिद्ध नहीं हो पाता। मनौवैज्ञानिक अर्थात् चेतनागत् व्याख्या का बहिष्कार इसलिये किया है क्योंकि मार्क्स के मतानुसार मानव की चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, वरन उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निर्धारित करता है। मार्क्स इतिहास को राजा - महाराजाओं की ताजपोशी या युद्धों और संधियों की घटनाओं का संकलन मात्र नहीं मानता। उसके मत में इतिहास, सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक नियमों के

उन परिवर्तनों का वृत्तान्त है जो निरंतर होने वाले भौतिक परिवर्तनों के कारण होते रहते है। दूसरे शब्दों में, भौतिक परिवर्तन, जिनका तात्पर्य उत्पादन की प्रणाली में होने वाले परिवर्तन से है, उसके कारण ही सामाजिक नियमों में परिवर्तन अवश्यंभावी रूप में होते है। मार्क्स के सहयोगी फ्रेडरिक एन्जिल्स ने बाद में इसे और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है कि इतिहास की भौतिकवादी धारणा इस सिद्धान्त से आरम्भ होती है कि उत्पादन, और उत्पादित वस्तुओं के विनिमय पर ही प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था आधारित है। अर्थात् उत्पादित वस्तुओं का समाज में वितरण तथा उसके साथ ही समाज का विभिन्न वर्गों में विभाजन इस बात से निर्धारित होता है कि क्या-क्या उत्पादित दिया जा रहा है और कैसे उत्पादित किया जा रहा है। इस धारणा के अनुसार किसी भी सामाजिक परिवर्तन तथा राजनैतिक क्रांति का कारण मनुष्य के मस्तिष्क में उठने वाले विचारों में अथवा 'न्याय और सत्य की अन्तर्दृष्टि में नहीं खोजा जा सकता, वरन सभी सामाजिक परिवर्तनों और राजनैतिक क्रांतियों का कारण उत्पादन तथा वितरण की प्रणाली में होने वाले परिवर्तनों मे ही खोजा जा सकता है। सामाजिक परिवर्तनों का कारण "चिंतन" में नहीं, बल्कि "अर्थशास्त्र" मे खोजा जा सकता है।

मार्क्स का कहना है कि प्रत्येक समाज का निर्माण आर्थिक आधार पर होता है। समाज किसी भी प्रकार की अवस्था में क्यो न हों - चाहे शिकार अवस्था में हो, कृषि अवस्था हो, अथवा आधुनिक जटिल औद्योगिक अवस्था हो, समाज अपनी अधारभूत आर्थिक समस्याओं के प्रबन्ध के लिये एक गैर-आर्थिक संरचना, का निर्माण करता है, जिसमें कानूनों का निर्माण, शासन-तंत्र का गठन, तथा चिन्तन कं लिये धर्म और दर्शन आदि का समावेश होता है। किन्तु इस गैर-आर्थिक संरचना का मूल आधार 'आर्थिक' ही होता हैं। शिकार-अवस्था वाले समाज में वैसी कानूनी प्रक्रिया कार्य नहीं कर सकती जो औद्योगिक अवस्था के लिए बनती है। ठीक इसी प्रकार आधुनिक औद्योगिक अवस्था के लिए शिकार-अवस्था की कानूनी प्रक्रिया निरर्थक हो जाती है।

इस प्रकार, आर्थिक उत्पादन की प्रणाली ही समाज को अन्य संस्थाओं (न्याय व्यवस्था, शासन-प्रणाली, रीति-रिवाज) को निर्धारित करती है। यही करण है कि जब ग्रामीण कुटीर उद्योगों का जमाना था तब सामन्तवादी समाज रचना थी और फिर जब भाप और विद्युत से कारखाने चलने लगे तब पूंजीवादी समाज का उदय हुआ।

इसी आधार पर मार्क्स ने उत्पादन की प्रणाली में परिवर्तन के कारण होने वाले आर्थिक विकास के अनुरूप जो सामाजिक –अवस्थाएं उत्पन्न होती गई उनकी परिकल्पना की है, जो संक्षेप में इस प्रकार है -

प्रथम अवस्था	प्रारम्भिक अथवा आदिम साम्यवाद
द्वितीय अवस्था	दास समाज
तीसरी अवस्था	सामन्तवादी समाज
चौथी अवस्था	पूंजीवादी व साम्राज्यवाद
पांचवी अवस्था	समाजवाद व साम्यवाद

4.3 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद:

जैसा कि हम प्रारम्भ में कह चुके है कि मार्क्स अपने समय के प्रसिद्ध दार्शनिक हीगल के 'द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त' से प्रभावित थे। हीगल का विचार था कि समाज असंगतियों से प्रगति करता जाता है। प्रत्येक विचार, एक प्रति विचार को जन्म देना है तथा दोनों में संघर्ष होने के फलस्वरूप एक समन्वित विचार उत्पन्न होता है। यह क्रम चलता रहता है और समाज प्रगति करता जाता है। मार्क्स नें 'हीगलवाद' के द्वन्द्वात्मक स्वरूप को तो स्वीकार किया किन्तु उन्होनें 'विचारों का संघर्ष' स्वीकार नहीं किया। मार्क्स के अनुसार विचारों का संघर्ष नहीं होता बल्कि संघर्ष 'भौतिकवादी' होता है। आर्थिक परिवर्तन जो भौतिकवादी होते है उनके कारण संघर्ष होता है। जब 'उत्पादन की प्रणाली' में परिवर्तन होता है तब 'उत्पादन के संबंध में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी है। उत्पादन के संबंध से तात्पर्य उत्पादन में लगे हुए समाज के विभिन्न वर्गों के संबंधोंसे है।

जब बाजारों का विस्तार और कारखानों में वस्तुओं का उत्पादन प्रारम्भ हुआ तो यह उत्पादन की एक नयी प्रणाली थी, जो सामन्तवादी जीवन शैली से मेल नहीं खाती थी, अर्थात् असंगत थी। इस प्रकार की नवीन उत्पादन प्रणाली एक नये सांस्कृतिक और सामाजिक ढाँचे की मांग करती थी और उसने समाज में नये वर्गों को उत्पन्न किया। बाजार के विस्तार ने व्यावसायिक वर्ग को जन्म दिया और कारखानों ने पूंजीपतियों तथा 'सर्वहारा' वर्ग को जन्म दिया।

'द्वन्द्वात्मक' 'भौतिकवाद' का तात्पर्य है कि आर्थिक प्रणाली की असंगतियों के कारण ही समाज प्रगति करता है। उदाहरण के लिये भू-स्वामित्व की सामन्तवादी प्रणाली प्रारम्भ में प्रगतिशील सिद्ध हुई जिससे आर्थिक विकास हुआ। किन्तु बाद में सामन्तवादी समाज की सीमित प्रेरणा के आधार पर संचय जारी न रह सका। उत्पादन की शक्तियों तथा सामाजिक संबंधो की इस असंगति ने पूंजीवादी प्रणाली को जन्म दिया। पूंजीवादी प्रणाली द्वारा आर्थिक विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ ही उसमे भी असंगतियां उत्पन्न हो चुकी हैं। अतएव पूंजीवादी प्रणाली का भी अन्त होगा और एक नयी प्रणाली 'समाजवाद' का उदय होगा।

4.4 वर्ग संघर्ष:

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद समाज में वर्ग-संघर्ष को जन्म देता है। मार्क्स का यह कथन है कि प्रत्येक समाज की एक वर्ग संरचना होती है। उत्पादन की प्रणाली में परिवर्तन होने पर समाज के विकास में एक ऐसी अवस्था आती है जब उत्पादन की शक्तियों का समाज की वर्ग-संरचना से संघर्ष होने लगता है। उनके वर्तमान संघर्ष उत्पादन की शक्तियों के लिए जंजीरें बन जाते है और उन जंजीरों को तोड़ने के लिए छटपटाहट प्रारम्भ हो जाती है जो सामाजिक क्रांति को जन्म देती है। यही वर्ग-संघर्ष अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण समाज व्यवस्था के बदल डालता है और एक नई समाज व्यवस्था स्थापित हो जाती है।

मार्क्स ने यूरोप की तत्कालीन समाज की अवस्था - 'पूंजीवादी अर्थव्यवस्था' का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पूंजी' (Das Kapital) में उसने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में

अतिरेक का प्रादुर्भाव तथा उससे उपजा शोषण, पूंजी का संचय, सम्पूर्ण समाज का दो वर्गों में विभाजित हो जाना, इन्ही दो वर्गों के बीच वर्ग संघर्ष, उत्पादन में उच्चावचन तथा अन्त में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का पतन और नयी अवस्था समाजवाद - के उदय का वैज्ञानिक सूक्ष्म विवेचन किया है । मार्क्स की यह दृढ़ मान्यता रही है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का पतन अवश्यभावी है, इसे रोका नहीं जा सकता । यह किसी की इच्छा पर निर्भर नहीं है बल्कि एक वैज्ञानिक प्रक्रिया का अन्तिम परिणाम है । उसका यह कहना था कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विनाश के बीज उसमें ही निहित होते है ।

पूंजीवाद की अवस्था मे आर्थिक विकास की प्रक्रिया किस प्रकार 'पूंजीवाद' का ही विनाश करते हुए नयी आर्थिक- सामाजिक व्यवस्था को जन्म देती है इसे मार्क्स के आर्थिक-विकास के मॉडल से समझा जा सकता है । हम इन मॉडल के तीन मूल आधारों - यथा इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या एवं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एवं वर्ग संघर्ष का वर्णन पहले ही कर चुके है । अब हम इन्ही आधारों पर पूंजीवाद की अवस्था में विकास का प्रक्रिया का वर्णन करेंगे।

4.5 अतिरेक मूल्य का सिद्धान्त -

अतिरेक मूल्य के सिद्धान्त पर ही मार्क्स का पूंजीवादी 'वर्ग-संघर्ष' का सिद्धान्त और इसी अतिरेक मूल्य के सिद्धान्त पर मार्क्स ने आर्थिक विकास की संरचना प्रस्तुत की है । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में थोड़े से लोगों के हाथों में 'अतिरेक-मूल्य' का संचय पूंजी के रूप में होता जाता है । मार्क्स कं मतानुसार, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में समाज दो वर्गों ने बंटता चला जाता है । एक वर्ग मजदूरों का बन जाता हैं, जो अपना श्रम 'जीवन निर्वाह' के लिए न्यूनतम मजदूरी पर बेचता है । इस वर्ग को मार्क्स 'प्रोलितेरियत' (सर्वहारा) कहता है । दूसरा वर्ग पूँजीपतियों का बन जाता है, जिसके हाथ में उत्पादन के साधन (मशीनें, कारखाने आदि) होते है । इसे मार्क्स 'बुर्जआ' वर्ग कहते है ।

मजदूर वर्ग अपने श्रम को जीवन-निर्वाह तो लायक निम्नतम मजदूरी पर क्यों बेचता है? इसे स्पष्ट करने के लिये मार्क्स ने मजदूरी के श्रम - सिद्धांत' का सहारा लिया है । इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी वस्तु का 'मूल्य' उस वस्तु के उत्पादन में लगाये गये कुल श्रम के बराबर होता है । मजदूर की श्रम-शक्ति भी एक वस्तु जैसी ही है, अतएव मजदूर अपनी 'श्रम- शक्ति' को भी उसी मूल्य पर बेचता है जितना मूल्य उसे अपनी श्रम शक्ति को उत्पादित करने में लगता है । अर्थात् मजदूर को 'श्रम-शक्ति' का मूल्य उतना ही होगा जितना मजदूर को स्वयं को काम करने लायक जीवितरखने में लगता है । दूसरे शब्दों में, मजदूर को जीवन-निर्वाह के बराबर ही मजदूरी प्राप्त हो सकती है ।

मार्क्स के अनुसार श्रमिक को जीवन-निर्वाह के बराबर मूल्य उत्पन्न करने के लिये हो सकता है केवल छ : घंटे श्रम की आवश्यकता हो, किन्तु उसे कारखाने में आठ या दस घंटे तक श्रम करना पड़ता है । इस प्रकार हम कह सकते है कि मजदूर यदि 10 घटे का श्रम करता है तो उसमें से 6 घंटे के श्रम में वह अपनी मजदूरी के बराबर के मूल्य की वस्तुएँ उत्पादन कर लेता है और शेष 4 घटें के श्रम द्वारा जितने मूल्य की वस्तुएं उत्पादित करता है, वे 'अतिरेक' होती है, जो कारखाने के

मालिक का लाभ बन जाती है । श्रमिक द्वारा कुल उत्पादित 'मूल्य' में श्रमिक को मिलने वाली मजदूरी के 'मूल्य' को घटा देने पर जो अन्तराल बचता है उसे ही 'अतिरेक मूल्य' कहा जाता है।

4.6 पूंजी संचय

मार्क्स का कथन है कि इसी 'अतिरेक मूल्य' द्वारा पूंजी संचय होता है। श्रम के द्वारा उत्पन्न 'अतिरेक मूल्य' ही पूंजीपति का लाभ है। इसी कारण पूंजीपति का उद्देश्य इस 'अतिरेक मूल्य' में वृद्धि करने का रहता है ताकि उसका लाभ बढ़ता जाये। पूंजीपति अपने इस लाभ को तीन तरीकों से बढ़ा सकता है -

(1) श्रमिकों के कार्य-घंटों में वृद्धि करके ताकि उसके 'अतिरेक श्रम' के मूल्य में वृद्धि हो।

(2) श्रमिकों के जीवन के लिये आवश्यक कार्य-घण्टे कम करके। उदाहरणार्थ, यदि श्रमिक 10 घंटे काम करता है, जिसमें से 6 घंटे के काम द्वारा वह अपने जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक मूल्य उत्पादित करता है, जो पूंजीपति का लाभ बन जाता है। यदि 5 घंटें काम करने से जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक मूल्य उत्पादित होने लगे तो 'अतिरेक श्रम' 5 घंटे हो जायेगा जिससे अतिरेक मूल्य बढ़ जायेगा।

(3) श्रमिक की उत्पादकता में वृद्धि करके। यह 'तकनीकी परिवर्तन से किया जाता है', अर्थात् नयी तकनीक को अपना कर प्रति श्रमिक उत्पादकता बढ़ाई जाती है। ऐसा नयी प्रकार की मशीनों का उपयोग करके किया जाता है।

मार्क्स के मतानुसार पूंजीपति अधिकतर तीसरे तरीके को अपनाता है, क्योंकि प्रथम और द्वितीय तरीके की सीमा होती है। श्रमिक के कार्य-घंटे 10 से 12 अथवा 14 तक बढ़ाये जा सकते है इससे अधिक संभव ही नहीं होगा। इसी कारण पूंजीपति तीसरे तरीके का सहारा लेता है। वह 'अतिरेक-मूल्य' जो उसे लाभ के रूप में प्राप्त होता है, उसे पूंजी में विनियोग करता है। अर्थात् मशीनों का प्रयोग बढ़ाता जाता है। मशीनों के द्वारा उत्पादन करने से श्रमिक की उत्पादकता बढ़ती जाती है।

इस कारण पूंजी ही पूंजीपति के लिये 'खुदा' या 'ईश्वर' बन जाती है। वह पूंजी का अधिकाधिक प्रयोग करता जाता है और मशीनीकरण के द्वारा कम से कम श्रमिक लगाकर अधिक से अधिक मूल्य उत्पादित करता जाता है!

मार्क्स कहना है कि पूंजी मृत श्रम है जो पिशाच बनकर जीवितश्रम का खून चूसती जाती है और जितना अधिक खून चूसती है उतना ही अधिक जीवित रह सकती है। पूंजी को 'मृत श्रम' इसलिये कहा है क्योंकि पूंजी का संचय श्रमिकों द्वारा पहले उत्पादित किये गये 'अतिरेक श्रम' का संचय ही है। पूंजीपति की मशीनें कभी न कभी श्रमिकों द्वारा ही बनायी गई है जिनमें उन श्रमिकों का श्रम संचित हो गया है।

पूंजी संचय की प्रकृति का विश्लेषण करने के लिये मार्क्स ने पूंजी को दो भागों में बांटा है।

(1) स्थिर पूंजी (C)

(2) परिवर्तन पूंजी (V)

स्थिर पूंजी (C) से तात्पर्य मशीनों, कारखानों तथा कच्चा माल में किया गया विनियोग है। परिर्तनशील पूंजी (V) श्रम-शक्ति को काम पर लगाने के लिये किया गया विनियोग है, अर्थात् कुल मजदूरी। 'अतिरेक मूल्य' को यदि S कहा जाये तो निम्नलिखित समीकरण बनता है –

$$W = C+V+S$$

उत्पाद का कुल मूल्य यदि W है तो वह स्थिर पूंजी, परिवर्तनशील पूंजी तथा अतिरेक श्रम मूल्यों के योग के बराबर होता है।

मार्क्स ने C,V, तथा S के बीच संबंधो विश्लेषण किया है । वह स्थिर पूंजी को परिवर्तनशील पूंजी का अवयवी संयोंग (Organic Composition of Capital) कहता है । जैसे-जैसे तकनीकी प्रगति होती जाती है नयी प्रकार की मशीने काम में लायी जाती है । अर्थात् उत्पादन के लिये स्थिर पूंजी C में वृद्धि, परिवर्तनशील पूंजी V की तुलना में बढ़ती जाती है। पूंजी में मशीनों का अंश श्रमिकों की तुलना में बढ़ता जाता है।

मार्क्स के अतिरेक मूल्य की दर को S/V से दर्शाया है। इसका अर्थ है अतिरेक मूल्य का परिवर्तनशील पूंजी से अनुपात। दूसरे शब्दों में लाभ का मजदूरी से अनुपात इस मार्क्स 'शोषण की दर' भी कहता है।

मार्क्स अपने विश्लेषण से इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि 'शोषण की दर' S/V में कोई कमी न होने पर भी लाभ की दर गिरने लगती है, क्योंकि C/V में तकनीकी प्रगति के कारण वृद्धि होती जाती है। जिसमें परिवर्तनशील पूंजी, स्थिर की तुलना में धीरे-धीरे कम होती जाती है। इस प्रकार, पूंजीवादी के अंतर्गत औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ पूंजीपति को प्राप्त लाभ की दर गिरती जाती है।

मार्क्स ने पूंजीवादी की इस प्रवृत्ति को और अधिक स्पष्ट किया है।

पूंजी संचय के कारण बड़े उद्योगों में पूंजी का केन्द्रीयकरण होने लगता है। पूंजीपतियों के बीच उत्पादन में प्रतियोगिता होने लगती है अर्थात् उन्हें अपनी उत्पादित वस्तु को कम से कम श्रमिक लगाकर मशीनीकण को बढ़ाया जाए। दूसरे शब्दों में, मशीनों का प्रतिस्थापन किया जाता है। जो उद्योगपति ऐसा नहीं कर पाते, अर्थात् छोटे उद्योगपति, इस प्रतियोगिता में टिक नहीं पाते। इस प्रकार पहले कुटीर उद्योग, फिर छोटे उद्योग और फिर मँझले उद्योग धीरे-धीरे नष्ट हो जाते है और बड़े पैमाने के उद्योग पनपने लगते हैं। बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। समाज दो वर्गों में विभाजित हो जाता है। एक ओर बड़े पूंजीपति जो बड़े पैमाने के उद्योग कारखाने के मालिक होती है, और दूसरी ओर गरीब मजदूर वर्ग। तेजी से बढ़ते हुए बड़े उद्योगों के कारण 'स्थिर पूंजी' (C) का अनुपात बढ़ता जाता है ओर परिवर्तनशील पूंजी (V) का घटता जाता जैसे-जैसे श्रमिकों के बदले मशीनों का प्रतिस्थापन होता जाता है, वैसे-वैसे बेरोजगार मजदूरों का वर्ग बढ़ता जाता है। पूंजीवादी में आर्थिक विकास के साथ बढ़ते हुए बेरोजगार मजदूरों के इस वर्ग को मार्क्स औद्योगिक सुरक्षित फौज' कहता है। यह फौज कितनी बड़ी होगी रोजगार में लगे हुए मजदूरों की दशा उतनी ही खराब होती जायेगी, क्योंकि थोड़ी सी भी आवाज उठाने पर काम पर लगे मजदूर को हटाकर बेरोजगारों की फौज मे से मजदूर प्राप्त कर लिया जा सकेगा। इतना ही नहीं बेरोजगारों की फौज मे से कम से कम

मजदूरी पर लोगों को काम पर लगाया जा सके। इसे मार्क्स पूंजीवाद में 'सर्वहारा' वर्ग का 'बढ़ते हुए दुखों का सिद्धान्त' कहता है।

मार्क्स के मतानुसार जब पूंजीपति मजदूरों का प्रतिस्थापन मशीनें लगाकर करता है तब वह सोने का अंडा देने वाली मुर्गी को ही मार डालता है। मार्क्स की यह धारणा है कि तकनीकी प्रगति से स्थिर पूंजी का परिवर्तनशील पूंजी से (C/V) अनुपात बढ़ता जाता है, जिससे लाभ का दर घटने लगती है, क्योंकि लाभ की दर का इस अनुपात से विपरीत संबंध होता है। यह निम्नलिखित समीकरण से स्पष्ट किया गया है –

$$r = \frac{\frac{S}{V}}{\frac{C}{V}+1}$$

इसका अर्थ यह है कि लाभ की दर (r) अतिरेक मूल्य की दर (S/V) के बढ़ने पर बढ़ती जाती है, जबकि स्थिर पूंजी के परिवर्तनशील पूंजी के अनुपात (C/V) में वृद्धि होने पर घटती जाती है।

4.7 पूंजीवादी संकट

गिरती हुई लाभ दर हो बढाने के लिये पूंजीपति मजदूरी की दर कम करने, काम के घंटे बढ़ाने और मजदूरों की संख्या कम करने के लिये और भी अधिक मशीनीकरण करता है। इसका परिणाम यह होता है कि मशीनों की सहायता से कुल उत्पादन तो बढ़ता है किन्तु बड़ी संख्या में बेरोजगार होने वाले मजदूर, तथा अत्यंत कम वेतन पाने वाले काम पर लगे मजूदर दोनों ही बाजार में आने वाली उन उत्पादित वस्तुओं को खरीदने में असमर्थ हो जाते है। बाजार में मंदी आ जाती है। सभी पूंजीपति अपनी उत्पादित वस्तुओं को बाजार में बेचने के लिये प्रतियोगिता करते है। कीमतें गिरने लगती है, फिर बेरोजगार और गरीब मजदूर उन्हे खरीद नहीं सकते। पूंजीवादी संकट प्रारम्भ हो जाता है। मार्क्स का कहना हैं कि इस आर्थिक संकट का एक ही कारण है - गरीबी, अर्थात् उत्पादित वस्तुओं को खरीदने के लिये लोगों के पास क्रय-शक्ति का न होता। इस आर्थिक संकट मे कारखानों का उत्पादन कम कर देना पड़ता है। जिससे और भी अधिक बेरोजगारी बढ़ती है। छोटे कारखाने प्रतियोगिता में टिक नहीं पाते और पूरी तरह समाप्त हो जाते है।

यह मंदी का दौर पुन: तेजी के दौर में बदलने लगता है क्योंकि कई पूंजीपति उत्पादक नष्ट हो जाने से प्रतियोगिता से अलग हो जाते है। बचे हुए पूंजीपति पुन: लाभ कमाने लगते है। किन्तु यह स्थिति फिर से और भी बड़ी मंदी में बदल जाती है। इस प्रकार से मंदी और तेजी के दौर पूंजीवादी आर्थिक विकास मे एक के बाद एक आते जाते है। और अन्ततोगत्वा पूंजावादी अर्थव्यवस्था का विनाश कर देते है। एक ओर पूंजीवादी एकाधिकार बढ़ता जाता है तो दूसरी ओर 'सर्वहारा' मजदूर वर्ग लाखों की संख्या में एकत्रित होकर क्रांति का सूत्रपात करता है। पूंजीवादी एकाधिकार उत्पादन की प्रणाली के लिए हथकड़ी बन जाता है। पूंजीवाद आर्थिक विकास स्वयं ही 'सर्वहारा' वर्ग की क्रांति को निमंत्रण दे देता है। सर्वहारा वर्ग क्रांति उत्पादन के साधनों का समाजीकरण कर देती है

और 'पूंजीवादी' अर्थव्यवस्था समाजवादी अर्थव्यवस्था मे परिवर्तित हो जाती है । यह परिवर्तन अवश्यंभावी है । इसे रोका नहीं जा सकता ।

4.8 मार्क्स के पूंजीवादी आर्थिक विकास के मॉडल का आलोचनात्मक परीक्षण:

विभिन्न अर्थशास्त्री मार्क्स की वैज्ञानिक सूक्ष्म व्याख्या से प्रभावित होते हुए भी मार्क्स के आर्थिक विकास सिद्धान्त के कटु आलोचक है ।

हम मार्क्स के विकास-मॉडल का आलोचनात्मक परीक्षण करते समय यह पाते हैं कि मार्क्स की समाजवादी अर्थव्यवस्था का उदय रूस, पोलेण्ड, चेकोस्लोवाकिया जैसे योरोप के अपेक्षाकृत कम विकसित देशों में पहले हो गया, लेकिन ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, जापान तथा अमेरिका, केनेडा, स्वीडन जैसे पूंजीवाद में अत्यधिक विकसित, देशो मे नहीं हो पाया । मार्क्स का वैज्ञानिक सिद्धान्त तो यह कहता है कि पूंजीवाद जैसे-जैसे विकसित होता जायेगा वैसे-वैसे वह अपने विनाश की ओर बढ़ता जायेगा । लेकिन इन विकसित देशों में इसके ठीक विपरीत हुआ । इन देशों मे पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की जड़े मजबूत हुयी और न वर्ग-संघर्ष हुआ और न मार्क्स के समाजवाद का उदय हुआ । दूसरी ओर चीन जैसे अर्द्धविकसित देश में मार्क्सवादी क्रांति हो गयी और समाजवादी व्यवस्था प्रतिस्थापित हो गयी, जहां पूंजीवाद ठीक से प्रारम्भ भीनहीं हुआ था ।

इतना ही नहीं, रूस और योरोप के अधिकतर समाजवादी देशों ने 'खुलापन' और 'आर्थिक सुधार' (गोर्वाचोव के ग्लासनोस्त और पेरेस्ट्रोइका के सिंद्धांत) के सिद्धान्त सुधारवाद के अन्तर्गत लागू करके पुन: पूंजीवादी स्वतंत्र बाजार की अवस्था की ओर लौट चुके है ।

मार्क्स ने अपने वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर जो भविष्यवाणियां की थी वे सत्य सिद्ध नहीं हो पायी है । मार्क्स की यह धारणा हैं कि पूंजीवाद में आर्थिक विकास के साथ-साथ मध्यमवर्ग समाप्त हो जायेगा और समाज दो वर्गों मे पूंजीपति तथा 'सर्वहारा' में विभाजित हो जायेंगा तथा इन दो वर्गों के बीच वर्ग-संघर्ष होगा, पूरी तरह सिद्ध नहीं हो सका । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पश्चिमी देशों में और भी अधिक विकास कर चुकी है, लेकिन वहां मध्यम वर्ग और भी बढ़ गया है । पूंजीवादी विकास के अन्तर्गत श्रमिकों की दशा गिरने के स्थान पर सुधरती गयी है । विकसित देशों मे मजदूरों की वास्तविक आय बढ़ी है तथा उनके रहन-सहन के स्तर में भी वृद्धि हुयी है ।

मार्क्स की यह धारणा भी सत्य सिद्ध नहीं हुयी कि पूंजीवाद गे बड़े उद्योगों की उत्पादन प्रणाली मध्यम और छोटे उद्योगों का विनाश कर देगी । आज सभी पूंजीवादी देशों में छोटे और मध्यम उद्योग बड़े उद्योगों के पूरक उद्योग बन गये है ।

मार्क्स की 'इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या' भी एकांगी और अपर्याप्त सिद्ध हुयी । यह सिद्ध हो चुका कि समाज के विकास पर आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा नैतिक आदर्शवादी शक्तियों का भी गहरा प्रभाव पड़ता है, केवल आर्थिक भौतिक परिवर्तनों का हक नहीं । मार्क्स की यह धारणा भी कि पूंजीवादी विकास में लाभ की दर गिरती जाती त्रुटिपूर्ण है । अर्थशास्त्री

श्रीमती जोन रोबिन्सन यह कहती है कि 'लाभ की दर गिरने की मार्क्स की धारणा कुछ भी स्पष्ट नहीं करती। वास्तव में मार्क्स यह अनुमान नहीं लगा सका कि तकनीकी प्रगति के कारण पूँजी-बचत तकनीक द्वारा पूंजी-उत्पाद अनुपात को कम करके लाभ की दर बढ़ा ली जायेगी। वास्तविक स्थिति यह हुयी है कि ऐसी तकनीक प्रयोग में लायी जाती है जिनसे श्रम और पूंजी दोनों की उत्पादकता में वृद्धि होती है, कुल उत्पादन बढता है तथा श्रमिकों की मजदूरी और उद्यमी का लाभ, दोनों ही साथ-साथ बढ़ते है।

मार्क्स का पूंजीवादी संकट का सिद्धान्त भी व्यावहारिक धरातल पर टिक नहीं सका। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे पूंजी का केन्द्रीयकरण होने से राष्ट्र की आय कुछ हाथों में केंद्रित हो जाती है और समाज का बड़ा भाग गरीब बन जाता है। इससे मांग में कमी हो जाती है और बाजार में वस्तुएं बिक नहीं पाती। परिमाणस्वरूप मंदी आ जाती है और लाभ कम हो जाते है। मार्क्स की यह धारणा गलत साबित हुई। वास्तव में पूंजीवादी आर्थिक विकास के साथ कुल राष्ट्रीय आय में मजदूरी का अंश भी बढ़ गया जिससे वस्तुओं की मांग बढ़ती गयी।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शुम्पीटर ने मार्क्स के चिंतन और वैज्ञानिक विश्लेषण की सराहना करते हुए भी मार्क्स से अपनी असहमति व्यक्त की है। शुम्पीटर का कहना है कि मार्क्स ने अपने सिद्धान्त को प्रायोगिक सिद्धान्त के रूप में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया किन्तु उन्होंने मूल्य के श्रम सिद्धान्त तथा मजदूरी के जीवन-निर्वाह सिद्धान्त का सहारा लिया था। ये दोनों सिद्धान्त प्रायोगिक विश्लेषण के लिए उपयुक्त नहीं है। विकास के साथ सामाजिक-आर्थिक स्थितियां बदलती गयी और मजदूरी का निर्धारण जीवन-निर्वाह सिद्धान्त तक सीमित नहीं रहा।

शुम्पीटर इस बात से सहमत थे कि पूंजीवाद का विनाश अवश्यम्भावी है, लेकिन उन कारणों से नहीं जिनका मार्क्स ने प्रतिपादन किया। शुम्पीटर यह भी कहते है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एक नयी समाजवादी अर्थ व्यवस्था में परिवर्तित हो जाती है, किन्तु यह समाजवाद मार्क्स द्वारा अनुमानित वैज्ञानिक समाजवाद से बिल्कुल भिन्न होता है। पूंजीवाद एक ऐसे समाजवाद में परिणित हो जाता है जिसमें थोड़े से पूंजीपति पूंजी के स्वामी नहीं रहते बल्कि हजारों लाखों आम आदमी पूंजी के अंशधारी (शेयर होल्डर) बनते जाते है। किन्तु पूंजी के अंशधारियों का उद्योग पर और श्रमिकों पर कोई नियंत्रण नहीं रहता, वरन सारा प्रबंध मैनेजरों तथा तकनीकी विशेषज्ञों के हाथ में चला जाता है जो स्वयं वेतनभोगी कर्मचारी होते है।

मार्क्स ने राज्य की भूमिका में होने वाले परिवर्तनों की भी पूर्वकल्पना नहीं की थी। अब संसार के प्राय: सभी देशों में कल्याणकारी राज्य की स्थापना हुयी है, अर्थात् संपूर्ण समाज का कल्याण हो राज्य शासन का प्रमुख पोषित लक्ष्य है। अतएव राज्य पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे पनपने वाली बुराइयों पर सतत् अंकुश लगाने का कार्य भी करता है।

मार्क्स मॉडल के इस आलोचनात्मक परीक्षण का यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उनका मॉडल अव्यावहारिक अथवा पूर्णतया असत्य है। वास्तव मे मार्क्स ने पूंजीवादी आर्थिक विकास की उन कमजोरियों को उद्घाटित किया है जो समाज में अशांति फैलाकर क्रांति की ज्वाला भड़काती है। मार्क्स के आर्थिक विकास मॉडल का ही यह परिणाम था कि सभी समाजों ने तथा

विभिन्न राष्ट्रों ने कल्याणकारी राज्य की स्थापना की ओर ध्यान दिया तथा निरंतर इस प्रयास में लगे रहे कि पूंजीवादी आर्थिक विकास की बाधाएं दूर होती रहें। इतना ही नहीं प्राय: सभी देशों में किसी न किसी रूप में आर्थिक नियोजन की परंपरा कायम की गयी है, ताकि अर्थव्यवस्था की विसंगतियों को दूर किया जा सके।

4.9 विकासशील देशों में मार्क्स मॉडल की उपादेयता:

मार्क्स का आर्थिक विकास का सिद्धान्त मूल रूप में पाश्चात्य देशों के पूंजीवादी विकास की समस्याओं पर केंद्रित रहा है। मार्क्स ने भारत तथा अन्य विकासशील देशों की समस्याओं से संबंधित नतो कोई विश्लेषण किया है और न उनकी व्याख्या की है। मार्क्स की यह धारणा अवश्य रही है कि एशिया और अफ्रीका के पिछड़े और गरीब देशों की समस्याओं की जड़ में 'पूंजीवादी-साम्राज्यवाद' है। अतएव उनका यह मत था कि इन देशों को सबसे पहले अपने आपको विदेशी दासता से मुक्ति का उपाय करना चाहिये। लेनिन ने मार्क्स की इसी धारणा को आधार बनाकर पूंजीवादी साम्राज्यवाद कि विस्तृत व्याख्या की।

दूसरी ओर विकासशील देशों में तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण इन देशों के लिये मार्क्स कि पूंजीवादी विकास की व्याख्या अनुपयुक्त हो जाती है। फिर भी यह एक विलक्षण संयोग है कि मार्क्स की व्याख्या के प्रमुख घटक आजादी प्राप्त हो जाने के बाद भी इन विकासशील देशों को अर्थव्यवस्था में तरह विद्यमान है। उदाहरणार्थ, श्रमिकों की मजदूरी कि दर जीवन-निर्वाह के स्तर पर है, बेरोजगारों की 'सुरक्षित फौज ' बढ़ती जा रही है, समाज पूंजीपतियों तथा 'सर्वहारा' वर्गों में विभाजित है आदि। लेकिन इन समस्याओं के कारणों कि व्याख्या वह नहीं है जिसे मार्क्स ने अपने पूंजीवादी विकास सिद्धान्त मे दर्शाया है।

फिर भी, मार्क्स की समाजवादी आर्थिक नियोजन कि अवधारणा निश्चित रूप से विकासशील देशों के शीघ्र आर्थिक विकास के लिये उपयुक्त रही है। यही कारण है कि भारत जैसे विकासशील देशों में समाजवादी आर्थिक नियोजन को प्राथमिकता से अपनाया गया है। ये सिद्धान्त समय के कसौटी पर कहां तक खरे उतरेंगे इसकी भविष्यवाणी आज करना असम्भव है।

4.10 शब्दावली:

मार्क्स के आर्थिक - विकास के मॉडल में हमे निम्नलिखित धारणाओं से परिचित होना चाहिये।

(1) इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या : परिवर्तन, अर्थात् उत्पादन कि प्रणाली में परिवर्तन के कारण ही मानव-समाज में सामाजिक - राजनैतिक परिवर्तन होते है।

(2) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद : किसी भी सामाजिक अवस्था में भौतिकवादी परिवर्तन के कारण द्वन्द अर्थात् संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। जब "उत्पादन की प्रणाली" मे परिवर्तन होता है तब उत्पादन के संबंधों" में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी है। उत्पादन के संबंधो में परिवर्तन के लिये द्वन्द प्रारंभ होता है।

(3) वर्ग-संघर्ष : द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद समाज में वर्ग संघर्ष को जन्म देता है । प्रत्येक सामाजिक अवस्था की अपनी वर्ग-संरचना होती है । उत्पादन को प्रणाली मे परिवर्तन से उत्पादन की शक्तियों का समाज की स्थापित वर्ग-सरंचना से संघर्ष होने लगताहै ।

(4) उत्पादन की प्रणाली : मानव समाज अपने विकास मे विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है । प्रत्येक अवस्था की अपनी विशिष्ट 'उत्पादन प्रणाली' होती है ।

(5) उत्पादन के संबंध : उत्पादन की प्रणाली के अनुसार ही समाज वर्गों में विभाजित हो जाता है । 'उत्पादन के संबंध का तात्पर्य, उत्पादन कार्य में लगे समाज के विभिन्न वर्गों के आपसी संबंध से है ।

(6) अतिरेक मूल्य : श्रमिक अपने श्रम से जितना 'मूल्य' उत्पादित करता है, उसमें से एक अंश उसे मजदूरी के रूप में प्राप्त होता है । शेष 'मूल्य' ही अतिरेक मूल्य है जो मालिक को लाभ के रूप में प्राप्त हो जाता है ।

(7) 'मूल्य का श्रम - सिद्धान्त' : मार्क्स ने परंपरावादी अर्थशास्त्रियों के 'मूल्य के श्रम सिद्धान्त' का ही अनुसरण किया है । इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादित वस्तु का मूल्य उस वस्तु को उत्पादित करने में लगे श्रम मूल्य के बराबर होता है ।

(8) पूंजी संचय : श्रम का अतिरेक मूल्य ही एकत्रित होने से पूंजीसंचय होता है । यह पूंजी मशीनों कारखानों और उत्पादन के लिए कच्चे माल के स्थान में काम में आती है । इस प्रकार समस्त पूंजी मार्क्स के अनुसार, संचित श्रम अथवा एकत्रित मृत-श्रम ही है ।

(9) बुर्जआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग : पूंजीवादी अवस्था में समाज दो वर्गों मे विभाजित हो जाता है । 'बुर्जआ वर्ग जिसके पास उत्पादन के पूंजीगत साधन होते है । यह अभिजात वर्ग बन जाता हैं । दूसरा, सर्वहारा वर्ग जिनके पास बचने के लिये केवल अपना शारीरिक श्रम ही होगा है ।

(10) स्थिर पूंजी (C) : कारखानों, मशीनों, कच्चा माल आदि का मूल्य ।

(11) परिवर्तनशील पूंजी (V) : श्रमिकों को प्राप्त कुल मजदूरी का मूल्य ।

(12) पूंजी का अवयवी संयोग (C / V) : दोनों ही प्रकार की पूंजी मिलाकर उत्पादन किया जाता है । स्थिर पूंजी के परिवर्तनशील पूंजी के अनुपात को पूंजी का अवयवी संयोग कहा गया है ।

(13) शोषण की दर (S / V) : अतिरेक मूल्य का मजदूरी मूल्य से अनुपात शोषण की दर बताता है ।

(14) औद्योगिक रक्षित फौज : पूंजीवाद में आर्थिक विकास के साथ मशीनीकरण के कारण बढ़ते हुए बेरोजगार मजदूरों के वर्ग को 'औद्योगिक रक्षित फौज' कहा गया

4.11 बोध प्रश्न :

1. मार्क्स के आर्थिक विकास मॉडल के प्रमुख आधार क्या है?
2. मार्क्स की 'अतिरेक मूल्य' की अवधारणा स्पष्ट कीजिये ।

3. मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद का विनाश अवश्यम्भावी क्यों है?
4. मार्क्स के आर्थिक विकास मॉडल की विवेचना कीजिये।
5. मार्क्स के आंशिक विकास मॉडल की आलोचना किन आधारों पर की गई है?
6. मार्क्स का आर्थिक विकास मॉडल विकासशील में कहां तक व्यावहारिक है?

4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. डा० टी० आर० शर्मा एवं डा० जे० सी० वार्ष्णेय - विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन, साहित्य भवन, आगरा (अध्याय-13)
2. एम०एल० झिंगन, विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन विकास प्रकाशन नई दिल्ली (अध्याय-10)
3. कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।
4. Higgins B., Economic Development Norton, New York, 1959
5. Kindleberger. C.P. Economic Development, McGraw-Hill, New York, 1977.
6. Meir G.M. and R.E. Baldwin, Economic Development, Asian Publishers, Delhi – 1964.

इकाई 5

आर्थिक विकास का महालनोबिस मॉडल

Mahalanobis Model of Economic Growth

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 महालनोबिस मॉडल
5.3 द्वि क्षेत्रीय मॉडल
5.4 चार क्षेत्रीय मॉडल
5.5 महालनोबिस मॉडल की मान्यतायें
5.6 महालनोबिस मॉडल का मूल्यांकन
5.7 सारांश
5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
5.9 शब्दावली

5.0 उद्देश्य

आर्थिक विकास को सम्पूर्ण दिशा देने के लिये मॉडल निर्माण एक आवश्यक प्रक्रिया है। प्रो० महालनोबिस द्वारा विकसित मॉडल हमारी पंचवर्षीय योजनाओं का आधार रहा है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

* महालनोबिस मॉडल की भूमिका क्या है? तथा यह किस प्रकार हेरोड डॉमर विकास मॉडल का संशोधित स्वरूप है।
* महालनोबिस के द्वि क्षेत्रीय व चार क्षेत्रीय मॉडलों की संरचना जानेंगे
* महालनोबिस मॉडल की मान्यतायें जान सकेंगे तथा उसका मूल्यांकन करेंगे।

5.1 प्रस्तावना

हेराड-डॉमर मॉडल आर्थिक विकास की व्याख्या विनियोग तथा उत्पादन के रूप में करता है। किन्तु इस मॉडल में वास्तविक विनियोग प्रक्रिया तथा क्षेत्रवार वितरण नहीं बतलाया गया है। इस कमी को प्रो० महालनोबिस ने पूरा किया। उन्होंने क्षेत्रवार विनियोग विश्लेषण किया। इस मॉडल की एक अन्य विशेषता यह थी कि यह भारी उद्योगों से प्राप्त उत्पादनों का पुर्नविनियोग करने की योजना बनाता है। इस प्रकार दीर्घकाल में बचत आय अनुपात बढ़ेगा तथा विकास की वृद्धि दर अधिक होगी। अत: इस मॉडल को गहन बचत या गहन पूंजी अनुपात मॉडल भी कहा जाता है।

महालनोबिस मॉडल का भारत के संदर्भ मे विशेष महत्व हैं क्योंकि यह भारतीय योजना में वास्तव में प्रयुक्त किया गया है।

5.2 महालनोबिस मॉडल

हेरोड-डॉमर मॉडल विनियोग, आय तथा उपभोग की उन दरों पर बल देता है जो सतत वृद्धि दर से सम्बन्धित हैं। इन मॉडलों में प्रमुख तथ्यों का उल्लेख तो है पर विस्तार युक्त कार्यक्रम का अभाव है। प्रो० महालनोबिस ने 1952-55 में विकसित अपने इस मॉडल में क्षेत्रीय विश्लेषण (Sector Analysis) प्रस्तुत कर एक कदम आगे बढ़ाया है। इससे हेरोड डॉमर मॉडल को अधिक सम्पूर्ण रूप प्रदान किया गया है। महालनोबिस मॉडल में विनियोग वृद्धि की दर का सम्बन्ध बचत की दर से न होकर पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन की वृद्धि दर से है। पूंजीगत क्षेत्र की वस्तुओं की वृद्धि पर पूंजीगत क्षेत्र में किये गये कुल विनियोग के अंश तथा पूंजी उत्पादन अनुपात पर निर्भर करता है।

माना की पूंजीगत वस्तुओं का पूजी-अनुपात (Capital output ratio) यदि दिया गया है तो विनियोग का अधिक अंश अधिक पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन करेगा। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में अधिक अल्पकालीन व दीर्घकालीन वृद्धि दर होगी। अत: अर्थव्यवस्था में पूंजीगत क्षेत्र में किया गया कुल विनियोग का अंश सबसे महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है। महालनोबिस ने 1952 में एक क्षेत्र, 1953 में दो क्षेत्र तथा 1955 में चार क्षेत्र मॉडल बनाया।

प्रो० महालनोबिस का विश्वास था कि भारत ने प्रथम पंचवर्षीय योजना की उपलब्धियों के कारण कृषि में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। अत: अब द्वितीय व तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं में गैर-कृषि क्षेत्रों का विकास करना चाहिये। अत: प्रो० महालनोबिस ने भारत में त्वरित आर्थिक विकास के लिये पूंजीगत क्षेत्र में वृद्धि के द्वारा तेजी से औद्योगिक विकास की अनुशंसा की। पर इसके लिये प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकता थी। क्योंकि भारत में कोयले व लोह अयस्क के पर्याप्त भंडार उपलब्ध थे, अत: सर्वप्रथम लोह व इस्पात उद्योग के विकास की योजना बनाई गयी। यह अन्य विकसित राष्ट्रों के अनुभव से उचित था। भारी उद्योगों को विकास का आधार बनाकर भविष्य में राष्ट्रीय आय की वृद्धि की संकल्पना की गई। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के सैद्धान्तिक आधार के रूप में चार क्षेत्र मॉडल का निर्माण किया गया। इससे दो लक्ष्यों के प्राप्त होने की संभावना थी।

(i) राष्ट्रीय आय में औसतन 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि

(ii) द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 11 मिलियन अतिरिक्त रोजगार सृजन।

इस प्रकार महालनोबिस मॉडल भारी उद्योगों के माध्यम से देश के भावी विकास की आधारशिला रखना चाहता था।

5.3 द्वि क्षेत्रीय मॉडल (Two sector model)

इस मॉडल में महालनोबिस ने सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को दो भागों पूंजीगत क्षेत्र व उपभोग क्षेत्र में बांटा है। कुल विनियोग को भी पूंजीगत क्षेत्र (K) एवं उपभोग क्षेत्र (C) में बांटा गया है। कुल विनियोग का वह क्षेत्र जो पूंजीगत क्षेत्र में प्रयुक्त किया जाता है λK (लेम्बडां K) तथा उपभोग क्षेत्र में प्रयुक्त विनियोग λC द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं।

$$\lambda K + \lambda C = 1 \qquad \text{..... (1)}$$

यदि K का मूल्य निश्चित कर दिया जाय तो λC का मूल्य (I - λK) हो जाता है। λK का मूल्य योजनाविदों के चयन पर निर्भर करता है। प्रो० महालनोबिस ने λK का मान 0.33 प्रतिस्थापित किया।

यदि उत्पाद-पूंजी अनुपात (आउटपुट-capital ratio) माना कि β (बीटा) हैं तो

$$\lambda K \beta K + \lambda C \beta C = \beta \qquad \text{.....(2)}$$

अर्थात् पूंजीगत क्षेत्र में विनियोग के अंश λK को उत्पाद-पूंजी अनुपात βK से गुणा किया जाय तो पूंजीगत क्षेत्र में कुल वृद्धि का अंश प्राप्त होता है। इसी तरह $\lambda C \beta C$ से उपभोग क्षेत्र में कुल वृद्धि का अंश प्राप्त होता है। इन दोनों का योग β है जो कुल उत्पाद पूंजी अनुपात को बतलाता है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित मूल्य दिये गये हैं।

$$K = 0.33 \text{ p } C = 0.67 \quad \beta = 0.25$$

समीकरण (2) में प्रतिस्थापित करने पर

$$(0.33)\ (0.25) + (0.67)\ (0.25) = 0.25$$

किसी समय t पर कुल विनियोग It है तथा किसी भविष्य के समय t + 1 पर यह It + 1 होगा।

$$I_{t+1} - I_t = \lambda K\ \beta K\ It \quad \text{... (3)}$$

इसी प्रकार यदि किसी समय t में उपभोग Ct तथा भविष्य में Ct + 1 है तो

$$C_{t+1} - Ct = \lambda C\ \beta C\ I_t \quad \text{..... (4)}$$

उपरोक्त चारों समीकरणों के आधार पर महालनोबिस ने निम्नलिखित आय सृजन सूत्र प्रस्तुत किया।

5.4 चार क्षेत्रीय मॉडल

चार क्षेत्रीय मॉडल में प्रो० महालनोबिस ने उपभोग क्षेत्र को कारखाना उपभोग क्षेत्र (C_1), लघु व कुटीर उद्योग (C_2) तथा सेवा क्षेत्र (C_3) में विभाजित किया। चौथा क्षेत्र विनियोग (K) था।

इन चारों क्षेत्रों में पूंजी-उत्पादन अनुपात βK, β_1, β_2 तथा β_3 माना गया जो क्रमशः विनियोग क्षेत्र, कारखाना उपभोग क्षेत्र, लघु उद्योग उपभोग वस्तु क्षेत्र व सेवा क्षेत्र के लिये था। इन क्षेत्रों में पूंजी-श्रम अनुपात क्रमशः $\theta K, \theta_1, \theta_2$ व θ_3 था। ये आठों अनुपात (पूँजी उत्पादन अनुपात

तथा पूंजी-श्रम अनुपात प्राचल (Parameters) हैं जिनका मूल्य योजना अवधि के दौरान स्थिर माना गया है।

इन चारों क्षेत्रों में K, C_1, C_2 व C_3 में आय सृजन क्रमशः YK, Y_1, Y_2 व Y_3 माना गया है तथा क्षेत्रानुसार रोजगार सृजन NK, N_1, N_2, व N_3 माना गया।' क्षेत्रानुसार विनियोग आवंटन अनुपात क्रमशः $\lambda K, \lambda_1, \lambda_2$ व λ_3 था। इन अज्ञात मूल्यों को समीकरण द्वारा ज्ञात करना था। इस में निम्नलिखित समीकरण थे।

$$Y = Yk + Y_1 Y_2 \qquad \text{..... (1)}$$

$$N = Nk + N_1 N_2 N_3 \qquad \text{..... (2)}$$

$$Yk = Y_1 + Y_2 = 1 \qquad \text{..... (3)}$$

$$Yk = IYk \;\; \beta k \qquad \text{..... (4)}$$

$$Y_1 = IY_1 \;\; \beta_1 \qquad \text{..... (5)}$$

$$Y_2 = IY_2 \;\; \beta_2 \qquad \text{..... (6)}$$

$$Y_3 = IY_3 \;\; \beta_3 \qquad \text{..... (7)}$$

$$NK = I \;\; --\frac{YK}{\theta K}-- \qquad \text{..... (8)}$$

$$N_1 = I \;\; -\frac{Y_1}{\theta_1}- \qquad \text{..... (9)}$$

$$N_2 = I \;\; -\frac{Y_2}{\theta_2}- \qquad \text{..... (10)}$$

$$N_3 = I \;\; -\frac{Y_3}{\theta_3}- \qquad \text{..... (11)}$$

यहाँ Y का अर्थ कुल आय सृजन, N कुल रोजगार सृजन तथा I कुल विनियोग है।

उपरोक्त समीकरण व्यवस्था मे 11 समीकरण है। पर 12 अज्ञान मूल्य है। अतः अज्ञात मूल्यों के 12 विभिन्न क्रम ज्ञात होगे। इनसे मूल्य निर्धारण कठिन हो जायेगा। अतः: बारहवां समीकरण आवश्यक होगा। प्रो० महालनोबिस ने इस समस्या का हल YK को 0.33 मूल्य देकर किया है।

उपरोक्त समीकरण व्यवस्था में बारहवां समीकरण निम्नलिखित है।

$$YK = 0.33 \qquad \text{... (12)}$$

भारतीय संदर्भ में यह दिया गया मान वास्तविक आकड़ों के निकट तथा महत्वपूर्ण है।

बोध प्रश्न 1

1. प्रो० महालनोबिस के चार क्षेत्रीय आयोजना मॉडल की व्याख्या कीजिये। 500 (शब्द)

5.5 महालनोबिस मॉडल की मान्यतायें

(i) भारत जैसे विकासशील देश में व्यापारिक उच्चावचन का प्रभाव गौण है।

(ii) इन देशों में जे.बी.से. (J. B. Say) का बाजार का नियम लागू होता है अर्थात् पूर्ति स्वयं ही मांग का सृजन करती है।

(iii) केन्द्रीय योजना के अन्तर्गत आर्थिक विकास होता है।

(iv)मूल्य परिवर्तन या मुद्रास्फीति के प्रभावों पर ध्यान नहीं दिया गया है।

(v) यह एक बंद अर्थव्यवस्था का मॉडल है क्योंकि इस की मान्यता है कि विनियोग वस्तुओं की घरेलू पूर्ति इतनी हो जायगी कि पूंजीगत वस्तुओं के शुद्ध आयात को आवश्यकता नहीं हो।

आय सृजन की आवश्यक दशाएँ

(अ) कुटीर व लघु उद्योगों में उपभोक्ता वस्तुओं का पर्याप्त उत्पादन होना चाहिये। इससे भारी उद्योगों में हुए विनियोग के कारण बढ़ी हुई उपभोक्ता मांग पूरी हो सकेगी।

(ब) मूलभूत उद्योगों की वृद्धि दर पर्याप्त हो जिसके कि विनियोग वस्तुओं की देश में पूर्ति हो सके।

(स) तकनीकी दृष्टिकोण से कुशल व्यक्ति उपलब्ध हो।

(द) वित्तीय व मौद्रिक नीतियों की सफलता के लिये पर्याप्त वित्तीय साधन हों।

(ई) देश में पर्याप्त व कुशल प्रशासन तंत्र कार्यरत हो।

5.6 महलनोबिस मॉडल का मूल्यांकन

महलनोबिस वे विनियोग का अंश 0.33 रखा है जिसके पीछे कोई तार्किक आधार नहीं है। यह कारण अवश्य दिया गया है कि इससे अधिक मूल्य वर्तमान परिस्थितियों में संभव नहीं है। पर इस प्रकार K का मूल्य निर्धारण करने पर साधनों के अनुकूलतम संयोग पर पहुंचना संभव नहीं है।

प्रो० के० एन० राज के अनुसार इस मॉडल की एक कमजोरी यह है कि विनियोग निर्णय व बचत दर मे संबंध स्थापित नहीं किया गया है। अधिक पूंजी विनियोग एवं भारी उद्योग प्रधान तकनीक के लिये अधिक बचत दर होना आवश्यक है। ए. के. सेन, गोतम माथुर आदि अर्थशास्त्रियों ने भी भरी उद्योगों से उत्पन्न वस्तुओं के पूनर्वियोग पर कर दिया हो उनके अनुसार इस प्रकार का औद्योगिक प्रतिमान स्वयं ही बचत-आय अनुपात बढ़ायेगा।

5.7 सारांश

महलनोबिस मॉडल सुप्रसिद्ध हेरोड डॉमर मॉडल में सुधार है क्योंकि इसमें क्षेत्रीय विश्लेषण किया गया है। इस मॉडल में भारी उद्योगों पर अधिक बल दिया गया है तथा यह अपेक्षा की गयी कि इन भरी उद्योगों से उत्पन्न अतिरिक्त उत्पाद को पुन: भारी उद्योगों के विकास में खपा दिया जायेगा। इससे दीर्घकाल में ऊंची बचत दर एवं अधिक विकास दर प्राप्त होगी। अत: इसे पूंजी गहन एवं बचत तीव्रता मॉडल कहा जाता है।

महलनोबिस ने 1953 में द्वि क्षेत्रीय मॉडल तथा 1955 में चार क्षेत्रीय मॉडल का विकास किया। उसने चार क्षेत्रीय मॉडल 11 समीकरणों व 12 अज्ञात मूल्यों की सहायता से किया। इसमें बारहवां समीकरण YK = ०.33 माना गया। यह मूल्य स्वछंद (Arbitrary) रूप से लिया गया है।

महलनोबिस ने विनियोग निर्णय, एवं उनके अनुसार आवश्यक बचत चर में संबंध स्थापित नहीं किया। पर अन्य क्षेत्रों की तुलना में भारी विनियोग पर अधिक बल दिया। इस प्रकार का विनियोग प्रतिमान दीर्घकाल में बचत आय अनुपात को बढ़ाता है तथा आर्थिक विकास की वृद्धि दर भी ऊँची रखता है।

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Ghosh, 'Planning, Programming' and Input-Output Models: Selected Papers on Indian Planning, Cambridge University Press.
2. P.C. Mahalnobis, Approach of Operational Research to Planning in India Sankhya Vol. 16, Dec. 1955.
3. Leela Rangaswamy and N. Somasekhara, Mahalnobis Model of Planning, Allied Publishers, 1974.

5.9 शब्दावली

पूंजी (Capital) उत्पादन का वह साधन जो भूतकाल में किये गये श्रम का परिणाम है।

पूंजी-उत्पाद अनुपात Capital output Ratio उत्पादन की मात्रा में एक रुपया वृद्धि करने के लिये आवश्यक पूंजी की मात्रा।

पुनर्विनियोग (Reinvestment)

प्राचल (Parameters)

विनियोग आवंटन (Investment Allocation) कुल विनियोग को अलग-अलग क्षेत्रों जैसे कृषि, यातायात, उद्योग आदि में बांटना।

रोजगार सृजन (Employment generation)

इकाई 6

आर्थर लुईस: श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास का मॉडल

Arthur Lewis: An Economic Development Model of the Unlimited Supply of Labour

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 मान्यताएँ

6.4 समीक्षात्मक मूल्यांकन

6.5 सारांश

6.6 संदर्भ ग्रंथ

6.7 निम्बन्धात्मक प्रश्न

6.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि —

- आर्थर लुईस: श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास का मॉडल
- मान्यताएँ
- समीक्षात्मक मूल्यांकन

6.2 प्रस्तावना

सन् 1954 मे प्रकाशित अपने लेख "Economic Development with Unlimited of Supply of Labour" श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास का मॉडल प्रस्तुत किया। प्रो. लुईस ने प्रतिष्ठित आर्थिक विकास के मॉडल को अल्पविकसित देश जैसे श्रम की अधिकता वाले देशों की विकास प्रक्रिया पर लागु किया और रिकार्डो के दो क्षेत्रिय विकास मॉडल को वर्तमान विकासशील देशों की स्थिति में सार्थक बताया है।

लुईस मॉडल को दो क्षेत्रिय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल भी कहा जाता है।

(i) जीवन निर्वाह क्षेत्र कृषि

(ii) पूँजीवादी क्षेत्र उद्योग पर आधारित है।

प्रो. लुईस अपने मॉडल की शुरूवात इस कथन के साथ करता है निर्वाह-मजदूरी पर श्रम की पूर्ण लोचदार पूर्ति का प्रतिष्ठित मॉडल अल्पविकसित देशो मे व्यवर्हाय है । इस प्रकार की अर्थव्यवस्था पूँजी तथा प्राकृतिक साधनों की तुलना अति जनसंख्या वाली होती है । परिणामस्वरूप श्रम की सीमान्त उत्पादकता नगण्य या शून्य और कभी-कभी ऋणात्मक भी होती है । क्योंकि श्रम की पूर्ति असीमित होती है । इसलिए चालू मजदूरी पर बिना किसी के, निर्वाह क्षेत्र से श्रमिको को निकालकर तथा पूँजीवादी क्षेत्र मे लगाकर नए उद्योग स्थापित किए जा सकते है या वर्तमान उद्योगों का विस्तार हो सकता है । चालु मजदूरी वह है जो श्रमिक निर्वाह क्षेत्र मे कमाते है । लेकिन स्त्रोतों से निर्वाह मजदूरी पर श्रमिक आयेगे वे है कृषक, आकास्मिक श्रमिक, छोटे-मोटे व्यापारी नोकर चाकर घरेलु काम-काज करने वाले औरत आदि। परन्तु पूँजीवादी क्षेत्र मे कुशल श्रमिक चाहिए। लुईस तर्क देता है कुशल श्रमिक ''आंशिक साधन है जो अकुशल श्रमिकों को प्रशिक्षण प्रदान करके दूर की जा सकती है।

मान्यताएँ

प्रो. लुईस का मॉडल निम्न मान्यताओं पर आधारित है।

1. अर्थव्यवस्था मे श्रम की असीमित पूर्ति है।
2. अर्थव्यवस्था दोहरी प्रकृति की है।
3. अकुशल श्रमिको को प्रशिक्षण और कुशलता प्रदान करने की लागत को स्थिर माना गया है।
4. विस्तृत पूँजीवादी क्षेत्र मे उत्पादन लाभ अधिकतमकरण के सिद्धान्त के आधार पर स्थान लेता है।
5. प्रति व्यक्ति उत्पादन पूँजीवादी क्षेत्र मे निर्वाह क्षेत्र की बजाय अधिक होगा।
6. अर्थव्यवस्था मे पूँजी और प्राकृतिक संशोधन जनसंख्या के सम्बन्ध मे दुलर्भ है।

लुईस के दो क्षेत्रिय श्रम की असीमित पूर्ति सिद्धान्त का रेखाचित्र द्वारा निरूपण:-

दायी दिशा मे कृषि क्षेत्र से सम्बन्धि चित्र बनाये गये है । ऊपर को रेखात्रि बतलाता है कि कैसे श्रमिको की दृष्टि से निर्वाह भोजन उत्पादन मे परिवर्तन यह कृषि उत्पादन फलन है जहाँ कुल उत्पादन (TP_A) का निर्धारण परिवर्तित आगम की मात्रा श्रम (LA), दी हुई पूँजी (LA) की मात्रा तथा अपरिवर्तित पुरानी तकनीकि द्वारा होता है दांये तरफ नीचे का रेखाचित्र जिसमे औसत और सीमान्त श्रम वक्र

रेखाचित्र 6.1 लुईस के दो क्षेत्रिय श्रम की असीमित पूर्ति सिद्धान्त

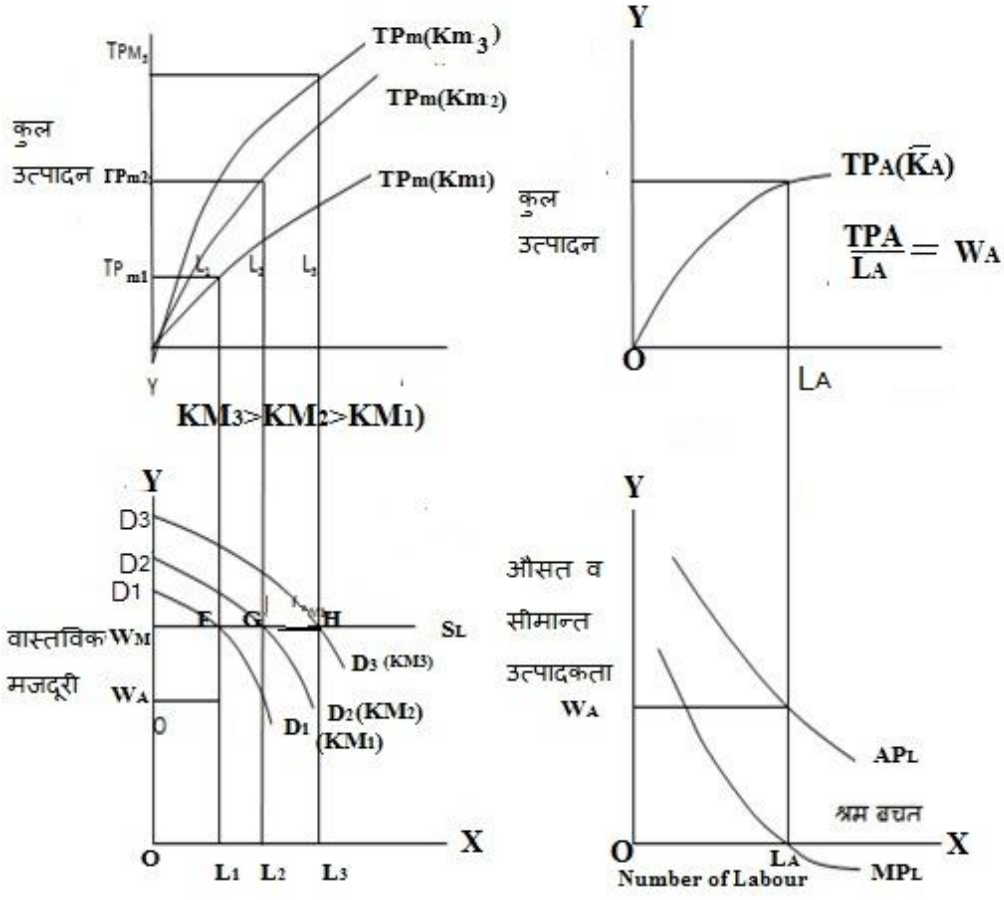

Quantity of Labour Thousand श्रम की मात्रा (हजारों)

(a) आधुनिक/पूंजीवादी क्षेत्र (b) प्रारम्भिक क्षेत्र

दांयी दिशा मे कृषि क्षेत्र से सम्बन्धि रेखाचित्र बनाये गये है ऊपर का रेखाचित्र बतलाता है कि कैसे श्रमिको की दृष्टि से निर्वाह भेजन उत्पादन मे परिवर्तन यह कृषि उत्पादन फलन है जहाँ कुल उत्पादन (TP_A) का निर्धारण परिवर्तित आगम की मात्रा श्रम (LA), दी हुई पूँजी (KM) की मात्रा तथा अपरिवर्तित पुरानी तकनीकि द्वारा होता है । दांये तरफ नीचे का रेखाचित्र जिसमे औसत और सीमान्त श्रम वक्र APL और MPL है जो कुल उत्पादन वक्र से खिचे गये है । क्षैतिज अक्ष पर दोनो रेखाचित्रों मे कृषि श्रमिको की मात्रा (LA) को दर्शाया गया है । जो लाखो की संख्या मे है । प्रो. लुईस ने अल्पविकसित अर्थव्यवस्था का वर्णन किया है बहुत ज्यादा संख्या मे लोग रहते और ग्रामीण क्षेत्रों मे काम करते है ।

प्रो. लुईस ने प्रारम्भिक क्षेत्र के लिए दो मान्यताये ली है ।

(i) प्रारम्भिक क्षेत्र मे आधिक्य श्रम है उनकी सीमान्त उत्पादकता शून्य है।

(ii) सारे ग्रामीण श्रमिक का उत्पादन मे समान अंश है कि उनकी वास्तविक औसत उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है न की श्रम की सीमान्त उत्पादकता द्वारा।

माना LA के बराबर कृषि श्रमिक है जिन्होने TP_A भोजन उत्पादन कर रहे। जो प्रत्येक WA के बराबर अंश है (जो औसत उत्पादन है जो TP_A/LA के बराबर है ।) सीमान्त उत्पादकता LA श्रमिक शून्य है जो नीचे के रेखाचित्र (b) मे दिखाया गया है इसलिए आधिक्य श्रमिक की मान्यता लागू होती है जो LA श्रमिकों के अतिरिक्त है । बांयी तरफ का रेखाचित्र (a) कुल उत्पादन (उत्पादन फलन) वक्र जो ओद्योगिक क्षेत्र के लिए बनाया गया है । एक दुबारा मैन्यूफैक्चर वस्तु का उत्पादन (TP_M) जो की परिवर्तित श्रम आगम LM, दिया हुआ पूँजी स्टॉक, तकनीकि tM का फलन है।

क्षैतिज अक्ष पर, श्रम की मात्रा जो रोजगार मे है एवं उत्पादन करती TP_Mसाथ मे पूँजी स्टॉक K_1 जो हजारों की संख्या ग्रामीण श्रमिक L_1 है । लुइस के मॉडल आधुनिक क्षेत्र पूँजी स्टॉक मे वृद्धि को स्वीकृत करता है जो KM_1, KM_2 तथा KM_3 है जो औद्योगिक पूँजीपति द्वारा लाभ कमाने के लिए पुन: निवेशित की जाती है । जिसके कारण रेखाचित्र (a) मे कुल उत्पादन वक्र ऊपर तरफ खिसक जाता है TP_M (KM_1) से TP_M (KM_2) तथा TP_M (KM_3) तक। यह प्रक्रिया पूँजीपति लाभ को पुन: निवेश और वृद्धि के लिए प्रेरित करेगी। जो बांयी तरफ के नीचे के रेखाचित्र मे दर्शायी गयी है नीचे रेखाचित्र मे आधुनिक सीमान्त श्रम वक्र है जो TP_M वक्र से प्राप्त किया है आधुनिक क्षेत्र के पूर्वप्रतियोगी श्रम उत्पाद वक्र वास्तव मे श्रमिको के लिए मांग वक्र है । नीचे के दोनो रेखाचित्र मे ग्रामीण WA क्षेत्र मे त्रिवन निर्वाह मजदूरी को प्रदर्शित करती है WM रेखाचित्र (a) मे आधुनिक पूँजीगत क्षेत्र मे वास्तविक मजदूरी को दिखती है इस मजदूरी दर पर श्रमिको की पूर्ति असीमित व पूर्णतया लोचदार मानी गयी है । जो की क्षेतिज के सामान्तर रेखाचित्र W_MS_L द्वारा प्रदर्शित किया गया है । रेखाचित्र (a) मे श्रम की इकाई(हजारों) मे प्रदर्शित है, आधुनिक क्षेत्र वृद्धि के प्रारम्भिक स्टेज मे पूँजी की पूर्ति KM दी गई है । श्रम का मांग वक्र जो घटती सीमान्त उत्पाद द्वारा व्यक्त किया गया है ऋणात्मक ढाल का है $D_1(KM_2)$ नीचे के बांयी तरफ के रेखाचित्र मे। क्योंकी उद्यमी का लाभ अधिकतम होगा उस बिन्दू पर उनका सीमान्त भौतिक उत्पाद, वास्तविक मजदूरी के बराबर है । (बिन्दू F पर मांग और पूर्ति एक दूसरे को काटते है) कुल आधुनिक क्षेत्र का रोजगार L_1 के बराबर है । कुल आधुनिक क्षेत्र उत्पादन TPM जो OD_1FL_1 के बराबर है । कुल उत्पादन के अंश के बराबर श्रमिको को मजदुरी दी जायेगी इसलिए OW_MFL_1 आयताकार क्षेत्र के बराबर होगी। उत्पादन का सन्तुलन जो WMD_1F क्षेत्र द्वारा दर्शाया है जो की पूँजीपति के लाभ मे वृद्धि होगा। लुईस मानता हे की जो यह लाभ है यह पुन: निवेशित है और कुल पूंजी स्टॉक आधुनिक क्षेत्र मे KM_1 ; KM_2 के बराबर बढ़ेगा। ज्यादा पूँजी क्षेत्र जो आधुनिक क्षेत्र के कुल उत्पादन वक्र के $TP_M(KM_2)$ के शिफ्ट होने का कारण है, जो श्रम के मांग वक्र के सीमान्त उत्पादन मे वृद्धि को प्रेरित करता है। मांग श्रम वक्र $D_2(KM_2)$ बाहर की तरफ खिसक जाता है।

आधुनिक क्षेत्र रोजगार स्तर का एक नया साम्य बिन्दू G पर स्थापित होगा। जहाँ L के बराबर श्रमिक काम पर लगे है । कुल उत्पादन में वृद्धि TP_{M2} और OD_2G_{L2} के बराबर जबकि कुल मजदूरी लाभ में OW_MGL2 और W_MD_2G के बराबर सापेक्ष वृद्धि होगी। एक बार दूसरा यह प्रक्रिया शुरू होगी और L_3 आधुनिक श्रम रोजगार तक चलेगी। आधुनिक क्षेत्र वृद्धि और रोजगार की प्रक्रिया जब तक जारी रहेगी की सारा ग्रामीण श्रम औद्योगिक क्षेत्र द्वारा खपा नहीं लिया जाता है । तत्पश्चात् उच्च बायें हुए उत्पादन लागत पर अतिरिक्त श्रमिको कृषि क्षेत्र से बाहर कर दिये जा सकते है क्योकी श्रम-भूमि अनुपात मे कमी का अर्थ है ग्रामीण क्षेत्र के श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता वक्र ज्यादा समय शून्य नहीं होगी। इस प्रकार आधुनिक क्षेत्र मे श्रम को पूर्ति वक्र धनात्मक ढाल का होगा और रोजगार मे लगातार वृद्धि होगी सन्तुलित आर्थिक वृद्धि के साथ अर्थव्यवस्था प्रारम्भिक ग्रामीण कृषि क्षेत्र से आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र मे बदल जायेगी।

6.4 समीक्षात्मक मूल्यांकन

लुईस का सिद्धान्त कुछ निश्चित स्थितियों के अन्तर्गत अति जनसंख्या वाले अल्पविकसित देशो में लागू होता है। इसलिए इसकी कुछ मान्यताए, इसकी व्यवहार्यता को सीमाबंध करती है।

1- **मजदूरी सिद्धान्त पूँजीवादी क्षेत्र मे मे स्थिर नहीं:-** यह सिद्धान्त पूँजीवादी क्षेत्र मे उतने देर तक मजदूरी को स्थिर मानता है जब तक निर्वाह क्षेत्र से श्रम की समस्त पूर्ति खत्म नहीं होती है । परन्तु यह अवास्तविक है क्योकी अल्पविकसित देशो मे औद्योगिक क्षेत्र मे मजदूरी बदलती रहती है । यदि पूँजी संचय श्रम बचतकारी तो यह मॉडल लागू नहीं होगा:- लुईस यह मानता था कि पूँजीवादी अतिरेक उत्पादकीय पूँजी मे पुन: निवेश कर दिया जाता है । परन्तु रेनल्डस के अनुसार यदि उत्पादकीय पूँजी श्रम बचतकारी होती है तो यह श्रम को खपा नहीं सकेगी तथा सिद्धान्त लागू नहीं होगा।

2- **हर अल्पविकसित देश मे श्रम की असीमित पूर्ति नहीं होती** :- लुईस मान लेता है कि श्रम की असीमित पूर्ति है विश्व में कई अल्पविकसित देश की आबादी कम है।

3- **उद्यम तथा उपक्रम की कमी:-** लुईस का मॉडल इस धारणा पर आधारित है कि अल्पविकसित देशों में पूँजीपति वर्ग मौजूद रहता है वृद्धि की समस्त प्रक्रिया इन लोगो के हाथ मे रहती है जिसमे पूँजी संचय की आवश्यक कुशलता हो। वस्तुत: अधकांश अल्पविकसित देशों में ऐसे उद्यम तथा उपक्रम की बहुत कमी पाई जाती हैं

4- **कुल मांग की उपेक्षा:-** लुईस ने अपने क्षेत्रीय आर्थिक मॉडल मे कुल मांग की समस्या का अध्ययन नहीं किया। वह यह मान लेता है कि पूँजी क्षेत्र मे जो कुछ भी उत्पादन होता है, वह या तो उस क्षेत्र द्वारा स्वयं उपभोग कर लिया है या निर्यात कर दिया जाता है । वह इस सम्भावना का वर्णन नहीं करता की पूँजीवादी क्षेत्र अपनी वस्तुओं को निर्वाह क्षेत्र मे बेच दे।

यदि ऐसा होता तो पूँजी क्षेत्र मे कच्चे माल की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए निर्वाह क्षेत्र द्वारा अपनाई गई नई तकनीक के माध्यम से वृद्धि प्रक्रिया बहुत पहले रूक जाएगी।

5- **श्रम की गतिशलता आसान नहीं:-** उच्ची मजदूरी होने से ही अतिरेक श्रम निर्वाह क्षेत्र से पूँजीवादी क्षेत्र में नहीं जाएगा। लोगो को अपनी भूमि और परिवार से इतना लगाव होता है कि वह अपने रिश्तेदारों और घर छोड़ना पसन्द नहीं करते है।

6- **श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य नहीं होती:-**प्रो. शुल्ज इस बात से सहमत नहीं है कि अधिक जनसंख्या वाले अल्पविकसित देश मे श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है। ऐसा होता तो निर्वाह मजदूरी भी शून्य होती। वास्तविकता तो यह है कि हर श्रमिक निर्वाह आवश्यक मजदूरी अवश्य प्राप्त करता है।

7- **विषमताओ को बढ़ाया:-** प्रो. कुजनेट्स का विचार है कि लुईस का मॉडल स्वीकार करने पर अर्द्धविकसित देशों मे और विषमता बढेगी।

6.5 सारांश

इन सीमाओं के बावजुद लुईस के मॉडल का मुख्य गुण यह है कि यह बहुत स्पष्ट ढंग से विकास प्रक्रिया की व्याख्या करता है। इस द्वि-क्षेत्र मॉडल का विश्लेषणात्मक मूल्य बहुत है यह स्पष्ट करता है कि अल्पविकसित देशों मे पूँजी संचय किस प्रकार होता है जहाँ श्रम की अधिकता और पूँजी की दूर्लभता हो। साख स्फीति जनसंख्या वृद्धि, प्रद्योगिकी प्रगति तथा अन्तराष्ट्रीय व्यापार की सामान्य का अध्ययन मॉडल में यर्थातवादीता का समावेश करता है।

6.6 संदर्भ ग्रंथ

(i) डॉ. मृगेश पाण्डे- आर्थिक वृद्धि एवं विकास सिद्धान्त नीति एवं समस्याएं

(ii) M.L. झिगन- विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन

(iii) Dr. V.C. सिन्हा- आर्थिक संवृद्धि और विकास

(iv) Todaro-Smith- Economic development

(v) R.K. Lekhi- The Economics f development and Planning

6.7 निम्बन्धात्मक प्रश्न-

1. आर्थर लुईस के असीमित पूर्ति के साथ आर्थिक विकास के सिद्धान्त की आलोचनात्मक विवेचना करिए।
2. लुईस के श्रम के असीमित पूर्ति सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

इकाई – 7

फाई-रेनिस का दोहरी अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त
The Fie-Ranis theory of Dual Economy

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 मान्यताएँ

7.4 दोहरी अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त

7.5 दो क्षेत्रों के बीच संयोजकता

7.5.1 कृषि क्षेत्र

7.5.2 औद्योगिक क्षेत्र

7.6 कृषि अतिरेक

7.7 संतुलित वृद्धि

7.8 आलोचनात्मक मूल्यांकन

7.9 सारांश

7.10 संदर्भ ग्रंथ

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि —

- दोहरी अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त
- दो क्षेत्रों के बीच संयोजकता
- कृषि अतिरेक (Agriculture Surplus)
- संतुलित वृद्धि (Balanced growth)

7.2 प्रस्तावना

प्रो. लुईस के श्रम की असीमित पूर्ति के सिद्धान्त के फेल हो जाने पर फाई और रेनिस आगे आये और लुईस के सिद्धान्त मे सुधार की कोशिक की और अपने प्रसिद्ध लेख 'A Theory of Economic development' मे एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था की संक्रमण का विश्लेषण किया है कि किस प्रकार अर्द्धविकसित देश गतिहीनता की स्थिति से आत्मजनक विकास की ओर जाने की कोशिश करते है । उन्होने प्रो. लुईस द्वारा प्रस्तुत असीमित श्रम हुए अतिरिक्त श्रम वाली अर्थव्यवस्था के विकास के दो क्षेत्र-मॉडल से अपना विश्लेषण प्रारम्भ किया।

इस सिद्धान्त का सम्बन्ध अल्पविकसित श्रम-अतिरेक तथा संसाधनहींन अर्थव्यवस्था से है जिसमें अधिकतर जनसंख्या बेरोजगारी और जनसंख्या की ऊची वृद्धि दरों के बीच मे कार्यरत है । यह अर्थव्यवस्था पिछड़ी और गतिहीन है । लोग पारम्परिक कृषि व्यवसाय से जुड़े है । अर्थव्यवस्था कृषि रहित व्यवसाय पाए जाते है । किन्तु उनमें पूँजी का कम उपयोग होता है, विकास से अभिप्राय कृषि अतिरेक श्रमिको का औद्योगिक क्षेत्र को पुन: आवंटन करना है जिनका कृषि उत्पादन मे योगदान शून्य है। जहाँ वे कृषि मे संस्थानिक मजदूरी के बराबर मजदूरी पर उत्पादक बन जाते है।

7.3 मान्यताएँ

फाई और रेनिस मॉडल की भी कुछ निश्चित मान्यताएँ जो निम्न प्रकार है।

(1) यह एक दोहरी अर्थव्यवस्था है, जिनमे प्रथम परम्परागत एवं गतिहीन कृषि क्षेत्र है और द्वितीय एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र है।

(2) दोनो क्षेत्रों मे श्रमिक केवल कृषि वस्तुओं का उपभोग करता है।

(3) कृषि क्षेत्र का उत्पादन केवल भूमि तथा श्रम का फलन है।

(4) भूमि मे सुधार के अतिरिक्त कृषि में पूँजी का संचय नहीं होता है।

(5) भूमि की पूर्ति स्थिर है।

(6) कृषि कार्य मे पैमाने के स्थिर प्रतिफल पाये जाते है।

(7) यदि जनसंख्या उस मात्रा से अधिक है तो जहाँ श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य बन जाती है श्रम को कृषि क्षेत्र से बिना हानि के औद्योगिक श्रम मे स्थानान्तरित किया जा सकता है।

(8) जनसंख्या मे वृद्धि को एक बाह्य घटक के रूप मे माना जाता है।

(9) औद्योगिक क्षेत्र को केवल पूँजी तथा श्रम का फलन है । भूमि का उत्पादन के साधन के रूप मे कोई भूमिका नहीं है।

(10) औद्योगिक क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी स्थिर रहती है यह कृषि क्षेत्र की प्रारम्भिक वास्तविक आय बराबर होती है। वे इसे संस्थानिक मजदूरी कहते है।

फाई और रेनिस के मतानुसार विकास से अभिप्राय कृषि अतिरेक श्रमिक जिनकी कृषि उत्पादकता में योगदान शून्य अथवा नगण्य है उनको औद्योगिक क्षेत्र में स्थानांतरित करना है । जहाँ वे कृषि मे स्थानिक मजदूरी के बराबर मजदूरी पर उत्पादक बन जाते है । इस प्रकार फाई - रेनिस ने विकास मे तीन बाते सम्मिलित की है ।

1. अदृश्य बेरोजगार श्रमिक अर्थात् कृषि क्षेत्र मे श्रमिकों की अधिकता रहती है अत: कृषि उत्पादन मे उनका योगदान शून्य अथवा नगण्य रहता है ।
2. अर्थव्यवस्था में एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र है जिसमे अतिरेक श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की और स्थाननांतरित किया जाता है ।
3. अतिरेक श्रमिको का कृषि क्षेत्र में उत्पादन मे योगदान शून्य या नगण्य होता है । परन्तु औद्योगिक क्षेत्र में इन्हे संस्थानिक मजदूरी प्राप्त होती है, फलत: ये उत्पादक बन जाते है ।

7.4 दोहरी अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त

विकास की अवस्थाएँ Phase of Growth

ऊपर दी गई मान्यताओं के आधार फाई और रेनिस ने श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के विकास की निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ प्रस्तुत की ।

1. **प्रथम अवस्था:-** इस अवस्था मे अदृश्य बेरोजगारी, श्रमिक जो कृषि उत्पादन मे कोई योगदान नहीं दे रहे, उनको स्थिर संस्थानिक मजदूरी की दर पर, औद्योगिक क्षेत्र में स्थानांतरित कर दिया जाता है ।
2. **द्वितीय अवस्था:-**इस अवस्था मे वे कृषि श्रमिक जो कृषि क्षेत्र के उत्पादन मे वृद्धि करते है लेकिन उनकी उपज का मूल्य संस्थानिक मजदूरी से कम होता है तो ऐसे श्रमिको को औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाता है यह स्थिति चलती रही तो अंतत: ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जबकि कृषि श्रमिको के उत्पादन का मूल्य संस्थानिक मजदूरी के बराबर हो जाता है ।
3. **तृतीय अवस्था:-** द्वितीय अवस्था से तृतीय अवस्था का शुभारंभ होता है । अर्थात् द्वितीय अवस्था आत्म स्फूर्ति की अन्तिम स्थिति होती है और यही से आत्मपोषित विकास शुरू होता है । जबकि खेतिहर मजदूर संस्थानिक मजदूरी से अधिक उत्पादन करने लगते है । इस अवस्था श्रम अतिरेक समाप्त हो जाता है, और कृषि का व्यवसायीकरण हो जाता है ।

रेखाचित्र 7.1 फाई और रेनिस मॉडल

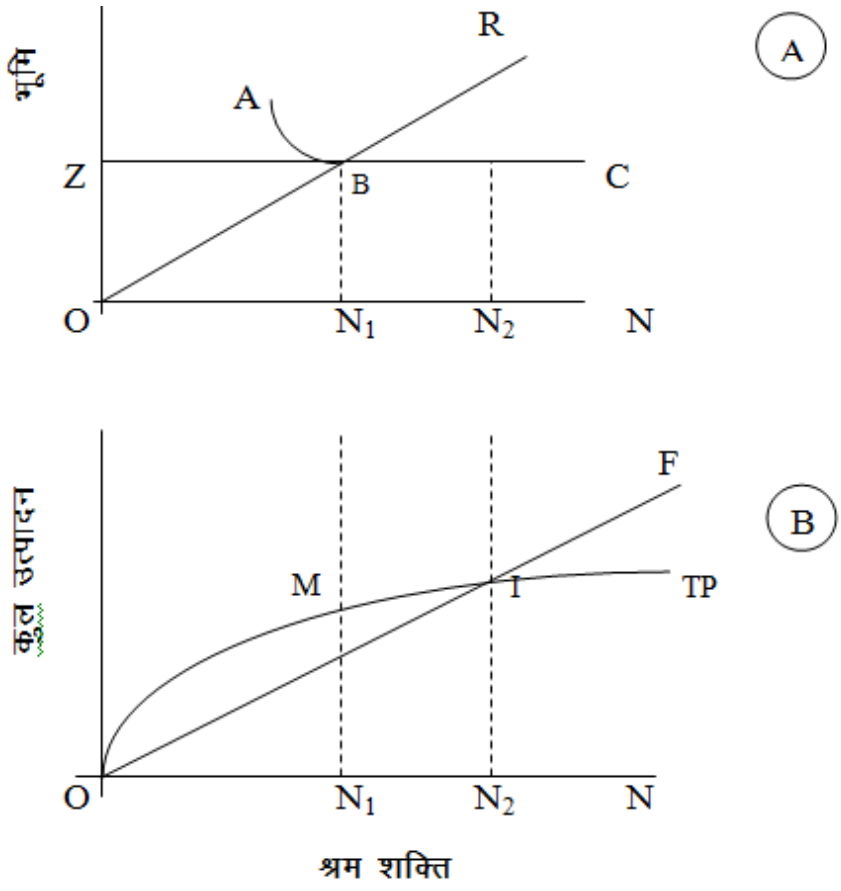

रेखाचित्र रेखाचित्र 7.1 में (A) में कृषि प्रक्रिया को प्रस्तुत किया गया कि जहाँ समाप्त भूमि (Z) द्वारा वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है श्रम को क्षेतिज अक्ष और भूमि को अनुलम्ब अक्ष पर दर्शाया गया है। रेखा OR उत्पादन की अवस्था को दर्शाता है वक्र ABC कृषि वस्तुओं की उत्पादन परिधि रेखा है। भूमि को OZ तक स्थिर मानकर, श्रम ON_1 अधिकतम उत्पादन करता है। रेखाचित्र B मे क्षेमिज अक्ष पर श्रम और लम्बवत अक्ष पर कुल उत्पादन हो दर्शाया गया है। TP वक्र श्रम की कुल उत्पादकता को प्रस्तुत करता है। यदि भूमि OZ के साथ N के बाद अधिक श्रम लगाया जाता है तो उत्पादकता मे कोई वृद्धि नहीं होगी क्योकी TP वक्र के M बिन्दू के बाद श्रम की कुल उत्पादकता स्थिर हो जाती है। यदि मान ले ON_2 कृषि मे लगी कुल श्रम शक्ति है और ON_1 कार्यरत श्रमिक है तथा N_1N_2 अतिरिक्त श्रमिक कृषि उत्पादकता मे कोई प्रभाव नहीं डालते हे उनका सीमान्त भौतिक उत्पादकता वक्र TP बिन्दू M के आगे शून्य की ओर चला जाता है इस प्रकार के श्रमिक अदृश्य बेरोजगार है।

7.5 दो क्षेत्रों के बीच संयोजकता

फाई-रेनिस ने अपने मॉडल मे कृषि और अंतनिर्भिता पर जोर दिया है और उन्होने बताया की दोनो क्षेत्रों की मजबूत संयोजकता उनमे प्रोत्साहन और गति प्रदान करेगा। यदि खेतिहर मजदूर औद्योगिक क्षेत्र को ओर जाने लगे और उद्यमी औद्योगिक क्षेत्र में ज्यादा पूँजी स्टोक और श्रम गहन तकनीक का प्रयोग कर ज्यादा श्रमिको को रोजगार प्रदान कर सकते है । यह संयोजकता कृषि और उद्योगो के बीच काम कर सकती है।

7.5.1 कृषि क्षेत्र

इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा समझा जा सकता है।

रेखाचित्र 7.2 कृषि क्षेत्र

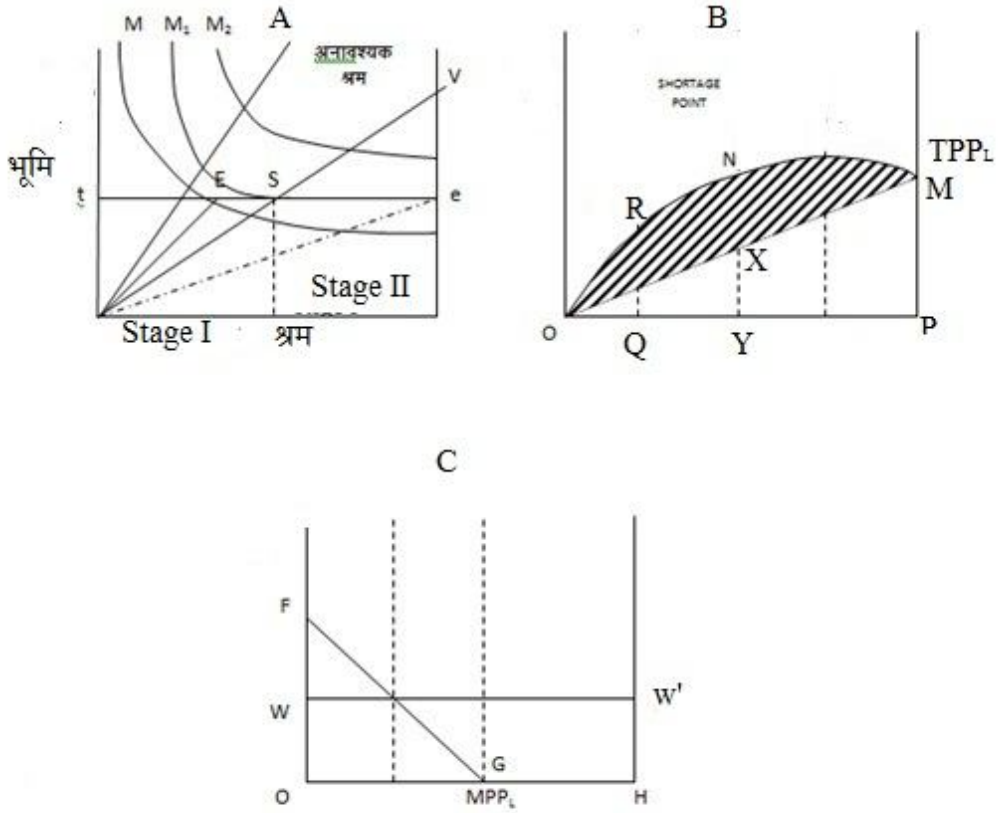

भूमि श्रम उत्पादकता फलन

रेखाचित्र (A) मे $OY -$ अक्ष पर भूमि और $OX -$ अक्ष पर श्रम को दर्शाया गया है।

OU और OV दो रिज रेखा है और रेखाचित्र मे M_1M_2 और M_3 उत्पादन Contour रेखा को प्रदर्शित करता है । जो क्षेत्र रिज रेखा द्वारा संलग्न वह क्षेत्र साधन प्रतिस्थापन क्षेत्र है जहाँ साधनो को आसानी से प्रतिस्थापित किये जा सकते है। आगे हम इसके परिणाम देखते है।

रेखाचित्र A मे te के बराबर श्रम संख्या है कुल श्रम कृषि क्षेत्र मे। रिज रेखा OV उत्पादन वक्र M को बिन्दू S पर काटती है उसके बाद का भाग OV के नीचे पूर्णतया क्षेतिज है।

उत्पादन वक्र का क्षेतिज भाग यह व्यक्त करता है साधन प्रतिस्थापन के बाहर क्षेत्र जहाँ उत्पादन बन्द है और श्रमिक बैकार हो जाते है क्योंकि श्रमिको मे वृद्धि हो रही और भूमि की सीमित मात्रा है।

यदि ot के बराबर कुल भूमि है ts के बराबर श्रमिको को रोजगार दिया जा सकता है es कृषि क्षेत्र मे अनावश्यक श्रमिकों व्यक्त करती है फाई-रेनिस ने इसे लेकर श्रम उपयोग अनुपात की अवधारणा को विकसित किया है । उन्होने श्रम इकाइयों को व्यक्त किया जो वे भूमि कि प्रति इकाई उत्पादकता को व्यक्त करता है अत: श्रम उत्पादकता अनुपात को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

$$R = \frac{ts}{ot}$$

जो की रिज रेखा OV के उल्टे ढाल के बराबर है।

फाई और रेनिस ने सम्पन्नता अनुपात (Endowment radio) को विकसित किया जो दो साधनों की सापेक्ष उपलब्ध को मापता है । इसे प्रकार ot कृषि भूमि को व्यक्त करता है एवं tE कृषि श्रमिको को तब सम्पन्नतानुपात दिया हुआ है

$$S = \frac{tE}{ot}$$

जो की oE रेखा के उल्टे ढाल के बराबर है वास्तविक बिन्दू सम्पन्नता का E दिया गया है।

अन्तत: फाई रेनिस ने गैंर अनावश्यक गुणांक T विकसित किया जो है।

$$T = \frac{ts}{te}$$

ये तीन अवधारणा सहायक है T, R और S के बीच सम्बन्ध स्थापित करने मे

$$T = \frac{\frac{ts}{ot}}{\frac{te}{ot}} = \frac{R}{S} \quad or \quad T = \frac{R}{S}$$

यह गणितीय सम्बन्ध सिद्ध करता है गैर अनावश्यक गुणांक का श्रम उत्पादकता के साथ सीधा और सम्पन्नता अनुपात के साथ ऋणात्मक सम्बन्ध है । रेखाचित्र B मे TPP_L श्रम की कुल भौतिक उत्पादन को व्यक्त करता है जो घटति हुई दर से बढ़ रहा है जिसका अर्थ है, भूमि के एक निश्चित भाग श्रम की अधिक इकाइयां जोड़ी जा रही है । बिन्दू N पर वक्र का आकार क्षेतिज हो

जाता है यह बिन्दू N जो रेखाचित्र (C) मे G बिन्दू के साथ जड़ा है (सीमान्त भौतिक उत्पादकता TPP_L को व्यक्त करता है) और रेखाचित्र A मे रिज रेखा OV के बिन्दू S से जुड़ा है।

7.5.2 औद्योगिक क्षेत्र

कृषि क्षेत्र के समान, फाई-रेनिस ने औद्योगिक क्षेत्र मे पैमाने के स्थिर प्रतिफल माना है। इस प्रकार उत्पादन के मुख्य साधन श्रम और पूँजी है जिसे रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट विस्तार पथ किया जा सकता है।

रेखाचित्र 7.3 औद्योगिक क्षेत्र

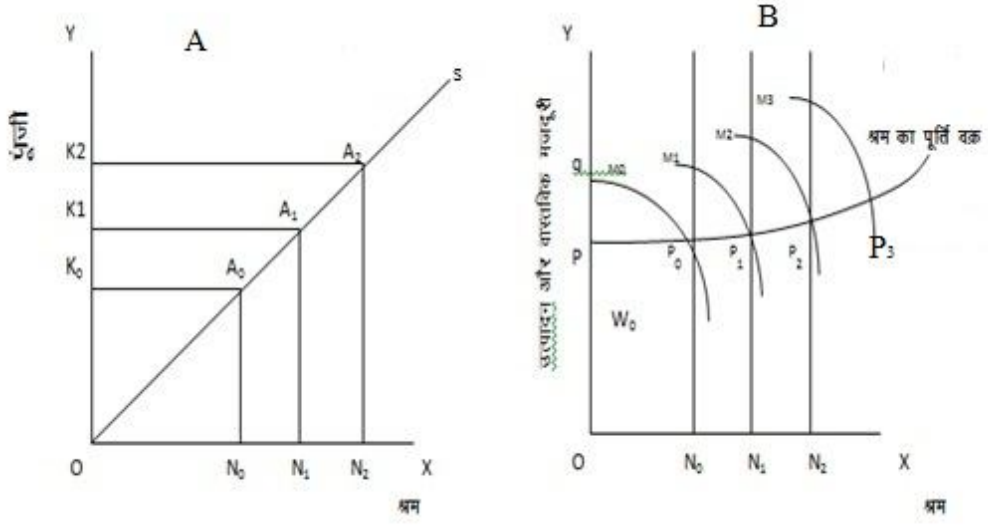

रेखाचित्र में क्षेतिज अक्ष पर श्रम और लम्बवत अक्ष पर पूंजी को दर्शाया गया है। औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार पथ $A_{0,}A_{1,}A_{2,}$ रेखा द्वारा दिया गया है। जैसे पूँजी मे $K_{0,}K_1$ और K_2 वृद्धि होती और श्रम मे वृद्धि $N_{0,}N_1$ और N_2 होती है औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि जो उत्पादन समोच्च रेखा $A_{0,}A_{1,}A_{2,}$ के अनुसार होती है।

मॉडल के अनुसार, औद्योगिक क्षेत्र मे श्रम पूर्ति का मुख्य क्षेत्र कृषि क्षेत्र है क्योंकि कृषि क्षेत्र मे श्रम अतिरेक है।

रेखाचित्र (B) मे श्रम का पूर्ति वक्र दर्शाया गया है $P0, P1, P2$ भाग एक क्षेतिज के समान सीधी रेखा है और कृषि क्षेत्र के अनावश्यक श्रम को औद्योगिक क्षेत्र के श्रम एवं अनावश्यक श्रम के साथ क्षेतिज अक्ष पर मापा गया है और वास्तविक मजदूरी को लम्बवत अक्ष पर। कृषि क्षेत्र मे श्रम अतिरेक कि वजह से वास्तविक मजदूरी स्थिर रहती है परन्तु श्रम का पूर्ति वक्र बिन्दू P_2 के बाद ऊपर की और ढाल का हो जाता है। ऊपर की ओर का भाग यह इंगित करता है कि अतिरिक्त श्रम की पूर्ति की जायेगी केवल साथ मे उनके अनुरूप वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि है।

श्रम का सीमान्त उत्पादकता वक्र MPP_L पूँजी श्रम के स्तर के अनुरूप M_0, M_1, M_2 और M_3 खिचा गया है । जब पूँजी स्टॉक K_0 से K_1 तक वृद्धि होती तो श्रम की सीमान्त उत्पादकता मे भी M_0 से M_1 तक वृद्धि होती है । जब पूँजी स्टॉक K_0 है तो MPP_L वक्र श्रम के पूर्ति वक्र को P_0 साम्य बिन्दू पर काटता है । इस बिन्दू पर कुल वास्तविक आय W_0 है जो छांयाकृत क्षेत्र $O\,N_0P_0P$ का प्रतिनिधित्व करता है। λ लाभ साम्य जो qPP_0 क्षेत्र द्वारा दर्शाया गया है।

अत: श्रमिक के पास बहुत कम आय है वे मुश्किल से बचत कर पाते है अत: औद्योगिक क्षेत्र का लाभ औद्योगिक क्षेत्र मे निवेश का भाग बनता है।

$$K_1 = C_0 + S_0 + \pi_0$$

K_1 = नया पूंजी स्टॉक

S_0 = ग्रामीण क्षेत्र की बचत , $S_0 + \pi_0$= आद्यौगिक क्षेत्र का कुल निवेश फंड

7.6 कृषि अतिरेक (Agriculture Surplus)

कृषि अतिरेक को हम सामान्यत: समझ सकते है कि अतिरिक्त उत्पादकता जो समाज की आवश्यक पूर्ति के बाद शेष रह जाता है जिसे या तो निर्यात कर दिया जाता या भविष्य के लिए सुरक्षित रख लिया जाता है। कृषि बचत को निम्न रेखाचित्र की सहायता समझ सकते है।

रेखाचित्र 7.4 कृषि अतिरेक

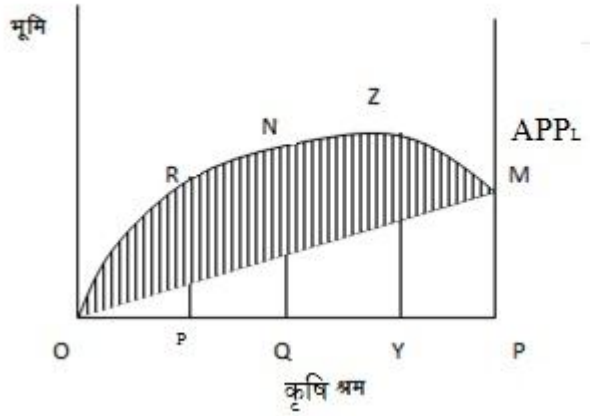

रेखाचित्र 7.4 मे OX अक्ष पर श्रम और OY अक्ष पर भूमि को दर्शाया गया है । रेखाचित्र मे कुल कृषि श्रमिको औसत भौतिक उत्पादकता (AAP_L) को दर्शाया गया है उन्होने परिकल्पित किया कि यह वास्तविक मजदूरी के बराबर होगा। यह कृषि क्षेत्र कि कुल जनसंख्या के कुल उत्पादकता के मूल्य के बराबर है । जो हम प्राप्त करते $AAP_L = \frac{MP}{OP}$ जो रेखाचित्र मे OM रेखा के ढाल के बराबर है । अब हम रेखाचित्र के बिन्दू Y का निरक्षण करते है जो बिन्दू के बांये स्थित है । कुल

कृषि श्रमिक (OP) मे से PQ अनावश्यक कृषि श्रमिको को हटाया गया इन्हे औद्योगिक क्षेत्र मे लगा दिया है । बाद श्रम शक्ति कृषि क्षेत्र मे रह गयी जिसे Y बिन्दू द्वारा दर्शाया गया है । अब जो उत्पादन कृषि श्रमिको द्वारा उत्पादित किया गया है जो YZ के बराबर है । और वास्तविक मजदूरी जो श्रम शक्ति को दी गयी है XY जो अन्तर है $YZ - XY = ZX$ यह कृषि क्षेत्र अतिरेक अर्थव्यवस्था है । औद्योगिक क्षेत्र को विकसित करने के लिए यह ग्रामीण क्षेत्र की छिपी हुई बचत है ।

7.7 संतुलित वृद्धि (Balanced growth)

फाई और रेनिस ने बताया है कि उनका मॉडल उत्कर्ष प्रक्रिया के दौरान की क्षेत्रों को पुरा करता है सन्तुलित वृद्धि के लिए कृषि और औद्योगिक दोनो क्षेत्रों मे निवेश की आवश्यकता है जिसे निम्न रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट किया जाता सकता है।.

रेखाचित्र 7.5

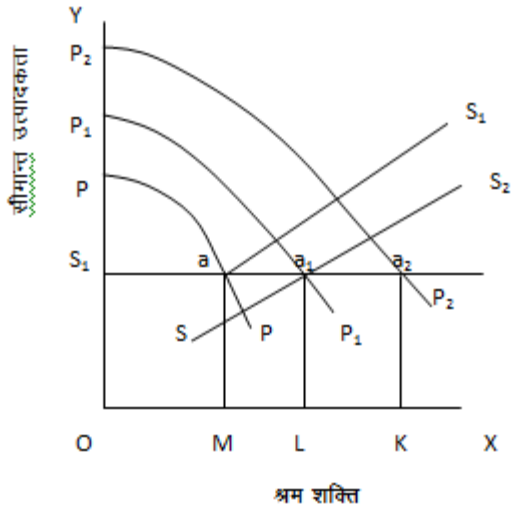

रेखाचित्र 7.5 मे श्रम का **PP** प्रारम्भिक मांग वक्र तथा SS श्रम का प्रारम्भिक पूर्ति वक्र है ये दोनो वे बिन्दू पर काटते है जहाँ OM श्रम शक्ति औद्योगिक क्षेत्र मे लगी रोजगार के इस स्तर पर औद्योगिक क्षेत्र S_1ap के बराबर लाभ होता है । यह लाभ उत्कृष्ट प्रक्रिया के दौरान अर्थव्यवस्था का उपलब्ध कुल निवेश कोष है । इस कोष का एक भाग कृषि क्षेत्र मे आंवटित किया जाता है । जिससे कृषि की उत्पादकता में वृद्धि होती है । श्रम का पूर्ति वक्र औद्योगिक क्षेत्र मे दांये और S_1S_1 से S_2S_2 तक स्थानान्तरित होता है निवेश का शेष बचा हुआ भाग औद्योगिक क्षेत्र को आंवटित किया जाता है जिससे औद्योगिक क्षेत्र का मांग वक्र दांयी और PP से P_1P_1 तक स्थानान्तरित करता है । सन्तुलित वृद्धि पथ S_1a पर स्थित बिन्दू a_1 पर S_1S_1 तथा P_1P_1 काटते है । कृषि क्षेत्र को निवेश कोष के आंवटन के कारण कृषि उत्पादकता मे वृद्धि होने से जो कृषि द्वारा श्रम शक्ति ML

छोड़ी गयी वह a_1 पर औद्योगिक क्षेत्र द्वारा काम मे लगाई जाती है । रेखाचित्र मे दिखाई गई औद्योगिक क्षेत्र मे लगाई गई श्रम शक्ति ML जो कृषि क्षेत्र मे छोड़ी गई श्रम शक्ति ML के बराबर दिखाई गई है । इस प्रकार समय पर्यन्त निवेश कोष दोनो क्षेत्रों को लगातार आंवटित किये जाते है तो अर्थव्यवस्था संतुलित वृद्धि पथ पर चलेगी किन्तु प्राय यह सम्भावना रहती है कि समय-समय पर वास्तविक वृद्धि पथ संतुलित पथ पर विचलित हो जाता है । फिर भी इस प्रकार का विचलन बराबर करने वाली संतुलित शक्तियां लाएगा जो इसे संतुलित वृद्धि पथ पर लाने की प्रवृति रखती है ।

7.8 आलोचनात्मक मूल्यांकन

फाई और रेनिस का मॉडल लुईस के मॉडल पर एक सुधरा हुआ रूप है । लुईस का मॉडल केवल औद्योगिक क्षेत्र पर केन्द्रित था कृषि क्षेत्र की उपेक्षा करता था लेकिन फाई-रेनिस का मॉडल दोनो क्षेत्रों के परस्पर प्रभाव को दर्शाता है । इस सिद्धान्त की मुख्य श्रेष्ठता यह है कि यह अल्पविकसित देशो मे पूँजी संचय के लिए कृषि वस्तुओं के महत्व को प्रकट करता है ।

इन श्रेष्ठताओं के बावजूद यह मॉडल भी आलोचनाओं से अछुता नहीं है जो निम्न है-

(1) भूमि की पूर्ति का स्थिर न होना:- फाई रेनिस अपने मॉडल मे यह धारणा लेकर चलते है कि विकास प्रक्रिया के दौरान भूमि की पूर्ति स्थिर होती है । लेकिन दिर्घकाल मे भूमि की पूर्ति स्थिर नहीं रहती है ।

(2) **संस्थानिक मजदूरी का MPP से अधिक न होना**:- यह मॉडल यह मानकर चलता है कि विकास प्रक्रिया की अवस्था I तथा II के दौरान संस्थानिक मजदूरी स्थिर होती है तथा MPP से ऊँची होती है । लेकिन वास्तव में श्रम अतिरेक अल्पविकसित देशों मे कृषि श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी MPP से काफी होती है ।

(3) **कृषि का व्यापारिकरण स्फीति उत्पन्न करता है**:- इस सिद्धान्त के अनुसार जब कृषि तृतीय अवस्था मे प्रवेश करता है तो व्यापारिकरण हो जाता हैं। किन्तु अर्थव्यवस्था की सरल आत्मजनिक वृद्धि की ओर जाने की सम्भावना नहीं रहती क्योंकि स्फीतिकारी दबाव प्रारम्भ हो जाते है । जब अनेक श्रमिक औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित हो जाते है । इस दौरान संस्थानिक मजदूरी श्रमिको की MPP के बराबर होती है । और इस प्रकार कृषि उत्पाद की कमी हो जाती है । ये सभी तथ्य अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव पैदा करते है ।

(4) **श्रमिको की सीमान्त भौतिक उत्पादकता शून्य नहीं:-** फाई और रेनिस मानते है कि भूमि की स्थिर मात्रा के साथ जनसंख्या का एक बहुत बड़ा आकार होगा जो कि MPP को शून्य बनाएगा। शुल्ज इस बात से सहमत नहीं है कि श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था मे MPP शून्य है । उनके अनुसार ऐसा होता तो स्थानिक मजदूरी शून्य होती है ।

(5) **बंद अर्थव्यवस्था:-** फाई-रेनिस का मॉडल बंद अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है जहाँ विदेशी व्यापार नहीं होता है । यह मान्यता इस कारण से अवास्तविक है क्योंकि अल्पविकसित

देश बंद अर्थव्यवस्था न होकर खुली अर्थव्यवस्थाएँ है जहाँ कृषि वस्तुओं की कमी होने पर आयात की जाति है।

7.9 सारांश

फाई-रेनिस के श्रम अतिरेक मॉडल की कमियों के बावजुद भी इसका महत्व कम नहीं हुआ। अपितु यह सिद्धान्त अल्पविकसित देशों कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों मे परस्पर प्रभावों की विकास प्रक्रिया का उत्कृष्ट ढंग से विश्लेषण किया है।

7.10 संदर्भ ग्रंथ

- एम.एल. झिगन- विकास का अर्थव्यवस्था एवं आयोजन
- डॉ. मृगेश पाण्डे- आर्थि वृद्धि एवं विकास सिद्धान्त नीति एवं समस्या
- डॉ. V.C. सिन्हा- आर्थिक संवृद्धि और विकास
- R.K. Lekhi- The Economic development and planning

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1 आर्थर लुईस के असीमित पूर्ति के साथ आर्थिक विकास मॉडल का परीक्षण कीजिए तथा इस संदर्भ में रेनिस और फाई के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

2 फाई तथा रेनिस सिद्धान्त की संपेक्ष मे व्याख्या कीजिए? यह लुईस के असीमित पूर्ति सिद्धान्त के किस प्रकार श्रेष्ठ है।

इकाई - 8

जॉन राबिन्सन का पूँजी संचय सिद्धान्त
John Robinson theory of Capital Accumulation

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 सिद्धांत की मान्यताएं
8.3 मॉडल का विश्लेषण
8.4 स्वर्ण युग का विचार
8.5 स्वर्णयुग से विचलन
8.6 स्वर्ण युग की विभिन्न किस्मे
8.7 संचय की इच्छित दर
8.8 मॉडल की कमियाँ
8.9 मॉडल की अल्पविकसित देशो व्यवहार्यता
8.10 संदर्भ ग्रंथ
8.11 कुछ निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्न बिन्दुओं को समझ सकेंगें -

मॉडल का विश्लेषण

- स्वर्ण युग का विचार The concept of Golden Age
- स्वर्णयुग से विचलन Divergence from Golden Age
- स्वर्ण युग की विभिन्न किस्मे
- संयच की इच्छित दर
- मॉडल की कमियाँ
- मॉडल की अल्पविकसित देशो व्यवहार्यता

8.1 प्रस्तावना

श्रीमती जॉन राविन्सन जो कि मूल प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री है उन्होने हेरोड-डोमर तथा कीन्स की शब्दावलियों का प्रयोग करके प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र विकास सिद्धान्त प्रस्तुत किया जो उनकी पुस्तक The Accumulation of Capital (1956) तथा "Asses in the theory of economic growth" मे विस्तृत रूप् से वर्णित हैं श्रीमती राबिन्सन ने अपने सिद्धान्त का निर्माण पूंजीवादी खेल के नियमों के आधार पर ही किया है।

राबिन्सन ने प्रतिष्ठित मूल्य स्व वितरण सिद्धान्त को कीन्स के बचत-विनियोग सिद्धान्त के साथ सम्बन्धित करते हुए आर्थिक वृद्धि का विश्लेषण किया। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों कार्ल मार्क्स, शुम्पीटर, हैरोड तथा डोमर इत्यादि द्वारा प्रस्तुत किये गये विकास मॉडल विकसित अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ मे लागु होते है । अर्द्धविकसित देशो के सन्दर्भ मे इस प्रकार के विकास मॉडल की आवश्यकता हे जिसमें जनसंख्या वृद्धि का विकास पर प्रभाव और जनसंख्या वृद्धि का आय, आय वितरण, बचतो, पूंजी निर्माण आदि पर पड़ने वाले प्रभावों का भी विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। राबिन्सन का मॉडल आर्थिक विकास के जनसंख्या वृद्धि के घटक को स्वीकार करते हुए, पूंजी संचय की दर और उत्पादनप वृद्धि पर जनसंख्या के प्रभावों का विश्लेषण करता हैं विकास की और अग्रसर अर्थव्यस्था में जनसंख्या वृद्धि की समस्या तथा इसके पूँजी निर्माण और उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का श्रीमती राबिन्सन ने अपने मॉडल मे विवरण प्रस्तुत किया है। उन्होने अपने मॉडल का विकास विशेष रूप से दो मौलिक तत्वों पर आधारित किया है।

(अ) पूंजी निर्माण आय के वितरण के तरीके पर निर्भर करता है।

(ब) श्रम के प्रयोग की दर पूंजी और श्रम के प्रयोग पर निर्भर करती है।

8.2 सिद्धांत की मान्यताएं

1. एक बन्द अर्थव्यवस्था
2. दिये हुए उत्पाद का उत्पादन करने के लिए पूंजी तथा श्रम स्थिर अनुपातों मे लगाये जाते है।
3. श्रम और पूंजी दो उत्पादन के साधन है यह व्यक्त करता है राष्ट्रिय उत्पाद इन दोनो के संयुक्त प्रयास फल है।
4. कुल वास्तविक आय का वितरण श्रमिकों एवं उद्यमियों के दो वर्गो मे होता हैं।
5. कुल आय पूंजी और श्रम के बीच बांटी जाती है क्योंकि ये दोनो उत्पादन के साधन है।
6. उत्पादन तकनीकी प्रगति से प्रभावितनहीं होता है।
7. कीमत स्तर को स्थिर माना है।
8. श्रमिक कुछ बचत नहीं करते और अपनी-अपनी मजदूरी आय को उपभोग पर व्यय करते है ।
9. राष्ट्रीय आय मजदूरी और लाभ का जोड़ है।

10. श्रम की कोई दुर्लभता नहीं है उद्यमी चाहे जितना श्रम उपयोग में ले सकता हैं।
11. उद्यमी अपभोग कुछ नहीं करता परन्तु पूंजी निर्माण के लिए अपनी सम्पूर्ण आय को बचत और निवेश करता है।

8.3 मॉडल का विश्लेषण

इस मॉडल मे उत्पादन के दो ही साधन है पूंजी एवं श्रम अतः राष्ट्रिय आय मजदूरी और लाभ का योग है। कुल मजदूरी वास्तविक मजदूरी है जो रोजगार मे लगे श्रमिकों का गुणफल है। दूसरी ओर कुल लाभ, लाभ का दर एवं पूंजी की राशि के गुणाफल के बराबर होता है।

$$Y=WN+PK$$

Y= शुद्ध राष्ट्रिय आय

W= वास्तविक मजदूरी दर, N= रोजगार मे लगे श्रमिक

P= लाभ की दर, K= पूँजी की मात्रा

लाभ की दर जो पूँजी का आधार है का मान निम्न सूत्र द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

$$P=\frac{Y-WN}{K} = \frac{\text{राष्ट्रिय आय} - \text{कुल मजदूरी बिल}}{\text{पूँजी की मात्रा}}$$

इसी प्रकार मजदूरी की दर

$$W=\frac{Y-PK}{N}$$

इस प्रकार लाभ की दर मजदूरी घटाने बाद कुल आय और पूंजी की मात्रा का अनुपात है। लाभ की दर के समीकरण से स्पष्ट होता है।

(अ) यदि मजदूरी की दर यथावत् रहे, परन्तु आय किसी कारण से, जैसे श्रमिको की उत्पादकता से बढ़ जाये।

(ब) आय पूर्ववत् रहे मजदूरी घट आये।

(स) पूँजी श्रम अनुपात में कमी आ जाये।

श्रम की मांग देश मे उपलब्ध पूंजी की मात्रा पर निर्भर करतीहै। पूंजी से वृद्धि लाभ की दर पर निर्भर करती है लाभ की दर श्रम की उत्पादकता और मजदूरी की दर पर निर्भर करती है। श्रीमती राबिन्सन का यह मॉडल व्यय पक्ष की दृष्टि से कीन्स की धारणा को लेकर आगे बढ़ता है।

$$Y=C+I$$

राबिन्सन ने न्यूमेन की धारणा के अनुसार मजदूरी में से बचत को शून्य माना है (क्योंकि मजदूर उपभोग के सिवा बचाने का काम नहीं करते है) और बचत उद्यमियों द्वारा की जाती है (क्योंकि वे लाभों का व्यय न करके निवेश करते हैं।)

इसलिए

$$S=I$$

इस बचत-निवेश सम्बन्ध के समीकरण को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

$$S=I \text{ तथा } I=\Delta K$$

$I=\Delta K$ या $P=\frac{\Delta K}{K}$ ($\Delta K=$ वास्तविक पूंजी मे वृद्धि)

चूँकि $S=I$

उपर्युक्त समीकरण इस बात से स्पष्ट करता है कि पूँजी संचय की दर $\frac{\Delta K}{K}$ आर्थिक विकास का प्रमुख द्योतक है। चूंकि पूंजी की वृद्धि की दर लाभ की दर (P) के बराबर होती है यह उन्ही घटकों पर निर्भर करती है जो लाभ की दर को प्रभावितकरते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है।

1. कुल बचते (S) कुल निवेश (I) के बराबर होती है।
2. बचतें लाभ की दर के बराबर होती है।
3. विनियोग पूंजी वृद्धि के बराबर होती है।
4. पूंजी वृद्धि दर, लाभ दर के बराबर होती है।

8.4 स्वर्ण युग का विचार (The concept of Golden Age)

श्रीमती राबिन्सन ने आर्थिक वृद्धि पर जनसंख्या के प्रभाव की व्याख्या की। उन्होने स्पष्ट किया कि पूँजी की वृद्धि दर ($\Delta K/K$) के अतिरिक्त अर्थव्यस्था की विकास दर जनसंख्या वृद्धि दर $\Delta N/N$ द्वारा निर्धारित होती है।

जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण श्रम शक्ति मे वृद्धि होती है और यदि पूंजी मे तद्रूरूप वृद्धि नहीं होती है तो श्रम की उत्पादकता कम हो जाती है क्योंकि प्रति श्रमिक पूंजीगत साधन कम उपलब्ध हाते है। इस परिस्थिति मे यदि वास्तविक मजदूरी की दर स्थिर रहे तो लाभ मे कमी आयेगी जिसके परिणामस्वरूप पूंजी की पूर्ति एवं श्रम की पूर्ति मे अन्तर बढ़ जायेगा जिससे बेरोजगारी मे अन्तर आयेगा।

अतः अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति उस समय सम्भव है जब जिस दर से जनसंख्या मे वृद्धि हाती है उसी के समान पूंजी की वृद्धि दर भी हो

$$\frac{\Delta N}{N} = \frac{\Delta K}{K}$$

ΔN = जनसंख्या की वृद्धि दर

ΔK = पूंजी की वृद्धि दर

इस अवस्था राबिन्सन ने स्वर्ण युग की संज्ञा दी। स्वर्ण युग का अस्तित्व पूर्ण रोजगार का संकेत है। स्वर्ण युग की अवधारणा व्यक्त करती है वहाँ वास्तविक, अभिष्ट और प्राकृतिक वृद्धि बराबर होनी चाहिए। इसे रेखाचित्र 8.1 द्वारा व्यक्त किया जाता है।

रेखाचित्र 8.1

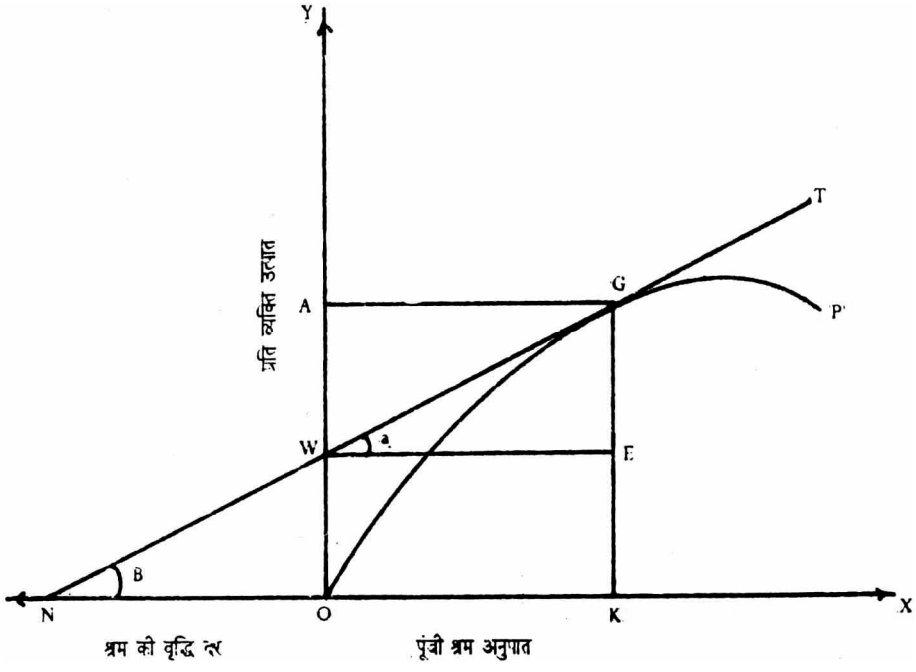

रेखाचित्र 8.1 में आधार रेखा X पर पूजा-श्रम अनुपात (K/N) अर्थात् θ माप है, तथा लम्ब रेखा y पर प्रति-व्यक्ति उत्पाद की माप है! श्रम-शक्ति (जो जनसंख्या-वृद्धि पर निर्भर है) की वृद्धि-दर आधार रेखा पर O की बांयी ओर मापी गयी है। वक्र OP उत्पादन फलन दर्शाता है। इस OP वक्र पर प्रत्येक बिन्दु पूंजी का श्रम से अनुपात दर्शाता है।

पूंजी-श्रम अनुपात तथा मजदूरी और लाभ का सबंध ज्ञात करने के लिये हम NT त्रिज्या खीचते है, जो OP वक्र को G बिन्दु पर छूती है तथा लम्ब रेखा OY को W पर काटती है। रेखाचित्र में बिन्दु G उस पूंजी-श्रम अनुपात को बताता है जो स्वर्णावस्था की स्थिति में होगा जिसकी माप OK है। इस स्थिति में प्रति व्यक्ति उत्पाद OA है। इस प्रति व्यक्ति उत्पाद OA मे से OW मजदूरी दी गयी है तथा शेष WA (अथवा EG) आधिक्य है जो पूंजी की लाभ-दर है।

रेखा चित्र यह भी सिद्ध करता है कि $\Delta K / K = \Delta N / N$ है। अर्थात् पूंजी की वृद्धि दर $\Delta K / K$ बराबर है श्रम (जनसंख्या) की वृद्धि दर $\Delta N / N$ के। यहां EG / EW दर्शाता है $\Delta K / K$ तथा OW / ON दर्शाता है $\Delta N / N$ को।

$$\tan\alpha = \tan\beta$$

अतएव, EG/EW = OW/ON

अतएव, $\Delta K / K = \Delta N / N$

समान श्रम की वृद्धि दर $\frac{\Delta N}{N}$, पूंजी की वृद्धि दर $\frac{\Delta K}{K}$

8.5 स्वर्णयुग से विचलन (Divergence from Golden Age)

यदि अथव्यवस्था में स्वर्णयुग मे कभी कभी सन्तुलन बिगड़ जाता है इसके दो कारण है।

(i) $\frac{\Delta N}{N} > \frac{\Delta K}{K}$ (ii) $\frac{\Delta N}{N} < \frac{\Delta K}{K}$

1. यदि जनसंख्या वृद्धि दर पूंजी संचय से अधिक हो $\frac{\Delta N}{N} > \frac{\Delta K}{K}$:-

इस प्रकार की स्थिति अल्प विकसित देशो मे उत्पन्न होती है। असाम्य की स्थिति के उत्पन्न होने पर यदि देश मे श्रम की अधिकता है तो शीघ्र ही मौद्रिक मजदूरी को कम कर कदेगी ⟶ जिसके फलस्वरूप वास्तविक मजदूरी कम हो जायेगी ⟶ वास्तविक मजदूरी कम होने पर लाभ की दर बढ़ेगी ⟶ जो पूँजी संचय की दा को बढ़ाकर जनसंख्या स्तर पर ले जायेगी। मुद्रा मजदूरी की दृढ़ता के कारण अथवा इस कारण कीमत स्तर उसी अनुपात मे गिरता है जितनी के मुद्रा मजदूरी, यदि वास्तविक मजदूरी कम नहीं होती है, तो सन्तुलनकारी कम नहीं करेगा। स्वर्ण युग सन्तुलन पुनः स्थापित नहीं हो सकेगा और अल्प रोजगार कायम रहेगा।

2. यदि पूँजी संचय की दर जनसँख्या की वृद्धि दर से अधिक है $\frac{\Delta K}{K} > \frac{\Delta K}{N}$:-

इस प्रकार की समस्या विकसित देशो मे उत्पन्न होती हैं तो असन्तुलन की इस स्थिति को तकनीकी परिवर्तनो, जैसे- पूँजी श्रम अनुपात या उत्पादकता मे वृद्धि करके अथवा समस्त उत्पादन फलन को बदल कर पुनः सन्तुलन मे लाया जा सकता है। इसका कारण, जैसे-जैसे पूँजी संचय बढ़ता है वैसे-वैसे श्रम की मांग बढ़ती है। राबिन्सन के अनुसार स्वर्ण युग पाच साम्य पर वापस आने की सम्भावना विकसित देशो मे अल्पविकसित देशो के बजाय अधिक है।

8.6 स्वर्ण युग की विभिन्न किस्मे

श्रीमती राबिन्सन ने 'Essay in the theory of Economic Growth' भिन्न स्वर्ण युग एवं प्लेटिनम युगो का वर्णन किया।

(1) लगड़ा स्वर्ण युग (Limping Golden Age)

लगड़ा स्वर्ण युग की अवस्था में पूंजी संचय की सतत् दर पूर्ण रोजगार से स्तर से निम्न होती है। पूंजी स्टॉक की वृद्धि दर श्रम शक्ति की वृद्धि दर से नीचे है। लगड़ेपन की गहनता विभिन्न अंगो में सम्भव है जो रोजगार बनाम श्रम शक्ति में होने वाली वृद्धि या कमी पर निर्भर करती है। यदि रोजगार का स्तर श्रम शक्ति के आकार की तुलना मे कम वृद्धि हो तब बेरोजगारी में वृद्धि की दशा

उत्पन्न हो जाएगी। दूसरी तरफ रोजगार का स्तर श्रम शक्ति के आकार से अधिक है तो रोजगार की अधिक सम्भावना होगी।

(2) लीडन स्वर्ण युग (Leaden Golden Age)

ऐसी अवस्था है जिसमे बेराजगारी का अनुपात पूंजी संचय की कमी के कारण बढ़ता है। जिसके परिणामस्वरूप श्रमिकों के जीवन स्तर में गिरावट उत्पन्न होती है जब तक रोजगार प्राप्त श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि नहीं होती जीवन-स्तर में गिरावट जारी रहेगी। पूँजी संचय कि निम्न दर के कारण जीवन-स्तर मे गिरावट आना वृद्धि के मार्ग मे अवरोध उत्पन्न करता है।

(3) प्रतिबंधित स्वर्ण युग:-

यह पूर्ण रोजगार अवस्था है लेकिन इसमें संचय की वांछित दर संचय की सम्भा वित्तदर से अधिक होने की प्रवृति रखती है। लेकिन संचय की वांछित दर को प्राप्त किया जाना सम्भव नहीं है। क्योंकि प्रति उत्पादन की वृद्धि दर इतनी प्रर्याप्त नहीं होती यह अवस्था प्राप्त हो सके। अतः संचय की दर को रोकना आवश्यक हो जाता है। यदि इसे वित्तीय नियन्त्रणों के द्वारा सुधारा जाए तब भी अल्प-कालीन स्थायित्व प्राप्त करना सम्भव नहीं होता है।

(4) सरपट दौड़ता प्लेटिनम युग:-

यह अर्थव्यवस्था की एक ऐसी दशा है जब लाभ की दर बढ़ रही है उत्पादन की पूंजी गहनता में वृद्धि हो रही है लेकिन बेरोजगारी विद्यमान हो। लेकिन पूंजी संचय की दर निम्न से उच्च स्तर की और वृद्धि हो रही हैं। तो लाभ की दर में वृद्धि साथ ही वास्तविक मजदूरी दर कम हो जाती है। इसका परिणाम रोजगार की रदरन मे वृद्धि करने के लिए निवेश करने के लिए उत्पादन की निम्न तकनीक का चुनाव करते है।

(5) रेंगता हुआ प्लेटिनम युग:-

रेंगता हुआ प्लेटिनम युग एक ऐसी दशा को व्यक्त करता है जो पूर्ण रोजगार से सम्बन्धित है, जहाँ की गहनता लगातार बढ़ती चली जाती है इस दशा मे बढ़ते हुए रोजगार अवसरों की पूर्ति हेतु श्रम शक्ति पर्याप्त वृद्धि नहीं होती है।

8.7 संचय की इच्छित दर

राबिन्सन ने संचय की इच्छित और संचय की सम्भव दर के बीच सम्बन्ध स्थापित किया है इच्छित वृद्धि दर संचय की दर है जो निम्न स्थिति मे कम अपने आपको पाती है उसी मे संतुष्ट बनाए रखती है।

इसके बीच सम्बन्ध बनना जरूरी है कि '' इच्छित वृद्धि दर संचय की दर के कारण जो लाभ की दर होती और उस द्वारा निर्धारित होती है तथा संचय की दर लाभ की दर द्वारा प्रेरित होती है। इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

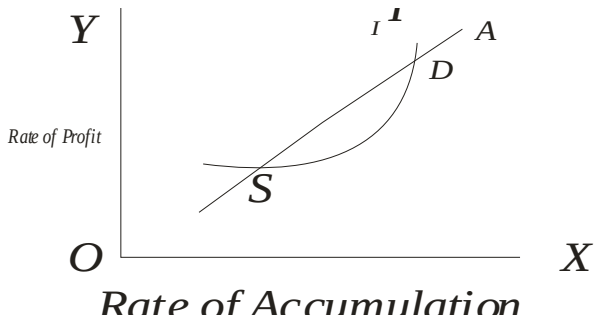

रेखाचित्र मे वक्र A लाभ की सम्भावित्तदर को व्यक्त करता है जो संचय की दर का फलन हैं

वक्र I संचय की दर को व्यक्त करता है जो लाभ का फलन है। जो लाभ का फलन है। बिन्दु D के दाई और लाभ की संभावितदर संचय की दर से कम होती है और निवेश करना लाभदायक नहीं होगा तथा संचय की दर गिरेगी। S और D के बीच, संचय की दर लाभ की सम्भावित्तदर से कम होती है। इसलिए निवेश बढ़ाने की प्रवृति होगी और संचय की दर बढ़ कर बिन्दु क् तक पहुँच जायेगी। इस प्रकार बिन्दु S इच्छित वृद्धि को व्यक्त करता है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

श्रीमती जॉन राबिन्सन का विकास मॉडल हैरोड-डोमर से काफी मिलता-जुलता है। राबिन्सन का संचय सिद्धान्त काफी अच्छा है। इससे सम्बन्ध मे प्रो. कुरिहारा ने लिखा है कि कीन्स के बाद राबिन्सन का मॉडल विकास के सिद्धान्त के क्षेत्रमे मूलभूत योगदान यह है कि उन्होने प्रतिष्ठित मूल्यों तथा वितरण सिद्धान्त और आधुनिक कीन्जीयन बचत निवेश सिद्धान्तो को एकीकृत करके एक सम्बन्ध रूप में प्रस्तुत किया।

8.8 मॉडल की कमियाँ

1. **बन्द अर्थव्यवस्था:-** जोन राबिन्सन का मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था की मान्यता पर आधारित है लेकिन विकसित अर्थव्यवस्था खुली होती है।
2. **स्वर्ण युग का काल्पनिक होना:-** स्वर्ण युग एक काल्पनिक विचार है क्योंकि पूर्ण रोजगार मे लगे गरीब लोगो की निर्धन अर्थव्यवस्था भी स्वर्ण युग कहलायेगी यह तो हास्यप्रद बात ही कही जायेगी।
3. **संस्थानिक साधनों की उपेक्षा:-** यह मॉडल संस्थानिक साधनों को दिया हुआ है मानकर चलता है परन्तु किसी भी मॉडल में आर्थिक वृद्धि के एक निर्धारक रूप में संस्थानिक साधनों के कार्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अर्थव्यवस्था का विकास काफी हद तक सामाजिक, सांस्कृतिक और संस्थानिक परिवर्तनों पर निर्भर करताहै।
4. **स्थिर कीमत स्तर:-** यह मॉडल कीमत स्तर को स्थिर मानता है परन्तु यह मान्यता अवास्तविक है। लेकिन अर्थव्यवस्था मे व्यवहारिकता में कीमत स्तर घटता-बढ़ता रहता है।

5. **उत्पादन के स्थिर गुणांक नहीं होते है:-** राबिन्सन यह मानती है कि उत्पादन की एक दी हुई मात्रा उत्पादित करने के लिए पूंजी और श्रम के साधनों को स्थिर अनुपात मे लगाए जाते है। वास्विकता में उत्पादन के स्थिर गुणांक नहीं होते है। बल्कि समय के साथ पूंजी और श्रम मे स्थापन्न होता रहता है।

8.9 मॉडल की अल्पविकसित देशो व्यवहार्यता (It's Applicability to underDeveloped Countries)

जॉन राबिन्सन का यह मॉडल विकासशील देशो में जनसंख्या की समस्या और इसका पूंजी संचय की दर पर प्रभाव से सम्बन्धित है। एक स्वर्ण युग होता है जिसे कोई भी देश योजनाबद्ध आर्थिक विकास से प्राप्त कर सकता है। अल्पविकसित देशो की मुख्या समस्या है कि पूंजी संचय की वृद्धि दर की अपक्षा जनसंख्या वृद्धि दर अधिक है $\frac{\Delta N}{N} > \frac{\Delta K}{K}$ जैसा की राबिन्सन ने प्रस्तुत किया है कि इसके परिणाम अर्थव्यवस्था मे अल्प-रोजगार की स्थिति पैदा करता है राबिन्सन के आर्थिक वृद्धि के सिद्धान्त के लिए '' सम्भाव्य वृद्धि अनुपात'' बहुत महत्वपूर्ण है। यह स्वर्ण युग वृद्धि अनुपात पर निर्भर करता है। यदि योजना अवधि के लिए श्रम-शक्ति की वृद्धि दर तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन के आधार पर वृद्धि अनुपात का हिसाब लगाया जाए, तो योजना आसान हो जाती है। अल्पविकसित देशो मे हमेशा पूंजी संचय की दर हमेशा सम्भाव्य वृद्धि अनुपात से कम होती है। इसलिए पिछड़ी हुई होती है और श्रम शक्ति का आधिक्य होता है। अतः अर्थव्यवस्था के लिए पूँजी संचय की दर को वृद्धि अनुपात के स्तर तक बढ़ाना योजना प्राधिकरण के हाथ मे होता है। इसके विपरीत ऐसी अर्थव्यवस्था मे निजी ही नहीं बल्कि सार्वजनिक निवेश के भी नियंत्रण तथा नियमन का कार्य करना योजना प्राधिकारण के हाथ मे होता है।

8.10 संदर्भ ग्रंथ

1. R.K. Lekhi – The Economic of Development and Planning
2. V.B. Singh – Theories of Economic Development 1971
3. अमर्त्य सेन - ग्रोथ इकोनॉमिक्स
4. एम एल झिंगन - विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन
5. एम.एल. झिगन- विकास का अर्थव्यवस्था एवं आयोजन
6. केनेथ के कुरिहारा - द केन्सियन थ्योरी आफ इकोनोमिक डेवलपमेन्ट।
7. जोन रोबिन्सन - द एक्युमुलेशन आफ केपिटल
8. डा. टी आर शर्मा एवं डा० जे सी वार्ष्णेय - विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन
9. डा० सुरेशचन्द्र शर्मा एवं रस्तोगी - आर्थिक विकास के सिद्धान्त एवं नियोजन
10. डॉ. मृगेय पाण्डे- आर्थिक वृद्धि एवं विकास सिद्धान्त नीति एवं समस्याएँ
11. डॉ.वी.सी. सिन्हा- आर्थिक संवृद्धि एवं विकास

8.11 कुछ निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रीमती राबिन्सन के आर्थिक वृद्धि के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। यह कहां तक अर्द्धविकसित देशो मे लागु होता है ?

8.12 शब्दावली

1. **पूंजी-संचय -** उत्पादन में पूंजी महत्वपूर्ण कारक है। पूंजी से तात्पर्य उन वस्तुओं से होता है जो उपभोग न करते हुए और अधिक उत्पादन के लिये प्रयुक्त की जाती है, जैसे मशीन, औजार, उपकरण, कारखानों के भवन आदि। इनके स्टॉक में वृद्धि ही पूंजी-संचय है।
2. **स्वतंत्र अर्थव्यवस्था -** ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें आर्थिक निर्णय लेने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता होती है, उस पर शासकीय प्रतिबंध नहीं होते। ऐसी अर्थव्यवस्था बाजार-तंत्र पर चलती है।
3. **बन्द अर्थव्यवस्था -** जिसमें विदेशी व्यापार अर्थात् आयात निर्यात नहीं होता तथा विदेशी सहायता अथवा विदेशी पूंजी नहीं आती।
4. **श्रम-उत्पादकता -** प्रति श्रमिक उत्पादन की मात्रा।
5. **मौद्रिक मजदूरी -** जो श्रमिक को मुद्रा के रूप में प्राप्त होती है।
6. **वास्तविक मजदूरी -** जो श्रमिक को अपनी मौद्रिक मजदूरी को व्यय करने पर लाभों और सेवाओं के रूप में प्राप्त होती है। अतएव यह मूल्य-स्तर पर निर्भर करती है।
7. **पूंजी-श्रम अनुपात -** प्रति इकाई पूंजी रोजगार में लगे श्रमिकों की संख्या।
8. **श्रम-शक्ति -** रोजगार योग्य व्यक्तियों की संख्या। जो जनसंख्या पर निर्भर करती है।
9. **तटस्थ तकनीकी प्रगति -** जब प्रति इकाई श्रमिक अथवा प्रति इकाई पूंजी की उत्पादकता में वृद्धि होती है तब उसे तकनीकी प्रगति माना जाता है। तकनीकी प्रगति ऐसी भी ही सकती है उत्पादकता में वृद्धि होते हुए भी पूंजी और श्रमिक का आपसी अनुपात स्थिर बना रहे, तब वह तटस्थ तकनीकी प्रगति कही जाती है।

इकाई -9
अन्तर्जात संवृद्धि सिद्धान्त
(Endogenous Growth Theories)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 A.K. मॉडल

9.3 AK मॉडल के निष्कर्ष

9.4 मुख्य विशेषताएं -

9.5 वृद्धि का मुख्य साधन -

9.6 रोमन अन्तर्जात वृद्धि मॉडल (Romer Endogenous growth Model)

9.7 सारांश

9.8 सन्दर्भ गर्न्थ

9.9 प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के पश्चात आप निम्न जन सकेगे –

- A.K. मॉडल
- AK मॉडल के निष्कर्ष
- A.K. मॉडल की मुख्य विशेषताएं
- वृद्धि का मुख्य साधन
- रोमन अन्तर्जात वृद्धि मॉडल

9.1 प्रस्तावना

अन्तर्जात संवृद्धि मॉडल यह दर्शाते है कि आर्थिक संवृद्धि अन्तर्जात चरों के कारण होती है, न कि बहिर्जात चरों के कारण। इन मॉडल में यह माना गया है कि मानवीय पूंजी नवाचार तथा ज्ञान में

निवेश, आर्थिक संवृद्धि में सार्थक योगदान देता है । इन मॉडल में इस बात पर भी ध्यान दिया जाता है कि ज्ञान की धनात्मक बह्यता होती है तथा उसका छलकाव प्रभाव, आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा देता है । इन मॉडल में माना गया है कि दीर्घकाल में संवृद्धि की दर, उन सरकारी नीतियों पर निर्भर करती है जिनमें अनुसंधान व शोध तथा शिक्षा पर अनुदान दिया जाता है । अन्तर्जात संवृद्धि मॉडल सर्वप्रथम योगदान कैनेन ऐरो (1962) तथा हीरोफूमी उजावा (1965) लुकास (1980) ने तकनीकी विकास की अपेक्षा मानवीय पूंजी पर निवेश का ओर ध्यान आकर्षित किया जिसमें पैमाने के ह्रसमान प्रतिफल प्रकट नहीं होते है।

9.2 A.K. मॉडल

A.K. मॉडल अन्तर्जात संवृद्धि का सरलतम मॉडल है। इस मॉडल में माना गया है कि बचत की दर स्थिर है तथा बर्हिजात चर के रूप में दी हुई है । इस मॉडल में प्रयुक्त उत्पादन पैमाने के ह्रासमान प्रतिकूल न लागू होने के अनेक कारण दिये जाते है।

जिनमें प्रमुख है -

1- छलकाव प्रभाव
2- तकनीकी विकास से ओर भी तकनीकी विकास होता है तथा कुशलता में ओर वृद्धि होती है। जैसे काम करते करते सीखना।

इस मॉडल मे यह माना जाता है कि पूंजी का प्रतिफल ह्रासमान न होकर उत्पादन फलन में पूंजी स्थिर है । कई अर्थशास्त्री तो यह मानते है कि ज्ञान तथा वैज्ञानिक शोध व नवाचार पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल को दर्शाते है -

$$Y = AK \qquad \text{----------} (1)$$

K = पूंजी स्टॉक

A = प्रति इकाई पूंजी का उत्पादन में योगदान जो बहिर्जात स्थिरांक है।

समीकरण (1) में दिया गया कि उत्पादन फलन पैमाने के स्थिर प्रतिफल और पूंजी पर स्थिर प्रतिफल दोनों को दर्शाता है । याद होगा कि सोलों ने अपने मॉडल में पूंजी पर ह्रासमान प्रतिफल की कल्पना करता था। पूंजी पर ह्रासमान प्रतिफल न होना ही A.K. मॉडल और सालों मॉडल के मध्य प्रमुख अन्तर है । माना बचत की स्थिर दर δ है जो बहिर्जात चर के रूप में दी गई है अत: पूंजी संचय का समीकरण इस प्रकार होगा

$$\Delta K = \delta Y - \delta K$$

यहां ΔK पूंजी में परिवर्तन है जिसका मान निवेश δY तथा घिसावट δK के अन्तर के अन्तर के बराबर है। बचत $= \delta Y$ है अत: विनियोग भी $= \delta Y$ होगा

δK = घिसावट Depreciation के लिए स्थिर भाग (δ) घिसावट पूंजी (K) के रूप में होती है।

अत:

$$\Delta K = \delta Y - \delta K$$

समी के दोनों तरफ K से विभक्त करने पर

$$\frac{OK}{K} = \frac{\delta Y}{K} - \frac{\delta K}{K} [\because Y - AK]$$

$$\frac{\Delta K}{K} = \frac{\delta AY}{K} - \delta$$

$$\frac{\Delta K}{K} = \delta A - \delta$$

इसी प्रकार

$$Y = AK$$

$$\Delta Y = A\Delta K$$

समी. के दोनों तरफ Y से विभक्त करने पर

$$\frac{OY}{Y} = \frac{AOK}{Y}$$

$$\frac{\Delta K}{Y} = \frac{AOK}{AK}$$

$$\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{OK}{AK} ---------- eq(4)$$

$$[\because \frac{\Delta K}{Y} - \delta A - \delta] - in\, eq - eq(4)(iii)\, we\ \ put$$

अत: $$\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{\Delta K}{K} = \delta A - \delta$$

यह समीकरण दर्शाता है कि आय में वृद्धि की दर धनात्मक होगी यदि $\delta A > \delta$ है, चाहे बहिर्जात तकनीकी में वृद्धि न हो। अत: उत्पादन फलन में थोड़ा सा परिवर्तन करने पर आर्थिक संवृद्धि की भविष्यववाणी में बहुत परिवर्तन आ जाता है । जहां परम्परागत मॉडल में वृद्धि होने से थोड़े से समय के लिए विकास की दर बढ़ती है तथा कुछ समय पश्चात अर्थ व्यवस्था सुदीर्घ संवृद्धि की दर पर लौट आती है । वहीं अन्तर्जात संवृद्धि मॉडल में बचत तथा विनियोग सतत् वृद्धि को सुनिश्चित कर सकते है।

AK मॉडल के मुख्य परिणामों को सार रूप में इस प्रकार बताया जा सकता है -

1- यह मॉडल($\delta A > \delta$) द्वारा निर्धारित एक दर पर उत्पादन में वृद्धि को स्वीकार करता है।

2- उत्पादन की वृद्धि पर उच्च बचत, δ; तक पूंजी A के उच्च स्तर पर उत्पादन की वृद्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

9.3 AK मॉडल के निष्कर्ष

AK मॉडल को एक पूर्ण मॉडल नहीं मान सकते है । क्योंकि सारे परिणाम पूंजी स्थिर प्रतिफल की मान्यता पर आधारित है । यह इसे भी स्पष्ट किए बिना छोड़ देता है कि यहां पूंजी पर ह्रासमान प्रतिफल क्यों नहीं प्राप्त होते है । यह बताने में असफल रहा था।

परन्तु हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि AK मॉडल अन्तर्जात संवर्द्धि के किसी भी मॉडल के वांछनीय महत्वपूर्ण अंग को दर्शाता है अर्थात् कारक जिनका संचयन किया जा सके, कि स्थिर पैमाने के प्रतिफल होने चाहिए।

Selected Books

Tritwal, A.P. "Economics of development

Todaro, Michall and Stephen Smith 'Economic development 10th edition

The Lucas Model: A Human Capital Approach

बोधगम्य प्रश्न

1. AK मॉडल की व्याख्या कीजिए।

लुकास मॉडल

प्रो. उजावा द्वारा विकसित अन्तर्जात वृद्धि मॉडल जो कि मानव पूंजी में निवेश पर आधारित है जिसको आधार बनाते हुए लुकास ने अन्तर्जात वृद्धि का मॉडल विकसित किया था। लुकास का मानना था कि शिक्षा में निवेश करने से मानव पूंजी वृद्धि में सहायक होगा जो कि वृद्धि प्रक्रिया का महत्वपूर्ण कारक है ।

लुकास आन्तरिक प्रभाव और बाह्यतम प्रभाव में अन्तर करता है ।

- **आन्तरिक प्रभाव -** अर्थ है कि व्यक्तिगत शार्मिक प्रशिक्षण प्राप्त करता है और अधिक उत्पादककारी बनता है ।
- **बाह्य प्रभाव -** जो कि छलकाव है जिससे अर्थव्यवस्था में पूंजी और अन्य श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि होती है ।

लुकास भौतिक पूंजी की बजाय मानव पूंजी में निवेश पर जोर देते है जिससे तकनीकी स्तर में वृद्धि लाता है छलकाव प्रभाव कहलाता है ।

9.4 मुख्य विशेषताएं -

- लुकास के अनुसार व्यक्ति अपने समय को दो भागों में विभक्त करता है 1 कार्य, 2 प्रशिक्षण जिनके संबंधहोगा। जब व्यक्ति प्रशिक्षण ले रहा होगा तब वह कार्य का त्याग करेगा। जिससे भविष्य में उसकी कार्य क्षमता बढ़ेगी और साथ ही काय्र मजदूरी भी बढ़ेगी।
- लुकास मानव पूंजी को परिभाषित करते है मानव पूंजी जो कि कुशलता है जो श्रमिक में सन्निहित है।
- सभी के पास मानव पूंजी क्षमता का h स्थर है।
- अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की संख्या N जो कि स्थिर है।
- मानव पूंजी को उत्पादन की उत्पादकता में प्रयोग कर सकते है।
- नयी पूंजी का संचयन (μ)
- मानव पूंजी स्थिर से वृद्धि करती है $(1-\mu)$

  $dh/dt = h(1-\mu)$

उत्पादन फलन दिया हुआ है

$$y = AK^{\alpha}(\mu hN)^{1-\alpha} ha^{r}$$

जहां $O < \alpha < 1$ और $v \leq 0$

लुकास के अनुसार तकनीकी A स्थिर है।

औसत मानव पूंजी स्तर

मानव पूंजी का औसत स्तर का बाह्यतम प्रभाव जो दूसरी फर्म का प्रभावितकर सकता है।

उदाहरण - उच्च मानव पूंजी स्तर श्रमिक को अच्छी वार्तालाप को बढ़ाता है।

9.5 वृद्धि का मुख्य साधन -

जैसे h में वृद्धि होगी पर जिसका प्रभाव श्रमिक IV के आगत के स्तर पर होगा जिससे उत्पादन (y) में वृद्धि होगी और साथ ही पूंजी की सीमान्त उत्पादकता (K) में वृद्धि होगी। लुकास के मॉडल में प्रत्येक फर्म पैमाने के स्थिर प्रतिफल और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पैमाने वृद्धि प्रतिफल का सामाना होता है। जो कि करके सिखना Learning by doing प्रशिक्षण और छलकाव प्रभाव के कारण मानव पूंजी आदि के सम्मिलित के कारण होता है। प्रत्येक फर्म अर्थ व्यवस्था में मानव पूंजी के औसत स्तर के कारण लाभदायक है बजाय सम्पूर्ण स्तर के। यह दूसरी फर्म का संचय ज्ञान और

अनुभव नहीं जबकि यह औसत कौशल और ज्ञान है । लुकास के मॉडल में तकनीकी अन्तर्जात चर है। जोकि फर्म के निवेश को प्रभावितकरती है।

परिणामस्वरूप फर्म कीमत लेने (Price taker) वाले की तरह कार्य करती है और फर्म का साम्य स्तर पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्राप्त होता है।

9.6 रोमर अन्तर्जात वृद्धि मॉडल (Romer Endogenous growth Model)

अन्तर्जात वृद्धि मॉडल तथा न्यू - क्लासीकल सिद्धान्तों में आधारभूत समानता होते हुए भी इनकी मान्यताओं और निष्कर्षों के आधार पर भिन्न्ता पाई जाती है । न्यू-क्लासीकल मॉडल पूंजी के घटते प्रतिफल की मान्यताओं पर आधारित है जिसे अन्तर्जात वृद्धि मॉडल किनारा करता है । अन्तर्जात वृद्धि मॉडल उत्पादन के बढ़ते प्रतिफल की व्याख्या करता है और देशों में दीर्घकालीन भिन्न पद्धतियों में चर्चा करता है । हम यहां अन्तर्जात वृद्धि सिद्धान्त में रोमर के अन्तर्जात वृद्धि सिद्धान्त की चर्चा करेगे। यह मॉडल तकनीकी समस्या पर जोर देता है । जो औद्योगिकीकरण के लिए उपयोगी है जो विकासशील देशों के लिए विशेष महत्व रखता है । रोमर का मॉडल बचत निर्धारित और साधारण संतुलन की व्याख्या नहीं करता है । वृद्धि प्रक्रिया फर्म या उद्योग से होती है । रोमर मॉडल इस मान्यता से आरंभ होती है । प्रत्येक उद्योग व्यक्तिगत इकाई के रूप से स्थिर प्रतिफल के आधार पर उत्पादन करते है । रोमर मॉडल सोलो मॉडल से इस मान्यता से अलग होता है कि अर्थव्यवस्था में विशाल पूंजी भण्डार (K), उद्योग स्तर पर उत्पादन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

जिससे अर्थव्यवस्था में पैमाने के बढ़ते प्रतिफल (increasing return scale) लागू होता है।

कुल उत्पादन फलन

$$y = A.K^{\alpha+\beta}L^{1-\alpha}$$

y = कुल उत्पादन, K = पूंजी, L = श्रम

α तथा β क्रमशः श्रम और पूंजी की उत्पादकता की संभावना को दर्शाते है । A की स्थिर माना गया है। अर्थव्यवस्था मे प्रति व्यक्ति आय वृद्धि दर निम्न प्रकार प्राप्त होगी

g = उत्पादन मे वृद्धि दर

n = जनसंख्या में वृद्धि दर को दर्शोते है।

रोमर मॉडल बढ़ते प्रतिफल के पैमाने की मान्यता पर आधारित है । इसलिए $\beta > 0$ जो पैमाने के बढ़ते प्रतिफल को दर्शाता है।

(g-n) > 0 प्रति व्यक्ति आय की सकारात्मकता को दर्शाता है।

y/L उत्पादन - श्रम अनुपात लगातार बढ़ता रहता है।

रोमर सोलो के मॉडल से ली गई मान्यता जो पैमाने के स्थिर प्रतिफल पर आधारित है । जिससे बिलकुल सहमत नहीं है जो $(\beta = 0)$ है । रोमर का मॉडल बचत तथा निवेश स्तर पर निर्भर करता है, बाहरी तत्वों पर नहीं। इस मॉडल का रोचक निष्कर्ष यह है कि निवेश पर निर्भर करते हुए भी यह मॉडल पूंजी के घटते प्रतिफल से दूर है।

9.7 सारांश

रोमर मॉडल विकासशील देशों को यह शिक्षा देता है कि वे भौतिक पूंजी की तुलना में मानवीय पूंजी पर अधिक प्राथमिकता दें। ये विकासशील देश विचारों के आदान-प्रदान से लाभ उठा सकते है । जिससे अपना विकास कर सके जब उनकी अर्थव्यवस्था वैश्विक अर्थव्यवस्था का अंग बन जाती है।

9.8 सन्दर्भ गर्न्थ

- Romer P.M. "Increasing return and long run growth'' Journal of Political economy, oct 1986
- Thirlwall, A.P. Economics of development
- Todaro, Michall and Stephen smith 'Economic development' 10th edition 2009

9.9 बोध प्रश्न

1. रोमर के अन्तर्जात मॉडल की व्याख्या कीजिए।
2. लुकास के मानव पूंजी दृष्टिकोण के अन्तर्जात मॉडल की व्याख्या कीजिए।

इकाई - 10

हैरड- डोमर के मॉडल
Harrod Domar model

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 हैरोड-डोमर मॉडल की मान्यताएं

10.3 हैरोड का मॉडल

10.4 डोमर मॉडल

10.5 हैरोड-डोमर मॉडल में असमानताएँ

10.6 हैराड-डोमर मॉडल की सीमाएँ

10.7 सारांश

10.8 संदर्भ ग्रंथ

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न बिन्दुओं के बारे में जान सकेंगे

- **हैरोड-डोमर मॉडल की मान्यताएं** के बारे में जान सकेंगे
- हैरोड का मॉडल के बारे में जान सकेंगे
- **डोमर मॉडल** के बारे में जान सकेंगे
- हैरोड-डोमर मॉडल में असमानताएँ व हैराड-डोमर मॉडल की सीमाएँ

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रतिष्ठित विश्लेषण इस संकल्पना पर आधारित था कि आर्थिक प्रणाली पूर्ण रोजगार पर संतुलन प्राप्त करती है । क्रीन्जे ने यह स्पष्ट किया कि पूर्ण रोजगार संचालित रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता है । क्रीन्जे का विश्लेषण मुख्यत: अल्पकालिक विश्लेषण था। क्रीन्जोपरान्त अर्थशास्त्रियों ने सतत् विकास कि दशाओं का अध्ययन किया और कीन्स के विचारों को प्रावेगिक स्वरूप प्रदान किया।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि ऐसी दशाएं कौनसी होगी जिसमें सतत् वृद्धि की स्थितियॉ मुद्रा प्रसारिक अथवा मुद्रा विस्फोटिक दशाओं से प्रमाणित हुए बिना प्राप्त की जा सकती है । क्रीन्जोपरान्त विश्लेषण आय वृद्धि की सम्भावनाओं का अध्ययन एक ऐसी दर पर करने का प्रभाव था जिससे जड़ता या दीर्घकालीन मुद्रा कर प्रसार को रोका जाना संभव बने।कीन्स के उत्पादन रोजगार सिद्धांत को दीर्घकालीन स्वरूप प्रदान करने का जिन अर्थशास्त्रियों ने प्रयास किया उनमें प्रो. आर. एफ. हैरोड और प्रो. ई.डी. डोमर का योगदान सबसे अधिक और महत्वपूर्ण है।

हेरोड-डोमर : सतत् या अविरत वृद्धि (Harrod –Domar Model Steady Growth)

प्रो. हैरोड-डोमर ने आर्थिक विकास का मॉडल विकसित देशों के लिए प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने कहा स्थिर विकास की क्या आवश्यकता है? इस प्रकार दोनों विकास मॉडल में समानता है । हैरोड -डोमर ने यह भी स्पष्ट किया की अर्थव्यवस्था में कि रक्षा बने रहने के लिए किस दर से विकास हो और विकास की दर कैसे बढ़ायी जाये? हैरोड-डोमर विश्लेषण जो सतत् वृद्धि के अनुरक्षण को आधारभूत मानता था। हैरोड-डोमर ने ऐसी दर को निर्धारित करने का प्रयास किया है जिससे राष्ट्रीय उत्पादन में सतत् व बाधा रहित वृद्धि की दशाएं उत्पन्न हो सके। साथ ही दीर्घकाल तक पूर्ण रोजगार स्तर को बनाए रखा जाना सम्भव हो सके अर्थात् सन्तुलित वृद्धि प्राप्त हो सके। सतत् वृद्धि की धारणा को मानकर हैरोड-डोमर ने वृद्धि का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। आर्थिक वृद्धि की समस्या का विश्लेषण करते हुए हैरोड-डोमर ने अपने मॉडल से पूँजी संचय से महत्वूपर्ण स्थान दिया है । प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने पूँजी संचय के प्रति पक्ष पर ध्यान केन्द्रित किया था माँग पक्ष की समस्या को अनभिज्ञ रखा गया था। परन्तु कीन्स ने 1930 की महामंदी की विकराल समस्या को दूर करने के लिए माँग पक्ष को अपनी व्याख्या का आधार बनाया तथा पूर्ति समस्या पर विचार नहीं किया। हैरोड-डोमर ने अपने मॉडल में माँग एवं पूर्ति दोनों पक्षों को ध्यान में रखा। उन्होंने पूँजी संचय के दोहरे प्रभाव की महत्ता को रेखांकित किया।

हैरोड-डोमर ने अपने मॉडल में विनियोग को महत्वपूर्ण भूमिका माना है । एक ओर विनियोग से आय का सृजन होता है जिसे विनियोग का माँग प्रभाव कहा जाता है । दूसरी ओर विनियोग अर्थव्यवस्था में उत्पादन क्षमता को बढ़ाता है जिसे विनियोग का पूर्ति पक्ष कहा जाता है । जब तक शुद्ध विनियोग किया जाता रहेगा वास्तविक आय एवं उत्पादन में वृद्धि होती रहेगी। अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार संतुलन स्तर को बनाए रखने के लिए शुद्ध आय एवं उत्पादन एक समान दर पर बढ़ते हैं जिसके परिणामस्वरूप पूँजी स्टॉक की उत्पादन में विस्तार होता है । यदि माँग और पूर्ति में कोई असन्तुलन होता है तो इससे, अतिरिक्त क्षमता (Excess Capacity) उत्पन्न होती है तथा उद्यमी अपने विनियोग व्यय को सीमित करने के लिए बाध्य होता है । अत: आने वाले समय में अर्थव्यवस्था में आय रोजगार स्तर में कमी आती है तथा अर्थव्यवस्था सतत् वृद्धि के पथ से हटने लगती है । अत: अर्थव्यवस्था यदि दीर्घकाल में पूर्ण रोजगार की दशा को बनाये रखना है तब शुद्ध विनियोग को नियमित रूप बढ़ाना आवश्यक है।

हैरोड-डोमर ने आय वृद्धि की इस आवश्यक दर को पूर्ण क्षमता दर (Full Capacity Growth Rate) अथवा अभिष्ट वृद्धि दर (Warranted Capacity Growth Rate) कह कर संबोधन किया है।

10.2 हैरोड-डोमर मॉडल की मान्यताएं (Assumptions of Harrod –Domar Model) -

1- अर्थव्यवस्था आय के पूर्ण रोजगार की अवस्था में है।
2- सरकारी हस्तक्षेप का अभाव होता है।
3- बंद अर्थव्यवस्था में कार्य करता है जिससे विदेशी व्यापार नहीं होता है।
4- निवेश तथा उत्पादन क्षमता निर्माण के बीच समायोजन होने में देर नहीं लगती।
5- औसत बचत प्रवृति, सीमान्त बचत प्रवृति के बराबर होती है ASP=MPS
6- सीमान्त बचत प्रवृति स्थिर रहती है।
7- सामान्य कीमत स्तर स्थिर रहता है अर्थात् मौद्रिक तथा वास्तविक आय समान रहती है।
8- अर्थव्यवस्था में उत्पादन प्रक्रिया में पूँजी तथा श्रम का अनुपात स्थिर रहता है।
9- पूँजी गुणांक अर्थात् पूँजी स्टॉक का आय से अनुपात स्थिर मान लिया जाता है।
10- ब्याज की दरों में परिवर्तन नहीं होता है।
11- पूँजी वस्तुओं का मूल्यह्रास नहीं होता है क्योंकि उन्हें अन्त:जीवी मान लिया जाता है।
12- बचत तथा निवेश उसी वर्ष की आय से संबंधरखते हैं।
13- पूँजी में स्थिर तथा चल दोनों प्रकार की पूँजी सम्मिलित है।

10.3 हैरोड का मॉडल (The Harrod Model)

हैरोड ने अपने विकास मॉडल का प्रस्तुतिकरण अपने शोध लेख 'An Essay in Dynamic Theory' के माध्यम से किया जिसको 1939 में अपनी पुस्तक Toward Dynamic Economics' में सम्मिलित कर लिया था। अर्थव्यवस्था की सतत् वृद्धि से संबंधित प्रावैगिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। हैरोड का मॉडल संवृद्धि का मॉडल माना जाता है विकास का नहीं। हैरोड हमें बताता है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाये रखने के लिए किस दर से विकास किया जाये।

हैरोड ने अपने मॉडल में यह दिखाने का प्रयन्त किया कि किस प्रकार अर्थव्यवस्था में सतत् वृद्धि पाई जा सकती है। जब एक बार सतत् वृद्धि दर में बाधा पड़ जाती है और अर्थव्यवस्था असन्तुलन में हो जाती है। यह संचयी प्रक्रिया इस विचलन को बनाये रखने में लगी रहती है जिससे दीर्घकाल में अस्फीति या स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

हैरोड ने आर्थिक संवृद्धि की तीन भिन्न भिन्न दरों का प्रयोग किया है -

1. अभिष्ट वृद्धि दर (warranted rate of growth)
2. वास्तविक वृद्धि दर (Actual growth rate)

3. प्राकृतिक वृद्धि दर (Natural growth rate)

इन तीनों दरों में सम्बन्धों के आधार पर यह निर्धारित करना सम्भव है कि अर्थव्यवस्था सतत् वृद्धि की अवस्था कैसे प्राप्त कर सकती है।

1. अभिष्ट वृद्धि दर (Warranted Rate of Growth) -

हैरोड ने वृद्धि की आवश्यक/अभिष्ट दर को Gw द्वारा व्यक्त किया है । यह अर्थव्यवस्था के माप की पूर्ण क्षमता वृद्धि दर है । क्योंकि यह पूँजी के बढ़ते स्टॉक का उपयोग करती है । हैरोड के अनुसार अभिष्ट विकास की अभिष्ट दर Gwवह वृद्धि दर है जिसे प्राप्त कर लिया जाये तो व्यवसायी ऐसी मानसिक अवस्था में आ जाते हैं कि वह उसी प्रकार की प्रगति को बढ़ाने के लिए तत्पर रहते हैं।

इसका अभिप्राय है कि अगर उत्पादन क्षमता का पूरा पूरा उपयोग करना हो तो आय S/Cr की वार्षिक दर से बढ़नी चाहिए अर्थात् आय सीमान्त

$$\text{वृद्धि की दर} = \frac{\text{बचत प्रवृत्ति}}{\text{पूंजी उत्पादन अनुपात}}$$

के बराबर होनी चाहिए। सतत् प्रगति के लिए संतुलन की स्थिति में आय वृद्धि विकास वांछनीय दर के अनुसार होती है। अर्थव्यवस्था के पूंजी स्टाक का पूर्ण शोषण किया जाएगा और अर्थव्यवस्था सतत् प्रगति के मार्ग पर होगी। उद्यमी इतना विनियोग करने के इच्छुक होंगे जितना कि कुल सम्भावी आय में से बचाया जाता है। यह विकास की दर निरन्तर बनी रहेगी।
हेरोड विकास पथ चित्र में दिखाया गया है।

रेखाचित्र 10.1

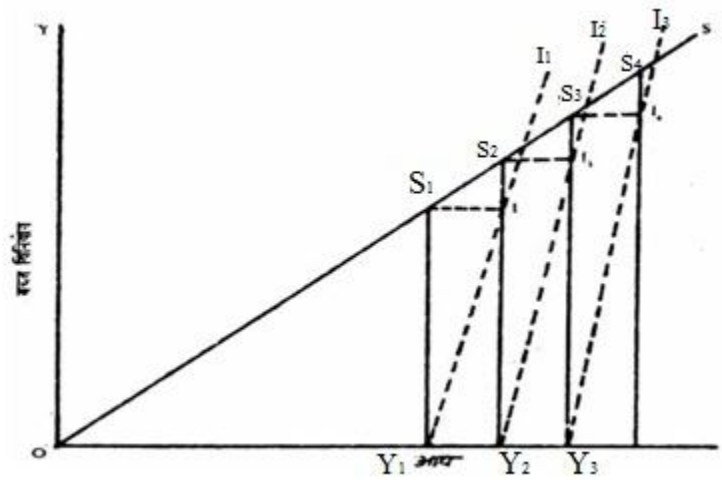

अर्थव्यवस्था का विकास पथ

चित्र 10.1 में X अक्ष पर आय तथा Y अक्ष पर बचत एवं निवेश से दिखाया गया है। इस चित्र में एक दूसरे समयान्ततल के बीच हुई उत्पादन वृद्धि को Y_1, Y_2, Y_3 आदि के द्वारा व्यक्त किया गया है। इस उत्पादन वृद्धि से दूसरी अवधि में प्रेरित निवेश को J_1 द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इसका ढाल

त्वरक के मूल्य पर निर्भर करेगा। इस प्रकार उत्पादन Y_1 से बढ़कर Y_2, होने पर दूसरी अवधि में I_2 Y_2 के बराबर निवेश प्रेरित होगें। यह अवधि 2 में उपलब्ध बचतों S_1Y_1 के बराबर है। यह निवेश आय को अगली अवधि में आगे बैठा देता है। इससे अगली अवधि में और अधिक विनियोग होते है, और आय वृद्धि की दर लगातार प्रत्येक अगली अवधि में बनी रहती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था संतुलन पथ पर लगातार आगे बढ़ती जाती है। हेरोड आय वृद्धि की इस दर को विकास की वांछनीय दर के नाम से पुकारता है।

रोजगार संतुलन वृद्धि के लिए वास्तविक विकास दर G और विकास की वांछनीय दर Gw अवश्य बराबर होनी चाहिए। इसी प्रकार वास्तविक पूंजीगत पदार्थ C इच्छित पूंजी पदार्थों G के बराबर अवश्य होने चाहिए तभी सतत् वृद्धि संभव है। यदि G एवं Gw बराबर नहीं है तो अर्थव्यवस्था असंतुलन में रहेगी।

2. वास्तविक वृद्धि दर (Actual Growth Rate)-

हैरोड ने G द्वारा व्यक्त किया है कि वास्तविक वृद्धि दर G बचत की दर एवं पूँजी उत्पादन दर द्वारा निर्धारित होती है। यह दर अल्पकालीन चक्रीय परिवर्तनों को व्यक्त करती है।

3. प्राकृतिक वृद्धि दर (Natural Growth Rate)-

हैरोड ने वृद्धि की प्राकृतिक दर को Gn द्वारा व्यक्त किया है। यह उत्पादन की ऐसी प्रवृति को बतलाती है जिसमें पूर्ण रोजगार विद्यमान होता है तथा मुद्रा प्रसार नहीं होता है। यह वृद्धि की वह दर है जो जनसंख्या वृद्धि व तकनीकी सुधारों से प्राप्त की जाती है। इस वृद्धि की सम्भाव्य दर भी कहते हैं। जिसे हैरोड ने अपने शोध लेख Second Essay in Dynamic Economics (June 1960) में अनुकूलतम कल्याण की संज्ञा दी।

हैरोड की विकास दरें -

हैरोड ने अपने मॉडल में तीन विकास दर के विचार को विकसित किया है और इनकी सहायता से वह यह बताते है कि कोई अर्थव्यवस्था -

1 **वास्तविक वृद्धि दर** - यह वृद्धि की वह दर है जिस पर देश विकास कर रहा है इसको हैरोड ने निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया है

Gc =s समय दी हुई अवधि में उत्पाद G की वृद्धि दर है। इसे निश्चित समय के अन्तर्गत कुल आय की बढ़ी हुई आय के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है

$$G = \frac{\Delta Y}{Y} = \frac{\text{आय में वृद्धि}}{\text{आय}}$$

C = पूँजी में शुद्ध वृद्धि। इसे विनियोग I से आय में होने वाली वृद्धि oy के अनुपात द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

$$C = \frac{I}{\Delta Y} = \frac{\text{विनियोग}}{\text{-आय में वृद्धि}}$$

s= बचत की औसत प्रवृति जहां बचत को आय के अनुपात S/Y में निरूपित किया गया है।

$s = \frac{S}{Y} = \frac{\text{बचत}}{\text{आय}}$

समीकरण 1 में G,C,S का मान प्रतिस्थापित करने पर

$$\frac{\Delta y}{y} = \frac{I}{\Delta y} = \frac{S}{y}$$

$\frac{I}{Y} = \frac{S}{Y}$ या I = S लिख सकते हैं।

वास्तविक बचत = वास्तविक निवेश

यह स्पष्ट करता है कि वास्तविक बचते वास्तविक विनियोग के बराबर होती है । हैरोड के अनुसार बचतें आय के स्तर पर निर्भर करती है तथा विनियोग आय के वृद्धि की दर पर निर्भर करता है । स्पष्ट है कि हैरोड त्वरण सिद्धान्त का विवेचन करते हैं जिसके अनुसार उत्पादन में होने वाली वृद्धि पूँजी स्टॉक में वृद्धि लाती है । जिसके द्वारा वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है । इससे अभिप्राय है कि उद्यमी जो अपनी आय का एक अंश का विनियोग कर रहे हैं इस बात से प्रभावित होते हैं कि पूर्व अवधि में उत्पादन वृद्धि की दर क्या रही है । उद्यमी सम्भव तब सन्तुष्ट होगा जब बढ़ते हुए विनियोग से क्रमश: उसकी आय में वृद्धि होती रहे। वास्तविक दर यह बतलाती है कि एक दी हुई अवधि में क्या हुआ है । यह इस संबंधमें कुछ नहीं स्पष्ट करती कि इसके द्वारा विकास की वह दर जो वास्तव में प्राप्त की जा चुकी अर्थव्यवस्था के सतत् विकास का आधार प्रस्तुत करने की दृष्टि से संतोषजनक है अथवा नहीं।

अभिष्ट वृद्धि दर - अभिष्ट वृद्धि दर निरन्तर विकास को उत्पन्न करने वाली है । यह वृद्धि दर विकास की आवश्यकताओं पर ध्यान देती है । उद्यमकर्ता को संतुष्ट करती है । यदि यह दर किसी अर्थव्यवस्था की आय की पूर्ण क्षमता वृद्धि होती है परन्तु इस वृद्धि दर के प्राप्त होने पर भी समाज में थोड़ी बहुत अनैच्छिक बेरोजगारी बनी रहती है । कीन्जियन विश्लेषण में आय व रोजगार को तब सन्तुलन में कहा जाता है नियोजित बचतें, नियोजित विनिर्माण का रूप ले लेती है । हैरोड के अनुसार इस प्रकार का विनियोग प्राकृतिक रूप से सम्भव नहीं होता है विनियोग को प्रेरित करने के लिए आवश्यक है कि आय में वृद्धि हो। इसे व्यक्त करने के लिए हैरोड ने सतत् वृद्धि की सन्तुलन दशा को निम्न प्रकार व्यक्त किया है । अभिष्ट वृद्धि दर दो साधन पूँजी उत्पादन और आय बचत अनुपात के रूप में व्यक्त की जा सकती है जो निम्न है -

GwCr=s

Gw = अभिष्ट वृद्धि दर। इसे वृद्धि की पूर्ण क्षमता दर कहा गया है।

Cr= पूँजी जो अभिष्ट वृद्धि दर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है यह I/ΔY का मूल्य है

s=बचत आय अनुपात

अर्थव्यवस्था में स्थिर वृद्धि दर प्राप्त करने के लिए आवश्यक है जो G = Gw and C = Cr को व्यक्त करता है।

वास्तविक वृद्धि दर अभिष्ट वृद्धि दर के बराबर होनी चाहिए। जब बचत गुणांक S दिया हुआ हो तब पूँजी उत्पादन अनुपात G को प्राप्त करने के लिए आवश्यक रखने के लिए आवश्यक पूंजी उत्पादन अनुपात। यह व्यक्त करता है वास्तविक विनियोग बराबर होना चाहिए। अपेक्षित विनियोग के यदि अर्थव्यवस्था स्थिर वृद्धि दर प्राप्त कर रही है।

Since GwCr =s

Gw = s/cr

$$Gw = \frac{\text{सीमांत बचत प्रवृति}}{\text{पूँजीउत्पाद अनुपात}}$$

अभिष्ट वृद्धि दर पूँजी उत्पादान अनुपात (Cr)और बचत के भागफलन के बराबर होती है।

प्रो. हैरोड के निष्कर्ष

1. पूर्ण रोजगार सन्तुलित विकास के लिए विकास वास्तविक वृद्धि दर G एवं अभिष्ट वृद्धि दर Gw के बराबर होना चाहिए।
2. इसी प्रकार पूँजी की वृद्धि दर (C) एवं पूँजी की आवश्यक वृद्धि या पूँजी उत्पादन अनुपात (Cr) भी बराबर होना चाहिए।

$$G = Gw$$
$$C = Cr$$

हैरोड विकास मार्ग - हैरोड के विकास मार्ग को निम्न रेखाचित्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है -

1- ox अक्ष पर आय तथा oy अक्ष पर बचत एवं विनियोग को दर्शाया गया है।

2- कितना विनियोग किया गया है, यह त्वरण के मूल्य पर निर्भर करता है इसे रेखाचित्र में Cr रेखा द्वारा व्यक्त किया गया है।

3- समांतर रेखाएं Y_1, Cr_1, Y_2, Cr_2 व Y_3Cr_3 स्थिर पूँजी उत्पादन अनुपात को बता रही है। आय y_1 से y_2 परिवर्तन होने से पे्ररित विनियोग I_2Y_2 जो कि S_1Y_1 बचत के समान है।

4- इस स्तर पर उत्पादन में वृद्धि दर Y_2-Y_1/Y_1के समान है। फिर विनियोग आय को बढ़ाकर Y_3 पर ले जाता है, और उत्पादन में वृद्धि दर Y_3-Y_2/Y_2 के समान है।
इसी प्रकार I_3विनियोग की दर आय को बढ़ाकर Y_4 के स्तर पर लाती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था एक समान वृद्धि दर से बढ़ती है।

$$\frac{Y_2 - Y_1}{Y_1} = \frac{Y_3 - Y_2}{Y_2} = \frac{Y_4 - Y_3}{Y_3}$$

दीर्घकालीन असंतुलनों का मूलरूप

पूर्ण रोजगार संतुलन के लिए वास्तविक वृद्धि दर (G) और अभिष्ट वृद्धि दर (Gw) अवश्य बराबर होना चाहिए। और वास्तविक पूँजी (C) इच्छित पूँजी (Cr) के बराबर अवश्य होना चाहिए। तभी सतत् वृद्धि सम्भव है परन्तु प्रश्न यह उठता है क्या यह साम्य एक स्थिर साम्य होगा।

यदि G तथा Gw परस्पर बराबर नहीं है तो अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन असंतुलनों के निम्नलिखित दो रूप देखे जा सकते हैं।

1- जब G>GW तब C<CR

यदि वास्तविक वृद्धि दर (G) अभिष्ट वृद्धि दर (GW) से अधिक है अर्थात् आय की वृद्धि दर उत्पादन की वृद्धि दर से अधिक होगी। उत्पादन की मांग, पूर्ति से अधिक होगी जिससे अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की स्थति है ।अत: पूँजीगत वस्तुओं की कमी बढ़ती तथा पूँजीगत की वास्ततिक मात्राएँ चाही जाने वाली पूँजीगत वस्तुओं की अल्प होगी (C<CR)।जिससे वस्तुओं के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा |

रेखाचित्र 10.2

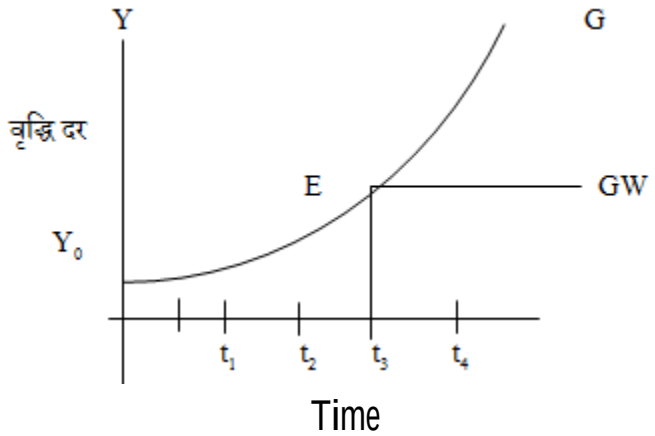

रेखांचित्र 10.2 में आय की वृद्धि दर Y- अक्ष तथा समय को X- अक्ष में दिखाया गया है । प्रारम्भिक आय के पूर्ण रोजगार स्तर Y_0पर वास्तविक वृद्धि दर व अभिष्ट वृद्धि दर बिन्दू E तक साथ-साथ। यहाँ समय t_3है समय t_3के पश्चात G,GW से अधिक होती जाती है

2- G<GW तब C>CR

इस प्रकार यदि वृद्धि की वास्तविक दर, वृद्धि की अभिष्ट दर (GW) से कम हो अर्थात् G<GW तब C का मूल्य CR से अधिक होगा अर्थात् C>CR। यह दशा पूँजीगत वस्तुओं की अधिकता को प्रदर्शित करती है । फलत: अनुमापित विनियोग वास्तविक विनियोग से कम होगा अर्थात् कुल मांग कल पूर्ति से कम होगी। इसके फलस्वरूप् उत्पादन रोजगार तथा आय में कमी आयेगी और अर्थव्यवस्था दिर्घकालीन मंदी उत्पन्न हो जायेगी।

रेखाचित्र 10.3

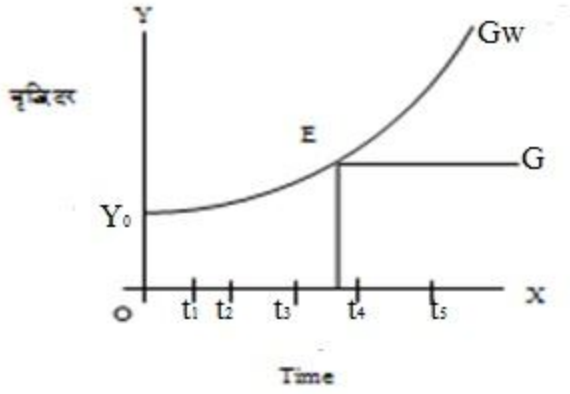

रेखाचित्र 10.3 में समय t_3पर बिन्दू E के उपरान्त GW की तुलना से G कम है । हैरोड का मत है कि अर्थव्यवस्था यदि एक बार सन्तुलन पथ पर (G=GW) है से विचलित होती है तो पुन: सन्तुलन दर पर नहीं आ पायेगी बल्कि संचयी रूप से दूर ही हटती जायेगी। इस प्रकार की साम्य की स्थिति अत्यन्त ही सीमित दशा में ही रहेगी। हैरोड का कहना है कि यह स्थिति एक चाकु धार सन्तुलन की स्थिति है जिसका अर्थ है कि हैरोड मॉडल में सन्तुलन की स्थिति चाकु की धार पर ही होगी थोड़ा सा विचलन उसे संतुलन की स्थिति से दूर ले जायेगी और पुन: प्राप्त नहीं होगी

रेखाचित्र 10.4

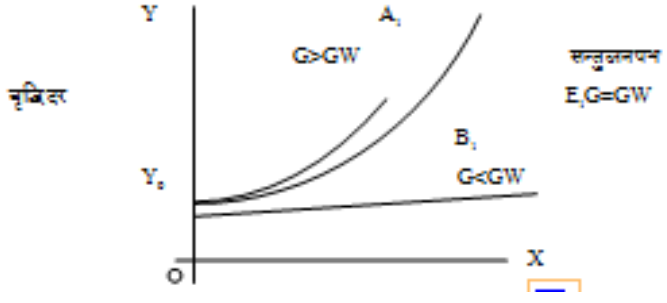

रेखाचित्र 10.4 मे Y_0E_1सन्तुलन पथ प्रदर्शित करता है जबकि G=GW परन्तु Y_0E_1पर चाकु धार की तरह सन्तुलन होगा।

3- **प्राकृतिक वृद्धि दर (Natural Growth Rate):-** वृद्धि की प्राकृतिक दर चरों पर निर्भर करती है जैसा कि जनसंख्या, प्रौद्योगिकी, प्राकृतिक साधन तथा पूंजी उपकरण। इसे वृद्धि पूर्ण रोजगार दर अथवा वृद्धि की सामान्य दर कहा जा सकता है । वस्तुत: GN उच्चतम प्राप्त वृद्धि दर है जो अर्थव्यवस्था में विद्यमान संसाधनों के पूर्णत: रोजगार की दशा को व्यक्त करता है । प्राकृतिक वृद्धि दर को स्पष्ट करते हुए हैरोड लिखते है कि ''विकास की प्राकृतिक दर उत्पादन की वह प्रकृति प्रदर्शित करती है जिस पर बिना

स्फीति के पूर्ण रोजगार है । विकास की यह वह दर है जिसे जनसंख्या की वृद्धि तथा तकनीकि सुधार अनुमति देती है ।''उपरोक्त विवेचन में स्पष्ट है कि, पूँजी तथा श्रमशक्ति दोनों के ही पूर्ण क्षमता तक प्रयोग के लिये या पूर्ण रोजगार के लिए आवश्यक है

$$\boxed{G = GW = GN} \rightarrow \text{छूरी-धार सन्तुलन}$$

परन्तु यदि वृद्धि की प्राकृतिक, वास्तविक तथा अभिष्ट दरों में कोई विचलन होगा तो अर्थव्यवस्था मे दीर्घकालिन अस्थिरता अथवा स्फिति की परिस्थितियॉ उत्पन्न हो जायेगी।

यदि G>GW निवेश बचत की अपेक्षा तीव्रता से बढ़ेगा और आय में GW की अपेक्षा तीव्रता से वृद्धि होती है।

और G<GWबचत निवेश की अपेक्षा तीव्रता से बढ़ती है और आय में वृद्धि GW की अपेक्षा कम होती है इस प्रकार यदि GW>GN हो तो दीर्घकालीन निष्क्रयिता पैदा हो जायेगी ऐसी स्थिति G से GW अधिक होगा क्योंकि वास्तविक दर G पर उच्च सीमा प्राकृतिक दर (GN)द्वारा लगाई जायेगी। जिसे रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

रेखाचित्र 10.5

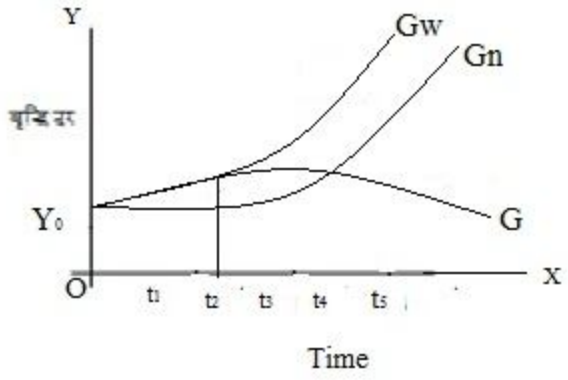

रेखाचित्र 10.5 से स्पष्ट है कि जब GN से GW अधिक होती है तो C>CR और श्रम की कमी के कारण पूँजी पदार्थों की अधिकता होती है श्रम की कमी उत्पादन में वृद्धि की दर को GW के स्तर से नीचे रखती है मशीने बैकार हो जाती है अतिरिक्त क्षमता पाई जाती है । इससे निवेश, उत्पादन रोजगार एवं आय और कम हो जाते है इस प्रकार अर्थव्यवस्था दीर्घकालीन मंदी के जाल मे फस जाती है। ऐसे हालात मे बचत अभिशाप है।

यदि GW<GNहो तो G>GW ऐसी स्थिति में दीर्घकालिन स्थिति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब GN से GW कम हो तो C<CR श्रम की अधिकता और पूँजी पदार्थों की कमी पाई जाती है लाभ अधिक होते है वास्तविक निवेश अनुमानित निवेश अधिक होता है । और व्यापारी वर्ग मे अपने पूँजी भण्डार को बढ़ाने की प्रवृति पाई जाती है । इससे दीर्घकालिन स्थिति स्फिति उत्पन्न हो जायेगी। ऐसी स्थिति में बचत एक गुण होता है

रेखाचित्र 10.6

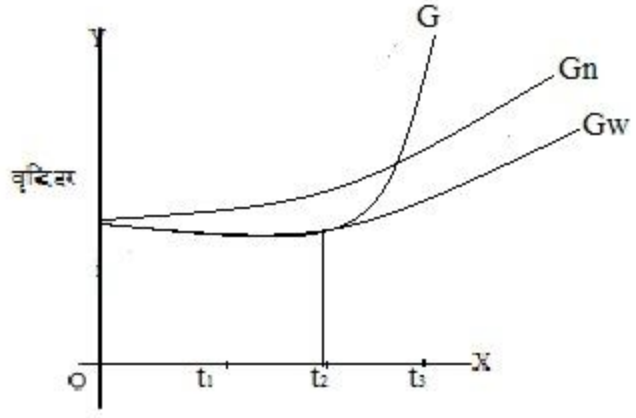

हैरोड के वृद्धि मॉडल के नीति संकेत है कि बचत स्फीति अन्तराल अर्थव्यवस्था में गुण है और अवस्फीति अन्तराल में दोष है इस प्रकार उन्नत अर्थव्यवस्था मे स्थिति की मांग के अनुसार बचत को घटाया या बढ़ाना पड़ता है।

10.4 डोमर मॉडल The Domar Model

E.D. डोमर ने Essay in the theory of Economic Growth (1957) में आर्थिक वृद्धि का विश्लेषण प्रस्तुत किया। डोमर का मॉडल का निर्माण मुख्य औद्योगिक अर्थव्यवस्था की समस्या और अनुभव पर किया गया। उन्होने अपने मॉडल ने इस बात पर बल दिया की शुद्ध निवेश निर्माण क्षमता को प्रभावित करता है । उन्होने बलपूर्वक कहा की निवेश एक और आय बढ़ता है और दूसरी और उत्पादन क्षमता को। पहले को हम मांग प्रभाव और दूसरे को पूर्ति प्रभाव है।

डोमर ने इस प्रश्न को लेकर मॉडल का निर्माण किया कि उत्पादन क्षमता में वृद्धि को आय में वृद्धि क बराबर करने के लिए विनियोग किस दर से बढ़े ताकि पूर्ण रोजगार बना रहे। वह विनियोग के माध्यम से कुल मांग और कुल पूर्ति के बीच सम्बन्ध स्थापित करके इस प्रश्न का उत्तर देते है।

Explanation of Domar's Model

पूर्ति पक्ष:-विनियोग का उत्पादन क्षमता प्रभाव

डोमर पूर्ति पक्ष इस प्रकार स्पष्ट किया मान लीजिए विनियोग की वार्षिक दर I नयी पूँजी की वार्षिक उत्पादन क्षमता औसत रूप से s है । अत: I डॉलर का विनियोग किए जाने पर उत्पादन क्षमता मे वृद्धि Is के बराबर होगी वस्तुत: कुल क्षमता वर्ष में मुद्रा की IS इकाइयों के बराबर नहीं बढ़ती बल्कि इससे कम होती है कारण यह है कि उद्योगों मे या एक ही उद्योग की विभिन्न फर्मो मे उत्पादन क्षमता एक जैसी नहीं होती है सम्भव है कि नयी पूँजी का उपभोग पुरानी मशीनो के स्थान पर किया

जाये। ऐसी स्थिति में वार्षिक क्षमता Is से कम होती है । डॉमर के अनुसार यह वार्षिक उत्पादन क्षमता वृद्धि $I\sigma$ के अनुसार होगी। इसे सिग्मा प्रभाव भी कहते है । इस प्रकार वार्षिक क्षमता Is से बढ़कर $I\sigma$ के बराबर ही बढ़ जाती है अर्थात् $Is > I\sigma$ जहाँ σ विनियोग की औसत उत्पादकता $\Delta Y/I$ को प्रदर्शित करता है।

इस प्रकार डोमर के अनुसार विनियोग के फलस्वरूप उत्पादन क्षमता मे वृद्धि को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$\boxed{\Delta Y = I\sigma} \qquad \text{———} \quad (1)$$

माँग पक्ष:-<u>विनियोग का आय प्रभाव</u>

मांग पक्ष के अन्तर्गत डोमर ने कीन्स के गुणक सिद्धान्त का प्रयोग किया। यदि विनियोग में होने वाली वृद्धि की दर ΔI तथा α बचत की सीमान्त प्रवत्ति है । तब आय में होने वाली वृद्धि ΔY को ज्ञात किया जा सकता है, वह निवेश में वृद्धि ΔI की I/α गुणा होगी |

$$\Delta Y = \Delta I \,.\, \frac{I}{\propto} \qquad \text{———} \quad (2)$$

जहाँ गुणक $\frac{I}{\propto}$ है।

सन्तुलन-<u>Equilibrium</u>:-

यदि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की स्थिति में है तो राष्ट्रीय आय उत्पादन क्षमता के बराबर होगा। इस स्थिति को बनाये रखने के लिए तथा उत्पादन क्षमता दोनों को समान गति से बढ़ाना चाहिए।

अन्य शब्दो में आय का पूर्ण रोजगार सन्तुलन बनाये रखने के लिए कुल मांग और कुल पूर्ति को एक-दूसरे के बराबर होना चाहिए।

$$\Delta I \,.\, \frac{I}{\propto} = I\sigma$$

$I\sigma$ = उत्पादन क्षमता में वृद्धि (पूर्ति पक्ष)

$\Delta I.\ \frac{I}{\propto}$ =आय में वृद्धि (मांग पत्र)

समीकरण के दोनों पक्षों को $\propto$ से गुणा करने एवं I से भाग देने पर

$$\frac{\Delta I}{I} = \propto\sigma \qquad \text{———} \quad (3)$$

$\frac{\Delta I}{I}$ = विनियोग में निरपेक्ष वृद्धि

$\propto\sigma$ = बचत की इच्छा अथवा बचत का आय से अनुपात $\times$ पूँजी उत्पादन अनुपात

समीकरण 3 से यह सिद्ध होता है कि यदि हम पूँजी रोजगार को बनाये रखना चाहते है तो विनियोग के विकास निरपेक्ष पर $\frac{\Delta I}{I}$ बचत की प्रवृति के अनुपात $\propto$ एवं विनियोजित की औसत उत्पादकता या पूँजी उत्पादन (σ) के गुणाफल ($\propto\sigma$) के बराबर होनी चाहिए।

इस प्रकार समीकरण$\left(\frac{\Delta I}{I} = \propto \sigma\right)$पूर्ण रोजगार को बायें की आवश्यक शर्तो का स्पष्ट उल्लेख करता है इस 'सुनहरे मार्ग' से विचलित होने पर चक्रीय उच्चाचय उत्पन्न होगे।

When $\frac{\Delta I}{I} > \propto\sigma$ तो अर्थव्यवस्था मे तेजी आयेगी, $\frac{\Delta I}{I} < \propto\sigma$ तो अर्थव्यवस्था मे मंदी का सामना करना पड़ेगा।

<u>मॉडल का रेखाचित्र द्वारा निरूपण</u>

डोमर के मॉडल का रेखाचित्र द्वारा स्पष्टिकरण

रेखाचित्र 10.7

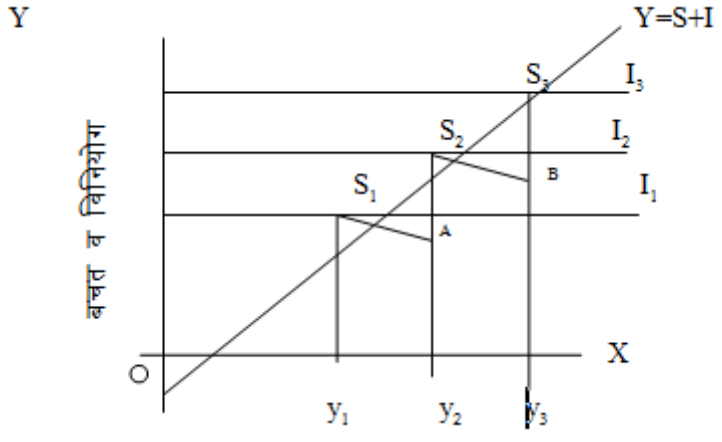

आय का स्तर

रेखाचित्र 10.7 मे 0X- अक्ष पर आय का स्तर और 0Y - अक्ष पर बचत व विनियोग का दर्शाया गया है

(i) राष्ट्रीय आय का निर्धारण कुल मांग और कुल पूर्ति रेखाओं द्वारा दर्शाया गया है।

(ii) शुरू में अर्थव्यवस्था का सन्तुलन बिन्दु S_1 है जहाँ बचत और विनियोग दोनो स्तर बराबर है और आय का y_1 है। अर्थात् अर्थव्यवस्था पूर्ण क्षमता से कार्य कर रही है।

(iii) जब वार्षिक विनियोग की दर I_1है जबकि नयी पूँजी का उपयोग पुरानी मशीनों के स्थान पर किया जाता है और गुणक प्रभाव के कारण आय का स्तर बढ़करS_1A (= y_1y_2) हो जाता है लेकिन वार्षिक उत्पादन क्षमता $I\sigma$ से कम रहती है रेखाचित्र से स्पष्ट है $0y_2 > 0y_1$यदि विनियोग की मात्रा को बढ़ाकर I_2 कर दिया जाये और आय में वृद्धि S_2B (= y_2y_3) होगी

यह प्रक्रिया विनियोग गुणक के अनुसार चलती रहेगी जब तक आय में वृद्धि विनियोग में की गयी वृद्धि कि गुणक वृद्धि के बराबर नहीं हो जाती।

हैरोड-डोमर का तुलनात्मक अध्ययन

Comparative study of Harrod Domar Model):-

1- समान मान्यताएँ:-हैराड-डोमर के विकास मॉडल की कुछ मान्यताएँ समान है।

(i) बन्द अर्थव्यवस्था की कल्पना

(ii) पूर्ण रोजगार की स्थिति को अल्पकाल मे ही प्राप्त किया जा सकता है।

(iii) MPS=APS

(iv) सरकारी हस्तक्षेप का आभाव

(v) पूँजी संचय से देश की उत्पादन क्षमता मे वृद्धि होती है।

2- हैरोड-डोमर के समीकरण के समान निष्कर्ष:-

डोमर मॉडल	हैरोड मॉडल
$\frac{\Delta I}{I} = \alpha\sigma$ जबकि $\alpha = \frac{\Delta S}{\Delta Y}, \sigma = \frac{\Delta Y}{I}$ $\because \frac{\Delta S}{\Delta Y} \times \frac{\Delta Y}{I}$ $\frac{\Delta I}{I} = \frac{\Delta S}{I}$ $\therefore \Delta I = \Delta S$	$GC = s$ $G = \frac{\Delta Y}{Y}, C = \frac{I}{\Delta Y}, s = \frac{S}{Y}$ $\because \frac{\Delta Y}{Y} \times \frac{I}{\Delta Y} = \frac{S}{Y}$ $\frac{I}{Y} = \frac{S}{Y}$ $\therefore I = S$

3- हैरोड-डोमर के अन्य सामान्य निष्कर्ष:-

दोनों मॉडल में अनेक ऐसी बातें समान रूपों में पायी जाती है

(i) हैरोड-डोमर दोनों ने आर्थिक विकास में पूँजी संचयन के महत्व को स्वीकार किया है। पूँजी संचयन के बढ़ने से विनियोग बढ़ता है। विनियोग का कार्य दोहरा होता है। विनियोग एक आय में वृद्धि करता है और दूसरी उत्पादन क्षमता को बढ़ाता है

(ii) मूल्य स्तर में वृद्धि:- हैरोड-डोमर दोनों ने यह बताया कि मूल्य स्तर के बढ़ने की स्थिति मे भी उत्पादन, उत्पादन क्षमता व आय के मध्य सन्तुलन आवश्यक है।

(iii) पूर्ण रोजगार सन्तुलन:- दोनों मॉडल विकसित राष्ट्रों के संदर्भ मे प्रतिपादित किये गये है यह मॉडल यह बताने की कौशिश करते है कि पूर्ण रोजगार की अवस्था को प्राप्त करके उसे किस प्रकार बनाये रखा जाये।

10.5 हैरोड-डोमर मॉडल में असमानताएँ

हैरोड मॉडल

(i) हैरोड सीमांत पूँजी उत्पादन तथा त्वरन का प्रयोग करता है । हैरोड यह मानकर चलता है कि बचत कुल आय का स्थिर अंश मात्र है

$$S=sY \ (0<\times<1)$$

(ii) हैरोड ने आय को विकास प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्व दिया है।

(iii) हैरोड ने तीन भिन्न-भिन्न वृद्धि दर G, GW एवं GN का प्रयोग किया है

(iv) हैरोड का विकास मॉडल असंतुलित तकनीक से संतुलित तकनीक की और अग्रसर होता है

(v) हैरोड समीकरण मे विनियोग वृद्धि की आंतरिक व बाह्य व्याख्या नहीं की।

(vi) हैरोड अर्थव्यवस्था के विकास क्रम मे व्यापार चक्र को अनिवार्य मानते है।

डोमर मॉडल

(i) डोमर सीमांत पूंजी-उत्पादन तथा गुणक के व्युत्क्रम $\Delta Yd=\Delta I\frac{1}{\propto}$ का प्रयोग करता है

(ii) डोमर ने विनियोग को विकास माडल मे महत्वपूर्ण स्थान देकर दोहरी भूमिका बतलायी है

(iii) डोमर ने एक वृद्धि दर का प्रयोग किया। $\frac{\Delta I}{I} = \propto \sigma$

(iv) डोमर का विकास मॉडल वृद्धि की संतुलित तकनीक पर आधारित है।

(v) डोमर ने विनियोग वृद्धि व आय वृद्धि $\frac{\Delta I}{I} = \frac{\Delta y}{Y}$ *को मान्यता दी।*

(vi) डोमर अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्र को नहीं स्वीकारते है । केवल विनियोग की औसत उत्पादकता तक उच्चावचन सीमित है।

10.6 हैराड-डोमर मॉडल की सीमाएँ:- Limitation of Harred-Domer Models

(i) हैरोड-डोमर मॉडल **अवास्तविक मान्यताओं** पर आधारित है जैसे बचत प्रवृति और पूँजी उत्पादन अनुपात को स्थिर मान लेना सही नहीं है । डोमर ने स्वयं इस मान्यता को अनावश्यक बताया है।

(ii) **$\propto$ या S तथा σ** स्थिर नहीं होतेः — मॉडल मे $\propto$ या S तथा σ को स्थिर माना गया है । लेकिन वास्तविकता यह कि ये दिर्घकाल में परिवर्तित हो जायेगे और सतत् वृद्धि की आवश्यकता को बदल देगे।

(iii) **कीमत स्थिरता:-** यें दोनों मॉडल सामान्य कीमत स्तर को स्थिर मानते है जबकि व्यवहार में कीमत समय के साथ बदलती रहती है और विकास प्रक्रिया पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है।

(iv) **ब्याज-दरें परिवर्तित होती है**:- दोनों मॉडल यह मान्यता ली की ब्याज की दरें अपरिवर्तित होती है । लेकिन ब्याज की दरें बदलती रहती है जिससे निवेश निश्चित रूप से प्रभावित होते है।

(v) **सरकारी भूमिका की उपेक्षा**:- लेकिन वर्तमान मे सरकार की भूमिका दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।

(vi) **श्रम-पूँजी का स्थिर अनुपात सही नहीं:-** दोनों मॉडल मे श्रम एवं पूँजी का स्थिर अनुपात माना है जो त्रुटिपूर्ण है प्रत्येक क्षेत्र एवं समय में श्रम पूँजी अनुपात बदलता रहता है।

10.7 सारांश

प्रो. कुरिहारा लिखते है कि ''इन सीमाओं के बावजुद हैरोड-डोमर मॉडल पूर्ण रूप से स्वतंत्र है जो राजकोषीय तटस्थता पर आधारित है और उन्नत अर्थव्यवस्था आरोही-संतुलन (Progressive Equilibrium) की स्थितियों को प्रकट करने के लिए निर्मित हुआ है'' इनका महत्व इस मे निहित है कि ये कीन्स के स्थैतिक अल्पकालिन बचत विनियोग सिद्धान्त को गत्यात्मक और दीर्घकालीन बनाने के लिए प्रेरणदायी प्रयास प्रकट है।

अर्द्ध विकसित देशों में हैरोड-डोमर का उपयोग (Application of Harrod-Domar Model for under developed countries)

वस्तुत: हैरोड-डोमर मॉडल उन्नत अर्थव्यवस्था की समस्याओं से सम्बन्धित रहा व अर्द्धविकसित देशों के संदर्भ में इनकी सीमित उपयोगिता रही है इसका मुख्य कारण हैरोड-डोमर की वह मान्यताएँ है जा व्यवहारिक दृष्टि से अपर्याप्त व असंगत बनी।

(i) **भिन्न परिस्थितियां:-** अर्द्ध विकसित देशों की परिस्थितियां विकसित देशों की तुलना मे भिन्न होती है जैसे जनसंख्या आकार व वृद्धि औद्योगिक वातावरण पूँजी एवं मुद्रा बाजार तथा तकनीकी स्तर आदि।

(ii) **सरकार की भूमिका:-** अर्द्ध विकसित देशों में सरकार की भूमिका को अनिवार्य माना जाता है जबकि यह मॉडल सरकार की भूमिका अनावश्यक मानता है।

(iii) **पूर्ण रोजगार की अनुपस्थिति:-** मॉडल की यह मान्यता अर्द्धविकसित देशों मे न तो पूर्ण रोजगार की स्थिति पायी जाती और न अनैच्छिक बेरोजगारी की समस्या है।

(iv) **पूँजी उत्पादन अनुपात की स्थिरता:-** अर्द्धविकसित देशों में पूँजी-उत्पादन अनुपात का सही अनुमान लगाना सम्भव नहीं है । विकसित देशों के संदर्भ में पूँजी उत्पादन अनुपात की स्थिरता की संकल्पना प्रसांगिक हो सकती है।

संस्थागत परिवर्तन:- इन मॉडलो में संस्थागत घटकों को स्थिर जान लिया गया है जबकि अल्पविकसित देशों मे संस्थागत परिवर्तन के बिना आर्थिक विकास सम्भव नहीं है।

10.8 शब्दावली

स्थैगिक मॉडल - जिसमें परिवर्तनशील घटकों के साम्य का अध्ययन किया जाता है । प्रावेगिक मॉडल - जिसमें परिवर्तनशील घटकों के परिवर्तन पथ का अध्ययन किया जाता है।

औसत बचत प्रवृत्ति	(Average Propensity to save)
सीमान्त बचत प्रवृत्ति	(Marginal Propensity to save)
पूंजी गुणांक	(Capital Coefficient)
व्युत्क्रम	(Reciprocal)
त्वरक	(Accelerator)
गुणक	(Multiplier)

10.9 संदर्भ ग्रंथ

- डॉ. मृगेश पाण्डे- आर्थिक वृद्धि एवं विकास

- M.L. झिगल-विकास का अर्थव्यवस्था एवं आयोजन
- V.C. सिन्हा-आर्थिक से वृद्धि और विकास
- R.K. Lekhi- The Economics of Development and Planning
- Todaro-smith- Economic Development
- J.K. Mehta-Economic Development: Principle and Problem
- E.Shapiro-e Macro Economics Analysis

निबंधात्मक प्रश्न

1. हैरोड-डोमर की व्याख्या एवं मूल्यांकन विकासशील अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ मे किजिए ?
2. आय के सतत् विकास से आपका क्या अभिप्राय है?
3. हेरोड-डोमर 'मॉडल में ली गई कुछ प्रमुख मान्यताएं कौन-कौन सी है?
4. छुरीधार संतुलन से आपका अभिप्राय है?
5. हैरोड-डोमर विकास मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। भारत जैसे देश को विकासशील देश में इसे किस सीमा तक क्रियान्वित किया जा सकता है।

इकाई 11
सोलो मॉडल
The Solow Model

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.3 वृद्धि का सम्भव स्वरूप
11.4 आधारभूत समीकरण का रेखाचित्र द्वारा विश्लेषण
11.5 स्थिरता की स्थिति
11.6 निष्कर्ष
11.7 सोलो मॉडल की हैरोड-डोमर मॉडल से तुलना
11.8 सोलो मॉडल की आलोचनाएँ
11.9 सोलो मॉडल और विकासशील देश
11.10 संदर्भ ग्रंथ
11.11 कुछ निबंधात्मक प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्न बिन्दुओं के बारे में जानकारी हासिल कर सकेंगे

- वृद्धि का सम्भव स्वरूप (Possible Growth pattern)
- आधारभूत समीकरण का रेखाचित्र द्वारा विश्लेषण Graphic Analysis of Basic Equation
- स्थिरता की स्थिति (Stable Sustention)

- सोलो मॉडल की हैरोड-डोमर मॉडल से तुलना
- सोलो मॉडल की आलोचनाएँ
- सोलो मॉडल और विकासशील देश

11.1 प्रस्तावना

डॉ. सोलों के वृद्धि मॉडल का मुख्य लक्ष्य उन्नत देशो में सतत् आर्थिक विकास हेतु हैरोड—डोमर द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण आर.एम. सोलो ने अपने शोध लेख Contribution to the theory of Economics Growth .में स्थिर पूंजी श्रम अनुपात की मान्यताओं को स्वीकार नहीं किया है। सोलो के अनुसार हैरोड-डोमर मॉडल में जिन चाकु धार वाले संतुलन की बात कही गयी वह इस मान्यता पर आधारित है कि उत्पादन स्थिर अनुपातों की दशा में होता है तथा उत्पादन में श्रम तथा पूंजी को प्रतिस्थापित करने की कोई समभावना नहीं होती है। इस कारण हैरोड का मॉडल साम्य की छुरीधार कहा जाता है। उपरोक्त मान्यता अवास्तिविकता के दोष से युक्त है क्योंकि वास्तविक स्थितियों में साधनों का प्रतिस्थापन संभव है। प्रो. सोलो का यह मत है कि पूंजी श्रम अनुपात में परिवर्तन करने से आर्थिक विकास प्रक्रिया में लोचनाशीलता बढ़ जाती है। अर्थात् संसाधनों की वर्तमान स्थिति के अनुरूप उत्पादन कम या अधिक पूंजी श्रम अनुपात वाली तकनीकी को अपनाना संभव हो जाता है। सोलो का मानना है कि स्थिर अनुपातों वाली मान्यता के हटाने से हेरोड के सतत् विकास के मार्ग का अन्तनिर्हित अस्थिरता को दूर करने के साथ साथ संतुलित को कायम रखा जा सकता है। प्रो. सोलो के अनुसार Gw और Gn के बीच जो नाजुक संतुलन है उत्पादन में स्थिर अनुपात की महत्वपूर्ण मान्यता पर निर्भर करता है। यदि इस मान्यता को हटा दिया जाये तो Gw और Gn के बीच छुरी धार संतुलन गायब हो जायेगा। प्रो. सोलो ने Gw और Gn के बीच असंतुलन का हल उपलब्ध करवा चुका है।

सोलो मॉडल की मान्यता

1. पैमाने के स्थिर प्रतिफल होते है अन्य शब्दों में उत्पादन फलन प्रथम डिग्री का समरूप होते है।

$$Y= F (K, L)$$

Y= output

K = Capital stock

L= Supply of Labour Force

उत्पादन फलन नव प्रतिष्ठित प्रकृति का है। पैमाने के स्थिर प्रतिफल पूंजी श्रम के प्रतिस्थापन और घटती सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। पैमाने के स्थिर प्रतिफल का अर्थ है

जिस अनुपात में आगत में परिवर्तन उसी अनुपात में उत्पादन में परिवर्तन होगा। अत: हम उत्पादन फलन निम्न प्रकार लिख सकते हैं।

2. एक संमिश्र वस्तु का उत्पादन होता है।
3. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति है।

$$ay = f(ak, al) \quad \text{एवं } a>1$$

4. पूंजी का मूल्य हास नहीं होता जिनके फलस्वरूप निवेश, बचते, और यह पूंजी कोष में होने वाले परिवर्तन (K) के बराबर होती है

$$I = \Delta k = sk$$

5. उत्पादन के दो साधनों - श्रम और पूंजी के द्वारा उत्पादित किया जिन्हें उनकी सीमांत भौतिक उत्पादकता के अनुसार भुगतान किया जाता है।

6. पूंजी व श्रम को एक दूसरे से प्रतिस्थापित किया जाता है।

7. मजदूरी एवं कीमते लाचशील मानी जाती है।

8. तकनीकी प्रगति तटस्थ है।

9. श्रम शक्ति की वृद्धि दर बर्हिजात चरों द्वारा निर्धारत होती है।

$$L = Loe^{nt}$$

L= कुल उपलब्ध श्रम की पूर्ति

n=स्थिर सापेक्ष दर जिस पर श्रम बढ़ता है।

10. पूंजी का उपलब्ध स्टॉक पूर्ण उपयोग हो रहा है।

11.2 सोलो मॉडल

सोलो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में केवल एक संमिश्र वस्तु का उत्पादन मानकर चलते है। सोलो यह मानकर चलता है कि उत्पादन की दर Y ही अर्थव्यवस्था की वास्तविक आय है। आय का कुछ मांग उपभोग कर लिया जाता है और शेष भाग को बचाकर निवेश कर दिया जाता है। उत्पादन का वह भाग जिसे बचा लिया जाता है उसे s द्वारा अंकित किया जाता है इसलिए sY(t) बचत की दर होगी। पूंजी स्टॉक को K(t) द्वारा दर्शाया गया। पूंजी स्टॉक को बढ़ाने की दर पर मूल निवेश dk/dt से दिखाया गया है। निवेश-बचत समीकरण यह है I=S

$$K = sY \qquad ...1$$

उत्पादन के साधन पूँजी (K)व श्रम L को उत्पादन फलन में दिखाने से

$$Y = f(K, L) \qquad ...2$$

समीकरण ② को समीकरण ① मे रखने पर हमे प्राप्त

$K = Sf(K_1L)$ ...3

L = कुल रोजगार स्तर

समीकरण ③ तकनीकी सम्भावनाओं को व्यक्त करता है। और पूर्ति पक्ष को व्यक्त कर रही है अभी हम मांग पक्ष को शामिल नहीं कर रहे है। L कुल रोजगार के स्तर को क्योंकि बर्हिजनित रूप से जनसंख्या में वृद्धि होती रहती है अतः श्रम शक्ति एक स्थिर सापेक्ष दर से बढ़ती जाती है

$$L(t) = Loe^{nt} \quad ...4$$

L = उपलब्ध श्रम की पूर्ति को व्यक्त कर रहा है

तकनीकी उन्नति के अभाव में n हैरोड की प्राकृतिक दर होगी। समय (t) में L श्रम की मात्राओं को रोजगार मे लगाया जायेगा। जबकि समय O से t तक श्रम शक्ति घांतकिय रूप से बढ़ती हुई पूर्णतः श्रम की बेलोचदार मांग है अर्थात् श्रम-पूर्ति वक्र Y अक्ष के समानान्तर होगा। पैमाने के स्थिर प्रतिफल के दिये होने पर यदि पूंजी और श्रम पूर्ति तीव्रता से बढ़ते है, तब उत्पादन और बचत भी उसी अनुपात है। ऐसी स्थिति में संतुलित विकास सम्भव है।

$$K = Sf(K, Loe^{nt}) \quad ...5$$

11.3 वृद्धि का सम्भव स्वरूप Possible Growth Pattern

यह मालूम करने के लिए कि क्या सदैव कोई पूंजी संचय पथ होता है तथा नहीं तो जो सतत् अवस्था की ओर श्रम शक्ति के अनुरूप हो। इस हेतु प्रो. सोलो ने एक नयी दर को श्रम पूंजी अनुपात $\left(\frac{K}{L}\right)$ के रूप मे लिया है और समय के साथ r मे आनुपातिक परिवर्तन को निम्न प्रकार निरूपित किया है

$$\frac{r}{r} = \frac{k}{k} - \frac{L}{L} \quad ....6$$

समय के साथ r में परिवर्तन = पूंजी स्टॉक मे परिवर्तन - समय के साथ श्रम शक्ति मे आनुपातिक परिवर्तन

समीकरण ⑥ से $K = Sf(L, K)$ एवं $\frac{L}{L} = n$ को समीकरण ⑥ मे प्रतिस्थापित करने

$$\frac{r}{r} = \frac{sf(K,L)}{K} - n$$

अथवा $$r = r\frac{sf(K,L)}{K} - nr \quad .....7$$

पैमाने का स्थिर प्रतिफल है जिसका अर्थ है यह है कि उत्पादन फलन प्रथम डिग्री के समरूप है इसलिए एक बार L से गुणा एवं L से विभाजित करने से समीकरण ⑦का स्वरूप बदलने से

$$r = r\frac{sfL(\frac{k}{L}, 1)}{K} - nr$$

अथवा $r = r\frac{L}{K}sf\left(\frac{K}{L}, L\right) - nr$

जैसा की ऊपर बताया गया है कि सोलो $r = \frac{K}{L}$ मानता है, इसी प्रकार $\frac{1}{r} = \frac{L}{K}$ होगा।

$$r = r\frac{1}{r}sf(r, 1) - nr$$

$$r = sf(r, 1) - nr \qquad ...8$$

समीकरण ⑧ मे $r =$ पूंजी श्रम अनुपात की परिवर्तन दर है $sf(r, 1)$ = प्रति श्रमिक पूंजी फलन के रूप में प्रति व्यक्ति उत्पादन तथा उत्पादकता को बताता है। $nr =$ पूंजी श्रम अनुपात के किसी भी मूल्य पर प्रति श्रमिक कितना विनियोग किया जाये जिससे पूंजी श्रम अनुपात में परिवर्तन को स्थिर बनाया रखा जा सके।

11.4 आधारभूत समीकरण का रेखाचित्र द्वारा विश्लेषण

यदि समीकरण ⑧ मे $r = 0$ रखने पर $sf(r, L) = nr$ होगें, तब पूंजी श्रम अनुपात स्थिरांक अर्थात् पूँजी स्टॉक मे वृद्धि आवश्यक रूप से उसी दर से होगी जिस दर से श्रम शक्ति बढ़ेगी या श्रम शक्ति का प्रति श्रमिक उत्पादन स्थिर रहेगा। यह स्थिति सन्तुलित विकास को व्यक्त करती है। इसका रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है

रेखाचित्र 11.1

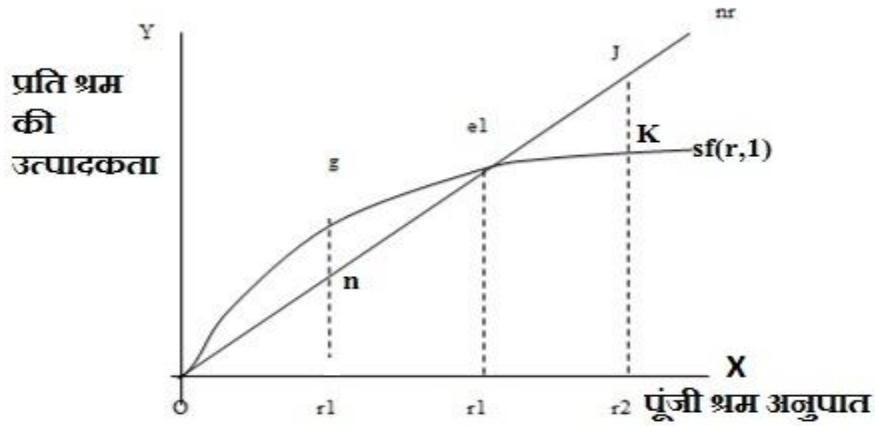

एक रेखा nr जो मूल बिन्दू से गुजरने वाली। कुल उत्पादकता वक्र जो फलन है $sf(r, 1)$ तथा ऊपर की तरफ उन्नतोदर है। जो पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को व्यक्त करता है। और कटाव बिन्दू पर e' पर $nr = sf(r, 1)$ है।

B. अस्थिरता की स्थितियां-

यदि $sf(r,1) > nr$ तो ऐसी स्थिति मे पूंजी एवं उत्पादन में वृद्धि श्रम शक्ति की अपेक्षा अधिक होगी जब तक की पूंजी का प्रारम्भिक स्टॉक r के बराबर नहीं आ जाता। यदि $r_1 > r^*$ और बचत की पूर्ति $gr_1 > hr_1$ निवेश की मांग से। बिन्दू g से बिन्दू e तक पूंजी मे तेजी से वृद्धि होगी।

यदि $nr > sf(r_1\ 1)$ ऐसी स्थिति मे निवेश की मात्रा $Jr_2 > Kr_2$ बचत की पूर्ति से अधिक क्योंकि $r_2 > r_1$ से संतुलित विकास के लिए पूंजी श्रम अनुपात (r_2) के मूल्य को कम करके r_1 के बराबर रखना होगा। **स्थिरता की स्थिति (Stable Situation)**

स्थिरता की स्थिति उत्पादकता वक्र sf(r,1) की ढाल पर निर्भर करती है। जैसा की रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट है।

रेखाचित्र 11.2

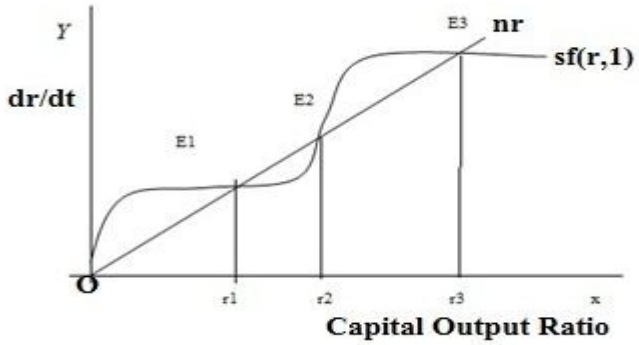

उत्पादकता वक्र sf(r,1) मूल बिन्दू से खिची गयी रेखा nr को तीन बिन्दूओं E_1, E_2, E_3 पर करता है। बिन्दू 0 से E_1 तक उत्पादकता वक्र की ढाल बता रही है कि पूंजी ने वृद्धि धीमी है बिन्दू E_2 से E_3 तक पूंजी मे तेजी से वृद्धि हो रही है। अतः पूंजी श्रम अनुपात r_1 या r_3 पर संतुलित वृद्धि होगी तो वास्तव मे दोनों में से किसी भी स्थिति मे श्रम की पूर्ति व पूंजी स्टॉक एवं वास्तविक उत्पादन की प्राकृतिक वृद्धि दर (n) पर विस्तार करेगी। सोलो मे इसे ऊपर के रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया है में विकास की सभी सम्भावनो को समाप्त नहीं कर देता। वे दो अन्य सम्भावनाओं पर प्रकाश डालते है जिन्हे निम्न रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

रेखाचित्र 11.3

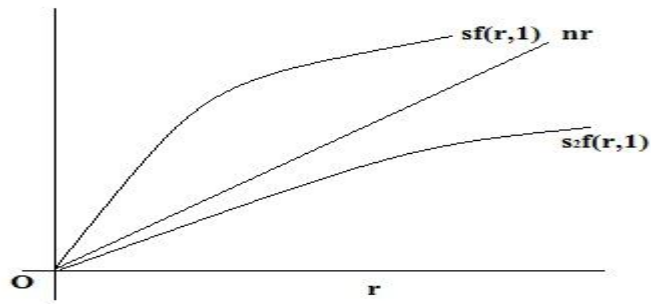

रेखाचित्र मे nr किरण संतुलित विकास पथ पर दर्शाता है। जहां अभिष्ट और प्राकृतिक विकास दरें बराबर है।

1. **प्रथम सम्भावना- उत्पादकीय व्यवस्थाः-** sf(r,1) वक्र जो nr से ऊपर है।

   एक बहुत उत्पादकीय व्यवस्था को व्यक्त करता है। जिसमें पूंजी आय में श्रम पूर्ति अपेक्षा अधिक शीघ्रता से वृद्धि होती है। इस व्यवस्था में जो निरन्तर पूर्ण रोजगार है आय और बचत इतनी बढ़ती है कि पूंजी श्रम अनुपात सीमा रहित बढ़ती है।

2. **द्वितीय सम्भावना - अनुपादकीय व्यवस्थाः-** वक्र एक अनुपादकीय स्थिति को प्रदर्शित करता है जिसके अन्तर्गत पूर्ण रोजगार पथ सदैव कम हो रही प्रति व्यक्ति आय की ओर ले जाता है क्योंकि यह नीचे है फिर भी इस व्यवस्था में कुल आय बढ़ती है क्योंकि शुद्ध विनियोग सदैव धनात्मक होता है तथा श्रम पूर्ति बढ़ रही है। यह उल्लेखनीय है कि दोनों व्यवस्थाओं मे निरन्तर घटती सीमान्त उत्पादकता पायी जाती है।

11.6 निष्कर्ष

प्रो. सोलो ने अपने मॉडल का निष्कर्ष प्रस्तुत किया। सोलो मॉडल हैरोड-डोमर का वैकल्पिक प्रारूप् है जिसमे नव प्रतिष्ठित उत्पादन फलन का प्रयोग किया गया है। सोलो के अनुसार ''जब परवर्ती समानुपातों तथा पैमाने के स्थिर प्रतिफलों की सामान्य नवक्लासिकी परिस्थितियों के अन्तर्गत उत्पादन होता है तो वृद्धि की प्राकृतिक तथा अभिष्ट दरों में कोई साधारण विरोध सम्भव नहीं है। कोई छुरी धार संतुलन नहीं भी हो सकता। व्यवस्था श्रम शक्ति की वृद्धि की किसी भी दी हुई दर मे समायोजन कर सकती है और अन्ततः स्थिर समानुपातिक विस्तार की अवस्था तक पहुच सकती है'' अर्थात्

$$\frac{\Delta K}{K} = \frac{\Delta L}{L} = \frac{\Delta Y}{Y}$$

11.7 सोलो मॉडल की हैरोड-डोमर मॉडल से तुलना

1. सोलो मॉडल हैरोड-*डोमर* मॉडल की एक वैकल्पिक प्रारूप है जिसमे नव प्रतिष्ठित उत्पादन फलन का प्रयोग किया गया है।
2. सोलो मॉडल में हैरोड-*डोमर* मॉडल की स्थिर अनुपातों वाली मान्यताओं को छोड़कर शेष सभी मान्यताओं को स्वीकार किया है।
3. हैरोड-डोमर मॉडल दीर्घकालीन आर्थिक व्यवस्था मे अधिक से अधिक छुरी धार संतुलन कहा जा सकता है यदि इस सन्तुलन मे जरा सा भी विचलन दीर्घकालीन स्थिति और अवस्थिति ला देता है। सोलो ने इसके विपरीत उत्पादन मे स्थिर अनुपातों वाली

मान्यताओं का परित्याग किया सतत् विकास का स्थायी एवं मजबुत पथ खोजने का प्रयास किया।

4. सोलो मॉडल में, संतुलित विकास हैरोड मॉडल के अनुसार Gw श्रम पूंजी अनुपात में आवश्यक परिवर्तनों की सहायता से श्रम शक्ति की वृद्धि दर Gn के अनुरूप सदैव समायोजन कर लेती है जबकि हैरोड-मॉडल में ऐसा सम्भव नहीं है।
5. हैरोड के विपरीत सोलो क मानना है कि पूंजी एवं श्रम के बीच प्रतिस्थापन की सम्भावना के कारण विकास प्रक्रिया में समायोजन शीलता बढ़ जाती है।
6. विकास की दीर्घकालीन दर को विस्तारशील श्रम-शक्ति तथा तकनीकी प्रगति निर्धारित करते है परन्तु हैराड-डोमर ने श्रम-शक्ति और तकनीकी प्रगति को स्थिर मान लिया है। जबकि हैरोड मॉडल में इन प्राचलों को स्थिर मानता है। परन्तु सोलो मॉडल मे इनको स्थिर नहीं माना गया है।

11.8 सोलो मॉडल की आलोचनाएँ Criticism of Solow Model

प्रो. सेन ने लक्ष्य किया की उनका मॉडल कई दृष्टियो से कमजोर है।

1. **विकास दर के बीच सन्तुलन की समस्या अध्ययन नहीः-** सोलो ने अपने मॉडल मे Gw और Gn में सन्तुलन की समस्या भर को ही लेता है और Ga और Gw मे सन्तुलन समस्या को छोड़ देता है।
2. **निवेश फलन अनुपस्थित हैः-** सोलो के मॉडल मे निवेश फलन नहीं है और यदि इसे एक बार सम्मिलित कर लिया जाए तो सोलो के मॉडल मे भी अस्थिरता की हैरडीय समस्या उत्पन्न हो जायेगी।
3. **साधनों की कीमतों मे लोचशीलता समस्या ला सकतीः-** सोलो साधनों की कीमतो को लोचशीलता मानता है जो सतत् वृद्धि के मार्ग मे कठिनाइयाँ ला सकती है।
4. **अवास्तिविक मान्यताओं पर आधारितः-** सोलो का मॉडल अवास्तविक मान्यताओं आधारित है कि पूंजी समरूप और लोचशील है वास्तव मे पूंजी पदार्थों में भिन्नता पाई जात है। और सामूहीकरण की समस्या उत्पन्न करते है।
5. **तकनीकी प्रगति का अध्ययन नहीं** :-सोलो तकनीकी प्रगति का उत्पादक तत्व छोड़ देता है और इसे विकास प्रक्रिया का बाह्यकारक मानता है। वह इसमें निवेश की प्रक्रिया द्वारा तकनीकी प्रगति के प्रोत्साहन की समस्या को अनभिज्ञ करता है।

11.9 सोलो मॉडल और विकासशील देश (Solow's Model and Developing Countries)

सोलो मॉडल सीधे तोर पर विकासशील देशों में लागू नहीं होता है यह मॉडल मुख्यतः विकसित देशो की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की स्थिर विशेषताओं का वर्णन करता है। जबकि

विकासशील अर्थव्यवस्था पूर्वस्फूर्ती की अवस्था में है। इस प्रकार सोलो मॉडल इन देशो मे नीति निर्माण के लिए प्रयोग मे नहीं लिया जा सकता हैं।

फिर भी सोलो मॉडल मे कुछ अंश है जहाँ इस मॉडल में प्रासंगिता का अनुभव होता है।

1. **तकनीकी द्वेतवादः-** सोलो मॉडल अल्पविकसित देशो मे तकनीकी द्वेतवाद के तत्व की व्याख्या करने सहायक होता है अर्थव्यवस्था के दोनों क्षेत्रों में उत्पादन के तकनीकी गुणांको को परिवर्तनशील मानकर भी यह मॉडल तकनीकी द्वेतवाद का वर्णन करने में सफल होता है।
2. **अदृश्य बेरोजगारीः-** सोलो का मॉडल मे जब तक आय धनात्मक रहती, बचतों और पूंजी स्टॉक बढ़ता है। परन्तु सोलो मॉडल यह बताना है कि अर्थव्यवस्था मे यह भी सम्भावना पायी जाती है जबकि आय धनात्मक होने पर भी बचत शून्य हो जाती है। ऐसी स्थिति मे और विनियोग नहीं होगा तथा पूंजी कि स्टॉक स्थिर रहेगा- परन्तु श्रम शक्ति बढ़ती रहेगी- श्रम की सामान्त उत्पादकता कम हो जायेगी-जिससे उत्पादकता न्यूनतम वास्तविक मजदूरी दर से नीच आ जायेगी। ऐसी स्थिति मे अदृश्य बेरोजगारी प्रकट हो जायेगी। यह सम्पूर्ण कहानी विकासशील देयों से सम्बन्धित है उन्ही मे लागू होती है।
3. सोलो के अनुसार यदि वास्तविक मजदूरी दर किसी निश्चित स्तर पर स्थिर रखी जाती है तो रोजगार का स्तर ऐसा होना चाहिए की श्रम की सामान्त उत्पादकता कायम रहे। यदि मजदूरी की दर श्रम-पूंजी अनुपात की कमी के साथ सम्बन्धित होती है तो बेराजगारी उत्पन्न होती है। ऐसा अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के कृषि क्षेत्र में अक्सर होता है।

11.10 संदर्भ ग्रंथ

A.K. Sen – Growth Eonomics

R.K. Lekhi – The Economics of Development and planning

एम. एल. झिंगन - विकास का अर्थशास्त्र और आयोजन

डॉ. वी. सी. सिन्हा - आर्थिक संवृद्धि और विकास

रामा वर्मा – समष्टि आर्थिक विश्लेषण

Solow, R.M.: 'Contribution to the theory of Economic Growth'

11.11 कुछ निबंधात्मक प्रश्न

1. सोलो के दीर्घकालीन वृद्धि मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। यह हैरोड-डोमर पर कैसे सुधार है।
2. सोलो के दीर्घकालीन वृद्धि मॉडल की व्याख्या कीजिये। यह अल्पविकसित देशो में कहाँ तक लागू होता है।

इकाई - 12

भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि की प्रवृत्तियां

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था
12.3 1951 के बाद का आर्थिक नियोजन तथा आर्थिक वृद्धि
1991 के आर्थिक सुधारों के बाद आर्थिक वृद्धि
12.4 नियोजन अवधि के दौरान वृद्धि दर
12.4.1 नियोजन का प्रथम दशक (1951-61)
12.4.2 नियोजन का दूसरा दशक (1961-71)
12.4.3 नियोजन का तीसरा दशक (1971-81)
12.4.4 नियोजन का चौथे दशक के दौरान वृद्धि दर (1981-91)
12.4.5 नियोजन का पाँचवे दशक के दौरान वृद्धि दर (1981-91)
12.4.6 नियोजन का छठे दशक के दौरान वृद्धि दर (1991-2001)
12.4.7 नियोजन का छठे दशक के दौरान वृद्धि दर (2001-2011)
` 12.4.8 बारहवीं योजना का उद्देश्य (2012-17)
12.5 प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर
12.6 1951 के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था में क्षेत्रवार वृद्धि
12.6.1 1950-51 बाद से कृषि की वृद्धि दर
12.6.2 औद्योगिक क्षेत्र में वार्षिक वृद्धि दर
12.7 आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं में वृद्धि दर
12.7.1 ऊर्जा एवं शक्ति
12.7.2 परिवहन व संचार
12.7.3 बैंकिंग एवं वित्त
12.8 सारांश
12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था किस प्रकार धीरे-धीरे वृद्धि की ओर उन्मुख हुई।

12.1 प्रस्तावना

भारत, जिसे विश्व के सबसे बड़े व सर्वाधिक स्थिर लोकतंत्र के रूप में जाना जाता है, मिश्रित अर्थव्यवस्था का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। पिछले चालीस वर्षों से अधिक समय से भारत में अर्थव्यवस्था के सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र कंधे से कंधा मिलाते हुए एकसाथ क्रियाशील हैं। इस सहयोगपरक क्रियाशीलता का उद्देश्य है भारत की जड़ व निर्भर अर्थव्यवस्था को आधुनिक बनाते हुए उसे आत्म-निर्भर, प्रगतिशील व विकास उन्मुखी अर्थव्यवस्था में रूपांतरित करना।

भारत की जीव-रासायनिक प्रौद्योगिकी ने न केवल देश को अपनी सतत बढ़ती जनसंख्या को दो वक्त की रोटी देने में सहायता पहुंचाई है बल्कि उसने पर्याप्त मात्रा में ऐसे कच्चे संसाधन भी सुलभ कराए हैं जो भारत के अनेक पारम्परिक उद्योगों को कुशल संचालित करते आए हैं। उद्योगों के क्षेत्र में भारत विश्व के 10 सर्वाधिक औद्योगीकृत देशों में से एक है। भारत आज प्रायः समस्त उपभोक्ता सामग्री में आत्म-निर्भर है जबकि इस्पात, सीमेन्ट, रासायनिक खाद, भारी मशीनरी व कलपुर्जों आदि के क्षेत्र में वह तेजी से अपनी निर्धारित क्षमता का उत्पादन कर रहा है। देश में पूंजी पदार्थों के उत्पादन में अत्यन्त प्रभावशाली वृद्धि हुई है। अब भारत इस स्थिति में है कि वह न्यूनतम स्तर पर पूंजी पदार्थ आयातित करते हुए अपने अधिकतम उद्योगों को स्थापित व अनुरक्षित कर सकता है। भारत ने तेजी से बढ़ते अपने प्राथमिक व माध्यमिक क्षेत्रों को सुचारू आधार देने के लिए काफी विशाल आधारभूत-संरचना का निर्माण कर लिया है। उदाहरण के लिए आज भारत में सिंचाई परियोजनाओं व नहरों तथा जल व तापीय आधार पर उत्पादित बिजली व उसके वितरण का प्रभाव जाल बिछा हुआ है। आज भारतीय रेल व्यवस्था काफी हद तक बिजली व डीजल से संचालित है और वह एशिया की सबसे बड़ी रेल व्यवस्था है। दुनिया में भारतीय रेलवे का तीसरा स्थान है। इसके साथ ही भारतीय बैंकिंग व वित्तीय प्रणाली सतत बढ़ते हुए राष्ट्र व्यापी हो चली है। आज वह ऐसी स्थिति में है कि वह देश के दूर दराज तक से आर्थिक विकास के लिए सामुदायिक बचत को प्रोत्साहित व संवर्द्धित कर सकती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था सुधारों के बाद से और भी अधिक प्रभावशाली उपलब्धियां अर्जित कर सकती थी बशर्ते सरकार वो गलतियां नहीं करती जो उसने वास्तव में की। 1991 के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास पर ध्यान देने के लिए यह आवश्यक है कि संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण की और भी ध्यान हम स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था की सच्ची तस्वीर पर अपना ध्यान केन्द्रित करें।

12.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था

भारत को सदैव संसाधनों के संदर्भ में एक ऐसे अमीर देश के रूप में जाना जाता रहा है जहां गरीब बसते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित थी

(अ). 1951 में भारत की जनसंख्या 351 मिलियन थी। यह जनसंख्या न केवल काफी विशाल थी बल्कि काफी तेज दर से बढ़ भी रही थी।

(आ). कृषि लोगों का प्रमुख व्यवसाय था जो कार्यशील जनसंख्या के 70% वर्ग को रोजगार सुलभ कराता था। सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी) को उसका योगदान 56% से भी अधिक था।

(इ). देश में उपभोक्ता माल के कुछ ही उद्योग स्थापित थे जैसे सूती व पटसन कपड़ा उद्योग, चीनी उद्योग तथा दिया-सलाई उद्योग। कई औद्योगिक इकाईयां विदेशी स्वामित्व अथवा प्रबन्धन की परिचायक थी।

(ई). आधारभूत-संरचनात्मक सुविधाएं बाबा आदम के जमाने की थी। देश के कई भागों में परिवहन की समुचित व्यवस्था का अभाव था और न ही बैंकिंग सुविधाएं ही सुलभ थी। देश मे बचत और निवेश को बढ़ाव देने वाली संस्थाएं या तो विद्यमान ही नहीं थी और यदि वे थी भी तो पूर्णतः विकसित नहीं थी।

(उ). अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में माल और सेवाओं में प्रयुक्त तकनीकें भी काफी पुरानी थीं। देश में घोर बेरोजगार या अल्प-रोजगार व्याप्त था। देश के व्यापक प्राकृतिक व मानवीय संसाधन घोर उपेक्षा के शिकार थे और उनका समुचित उपयोग प्रायः अनुपस्थित था। लोगों की प्रति व्यक्ति आय समूची दुनिया के संदर्भ में प्रायः नगण्य थी।

(ऊ). जहां एक ओर लोगों का एक छोटा समूह सर्वसम्पन्न था (जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापारी, बिचौलिये व उद्योगपति) और उनका जीवन स्तर काफी समुन्नत, वहीं दूसरी और जनता का अधिकांश भाग घोर अभावग्रस्त था, उनका कोई विशिष्ट जीवन स्तर ही नहीं था। कुल जनसंख्या का 50%, और कुछ राज्यों में तो उसका 60% तक काफी गरीब था। उनका रोटी, कपड़ा और मकान का उपभोग स्तर काफी गिरा हुआ था।

12.3 1951 के बाद का आर्थिक नियोजन तथा आर्थिक वृद्धि

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री तथा भारत में आर्थिक नियोजन के सूत्रधार जवाहर लाल नेहरू की यह धारणा थी कि :

(i). लाभ के संवेग पर आधारित भारतीय अर्थव्यवस्था का निजी क्षेत्र मूल एवं आधारभूत उद्योंगों के विकास की उपेक्षा करेगा। इसके अतिरिक्त, निजी क्षेत्र वित्तीय व प्रबंधन की दृष्टि से दुर्बल है और इसलिए वह अपने बूते देश के तीव्र विकास में सर्वथा असमर्थ सिद्ध होगा।

(ii). इस्पात, परिवहन, बैंकिंग, बीमा जैसे क्षेत्रों में सरकार को अपना उच्च नियंत्रण स्थापित करना चाहिए।

(iii). मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रणाली भारत के लिए एक आदर्श प्रणाली सिद्ध होगी क्योंकि इसमें :-

——निजी क्षेत्र व बाजार व्यवस्थाएं उनके अपने निर्दिष्ट विधि, दर व कालावधि के अनुरूप आर्थिक वृद्धि संसाधित कर सकेंगे; तथा

——सार्वजनिक क्षेत्र (इस अर्थव्यवस्था के अंतर्गत) मूल व आधारभूत उद्योग संचालित करते हुए आधारभूत-संरचनात्मक सुविधाएं भी जुटा सकेगा।

भारत में नियोजन के सामाजिक-आर्थिक उद्देश्यों का मंतव्य उत्पादन व रोज़गार, आधुनिकीकरण व आत्म-निर्भरता लोगों के बीच आय व सम्पत्ति के पुनर्वितरण तथा शोषण के अभाव व समानता के आधार पर समतावादी समाज की रचना द्वारा राष्ट्रीय व प्रति व्यक्ति आमदनी में तीव्र वृद्धि संसाधित करना है। इस दृष्टि से भारत में भारी उद्योगों के ज़रिए तीव्र औद्योगिकीकरण के रूसी मॉडेल को अपनाने का उपक्रम किया गया।

योजना आयोग ने पहले भारी उद्योग और सदैव उसके साथ-साथ आधारभूत संरचना के विकास की प्राथमिकताओं को सुनिश्चित किया। भारत की प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में उससे संबंधित काल-अवधि के भीतर स्पष्ट विकास-लक्ष्य निर्धारित किए गए। योजना अवधि के दौरान और उसके अंत में गलतियों को सुधारने, आवश्यक संशोधनों तथा समायोजना को कार्यरूप देने और क्रियान्वयन की सफलता व असफलता के आकलन संबंधी उपक्रम लगातार किए जाते रहे।

आर्थिक सुधारों के बाद का आर्थिक नियोजन तथा आर्थिक वृद्धि

आर्थिक सुधारो का मूल्यांकन

जुलाई 1991 से सरकार ने आर्थिक सुधार कार्यक्रम के तहत समष्टि स्थिरीकरण और ढांचागत सुधारों की दशा में कार्य किया है। जहां तक समष्टि आर्थिक स्थिरीकरण का प्रश्न है, इन सुधारों का मिला-जुला प्रभाव रहा है। उदाहरण के लिए, मई 2002 के अन्त तक मुद्रास्फीति की दर 2 प्रतिशत वार्षिक से कम थी परन्तु बाद में इसमें वृद्धि हुई और 9 अगस्त 2008 को यह 12.6 प्रतिशत हो गई। बाद में इसमें गिरावट आई और 4 अप्रैल 2009 से मुद्रास्फीति की दर मात्र 0.18 प्रतिशत थी। वर्ष 2010-11 के दौरान मुद्रास्फीति की दर 9.6 प्रतिशत के स्तर को छू गई जो पिछले दस वर्षों में सर्वाधिक थी। 2011-12 में मुद्रास्फीति की दर 8.9 प्रतिशत तथा 2013-14 में 6.0 प्रतिशत थी। जहां तक राजकोषीय असंतुलन का प्रश्न है, केन्द्र सरकार का राजकोषीय घाटा जो 1991-92 में सकल घरेलू उत्पाद का 5.6 प्रतिशत था, 2007-08 में सकल घरेलू उत्पाद का 2.5 प्रतिशत रह गया। परन्तु 2008-09 में बढ़कर यह सकल घरेलू उत्पाद का 6.0 प्रतिशत तथा 2009-10 में 6.5 प्रतिशत हो गया। 2012-13 में राजकोषीय घाटा सकल घरेलू सकल उत्पाद का 4.9 प्रतिशत तथा 2013-14 में 4.4 प्रतिशत था।सबसे अधिक सफलता विदेशी मुद्रा भंडार 1990-91 में केवल 2.5 महीने के आयातों के लिए काफी थे वहां 2007-08 में थे ये 14.4 महीने के आयातों के लिए, 2010-11 में 9.6 महीनों के लिए तथा 2013-14 में 7.8 महीनों के लिए काफी थे।

वास्तविक क्षेत्रों में भी ढांचागत सुधारो से मिले जुले परिणाम सामने आए हैं लेकिन 1991-92 तक 22 वर्षों की अवधि में राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर 6.3 प्रतिशत वार्षिक रही। ढांचागत सुधारों के पहले दो वर्षों में औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन में मंदी का दौर रहा। 1993-94 से इस क्षेत्र में फिर से उत्पादन बढ़ने लगा। पूरी आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि की औसत दर 7.4 प्रतिशत वार्षिक रही केवल 5.0 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर पर ही बढ़ पाया जबकि लक्ष्य 8.2 प्रतिशत प्रति वर्ष था। दसवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन मे तेजी से आई और उत्पादन की संवृद्धि 15.5 प्रतिशत तक पहुंच गई परन्तु अगले ही वर्ष 2008-09 में वैश्विक मंदी के परिणामस्वरूप, मात्र 2.5 प्रतिशत रह गई। वर्ष 2009-10 में औद्योगिक संवृद्धि की दर 5.3 प्रतिशत थी जो 2010-11 में बढ़कर 8.2 प्रतिशत हो गई। परन्तु ग्याहरवीं योजना के अंतिम वर्ष 2011-12 में औद्योगिक उत्पादन में मात्र 2.9 प्रतिशत वृद्धि हो पाई। इस प्रकार ग्यारहवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन में औसतन 6.9 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई। बाहरवीं योजना के प्रथम वर्ष 2012-13 में औद्योगिक संवृद्धि दर मात्र 1.0 प्रतिशत थी जो 2013-14 में मात्र 0.4 प्रतिशत रह गई। परन्तु यहां इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन ने जनवरी 2015 में राष्ट्रीय आय की जो नई श्रंखला जारी की है। (जिसमें आधार वर्ष 2011-12 लिया गया है।) उसके अनुसार 2012-13 औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर 2.4 प्रतिशत तथा 2013-14 में 4.5 प्रतिशत थी।

1990-91 से तीन वर्ष और निवेश दर में कमी आई। परन्तु 1994-95 में इन दोनों दरों में वृद्धि हुई। 1995-96 में 2001-02 के बीच बचत दर औसतन 24.0 प्रतिशत तथा निवेश दर 24.9 प्रतिशत थी। इस प्रकार दोनों दरें अपेक्षाकृत कम स्तरों पर थी। परन्तु 2003-04 के बाद से इन दरों में तेज वृद्धि हुई। वर्ष 2007-08 में बचत दर सकल घरेलू उत्पाद का 36.8 प्रतिशत तथा निवेश दर 38.8 प्रतिशत तथा निवेश दर 38.1 प्रतिशत के स्तर को छू गई। 2013-14 में बचत दर सकल घरेलू उत्पाद का 30.6 प्रतिशत तथा निवेश दर 32.3 प्रतिशत थी। (2013-14 के लिए अनुमान नई श्रृंखला पर आधारित है जिसका आधार वर्ष 2011-12 है। कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि बचत और निवेश दरों में यह वृद्धि विश्वसनीय आंकड़ों पर आधारित नहीं है। और भूलचूक कुद हद तक इस वृद्धि के लिए जिम्मेवार हैं। इसके अलावा, जैसा कि नागराज ने कहा है, हाल के वर्षों में बचत और निवेश दरों में वृद्धि का एक मुख्य कारण निजी क्षेत्र में बचत व निवेश दरों को तेज वृद्धि है। परन्तु इस क्षेत्र में अनुमान लगाने की विधियां दोषपूर्ण है। राजकुमार द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार निजी निगम क्षेत्र में वास्तविक सकल स्थिर पूंजी निर्माण, सरकारी अनुमानों का लगभग आधा है।

12.4 नियोजन अवधि के दौरान वृद्धि दरें

भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दरों के समाकलन की दृष्टि से हम स्थिर मूल्यों के आधार पर राष्ट्रीय आय में वृद्धि पर विचार करते हैं न कि वर्तमान प्रभावी मूल्यों के आधार पर। उदाहरण के लिए, वर्तमान दरों पर राष्ट्रीय आय में वृद्धि दो घटकों के समन्वित प्रभाव की द्योतक होती है:

(अ) वास्तविक वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन/सृजन में वृद्धि; तथा

(ब) मूल्य स्तर में वृद्धि।

यदि राष्ट्रीय आय में पहले घटक के कारण वृद्धि हो तो वह अर्थव्यवस्था में वास्तविक वृद्धि की परिचायक होती है क्योंकि उसके यह निहितार्थ होता है कि लोग अधिक माल व सेवाएं ग्रहण कर रहे हैं। यदि किसी समय दूसरे घटक के आधार पर राष्ट्रीय आय बढ़े, जैसे मूल्य स्तर में वृद्धि, तो ऐसी वृद्धि केवल मुद्रा के संदर्भ में हो आसमान वृद्धि की परिचायक होती है । परिणामत: मुद्रा के संदर्भ में राष्ट्रीय आय को स्थिर मूल्यों के आधार पर अपस्फीत (डिफेलेंट) किया जाता है ताकि उस अवधि में दर्ज मूल्य स्तर में वृद्धि के किसी भी प्रभाव को दूर किया जा सकें।

स्थिर मूल्य पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि समुदाय के सकल उत्पादनकारी प्रयासों का सूचकांक होता है । उससे देश के संदर्भ में माल व सेवाओं में अभिवृद्धि का बोध होता है । राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय दर में वार्षिक वृद्धि दर को निर्धारित किया गया है

तालिका 12.1: 1950-51 के बाद में वार्षिक वृद्धि दरें

जना	कुल राष्ट्रीय उत्पाद
प्रथम योजना(1951-56)	3.6
द्वितीय योजना(1956-61)	4.1
तृतीय योजना(1961-66)	2.5
चौथी योजना(1969-74)	3.3
पांचवी योजना(1974-79)	5.0
छठी योजना(1980-85)	5.4
सातवीं योजना(1985-90)	5.8
आठवीं योजना(1992-97)	6.7
नवी योजना (1997-2002)	5.5
दसवी योजना(2002-07)	7.6
ग्यारवीं योजना(2007-2012)	8.0

(स्रोत: भारत सरकार, विभित्र आर्थिक सर्वेक्षण, प्रतिवेदन

तालिका 12.1 से यह ज्ञात होता है कि (अ) राष्ट्रीय आय विषयक समस्त पंचवर्षीय योजना की वृद्धि संबंधी प्रवृत्तियां प्रथम पंचवर्षीय योजना से शुरू हुई

12.4.1 नियोजन का प्रथम दशक (1951-61)

इस दशक के दौरान पहली पंचवर्षीय योजना काल में भारतीय अर्थव्यवस्था में 3.6% की दर से वृद्धि हुई। इस योजना को भारी सफलता का श्रेय दिया गया क्योंकि इसके अंतर्गत उत्पादन लक्ष्य, विशेषतः कृषि के क्षेत्र में, आशातीत अर्जित किए जा सके। हालांकि पहली योजना की सफलता काफी अंशों में उस काल की अनुकूल जलवायु पर निर्भर थी, सरकार ने कई योजना-लक्ष्यों की उपलब्धि का सेहरा अपने सिर पर बांध लिया।

दूसरी पंचवर्षीय योजना पहली की अपेक्षा अधिक महत्त्वाकांक्षी थी परन्तु उसका पूर्णतः क्रियान्वयन नहीं हो सका। इसके लिए घोर वित्तीय सीमाएं उत्तरदायी थी। विशेषतः विदेशी विनियम संसाधनों का काफी अभाव व्याप्त था। इस योजना के मध्य काल में ही योजना आयोग को विवशतः कई विकास कार्यक्रमों एवं लक्ष्यों में काट-छांट को अंजाम देना पड़ा। इसके अतिरिक्त, इस अवधि में सामान्य मूल्य स्तर खतरनाक तरीके से बढ़ने लगा। इन समस्याओं के बावजूद, अर्थव्यवस्था की वार्षिक वृद्धि दर योजना काल में प्रभावशाली रूप से ऊंची उठ कर 4% दर्ज हुई। इस प्रकार, नियोजन के प्रथम दशक के दौरान सकल राष्ट्रीय उत्पाद 3.8% की वार्षिक दर से बढ़ा।

12.4.2 नियोजन का दूसरा दशक (1961-71)

दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक भारतीय नियोजकों तथा भारत सरकार इस नतीजे तक पहुंच गई कि अब भारतीय अर्थव्यवस्था 'टेक-ऑफ' (उडान के लिए ऊपर उठने) की अवस्था पर आ गई है। अतएवं, उन्होंने यह सुझाव दिया कि तीसरी योजना को आत्म निर्भरता व अर्थव्यवस्था के आत्म-विकास के लक्ष्य को स्वीकार करना चाहिए। योजना आयोग का यह भी तर्क था कि पहली दो योजनाओं ने तीव्र आर्थिक विकास के लिए आवश्यक संस्थात्मक संरचना निर्मित कर दी है। इसके साथ ही योजना आयोग को यह पीड़ाजनक अनुभूति भी थी कि कृषि उत्पादन के क्षेत्र में प्रकट धीमी वृद्धि दर भारत के तीव्र आर्थिक विकास की दिशा में एक अवरोधक कारक है। भारतीय अर्थव्यवस्था के तेजी से विकास के लिए आवश्यक मूल व आधारभूत उद्योगों के विकास पर बल देते हुए तीसरी पंचवर्षीय योजना ने कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की। यह योजना एक भारी दुर्घटना सिद्ध हुई क्योंकि इस योजना काल में व्यापक अकाल पड़ा और कृषि उत्पादन में भारी गिरावट प्रस्तुत हुई। 15 वर्षों में पहली बार देश ने वृद्धि की नकारात्मक वार्षिक दर प्राप्त की। फिर भी, तीसरे योजना काल में अर्थव्यवस्था की वार्षिक वृद्धि की औसत दर 2.2% अंकित थी।

तीसरे योजना काल के अंतिम वर्ष के दौरान प्रकट असफलता ने भारत सरकार को आर्थिक नियोजन रोकने और 'योजना अवकाश ' लेने पर विवश किया। 1966-69 के टौरान वार्षिक योजनाएं तथा चौथी योजना के प्रथम दो वर्ष अकाल व व्यापार मंदी से उबरने के वर्ष सिद्ध हुए। उन्होंने काफी अंशों में तीसरे योजना काल की समाप्ति के दौरान प्रकट असफलता से मुक्ति पाने के प्रयासों का परिचय दिया। दूसरे नियोजन दशक (1961-71) के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था ने 3.5% वार्षिक वृद्धि दर दर्ज कराने में सफलता अर्जित की।

12.4.3 नियोजन का तीसरा दशक (1971-81)

नियोजन का तीसरा दशक निम्नलिखित से अभिनिर्मित था

(अ) चौथे योजना काल के अंतिम तीन वर्ष: पिछली योजना के दौरान अर्जित 3.5% वार्षिक वृद्धि दर के अनुपात मे चौथी योजना ने 5.5% की महत्त्वाकांक्षी वृद्धि का लक्ष्य लेकर चलते हुए प्रारम्भ में भारी सम्भावनाओं का परिचय दिया। प्रारम्भ में खाद्यान्नों का रिकॉर्ड उत्पादन हुआ और उसी अनुपात में औद्योगिक उत्पादन भी बढ़ा इसके बावजूद मानसून की बारम्बार प्रकट विफलता के कारण चौथी योजना के अंतिम तीन वर्ष भारी निराशाजनक सिद्ध हुए। खाद्यानों के उत्पादन में गिरावट औद्योगिक मोर्चे पर विद्युत आपूर्ति की घोर अनियमितता से प्रकट विफलता, परिवहन की अस्तव्यस्ताओं, औद्योगिक असंतोष तथा तेजी से चढ़ते मुद्रास्फीति के दबावों आदि के कारण यह योजना काल अत्यन्त निराशा का युग सिद्ध हुआ। सामान्यतः यह माना जाने लगा कि मध्यावधि के उपरान्त चौथी योजना निर्णायक रूप से लड़खड़ा गई। वार्षिक वृद्धि की दर इस दौरान मात्र 3.1% ही दर्ज हो सकी जबकि योजना आयोग ने 5.5% की मौलिक वृद्धि दर संकल्पित की थी।

(ब) पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974-79): जब पांचवी योजना को औपचारिक रूप से प्रस्तुत किया गया उस समय (अप्रैल 1974 में) भारत गम्भीर मुद्रास्फीति व आर्थिक संकट के दोर से गुजर रहा था। इसके बाद देश में आपातकाल की घोषणा हो गई जिसके दौरान सरकार तथाकथित बीस-सूत्रीय कार्यक्रम के क्रियान्वयन में सक्रिय हो गई। पांचवी योजना लगभग भुला दी गई और उसे सरकारी तौर पर चौथे साल ही बन्द कर दिया गया। इन सारी समस्याओं के बावजूद पांचवी योजना-काल में वृद्धि की 4% वार्षिक दर दर्ज की गई।

(स) अंतिम तीन वर्ष: भारतीय अर्थव्यवस्था ने दो वर्षों से अधिक समय तक जनता छठी योजना के अंतर्गत नियोजन ग्रहण किया जिस दौरान अर्थव्यवस्था ने ठोस प्रगति उपलब्ध की। कांग्रेस शासन के दौरान पहले योजना वर्ष में अर्थव्यवस्था को कठिन कृषि व औद्योगिक स्थितियों का सामना करना पड़ा।

इस प्रकार नियोजन के तीसरे दशक के दौरान भारत को कुछ वर्षों के दौरान अत्यन्त दुर्बल व क्षीण आर्थिक क्रियाशीलता का सामना करना पड़ा (जैसे 1971-73 व 1980-81)। इस दौरान कुछ वर्ष उत्कृष्ट आर्थिक प्रगति से सम्पन्न थे। कुल मिलाकर भारतीय अर्थव्यवस्था की औसत वार्षिक वृद्धि दर केवल 3.2% ही थी। अतएवं, इस दशक के दौरान हम अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में वाषिक वृद्धि दर की दिशा में सतत गिरावट का अनुभव करते हैं:

12.4.4 नियोजन के चौथे दशक (1981-91)

छठी पंचवर्षीय योजना ने 5.2% की वृद्धि दर का लक्ष्य स्वीकार किया जो कि पिछली दो योजनाओं के स्वीकृत वृद्धि दर लक्ष्यों से कुछ कम था। छठी योजना के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था ने चौतरफा प्रगति अर्जित की। योजना आयोग द्वारा निर्धारित अधिकांश लक्ष्य इस दौरान संशोधित किए गए। उदाहरण के लिए, कृषि क्षेत्र ने काफी अच्छी उपलब्धियां प्राप्त की और नियोजन प्रक्रिया

के दौरान पहली बार कुछ लक्ष्य निर्धारित स्तर से भी काफी अधिक ऊंचे अर्जित किये जा सके। अंतिम वर्ष में यद्यपि अकाल की स्थितियों के कारण कृषि उत्पादन के क्षेत्र में देश के कुछ भाग में अर्जित किए जा सके। अंतिम वर्ष में यद्यपि अकाल की स्थितियों के कारण/जरूर कुछ गिरावट आई लेकिन उद्योगों के क्षेत्र में इस योजना काल की उपलब्धियां काफी कमजोर सिद्ध हुई। कुल मिला कर छठी योजना की अवधि पर्याप्त रूप से सफलता की द्योतक थी। योजना आयोग द्वारा उच्च दर उपलब्ध की जा सकी है । बाद में, सरकार ने छठी योजना काल की अर्जित वार्षिक वृद्धि दर में कुछ संशोधन कर के 3 से 4.7% ठहराया। सरकार के आलोचक इस घटी वृद्धि दर (4.7%) को भी प्रामाणिक मानने कों तैयार नहीं है । उनके अनुसार योजना आयोग ने अगले पांच वर्षों के लिए अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर के आकलन की दृष्टि से 1974-80 को आधार वर्ष माना था जो कि असामान्य रूप से खराब वर्ष था। यह वह वर्ष था जब अर्थव्यवस्था ने पहली बार वृद्धि की नकारात्मक दर पाई थी। इस आधार पर आलोचकों की यह राय थी कि छठी योजना के दौरान योजना आयोग द्वारा 4.7% की जिस घटी हुई वार्षिक वृद्धि दर का दावा किया गया था, वह भी अतिशयोक्तिपूर्ण था और वृद्धि की वास्तविक वृद्धि केवल 3.5 के आस-पास ही थी। इसी दर का अब "आर्थिक वृद्धि की हिन्दू दर" के नाम से जाना जाता है । वस्तुतः वृद्धि दर 5.3% थी जो अनुकूल स्थितियों के कारण काफी उच्च थी।

भारत सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण ने तत्काल प्रभावी व स्थिर दोनों मूल्य-प्रकारों के आधार पर कुल तथा निश्चित (ग्रौस व नेट) राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि दरों से संबंधित प्रारम्भिक आंकड़े प्रस्तुत किए थे। 1980-81 के स्थिर मूल्यों पर निश्चित राष्ट्रीय उत्पाद सातवीं योजना के प्रारम्भिक तीन वर्षों के दौरान क्रमशः 5.0, 3.6 तथा 3.4% था। वृद्धि की यह दर देश के अधिकांश भागों में व्याप्त गम्भीर अकाल स्थितियों के संदर्भ में देखी जानी चाहिए।

12.4.5 नियोजन के पंचावा दशक (1991-2001)

1980 के मध्य के बाद से भारत धीरे-धीरे आर्थिक उदारीकरण के माध्यम से अपने बाजार खोल दिया है । अधिक मौलिक 1991 के बाद सुधारों और 2000 के दशक में अपने नवीकरण के बाद भारत एक मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की दिशा में प्रगति की है

प्रति व्यक्ति आय 3.5 औसत वृद्धि हुई है, जबकि 1980 तक 1950 के दशक से लगभग 1.3 % पर ठहर गयी थी लाइसेंस केवल चार या पाँच इस्पात , बिजली और संचार के लिए दिया जाने का प्रावधान किया गया ।

12.4.6 नियोजन के छठा दशक (2001-2011)

1991 में आरंभ की गई उदारीकरण प्रक्रियाओं के अनुरूप तथा आठवीं योजना मे ंविकास युक्ति के निजी क्षेत्र की ओर झुकाव के अनुरूप , नौवीं योजना में कहा गया कि ''हमारी विकास की युक्ति इस प्रकार की होनी चाहिए जो हमारे व्यापक और फैले हुए नीजि क्षेत्र को इतना सक्षम बना सके की वह उत्पादन मे वृद्धि, रोजगार - अवसरों के सृजन तथा समाज के आय स्तर में वृद्धि कर पाने की

अपनी पूरी संभावनाओं को प्राप्त कर सके। आर्थिक प्रतिस्पर्धा और मुक्त बाजारों के अनुशासन में कार्यरत शक्तिशाली निजी क्षेत्र दुलर्भ संसाधनों के कुशल प्रयोग को प्रोत्साहित करेगा जिससे न्यूनतम लगात पर तेज आर्थिक विकास हो सकेगा। इसलिए हमारी नीतियों से ऐसा माहौल बनना चाहिए जिससे यह परिणाम पा सकेने में सहायता मिले। इस बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में नौवीं योजना में राज्य की भूमिका में इस प्रकार परिवर्तन करने की सिफारिश की गई थी जिससे वह निजी क्षेत्र के नियंत्रण व नियमन से ध्यान हटाकर सामाजिक विकास में खासतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों मे सामाजिक विकास में अधिक सक्रिय भूमिका निभा सके। इस प्रकार, नौवी योजना से सरकार की विकास की युक्ति का उद्देश्य ऐसी आर्थिक सामाजिक आधारित संरचना का निर्माण करना था जिसमें निजी क्षेत्र बिना किसी कठिनाई व रूकावट के अपने कार्य कलाप को कर सके। अर्थात् सरकार को बिजली व ऊर्जा की उचित व्यवस्था व प्रसार करने तथा सड़कों, बंदरगाहों, रेलवे, संचार व्यवस्था, म्यूनिसिपिल सेवाओं इत्यादि के विकास व विस्तार पर विशिष्ट ध्यान देना था। ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक आधारित संरचना के अंतर्गत सिंचाई सेवाओं इत्यादि के विकास व विस्तार पर विशिष्ट ध्यान देना था। ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक आधारित संरचना के अंतर्गत सिंचाई सड़कों संगठित ग्रामीण बाजार इत्यादि आएंगे। आधारित संरचना के विकास व निर्माण के अतिरिक्त, सरकार को मूलभूत सेवाओं (जैसे स्वास्थ्य सेवाओं, तथा पीने की सुविधा इत्यादि।) को भी आम जनता को (विशेषतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में) उपलब्ध कराने पर विशेष ध्यान देना था। औद्योगिक क्षेत्र में विकास युक्ति का यह प्रयास था कि निजी क्षेत्र पर लगे प्रतिबंधों को कम से कम किया जए तथा निजी क्षेत्र की उत्पादन गतिविधियों में नौकरशाही तंत्र व सरकारी हस्तक्षेत्र न्यूनतम हो। जहां तक सार्वजनिक क्षेत्र में उद्यमों का संबंध है, अन्ततः उनके निजीकरण के उद्देश्य से विनिवेश की नीति जारी रखी गई और विनिवेश से जो संसाधन प्राप्त होने थे उनकी सामाजिक क्षेत्रों (विशेष तौर पर स्वास्थ्य और शिक्षा) की योजनाओं पर खर्च करने का वादा किया गया। जहां तक विदेशी क्षेत्र का संबंध है, इसमें युक्ति इस प्रकार की रही कि आयात प्रशुल्क दरों को कम किया गया एवं मात्रात्मकब प्रतिबंधों को समाप्त किया गया, निर्यातों के प्रसार में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए उचित कदम उठाएं गए तथा निर्यात प्रोत्साहन में सहायता देने के लिए विदेशी विनियम दर नीति का प्रयोग किया गया, और विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए उचित कदम उठाए गए।

वित्तिय क्षेत्र में, नौवीं पंचवर्षीय योजना का जोर वित्तीय सुधारों पर, खास तौर पर बैंकिंग क्षेत्र में सुधारो पर तथा पूंजी बाजार में सुधारों पर रहा। योजना में बीमा और पेंशन फंडों से संबंधित सुधारों पर भी जोर दिया गया। योजना आयोग का विचार है कि ये दीर्घकालीन पूंजी के स्वाभाविक स्रोत है और इसलिए इनका प्रयोग आधारित संरचना के वित्तीयन के लिए किया जा सकता है । योजना में साल दर साल भारी राजकोषीय घाटों पर निर्भर रहने के खतरों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया। इस संदर्भ में योजना में एक ऐसी दीर्घकालीन राजकोषीय नीति अपनाएं जाने की बात की गई जिसका उद्देश्य एक निश्चित समयावधि में राजकोषीय घाटे की एक सहनीय स्तर पर लाने की व्यवस्था हो। विशेष रूप से राजस्व घाटे को कम करने पर जोर दिया गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007)

दसवीं पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 2002 से 2007 तक रहा।दसवीं पंचवर्षीय योजना में पहली बार राज्यों के साथ विचार- विमर्श कर राज्यवार विकास दर निर्धारित की गयी। इसके साथ ही पहली बार आर्थिक लक्ष्यों के साथ- साथ सामाजिक लक्ष्यों पर भी निगरानी की व्यवस्था की गयी। दसवीं योजना के लक्ष्य:

1. योजना काल के दौरान जी. डी. पी. में वृद्धि दर 8 प्रतिशत पहुँचाना।
2. निर्धनता अनुपात को वर्ष 2007 तक कम करके 20 प्रतिशत और वर्ष 2012 तक कम करके 10 प्रतिशत तक लाना।
3. वर्ष 2007 तक प्राथमिक शिक्षा की पहुँच को सर्वव्यापी बनाना।
4. वर्ष 2001 और 2011 के बीच जनसंख्या की दसवर्षीय वृद्धि दर को 16.2 प्रतिशत तक कम करना।
5. साक्षरता में वृद्धि कर इसे वर्ष 2007 तक 72 प्रतिशत और वर्ष 2012 तक 80 प्रतिशत करना।
6. वर्ष 2007 तक वनों से घिरे क्षेत्र को 25 प्रतिशत और वर्ष 2012 तक 33 प्रतिशत बढ़ाना।
7. वर्ष 2012 तक पीने योग्य पानी की पहुँच सभी ग्रामों में क़ायम करना।
8. सभी मुख्य नदियों को वर्ष 2007 तक और अन्य अनुसुचित जल क्षेत्रों को वर्ष 2012 तक साफ़ करना।

12.4.8 ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना (2012-17) का दृष्टिपत्र

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007 - 2012)

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 2007 से 2012 तक निर्धारित है ।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य

1. तीव्र और समावेशी विकास । (गरीबी की कमी)
2. सामाजिक क्षेत्र और उसमें सेवा के वितरण पर जोर दिया।
3. शिक्षा और कौशल विकास के माध्यम से सशक्तिकरण।
4. लिंग असमानता की कमी।
5. पर्यावरणीय स्थिरता ।
6. क्रमशः 4 %, 10% और 9% के लिए कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्र में विकास दर को बढ़ाने के लिए
7. कुल प्रजनन दर 2.1 करने के लिए कम
8. 2009 तक सभी के लिए स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने ।

12.5 प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर

अब तक हमने 1950-51 सें लेकर आज तक भारतीय अर्थ-व्यवस्था की वृद्धि दर को स्थिर मूल्य विषयक राष्ट्रीय आय आंकड़ों के संदर्भ में प्रस्तुत किया है । लेकिन स्थिर मूल्य पर

राष्ट्रीय आय आंकड़े तुलनीय होते हुए भी जनसंख्या प्रभावों को छुपाते हैं। जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव को दूर करने के लिए हमें प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पाद अथवा प्रति व्यक्ति आय का प्रयोग करना होगा। स्थिर मूल्यों पर निश्चित राष्ट्रीय उत्पाद जहां समुदाय के स्तर पर चरितार्थ कुल उत्पादनकारी प्रयास का सूचक है और उससे देश में विद्यमान माल व सेवाओं में वृद्धि का बोध होता है, वही स्थिर मूल्यों के आधार पर प्रति व्यक्ति आय जनता के जीवन-स्तर में आए परिवर्तनों की परिचायक है। नियोजन के पहले दस वर्षों के दौरान प्रति व्यक्ति निश्चित राष्ट्रीय उत्पाद 1.8% की वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ा जबकि निश्चित राष्ट्रीय उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर 3.8% थी। निश्चित राष्ट्रीय उत्पाद तथा प्रति व्यक्ति आय में प्रकट इस अन्तर को इस दशक के दौरान अर्जित जनसंख्या वृद्धि के संदर्भ में भली भांति समझा जा सकता है। यह स्मरणीय है कि भारत में जनसंख्या 1957 में 361 मिलियन थी जो 1961 में बढ़ कर 439 मिलियन हो गई। यह वृद्धि पूरे दशक के दौरान 78 मिलियन अधिक थी अथवा प्रति वर्ष उसकी वृद्धि 2.1% थी।

नियोजन के दूसरे दशक (1961-71) के दौरान प्रति व्यक्ति आय प्रति वर्ष केवल 1.2% वृद्धि की दर से ही बढ़ सकी जबकि निश्चित राष्ट्रीय उत्पाद में इस दौरान प्रति वर्ष 3.5% वृद्धि दर्ज हुई। जैसा कि हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं, तीसरी योजना घोर असफलताजनक थी और उसके परिणामस्वरूप निश्चित राष्ट्रीय उत्पाद में वार्षिक वृद्धि दर केवल 2.7% थी जबकि प्रति व्यक्ति आय इस दौरान शून्य थी। दूसरे शब्दों में, तीसरी योजना काल में जनसंख्या वृद्धि ने राष्ट्रीय आय में वृद्धि को पूर्णतः निष्क्रिय कर दिया। चौथी योजना अवधि के दौरान पहली दो वार्षिक योजनाओं तथा योजना के प्रारम्भिक दो वर्षों के श्रेय प्रद आर्थिक कार्य-सम्पादन ने अपनी बदोलत भारतीय अर्थव्यवस्था को निश्चित राष्ट्रीय उत्पाद के क्षेत्र में 3.5% तथा प्रतिव्यक्ति आय में 1.2% वृद्धि का अवसर प्रदान किया। नियोजन के तीसरे दशक (1971-81) के दौरान प्रति व्यक्ति आय में वार्षिक वृद्धि की दर 1% से कुछ अधिक दर्ज हुई जो इस सामान्य तथ्य की स्पष्ट सूचक है कि देश में जनसंख्या वृद्धि प्रायः राष्ट्रीय आय में वृद्धि-लाभों को निष्क्रिय बना देती है। इस प्रकार, आर्थिक नियोजन के प्रथम 30 वर्षों (1951-1981) के दौरान प्रति व्यक्ति आय में वार्षिक वृद्धि केवल 1.4% रही जो कि काफी कम है। प्रति व्यक्ति आय में इतनी कम वृद्धि 'गरीबी हटाने' की समस्त चर्चाओं को प्रायः निरर्थक सा बना देती है। जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए कारगर कदम न उठा सकने की स्थिति में भारत में प्रति व्यक्ति आय दर में वृद्धि कर पाने की कोई वास्तविक सम्भावना नहीं दिखाई देती।

1990-91 में राष्ट्रीय आय में 4.9 प्रतिशत वृद्धि हुई। 1991-92 में केवल 0.8 प्रतिशत वृद्धि हुई। आठवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में राष्ट्रीय आय में 6.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 5.6 प्रतिशत वार्षिक में केवल 0.8 प्रतिशत था। आठवी पंचवर्षीय योजना के दौरान राष्ट्रीय आय में केवल 0.8 प्रतिशत था। नवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान राष्ट्रीय आय 5.4 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ी थी लेकिन दसवीं पंचवर्षीय योजना का निष्पादन उत्साहवर्द्धक रहा और इस योजना में राष्ट्रीय आय में 7.6 प्रतिशत वार्षिक तथा प्रति व्यक्ति आय में 5.9 प्रतिशत प्रति वर्ष वृद्धि

हुई। ग्यारहवीं योजना (2007-12) में राष्ट्रीय आय में औसतन 7.5 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 9.0 प्रतिशत प्रति वर्ष वृद्धि का था। केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन ने 30 जनवरी 2015 को राष्ट्रीय आय संबंधी नई श्रृंखला जारी की जिसका आधार वर्ष 2011-12 है । इस नई श्रृंखला के अनुसार 2012-13 में सकल घरेलू उत्पाद में 5.1 प्रतिशत तथा 2013-14 में 6.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई। (जबकि 2004-05 को आधार वर्ष मान कर तैयार की गई पहली श्रृंखला के अनुसार 2012-13 में संवृद्धि दर 4.7 प्रतिशत तथा 2013-14 में 5 प्रतिशत थी।)

12.6 1951 के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था में क्षेत्रवार वृद्धि

अब तक इस पाठ में हम लोग समग्र रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि पर चर्चा करते आए हैं। अब हमें क्षेत्रवार वृद्धि दरों पर चर्चा करनी चाहिए जिसके अन्तर्गत हम सबसे पहले कृषि पर ध्यान देंगे।

12.6.1 1950-51 के बाद से कृषि की वृद्धि दर

योजना आयोग ने कृषि क्षेत्र में विकास के लिए नियोजन संबंधी चार प्रमुख उद्देश्य स्वीकार किए:

(अ) कृषि उत्पादन में वृद्धि;

(ब) कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त रोजगार के अवसर जुटाने का प्रावधान;

(स) भूमि पर जनसंख्या के दबाव को कम करने के लिए अतिरिक्त कृषि जनसंख्या को द्वितीयक तथा कृषि सहयोगी क्षेत्रों में स्थानान्तरित करने का प्रबंध; तथा

(द) भू-जोतों पर अंकुश तथा अन्य भूमि सुधार संबंधी उपायों द्वारा कम से कम कुछ अंशों में ग्रामीण क्षेत्रों में समानता व न्याय के प्रसार का संकल्प।

हालांकि पंचवर्षीय योजनाएं इन सभी उद्देश्यों के लिए कार्यक्रम योजनाएं प्रवर्तित करने को कृत संकल्प थी परन्तु व्यवहार में नियोजकों ने केवल पहले उद्देश्यों पर ही पर्याप्त ध्यान दिया यानि इन योजनाओं में कृषि उत्पादन में वृद्धि पर ही बल दिया गया। कृषि उत्पादन में वृद्धि लाने के लिए एकाधिक क्रम में इन रणनीतियों को संबोधित/परिचालित किया गया: नई कृषि संबंधी रणनीति, आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी, जीव-रासायनिक प्रौद्योगिकी, हरित क्रांति और न जाने क्या-क्या। इस रणनीति मे समाहित रहे हैं: समूचे देश में सामुदायिक विकास व कृषि विस्तार सेवाओं की स्थापना, सिंचाई सुविधाओं, रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाओं, कृषि यंत्रों, बीजों की उन्नत किस्मों, परिवहन सुविधाओं, विद्युत आपूर्ति, विपणन तथा संस्थाजन्य ऋण सुविधाओं आदि का पर्याप्त सृजन एवं विस्तार। 1950 के दौरान कृषि क्षेत्र में हुई वार्षिक वृद्धि दरों का विवरण तालिका-1.2 में वर्णित है । सुविधा की दृष्टि से हमने 1950-51 से प्रारम्भ नियोजन अवधि को दो काल-खण्डों में वर्गीकृत किया है पूर्व-हरित क्रान्ति अवधि(1951-65) तथा उत्तर-हरित क्रांति अवधि (1965-86)*

तालिका - 1.2

1. 50-51 के बाद से कृषि क्षेत्र में अर्जित वार्षिक वृद्धि दर

कुछ फसलों की उत्पादन व उत्पादकता संवृद्धि दरें, 1949-50 से 2013-14 **(प्रतिशत में)**

फसल	**हरित क्रांति से पूर्व की अवधि 1949-50 से 1964-65**	**1967-68 से 1980-81**	**1980-81 से 1989-90**	**1990-91 से 1999-2000**	**2000-01 से 2013-14**
	उत्पादन	उत्पादन	उत्पादन	उत्पादन	उत्पादन
चावल	3.5	2.2	3.6	2.0	1.6
गेहूं	4.0	5.7	3.6	3.6	2.3
ज्वार	2.5	2.0	0.3	-3.1	-2.3
बाजरा	2.3	-0.4	0.0	10	2.2
मक्का	3.9	0.0	1.9	3.3	5.2
दालें	1.4	-0.4	1.5	0.6	4.1
सब खाद्यान	2.8	2.2	2.9	2.0	2.1
गन्ना	4.3	2.6	27	2.7	1.2
तिलहन	3.2	1.6	5.2	1.6	4.1
अखाद्यान	3.7	2.3	3.8	2.7	3.8*
सब फसलें	3.2	2.2	3.2	2.3	2.8*

यहाँ अवधि 2000-01 से 2011-12 है

स्रोत – Government of India, Ministry of agriculture, Agricultural statistics and at a Glance, 1997 (New Deli, 1997), Table 15.2, Table 15.2 (b) and economic survey 2014-15 (Delhi 2015) Volume II, Statistical Appendix, Table 1.12 p. A24 तथा Table 1.14 P.A. 26 से आकलित

जैसा कि सारणी से स्पष्ट है गेहूं के उत्पादन की वृद्धि दर जो हरित क्रांति से पूर्व की अवधि 1949-50 से 1964-65 में 4.0 प्रतिशत प्रति वर्ष थी वह हरित क्रांति के पहले चरण 1967-68 से 1980-81 में बढ़कर 5.7 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई। इस अवधि में गेहूं उत्पादकता की संवृद्धि दर दुगनी हो गई। 1.3 प्रतिशत प्रति वर्ष से बढ़की 2.6 प्रतिशत प्रति वर्ष । इस चरण में, गेहूं उत्पादन व उत्पादकता में तेज वृद्धि का कारण देश के गेहूं उत्पादन करने वाले अच्छे सिंचाई युक्त प्रदेशों पंजाब, हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में उन्नत किस्म के बीजों को बड़े पैमाने पर अपनाया जाता था। हरित क्रांति के इस प्रथम चरण में गेहूं उत्पादन व उत्पादकता में तेज वृद्धि होने के कारण, तथा अन्य फसलों में पिछड़ापन बने रहने के कारण, इस चरण में हरित क्रांति को अक्सर गेहूं क्रांति की

संज्ञा दी जाती है। परन्तु 1980 के दशक में अन्य फसलों का निष्पादन पहले समय की तुलना में बहुत बेहतर रहा। जैसा कि सारणी से स्पष्ट है, चावल उत्पादन की संवृद्धि दर जो 1967-68 से 1980-81 के बीच 2.2 प्रतिशत प्रति वर्ष थी, 1980-81 में 1989-90 के बीच बढ़कर 3.6 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई। इसी दौरान चावल का उत्पादकता की संवृद्धि दी भी 1.5 प्रतिशत प्रति वर्ष से बढ़कर 3.2 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई। 1980 के दशक में सबसे अच्छा निष्पादन तिलहनों का रहा जिनकी उत्पादन संवृद्धि दर 1967-68 से 1980-81 के बीच 1.6 प्रतिशत प्रति वर्ष से बढ़कर 1980-81 से 1989-90 के बीच 5.2 प्रतिशत प्रति वर्ष के स्तर को छू गई। इसी दौरान तिलहन उत्पादकता की संवृद्धि दर भी 0.7 प्रतिशत प्रति वर्ष से बढ़की 2.4 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई। जहां दालों की उत्पादन तथा उत्पादकता संवृद्धि दरें दोनों ही 1967-68 से 1980-81 के बीच ऋणात्मक थीं वहां 1980 के दशक में यह धनात्मक हो गई। इन सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सी.एच. हनुमन्त राव ने 1992 में प्रकाशित अपने एक लेख में दावा किया कि हरित क्रांति के आरंभिक वर्षों में विभिनन फसलों की संवृद्धि में जो असंतुलन पैदा हो गया था, वह पिछले कुछ समय से कम हुआ है।

यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि खाद्यानों व गैर खाद्यानों के कुल उत्पादन में अर्जित यह वृद्धि कृषि योग्य बनाए गए अतिरिक्त कृषि-क्षेत्र तथा प्रति हेक्टेयर अर्जित आधेक उपज का सम्मिलित प्रतिफल है।

जोत के लिए अधिक जमीन को उपयोगी बनाने की दृष्टि से विशेषतः पूर्व-हरित क्रांति अवधि में विशेष उपलब्धि अर्जित की गई। इस दौरान नई जोत योग्य जमीन को खेती के लिए तैयार किया गया तथा बंजर जमीन को कृषि योग्य बनाने के लिए सिंचाई सुविधाओं को उन क्षेत्रों तक पहुंचाया गया। 1964-65 के बाद जोत के प्रसार की सम्भावनाओं में धीरे-धीरे गिरावट आने लगी।

भारत में प्रति हेक्टेयर उपज में भी प्रबल वृद्धि अंकित हुई। यह वृद्धि अनेक कारकों से परिचालित हुई, जैसे सिंचाई सुविधा का विस्तार जोत के लिए सघन पद्धतियों का प्रयोग, आदि। आधुनिक कृषि व्यवहारों के प्रवर्तन ने जैसे (वर्णसंकर बीज के प्रयोग) सभी फसलों के संदर्भ में प्रति हेक्टेयर उपज सतत बढ़ाने की दिशा में निर्णायक योगदान दिया। 1962 के बाद सरकार ने जीव-रायासनिक प्रौद्यौगिकी का शुभारम्भ किया ताकि कृषि उत्पादकता तथा कृषि उत्पादन, दोनों को अभिवृद्ध किया जा सके।

पूर्व हरित क्रान्ति अवस्था विषयक पहली अवधि में खाद्यानों का उत्पादन प्रभावशाली रूप से 4.1% की वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ा। प्रमुख खाद्यानों (चावल व गेहूं) ने खड़े अनाज व दालों की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँची वृद्धि दरें अर्जित की। इस दौरान गैर-खाद्यान्नों की वार्षिक वृद्धि दरें भी प्रभावशाली रूप से बड़ी।

दूसरी उत्तर-हरित क्रान्ति अवधि के दौरान वार्षिक वृद्धि दरें काफी कम अंकित की जा सकी। आधुनिक जीव-रासायनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा खाद्यान्नों में केवल गेहूं के उत्पादन की वृद्धि दर को ही कायम रखा जा सका जो कि इस दौरान 6.3% प्रति वर्ष विद्यमान रही। अच्छी वर्षा अथवा अच्छी सिंचाई सुविधाओं से सम्पन्न क्षेत्रों तक आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी की पहुंच ने खड़े

अनाजों, तिलहनों और दालों को अपेक्षाकृत घटिया जमीन पर ढकेल दिया। इसके कारण इन फसलों ने न तो उत्पादकता और न ही कुल उत्पादन के संदर्भ में कोई महत्वपूर्ण वृद्धि अर्जित की।

जीव-रासायनिक प्रौद्योगिकी का प्रचलन प्रमुख खाद्यानों के उत्पादन के संदर्भ में राज्यों के हिस्सों में महत्वपूर्ण परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी रहा। उदाहरण के लिए, पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश से मिल कर बने उत्तरी क्षेत्र का हिस्सा चावल के कुल उत्पादन की दृष्टि से बढ़कर 10.4% से 22.5% पहुंच गया जबकि चावल उत्पादन मे उत्तर-पूर्वी राज्यों (पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, बिहार, असम व अन्य उत्तर पूर्व राज्य) का हिस्सा 38% से गिर कर केवल 28% ही रह सका। गेहूं के मामले मे पश्चिमी क्षेत्र से हट कर उत्तरी क्षेत्र प्रमुख परिवर्तित कृषि-पैदावार का क्षेत्र बन कर उपस्थित हुआ।

आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी तथा कृषि उत्पादन में आई महत्वपूर्ण वृद्धि के बावजूद भारतीय कृषि अभी भी "मानसून के जुए" की स्थिति में व्याप्त है । देश में आज तक बहुत अधिक फसल विफलताएं तथा उत्पादन के उलट-फेर चरितार्थ होते आए हैं।

12.6.2 औद्योगिक क्षेत्र में वार्षिक वृद्धि दर

पिछले लगभग चार दशकों के दौरान औद्योगिकीकरण में अर्जित तीव्र वृद्धि भारतीय आर्थिक विकास का एक विलक्षण अनुभव है । सरकार ने 1948 तथा 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्तावों के अंतर्गत सचेतन व संकल्पित औद्योगिकीकरण प्रक्रिया को प्रवर्तित किया। पंचवर्षीय योजनाओं ने उसे उत्साहपूर्वक क्रियान्वित भी किया। इस दृष्टि से सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों में भारी निवेश किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश प्रायः कुल व्यय के 23 से 24% के बीच विद्यमान रहा। केवल प्रथम योजना इस निवेश प्रकार का अपवाद था जब औद्योगिक निवेश अनुपात केवल 6% था। अधिकांश निवेश बड़े उद्योगों पर किया गया था।

योजना आयोग ने जो विकास रणनीति अपनाई वह रूसी मॉडल पर आधारित थी। इसमें भारी उद्योगों के बल पर तीव्र औद्योगिकीकरण की संकल्पना की गई थी। इस औद्योगिक रणनीति के लिए उच्च प्रौद्योगिक क्षमता के विकास की महती आवश्यकता थी जिसने अपने क्रम में प्रबल, क्रियाशील व वृद्धि-उन्मुखी अभियांत्रिकी क्षेत्र के विकास पर बल दिया जिसमें यंत्रनिर्माण संबंधी उद्योगों की स्थापना सम्मिलित थी।

औद्योगिक वृद्धि की वार्षिक दर सभी पंचवर्षीय योजनाओं में एक समान नहीं रही है । वस्तुतः वह घटावकारी ही रही है । प्रथम योजना (1951-56) के दौरान सरकार ने औद्योगिक मोर्चे पर कोई बड़ा अभियान नहीं लागू किया। उसके अंतर्गत उद्योगों का आवंटन कुल व्यय का मात्र 6% ही था। फिर भी, सरकार ने कुल बड़ी औद्योगिक इकाईयों की स्थापना अवश्य की जैसे चितरंजन लोकोमोटिव्स, इंडियन टेलिफोन इंडस्ट्रीज, इत्यादि। लेकिन इससे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य था प्रमुख आधारभूत-संरचनात्मक इनपुट्स के लिए नियोजन। इसके तहत अनेक मूल उद्योगों की स्थापना की गई जैसे इस्पात, रासायनिक खाद, मशीन के कलपुर्जे, औषधि व दवाईयों के कारखाने, इत्यादि। दूसरी योजना (1965-61) के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के तीन इस्पात संयंत्र स्थापित हुए। साथ ही,

रसायनों कपड़ा उद्योग, सीमर, चाय, चीनी, कागज, आटा व तेल मिलों, खदानों आदि के लिए मशीनी कलपुर्जे बनाने के कारखाने भी स्थापित किए गए। यद्यपि दूसरी योजना में अधिकांश सार्वजनिक निवेश भारी व मूल उद्योगों के क्षेत्र मे किया गया, फिर भी पटसन व सूती कपड़ा उद्योग, चीनी इत्यादि उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के आधुनिकीकरण व अद्यतन की दिशा में इस दौरान अच्छी प्रगति उपलब्ध की जा सकी। ऐसे समस्त औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप, नियोजन के प्रथम दशक में उद्योगों के क्षेत्र में 7.5% की वार्षिक वृद्धि दर का अनुमान किया गया। यह कृषि क्षेत्र या समूची अर्थव्यवस्था द्वारा अर्जित वार्षिक वृद्धि दर से कहीं अधिक ऊंची वृद्धि दर थी।

दूसरे दशक के दौरान उद्योगों की वृद्धि दर

तीसरी योजना (1961-65) ने उद्योग, ऊर्जा व परिवहन को सक्षम बनाने के लिए अधिकाधिक निवेश का आग्रह किया ताकि औद्योगिक व प्रौद्योगिकी सम्बन्धी परिवर्तनों की प्रक्रिया तेज की जा सके। तीसरी योजना ने उद्योगों के क्षेत्र में 14% की वार्षिक वृद्धि दर की संकल्पना की। हालांकि तीसरी योजना अवधि के प्रथम चार वर्षों के दौरान औद्योगिक उत्पादन 7.6% की वार्षिक वृद्धि दर से ही बढ़ सका। जबकि उत्पादक व मूल उद्योगों में वृद्धि अच्छी थी, प्रमुख उपभोक्ता सामग्री (जैसे सूती कपड़ा व चीनी) के संदर्भ में वृद्धि की यह दर केवल 1.3% से 2% के बीच ही रह पाई।

1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में देश को गम्भीर अकाल व व्यापक व्यापार मंदियों के दोर से गुजरना पड़ा। ऐसी स्थिति में 1966-67 के दौरान औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर केवल 0.2% ही दर्ज हुई जबकि 1967-68 के दौरान वह 0.5% अंकित हुई। चौथी योजना के प्रथम दो वर्षों में कृषि उत्पादन में सुधार के फलस्वरूप औद्योगिक निवेश तथा उत्पादन कुछ अवश्य सम्भला। इन सभी समस्याओं के रहते नियोजन की दूसरी अवस्था के दौरान औद्योगिक वृद्धि की दर 5.5% ही रह सकी।

नियोजन के तीसरे दशक (1971-81) में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर

नियोजन का तीसरा दशक औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में और अधिक गिरावट का काल सिद्ध हुआ। चौथी योजना ने 8% वार्षिक वृद्धि का साधारण लक्ष्य स्वीकार किया था। वास्तविक वृद्धि दर इस योजना अवधि में केवल 5% ही उपलब्ध हो सकी। ऐसा इस कारण हुआ क्योंकि इस्पात व रासायनिक खाद जैसे मूल उद्योगों की कार्य-क्षमता में गिरावट आई, पूंजीगत वस्तुओं से संबंधित उद्योगों में अपर्याप्त निवेश व तत्परिणामी कम उत्पादन हुआ तथा हड़ताल व असंतोषप्रद औद्योगिक संबंधों के फलस्वरूप व्यापक उत्पादन अवरोध उपस्थित हुआ। पांचवी योजना में सरकार ने देश में आपातकाल लागू कर दिया तथा हड़तालों व तालाबंदियों पर प्रतिबंध लगा दिया। लाईसेंस हटाने की प्रक्रिया का शुभारम्भ करते हुए सरकार ने निजी क्षेत्र एकाधिकारी प्रतिष्ठानों व भारत में निवेश की इच्छुक विदेशी कंपनियों विनियोग प्रतिबंध दूर करने का उपक्रम किया। इन समस्त प्रोत्साहनों के बावजूद पांचवी योजना के प्रारंभिक चार वर्षों के दौरान औद्योगिक वृद्धि की औसत वार्षिक दर लक्षित 8.1% की तुलना में 5.3% ही दर्ज हो सकी। पांचवी योजना अवधि में औद्योगिक उत्पादन में शिथिल वृद्धि के लिए जो प्रमुख उत्तरदायी कारक थे, उनमें अनेक उद्योगों में

निर्धारित क्षमता का अभाव, ऊर्जा व परिवहन की कमी तथा व्यवधानग्रस्त औद्यौगिक संबंध विशेष उल्लेखनीय हैं।

नियोजन के तीसरे दशक में अंतिम तीन वर्षों के दौरान औद्योगिक क्षेत्र की कार्यप्रणाली में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हो सका। औसतन वार्षिक वृद्धि दर इस दौरान केवल 4% ही रह पाई।

1980 के दशक में औद्योगिक वृद्धि की दर

छठी योजना (1980-85) के दौरान औद्योगिक उत्पादन में 7% वृद्धि के लक्ष्य की तुलना में उपलब्ध वास्तविक वृद्धि की दर केवल 5.0% ही थी। इस्पात, सीमेन्ट, अलौह धातु, रासायनिक खाद, कपड़ा, चीनी, दवा व औषध-निर्माण, वाणिज्यिक वाहन आदि के क्षेत्र में उत्पादन में कमी दृष्टिगोचर हुई। मूल व भारी उद्योगों की तुलना में अभिजन उपभोक्ता सामग्री संबंधी उद्योगों ने काफी ऊंची वृद्धि दर अर्जित की। विद्युत व ऊर्जा में कटौती, आवश्यक कच्चे माल में भारी कमी, कई सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों में घोर अक्षमता तथा खराब प्रौद्योगिक अद्यतनीकरण — ये समस्त कारण छठी योजना के दौरान औद्योगिक उत्पादन लक्ष्यों में गिरावट के लिए उत्तरदायी हैं।

सातवीं योजना के विनिर्माण क्षेत्र के लिए 8% की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य निर्धारित किया था। वर्तमान संकेत प्रथम दो वर्षों के आधार पर इस वृद्धि दर की पुष्टि करते प्रतीत होते है । उदाहरण के लिए, औद्योगिक उत्पादन सूचकांक के अनुसार 1985-86 तथा 1986-87 के संदर्भ में विनिर्माण उत्पादन क्रमशः 9.7% व 9.0% बढ़ा। हालांकि 1987-89 के दौरान यह वृद्धि घट कर 7.5% के रूप में उल्लेखनीय सुधार प्रस्तुत हुआ। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के एक आकलन के अनुसार 1989-90 के दौरान उद्योग जगत की 8 से 9% की वृद्धि दर अर्जित करने की प्रबल सम्भावना थी। उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि 1960 व 1970 के दशकों के दौरान औद्योगिक उत्पादन में घटी वृद्धि दरों के 1980 के दशक में सम्भलने की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं।

1991 के बाद में औद्योगिक वृद्धि की दर

1990-91 में राष्ट्रीय आय में 4.9 प्रतिशत वृद्धि हुई । 1991-92 में केवल 0.8 प्रतिशत वृद्धि हुई। आठवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में राष्ट्रीय आय में 6.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 5.6 प्रतिशत वार्षिक में केवल 0.8 प्रतिशत था। आठवी पंचवर्षीय योजना के दौरान राष्ट्रीय आय में केवल 0.8 प्रतिशत था। नवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान राष्ट्रीय आय 5.4 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ी थी लेकिन दसवीं पंचवर्षीय योजना का निष्पादन उत्साहवर्द्धक रहा और इस योजना में राष्ट्रीय आय में 7.6 प्रतिशत वार्षिक तथा प्रति व्यक्ति आय में 5.9 प्रतिशत प्रति वर्ष वृद्धि हुई। ग्यारहवीं योजना (2007-12) में राष्ट्रीय आय में औसतन 7.5 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 9.0 प्रतिशत प्रति वर्ष वृद्धि का था। केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन ने 30 जनवरी 2015 को राष्ट्रीय आय संबंधी नई श्रृंखला जारी की जिसका आधार वर्ष2011-12 है । इस नई श्रृंखला के अनुसार 2012-13 में सकल घरेलू उत्पाद में 5.1 प्रतिशत तथा 2013-14 में 6.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई। (जबकि 2004-05 को आधार वर्ष मान कर तैयार की गई पहली श्रृंखला के अनुसार 2012-13 में संवृद्धि दर 4.7 प्रतिशत तथा 2013-14 में 5 प्रतिशत थी।)

12.7 आधारभूत संरचनात्मक-सुविधाओं ं मेंवृद्धि की दर

कृषि संबंधी तथा औद्योगिक उत्पादन ऊर्जा परिवहन सम्प्रेषण व संचार, बैंकिंग व वित्त, विपणन, इत्यादि पर निर्भर करता है। ये समस्त सुविधाएं व सेवाएं अपने समग्र रूप में भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारभूत संरचना कहलाती है। इन्हें कुछ लोग 'आर्थिक लागतों' (इकानामिक ओवरहेड्स) की भी संज्ञा देते हैं। तीव्र कृषि व औद्योगिक वृद्धि के लिए ये समस्त सुविधाएं अनिवार्य पूर्व-शर्तें हैं।

भारतीय नियोजकों ने पहली योजना से ही आधारभूत संचरनात्मक सुविधाओं के विस्तार को उच्च प्राथमिकता प्रदान की। कुल योजना मद का 40 से 45% भाग आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं के विकास के लिए सुरक्षित रखा गया। इस भारी निवेश के फलस्वरूप 1950-51 से लेकर अब तक आधारभूत संरचना वृद्धि के संबंध में यहां संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

12.7.1 ऊर्जा एवं शक्ति

विद्युत शक्ति आर्थिक विकास का एक अनिवार्य संघटक है। घरेलू तथा वाणिज्यिक उपयोग संबंधी विद्युत आपूर्ति की मांग आज कई गुना बढ़ गई है। यह वृद्धि जनसंख्या व आर्थिक विकास के सतत ऊंचे स्तरों के कारण विशेषतः प्रकट हो रही है। इसका एक अमिट लक्षण कृषि में विद्युत शक्ति का बढ़ता उपयोग है। इसके लिए ग्रामीण विद्युतीकरण, उत्थापक सिंचाई (लिफ्ट इरिगेशन) तथा पम्प सेटों के ऊर्जात्मक प्रयोग विषयक अनेक कार्यक्रम हाल के वर्षों में अधिकाधिक प्रवर्तित किए गए हैं। इनके परिणामस्वरूप, विद्युत शक्ति के कुल उपयोगीकरण में कृषि के भाग में नाटकीय वृद्धि प्रस्तुत हुई है। 1960-61 में यह भाग 6% था जो 1985-86 के दौरान बढ़ कर 19% हो गया। यह उल्लेखनीय है कि इसी अवधि में उद्योगों का हिस्सा 69% से गिर कर 54% ही रह सका। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि औद्योगिकीकरण अब सुस्त हो चला है। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि उद्योग शक्ति के अन्य स्रोतों की ओर प्रयाण कर रहे हैं। यह अवश्य सच है कि बड़ी औद्योगिक इकाईयों ने अब अपनी स्वयं की शक्ति संसाधन प्रणाली इजाद कर ली है। वे अपने उत्पादन के लिए अब अपर्याप्त व अविश्वसनीय सार्वजनिक सुविधाओं पर ही आश्रित नहीं हैं।

शक्ति के उत्पादन व वितरण के विषय में दो तथ्यों को समझना और उन पर पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है। प्रथम, विद्युत उत्पादन 1950-51 में 5 बिलियन किलोवॉट था जो बढ़ कर छठी योजना के अंत तक 16 बिलियन किलो वॉट तथा 1987-88 में 20 बिलियन किलो वॉट हो गया द्वितीय, किसी भी पंचवर्षीय योजना द्वारा अपने कार्य-काल में अतिरिक्त शक्ति-उत्पादन के लक्ष्यों को नहीं पाया जा सका। उपलब्धि में यह कमी 16% से लेकर 40% (चौथी योजना) तक रही है। नियोजन की इस मूल क्षेत्र विषयक शिथिलता का यह सम्मिलित प्रभाव हुआ है कि शक्ति व ऊर्जा के संकट ने अर्थव्यवस्था की वृद्धि-प्रक्रिया का गला घोंटने तक की नौबत ला दी। आज बिजली की कमी और उसकी नियमित अनिवार्य कटौती ने प्रायः सभी राज्यों को त्रस्त कर रखा है इस दृष्टि से

सर्वाधिक दुष्प्रभावी राज्य पश्चिम बंगाल है जिसकी राजनीतिक कारणों से केन्द्र सतत उपेक्षा कर रहा है।

शक्ति के अभाव की यह समस्या छठी योजना के बाद से शक्ति के क्षेत्र में प्रकट हुई नई प्रगतिशीलता के कारण अब कुछ सम्भलती/सुधरती जा रही है। तापीय विद्युत शक्ति में सतत सुधार व विद्यमान क्षमता के प्रभावी उपयोगीकरण ने इस प्रगतिशीलता को प्रस्तुत किया है। एक आकलन के अनुसार स्वयं छठी योजना की अवधि में ही विद्युत अभाव 16% से घट कर 6% रह गया था। योजना आयोग के एक ताज़े अनुमान के अनुसार सातवीं योजना काल में अतिरिक्त क्षमता बढ़ाने संबंधी कार्यक्रमों द्वारा शक्ति विषयक समस्त मांगें सातवीं योजना की समाप्ति तक संसाधित की जा सकेंगी।

ऊर्जा के घरेलू उत्पादन में काफी वृद्धि होने की उम्मीद है तथापि आयातों पर भारी निर्भरता बनी रहेगी। सबसे अधिक आयात निर्भरता तेल के क्षेत्र में है तथा यह निर्भरता और बढ़ने की संभावना है (2011-12 में तेल आयात पर निर्भरता 76.8 प्रतिशत थी जो बारहवीं योजना के अंतिम वर्ष 2016-17 में बढ़कर 78.1 प्रतिशत तथा तेरहवीं योजना के अंतिम वर्ष 2021-22 में 82 प्रतिशत तक पहुंच जाने की संभावना है। कोयले के आयात पर निर्भरता 2011-12 में 18.8 प्रतिशत से बढ़कर 2016-17 तक 21.7 प्रतिशत तथा 2021-22 तक 25.9 प्रतिशत रहेगी (अर्थात् कुल का एक चैथाई हो जाने की उम्मीद है। ऐसा अनुमान है कि ऊर्जा के लिए कुल आयात निर्भरता बारहवीं योजना के अन्त में उतनी ही रहेगी 36 प्रतिशत जो ग्यारहवीं योजना के अन्त में थी। परन्तु यह अनुमान इस मान्यता पर आधारित है कि हम कोयले, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस के प्रक्षेषित घरेलू उत्पादन लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेंगे। यदि हम ऐसा कर पाने में सफल नहीं होते तो आयात निर्भरता और बढ़ जाएगी।

नौंवी पंचवर्षीय योजना में बिजली की स्थापित क्षमता में 40,245 एमडब्ल्यू वृद्धि करने का प्रावधान था। परन्तु वास्तविक उपलब्धि मात्र 19,015 MW रही हो जो लक्ष्य के आधे से भी कम थी। लगभग इसी प्रकार की स्थिति दसवीं योजना में भी रही। इस योजना में बिजली की स्थापित चमता में 41,110 MW वृद्धि के लक्ष्य के विपरीत, वास्तविक उपलब्धि मात्र 21,080 MW थी। नौंवी तथा दसवीं योजनाओं में लक्ष्यों को प्राप्त करने की असफलता से आश्चर्य नहीं होना चाहिए। पिछले वर्षों में विद्युत शक्ति के विकास की जिम्मेदारी अधिकतर राज्य सरकारों ने उठाई है। अब कई राज्य महसूस करने लगे हैं कि बहुत बडी पूंजी प्रधान परियोजनाओं को शुरू करना उनके बस की बात नहीं है। 2012 तक अनुमानित मांग को पूरा करने के लिए ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में बिजली स्थापित क्षमता में 78,700 MW वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया जिसमें जल विद्युत शक्ति का हिस्सा 19.9 प्रतिशत , थर्मल विद्युत शक्ति का हिस्सा 75.8 प्रतिशत तथा परमाणु ऊर्जा का हिस्सा 4.3 प्रतिशत था। बाद में इस लक्ष्य को संशोधित किया गया।

12.7.2 परिवहन और संचार

टेलीफोन ग्राहकों की संख्या 2003 में 7.65 करोड़ से बढ़कर मार्च 2014 के अन्त में 93.3 करोड़ हो गई। इसका एकमात्र कारण बेतार कनेक्शनों मोबाइल कलेक्शनों में तेज वृद्धि है। मार्च

2004 से मोबाइल कनेक्शनों की संया 3.56 करोड़ थी जो मार्च 2014 के अन्त तक बढ़कर 90 करोड़ 45 लाख हो गई। दूरसंचार घनत्व जो दूरसंचार पहुंच का एक महत्वपूर्ण सूचक है , मार्च 2004 में 7.04 प्रतिशत से बढ़कर नवम्बर 2014 में 77.12 प्रतिशत हो गया।

भारतीय नियोजकों ने परिवहन व संचार के विकास को भी उच्च प्राथमिकता दी। पहली दो योजनाओं के दौरान परिवहन व संचार पर कुल व्यय का 27 से 28% भाग सुरक्षित रखा गया। बाद में यह आवंटन घटा दिया गया। इस आवंटन का अधिकांश रेलवे के विकास की ओर मोड़ दिया गया।

आर्थिक नियोजन के प्रारम्भ से ही परिवहन क्षेत्र ने महत्वपूर्ण वृद्धि अंकित की है। भारतीय रेलवे ने टन भार के आधार पर लगाए गए माल भाड़े में प्रति वर्ष औसतन 3.1% की वृद्धि अंकित की है। हालांकि दूरी व लम्बाई के संदर्भ में यह वृद्धि घटी सिद्ध हुई जो कि वस्तुतः 0.4% प्रति वर्ष थी। सड़क मार्गीय नेटवर्क 4.5 की वार्षिक दर से बढ़ा है जबकि सड़क परिवहन साधनों में 6.8% की वृद्धि हुई है। जहाजरानी लदान (टन के अधिभार में) प्रभावशाली रूप से 11% बढ़ा है जबकि प्रमुख बंदरगाहों पर आवागमन 1951 के 19 मिलियन टन से बढ़ कर 1985 में 107 मिलियन टन हो गया। यह वृद्धि 5% की प्रभावकारी वार्षिक वृद्धि की द्योतक आधुनिक संचार प्रणालियां -डाक व तार सेवाएं, दूरसंचार प्रणाली रेडियो प्रसारण, टेलिविजन व सूचना सेवाएं-विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बन गई है। 1950-51 के बाद से समूचे देश में डाक सेवाओं का नेटवर्क लगातार बढ़ता जा रहा है। वह अब ग्रामीण, पहाड़ी तथा जनजातीय क्षेत्रों तक अपनी पहुंच बनाता जा रहा है। दूरसंचार क्षेत्र नई तकनीकों का अधिकाधिक समावेश कर रहा है जिनमें इलेक्ट्रोनिक्स, उपग्रह संचार व विविध प्रसारण नेटवर्क विशेष उल्लेखनीय हैं। 1950-51 से 2013-14 की अवधि के दौरान जहां मार्ग किलोमीटर में वृद्धि केवल 23 प्रतिशत हुई है वहां माल और यात्री यातायात में क्रमशः 14 व 17 गुणा से भी अधिक वृद्धि हुई है।

12.7.3 बैंकिंग एवं वित्त

जब से देश में आर्थिक नियोजन स्वीकार किया गया है, बैंकिंग व्यवस्था पर्याप्त रूप से लगातार बढ़ती जा रही है। इस वृद्धि का कुछ आभास अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की क्रियाशीलता से हो सकता है जिसे तालिका 1.3 प्रदर्शित कर रही है:

तालिका-1.3 : अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की वृद्धि एवं क्रियाशीलता

वर्ष	बैंकों की संख्या	बैंकों में जमा राशि (करोड़ रु. में)	बैंक ऋण (करोड़ रु. में)
1950-51	430	82	580
1970-71	73	5,910	4,690
1988-89	275	140,000	81,000
2013-14		77,05,560	59,94,100

[स्रोत : रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया, रिपोर्ट ऑन करेन्सी एण्ड फाइनेन्स (विविध अंक)]

1950-51 के बाद से बैंकों की संख्या में रिजर्व बैंक की छोटे बैंकों के विलय एवं समायोजन नीति के कारण कमी आई। इसका मंतव्य भारत में बैंकिंग व्यवस्था को सुदृढ़ करना है। 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के उपरांत भारत में बैंकिंग व्यवसाय में अत्यधिक विस्तार हुआ है। 1951 से 1971 की बीस वर्षों की अवधि में बैंकों में जमा राशि 7 गुना अधिक बढ़ी। 1971 से 1989 के अगले 18 वर्षों की अवधि में तो यह वृद्धि लगभग 30 गुना अधिक है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान जमा राशियों तथा ऋणों में व्यापक प्रसार हुआ है। बैंक वास्तव में विकास-उन्मुखी हो चले हैं। बैंकिंग अब बड़ी इकाईयों के बजाय छोटी इकाईयों पर अभिकेन्द्रित होती जा रही हैं। अनेक नए प्रयोग जैसे लीड बैंक योजना, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, आदि बैंकिंग प्रणाली को अधिकाधिक चरितार्थ कर रहे हैं। आर्थिक विकास के साथ-साथ उसे कार्यकारणत्व रूप में बैंकिंग व्यवस्था सतत विकसित हो रही है।

1951 के बाद से योजना आयोग ने अन्य वित्तीय संस्थाओं में शानदार वृद्धि होते देखी है। इनमें स्टॉक एक्सचेंज, छोटे निवेशकों के निवेश को बढ़ाने वाला यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया, जीवन बीमा निगम, आई.एफ.सी.आई., आई.डी.बी.आई. तथा आई.सी.आई.सी.आई. विशेष उल्लेखनीय है।

1991 में बैंकिग व्यवस्था बहुत कमजोर थी। बैंकों के पास ऐसे बहुत ऋण जमा हो गए थे जिन पर उन्हें ब्याज की प्राप्ति नहीं होती थी। उधार की ये राशियां सार्वजनिक बैंकों के कुल ऋणों की औसतन लगभग 25 प्रतिशत थी, लेकिन सभी बैंकों की स्थिति कए जैसी खराब नहीं थी। सशक्त बैंकों के पास ब्याज न अर्जित कर पाने वाले ऋण कुल ऋणों के 8-10 प्रतिशत तक ही थे। परन्तु अनेक सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने भारी हानियां उठाई। लेकिन बाद के वर्षों में स्थिति में सुधार हुआ है और सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के ब्याज न पाने वाले ऋण जिन्हें नॉन परफार्मिंग परिसंपत्तियां कहा जाता है। जो मार्च अन्त 2004 में 7.4 प्रतिशत थे, मार्च 2011 के अन्त में 2.5 प्रतिशत रह गए। परन्तु स्थिति बिगड़ी तथा सकल ऋण के प्रतिशत के रूप में सकल एनपीए बढ़कर मार्च 2012 के अन्त में 3.1 प्रतिशत था मार्च 2014 के अन्त में 4.1 प्रतिशत हो गए।

12.8 सारांश

इस इकाई में आपके अध्ययन को सुविधाजनक बनाने के लिए आज़ादी के बाद से अर्थव्यवस्था की समग्र वृद्धि दर तथा उसके विविध क्षेत्रों की क्षेत्रवार वृद्धि दरों का वितरण प्रस्तुत किया गया है। 1960 के दशक में महसूस किए जाने वाली वृद्धि में मंदी व शिथिलता की प्रक्रिया पर छठी योजना व उसके बाद कुछ प्रभावी अंकुश अवश्य लगा है। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था की उत्तरजीविता परिपुष्ट होती है।

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. रूद्र दत्त एवं के.पी.एम. सुन्दरम : इंडियन इकॉनोमी

2. भारत सरकार, योजना आयोग : छठी व सातवीं एवं आठवीं पंचवर्षीय योजनाओं संबंधी दस्तावेज

3. रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया : रिपोर्ट ऑन करेन्सी एण्ड फाईनेन्स

4 मिश्र एवं पूरी : भारतीय अर्थव्यवस्था

12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था नियोजन के प्रथम दशक में अर्जित वृद्धि दर के स्वरूप पर अपने विचार व्यक्त करें।
2. क्या आप मानते हैं कि द्वितीय योजना में औद्योगिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि अर्जित की थी? स कारण उत्तर दें।

इकाई – 13

भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 विभिन्न प्रकार के संरचनात्मक परिवर्तन तथा भारतीय अर्थव्यवस्था उत्पादन की रचना में परिवर्तन –
13.2.1 कृषि क्षेत्र
13.2.2 औद्योगिक क्षेत्र
13.2.3 सेवा क्षेत्र
13.3 भारत में सेवा निर्देशित संवृद्धि
13.4 उपभोग की संरचना परिवर्तन
13.5 जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन
13.5.1 रोजगार/व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन
13.6 निवेश की संरचना –
13.7 विदेशी व्यापार की संरचना मे परिवर्तन
13.8 मूल्यांकन प्रश्न
13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- समझ सकेंगे कि संरचनात्मक परिवर्तन किसे कहते हैं?
- जान पाएंगें कि विकास के साथ - साथ परिवर्तन होते है?
- समझ पाएंगें कि स्वतंत्रता के 70 वर्षों के उपरान्त भारतीय अर्थव्यवस्था मे इन संरचनात्मक परिवर्तनों की क्या स्थिति रहीं है।

13.1 प्रस्तावना

विकास के पथ पर निरंतर अग्रसर किसी अर्थव्यवस्था द्वारा जैसे - जैसे आगे बढ़ा जाता है वैसे - वैसे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में कई आमूलचूल परिवर्तन दिखाई पड़ते है। यह परिवर्तन अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में परम्परागत से आधुनिकी में परिवर्तित होते हुए प्रकट होते है। अधिकतर अल्पविकसित और खासकर विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में यह परिवर्तन वृह्द स्तर पर

विभिन्न क्षेत्रों में स्पष्ट झलकता है। इस प्रकार के परिवर्तन अलग-अलग अर्थव्यवस्था पर अलग अलग रहा है। परन्तु प्रवृत्ति एक समान दिखाई पड़ती है। इस प्रकार विकास के दौरान इन परिवर्तनों का प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा जिसका विवरण इस अध्याय में प्रस्तुत है।

अर्थ - संरचनात्मक परिवर्तनों का अर्थ किसी परम्परागत समाज का आधुनिक औद्योगिक अर्थ व्यवस्था में बदल जाना जिसमें सामाजिक तथा आर्थिक संस्थाओं अथवा प्रथाओं में परिवर्तन शामिल होते हैं।

परिभाषा - कुजनेट्स के अनुसार, आधुनिक आर्थिक वृद्धि में ये संरचनात्मक परिवर्तन सम्मिलित रहते हैं - कृषि से हटकर कृषि भिन्न क्रियाओं में संलग्न होना अर्थात् औद्योगिक की प्रक्रिया, गांवों तथा नगरों में जनसंख्या का विवरण, अर्थात् नगरीकरण की प्रक्रिया, रोजगार स्तर, विविध उद्योगों के साथ लगाव, प्रति व्यक्ति आय के स्तर आदि के आधार पर राष्ट्र के भीतर विशिष्ट वर्गों की सापेक्ष आर्थिक स्थिति में परिवर्तन घरेलू उपभोग, पूंजी-निर्माण तथा सरकारी उपभोग में प्रयोग के आधार पर उत्पादन का विवरण, उत्पादन का उसके मूल में राष्ट्र की सीमाओं के भीतर तथा बाहर बंटवारे में परिवर्तन।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में हम पहले संरचनात्मक परिवर्तनों का विभिन्न आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव तथा उसके उपरान्त इन परिवर्तनों का भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ अध्ययन करेंगे।

13.2 विभिन्न प्रकार के संरचनात्मक परिवर्तन तथा भारतीय अर्थव्यवस्था उत्पादन की रचना में परिवर्तन –

कुजनेट्स के अनुमानों से पता चलता है कि विभिन्न क्षेत्रों के राष्ट्रीय आय में उनके भाग मे परिवर्तन हुए है। आधुनिक आर्थिक वृद्धि के साथ उत्पादन की रचना में ये परिवर्तन हुए: कृषि तथा कृषि से सम्बद्ध उद्योगों के भाग में कमी हुई निर्माण तथा सार्वजनिक उपयोगिताओं का भाग बढ़ा विनिर्माण में भी कम टिकाऊ वस्तुओं का उत्पादन होने की बजाय उत्पादक वस्तुओं के विनिर्माण की ओर झुकाव बढ़ा, कुछ सेवा वर्गों जैसे व्यक्तिगत, व्यावसायिक अथवा सरकारी सेवाओं के भागों में वृद्धि हुई और अन्य वर्गों के जैसे कि घरेलू नौकरों के भाग कम हो गए।

13.2.1 कृषि क्षेत्र –

कुजनेट्स के अनुमानों से पता चलता है कि 13 देशों में से 12 विकसित देशों में कुल उत्पादन में कृषि क्षेत्र का भाग पहले से कम हुआ। केवल आस्ट्रेलिया ही एक ऐसा देश या जिसमें कृषि का भाग स्थिर रहा है 23 प्रतिशत या अन्य देशों में तीसरे दशक की प्रारंभिक अवधि में राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि का भाग 20 से 30 प्रतिशत कम हुआ।

यहीं यह बात भारतीय आंकड़ों से भी स्पष्ट होती है। 1950-51 में साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा 53.1 प्रतिशत या जो कम होते होते 2013-14 में 13.9 प्रतिशत रह गया। (2004-05 की कीमतों पर) 2011-12 को आधार वर्ष मानकर तैयार की गई नई श्रृंखला के

अनुसार मूल कीमतों पर सकल वर्धित मूल्य में कृषि व सहायक गतिविधियों का हिस्सा 2013-14 में 17.2 प्रतिशत, 2014-15 में 16.1 प्रतिशत तथा 2015-16 में रहा।

सारणी 13.1

क्षेत्र/उद्योग	सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में हिस्सा (2004-05) की कीमतों पर)			सकल वर्धित मूल्य (GDP) में हिस्सा (2011-12) की कीमतों पर)	
	1950-51	2000-01	2012-13 to 2013-14	2013-14	2014-15
कृषि	42.8	18.8	11.8	-	-
संबंधगतिविधियां	10.3	3.5	2.1	-	-
प्राथमिक क्षेत्र	53.1	22.3	13.9	17.2	16.1

कारण - कृषि क्षेत्र के भाग मे कमी आने का कारण यह तथ्य माना जाता है कि अन्य क्षेत्रों में प्रयुक्त उत्पादक साधनों की अपेक्षा कृषि क्षेत्र में श्रम-पूर्ति और पूंजी की मात्रा बहुत कम थी। एक अन्य कारण यह भी है कि ज्यों-ज्यों, अर्थव्यवस्थाएं पहले से अधिक समृद्ध हुई, त्यों त्यों उनकी प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ती गई। परिणामस्वरूप, कृषि उत्पादनों के लिए प्रति व्यक्ति मांग उतनी तेजी से नहीं बढ़ी और इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि का भाग कम हुआ। इस प्रवृत्ति का सैद्धान्तिक एवं तीसरा कारण - एंजल का परिवार नियम है जिसके अनुसार ज्यों ज्यों परिवार कीआय बढ़ती जाती है त्यों त्यों परिवार के बजट में भोजन पर होने वाले व्यय का प्रतिशत भी घटता जाता है । परिणामस्वरूप भोजन का उपभोग घटजा जाता है जबकि वस्त्र आवास अथवा टिकाऊ वस्तुओं का उपभोग बढ़ जाता है ।

उपरोक्त तीन कारणों की चर्चा अब हम भारतीय अर्थव्यवस्था तथा कृषि क्षेत्र में संरचनात्मक परिवर्तन के संदर्भ में करते है तो पहला कारण भारत पर थोड़ा कम सही प्रतीत होता है । सैद्धान्तिक रूप में अन्य दो क्षेत्रों में वृद्धि के परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र के लिए शेष बची श्रम शक्ति की मात्रा कम होती है । क्योंकि जहां 1951 में कुल श्रम शक्ति का 72.1 प्रतिशत भाग कृषि सम्बद्ध व्यवसायों में लगा हुआ था वहीं अब भी 2011-12 में 48.9 प्रतिशत कृषि तथा संबद्ध व्यवसायों में कार्यरत है । इस प्रकार यह कारण भारतीय अर्थव्यवस्था पर अपेक्षाकृत कम लागू होता है । जिससे एक भीषण समस्या उत्पन्न हुई है और वह आय के वितरण की समस्या।

13.2.2 औद्योगिक क्षेत्र –

कुजनेट्स के अध्ययन में 12 देशों में राष्ट्रीय उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र का भाग बढ़ा है । प्रारंभिक अवधियों में औद्योगिक क्षेत्र का भाग कुल उत्पाद का 20 से 30 प्रतिशत के बीच रहा लेकिन बाद की अवधि में यह बढ़कर 40 से 50 प्रतिशत या अधिक हो गया। केवल आस्ट्रेलिया में राष्ट्रीय उत्पाद मे यह भाग 30 प्रतिशत के लगभग स्थिर रहा है ।

वही भारत में उद्योगों (या द्वितीयक क्षेत्र) में खनन एवं उत्खनन, विनिर्माण, निर्माण, विद्युत, गैस एवं जल आपूर्ति को शामिल किया जाता है । इस क्षेत्र का 2004-2005 की कीमतों पर) 1950-51 में सकल घरेलू उत्पाद का हिस्सा 16.6 प्रतिशत या और इससे लगभग सतत् रूप में वृद्धि हुई है । 1990-91 में सकल घरेलू उत्पाद में उद्योग का हिस्सा 27.7 प्रतिशत था। 2012-13 में यह

हिस्सा 27.3 प्रतिशत रह गया। (2004-05 की श्रृंखला के अनुसार।) 2011-12 को आधार वर्ष मान कर तैयार की गई श्रृंखला के अनुसार उद्योग का सकल वर्धित मूल्य में हिस्सा 2013-14 में 31.7 प्रतिशत तथा 2014-15 में 31.4 प्रतिशत था।

भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक क्षेत्र की संरचना की विभिन्न प्रवृत्तियों से पता चलता है कि कृषि से सम्बद्ध उद्योगों के भागों में कमी हुई (सारणी 13.1 से) विनिर्माण तथा सार्वजनिक उपयोगिताओं का भाग बढ़ा (सारणी 02 के अनुसार। कुछ सीमित मात्रा में उपभोक्ता वस्तुओं की बजाय उत्पादक वस्तुओं के विनिर्माण की ओर झुकाव बढ़ा। जहां तक विनिर्माण क्षेत्र का संबंध है, विकासशील अर्थव्यवस्था में इसका तेज विकास होता है यही कारण है कि इस क्षेत्र के कुल आकार में सर्वोपरि काफी वृद्धि हुई है।

जहां भारत में यह 1950-51 में सकल घरेलू उत्पाद का 9.2 प्रतिशत (2004-05 की कीमतों के आधार पर) था वहीं 2011-12 को आधार वर्ष मानकर तैयार की गई नई श्रृंखला के अनुसार 2013-14 तथा 2014-15 में सथला वर्धित मूल्य में विनिर्माण का हिस्सा 18.2 प्रतिशत रहा है। सकल घरेलू उत्पाद में विनिर्माण क्षेत्र के हिस्से में वृद्धि उपेक्षाकृत कम रही है। जो गंभीर चिंता का विषय हैं क्योंकि भावी आर्थिक विकास की दृष्टि से तथा रोजगार के अवसरों में विस्तार की दृष्टि से , इस क्षेत्र की भूमिका महत्वपूर्ण है।

कारण –

विकास के साथ साथ औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिलने के पीछे प्रमुख कारण है **-** तकनीकी प्रगति तथा शहरी क्षेत्रों में , भोजन तथा आवस की मांग को पूरा करने के लिए उद्योगों तथा सेवा क्षेत्रों की आवश्यकता महसूस हुई जिससे औद्योगिकीकरण को बढ़ावा दिया। शहरी क्षेत्रों में ओद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों की विशेष आवश्यकताओं के नियमन तथा प्रशासन के लिए सरकारी सेवाओं की भी मांग बढ़ी।

13.2.3 सेवा क्षेत्र - कुछ सेवा वर्गों के जैसे कि व्यक्तिगत, व्यावसायिक अथवा सरकारी सेवाओं के भागों में वृद्धि हुई और अन्य वर्गों के जैसे कि घरेलू नौकरों के भाग कम हो गए। जहां तक 1954-56 की अवधि के लिए सेवा क्षेत्र की संरचना का संबंध है जिसके आंकड़े अब उपलब्ध है 09 विकसित देशों (इंग्लैण्ड, फ्रांस, बेल्जियम, पश्चिमी जर्मनी, नीदरलैण्ड, उनमार्क, नार्वे, कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका) के औसत भाग से पता चलता है कि वाणित्य (व्यापार एवं वित्त) राष्ट्रीय उत्पाद के 14-15 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी था आवासों के स्वामित्व का भाग 04 प्रतिशत में कम था, और सरकार एवं रक्षा का भाग राष्ट्रीय उत्पाद के 07 प्रतिशत से अधिक या अन्य सभी निजी सेवाएं व्यावसायिक निजी एवं व्यापार राष्ट्रीय उत्पाद के लगभग10 प्रतिशत के लिए उतरदायी रहीं। भारत में योजना अवधि के दौरान सेवा क्षेत्र का तेजी से विकास हुआ। 1950-51 में सकल घरेलू उत्पाद में सेवाओंका हिस्सा 30.3 प्रतिशत था और यह 2013-14 में लगभग 60 प्रतिशत तक जा पहुंचा। (2004-05 की कीमतों पर) 2011-12 को आधार वर्ष मानकर तैयार की गई नई श्रृंखला के अनुसार, सकल वर्धित तमल्य में सेवाओं का हिस्सा 2013-14 में 51 प्रतिशत तथा 2014-15 में 52.5 प्रतिशत था।

सारणी 13.2

क्र.सं.	क्षेत्र/उद्योग	सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में हिस्सा (2004-05) की कीमतों पर)			सकल वर्धित मूल्य (GDP) में हिस्सा (2011-12) की कीमतों पर)	
01	व्यापार, होटल, परिवहन एवं संचार	11.3	21.6	26.4	18.8	19.4
02	वित्त व्यवस्था, बता स्थावर सम्पदा एवं व्यावसायिक सेवाएं	8.5	14.1	20.6	19.7	20.5
03	सामुदायिक, सामाजिक रल्वे, वैयक्तिक सेवाएं	10.4	14.7	12.9	12.6	12.6
	सेवा क्षेत्र (1+2+3)	30.3	50.4	59.9	51.1	52.5

स्रोत 1 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया हैण्ड बुक ऑफ स्टेटिक्स आन इण्डियन इकोनोमी 2011-12 (मुम्बई 2012)क्षेत्रवार GDP/GAD में हिस्सा (प्रतिशत में)

स्रोत - रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, हैण्डबुक ऑफ स्टेटिक्स ऑन इंडियन इकोनोमी, 2011-12 (मुम्बई 2013)

2 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, हैण्डबुक ऑफ स्टेटिक्स ऑन इण्डिन इकोनोमी 2014-15 (मुम्बई 2015 सारणी 02 पृ.सं. 8-10)

13.3 भारत में सेवा निर्देशित संवृद्धि

अ) सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्रके हिस्से में निरंतर वृद्धि

1950-51 में कृषि संबद्ध गतिविधियों का क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र था और इसका सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 53.1 प्रतिशत था। उद्योग का हिस्सा मात्र 16.6 प्रतिशत था और सेवा क्षेत्र का हिस्सा लगभग 30 प्रतिशत था। आयोजन की प्रक्रिया शुरू होने पर, उद्योगों व सेवाओं के हिस्से में वृद्धि हुई और कृषि के हिस्से में गिरावट। 1980-81 तक आते आते सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का हिस्सा 38.0 प्रतिशत तक पहुंच गया जो कृषि क्षेत्र के हिस्से से अधिक था। (इस वर्ष कृषि क्षेत्र का हिस्सा 36.1 प्रतिशत था)। 1980-81 मे उद्योग का सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 25.9 प्रतिशत था। इसके बाद के वर्षों में सेवा क्षेत्र के पक्ष में व्यापक संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं। 2013-14 में सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का हिस्सा बढ़ कर 59.9 प्रतिशत तक पहुंच चुका था जबकि कृषि व सम्बद्ध गतिविधियों का हिस्सा मात्र 13.9 प्रतिशत था। (इस वर्ष उद्योग का हिस्सा 26.2 प्रतिशत था)। 2011-12 को आधार वर्ष मानकर तैयार की गई नई श्रंखला के अनुसार सकल वर्धित मूल्य में सेवाओं का हिस्सा 2013-14 में 51 प्रतशत तथा 2014-15 में 52.5 प्रतिशत था। वस्तुतः पिछले कुछ वर्षों से भारत में आर्थिक से वृद्धि सेवा क्षेत्रद्वारा निर्देशित रही है। नौंवी योजना के दौरान भी जब संपूर्ण आर्थिक संवृद्धि भी गति अपेक्षाकृत कम रही, परन्तु सेवाओं का तेजी से विकास जारी रहा। इसके अलावा 2002-03 के बाद से सेवा क्षेत्र मेंप्रगति और तेजी से हुई जिसका मुख्य कारण संचार सेवाओं (विशेषतौर पर टेलिकॉम) व्यावसायिक सेवाओं (विशेषतौर पर सूचना प्रौद्योगिकी) तथा वित्त का तेजी से विकास था।

सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर में, सेवा क्षेत्र का निरंतर बढ़ता हुआ योगदान -

यही नहीं भारत की सकल संवृद्धि में भी सेवा क्षेत्र का हिस्सा पिछले दो दशकों से 50 से 70 प्रतशत के आसपास रहा है। वर्ष 1991-92 से 1996-97 के मध्य पांच वर्षों में सेवा क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में होने वाली संवृद्धि मे लगभग आधा योगदान (49.8 प्रतिशत) था। जो वर्ष 2011-12 को आधार वर्ष मानकर तैयार की गई श्रृंखला के अनुसार 2011-12 से 2014-15 के बीच सकल वर्धित मूल्य में होने वाली वृद्धि सेवा क्षेत्र का योगदान 72.6 प्रतिशत था। शंकर आचार्य के अनुसार ''यदि निर्माण की सेवा क्षेत्र में शामिल किया जाए तो यह वृद्धि और भी अधिक होगी।)

सारणी 13.3 क्षेत्रवार GDP/GAD में हिस्सा (प्रतिशत में)

क्षेत्र/उद्योग	**(GDP) में हिस्सा (%) आधार वर्ष (2004-05)**		**(GDP) में हिस्सा (%) आधार वर्ष (2011-12)**	
	1950-51	2013-14	2013-14	2014-15
कृषि उद्योग सेवाएं	53.3 16.6 30.3	13.9 26.2 59.9	17.2 31.7 51.1	16.1 31.4 52.2
साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद	10.00	10.00	10.00	100.00

टिप्पणियां - GDP = सकल घरेलू उत्पाद, GAD = सकल घरेलू वर्धित मूल्य

स्रोत 1 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया हैण्ड बुक ऑफ स्टेटिक्स आन इण्डियन इकोनोमी 2014-15 (मुम्बई 2015) सारणी पृ. सं. 11-13

तालिका 13.4 क्षेत्रवार GDP/GAD में हिस्सा (प्रतिशत में)

क्षेत्र/उद्योग	**(GDP) में हिस्सा (%) आधार वर्ष (2004-05)**		**(GDP) में हिस्सा (%) आधार वर्ष (2011-12)**
	1991-97	2008-14	2011-12 से 2014-15
कृषि उद्योग सेवाएं	21.1 29.0 49.8	9.1 21.1 69.8	4.7 22.7 72.6
साधन लागत पर GDP	100.00	100.00	100.00

टिप्पणियां - GDP = सकल घरेलू उत्पाद GAD = सकल घरेलू वर्धित मूल्य

स्रोत 1 शंकर आचार्य, समष्टि अर्थशास्त्र प्रदर्शन तथा नीतियां 2000-08, राकेश एवं मोहन(ed.)

1 भारतीय अर्थव्यवस्था: प्रदर्शन और चुनौतियां (नई दिल्ली, सारणी 4.2 पृ.सं. 120

2 इकोनोमिक एण्ड पालिटीकल विकली, फरवरी 22, 2014 पृष्ठ सं. 87

उपरोक्त दी गई सारणी 13.3 एवं13.4 विवरण से स्पष्ट होता है कि भारत में संवृद्धि, सेवा क्षेत्र द्वारा निर्देशित रही है। कुछ विकास अर्थशास्त्रियों ने तर्क दिया है कि हाल के वर्षों में सेवा क्षेत्र का बढ़ता हुआ हिस्सा अर्थव्यवस्था में हो रहे। संरचनात्मक परिवर्तन प्रतीक है। परन्तु इस संदर्भ में

यह प्रश्न उठता है कि क्या यह विकास का रूप वहनीय या धारणीय है अर्थात् क्या आर्थिक संवृद्धि गति को बनाए रखने के लिए सेवा क्षेत्र पर निर्भरता बनाई रखी जा सकती है। कुछ अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि सेवा क्षेत्र केवल अपने बूते पर विकास की मौजूदा प्रक्रिया व ढाँचे को लम्बे समय तक बनाए नहीं रख सकता।

भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि जीएडी में जहां कृषि का अंश 2014-15 में 13.9 प्रतिशत हो वहीं दूसरी और कुल श्रम शक्ति का 48.9 प्रतिशत हिस्सा अभी भी कृषि एवं सम्बद्ध कार्यकलापों में कार्यरत है जो आय के वितरण में भारी असमनता का प्रकट करता है जो भविष्य की और संकेत करता है।

कारण - सेवा क्षेत्र मे इस प्रकार की वृद्धि खासतौर पर भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ के पीछे अनेक कारण मौजूद है। विकास के साथ-साथ प्रति व्यक्ति उपभोक्ता आय में वृद्धि ने सेवाओं की विशेष रूप से परचून व्यापार में मांग बढ़ा दी। वस्तु उत्पादन की बदलती संरचना के साथ, विज्ञापन, वित्तीय तथा मिलती जुलती सेवाओं की मांग भी बढ़ी। बढ़ते नगरीकरण से, पुलिस सफाई जनस्वास्थ्य शिक्षा आदि में शहरों में सरकारी नौकरियों की मांग बढ़ी। प्रति व्यक्ति उपभोक्ता आय में वृद्धि ने भी मनोरंजन, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य व्यावसायिक सेवाओं की मांग बढ़ा दी। उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के अधिक प्रयोग में मरम्मत संबंधी सेवाओं की मांग में बहुत अधिक वृद्धि हुई कुल मिलाकर सेवा क्षेत्रकी इस बढ़ी हुई मांग से कुल राष्ट्रीय उत्पाद का भाग लगभग स्थिर हो गया है।

13.4 उपभोग की संरचना परिवर्तन

प्रोफेसर कुजनेट्स ने मुख्य रूप से पांच मदों के अन्तर्गत उपभोक्ता क्रय शक्ति की संरचना में परिवर्तन लक्ष्य किए हैं। अनुमानों में (1) भोजन (2) मद्य व तम्बाकू (3) वस्तु (4) आवास तथा (5) अन्य सम्मिलित है। 'अन्य' के अन्तर्गत घर का फर्नीचर ओरसामान कारें, चिकित्सा, मनोरंजन इत्यादि मदें रखी गई हैं। सरकार आवास , शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सेवाएं छोड दी गई है क्योंकि इन्हें घरेलू उपभोग में सम्मिलित किया गया है। भारत के संदर्भ, नई आर्थिक नीति के उपरान्त अर्थव्यवस्था की तीव्र संवृद्धि दर ने भारत में प्रति व्यक्ति व्यय तीव्र गति से बढ़ाया है जिससे सुधार पूर्व के उपभोग प्रतिरूप तथा सुधार उपरान्त उपभोग प्रतिरूप की संरचना में काफी अन्तर आया है। जहां 1970 से 1990 की अवधि में खाद्य पदार्थों पर व्यक्तिगत अंतिम उपभोग व्यय 51.7 प्रतिशत से घटकर 48.4 प्रतिशत के स्तर पर आ गया और गैर खाद्य पदार्थों पर व्यय 48.3 प्रतिशत से बढ़कर 51.6 प्रतिशत हो गया था। 1990 - 91 वहीं सुधारों के पश्चात यह खाद्य पदार्थों पर और घटकर 49.9 प्रतिशत से 35.4 प्रतिशत रह गया था। (1990 से 2004 -05 की अवधि के लिए) जबकि गैर खाद्य पदार्थों पर यह व्यय 50.1 प्रतिशत से बढ़कर 64.6 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार उपभोग प्रतिरूप में भी परिवर्तन संरचनात्मक परिवर्तन की और संकेत करताहै।

उपभोग प्रतिरूप

तालिका 13.5 व्यक्तिगत अंतिम उपभोग व्यय (आधार वर्ष 1999-2000)

मद	सुधार पूर्व अवधि				सुधार उपरान्त अवधि			
	1987-88		1990-91		1991-92		2004-05	
	राशि (Rs.)	प्रतिशत	राशि (Rs.)	प्रतिशत	राशि (Rs.)	प्रतिशत	राशि (Rs.)	प्रतिशत
खाद्य पदार्थ	213613	51.7	147305	48.4	17567	49.9	611949	35.4
गैर खाद्य पदार्थ	199344	48.3	156878	51.6	17727	50.1	1118367	64.6
कुल निजी व्यक्तिगत /अंतिम व्यय	412957	100	304183	100	35494	100	1730316	100

स्रोत - सवनीत सिंहा, इण्डियास, चेंनचिंग, कसम्पसन, पैटन्र, ज्ञानपर्थाएकमेन, जनरल मैनजमैण्ट, 40.5 Issue सारणी 2

कारण - उपभोग प्रतिरूप में यह परिवर्तन क्यों हुआ इसका अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि मोटे रूप से इसके पीछे जिम्मेदार कारणों को तीन भागों में विभक्त कर सकते है।

1. **जीवन यापन की परिस्थितियों में परिवर्तन –**

   उत्पादन के संरचनात्मक परिवर्तनों के परिणा स्वरूप जीवनयापन की स्थितियों में भी परिवर्तन आया जिससे उपभोग के प्रतिरूप में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। नगरीकरण की प्रक्रिया में परिवार अथवा गांव तक सीमित गैर-बाजार क्रियाओं से हटकर व्यापार फर्मों की विशेषीकृत बाजार क्रियाओं में लगना प्रारंभ कर दिया। एक समय था जब परम्परागत रूप से खाद्य संरक्षण कपड़े सिलाई, भवन निर्माण और मकानों की मरम्मत का काम बहुत कुछ घर में ही या फिर सामुदायिक प्रयत्नों से गांव में ही कर लिया जाता था। आज आधुनिककृत नगरीय समाज में इनमे से अधिकतर कार्य समाज में व्यापार फर्म करती है। शहरी जीवन उपभोग स्तर को बदला है क्योंकि उसमें प्रदर्शन प्रभाव का प्रोत्साहन मिलता है। क्योंकि उसमें प्रदर्शन प्रभाव को प्रोत्साहन मिलता है और नई उपभोक्ता वस्तुओं की संवेदनशीलता बढ़ती है।

2. **प्रौद्योगिकी परिवर्तन –**

   ऐसे परिवर्तन उपभोक्ता वस्तुओं को प्रभावितकरते हैं क्योंकि वे नए प्रकार की वस्तुएं अस्तित्व में लाते है। ओर पुरानी वस्तुओं में प्रमुख परिवर्तन ला देते है। भोजन तक के संबंध में आधुनिक डिब्बाबंदी तथा हिमीकरण आदि ऐसी नई प्रक्रियाएं है जो आहार के लिए कुल मांग में परितर्वन ला देती है। इस तरह के प्रौद्योगिकीय परितर्वन उस समय और भी अधिक ध्यान आकर्षित करते है जब वे निंत नई उपभोक्ता वस्तुएं अस्तित्व मे लाते है जैसे किम मानव- निर्मित वस्त्र, बिजली के घरेलू यंत्र, रेडियो, टेलिविजन सेट, एल.ई.डी टाटा स्काई, कारें, वायुयान, परिवहन दूर व संचार के उपकरण जैसे मोबाईल फोन स्मार्ट फोन आदि। जिनसे उपभोग के प्रतिरूप में परिवर्तन आने की अपार संभावना विद्यमान रहती है।

13.5 जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन

रोजगार स्तर, तथा व्यावसायिक परिवर्तन और इनमे सम्बद्ध आय वितरण में परिवर्तन भी उपभोग व्ययों को प्रभावितकरते है। जब श्रम शक्ति के भीतर ही ऐसे परिवर्तन होते है जैसे - कुशलता, प्रशिक्षण एवं शिक्षा के नीचे स्तरों से बाबूगिरी की और अग्रसर होना, तो इनमें भीह उपभोक्ता व्यय बढ़ता है। प्रबंधकीय एवं व्यावसायिक श्रमिकों की बढ़ती संख्या जीवनयापन के एक न्यूनतम स्तर तथा क्रमबद्ध उपभोक्ता क्रयों की मांग करते है जो कि इतनी ही आय वाले व्यक्ति एवं व्यापारियों की मांग से कहीं अधिक होती है, और उससे उपभोक्ता क्रयों के स्तर तथा संरचनाओं में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है जैसे जैसे विकास बढ़ता है श्रम शक्ति कृषि तथा सम्बद्ध क्रियाओं से स्थान्नातरित होने से वे उद्योगों तथा सेवा क्षेत्र में आधुनिक जीवन शैली में कार्य करती है और शहरी वातावरण में रहती है जिससे उनका परम्परागत उपभोग प्रतिरूप भी परिवर्तित होता है।

13.5.1 रोजगार/व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन

आधुनिक आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया में, रोजगार की दिशा, स्तर तथा संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। ज्यों ज्यों विकास में प्रगति हुई, त्यों त्यों कुल जनसंख्या में श्रमशक्ति का अनुपात बढ़ता गया। इन राष्ट्रों के आर्थिक विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में उनकी जनसंख्या का 30 प्रतिशत श्रमशक्ति के अन्तर्गत था अधिक हाल के वर्षों में उनकी जनसंख्या का 40 प्रतिशत से अधिक भाग श्रम शक्ति मे रहा है। यह वृद्धि इसलिए हुई क्योंकि जनसंख्या की आयु संरचना में परिवर्तन हुआ, जनसंख्या की आयु संरचना में परिवर्तन हुआ, जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण में परिवर्तन हुए, लाभप्रद व्यावसायों में भाग लेने वाली स्त्रियों की संख्या बढ़ती गई, श्रम शक्ति में प्रवेश की आयु सीमा घटी और सेवानिवृत्ति की आयु सीमा घट गई।

1. कुल श्रमशक्ति का कृषि में भाग

भारत समेत प्रत्येक देश में कृषि में संलग्न कुल श्रम शक्ति का भाग घटा है। पूर्व आधुनिक अवस्था में कृषि में श्रम शक्ति का भाग संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान तथा रूस में 65 प्रतिशत से अधिक था और सामान्यतः यह भाग 50 प्रतिशत से कम नहीं था। फिर यह आधुनिकीकरण तथा विकास के साथ-साथ यह अधिकांश देशों में केवल रूस और जापान को छोड़कर घटकर 20 प्रतिशत से कम हो गया है। कृषि श्रेत्र में रोजगार पर लगी श्रम शक्ति के भाग में होने वाली ये कमियां उतनी ही बढ़ी थी जितनी कि कुल उत्पाद में कृषि के भाग में हुई कमियां थी क्योंकि कुल श्रम शक्ति में कृषि क्षेत्र का भाग गिरा, इसलिए भारी संख्या में लोग शहरी क्षेत्रों में गए।

परन्तु भारत इस संदर्भ मे अपवाद रहा जहां सकल घरेलू उत्पादन में कृषि का भाग 1951 में 53.1 प्रतिशत था जो घटकर 2014-15 में 16.2 प्रतिशत पर आ गया परन्तु कृषि क्षेत्र में जहां कुल श्रम शक्ति का 72.1 प्रतिशत हिस्सा कृषि तथा सम्बद्ध क्रिया-कलापों में कार्यरत् था वह। 2011-12 में थोड़ा सा घटकर अभी भी कुल श्रम शक्ति का 48.9 प्रतिशत हिस्सा है। सरकारी नीतियां कृषि क्षेत्र से बाहर रोजगार के अवसर बढ़ाने मे असफल रही है जिसके परिणामस्वरूप कृषि भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता गया है और व्यापक स्तर पर प्रछन्न बेरोजगारी की स्थिति पैदा हो गई है।

योजना आयोग को अपने दस्तावेज "Approach to the Fifth Plan" में यह स्वीकार करना पड़ा था कि औद्योगिकीकरण की तत्कालीन दर पर कृषि से गैर कृषि क्षेत्र में श्रम शक्ति के व्यापक स्थानान्तरण का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए कृषि क्षेत्र में बढ़ रही श्रम शक्ति को कृषि क्षेत्र में रोजगार उपलब्ध करना होगा। 35 वर्ष पर्व कहीं गई यह बात आज भी उतनी ही सही है जितनी तब थी।

2. **कुल श्रम शक्ति का उद्योग क्षेत्र में भाग -** विकासशील देशों की अपेक्षा प्रत्येक विकसित देश में उद्योग क्षेत्र में काम करने वाली कुल श्रम शक्ति का भाग बढ़ा है, परन्तु अनेक देशों में यह वृद्धि निरपेक्षतया और सापेक्षतया थोड़ी रही है । कई देशों में यह वृद्धि इकाई अंक में हुई है । जैसे फ्रांस, इग्लैण्ड, नीदरलैण्ड, इटली और आस्ट्रेलिया मे यह 1 से 5 प्रतिशत अंक तक रही है । परन्तु डेनमार्क, स्वीडन, कनाड़ा और रूस में यह वृद्धि 10 से 20 प्रतिशत रही है ।

भारत के संदर्भ में देखा जाए तो सम्पूर्ण औद्योगिक क्षेत्र पर नजर डालने से ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में वृद्धि के दृष्टिकोण से योजनाओं के प्रथम चार दशकों में कुल उल्लेखनीय नहीं हुआ। 1991 में इस क्षेत्र में कार्यकारी जनसंख्या का 12.7 प्रतिशत भाग लगा हुआ था जबकि 1951 में यह प्रतिशत संख्या 10.7 थी। परन्तु 2001 तक पहुंचते पहुंचते स्पष्ट परिवर्तन देता है । इस वर्ष औद्योगिक क्षेत्र मे कार्यकारी जनसंख्या का 18.2 प्रतिशत लगा हुआ था। 2011 में यह बढ़कर 24.4 प्रतिशत तक पहुंच गया।

सारणी 13.6: भारत में जनसंख्या का व्यावसायिक विवतरण

सारणी 13.6 भारत में जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण (1951 से 2011-12)

व्यवसाय	1951	1991	2011-12
कृषि एवं संबंधव्यवसाय	72.1	68.8	48.9
उद्योग (1+2+3)	10.7	12.7	24.4
1- खनन एवं उत्खनन	0.6	0.6	0.5
2- विनिनिर्माण (बिजली, गैस एवं जलापूर्ति सहित)	9.0	10.2	13.2
3- विनिर्माण	1.1	1.9	10.6
सेवाए (4+5+6)	17.2	20.5	26.7
4- व्यापार एवं वाणिज्य	5.2	7.5	11.4
5- परिवहन, भंडारण, एवं संचार	1.5	2.8	4.4
6- अन्य सेवाएं	10.5	10.2	10.9
कुल	100	100	100

स्रोत- DCSO- Statistical Pocket Book 1991 (Delhi, 1991) Table 1.4 P.5

2 Tata Services Ltd. Statistical outline of India2009-10 (Mumbai 2010) Table 31 p 36

3 Institute of Human Development, India, London and Employment Report 2014 (New Delhi 2014) Table

जहां तक ओद्योगिक क्षेत्र के उपक्षेत्रों के प्रदर्शन की बात है

खनन एवं उत्खनन का हिस्सा 1950-51 से 2011-12 तक लगभग कुल श्रम शक्ति के 0.5 से 0.6 प्रतिशत तक स्थिर है। सर्वाधिक हिस्सा बिजली, गैस तथ जला आपूर्ति सहिता विनिमणि क्षेत्र का रहा है। सुधार अवधि (1991 से वर्तमान तक) में व्यापक पैमाने पर किए गए निर्माण कार्यों के परिणामस्वरूप, इस क्षेत्र में कार्यरत श्रम शक्ति में तेज वृद्धि हुई है। जहां 1991 में कार्यरत शक्ति का केवल 1.9 प्रतिशत इस क्षेत्र में कार्यरत था, वहां 2001 में 3.7 प्रतिशत और 2011 में 10.6 प्रतिशत निर्माण क्षेत्र में लगा हुआ था। इस प्रकार श्रम शक्ति का दसवां हिस्सा अब निर्माण क्षेत्र में कार्यरत है।

3. कुल श्रम शक्ति का सेवा क्षेत्र में भाग -

विकसित देशों की अपेक्षा प्रत्येक विकासशील देशों में सेवा क्षेत्र मे काम करने वाली कुल श्रम शक्ति का भाग में बड़ी मात्रा में निरपेक्ष एवं सापेक्ष वृद्धि हुई है। परन्तु कई विकसित देशों जैसे इग्लैण्ड, बेल्जियम, नीदरलैण्ड, स्वीडन तथा आस्ट्रेलिया में, सेवा क्षेत्र में संलग्न कुल श्रम शक्ति का भाग या तो स्थिर रहा या फिर अपेक्षाकृत कम बढ़ा कुछ अन्य विकसित देशों विशेष रूप से डेनमार्क, नार्वे, इटली, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाड़ा जापान तथा रूस में, इस क्षेत्र में निरपेक्ष तथा सापेक्ष वृद्धि 10 से 16 प्रतिशत के मध्य दो अंकों में वर्ष की गई।

सारणी 13.6 को देखने से यह स्पष्ट होता है कि 1951 से 2011 के छः दशकों में भारत में सेवा क्षेत्र में कार्यकारी जनसंख्या का अनुपात बढ़ा है। यहीं नहीं, इस क्षेत्र के तीन उपक्षेत्रों (व्यापार व वाणिज्य, परिवहन, संचार भण्डारण इत्यादि तथा अन्य सेवाओ) के सापेक्षिक महत्व है। परिवर्तन होते रहे है। आयोजन के प्रथम चार दशकों में (अर्थात् सुधार पूर्व अवधि में) व्यावसायिक संरचना लगभग अपरिवर्तित रही। जैसा कि सारणी में स्पष्ट है, 1951 में कृषि व सम्बद्ध व्यवसायों में 72.1 प्रतिशत तथा 1991 में 68.13 प्रतिशत लोग कार्यरत थे। इसी प्रकार का स्थायित्व उद्योग तथा सेवा क्षेत्र में भी दिखाई देता है। (जो 1951 में जीएडी के हिस्से के रूप में 30. प्रतिशत से बढ़कर 2014-15 सकल वर्धित मूल्य का 52.3 प्रतिशत हो गया। पर कुल उत्पाद में सेवा क्षेत्र के भाग में होने वाली वृद्धि की अपेक्षा कुल श्रम शक्ति में सेवा क्षेत्र के भाग में हुई सापेक्ष वृद्धि (जो 1951 मे सेवा क्षेत्र में कार्यरत श्रम शक्ति का अनुपात 17.2 प्रतिरूात से बढ़कर 26.7 प्रतिशत हो गया। बहुत कम रहीं है जिसने आय के वितरण की विषमता को बढ़ाने का कार्य किया है। इसके विपरीत विकसित देशों में कुल उत्पाद में सेवा क्षेत्र के भाग में होने वाली वृद्धि की तुलना में कुल श्रम शक्ति में सेवा क्षेत्र के भाग में वृद्धि हुई सापेक्ष वृद्धि बहुत अधिक रही है। सुधार पश्चात् की अवधि के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त विभिन्न देशों के आर्थिक इतिहास पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें व्यावसायिक संरचना में जो आमूल परिवर्तन हुए है उनके मुख्य कारण निम्न लिखित है

1. जनसंख्या वृद्धि की दर में तेज कमी।
2. कृषि में श्रम उत्पादकता में तेज वृद्धि
3. उद्योगों का तेजी के साथ विकास
4. सेवा क्षेत्र में नवाचार तथा राष्ट्रीय उत्पाद में निरंतर बढ़ता हुआ अंश आदि।

5. बढ़ता हुआ नगरीकरण प्रतिरूप।
6. उपभोग, संरचना में परिवर्तन
7. प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि आदि।

13.6 निवेश की संरचना -

प्रोफेसर कुजनेट्स 'पूंजी निवेश' की बजाय पूजी निर्माण शब्द के प्रयोग की अधिमान देता है क्योंकि कभी कभी निवेश शब्द का प्रयोग पूंजी वस्तुओं के क्रय के लिए मुद्रा पूंजी खर्च करने की प्रक्रिया बताने या अधिक व्यापक अर्थ में, प्रतिभूतियों एवं अन्य वित्तीय दावों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसमें क्रय पर अथवा दावों की प्राप्ति पर नहीं बल्कि वास्तविक पूंजही में होने वाली बढ़ोतरी पर बल है। इस प्रकार कुजनेट्स निवेश के स्थान पर सकलपूंजी निर्माण शब्द का प्रयोग करता है। 1956-60 के दौरान, सभी विकासित देशों में सकल राष्ट्रीय बचतें सकल घरेलू पूंजी निर्माण के लगभग बराबर थी। सकल राष्ट्रीय बचतो के लगभग 20 प्रतिशत के लिए सार्वजनिक क्षेत्र उत्तरदायी रहा जिसमें सार्वजनिक निगम भी सम्मिलित थे। शेष के लिए निजी निगम एवं परिवार उत्तरदायी रहे। भारत के संदर्भ में सकल घरेलू पूंजी निर्माण का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट होती है कि आयोजन की प्रकिया शुरू होने से अब तक घरेलू पूंजी निर्माण निवेश मे काफी वृद्धि हुई है। परन्तु यह वृद्धि बहुत नियमित नहीं है फिर भी इस देश में पूंजी निर्माण के बारे में यह महत्वपूर्ण बात है कि आज पहली पंचवर्षीय योजना की तुला में निवेश की दर काफी अधिक है।

सारणी 13.7 सकल घरेलू पूंजी निर्माण

वर्ष	सावर्जनिक क्षेत्र	निजी क्षेत्र	कीमती वस्तुएं	कुल	संभावितत्रुटि	समायोजित दर
आधार वर्ष 2004-05						
1950-51	2.8	8.1	-	10.9	-1.6	9.3
1960-61	7.1	7.5	-	14.6	-0.3	14.3
1973-74	7.6	9.0	-	16.5	+0.8	17.3
1978-79	9.4	10.6	-	20.0	+1.1	21.1
1990-91	10.6	14.3	-	24.9	+1.1	26.0
2000-01	7.1	16.3	0.7	24.1	+0.9	24.3
2011-12	7.1	25.9	2.7	36.4	-0.9	35.5
आधार वर्ष 2011-12						
2011-12	7.5	29.1	2.9	39.6	-0.6	39.0
2014-15	7.4	25.2	1.5	34.1	0.1	34.2

स्रोत - भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा 2015-16 (दिल्ली 2016) खण्ड 2, सांख्यिकीय परिशिष्ट, सारणी 1.5 पृ.सं. A-18 से A20

mijkDr सारणी 13.7 e सकल घरेलू पूंजी निर्माण के समकों देखने से यह स्पष्ट होता है कि भारत में पूंजी निर्माण (निवेश) की परिवर्तन की दर अलग अलग है । सकल अवधियों मे अलग-अलग रही है। इस सम्पूर्ण अवधि को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है

1. **सुधारो से पूर्व की अवधि-**सुधारों से पूर्व की अवधि में1951 से 1991 तक चार दशकों में सकल घरेलू पूंजी का निर्माण की दर अपेक्षाकृत धीमी गति से बढ़ी है इसमें तीसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि मे कमी भी देखी गई है क्योंकि भारत चीन, भारत-पाक के शुरू से पूंजी निर्माण कीप्रक्रिया को आघात पहुचा इसके उपरान्त 1963-64 एवं 1964-65 के अकाल व सूखे से ने भी इस पर ऋणात्मक प्रभाव डाला। कुल मिलाकर इस सम्पूर्ण अवधि में पूंजी निर्माण की दर9.3 से बढ़कर 26.0 प्रतिशत के स्तर पर आ गई परन्तु इस सम्पूर्ण अविध मे पूंजी निर्माण की दर गतिहीन ही रही है ।

2. **सुधारों के पश्चात की अवधि -** प्रारंभ में जुलाई 1991 में नई आर्थिक नीति के घोषणा के बाद सकल घरेलू बचत में भारी गिरावट देखी गई। 1991 में जहां तक 26.0 प्रतिशत थी वह घटकर 1991-92 में 21.8 प्रतिशत रह गई। अगले पूरे दशक में यह 1991 के स्तर से कम रही । 1999-2000 में जाकर यह पुनः 266 प्रतिशत के स्तर पर आई 11वीं पंचवषीय योजना की उच्च विकास दर तथा 12 वीं पंचवर्षीय योजना के प्रथम तीन वर्षों के बेहतर प्रदर्शन से निवेश की दर ने तीव्र वृद्धि दर प्राप्त की जो 1999-2000 के 26.6 प्रतिशत स्तर से बढ़कर 2011-12, 2012-13, 2013-14 और 2014-15 में क्रमशः 39.0, 38.6, 34.7 तथा 34.2 प्रतिशत के स्तर पर जा पहुंची।

13.7 विदेशी व्यापार की संरचना मे परिवर्तन –

कुनजेट्स विदेशी व्यापार का राष्ट्रीय उत्पाद के साथ अनुपात को किसी भी देश की दूसरे देशों पर वस्तुओं के लिए निर्भस्ता का मापदण्ड मानता है । आधुनिक आर्थिक वृद्धि में 15 बडे विकसित देशों का विदेशी व्यापार अनुपात उनका सकल राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ने के साथ साथ कम होता गया। दूसरी और, जिन देशों का सकल राष्ट्रीय उत्पाद कम था उनके विदेशी अनुपात बढ़े। इसलिए आर्थिक वृद्धि के सामान्य विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि छोटे विकसित राष्ट्र जैसे - डेनमार्क, सूडान आदि बड़े विकसित राष्ट्रो पर निर्भर रहे है जिनके साथ वे व्यापार करते है । दूसरी और यदि बात की जाए अल्पविकसित तथा विकासशील देशों की जो काफी सालों तक औपनिवेशिक शोषण का शिकार रहे हैं। यह शोषण इन पर शासन करने वाले विकसित औद्योगिक देशों ने किया। जिसमें शोषण का मुख्य माध्यम ही विदेशी व्यापार रहा था। यही कारण था जब भारत सहित अनेक अल्पविकसित तथा विकासशील राष्ट्र स्वतंत्र हुए तो वे विदेशी व्यापार व विदेशी निवेश को संदेह की नजरों से देखने लगे। इसलिए उन्होंने विदेशी पर ज्यादा ध्यान न देकर, घरेलू बाजारों की ओर अधिक ध्यान दिया। इस प्रकार इन देशों ने अन्तमुखी नीतियों को प्राथमिकता दी।

इस प्रकार की नीतियों को आयात प्रतिस्थापन नीति की संज्ञा दी जा सकती है। क्योंकि इसके तहत् घरेलू उद्योगों को व्यापक संरक्षण दिया गया, आयातों व विदेशी निवेश पर प्रत्यक्ष नियंत्रण लगाए गए तथा विनिमय दरों को अवास्तविक स्तरों तक ऊंचा रखा गया जो आवेरवैल्यूड इक्सचेंज रेट कहलाती है। जहां तक निर्यात क्षेत्र का संबंध है उसमें निराशावादी दृष्टिकोण रहा।

परन्तु 1960 के दशक के उपरान्त बहुत से देशों से आयात उदारीकरण की नीति को खुले रूप से अपनाया और काफी सफलता प्राप्त की ।इन देशों की सफलता से प्रेरित होकर बहुत से अर्थशास्त्रियो तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं IMF तथा विश्व बैंक ने आयात उदारीकरण एवं निर्यात प्रोत्साहन नीतियों को भारत जैसी अर्थव्यवस्थाओं की समस्याओं के निदान के लिए अत्यन्त आवश्यक बताया। इन सुझावों को मानते हुए भारत सरकार ने 1985 में व्यापार उदारीकरण की नीति को अपनाने का प्रयास किया और 1991 में सरकार उदारीकरण की व्यापक नीति घोषित की। 1991 के पश्चात भारतीय अर्थव्यवस्था को खोलने के कई प्रयास किए। जिससे कि 1995 में स्थापित विश्व व्यापार संगठन WHO के तहत् उभर रही नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्थ को जोड़ने (integration) में कोई समस्या न आए। 1950-51 से लेकर वर्तमान तक भारत के विदेशी व्यापार की संरचना मे कई परिवर्तन हुए है जिन्हें हम निम्नलिखित उपशीर्षकों में समझा सकते है -

1. औद्योगिकीकरण में तीव्र प्रगति के परिणामस्वरूप पूंजी प्रगति के परिणामस्वरूप पूंजी वस्तुओं और कच्चे माल के आयाम में वृद्धि हुई।
2. नियांत प्रोत्साहन के लिए आयात के उदारीकरण के आधार पर कच्चे माल के आयात में वृद्धि हुई है।
3. देश के खाद्यान्नों एवं अन्य उपभोक्ता वस्तुओं में कृषि तथा औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप आत्मनिर्भर हो जाने के कारण खाद्यान्नों एवं उपभोक्ता वस्तुओं के आयात में गिरावट आयी है।
4. पट्रोलियम, तेल और स्नेहको (Petroleum, Oil and Lubricant – POL) में अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों में तीव्र वृद्धि और देशीय मांग में तेजी से वृद्धि होने के कारण भारी वृद्धि।
5. हाल के वर्षों में इलेक्ट्रोनिक वस्तुओं के आयातों में तेज वृद्धि हुई है। 2014-15 में इलेक्ट्रानिक वस्तुओं के आयात पर व्यय 36.872 मिलियन डालर था जो इस वर्ष के कुल आयात व्यय का 8.2 प्रतिशत हिस्सा सूचना प्रौद्योगिकी एवं मोबाइल क्रान्ति के चलते ऐसा हुआ है।
6. गैर विद्युतीय मशीनरी व उपकरण (Non-electrical) Machinery, apparatus and appliances पर आयात व्यय में तेज वृद्धि हुई। इस मद पर व्यय 426 मिलियन डालर था जो 2014-15 मे बढकर 18106 मिलियन डॉलर हो गया।

7. हरित क्रांति के कारण उर्वरकों पर आयात व्यय में काफी वृद्धि हुई है। 1960-61 मे यह 27 मिलियन डालर था जो

सारणी 13.8 भारत के आयात व निर्यातों की संरचना (आकार/मूल्य)

वस्तुएं	आयात(Import)					
	1990-61		1990-91		2014-15	
	आकार (मिलियन डालर)	हिस्सा कुल का (%)	आकार (मिलियन डालर)	हिस्सा कुल का (%)	आकार (मिलियन डालर)	हिस्सा कुल का (%)
1.खाद्य उपभोग वस्तुएं	449	19.1	-	-	-	-
i. अनाज और अनाज उत्पाद	380	16.1	102	0.4	117	0.0
2. कच्चे पदार्थ और मध्यवर्ती वस्तुएं	1105	74.0	-	-	- 10621	- 2.4
I. खाद्य तेल	08	0.4	182	0.8		
II. पेट्रोलियम और लुब्रिकेंट	145	6.1	6028	25.0	138326	30.9
III. उर्वरक और उर्वरक सामग्री	27	1.1	984	4.1	7399	1.7
IV. लोहा व इस्पात	258	11.0	1178	4.9	16301	3.6
V. रासायनिक तत्व और योगिक	182	3.5	1276	5.3	23899	5.3
VI. मोति और बहुमूय रत्न	02	0.1	2083	8.7	22598	5.0
VII. 7. अलौह धातुएं	99	4.2	614	2.5	49676	11.1
3. पूंजीगत वस्तुएं	747	31.7	6495	24.2	90170	20.1
I. गैर - विद्युतीय मशीनरी	426	18.1	2363	9.8	18106	4.0
II. विद्युतीय मशीनरी	120	5.1	949	3.9	12330	2.7
III. इलेक्ट्रानिक मशीनरी	-	-	-	-	36872	8.2
IV. 4. परिवहन संबंधी उपकरण	151	6.4	931	3.9	18345	4.1
4. अन्य (अवर्गीकृत)	52	2.2	-	-	-	-
कुल (1+2+3+4)	2353	100	24075	100.00	448053	100.00

सारणी 13.8 में वर्ष 2014-15 में बढकर 7399 मिलियन डॉलर के पास पहुंच गया है। निर्यातों में संरचनात्मक परिवर्तन - सारणी 13.8 को देखने से एक बात स्पष्ट होती है वह यह है कि समय के साथ साथ निर्यातों में कृषि व उससे सम्बद्ध वस्तुओं का महत्व घटाता गया है तथा विनिर्मित वस्तुओं का महत्व बढ़ता गया है। उदाहरण के लिए कुल निर्यातों में कृषि व उससे सम्बद्ध वस्तुओं का हिस्सा 1960-61 में 44.2 प्रतिशत से कम 2014-15 में मात्र 12.7 प्रतिशत रह गया है। इसके विपरीत इसी समान अवधि में, विर्निमित वस्तुओं का हिस्सा 45.3 प्रतिशत से बढ़कर 66.8

प्रतिशत हो गया। यह बात अर्थव्यवस्था की बदलती हुई संरचना को दर्शाती है। एक पिछली हुई प्राथमिक वस्तुओं पर आधारित अर्थव्यवस्था के स्थान पर अब भारत में एक प्रगतिशील औद्योगिक क्षेत्र विकसित हो रहा है। केवल एक ही विनिर्मित परन्तु ऐसी है जिसके निर्यात बढ़ नहीं पाए है और वह वस्तु है जूट। अन्य संरचनात्मक परिवर्तन निम्नलिखित है –

सारणी 13.9 भारत के आयात व निर्यातों की संरचना (आकार/मूल्य)

वस्तुएं	आयात					
	1960-61		1990-91		2014-15	
	आकार (मिलियन डाली)	कुल में हिस्सा (प्रतिशत में)	आकार (मिलियन डाली)	कुल में हिस्सा (प्रतिशत में)	आकार (मिलियन डाली)	कुल में हिस्सा (प्रतिशत में)
a. कृषि व सम्बद्ध उत्पादन	596	44.2	3521	19.4	39357	12.7
I. चाय	260	19.3	596	3.4	682	0.2
II. काजू गिरी	40	3.0	249	1.4	919	0.3
III. चावल	-	-	257	1.4	7855	2.5
IV. मछली व मछली उत्पादन	10	0.8	535	2.9	5510	1.8
b. अयस्क और खनिज (कोयले के अलावा)	109	8.1	834	4.6	4680	1.5
I. कच्चा लोहा	36	2.6	585	3.2	525	0.2
3. विनिर्मित वस्तुएं	610	45.3	13229	72.9	207087	66.8
I. सूती धागे, रेशा व उससे निर्मित कपड़ा इत्यादि	136	10.1	1170	6.4	9458	3.0
II. सिले सिलाए कपड़े	02	0.1	2236	12.8	16836	5.4
III. जूट उत्पाद	283	4.0	166	0.9	367	0.1
IV. चमड़ा व उससे निर्मित सामान	59	4.4	1449	8.0	6191	2.0
V. रत्न और आभूषण	02	0.1	2924	16.1	41248	13.3
VI. रसायन और सम्बद्ध उत्पाद	15	1.1	1176	6.5	37335	12.0
VII. इंजीनियरिंग वस्तुएं	46	3.4	2158	11.9	70959	22.9
IV. पेट्रोलियम उत्पाद (कोयले सहित)	15	1.1	538	2.9	57405	18.5
V. अन्य	16	1.3	36	0.2	57405	18.5
कुल	1346	100.0	18143	100.0	310147	100

आयात निर्यात की प्रवत्तियां

1. भारतीय अर्थव्यवस्था का विविधीकरण हो रहा है और गैर-पारम्परिक निर्यात बढ़ रहा है जैसे कृषि व सम्बद्ध वस्तुओं का हिस्सा निरंतर घट रहा है जबकि विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात में निरंतर वृद्धि हो रही है।
2. इजीनियरिंग वस्तुओं के निर्यात के विस्तार का कारण औद्योगिक देशों और मध्यपूर्वी के देशों में भी इनकी बढ़ती हुई मांग है। इन देशों में आधार संरचना प्रोजेक्ट जैसे सड़कें, बन्दरगाहों, रेल - निर्माण, टेली संचार और नागरिक निर्माण - चालू किए गए है। खण्ड 2014-15 में इंजीनियरिंग वस्तुओं के निर्माता आय में प्रथम स्थान है।
3. भारत अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में मांग की अनुकूल स्थिति और आकर्षक कीमत स्थिति का लाभ उठाने
4. जबकि कुछ वस्तुओं में निर्यात अमता बहुत ही अधिक है। जैसे हस्तशिल्प, इंजीनियरिंग वस्तुएं और सिले एवं निर्मित वस्तुओं, लौहा एवं इस्पात में भारी उतार चढ़ाव व्यक्त हुए है।
5. नयी कृषि नीति की घोषणा के पश्चात कृषि वस्तुओं के निर्यात पर बल दिया जा रहा है। चावल का निर्यात महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। इसके अतिरिक्त फल एवं सब्जियों और साधित खाद्य पदार्थ भी हमारे निर्यात में महत्वपूर्ण बन गए है।
6. हाल के वर्षों में पेट्रोलियम उत्पादों के निर्यातो में तेज वृद्धि हुई है। 2007-08 मे पेट्रोलियम उत्पादें के निर्यात 29030 मिलियन डॉलर थे जो कुल निर्यात आय का 17.8 प्रतिशत था वह 2014-15 में बढ़कर मूल्य 57405 मिलियन डालर हो गया है। जो कुल निर्यात आय का 18.5 प्रतिशत रहा है। इस वर्ष भारत का कुल निर्यात आय मे इंजिनियरिंग वस्तुओं के बाद, पेट्रोलियम उत्पादों का दूसरा स्थान है।
7. जवाहरात व आभूषणों के निर्यात में उत्साह जनक वृद्धि हुई है। जहां 1960-61 में इनके निर्यात से केवल 02 मिलियन डालर आय (जो कुल मियात आय का 0.1 प्रतिशत थी) प्राप्त हुई थीं वहीं 2014-15 में बढ़कर 37335 (कुल निर्यात आय का 13.3 प्रतिशत) मिलियन डालर की आय हुई। इस वर्ष इंजीनियरिंग वस्तुओं तथा पेट्रोलियम उत्पादों के बाद, जवाहरात व आभूषणों का निर्यात आय में तीसरा स्थान रहा।
8. औद्योगिकीकरण के परिणास्वरूप रसायन व सम्बद्ध उत्पादों के नियातों में वृद्धि के रूप में भी प्रतिलक्षित होते है। 1960-61 में 15 मिलियन डालर मूल्य के साथ कुल निर्यात आय में हिस्सा 1.1 प्रतिशत या जो 2014-15 में बढ़कर 37335 मिलियन डालर (निर्यात आय का 12.9) के स्तर पर पहुंच गया। इस प्रकार 2014-15 में रसायन व सम्बद्ध उत्पादों का निर्यात आय में चैथा स्थान रहा।

1991 के बाद भारत के विदेशी व्यापार की संवृद्धि एवं संरचना

1991 में भारत सरकार ने विदेशी व्यापार क्षेत्र में 'खुले धन' की नीति अपनाई है। और व्यापाक व्यापक उदारीकरण कदम उठाए है। महत्वपूर्ण उदारीकरण कदम उठाए है। महत्वपूर्ण उदारीकरण कदम है - जुलाई 119 में रूपए का अवमूल्यन और बाद में मुख्य विकसित देशो की मुद्राओं की तुलना में मूल्यह्रास), रूपए की पहले व्यापार पर तत्पश्चात संपूर्ण चालू खाते पर परिवर्तनीयता, आयात शर्तों का उदारीकरण - सीमा शुल्क दरों में भारी कटौती , कई वस्तुओं को खुले आयात करने की अनुमति, द्रव्यादि। वस्तुतः 1991 में शुरू किए गए विदेशी व्यापार सुधारों व उदारीकरण के कारण व्यापार क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए है और इनके परिणामस्वरूप अन्तर्मुखी नीति (Inward Oriented Policy) के स्थान पर बाह्य उन्मुख नीति (Outward oriented policy) को अपनाया जा रहा है। इन नीतियों का विदेशी व्यापार की संरचना में परिवर्तन निम्न है -

विदेशी व्यापार का प्रसार -

उदारीकरण के बाद से भारतीय व्यापार में तेज वृद्धि हुई है। 1990-91 में कुल व्यापार की मात्रा 42.2 बिलियन डालर थी। (18.1 बिलयन डॉलर के निर्यात और 24.1 बिलियन डालर के आयात) जो 2014-15 में बदलकर 7518.08 के निर्यात और 448.03 विलियम डालर के आयात) व्यापार क्षेत्र में व्यापक उदारीकरण तथा खुलेपन की नीति के कारण 1991 के बाद की सुधार अवधि में भारत के व्यापार तथा सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में सुधार आया है।

मूल्यांकन

स्वतंत्रता प्राप्ति की पूर्व संध्या पर जहां भारतीय अर्थव्यवस्था एक औपनेविशक तथ परम्परागत पिछड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में थी आजादी के बाद आयोजन की रणनीति के मार्ग को अपानते हुए नीति निर्माताओं ने अर्थव्यवस्था के आगे के मार्ग को प्रशस्त करने का निर्णय लिया और विकास के लक्ष्य निर्धारित किए समय के साथ साथ भारतीय अर्थव्यवस्था ने इन लक्ष्यों में से कुछ को प्राप्त करने में समर्थ रटी और कुछ में असकल भी रही परन्तु 70 सालों के इतिहास पर गौर से दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट होता है कि विकास के साथ-साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में कई प्रकार के संरचनात्मक परिवर्तन देखने को मिलते है। कई क्षेत्रों ने अपने प्रदर्शन को बेहतर से बेहतर किया और कई क्षेत्र अपने उच्चतम से निम्न की और आए। कुजनेट्स की विकास के अन्तर्गत संरचनात्मक परिवर्तन के सिद्धान्त की अधिकतम बातें सत्य साबित होती प्रतीत हुई है। विकास के साथ साथ अर्थव्यवस्था के उत्पादन, उपभोग वितरण, निवेश तथा व्यापार की संरचना में कई आमूल परिवर्तन भरतीय अर्थव्यवस्था के संबंध में देखने को प्राप्त हुए।

13.8 मूल्यांकन प्रश्न

1. भारत में सेवा निर्देशित संवृद्धि से आप क्या समझते है?
2. टिप्पणी लिखो

1. भारत में सेवा निर्देशित संवृद्धि
2. उपभोग की संरचना परिवर्तन
3. कुल श्रम शक्ति का सेवा क्षेत्र में भाग

3 1991 के बाद भारत के विदेशी व्यापार की संवृद्धि एवं संरचना की व्याख्या कीजिये।

13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. रूद्र दत्त एवं के.पी.एम. सुन्दरम : इंडियन इकॉनोमी
2. भारत सरकार, योजना आयोग : छठी व सातवीं एवं आठवीं पंचवर्षीय योजनाओं संबंधी दस्तावेज
3. रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया : रिपोर्ट ऑन करेन्सी एण्ड फाईनेन्स
4. मिश्र एवं पूरी : भारतीय अर्थव्यवस्था

इकाई -14

भारत में आधारभूत संरचना का विकास

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 ऊर्जा
14.2.1 ऊर्जा के स्त्रोत
14.2.1.1 परम्परागत स्त्रोत
14.2.1.2 गैर- परम्परागत स्त्रोत
14.3 भारत में परिवहन व्यवस्था
14.4 भारत में संचार प्रणाली
14.5 डाक सेवाएँ
14.6 दूरसंचार
14.7 मूल्यांकन प्रश्न
14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था में किस प्रकार आधारभूत संरचना का विकास विगत दशकों में सम्पन्न हुआ है।

14.1 प्रस्तावना

आधारभूत संरचना का विकास ,आर्थिक विकास की मूल शर्त है । किसी भी राष्ट्र का आर्थिक विकास प्रत्यक्षता कृषि, उद्योग तथा सेवा क्षेत्र के विकास पर निर्भर करता है । वहीं दूसरी ओर कृषि –उत्पादन के लिए सिंचाई ,ऊर्जा तथा परिवहन एवं संचार साधनों जैसी आधारभूत सुविधाओं की आवश्यकता होती हैं । औद्योगिक विकास की लिए केवल मशीनरी ,सयंत्र एवं कुशल तकनीक ही नहीं चाहिए बल्कि ऊर्जा ,बैंकिंग, बीमा विपणन सुविधा, संचार एवं परिवहन आदि सुविधाओं तथा सेवाओं की आवश्यकता पड़ती हैं । इन सभी सुविधाओं एवं सेवाओं को सामूहिक रूप से आधारभूत संरचना अथवा आधार संरचना (Infra Structure) की संज्ञा दी जाती है और किसी राष्ट्र में कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने के लिए इनका विस्तार अनिवार्य शर्त है । पिछले 200 वर्षों के दौरान इंग्लैंड, जापान एवं अन्य देशों में औद्योगिक एवं कृषि क्रांतियों के साथ-साथ ऊर्जा, संचार व परिवहन जिसमे रेलवे, सड़के, जहाजरानी, इंटरनेट, टेलीफोन व मोबाईल

आदि तथा बैंकिंग व बीमा जैसे वित्तीय संस्थाओं की संख्या में भी भारी विकास तथा बढोत्तरी हुई है । इनके विस्तार तथा विकास को ही आधारभूत संरचना का विकास कहा जाता है । आधारभूत संरचना को प्राय: 'आर्थिक एवं सामाजिक उपरिव्यय'(Economic and Social Overhead) भी कहते है इसके अन्तर्गत हम निम्नलिखित संघटकों तथा सेवाओं कों शामिल करते हैं:-

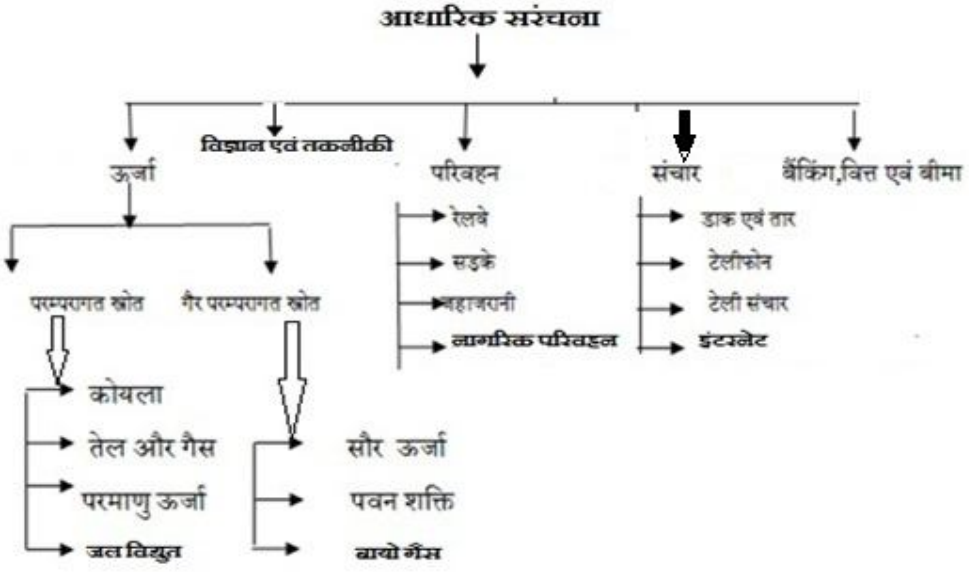

स्वतंत्रता के पश्चात अवसंरचना का विकास

भारतीय नीति-निर्माता , आधारभूत संरचना और आर्थिक विकास के मध्य सम्बन्ध के प्रति पूरी तरह जागरूक थे इसी कारण विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में इनके विकास पर बल दिया गया । सामान्यता योजनाओं में 50 प्रतिशत से भी कुछ अधिक आधारभूत संरचना के विकास पर खर्च किया गया ।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं तथा तीन एक - वर्षीय योजनाओं में आधारभूत संरचना के विस्तार का प्रयास किया गया । प्रथम पंचवर्षीय योजना जिसका शुभारंभ सन् 1951 में हुआ से लेकर अब तक 12 पंचवर्षीय योजनाएँ पूर्ण होने को हैं इसके अतिरिक्त सन् 1966 से 1969 के मध्य तीन वर्ष के लिये एक-एक वर्ष की तीन योजनाएँ भी रही है । भारत में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में अलग–अलग क्षेत्र के आधारभूत उद्योगों के विकास कों महत्व प्रदान किया गया । पहली योजना का उद्देश्य मुख्य रूप से दूसरे विश्व युद्ध के कारण अस्त -व्यस्त अर्थव्यवस्था कों भावी विकास के लिए मजबूत आधार प्रदान करना था । इस दृष्टि से उसमें कृषि उत्पादन कों बढ़ाने और आधारभूत ढ़ाचे के विकास पर जोर दिया गया था । दूसरी पंचवर्षीय योजना में आधारभूत या बुनियादी ढाँचे के विकास को केन्द्र बिन्दु में रखकर विकास कार्य को सम्पन्न करना था । दूसरी पंचवर्षीय योजना प्रोफ़ेसर पी.सी.महलानोबिस द्वारा प्रतिपादित विकास युक्ति पर आधारित थी , इसलिए इस योजना में विकास के लिए भारी उद्योगों की स्थापना जरूरी समझी गई । वास्तव में आधारभूत ढाँचे के विकास की नींव भारत में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में रखी गई । भारत में स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात से ही

भारी उद्योगों और परिवहन एवं ऊर्जा के विकास के बीच संतुलन रखना आवश्यक समझा गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि और औद्योगिक विकास के बीच संतुलन पर अधिक बल दिया गया। तीव्र जनसंख्या वृद्धि दर एवं 1965 के भारत- पाक युद्ध तथा भारत-चीन युद्ध के चलते तीसरी पंचवर्षीय योजना सवृद्धि की दृष्टि से पूरी तरह असफल रही और परिणाम यह हुआ कि अर्थव्यवस्था गम्भीर संकट में फँस गई। स्थिति यही नहीं रुकी बल्कि चौथी पंचवर्षीय योजना को अगले तीन साल तक स्थगित करना पड़ा। इस तरह चौथी पंचवर्षीय योजना 1966 के बजाय 1969 में शुरू हुई। इस प्रकार 1966 में 1969 के मध्य तीन एक वर्षीय योजनाओं का निर्माण हुआ जिन्हें भारतीय योजना काल में प्रथम अवकाश के नाम से भी जाना जाता है जिसमे आधारभूत संरचना के विकास में कोई मजबूत पहल नहीं की जा सकी।

चौथी पंचवर्षीय योजना में संवृद्धि की गति को तेज करने के इरादे से 'स्थिरता' (Stability) पर जोर दिया गया। इस योजनाकाल में बिजली और परिवहन जैसी आधारभूत संरचना के विकास में कठिनाइयाँ बढ़ गई। नतीजा यह हुआ कि अस्थिरता के प्रश्न का बिना कोई उचित समाधान के कृषि और आधारभूत उद्योगों दोनों ही क्षेत्रों में विकास कार्य धीमा पड़ गया। आधारभूत संरचना के विकास की दृष्टि से पांचवी पंचवर्षीय योजना भी कोई अधिक संतोषजनक नहीं रही। छठीं पंचवर्षीय योजना में अर्थव्यवस्था के कुछ खास पहलूओं पर विशेष जोर दिया गया जैसे :-(1) पूंजी स्टॉक के इस्तेमाल में कुशलता के स्तर को सुधारना ; (2) निवेश दर को ऊँचा करना ; (3) निवेश को सही क्षेत्रों में करना ; (4) भुगतान संतुलन में बढ़ते हुए घाटे को नियंत्रण में रखना इत्यादी। इस योजना की अवधि में कृषि क्षेत्र में संतोषजनक उत्पादन वृद्धि और सेवा क्षेत्र में तीव्र विकास देखने को मिला जबकि दूसरी ओर औद्योगिक ,खनिज एवं आधारभूत संरचना के विकास के मामले में वृद्धि संतोषजनक नहीं रही यही इस योजना का सबसे कमजोर पक्ष रहा। सातवीं, आठवीं तथा नवीं पंचवर्षीय योजना में लगातार तीन योजनाओं में ऊर्जा क्षेत्र के लिए सबसे अधिक संसाधन रखे गए। इसका कारण यह है कि आर्थिक व सामाजिक विकास की प्रक्रियाओं को बनाए रखने के लिए ऊर्जा का विशेष महत्व है। वस्तुतः ऊर्जा क्षेत्र का अपर्याप्त विकास देश के औद्योगिक विकास में एक बहुत बड़ी बाधा बन सकता है। देश के आर्थिक व औद्योगिक विकास में परिवहन व संचार दूसरा ऐसा क्षेत्र है जो आधारभूत संरचना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। इस कारण इसके लिए भी सार्वजनिक व्यय का लगभग एक चौथाई भाग आवंटित किया गया था। पहली आठ योजनाओं में (पहली योजना को छोड़कर) आधारभूत संरचना (ऊर्जा तथा परिवहन व संचार) तथा उद्योग व खनन को सार्वजनिक क्षेत्र की योजनाओं में लगभग साठ प्रतिशत संसाधन प्राप्त हुए। यह हिस्सा नवीं पंचवर्षीय योजना में 48% रह गया। विभिन्न योजनाओं में सिंचाई का कुल व्यय में हिस्सा 6.5 प्रतिशत से 10.0 प्रतिशत के मध्य रहा है। दसवीं तथा ग्यारवीं पंचवर्षीय योजना में सामाजिक सेवाओं पर व्यय में बहुत वृद्धि हुई। बारहवीं पंचवर्षीय योजना ऊर्जा सहित आधारभूत संरचना के क्षेत्र के विकास पर विशेष बल देती है क्योंकि गुणवत्तापूर्ण आधारभूत संरचना की उपलब्धता उच्च वृद्धि बनाए रखने के लिए ही नहीं वरन् इस समृद्धि को समावेशी बनाना सुनिश्चित करने हेतु भी है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान आधारभूत संरचना क्षेत्र में

कुल निवेश 56.3 लाख करोड़ रुपये (लगभग 1 मिलियन अमेरिकी डालर) है जो ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में किए गए निवेश से लगभग दो गुना है। यह वृद्धित निवेश मुख्यतया निजी क्षेत्र की बढ़ी हुई भागेदारी के कारण व्यवहार्य होगा जो परिकल्पित है । अवसंरचना परियोजनों को खोलने से सरकारी निजी भागीदारी (पी.पी.पी.) और अधिक पारदर्शी विनियामक तंत्रों ने अवसंरचना क्षेत्रों में आपने उद्भासन स्तरों को बढानें के लिए निजी निवेशको को प्रेरित किया है। अवसंरचना निवेश में उनका हिस्सा दसवीं पंचवर्षीय में 22 प्रतिशत से बढकर 11 वीं पंचवर्षीय योजना में 38 प्रतिशत हो गया और 12 वीं पंचवर्षीय योजना में इसके बढकर 48 प्रतिशत हो जाने की संभावना है। फिर भी अवसंरचना के लिए अपेक्षित आधे से अधिक संसाधन सरकारी क्षेत्र, सरकार और अर्ध-सरकारी संस्थाओं से आने की आवश्यकता होगी । इससे वित्तीय गुंजाईश का सृजन ही नहीं होगा अपितु युक्ति युक्त मूल्य निर्धारण नीति के प्रयोग की जरुरत भी होगी।

14.2 ऊर्जा (ENERGY)

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास का आधार ऊर्जा की उपलब्धता है भारत एक बड़ा ऊर्जा-उत्पादक और उपभोक्ता भी है। देश के आर्थिक विकास के साथ – साथ ऊर्जा की खपत में भी वृद्धि होती है। वर्तमान में भारत विश्व का सातवां सबसे बड़ा ऊर्जा –उत्पादक और पाचवां सबसे बड़ा उपभोक्ता है।

तालिका में दिए गए आंकडो से साफ संकेत प्राप्त होता है कि आर्थिक विकास की अधिक मात्रा, देश की प्रति व्यक्ति आय और ऊर्जा के उपभोग में स्पष्ट सम्बन्ध है। भारत जनसंख्या की दृष्टि से दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है ,परन्तु इसकी प्रति व्यक्ति आय निम्न है और इसमें प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग भी बहुत निम्न है।

तालिका 14.1 चुने हुए देशों में 2008 में प्रति व्यक्ति आय और प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग

देश	प्रति व्यक्ति आय * (यू.एस. डालर)	प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग (तेल तुल्य किलोग्राम)
भारत	2930	529
चीन	6010	1484
इंग्लैंड	36,240	3464
जापान	35,190	4019
अमेरिका	46,790	7766

* क्रय शक्ति समता के आधार पर

* विश्व बैंक, विश्व विकास सूचक (2010)

14.2.1 ऊर्जा के स्त्रोत

भारत में ऊर्जा के मुख्य स्त्रोत मोटे तौर पर दो प्रकार के है :-

(A) परम्परागत स्त्रोत तथा

(B) गैर- परम्परागत स्त्रोत

14.2.1.1 परम्परागत स्त्रोत

ऊर्जा के परम्परागत स्त्रोतों के अंतर्गत उन स्त्रोतों को शामिल किया जाता है जो सामान्यतया क्षयशील (Exhaustible) अथवा समाप्त होने योग्य है। इनमे जल –विद्युत शक्ति एक अपवाद है। परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों को वाणिज्यिक ऊर्जा स्त्रोत के नाम से जाना जाता है क्योंकि ये ऊर्जा व्यापारिक स्त्रोत है अर्थात् इन स्त्रोतों के लिए प्रयोक्ताओ को इनके लिए कीमत अदा करनी पड़ती है : (i) कोयला (ii) तेल एवं गैस तथा (iii) बिजली या विद्युत। जहाँ तक बिजली का सम्बन्ध है, इसमें जल विद्युत, तापीय विद्युत (तेल एवं गैस से प्राप्त की जाती है) तथा परमाणु ऊर्जा को सम्मिलित किया जाता है।

कोयला

भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण द्वारा भारत में कोयले का भंडार 01 अप्रैल, 2014 को 301.56 बिलियन टन होने का अनुमान लगाया गया है। कोयला भंडार मुख्यत: झारखण्ड ,उडीसा ,छत्तीसगढ़ , पश्चिम बंगाल , मध्य प्रदेश ,तेलगांना और महाराष्ट्र में पाए गए है। 2014-15 के दौरान भारत में कोयले का समग्र उत्पादन 630.25 मिलियन टन अनुमानित है। 2013-14 की तदरूपी अवधि के 3961.06 मिलियन टन की तुलना में अप्रैल –दिसम्बर ,2014 की अवधि में वास्तविक उत्पादन 426.7 मिलियन टन हुआ था जो 9.1% की वृद्धि को दर्शाता है। वर्तमान प्रक्षेपण के आधार पर भावी मांग को दृष्टि में रखकर यह अनुमान लगाया गया है ये भंडार लगभग 130 वर्षों के लिए काफ़ी है। कोयले को भारत में ऊर्जा का एक मुख्य साधन माना गया है। कुल तापीय विद्युत के उत्पादन में 80 प्रतिशत भाग कोयले पर आधारित विद्युत उत्पादन का है। विद्युत या बिजली के कुल उत्पादन में कोयले पर आधारित बिजली उत्पादन का हिस्सा लगभग 66 प्रतिशत है (अर्थात् बिजली उत्पादन का लगभग दो तिहाई कोयले द्वारा प्राप्त होती है)। अन्य इंधनों की तुलना में कोयले की स्थिति भिन्न है क्योंकि इसे अन्य ऊर्जा स्त्रोतों जैसे बिजली तथा गैस में आसानी से परिवर्तित किया जा सकता है। कोयले के महत्व व देश में इसके भंडारों को देखते हुए योजना काल के प्रारम्भ से ही कोयला उद्योग के वैज्ञानिक आधार पर विकास के प्रयास किये गये है।

तेल और गैस (Oil and Gas)

हालाँकि भारत में पेट्रोलियम के भंडार सीमित है , फिर भी ऊर्जा के इस स्त्रोत पर हमारी निर्भरता औद्योगिक तथा परिवहन विकास के साथ – साथ निरंतर बढती जा रही है साथ ही साथ हमारे लिए यह भी अनिवार्य हो गया है कि सरकार पेट्रोलियम के घरेलू भण्डारों का पता लगाने के लिए प्रयास करे । इस काम को कम करने के उद्देश्य से 1955 में तेल व प्राकृतिक गैस कार्पोरेशन (Oil and Natural Gas Corporation - ONGC) तथा 1959 में आयल इण्डिया लिमिटेड

(Oil India Limited-OIL) की स्थापना की गई। इनके प्रयासों के उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुए। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक देश में प्राप्य तेल का भण्डार 17.2 करोड़ टन था। चौथी योजना में तेल व प्राकृतिक गैस कॉरपोरशन ने सामुद्रिक क्षेत्र में सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ किया जो कि तेल के खोज के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण घटना थी। 1977 के अंत तक प्रप्ताप्य भण्डार 45.2 करोड़ टन तक पहुँच चुके थे। वर्तमान में भारत के पास प्रप्ताप्य तेल भण्डार 77 करोड़ 50 लाख तन है जो विश्व के केवल 0.42 प्रतिशत तेल के भण्डार है जो बहुत कम है। उत्पादन की वर्तमान दर को देखते हुए, भारत के विद्यमान भण्डार 25-26 वर्ष तक ही रहेंगे। सन् 1950-51 में भारत में तेल का उत्पादन मात्र 2.5 लाख टन था। जो पिछले चार वर्षों (2011-12 से 2014-15) 380 लाख टन के स्तर स्थिर बना हुआ है। अभी भी घरेलु उत्पादन में वृद्धि के बावजूद आयतों पर अत्याधिक निर्भरता बनी हुई है। तेल आयतों पर 2013-14 में निर्भरता 83.4 प्रतिशत थी। तेल आयातों पर इस भारी निर्भरता से भुगतान शेष (BoP) दबाव की स्थिति बन गई है। इसके अतिरिक्त, भारतीय अर्थव्यवस्था की अन्तर्राष्ट्रीय तेल कीमतों के प्रति 'सवेदनशीलता' बढ़ गई है।

पेट्रोलियम का कच्चा तेल जिस रूप में पृथ्वी से निकाला जाता है इसके उपयोग से पूर्व इसे परिशोधन द्वारा साफ़ किया जाता है। अतएव देश में खनिज तेल शोधन के लिए पर्याप्त क्षमता का होना अत्यंत आवश्यक है। सन् 1950-1951 में भारत में तेल शोधन क्षमता केवल 2.5 लाख टन प्रति वर्ष थी। जैसे – जैसे तेल का घरेलू उत्पादन और आयात बढ़ा, शोधन क्षमता का विस्तार किया गया। भारत वर्तमान में वैश्विक परिशोधन क्षेत्र में एक प्रमुख भागीदार है 1 अप्रैल, 2014 की स्थिति के अनुसार इसकी परिशोधन क्षमता 21.51 करोड़ टन तक पहुँच गई है।

भारत में गैस के शुद्ध प्राप्तव्य भण्डार 1,119.55 अरब घन मीटर है। यह विश्व के गैस –भंडारों का केवल 0.7 प्रतिशत है। अप्रैल –दिसम्बर 2014-15 के दौरान गैस उत्पादन 2013-14 की तदनुरूप अवधि के दौरान 26.698 बी.सी.एम. की तुलना में 25.320 बी.सी.एम. था जिसमे 5.1 प्रतिशत की कमी देखी गई। प्राकृतिक गैस के उत्पादन में आई गिरावट का कारण बसेन तथा सेटेलाइट फील्ड में हुआ कम उत्पादन, एम एंड एस ताप्ती में छह नए ड्रिल किए कुओं का कम उत्पादन ,के जी डी -6 में एक कुआ बंद होंने तथा गेल पाइपलाइन दुर्घटना के कारण असंबद्ध गैस के कुएँ का बंद होना है। \उपरोक्त विवरण से स्पष्टत: यह झलकता है कि भारत अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक गैस आयात पर काफ़ी निर्भर है 2011-12 में यह आयात निर्भरता 22.7 प्रतिशत थी और 2016-17 तक यह निर्भरता बढकर 24.6 प्रतिशत तक पहुँच जाने का अनुमान है।

देश में ऊर्जा कि बढती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने कच्चे तेल तथा गैस के उत्पादन में वृद्धि के उद्देश्य से देश में अन्वेषण और उत्पादन के कार्य में तीव्रता लाने के लिए बहुआयामी कार्यनीति को अपनाया है जिसके अंतर्गत निम्न प्रयास किए गए है :-

(i) नई अन्वेषण लाइसेंसिंग नीति (एनईएलपी) के माध्यम से भारतीय तलछट बेसिन में अन्वेषण ब्लाक प्रदान कराना।

(ii) हाइड्रोकार्बन के वैकल्पिक स्रोतों का विकास जैसे- कोल बेड मीथेन (सी .बी.एम.) तथा शैल गैस

(iii) नए स्रोतों जैसे गैस हाइड्रेट्स के लिए अनुसंधान और विकास

(iv) सुरक्षित तथा पर्यावरण रूप से अनुकूल रूप से ई एण्ड पी प्राचलनों का करना ।

सरकार द्वारा उठाए जाने के लिए निम्नलिखित नए नीतिगत प्रयासों की पहचान की गई है ताकि देश में घरेलू कच्चे तेल और प्राकृतिक गैस के उत्पादन को बढाया जा सके :-

→ एक सामान लाइसेंस नीति (यू एल पी)

→ ओपन एक रेंज लाइसेंस नीति

→ सार्वजनिक वित्त पोषण से भारतीय तलछट बेसिन का आकलन

→ गैर विशेष बहु-क्लाइंट मॉडल के माध्यम से डेटा अधिग्रहण

→ सीमान्त क्षेत्रों का विकास

→ भारतीय तलछट बेसिन में हाइड्रोकार्बन संसाधन का पुन: आकलन।

परमाणु ऊर्जा (ATOMIC ENERGY)

परमाणु ऊर्जा का विकास हाल के वर्षों में हुआ है और यह कुल बिजली कीस्थापित क्षमता का केवल 04 प्रतिशत जुटाता है । भारत विश्व में उन चुनिन्दा देशों में से है जिन्होंने परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में काफ़ी प्रगति की है । देश इस प्रौद्योगिकी में आत्मनिर्भर है तथा परमाणु ईंधन चक्र से सम्बंधित तमाम कार्य सम्पन्न करने की क्षमता रखता है । भारत में परमाणु ऊर्जा की सहायता से स्थापित बिजली उत्पादन क्षमता 4560 मिलियन वाट है । इस क्षेत्र में 2013-14 के दौरान बिजली का उत्पादन 34.27 बिलियन किलोवाट घंटा (Kilowatt hour) था । परमाणु ऊर्जा का उत्पादन यूरेनियम तथा थोरियम की सहायता से किया जाता है । भारत में यूरेनियम के भण्डार मात्र 34,300 टन है इसका वितरण देश के भीतर आन्ध्रप्रदेश, बिहार तथा राजस्थान में है । भारत में थोरियम के भण्डार 3,36,000 टन है ।थोरियम का स्रोत मोनाजाईट (Monazite) है । यह भारत में केरल, कर्नाटक तथा बिहार में पाया जाता है ।

भारत में परमाणु ऊर्जा का विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य आत्मनिर्भरता प्राप्त करना है । परन्तु फ़िलहाल इस व्यापक कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए न्यूक्लर पावर कार्पोरेशन (Nuclear Power Corporation) के पास उपयुक्त मात्रा में वित्तीय संसाधन उपलब्ध नहीं है ।

विद्युत –शक्ति या बिजली Power or Electricity

विद्युत शक्ति जो की ऊर्जा का एक रूप है, आर्थिक विकास का एक अनिवार्य अंग है इसकी आवश्यकता वाणिज्यिक एवं गैर- वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए पड़ती है ।पावर के वाणिज्यिक

प्रयोगों के लिए इसकी आवश्यकता उद्योगों ,कृषि एवं, परिवहन आदि में होती है। गैर – वाणिज्यिक (Non-commercial uses) प्रयोगों के लिए इसकी आवश्यकता पारिवारिक रोशनी, खाना पकाने ,घरेलू उपकरणों जैसे फ्रिज ,टेलीविजन,कूलर आदि के लिए होती है। भारत में तीव्र औद्योगिकरण, कृषि विकास एवं सबसे प्रमुख जनसंख्या की वृद्धि के चलते बिजली के उपयोग में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जो बिजली की कमी से प्रभावितनहीं है। सार्वजनिक क्षेत्र की विद्युत शक्ति इकाइयों द्वारा उत्पन्न पावर के उपभोग का ढांचा तालिका में दिया गया है।

तालिका 14.2 : बिजली का उपभोग ढांचा (वितरण प्रतिशत में)

क्षेत्र	1950-51	1970-71	2008-09
उद्योग	63	68	37.1
कृषि	04	10	20.4
रेलवे उत्कर्षण	07	03	2.2
सार्वजनिक रोशनी	13	10	15.6
पारिवारिक उपभोग	13	09	24.7
योग	100	100	100

स्त्रोत: भारत सरकार ; आर्थिक समीक्षा (2010-11)

बिजली के प्रयोग की प्रमुख विशेषता यह है कि कृषि में इसका हिस्सा 1951 से निरंतर बढता जा रहा है। भारत निर्माण एवं ग्राम विद्युतीकरण प्रोग्रामों के कारण पावर की मांग सिंचाई और पम्पसेटों को शक्ति प्रदान करने के लिए प्रतिदिन बढती जा रही है। यही कारण है कि कृषि में विद्युत उपभोग का हिस्सा 4 प्रतिशत से बढकर 20.4 प्रतिशत हो गया है। भारत में योजना काल के दौरान बिजली उत्पादन क्षमता में विकास काफ़ी हुआ है। जहाँ सन् 1951 में देश में बिजली उत्पादन क्षमता केवल 2,300 बिलियन वाट (MW) थी जो नवम्बर 2014 के अंत तक 793.93 बिलियन यूनिट रही। बिजली का वास्तविक उत्पादन जो 1970-71 में 55.8 बिलियन KWH था ; 1990-91 बढकर 264.3 बिलियन KWH तथा 2013-14 में 1014.8 बिलियन KWH हो गया। 1990-91 से 2013-14 कि अवधि में उत्पादित बिजली में 5.8 प्रतिशत की प्रति वर्ष वृद्धि दर्ज की गई।

लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ :-

पावर जनन /उत्पादन के लक्ष्य किसी भी योजना में अभी पूरे नहीं किए गए। प्रत्येक योजना में लक्ष्य नीचे रहे –पहली योजना में यह कमी 15 प्रतिशत थी ,परन्तु चौथी योजना में यह 50 प्रतिशत के उच्च स्तर पर पहुच गई। इस ढील का संचयी प्रभाव यह हुआ कि ऊर्जा संकट ने

भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास प्रक्रिया के लिए खतरा पैदा कर दिया । इस बात को देखते हुए योजनाओं में विद्युत उत्पादन पर अधिकतम बल दिया गया लेकिन फिर भी हम लक्ष्य प्राप्ति से पीछे रहे । ग्याहरवीं योजना में लक्ष्य प्राप्ति 30 प्रतिशत से भी कम रही है । योजनावार विद्युत उत्पादन के लक्ष्य तथा योजना के उत्पादित वास्तविक विद्युत के समंको तालिका में प्रस्तुत है :-

तालिका 14.3 विद्युत उत्पादन लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ (मेगावाट में)

योजना	**स्थापित क्षमता में वृद्धि**		
	लक्ष्य	**प्राप्ति**	**प्रतिशत कमी**
पहली	1300	1100	15
दूसरी.	3500	2300	36
तीसरी	7,000	4,500	36
चौथी	9,300	4,600	50
छठी.	19,670	14,230	28
सातवी	22,250	21,500	4
आठवीं	30,540	16,420	46
नवीं	40,250	19,015	53
दसवीं	41,110	34,020	17
गयारहवीं	78,700	54,964	30
बारहवीं	88537	50,058	-

स्त्रोत: केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण,भारत सरकार, (31-12-2014 तक की स्थिति के अनुसार बारहवीं योजना के 88 ,537 mw के लक्ष्य के विपरीत 50, 058 mw विद्युत उत्पादन कर लिया गया है जो लक्ष्य का 56.5 प्रतिशत हिस्सा है)

भारत सरकार उपरोक्त तालिका 14.3 से स्पष्ट होता है कि विद्युत उत्पादन के लक्ष्यों तथा उपलब्धियों के मध्य भारी ऋणात्मक असमानता व्याप्त है जिससे भारत में उर्जा –संकट की स्थिति उत्पन्न हो चुकी है । बाहरवीं योजना में 88,537 मेगावाट अतिरिक्त क्षमता स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया हैं ।

तालिका 14.4 12 वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान देश में विद्युत उत्पादन में कार्यक्रम , वास्तविक उपलब्धि तथा विकास :-

वर्ष	लक्ष्य (बिलियन यूनिट में)	उपलब्धि (विलियन यूनिट)	लक्ष्य का प्रतिशत	विकास का प्रतिशत
2012-13	930.00	912.056	98.07	4.01
2013-14	975.00	967.15	99.19	6.04
2014-15	1023.00	1048.673	102.51	8.43
2015-16 (जुलाई2015तक)	328.048	365.003	96.65	2.54

स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण, भारत सरकार (2016)

बिजली के स्त्रोत (Sources of Electricity)

बिजली या विद्युत – शक्ति के पांच मुख्य स्त्रोत है :- जल, कोयला, तेल, गैस तथा रेडियोधर्मी तत्व जैसे :- यूरेनियम, थोरियम तथा प्लूटोनियम ।

जल विद्युत (HYDRO-POWER)

एक नवीकरणीय प्राकृतिक स्त्रोत है सन् 1950-51 में इसकी स्थापित क्षमता 560 मेगावाट थी जो कि वर्तमान में केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण द्वारा किए गए अध्ययन के पुनमुल्यांकन के अनुसार देश की अभिज्ञात पन बिजली की क्षमता (25 मेगावाट से अधिक कि स्थापित क्षमता) 1,45,320 मेगावाट है । भारत में जल विद्युत का विद्युत उत्पादन में हिस्सा निरंतर घटता जा रहा है जहाँ 1980-81 में कुल उत्पादित विद्युत में पन-बिजली का हिस्सा 46.8 प्रतिशत था जो कम होते होते 2013-14 में 13.9 प्रतिशत रह गया है । भारत में जल –विद्युत स्त्रोतों का असमान वितरण है । पंजाब ,हिमांचल प्रदेश ,जम्मू व कश्मीर ,केरल ,कर्नाटक तथा उत्तरी –पूर्वी राज्यों में जल –विद्युत के काफ़ी संभाव्य स्त्रोत है। इसके विपरीत बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तर-प्रदेश, असम, महाराष्ट्र तथा तमिलानाडु में ज्यादा जल-विद्युत स्त्रोत तो नहीं है परन्तु यदि उपलब्ध स्त्रोतों का सही इस्तेमाल किया जाये तो ये राज्य आपनी बिजली की मांग का काफी हिस्सा पूरा कर सकेंगे। जल विद्युत के कई लाभ है :

- यह ऊर्जा का सबसे सस्ता स्त्रोत है।
- जल –विद्युत के जनन उत्पादन में पर्यावरण के प्रदुषण या व्यर्थ पदार्थों के निपटारे की कोई

समस्या नहीं होती है ; तथा

- तापीय ऊर्जा तथा परमाणु ऊर्जा के विभिन्न स्त्रोतों की पूर्ति सीमित मात्रा में है इस कारण इनकी लागत अपेक्षाकृत अधिक होने की सम्भावना विद्यमान रहती है इसके साथ-साथ इनके स्त्रोतों के आयात करने पर भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा का त्याग करना पडता है। पिछले तीन दशकों से भारत में विद्युत उत्पादन में जल विद्युत का अंश निरंतर घट रहा है जो की चिंता का विषय है।

तालिका 14.5 विद्युत क्षेत्र का एक परिदृश्य अखिल भारतीय

ईंधन	मेगावाट	प्रतिशत
(i) कोयला	1,67,708	60.8
(ii) गैस	22,962	8.4
(iii) तेल	994	0.4
(iv) कुल थर्मल (i+ii+ii)	1,91,664	69.6
(v) हाइड्रो (नवीनीकरण)	41,997	15.2
(vi) परमाणु	5,780	2.1
(vii) आर.ई.एस.* (एम एन आर ई)	35,471	13.2
योग	2,75,912	100

स्त्रोत: 24-08-2015 तक,ओ.एम अनुमान

*नवीनीकरण ऊर्जा स्त्रोत (आर ई एस) में एस एच पी, बी जी ,यू व आई पवन ऊर्जा है। एस एच पी : लघु जल परियोजना ,बी.जी :- बायोमास गैसीफायर ,बी.पी. :- बायोमास पावर ,यू व आई : शहरी और औद्योगिक विद्युत ,आरईएस =नवीकरण ऊर्जा स्त्रोत

तालिका से स्पष्ट होता है कि 2015 की कुल संस्थापित क्षमता (31-07-2015 तक) का केवल 15.2 प्रतिशत हिस्सा ही हायड्रो पावर (जल विद्युत) से प्राप्त हो रहा है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जल विद्युत के उत्पादन के लिए बांधों तथा बिजली घरों के निर्माण पर तथा उनके रख रखाव पर भारी मात्रा में निवेश करना पडता है इसलिए इन पर बिजली घरों की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र में की गई है।

तापीय ऊर्जा : Thermal Power

तापीय ऊर्जा का उत्पादन कोयले ,तेल और गैस से होता है ,तापीय ऊर्जा भारत में विद्युत का प्रमुख स्त्रोत है वर्तमान (31-07-2015 तक) में कुल संस्थापित क्षमता 2,75,912 मेगावाट विद्युत का लगभग 69.6 प्रतिशत भाग अर्थात् 1,91,664 मेगावाट अंश तापीय ऊर्जा द्वारा पूरा होता है।
भारत में तापीय ऊर्जा की कुल स्थापित क्षमता 1950-51 में 1,150 मेगावाट थी जो बढकर 24-08-2015 को 1,91,664 मेगावाट हो गई है।तापीय ऊर्जा का लगभग 60.8 प्रतिशत भाग तो कोयले से प्राप्त किया जा रहा है शेष भाग गैस तथा तेल से क्रमश: 8.4 तथा 0.4 प्रतिशत उत्पन्न

होता है । कोयला, तेल एवं गैस तीनों गैर– नवीनीकरणीय और क्षयशील संसाधन है। तेल की 2007-2014 तक के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों में भारी उछाल ने तेल से उत्पन्न तापीय ऊर्जा की लागत में भारी वृद्धि को बढाया । जिसके चलते ईंधन नीति समिति ने तेल की अपेक्षा कोयला आधारित टेक्नोलॉजी के प्रतिस्थापन की सिफारिश की। भारत में विश्व के कुल कोयला संसाधन में हिस्सा 5.7 प्रतिशत है । ये कोयला संसाधन अनवीकरणीय (non-renewable) तथा सीमित है । इसलिए भविष्य में बिजली उत्पादन में कोयले पर निर्भरता को कम करना जरुरी है।

परमाणु बिजली (Nuclear Power)

परमाणु ऊर्जा का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों के उपरांत ही हुआ है और 24.08.2015 तक की कुल संस्थापित क्षमता 2,75,912 मेगावाट का 2.1 प्रतिशत भाग लगभग 5,780 मेगावाट हिस्सा ही परमाणु ऊर्जा द्वारा उत्पन्न किया जाता है । रूस और अन्य देशों में परमाणु ऊर्जा की विफलता को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि परमाणु ऊर्जा द्वारा देश के विद्युत उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान की कोई सम्भावना है।

14.2.1.2 ऊर्जा के गैर परम्परागत संसाधन (Non-Conventional Energy Sources)

परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों के साथ-साथ सरकार ने अक्षय ऊर्जा संसाधनों के विकास को भी उच्च प्राथमिकता दी है ।आधुनिक ऊर्जा तक पहुँच एक प्रमुख चिंता का विषय है। भारत की 2011 की जनगणना के आंकडे संकेत देते है कि केवल 55 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों को ही बिजली की सुविधा प्राप्त है (167.8 मिलियन ग्रामीण परिवारों में से 92.8 मिलियन परिवार) कुछ राज्यों में ग्रामीण परिवार विद्युतीकरण का स्तर बेहद नीचा है ।
जो कि सारणी से स्पष्ट हो रहा है

तालिका 14.6

राज्य	ग्रामीण परिवार विद्युतीकरण (प्रतिशत में)
बिहार	10.4
असम	28.4
उत्तर प्रदेश	23.8
उडीसा	35.6
झारखंड	32.3
पश्चिम बंगाल	40.3
सम्पूर्ण भारत	55

स्त्रोत :- अक्षय ऊर्जा मंत्रालय ,वार्षिक रिपोर्ट 2013-14, भारत सरकार

भारत में जलावन लकड़ी ,फसल अवशिष्ट और गोबर के उपले आज भी ऊर्जा के महत्वपूर्ण स्त्रोत बने हुए है। लगभग 86 प्रतिशत ग्रामीण परिवार इस पर आश्रित है। भारत का सम्पोषणीय ऊर्जा कि

दिशा में कार्य अब तक राष्ट्रीय प्राथमिकताओं से प्रेरित रहा है। ऊर्जा अभिगम कार्यक्रमों में लगभग सम्पूर्ण व्यय राष्ट्रीय संसाधनों से किया गया है। एक मुख्य मिशन के रूप में राष्ट्रीय सौर मिशन के साथ नवीकरणीय ऊर्जा का भारतीय राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना में केन्द्रीय स्थान है। भारत को स्वच्छ विकास तंत्र (सी . डी .एम.) परियोजनाओं के विकास हेतु एक उत्कृष्ट देश समझा जाता है वर्तमान में 938 परियोजनाओं में से 789 परियोजनाएं नवीकरणीय ऊर्जा परियोजनाएं है जो पंजीकृत सीडीएम परियोजनाओं का बड़ा हिस्सा है। भारत में गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का अनुमानित संभाव्य 1,83,000 मिलियन वाट (mw) है। 31 जुलाई 2015 तक विद्युत की कुल संस्थापित समता 2,75,912 मेगावाट में गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का हिस्सा 13.2 प्रतिशत के साथ 35,471 मेगावाट रहा है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारत में अभी तक संभाव्य की तुलना में गैर परम्परागत संसाधनो से बिजली का वास्तविक उत्पादन बहुत कम है। गैर –परम्परागत संसाधनों से बिजली उत्पादन में वृद्धी करके देश की ऊर्जा समस्या के समाधान में काफी सहायता मिल सकती है।

भारत में नवीन और अक्षय ऊर्जा के विकास और स्थापना के लिए मुख्य उत्प्रेरक निम्नलिखित है :-

(i) **ऊर्जा सुरक्षा :-** वर्तमान में भारत की लगभग 60 प्रतिशत विद्युत उत्पादन क्षमता कोयले पर आधारित है। निवल कोयला आयात निर्भरता की प्रतिशतता वर्ष 1990 में नगण्य थी जो वर्ष 2014 में बढकर लगभग 23 प्रतिशत हो गई। आयातित तेल पर भारत की बढती निर्भरता के अतिरिक्त इसके कारण भारत की कुल ऊर्जा आवश्कताओं का लगभग 28 प्रतिशत आयात किया जा रहा है।

(ii) **विद्युत का अभाव** :- 62 वर्षों से संस्थापित क्षमता में 110 गुना से अधिक वृद्धि के बावजूद, भारत अभी भी अपनी चरम विद्युत मांग तथा ऊर्जा आवश्यकता को पूरा करने की स्थिति में नहीं है। वित्तीय वर्ष 2001-02 के दौरान चरम विद्युत अभाव 12.2 प्रतिशत अर्थात् लगभग 9252 मेगावाट थी किन्तु वित्तीय वर्ष 2013-14 के अंत में ,चरम विद्युत अभाव घटकर 4.5 प्रतिशत हो गया और समग्र रूप से चरम अभाव 6103 मेगावाट था ।इसी प्रकार ऊर्जा उपलब्धता की दृष्टि से अभाव वित्तीय वर्ष 2001-02 के अंत में लगभग 7.5 प्रतिशत (39,187 मिलियन यूनिट) था जबकि वित्तीय वर्ष 2011-12 के अंत में यह घटकर 4.2 प्रतिशत हो गया। किन्तु समग्र रूप से यह कमी बढकर 42,428 मिलियन यूनिट हो गई। इस स्थिति के परिणामस्वरुप , इस मांग आपूर्ति अंतर को पाटने के लिए अधिकतर युटिलिटीज द्वारा योजना और गैर – योजनाबद्ध लोड शेडिंग उपायों का किए जाने की आवश्यकता है।

(iii) **ऊर्जा उपलब्धता :-** भारत के सामने अपने सभी नागरिको के लिए ऊर्जा की विश्वसनीय और आधुनिक प्रणालियों की उपलब्धता सुनिश्चित करना एक चुनौती है। लगभग 85 प्रतिशत ग्रामीण परिवार अपनी खाना पकाने की आवश्यकताओं के लिए ठोस ईंधन पर निर्भर करते है। ग्रामीण प्रकाश व्यवस्था की कमी के कारण मिट्टी के तेल का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है

। इस उपयोग को कम करने की जरूरत है क्योंकि इसके कारण बढ़ी हुई सब्सिडी देनी पड़ती है और आयात पर निर्भरता बढती है जिससे विदेशी मुद्रा भण्डार पर दबाव पडता है ।

(iv) **जलवायु परिवर्तन :-** भारत में 2020 तक 2005 के स्तर से 20-25 प्रतिशत तक अपने सकल-घरेलू उत्पाद (GDP) के उत्सर्जन घनत्व को कम करने की स्वेच्छा से प्रतिबद्धता की है । हाल ही में समाप्त हुए लीमा ,पेरू में आयोजित किए गए यूनाइटेड नेशन्स फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाईमेंट चेंज (यू एन एफ सी सी सी) के पक्षकारो के 20 वें सम्मलेन में सभी पक्षकारो को जलवायु परिवर्तन शमन की दिशा में अभिप्रेत राष्ट्रीय निर्धारित योगदानों (आई-एन डी सी) को संसूचित करने के लिए कन्वेंशन में आमंत्रित किया गया था । आगामी वर्षों में अक्षय ऊर्जा की बढ़ी हुई हिस्सेदारी से इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता मिलेगी ।

अक्षय विद्युत की संस्थापित क्षमता :-

तालिका 14.7 देश में विभिन्न नवीकरणीय ऊर्जा प्रणालियों /युक्तियों की कुल संस्थापित क्षमता [31.12.2014 की स्थिति]

क्षेत्र	कुल संस्थापित क्षमता (दिसम्बर 2014 तक)	वर्ष 2014-15 के दौरान उपलब्धियाँ (दिसम्बर 2014 तक)
1. पवन विद्युत	22465.03 (66.48%)	1333.20
2. लघुपन बिजली	3990.90 (11.81%)	187.22
3. बायोमास विद्युत एवं गैसीफिकेशन	1365.200 (4.04%)	0.00
4. खोई –सह उत्पादन	2800.35 (8.29%)	152.00
5. अपशिष्ट से विद्युत	107.58 (0.31%)	01.00
6. सौर विद्युत	3062.68 (9.06%)	480.67
कुल अक्षय ऊर्जा	33,781.74 (100%)	2104.09

[स्त्रोत:-भारत सरकार, अक्षय ऊर्जा मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट पेज नं. 5 सारणी 1.2]

अक्षय ऊर्जा में पिछले पाँच वर्षों में 150 प्रतिशत वृद्धि देखी गई है । वर्ष 2009 के आरम्भ में 14,400 मेगावाट कुल क्षमता से बढकर 31 जुलाई 2015 तक 35,471 मेगावाट की क्षमता पर पहुँच गई है । पवन ऊर्जा का भारत के अक्षय ऊर्जा में मुख्य स्थान बना हुआ है जो की स्थापित क्षमता के 66.48 प्रतिशत (लगभग अक्षय ऊर्जा की स्थापित क्षमता का दो तिहाई हिस्सा) है ।

सौर ऊर्जा (Solar Energy):-

भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देश में सौर ऊर्जा स्त्रोत का विशेष महत्व है । परन्तु सौर ऊर्जा को प्राप्त करने में सबसे कठिन समस्या यह है कि यह सकेंद्रित Concentred) रूप में उपलब्ध नहीं है । इसके अलावा इसमें व्यापक परिवर्तन होते रहते है । इसलिए सौर ऊर्जा उन कम तापीय उपयोगों में ही प्रभावी रूप से इस्तेमाल की जा सकती है जिनमे ऊर्जा उत्पादन में व्यापक अंतरो का कोई दुष्प्रभाव न हो । उच्च तापीय उपयोगों में सतत दर पर सौर ऊर्जा का उत्पादन एक महँगा विकल्प है

भारत में सौर ऊर्जा अनुसंधान कार्यक्रम के अधीन विभिन्न उपयोगों के लिए संग्राहकों (Collectors) के उत्पादन में वृद्धि तथा उनकी कुशलता में सुधार के लिए उपाय किए जा रहे है ।भारत में पिछले कुछ वर्षों के दौरान सौर ऊर्जा के योगदान को बढ़ाने के लिए त्वरित और महत्वाकांक्षी योजनाओं के साथ नीतिगत ढाँचे में अत्याधिक परिवर्तन देखने को मिला है । इसी के चलते जवाहरलाल नेहरु राष्ट्रीय सौर मिशन को प्रारम्भ कर , उत्तरोतर इसके दायरे में विस्तार किया जा रहा है । जो दर्शाता है कि वास्तव में सौर ऊर्जा के क्षेत्र में भविष्य की दृष्टि और महत्वकांक्षा को स्थान दिया गया है ।

पवन ऊर्जा (Wind Power)

भारत में पवन-ऊर्जा एक सर्वाधिक सफल अक्षय ऊर्जा विकल्प के रूप में उभरी है और ग्रिड से जुडी बिजली उत्पादन के लिए यह विभिन्न अक्षय ऊर्जा स्त्रोतों में सबसे तेजी से बढ़ने वाली अक्षय ऊर्जा प्रद्यौगिकी है । देश में दिसम्बर 2014 तक 22465.03 मेगावाट की कुल क्षमता स्थापित हो चुकी है । भारत अब चीन, अमेरिका, जर्मनी और स्पेन के बाद दुनिया का पांचवा सबसे बड़ा पवन विद्युत उत्पादक देश है ।31 दिसम्बर 2014 तक पवन शक्ति द्वारा जनित बिजली 22,465.03 मेगावाट थी। जबकि भारतीय पवन एटलस के अनुसार अभीतट पवन विद्युत संभव्यता का आकलन 50 मीटर ऊंचाई पर 49,130 मेगावाट और 80 मीटर ऊंचाई पर 1,02,000 मेगावाट किया गया है ।

ऊर्जा संकट के चलते पवन शक्ति की ओर सरकार एवं निजी कंपनियों का ध्यान आकर्षित हुआ है । 225 KW से 2.50 MW के मध्य आकार के पवण विद्युत जेनरेटरो को देशभर में स्थापित किया गया है । जिसमें मुख्य रूप से तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश,कर्नाटक और राजस्थान में स्थित है ।

तालिका 14.8 राज्यवार पवन ऊर्जा स्थापित क्षमता (मेगावाट में)(31.03.2014)

राज्य	स्थापित क्षमता
आंध्रप्रदेश	746
गुजरात	3454
कर्नाटक	2318
केरल	35
मध्यप्रदेश	424
महाराष्ट्र	4096
राजस्थान	2785
तमिलनाडु	7270
अन्य	04
कुल	21,132

(स्त्रोत : भारत सरकार, नवीन एवं नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट-2014-15,अध्याय -3 पेज नं.26)

बायोमास विद्युत और खोई -सह उत्पादन :-

पशुओ के अपशिष्ट (Waste) को बायो गैस में परिवर्तित करने की प्रौद्योगिकी काफ़ी विकसित है तथा लगभग 40 लाख बायो गैस प्लांट कार्यरत है । इस क्षेत्र में मुख्य भूमिका खादी व ग्रामीण उद्योग कमीशन की रही है । बायो गैस के अंतर्गत सरकंडो, तनों और भूसे के रूप कृषि अवशेषों एवं समर्पित ऊर्जा पौधारोपण से छिलके, भूसी, तेल रहित खली और लकड़ी जैसे कृषि औद्योगिक अवशेषों से विद्युत उत्पादन की संभाव्यता का आकलन लगभग 17000 मेगावाट पर किया गया है।

चीनी मिलों के अवशेष खोई सह उत्पादन के माध्यम से विद्युत उत्पादन का आकलन 5000 मेगावाट पर किया गया है खोई-सहउत्पादन की संभाव्यता मुख्य रूप से 09 चीनी उत्पादक राज्यों में निहित है, जिसमे महाराष्ट्र और उत्तरप्रदेश राज्य में से प्रत्येक में लगभग 1250 MW की अधिकतम संभाव्यता है इस प्रकार कुल अनुमानित बायोमास विद्युत संभाव्यता लगभग 22000 MW है। इसके विपरीत 31 दिसम्बर 2014 तक बायोमास विद्युत और खोई सहउत्पादन 4165.55 MW रहा है। बायोमास के कार्यक्रम के माध्यम से ग्रामीण परिवारों की ऊर्जा आवश्यकताओं की आपूर्ति के ईंधन पर निर्भरता को कम किया जा सकता है । इसने ग्रामीण क्षेत्र के पर्यावरण में भी सुधार किया जा सकता है तथा जैव –खाद प्राप्त की जा सकती है।

ऊर्जा का संकट [Energy crisis]

आज से लगभग चार दशक पूर्व देश में एक भयानक ऊर्जा संकट पैदा हुआ था । सत्तर और अस्सी के दशक में उत्पन्न ऊर्जा संकट मूलतः तेल संकट था । यह केवल राष्ट्रीय मुद्दा ही नहीं था बल्कि वैश्विक समस्या थी। भारत के सन्दर्भ में ऊर्जा संकट के कुछ विशेष लक्षण है :-

(1) भारत की ऊर्जा समस्या केवल तेल की मांग और पूर्ति की समस्या नहीं है। वास्तव में प्रत्येक वाणिज्यिक ईंधन में मांग एवं पूर्ति में असंतुलन बढ़ता जा रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि आर्थिक विकास कि गति के बढ़ने से वाणिज्यिक ऊर्जा की मांग लगातार बढती जा रही है। इसके विरुद्ध ,सभी वाणिज्यिक ईंधनो की पूर्ति में भी वृद्धि हो रही है परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। जिसके परिणामस्वरूप आयातों पर भारी निर्भरता है। ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आयातों पर इतनी भारी निर्भरता चिन्ता का विषय है।

तालिका 14.9 प्राथमिक वाणिज्यिक ऊर्जा की मांग व उसका प्रक्षेपण (मिलियन टन , तेल तुल्य)

	2011-12*	2016-17	2021-22
1. पेट्रोलियम तेल जिसमे आयात का हिस्सा	169.09 129.86(76.8%)	195.19 152.44(78.1%)	239 194(81.7%)
2. प्राकृतिक गैस तथा खाद जिसमे आयात का हिस्सा	55.35 12.56(22.7%)	100.93 24.8(24.6%)	134 31(22.1%)
3. कोयला एवं लिग्नाईट जिसमे आयात का हिस्सा	286.8 54 (18.8%)	415.35 90(21.7%)	579 150(25.9%)
4. पनबिजली जिसमे आयात का हिस्सा	11.67 0.45(3.9%)	13.42 0.52(3.9%)	17.6 0.6(3.4%)
5. परमाणु ऊर्जा	8.43	16.97	30
6. नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत	5.25	10.74	20
कुल ऊर्जा	536.59	752.60	1017.6
कुल आयात	196.87	267.76	375.60
कुल ऊर्जा में आयात का हिस्सा	36.69%	35.58%	36.91%

*अंतिम स्त्रोत :- भारत सरकार ,योजना आयोग बारहवीं पंचवर्षीय योजना (नई दिल्ली 2012) द्वितीय खंड – सारणी 14.4 पेज संख्या 1333

उपरोक्त सारणी से पेट्रोलियम तेल ,कोयला व लिग्नाइट, गैस तथा पन-बिजली आदि के क्षेत्र में वर्ष 2011-12, 2016-17 तथा 2021-22 के लिए मांग तथा आयात पर निर्भरता प्रकट हो रही है साथ ही कुल उत्पादन में आयात पर निर्भरता भी स्पष्ट होती है। जो कि ऊर्जा संकट की ओर इशारा स्पष्ट करता है।

(2) इसके अतिरिक्त कोयला उद्योग जिससे यह आशा कि जाती थी कि वह भारत में ऊर्जा के बढ़ते हुए संकट का सामना करने के लिए कोयले के उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि करेगी ,पिछले कुछ वर्षों से बहुत बुरी अवस्था में है। इसके अतिरिक्त, कोयले के भण्डार गुणवत्ता और मात्रा की दृष्टि से भी अपर्याप्त है।

(3) बिजली की मांग एवं पूर्ति में अंतर कम होने की अपेक्षा बढ़ रहा है। औद्योगिक और कृषि विकास के सन्दर्भ में पावर की मांग तेजी से बढ़ रही है। परन्तु पूर्ति की दृष्टि से इस पर बहुत सारी अडचने उत्पन्न हो गई है। भारत में ऊर्जा संकट का एक और पहलु यह है कि पावर की पूर्ति अनियमित एवं अपर्याप्त है। 12 वीं पंचवर्षीय योजना के वर्षों में विद्युत आपूर्ति एवं मांग की स्थिति सारणी में दर्शाई गई है :-

तालिका 14.10

	Energy (ऊर्जा)(मिलियन यूनिट में)				चरम (विद्युत) (मेगावाट में)			
वर्ष	आवश्यकता	उपलब्धता	अधिक्य/कमी		मांग	आपूर्ति	अधिक्य/कमी	
2012-13	9,95,557	9,08,652	-86,905	-8.7	1,35,453	1,23,294	-12,159	-9.0
2013-14	10,02,257	9,59,829	-42,428	-4.2	1,35,918	1,29,815	-6,103	-4.5
2014-15	10,68,943	10,30,785	-38,138	-3.6	1,48,166	1,41,160	-7,006	-4.7
2015-16	2,73,643	2,67,670	-5,973	-2.2	1,45,279	1,40,441	-4,838	-3.3

स्त्रोत : विद्युत क्षेत्र का एक परिदृश्य अखिल भारतीय, भारत सरकार ,विद्युत मंत्रालय, नीतियों एवं प्रकाशन उपयुक्त सारणी से स्पष्ट

(4) भारत में ऊर्जा संकट की शुरुआत 1973 में हुई जब तेल निर्यातक देशों के संगठन (OPEC) ने तेल की कीमतों में अकस्मात चार गुणा से अधिक वृद्धि कर दी । तब से तेल की कीमतों में कई गुणा वृद्धि की जा चुकी है । जिसके परिणामस्वरुप विश्वव्यापी स्फीतिकारी प्रवृत्तियों को बल मिला है । क्योंकि आज के विश्व में खनिज तेल,कृषि, उद्योग,परिवहन और सामान्य आर्थिक विकास प्रक्रियाओं में ऊर्जा का प्रमुख स्त्रोत है । इसलिए तेल निर्यातक देशों की नीतियों ने तेल आयात करने वाले देशों के लिए लागत जन्य स्फीति की प्रवृत्तियों को बढ़ाने में भूमिका अदा की जिससे ऊर्जा संकट के लक्षण स्पष्टत: दिखाई पड़ने लगे।

(5) OPEC द्वारा खनिज तेल की कीमतों में तेज वृद्धि करने से भारत का तेल पर आयात व्यय बहुत बढ़ गया जहाँ 1972-73 में भारत पेट्रोलियम व पेट्रोलियम उत्पादों के आयात पर 1100 करोड़ रूपये खर्च किए थे वे 1980-81 में 5264 करोड़ तथा 2013-14 में बढकर 9,97,885 करोड़ रूपये हो गए । जिससे भारत के भुगतान संतुलन पर गम्भीर प्रभाव पड़े । इस गम्भीर संकट का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि जहाँ 1970-71 में तेल के आयात पर कुल निर्यात –आय का 8.9 प्रतिशत खर्च हुआ था , वहाँ 1980-81 में यह खर्च बढकर 78.5 प्रतिशत हो गया लगभग 9 गुणा आयात व्यय में वृद्धि भुगतान संतुलन पर संकट की स्थिति को दर्शाता है वर्तमान में आधी से अधिक निर्यात आय का खर्च केवल पेट्रोलियम की आयात आवश्यकताओं को पूरा करने में हो जाता है ।

भारत में ऊर्जा संकट के समाधान के उपाय

(i) तेल के उत्पादन को बढ़ावा देना :-

जब 1973 में OPEC देशों द्वारा कच्चे तेल की कीमत को 2.1 डॉलर प्रति बैरल से बड़ाकर 1980 में 27.30 डॉलर प्रति बैरल की गयी, तब यह तत्काल आवश्यकता थी कि तेल के उपभोग में वृद्धि पर रोक लगाई जाए जिससे कि पेट्रोलियम तथा इसके उत्पादो के आयात को उचित सीमाओं के बीच रखा जा सके तथा देश के भीतर तेल के उत्पादन और शोधन क्षमता को बढ़ाया जाए । ओ.एन.जी.सी. और ओ.आई.एल द्वारा देश में इसकी खोज के प्रयासों को त्वरित किया गया तेल का उत्पादन जहाँ 1973-74 में 70 लाख टन था जो बढकर 2014-15 में लगभग 380 लाख टन के स्तर पर पहुंच गया है ।

(ii) पेट्रोलियम एवं स्नेहको के उपभोग पर नियंत्रण :-

सरकार द्वारा पेट्रोलियम एवं स्नेहको के उपभोग को नियंत्रित करने के उपाय पूरी तरह सफल नहीं हुए । 1973 में पेट्रोलियम उत्पादों का उपभोग लगभग 240 लाख टन था और यह कुछ समय तक पेट्रोलियम की कीमतों में तीव्र वृद्धि और सरकार द्वारा लगाए गए प्रतिबंधो के परिणामस्वरूप इसी स्तर पर स्थिर रहा परन्तु बाद में पेट्रोलियम के उपभोग में वृद्धि हुई और यह 2009-10 में बढकर 1382 लाख टन हो गया जबकि भारत में कच्चे तेल का उत्पादन मात्र 335 लाख टन ही रहा ।हमारी शोधन क्षमता के अधिक होने के कारण हम अपनी आवश्यकताओं से अधिक शोधन करते हुए पेट्रोलियम (शुद्ध) का विदेशो को निर्यात भी करते है । अत: उपभोग तथा शोधन कार्यों के

लिए हमें कच्चे तेल के आयात पर अत्याधिक निर्भर रहना पड़ा है वर्ष 2008-09 में 1328 लाख टन कच्चे तेल की कीमत 100 डॉलर प्रति बैरल से भी अधिक स्तर पर बनी हुई थी। वर्तमान में 2014-15 में तों अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कच्चे तेल के दामों में भारी कमी आई है सितम्बर 2015 में यह 41 डॉलर प्रति बैरल के स्तर पर है।

(iii) **तेल का कोयले से प्रतिस्थापन**

ईंधन नीति समिति (Fuel Policy Committee) में कई उद्योगों में पेट्रोलियम तेल का कोयले से प्रतिस्थापित करने का सुझाव दिया है क्योंकि भारत में कोयले का भंडार तेल के अपेक्षा में अधिक है जिसके लिए हमे विदेशो से अधिक आयात पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। जबकि दूसरी और यदि कोयले की मांग में वृद्धि होती है तों भारत में कुल संचित भण्डार बहुत जल्दी खत्म हो जाएगें।

(iv) **ऊर्जा का बचाव या संरक्षण**

पिछले कई वर्षों से ऊर्जा की कमी औद्योगिक विकास से महत्वपूर्ण बाधा सिद्द हुई है इसके आलावा ,तेजी के साथ बढती हुई खनिज तेल की कीमतों में भुगतान शेष का संकट पैदा कर दिया है। भारत में वाणिज्यिक ऊर्जा (Commercial Energy) अर्थात् कोयला ,पेट्रोलियम एवं बिजली की मांग गैर वाणिज्यिक ऊर्जा की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ रही है। आज परिस्थति यह है कि कोयले की मांग प्रतिवर्ष लगभग 4 से 5 प्रतिशत बढ़ रही है , पेट्रोलियम उत्पादों की 06 प्रतिशत प्रतिवर्ष और बिजली की माँग 9 से 10 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है इसको देखते हुए भारत सरकार ने ऊर्जा युक्ति/रणनीति के जरिए पेट्रोलियम उत्पादों के संरक्षण के लिए कई तरीके अपनाए है जो कि निम्नलिखित है :-

- ऐसे उपयों का प्रयोग करना जिनमे ईंधन-कुशलता (Fuel-efficiency) बढ़े और इसके लिए परिवहन क्षेत्र में अनेक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए है।
- पुरातन तथा अकुशल मशीनरी के स्थान नयी एवं ईंधन कुशल मशीनरी का औद्योगिक व कृषि क्षेत्र प्रतिस्थापन करना।
- घरेलू क्षेत्र में केरोसिन तथा एल.पी.जी. स्टोवों को अधिक ईंधन कुशल बनाना।

(v) **नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों को बढ़ावा देना :-** ऊर्जा के परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों द्वारा जनित 1970-73 में जनित ऊर्जा संकट का उचित समाधान इनके द्वारा ही सम्भव नहीं है बल्कि इसके समाधान के लिए हमें ऊर्जा के गैर परम्परागत तथा नवीकरणीय स्रोतों को बढ़ावा देना होगा। भारत में ऊर्जा वानिकी बायो-गैस , जल-विद्युत ,सौर-विद्युत तथा पवन ऊर्जा आदि में भारी क्षमता विद्यमान है जिसके उत्पादन एवं विकास के लिए भारत सरकार को विभिन्न प्रकार के प्रयास तथा प्रोत्साहन कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए।

(vi) **अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रमोंकी गति तीव्र करना** :- नवीन विकसित हो रही ऊर्जा तकनीक तथा ईंधन कुशल मशीनरी ,जिसका प्रयोग प्रत्येक क्षेत्र में ईंधन की बचत को बढ़ाने

में सहायक हो के सन्दर्भ में भारत सरकार को उचित अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रमों के प्रयास भी वृहद स्तर करने चाहिए।

4.3 भारत में परिवहन व्यवस्था

किसी भी राष्ट्र में, ऊर्जा के साथ-साथ परिवहन व्यवस्था के औद्योगिक विकास की मूलभूत अनिवार्यता है ।यही कारण है कि विकासशील देशों में परिवहन व्यवस्था का विकास को आर्थिक विकास के कार्यक्रम में अत्यधिक महत्व दिया गया है। परिवहन व्यवस्था उत्पादन केन्द्रों, वितरण क्षेत्रों तथा अंतिम उपभोक्ताओ के मध्य मूल कड़ी का काम करती है यह अर्थव्यवस्था के एकीकरण एवं समन्वय में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है । भारतीय अर्थशास्त्री श्री अश्विनी महाजन एवं गौरव दत्त ने ठीक कहा है "यदि कृषि और उद्योग को अर्थव्यवस्था की काया समझा जाता है तों परिवहन और संचार उसकी नसें है । परिवहन के मुख्य साधन है " रेल परिवहन, सड़क परिवहन ,जल परिवहन (आंतरिक एवं सामुद्रिक जल –परिवहन) तथा वायु परिवहन । भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक संवृद्धि 08 प्रतिशत प्रति वर्ष की गति से होने पर परिवहन व्यवस्था में 10 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि संभावित है।

अर्थात्, परिवहन की आय लोच $(T_i) = \dfrac{\text{परिवहन व्यवस्था में वृद्धि}}{\text{आर्थिक संवृद्धि में वृद्धि}}$

$= 10/8$

$T_i = 1.25$

परिवहन और पंचवर्षीय योजनाए :

भारतीय आयोजको ने परिवहन के विकास को उच्च प्राथमिकता दी क्योंकि उनके विचार में " एक कुशल और सुविकसित परिवहन एवं संचार प्रणाली ऐसे आर्थिक विकास की कामयाबी के लिए अनिवार्य है जो तीव्र ओद्योगिकरण पर बल देता है। " इसी कारण पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में परिवहन के विकास के लिए 25 से 28 प्रतिशत राशि आवंटित की गई जो बाद में उत्तरोतर कम होती गई। ग्यारहवीं योजना में उदाहरणार्थ ,यह कुल परिव्यय का केवल 12.84 प्रतिशत था। जबकि बारहवीं पंचवर्षीय योजना में इस मद में और कटौती करते हुए इसे 12.57 प्रतिशत तक रखा है उत्तरोतर कम आवंटन का यह अभिप्राय नहीं है कि परिवहन क्षेत्र का पूर्ण विकास हो चुका है। भारत में परिवहन विकास की अनेक समस्या है जो कि निम्नलिखित है :-

(i) समग्र परिवहन प्रणाली की क्षमता जिसमे सड़क एवं रेलवे परिवहन भी शामिल है, परिवहन की मांग की तुलना में कम है । खासतौर पर ग्रामीण इलाको में तों हालत और भी अधिक विकृत बनी हुई है देश के गॉव की सड़कों में जुड़े हुए नहीं है ।सड़क परिवहन प्रणाली पर भारी दबाव है और इसके साथ क्षमता की अपर्याप्तता और प्राथमिक आधार संरचना (Sub-standard Infrastructure) जुड़े हुए है । इसके परिणामस्वरूप माल की ढुलाई में

अत्यधिक विलम्ब, ईंधन का व्यर्थ व्यय और संकार्य –लागत (operational cost) बढ़ जाती है। ऐसी ही समस्या जहाजरानी में भी विद्यमान है।

(ii) परिवहन प्रणाली का घटिया आयोजन सबसे प्रमुख बाधा के रूप में उभरकर सामने आया है। परिवहन योजनाएँ तैयार करते समय भौगोलिक,आर्थिक जनांकिकीय तथा विकेन्द्रीकरण के तत्वों की और विशेष ध्यान नहीं दिया गया है ,जो कि देश में परिवहन की मांग को प्रभावित करते है। इसलिए आगामी वर्षों में परिवहन व्यवस्था के समुचित आयोजन में उद्योगों का अधिक फैलाव, संतुलित क्षेत्रीय विकास, तापीय पावर जनन, ऊर्जा के अन्य नवीकरणीय स्त्रोतों का विकास आदि शामिल होना चाहिए।

(iii) रेल परिवहन तथा सड़क परिवहन के मध्य सवारी तथा माल-ढुलाई अनुपात निरंतर बिगड़ता चला जा रहा है 1951 से रेलवे का भाग लगातार कम होता जा रहा है जो कि रेल-सड़क के मध्य समन्वय की कमी का घोतक है , जहाँ वर्ष 1951 में सड़क द्वारा कुल माल यातायात का 11 प्रतिशत तथा सवारी यातायात का 26 प्रतिशत उपलब्ध कराया गया ,परन्तु अब वर्तमान में इनका भाग क्रमश: 60 से अधिक प्रतिशत तथा 80 प्रतिशत हो गया है। सड़क परिवहन के पक्ष में यह झुकाव पर्यावरण एवं आर्थिक दृष्टि से सही नहीं है क्योंकि तेल के आयात से भुगतान शेष पर तथा इसके दोहन से पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़े है जो देश के हित में नहीं है।

(iv) भारत की परिवहन प्रणाली का एक और दोष जीर्ण एवं पुरानी संपत्ति का प्रयोग है। यह परिवहन के सभी ढंगो के लिए सत्य है। देश में संचालित रेलवे, सड़क, जहाजरानी तथा वायु परिवहन की अधिकतर मशीनरी पुरानी तथा अत्याधिक ईंधन उपयोगी है। जिनके प्रतिस्थापन की समस्या ने अब भयंकर रूप धारण कर लिया है।

(v) परिवहन प्रणाली के आधुनिकीकरण तथा तकनीकी उन्नयन को स्थापित करने के साथ–साथ स्थानीय आवश्यकताओं को भी ध्यान रखना प्रमुख समस्या है। परिवहन क्षेत्र के तकनीकी उन्नयन का उसकी उत्पादकता (Productivity) और सुरक्षा (Safety) पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जब तक इस दिशा में सुधर नहीं किया जाता, तब तक परिवहन प्रणाली की न ही तों उत्पादकता बढ़ सकेगी और न ही यह अधिक सुरक्षित एवं विश्वसनीय बन पाएगी।

1951 के पश्चात परिवहन प्रणाली का विकास

भारत में रेल और सड़क परिवहन का प्रभुत्व ब्रिटिश से ही रहा है परन्तु अन्य प्रकार के परिवहन भी देश के आकार और भौगोलिक लक्षणों को दृष्टि में रखते हुए अधिक महत्व रखते है

रेल परिवहन (Railways) :-

विश्व भर में रेलवे विकास तथा विस्तार ने परिवहन प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिए है। भारतीय रेल अपने 162 वर्ष से अधिक के इतिहास सहित रेल मंत्रालय के अधीन भारत सरकार के जनउपयोगी स्वामित्व वाला उपक्रम है। इसका विशाल नेटवर्क एक राष्ट्रीय सार्वजनिक परिवहन के रूप में यात्री तथा माल को ढोता है। भारतीय रेलवे की हमेशा भारत के सामाजिक तथा आर्थिक

विकास में मुख्य भूमिका रही है बल्कि राष्ट्रीय एकीकरण की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है । यह प्रतिदिन लाखो यात्रियों के लिए सस्ता एवं सुलभ यातायात का साधन होने के साथ –साथ भारी माल यातायात जैसे अयस्क एवं खनिज, लोह एवं इस्पात, सीमेंट, खनिज तेल, खाद्यान्न एवं उर्वरक,कन्टेनराइजड कार्गो आदि को ढोने का कार्य निर्बाध गति से करता है । कृषि, उद्योग, तथा जन- साधरण को जोड़ने का कार्य भारतीय रेल करती है । वर्ष 2013-14 में रेलवे ने 8397 मिलियन यात्रियो को अपने गंतव्य स्थानों तक पहुंचया तथा पिछले वर्ष (2012-13) की तुलना में 4.32 प्रतिशत की वृद्धि के साथ 1051.64 ममिलियन टन आय अर्जक माल की ढुलाई की। भारतीय रेलवे 64,600 मार्ग किलोमीटर की लम्बाई के साथ अमेरिका ,रूस तथा चीन के बाद विश्व का चौथा सबसे बड़ा नेटवर्क है । जहाँ तक माल यातायात का सम्बन्ध है यह पुन: चौथे स्थान पर है । यात्री यातायात के मामले यद्यपि जापान इससे अधिक यात्री प्रतिवर्ष ढोता है परन्तु यात्री किलोमीटर की दृष्टि से भारतीय रेलवे सबसे आगे है । भारतीय रेलवे तीनों लाइनों पर सेवाए उपलब्ध करवाती है 31 मार्च 2012 को नेटवर्क का आकार आमान –वार इस प्रकार है :-

तालिका 14.11

आमान	मार्ग KM	चालू रेल पथ KM	कुल रेल पथ KM
बड़ी लाईन 1676 मि. मी. मीटर लाईन (1000 मि. मी.) छोटी लाईन (0.762 मीटर तथा 0.610 मीटर)	55,256 6,347 2,297	80,779 6,725 2,297	1,04,693 7,802 2,568
कुल	64,600	89,801	1,15,062

[स्त्रोत: भारतीय रेल बजट रिपोर्ट, 2014-15 पृष्ठ संख्या:-15]

भारतीय रेलवे को प्रशासनिक नियंत्रण के लिए 17 जोनों में बांटा गया है प्रत्येक जोन का मुखिया महाप्रबंधक होता है। आगे क्षेत्रीय रेलों को छोटी परिचालन इकाई में बांटा गया है, जिन्हें मण्डल कहा जाता है वर्तमान में 68 मण्डल है, प्रत्येक मण्डल ,मण्डल रेल प्रबंधक के अधीन होता है। भारतीय रेल, रेल मंत्रालय के अधीन कार्य करती है । शीर्ष स्तर पर प्रबंधन 'रेलवे बोर्ड', के अध्यक्ष द्वारा किया जाता है ।

पंचवर्षीय योजनो में परिव्यय तथा रेलों का विकास :-

आयोजन काल में रेलों के विकास को लगभग प्रत्येक पंचवर्षीय योजनाओं के प्राथमिकता क्रम में काफ़ी ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है । 1930 से लगभग 20 वर्षों तक रेलों पर भारी दबाव रहा और उनमे समुचित निवेश नहीं हुआ । इसके पश्चात चूँकि राष्ट्र ने पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा आपने भावी विकास की रणनीति अपनाई, जिसके चलते भारतीय रेल ने आपनी विकास योजनाएँ, राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजना के ढाँचे के भीतर तैयार करती रही । भारतीय रेल तथा परिवहन क्षेत्र के लिए समग्र रूप से योजनावार परिव्यय निम्नलिखित है:- (रु करोड़ में)

तालिका 14.12

क्षेत्र / इकाईयां	विभिन्न पंचवर्षीय योजयाएं तथा व्यय					
	07 वीं तक 1985-90	08 वीं तक 1992-97	09 वीं तक 1997-02	10 वीं तक 2002-07	11 वीं तक 2007-12	12 वीं तक 2012-17
1. रेलवें	16,549	33,306	45,725	84,003	1,90,841	5,19,221
2.परिवहन क्षेत्र	29,548	65,173	1,17,563	2,59,777	6,13,185	12,04,172
3.कुल परिवहन परिव्यय	2,18,729	4,85,457	8,13,998	15,25,639	36,76,936	80,50,123
4.कुल योजना परिव्यय के % के रूप में परिवहन व्यय	13.5	13.4	14.4	17.0	16.7	14.96
5.कुल योजना परिव्यय के % के रूप में रेलवें व्यय	7.6	6.7	5.6	5.5	5.2	6.45

** 12 वीं. पंचवर्षीय योजना के संमक 12 वीं पंचवर्षीय योजना 2012-17 Table 15.3, P.200 तथा P.213 से लिया है

स्त्रोत: रेलवे बजट 2014-15 की रिपोर्ट पृष्ठ संख्या:-17 रेल मंत्रालय, भारत सरकार)

इस प्रकार सारणी से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी पंचवर्षीय योजनाओं पर रेलवे परिवहन पर 5% से 8% तक कुल योजना का व्यय किया गया है । अन्य परिवहन साधनों जो लगभग अपना व्यवसाय खो चुके है उन्हें कुछ हद में वापिस कर सकें इस उद्देश्य से वर्तमान केन्द्र सरकार रेलवे के आधुनिकीकरण पर जोर दे रही है ताकि उसकी विश्वसनीयता को बढ़ाया जा सके तथा परिचालन लागतों को कम किया जा सके। रेलवे ईजनों, रेलवे डिब्बों, रेलवे लाइनों इत्यादी में प्रद्यौगिकी सुधार करने की बात भी की गई। इसके अतिरिक्त रेल-सेवाओं में सुधार पर जोर दिया गया है जैसे लम्बी दूरी की रेलों में साफ-सफाई ,तथा शुद्ध पानी व भोजन की व्यवस्था करवाना इत्यादी । रेलवे की विभिन्न गतिविधियों में सूचना प्रद्यौगिकी के प्रयोग को प्रोत्साहित के रेलवे बुकिंग तथा विभिन्न रेलों की ताजा स्थिति को आमजन के पहुँच तक बना दिया है जिसको IRCTC तथा Live Train Status जैसी वेबसाइट के प्रयोग द्वारा सुलभ करवाया गया है । इतना कुछ होने के बाद भी भारतीय रेलवे के विकास में कई समस्याएँ तथा चुनोतियां है जिनका निवारण करना अति आवश्यक है।

रेलवे विकास के मुद्दे व समस्याएँ : -

1. अपर्याप्त नेटवर्क तथा आधारित सरंचना :-

भारत में रेलवे मार्गों पर अत्यधिक भार, यात्री सुविधाओं के अभाव तथा माल ढुलाई की धीमी गति के रूप में कई अन्य आधारित कमजोरियाँ साफ-साफ स्पष्ट होती है। इसके अतिरिक्त अधिकतर रेलवे मार्गों के दोहरीकरण तथा विद्युतीकरण के अभाव के चलते नेटवर्क सम्बन्धी कई समस्याएँ विद्यमान है । भारत में परिवहन आउटपुट की तुलना में आधारित संरचना का विकास बहुत ही कम गति से हो पाया है।

2. प्रति-आर्थिक सहायता की निरंतर समस्या का बना रहना :-

भारतीय रेलवे को जो कुल यातायात आय अर्जित होती है उसमे मालभाड़े से आय का हिस्सा 67% (अर्थात् 2/3) से भी अधिक है । भारत में मालभाड़ा दर विश्व में सर्वाधिक है ।

इसके विपरीत भारत में यात्री किराया विदेशी रेलवे के यात्री किराए की तुलना में अत्याधिक नीचा है जिससे यात्री यातायात में भारी हानि उठानी पड़ती है इस प्रकार उच्च मालभाड़ा दरों से कम यात्री दरों की भरपाई करने, को प्रति आर्थिक सहायता कहा जा सकता है। भारतीय रेलवे में इसकी समस्या विद्यमान है जो चिन्ता का विषय है।

3. **रेलवे पेटर्न का विकृत होना :-**

भारत में निर्मित अधिकतर रेलवे पैटर्न का रूप विकृत है क्योंकि देश के कुछ मार्गों जो महत्वपूर्ण शहरो तथा बंदरगाहों से जुड़े है उन पर यात्री तथा मालभाड़े का भार अपेक्षाकृत अधिक है। जिनके कारण इन मार्गों पर माल ढुलाई की गति पर अत्यंत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

4. **साँझे गलियारे (common corridor) :-**

भारतीय रेलवे में माल और यात्री यातायात दोनों के एक ही गलियारा (common corridor) है। माल गाडियों के एक ही गलियारे में होने से, तीव्र यात्री सेवाएँ चलाना अत्यधिक कठिन है। यात्री सेवाओं को माल गाडियों की अपेक्षा अधिक ध्यान देने के कारण भारत में माल गाडियों की औसत गति 2008-09 में मात्र 25.7 किलोमीटर प्रति घंटा थी जो कि अत्यंत कम है।

5. **वित्तीय साधनों का अभाव :-**

बहुत-सी रेल परियोजनाएँ अधूरी पड़ी है। उपयुक्त वित्तीय साधनों के अभाव में ये परियोजनाएँ वर्षों से लटक रही है। इसके अतिरिक्त दोहरीकरण तथा विद्युतीकरण के निर्धारित लक्ष्यों की अपेक्षा उनकी प्राप्ति अत्यंत कम है। इसके विपरीत तीव्र जनसंख्या वृद्धि और विकास के चलते अधिकतर नवीन शहरो के विकसित होने से नवीन रेलवे मार्गों के निर्माण की कई योजनाओं को वित्तीय साधनों के अभाव में प्रारम्भ नहीं किया जा सका है।इसके अतिरिक्त जिन परियोजनाओं को यदि थोडा बहुत प्रारम्भ किया गया है तों भी उन्हें पूरा करने के लिए पर्याप्त साधनों के न होने से उनकी लागतो में भी भारी वृद्धि हो जाती है।

6. **कम निवेश की समस्याएं :-**

भारतीय रेलवे में अत्यंत कम निवेश किया गया है जिसके परिणामस्वरूप यह अत्याधिक पिछड़ी हुई अवस्था में ही जिसके चलते आधुनिकीकरण उपयुक्त गति से नहीं हो पाया है।कम निवेश के कारण प्रौद्योगिकी का आधुनिकीकरण रेलों पथों का विद्युतीकरण नहीं हो पा रहा है।

7. **घाटे के बजट की समस्या :-**

पिछले दशक के अधिकतर वर्षों और विशेषकर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के 1999-2004 के काल के दौरान रेलों का निष्पादन असंतोषजनक था वे भारत सरकार के सामान्य राजस्व में लाभांश की पूर्ति भी नहीं कर पायी और वे न ही समय पर अपनी पुरानी परिसम्पतियों का विस्थापन कर सकी। इस प्रकार पिछले दशकों के रेलवे विकास में बाधा उत्पन्न की है।

8. **अन्य परिवहन के साधनों से प्रतिस्पर्धा :-**

समय के साथ –साथ रेल परिवहन के बाजार में हिस्सा तेजी से गिरा है जिसका अधिकतर लाभ सड़क परिवहन को हुआ है। रेलवे के बाज़ार में हिस्से में वृद्धि करने के लिए ऐसी रणनीति बनाने की आवश्यकता है जिसके तहत बेहतर सुविधाएँ प्रदान की जा सके तथा मालभाड़ा तुलनात्मक रूप से प्रतिस्पर्धात्मक हो । जहाँ तक यात्री पक्ष था का प्रश्न है, उसमे रेलवे को बेहतर सड़क यातायात तथा कम लागत पर उपलब्ध नई यातायात सुविधाओं से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है। इस कारण यात्रियों को पुन: आकर्षित करने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि रेलवे आधुनिकीकरण तथा प्रौद्योगिकीकरण को अपनाए तथा तीव्र गति की सेवाएँ आरम्भ करें।

सड़क परिवहन (Road Transport)

देश के आर्थिक विकास के लिए सडक परिवहन एक जटिल अवसंरचना है। यह विकास की गति ,संरचना और पद्दति को प्रभावित करता है। भारत में सड़क अवसंरचना का इस्तेमाल कुल 61% माल और कुल 85% यात्री –यातायात परिवहन में होता है । भारत का सड़क नेटवर्क वर्ष 2014-15 तक 46.99 लाख कि.मी. है जो विशालतम सड़क नेटवर्कों में से एक है । देश के सड़कों के जाल (नेटवर्क) को पांच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : राष्ट्रीय राजमार्ग,एक्सप्रेस मार्ग, राज्यीय राजमार्ग, प्रमुख जिला सड़कें और ग्रामीण सड़के शामिल है जिनकी लम्बाई निम्नवत है :-

तालिका 14.13

क्र.सं.	प्रकार	लम्बाई (कि.मी. में)
01	राष्ट्रीय राजमार्ग/ एक्सप्रेस मार्ग	96,214
02	राज्यीय राजमार्ग	1,47,800
03	अन्य सड़के	44,55,000
04	कुल	46,99,014

स्त्रोत:- वार्षिक रिपोर्ट 2014-15 सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय,भारत सरकार पृष्ठ संख्या-09

14.15 भारत में सड़क परिवहन का महत्व:-

भारत में रेलवे की तुलना में सड़क परिवहन श्रेष्ठ परिवहन का साधन माना जाता है इसके निम्नलिखित कारण है :-

1. **दुर्गम स्थानों तक पहुँच** :- देश के कई स्थान जिसमे दूर-दराज के गांव ,देश के भीतरी स्थान तथा पहाड़ी क्षेत्र जो रेलवे से जुड़े नहीं है ऐसे क्षेत्रों में सड़क परिवहन एकमात्र साधन है।
2. **रेलवे के पूरक की भूमिका** :- सड़क परिवहन व्यवस्था रेलवे की पूरक है । वह रेलवे स्टेशनों से माल गंतव्य स्थानों तक पहुँचाने तथा रेलवे स्टेशनों से माल गंतव्य स्थानों तक पहुँचाने में सहायता करती है।

3. **अधिक लोचशील व्यवस्था** :-सड़क परिवहन ,अन्य परिवहन सेवाओं की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक लोचशील है क्योंकि वह उपयोगकर्ताओं की आवशयकता व सुविधा के अनुसार मार्ग बदल सकती है।
4. **नष्टशील व हल्की वस्तुओं के परिवहन के लिए उपयोगी** :- सड़क परिवहन ,अन्य परिवहन माध्यमो की अपेक्षा नष्टशील व हल्की वस्तुओं के परिवहन के लिए अधिक उपयोगी : जैसे उदाहरण के लिए ट्रको द्वारा फलो, सब्जियों तथा दूध को जल्द से उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जा सकता हैं।
5. **अधिक सुविधाजनक व्यवस्था** :- रेलवे की तुलना में सड़क परिवहन अधिक बेहतर है क्योंकि इसमें अपेक्षाकृत देरी, क्षति या नुकसान की सम्भावना कम होती है क्योंकि इस प्रणाली में माल को बार-बार उतरने तथा लादने की आवश्यकता नहीं होती है जिससे इसमें श्रम की लागत भी अपेक्षाकृत कम होती है। इस प्रणाली में एक ही वाहन उत्पादन स्थान से माल को उठाकर थोक विक्रेता के गोदाम तक पहुंचा देता है।
6. **कम पूँजी की आवश्यकता** :- सड़क परिवहन ,रेलवे तथा वायु परिवहन व्यवस्था की तुलना में कम निवेश से प्रारम्भ किया जा सकता है इसमें भारी निवेश की आवश्यकता नहीं होती है।
7. **सुरक्षा की दृष्टि से भी उपयोगी** :- चूँकि रेलवे का विस्तार देश के भीतरी भागों तथा सभी कोनों तक नहीं है। इस कारण सेनाओं तथा सैन्य सामग्री को इन स्थानों तक पहुँचाने की जिम्मेदारी सड़कों को उठानी पड़ती हैं।

भारत में सड़कों का विकास :-

सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय को राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण और अनुरक्षण की जिम्मेदारी सौपीं गई है ।राज्यों में राष्ट्रीय राजमार्गों से भिन्न अन्य सभी सड़के सम्बंधित राज्य सरकारों के कार्य क्षेत्र में आती है। हाल के वर्षों में सड़क परिवहन के क्षेत्र में तीन महत्वपूर्ण प्रयास किए गए है :राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना (National Highways Development Project, NHDP), प्रधानमंत्री भारत जोड़ो परियोजना (Pradhan Mantri Bharat Joda Pariyojana,PMBJP) तथा प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana,PMGSY)

राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना (NHDP) :-

NHDP का उद्देश्य अच्छी गुणवत्ता के राजमार्गों का विकास करना हैं। देश में सड़कों के निर्माण के लिए तथा राजमार्गों के विस्तार की यह सबसे बड़ी परियोजना है। इस परियोजना को भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (Nation Highway Authority of India) द्वारा संचालित किया जा रहा है। इस परियोजना को पूर्ण करने के लिए भारत सरकार द्वारा प्राधिकरण को 6,00,000 करोड़ रु. की राशि आवंटित की है। जिसे 07 अलग-अलग चरणों में कार्यान्वित किया जाना है। इन सात चरणों के अंतर्गत किए जाने वाले कार्य निम्नलिखित है।

राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना चरण –I और II :-

NHDP चरण-I और II में निम्नलिखित मार्गों का 4/6 लेन के मानको के अनुरूप राष्ट्रीय राजमार्गों के रूप में विकास करना शामिल है :-

(i) **स्वर्णिम चतुर्भुज** :-देश के चार प्रमुख महानगरों अर्थात् दिल्ली-मुंबई-चेन्नई –कोलकत्ता को आपस जोड़ने वाले राजमार्ग का विकास करना।

(ii) **उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व-पश्चिम गलियारे का विकास करना** :- श्रीनगर से कन्याकुमारी तक के उत्तर-दक्षिण गलियारे का तथा सिलचर से पोरबंदर तक पूर्व से पश्चिम गलियारे का विकास करना।

(iii) देश के महापत्तनों को राष्ट्रीय राजमार्गों तक सड़क संपर्क प्रदान करना तथा

(iv) अन्य राष्ट्रीय राजमार्गों के विभिन्न खंडो का सुधार करना।

उपरोक्त दोनों चरणों में लगभग 14,000 किलोमीटर की 4/6 लेंन की सड़कों के निर्माण का लक्ष्य रखा गया।

राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना चरण-III :-

NHDP चरण-III के अंतर्गत भारत सरकार ने पहले 2005 में, निर्माण, प्रचालन और हस्तांतरण (बी.ओ.टी.) के आधार पर 4000 किलोमीटर की सड़कों के निर्माण का लक्ष्य निर्धारित किया था। परन्तु कालान्तर ने सरकार ने उन्नयन के लिए कार्यान्वयन हेतु 17.10.2006 और 12.04.2007 को 12,109 किलोमीटर लम्बाई के अतिरिक्त खंडों को अनुमोदित किया जिसके लिए सरकार ने 80,626 करोड़ रूपये आवंटित किए। इस चरण में विभिन्न खंडो का अभिनिर्धारण निम्नलिखित मानदण्डों के अनुसार किया गया है:-

- चरण –I और चरण-II में शामिल न किए गए उच्च घनत्व वाले यातायात कोरिडोर।
- राज्य राजधानियों को संपर्क सड़क उपलब्ध करना।
- पर्यटन केन्द्रों और आर्थिक महत्व के स्थानों को सड़क संपर्क उपलब्ध करना।

दिसम्बर 2014 तक 12,109 कि.मी. के लक्ष्य के विरुद्ध कुल 6352 कि.मी. लम्बाई में 4 लेन बनाने का कार्य पूरा कर लिया गया और 4414 कि.मी. की लम्बाई में कार्य चल रहा है।

राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना चरण –IV :-

NHDP के चरण –IV में सार्वजनिक –निजी भागीदारी (पी.पी.पी.) आधार पर लगभग 20,000 किलोमीटर लम्बे राष्ट्रीय राजमार्गों को पेव्ड शोल्डर सहित 02 लेन में उन्नयन की परिकल्पना की गई है। इस चरण का अनुमोदन सरकार द्वारा वर्ष 2008 में भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (14,799 कि.मी.) तथा लोक निर्माण विभाग, सार्वजनिक –सड़क और परिवहन विभाग भारत सरकार [शेष भाग की लम्बाई] के संयुक्त तत्वाधान में किया गया तथा 6928 कि.मी. दूरी का कार्य कार्यान्वयनाधीन है।

राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना चरण –V :-

NHDP के चरण –V में डिजाइन, निर्माण, वित्त और प्रचालन (DDFO) के आधार पर अक्टूबर 2006 में 6,500 कि.मी. चार - पथीय राजमार्गों को (जिसमे 5,700 कि.मी. स्वर्णिम

चतुर्भुज भी शामिल है ।) मौजूदा 4 लेन से 6 लेन बनाने की योजना को अनुमोदित किया गया । दिसम्बर 2014 तक 2127 कि.मी. लम्बाई के राजमार्गों को 06 लेन में बनाने का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है और 2108 कि.मी. पर कार्य चल रहा है।

राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना चरण –VI :-

NHDP के चरण –VI की अनुशंसा में सरकार द्वारा नवम्बर 2006 में डिजाइन निर्माण वित्त प्राचालन (DDFO) पद्दति का अनुसरण करते हुए सार्वजनिक-निजी भागीदारी मॉडल के अंतर्गत 16,680 करोड़ की लागत वाले 1000 कि.मी. पूर्णत: पहुँच नियंत्रित एक्सप्रेस मार्गों की परिकल्पना की गई । इस सम्पूर्ण परियोजना को दिसम्बर 2015 तक पूरा करने का लक्ष्य रखा गया है।

राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना चरण –VII :-

सरकार ने NHDP चरण –VII के अंतर्गत बी.ओ.टी. (पथकर) नीति से 16,680 करोड़ रूपये की अनुमानित लागत दिसम्बर, 2007 में स्वतंत्र रिंग रोडों ,बाईपासों, ग्रेड सेपरेटरो, फ्लाई ओवरों ,उत्थापित सड़कों, सुरंगों, सड़क उपरि-पुलों अंडरपासों, सर्विस रोडों आदि के निर्माण को अनुमोदित किया गया है ।

दिसम्बर 2014 तक राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना के अधीन 22,609 कि.मी. सड़कों का निर्माण पूरा किया जा चुका था । NHDP के कार्यान्वयन में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है जैसे –भूमि अधिग्रहण में देरी ,इमारतों को हटाने में विलम्ब ,निकायों को स्थानान्तरित करने में विलम्ब, कुछ राज्यों में कानून व व्यवस्था की समस्याएँ तथा कुछ ठेकेदारों का खराब निष्पादन इत्यादि ।

रेल सड़क समन्वय (Rail-Road Co-ordination) :-

देश के विकास के लिए सड़क तथा रेल परिवहन एक –दूसरे के पूरक है न की प्रतियोगी । लम्बी यात्रा और कम मूल्य वाले भारी पदार्थों की ढुलाई के लिए रेले अधिक उपयुक्त है । सड़क परिवहन छोटी यात्राओं और हल्के माल ढुलाई के लिए अधिक उपयुक्त है । इस दृष्टि से राष्ट्रीय साधनों का अनुकूलतम उपयोग उसी समय संभव होगा जब इन दोनों में प्रतियोगिता के स्थान पर समन्वय स्थापित होगा ।

मोटर –परिवहन कई ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध करा सकता है जो रेलवे परिवहन के लिए संभव नहीं है। इसके साथ ही समय सारणी में अधिक लोच, तेज परिवहन आदि इन सब लाभों ने इसे व्यापारी वर्ग के लिए बड़ा लोकप्रिय बना दिया है । सड़क परिवहन के लाभों पर बल देते हुए मसानी समिति ने लिखा –"सड़क परिवहन ,रेल परिवहन से लगभग तीन गुना तेज है और भूतकाल की तुलना में इसे भविष्य में बड़े पैमाने पर विकसित करना पड़ेगा ।" सड़क परिवहन की श्रेष्ठता का एक और कारण यह भी है कि रेल परिवहन को कुछ मूल अलाभो के अधीन कार्य करना पड़ता है

जिनमे :- कर्मचारियों के निश्चित कार्य घण्टे ,यात्री किराये में रियायतें , अनिवार्य वस्तुओं के भाड़े में रियायतें , युद्द व सुरक्षा की दृष्टि से परिचालन के अलाभ तथा प्राकृतिक आपदो के समय

इनका मुफ्त परिचालन आदि । अत: इन सब से स्पष्ट होता की रेलवे अपने सामाजिक दायित्वों के चलते सड़क परिवहन की तुलना में उतने लाभों के आधार पर कार्य नहीं कर सकती है ।

रेलवे को सड़क परिवहन की प्रतियोगिता से बचाने के पक्ष में तर्क :-

इससे स्पष्ट होता है किइन दोनों में स्वतंत्र परियोगिता होने से नुकसान रेलवे को हुआ है और होगा क्योंकि पहले स्पष्ट किया जा चुका है सड़क परिवहन कई प्रकार से रेलवे परिवहन से श्रेष्ठ है ,सड़क परिवहन व्यवस्था से प्रतियोगिता कर पाने में असमर्थ रही है । 1930 से निरंतर रेलवे को उचित संरक्षण प्रदान करने के उपाय सरकार करती रही है। मोटर-परिवहन के विरुद्ध कई अधिनियम समय-समय पर बनाये गए ताकि नियंत्रण में रखा जा सके और रेल परिवहन को बढ़ावा मिल सके। रेलवे परिवहन को संरक्षण देने के पक्ष में निम्न तर्क दिये जाते है :-

1. रेलवे भू-परिवहन की प्रधान प्रणाली है और वह केन्द्रीय वित्त का महत्वपूर्ण साधन है ।
2. रेलों के स्वामित्व, प्रबन्ध एवं नियंत्रण राजकीय क्षेत्र के अधीन है जबकि सड़क परिवहन नहीं है ।
3. रेलों पर दो ऐसे दायित्व है जो सड़क परिवहन पर नहीं है :- अर्थात् (क) जो कुछ भी माल मिले ,उसे ढोना पड़ता है और (ब)किसी विशेष प्रकार के माल को अनुचित प्रधानता नहीं दी जाती है ।
4. रेलों की दरे निर्धारित करते समय लाभ अधिकतम करने के सिद्धांत का पालन नहीं किया जाता बल्कि यह ध्यान रखा जाता है कियातायात क्या सहन कर सकता है ?
5. औद्योगिक तथा कृषिगत विकास के उद्देश्य से रेलें ऐसे माल की भी ढुलाई करती है जो अपेक्षाकृत कम लागत वाले तथा भारी होते है जिससे उनका भाडा इतना कम होता है कि इससे रेलवे के परिचालन की लागत भी नहीं निकलती है उसे हानि भी उठानी पड़ती है ।
6. रेलों को राष्ट्रीय आवश्यकता तथा सुरक्षा के लिए हानि सहन करनी पड़ती है । ऐसा उस स्थिति में होता है जब रेलवे यात्री भाड़े में रियायतें प्रदान करती है । सुरक्षा तथा प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए रेल-मार्ग बनाती है ।
7. रेल प्रणाली में पेट्रोलियम उत्पादों का न्यून उपभोग किया जाता है जिससे कार्बन उत्सर्जन को कम किया जा सकता है ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है किदोनों ही प्रणालियों के अपने-अपने लाभ तथा नुकसान है निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है किअर्थव्यवस्था के विकास के लिए रेलवे परिवहन और सड़क परिवहन दोनों का अपना-अपना महत्व है । वास्तव में देश की सम्पूर्ण परिवहन प्रणाली को इस प्रकार विकसित किया जाना चाहिए की परिवहन सम्बन्धी आवश्यकताओं को न्यूनतम लागतों पर उपलब्ध करा सकना संभव हो।

14.16 जल परिवहन (WATER TRANSPORT)

भारत में जल परिवहन दो प्रकार का है :- अन्तर्देशीय जल परिवहन और समुद्र तटीय जल परिवहन ।

अन्तर्देशीय जल परिवहन(Inland Water Transport) :- देश की परिवहन व्यवस्था में नदी या नहरों के परिवहन ने काफ़ी योगदान किया है परन्तु पिछली शताब्दी के मध्य के पश्चात, रेल –परिवहन पर अधिक बल देने और नदियों के जल का प्रयोग सिंचाई के लिए करने के परिणामस्वरूप जल-परिवहन की क्षति हुई है। इस समय भारत में आंतरिक जल मार्गों की कुल लम्बाई 14,544 किलोमीटर है जिसमें से मुख्य नदियों के केवल 5,200 किलोमीटर तथा नहरों के केवल 485 किलोमीटर जल मार्ग का प्रयोग यंत्रीकृत जलयानों (Mechanised Crafts) के लिए किया जा सकता है। देश में आंतरिक जल परिवहन के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रीय जलमार्ग (National Waterways) की संकल्पना 1982 में दी गई। वर्तमान में देश में पांच जलमार्ग है जिन्हें राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया गया है। ये है :-

(i) गंगा-हल्दिया से इलाहबाद (1620 कि.मी.)

(ii) ब्रह्मपुत्र-ढबरी से साडिया (891 कि.मी.)

(iii) पश्चिम तट नहर –कोटापुरम से कोलम जिसमे चंपकारा एवं उद्योगमण्डल नहरे भी शामिल है।(205 कि.मी.)

(iv) गोदावरी नदी व कृष्णा नदी का हिस्सा (1995 कि.मी.)

(v) ब्राह्मणी नदी ,पूर्व तट नहर , मटाई नदी एवं महानदी 623 कि.मी. हिस्सा।

उपरोक्त पाँचो मार्गों के विकास की जिम्मेदारी भारतीय आंतरिक जलमार्ग प्राधिकरण (IWAI) पर है। भारत सरकार में आंतरिक जल परिवहन को प्रोत्साहित करने के लिए 2001 में आंतरिक जल परिवहन नीति की घोषणा की थी। कम गहरे , व चौड़ाई वाले जल मार्गों पर खुशक मौसम, और किनारों के टूट –फुट जाने से आंतरिक नौका परिवहन पर अधिक ध्यान केंद्रित नहीं किया गया और इसके आधुनिकीकरण के भी कोई प्रयास नहीं किए गए। भारत में पहली बार आंतरिक जल परिवहन के विकास को छठीं पंचवर्षीय योजना में स्वीकार किया गया।

तटीय और सामुद्रिक जल परिवहन (Coastal and Overseas Transport):-

औपनिवेशिक शासनकाल में सामुद्रिक और तटीय परिवहन भारतीय कंपनियों के हाथ में नहीं के बराबर था। 1951 में भारतीय जहाजों की क्षमता केवल 3.9 लाख टन (Gross Tonnage or G.T) थी। 30 जून 2012 तक भारतीय जहाजों की क्षमता अनुसार उसका विश्व में सोलह स्थान था। 12 वीं पंचवर्षीय योजना में भारतीय जहाजों की क्षमता 110 लाख टन पहुँच चुकी थी और क्षमता को बढाकर 124 लाख टन तक पहुँचाने का लक्ष्य है। बाहरवीं योजना में जहाजरानी क्षेत्र के लिए परिव्यय 28,950 करोड़ रूपये रखा गया है। वर्तमान में भारत में विदेशी व्यापार का मात्रा अनुसार 90% और मूल्यानुसार 70% समुद्र मार्गों के माध्यम से होता है। तटीय और सामुद्रिक परिवहन की दृष्टि से बंदरगाहों का विशेष महत्व होता है। इस समय देश में 13 बड़े और लगभग 200 छोटे बंदरगाह है। 1950 में केन्द्रीय और राज्य सरकारे को बंदरगाहों के विकास के बारे में सलाह देने के लिए राष्ट्रीय बंदरगाह बोर्ड की स्थापना की गई थी।

देश में बड़े बंदरगाहो के प्रबन्ध और विकास का उतरदायित्व राज्य सरकारों पर है। भारत के मुख्य बंदरगाहों की क्षमता मार्च 2011 को 67.01 करोड़ टन माल चढ़ाने उतारने की थी। हाल

के वर्षों में नई आर्थिक नीति के अपनाने तथा तीव्र आर्थिक विकास के चलते वर्ष 2002-03 से बंदरगाहो से माल की आवाजाही में 11% की गति से प्रति वर्ष वृद्धि हो रही है।

जहाजरानी के विकास में सरकारी सहयोग :-

भारत सरकार ने जहाजरानी के विस्तार को उच्च प्राथमिकता दी क्योंकि इससे विदेशी मुद्रा की बचत होती है सरकार ने प्रारम्भ में दो जहाजरानी कम्पनियाँ स्थापित की – पूर्वी जहाजरानी निगम (Eastern Shipping corporation) जो आस्ट्रेलिया और सदू –पूर्व में कार्य ,करती थी और दूसरी पश्चिमी जहाजरानी निगम (Western Shipping corporation) जो इंडो-पर्शियन गल्फ ,इंडियन रेडसी और भारत –पोलेन्ड के मार्गों पर कार्य करती थी। 1961 में इन दोनों का विलयन किया गया और भारतीय जहाजरानी निगम की स्थापना की जो वर्तमान में अब विश्व के सभी महत्वपूर्ण समुद्री मार्गों पर कार्य करता है। भारत के पास चार प्रमुख जहाज-निर्माण स्थल है :-वे विशाखापट्टनम ,कोलकत्ता, मुंबई तथा कोची में स्थित है।

14.17 वायु परिवहन (AIR TRANSPORT)

वायु परिवहन ,अन्य किसी भी परिवहन व्यवस्था की अपेक्षा अधिक तीव्र तथा महँगा साधन है। अपेक्षाकृता ऊँची लागत के चलते यह परिवहन साधन माल ढुलाई में नगण्य योगदान देता है जबकि यात्री यातायात में भी अधिक योगदान नहीं है। बहुत अधिक मूल्यवान और हल्की वस्तुओं तथा डाक के यातायात के लिए वायु परिवहन का प्रयोग किया जाता है इसके अतिरिक्त उच्च वर्ग ,राजनीतिज्ञयों डॉक्टरों ,इंजीनियरों, बड़ी औद्योगिक कंपनियों के प्रतिनिधियों तथा व्यापारियों द्वारा यात्री –सेवाओं के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

भारत में नागरिक विमान परिवहन की वास्तविक प्रगति 1920 चालू हुई जब सरकार में कुछ हवाई अड्डे बनाए। नागरिक विमानन –परिवहन विभाग 1927 में स्थापित किया गया। द्वितीय विश्व युद्द के दौरान तथा इसके पश्चात के काल में विमान परिवहन में काफ़ी प्रगति हुई। 1948 में सरकार ने अपनी विमान परिवहन नीति स्थापित की तथा घोषणा की जिसके अनुसार आंतरिक तथा बाहरी सेवाओं को कुछ निजी वाणिज्यिक कम्पनियों की सहायता देने का विश्वास दिलाना था कालान्तर में इन कम्पनियों को भारी नुकसान हुआ जिसके चलते 1953 में सरकार ने वायु-परिवहन निगम अधिनियम (Air Transport Corporation Act.) पास किया तथा नागरिक विमान परिवहन का राष्ट्रीयकरण कर दिया। जिसके अंतर्गत :- आंतरिक वायु सेवा के लिए इण्डियन एयरलाइन्स कारपोरेशन (IAC) तथा विदेशी वायु सेवा के लिए एयर इण्डिया इंटरनेशनल स्थापित की गई। राष्ट्रीयकरण के पश्चात सभी दिशाओं में प्रगति हुई तथा नए हवाईअड्डे बनाए गए। चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान मुंबई ,कोलकत्ता , चेन्नई और दिल्ली में अंतर्राष्ट्रीय हवाईअड्डो के विकास के लिए फरवरी 1972 में इंटरनेशनल एयर पोर्ट्स आथौरिटी ऑफ इण्डिया (IAAAI) की स्थापना की गई। सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 1986 में घरेलू उड़ानों के लिए इस्तेमाल होने वाले हवाईअड्डो के प्रबन्ध के लिए नेशनल एयरपोर्ट् आथौरिटी की स्थापना की गई। 1985 में पवन हंस लि. नाम से हैलीकोप्टर सेवा शुरू की गई (जिसका नाम पवन हंस लिमिटेड है)। आठवीं

पंचवर्षीय योजना के दौरान मार्च 1985 में इंटरनेशनल एयर पोर्ट्स आथौरिटी तथा नेशनल एयरपोर्ट् आथौरिटी को मिलाकर एक ही एयरपोर्ट् आथौरिटी ऑफ इण्डिया (AAI) का गठन किया गया। वायु –परिवहन के क्षेत्र में कई परिवर्तन दसवीं पंचवर्षीय योजना में देखने को मिले जिनमे से एक था :- आंतरिक वायु परिवहन सेवाओं को निजी क्षेत्रों के लिए खोला गया जिससे वायु परिवहन की सुविधाओं का तीव्र विकास हुआ। वायु सेवाओं की बढ़ती मांग को ध्यान में रखते हुए बारहवीं योजना में 67,500 करोड़ रूपये के निवेश का लक्ष्य रखा गया है जिनमे निजी क्षेत्र का अनुमानित हिस्सा 50,000 करोड़ रूपये है। 27 अगस्त 2007 को , 1953 के भारत सरकार के वायु –परिवहन निगम अधिनियम को निरस्त करने के उपरांत निजी क्षेत्र ने भी वायु परिवहन के क्षेत्र में कदम रखा। और इसी दिन एयर इण्डिया तथा इण्डियन एयरलाइन्स का विलय करके नेशनल एविएशन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड (NACIL) का गठन किया गया। वर्तमान में देश में सार्वजनिक क्षेत्र में तीन कम्पनियां कार्यरत है –NACIL, एयर इण्डिया चार्ट्स लिमिटेड तथ अलायंस एयर। इसके अतिरिक्त ,निजी क्षेत्र में 06 अनुसूचित कंपनियां कार्यरत है। छोटे शहरों और एक ही क्षेत्र के विभिन्न इलाको को आपस में जोड़ने के उद्देश्य से अनुसूचित एयरलाइन्स का एक नया वर्ग "शड्यूल्ड एयर ट्रांसपोर्ट (रीजिनल)" के नाम से शुरू किया गया है।

भारत में संचार प्रणाली (Communication System in India):-

संचार प्रणाली में डाक एवं तार टेलीसंचार व्यवस्था ,दूरवीक्षण और सूचना सेवाएँ शामिल है। बाजारों के बारे में आवश्यक सूचना उपलब्ध कराकर और आवश्यक प्रेरणा देकर भी, संचार प्रणाली क्रेताओ एवं विक्रेताओं को प्रभावी रूप से जोड़ती है और इस प्रकार अर्थव्यवस्था को त्वरित करती है। यह सूचनाओं को एक से दूसरे स्थान तक भेजने का कार्य करता है। आर्थिक विकास के लिए अच्छी सूचना प्रणाली का विकास अत्यंत ही आवश्यक है। संचार के मुख्य साधन है :- डाक सेवाएँ, टेलीफोन सेवाएँ , टेलीप्रिंटर , रेडियो व टेलीविजन इंटरनेट इत्यादि।

14.5 डाक सेवाएँ (Postal Services) :-

भारत में आधुनिक डाक व्यवस्था की स्थापना 1837 में हुई जब जन साधारण के लिए डाक सेवाओं को आरम्भ किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही वास्तव मे इस सेवा का वृहद स्तर पर विकास संभव हो सका तथा इसे आधारित संरचना के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया गया। जहाँ 1951 में डाक घरों की संख्या 23,344 थी अब बढकर 1,54,856 हो गई है तथा अब औसतन 7,815 लोगों तथा 21.25 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल को एक डाकघर आपनी सेवाएँ प्रदान करता है। इसी प्रकार भारत की डाक व्यवस्था विश्व में सबसे बड़ी डाक व्यवस्था है। भारत सरकार के डाक सेवा विभाग का दीर्घकालीन लक्ष्य प्रत्येक गाँव से 03 कि.मी. के अंदर एक डाकघर उपलब्ध कराना है। भारत सरकार के डाक विभाग द्वारा पत्रों के सुचारु रूप से देश के विभिन्न स्थानों पर आदान –प्रदान हेतु 1972 में वैज्ञानिक रूप से विकसित 06 अंको वाले पोस्टल पिन कोड (PIN) प्रणाली को लागू किया गया। जल्द डाक सेवा (Quick Mail Services) को 1975 में

प्रारम्भ किया गया। पत्रों तथा महत्वपूर्ण सूचनाओं के तीव्र तथा त्वरित आदान-प्रदान हेतु 1 अगस्त 1986 से स्पीड पोस्ट सर्विस को प्रारम्भ किया। जिसके अधीन डाक को एक निश्चित समयावधि में पहुँचाने की व्यवस्था है सर्विस में कोई कमी होने पर पैसे वापिस लौटाने का प्रावधान हैं। डाक घर अन्तर्देशीय डाक संचार सेवाओं के अतिरिक्त कई प्रकार के बचत खातों को भी संचालित करतें है। बैंकिंग क्षेत्र में इस विभाग ने कदम रखते हुए अपने ATM मशीने लगवानी प्रारम्भ कर दी है।

अन्य सेवाएँ

भारतीय तार विभाग विश्व की सबसे पुरानी सार्वजनिक उपयोगिता (Public Utility) है। भारत में तार घरों की संख्या जो 1951 में 8,200 थी बढकर अब 30,000 के करीब हो गई है। फोनोग्राम सेवा (Phonogram Service) जिसके द्वारा टेलीफोन से तार भेजे और प्राप्त किए जा सकते है , टेलेक्स सेवा (Telex Service) जिससे छपे हुए सन्देश भेजे या प्राप्त किया जा सकते है, टेलीफोन सेवा के भारी विस्तार और प्रत्यक्ष ट्रंक डायलिंग (Direct Trunk Dialling) ये सब सुविधाएँ अब सामान्य जनता को उपलब्ध है।

14.6 दूरसंचार (Telecommunication) :-

एक उत्तरोतर ज्ञान सघन होते हुए विश्व में सामाजिक आर्थिक विकास के लिए संचार एक आवश्यक बुनियादी सुविधा के रूप में विकसित हुआ है। देश के सभी भागों में दूरसंचार सेवाओं की पहुँच एक अभिनव और तकनीकी रूप से संचालित समाज के विकास का अभिन्न अंग है। अध्ययनों में यह दर्शाया गया है कि एक देश के सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर का इन्टरनेट तथा मोबाईल सेवाओं के साथ एक सकारात्मक/प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। पिछले कुछ वर्षों में सरकार द्वारा किए गए ठोस उपायों के परिणाम के रूप में, भारतीय दूरसंचार क्षेत्र में तेजी से वृद्धि हुई है तथा चीन के बाद यह दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा नेटवर्क बन गया है । दिसम्बर 2014 तक भारत में 944.01 मिलियन वायरलेस टेलीफोन कनेक्शनों समेत 971.01 मिलियन टेलीफोन कनेक्शन है। देश में शहरी तथा ग्रामीण टेलीघनत्व क्रमश: 147.75% तथा 46.14% है जबकि समग्र भारत में यह 77.59 प्रतिशत है। देश में उपलब्ध टेलीफोनों में वायरलैस टेलीफोनों का हिस्सा दिसम्बर 2014 तक 97.22 प्रतिशत के आस-पास है। दूरसंचार सेवा प्रदान करने वाली विभिन्न सार्वजनिक व निजी कंपनियों की हिस्सेदारी क्रमश: 10.85% तथा 89.15% है। दूरसंचार का विस्तृत विवरण हम निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा भी समझ सकते है :-

तालिका 14.14

क्र.सं.	मद		मार्च के अंत तक			
			मार्च 2012	मार्च 2013	मार्च 2014	दिसम्बर 2014
01.	टेलीफोन की की संख्या (मिलियन में)	वायरलाईन	32.17	30.12	28.50	27.00
02.		वायरलैस	919.17	867.81	904.52	944.01
03.		ग्रामीण	330.83	349.21	377.78	398.73
04.		शहरी	620.52	548.80	555.23	572.28

05.		**समग्र (1+2/3+4)**	**951.35**	**898.02**	**933.02**	**971.01**
06.	टेलीघनत्व (टेलीफोन प्रति 100 व्यक्तियों पर)	ग्रामीण	39.26	41.05	44.01	46.14
07.		शहरी	169.17	146.64	145.46	147.75
08.		समग्र	78.66	73.32	75.23	77.59
09.	हिस्सेदारी (प्रतिशत में)	वायरलैस	96.62	96.64	96.95	97.22
10.		सार्वजनिक	13.69	14.49	12.87	10.85
11.		निजी	86.31	85.51	87.13	89.15
12.	पिछले वर्षों की तुलना में कुल टेलीफोनों की वृद्धि (प्रतिशत में)		12.41	-5.61	3.90	4.07*

* कुल टेलीफोनों में वृद्धि का प्रतिशत वर्ष 2014 के 09 महीनों को प्रदर्शित करता है,

स्त्रोत:- वार्षिक रिपोर्ट 2014-15, दूरसंचार विभाग संचार एवं सूचना प्रोद्यौगिकी मंत्रालय,भारत सरकार, पृष्ठ संख्या-03]

टेलिकॉम रेग्युलेटरी अथोरिटी ऑफ इण्डिया (TRAI) या ट्राई :-

भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण (ट्राई) की स्थापना ट्राई अधिनियम, 1997 के तहत 20 फरवरी 1997 को की गई। तदुपरांत प्रसारण और केबल सेवाओं को भी "दूरसंचार सेवा " की परिभाषा के दायरे में लाया गया था। भारतीय दूरसंचार विनियामक का लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण और केबल सेवाओं की विकास सम्बन्धी स्थितियों को ऐसे तरीके और गति से विकसित किया जाए जिससे भारत उभरते हुए वैश्विक सूचना समाज में अग्रणी भूमिका अदा कर सके।

नई दूर संचार नीति1999 :-

सरकार ने 1999 में नई दूरसंचार नीति की घोषणा की। इस नीति के अंतर्गत सरकार ने राष्ट्रीय लम्बी दूर सेवा (National Long Distance Service) को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया। 13 अगस्त 2000 से इन सेवा प्रदायको की संख्या पर कोई पाबन्दी नहीं है। इस नई दूरसंचार नीति के चलते दूरसंचार के क्षेत्र में निजीकरण की प्रक्रिया अत्याधिक तीव्र हुई तथा इसके परिणाम स्वरूप दिसम्बर 2014 में कुल टेलीफोनों में निजी क्षेत्र का हिस्सा 89.1 प्रतिशत हो गया जबकि 2004 में यह हिस्सा 39.2 प्रतिशत था।

राष्ट्रीय दूरसंचार नीति(2012) :-

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2012 में दूरसंचार के क्षेत्र में एक नवीन नीति जारी की गई जिसे "राष्ट्रीय दूरसंचार नीति 2012" का नाम दिया गया जिसके प्रमुख लक्ष्य निम्न है :-

(i) NTP-2012 का लक्ष्य भारतीय दूरसंचार व्यवस्था की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि करना।

(ii) भारतीय दूरसंचार व्यवस्था को विश्व में उच्च स्थान पर स्थापित करने के प्रयास करना।

(iii) दूरसंचार के क्षेत्र में नवीनतम प्रोद्यौगिकी के विकास को आधार बनाकर एक साँझे प्लेटफार्म पर बहुत-सी विभिन्न सेवाएँ प्रदान करना है।

12 वीं पंचवर्षीय योजना तथा दूरसंचार विकस:

बाहरवीं पंचवर्षीय योजना में दूरसंचार क्षेत्र के लिए निम्नलिखित उद्देश्य रखे गए है :-

(i) 2017 तक 120 करोड़ मोबाईल कनेक्शन प्रदान करना।

(ii) सभी ग्रामीण क्षेत्रों में मोबाईल सेवाओं का विस्तार करते हुए दूरसंचार घनत्व को 2017 तक 70 प्रतिशत तक पहुँचाना तथा

(iii) 2017 तक 17.50 करोड़ ब्रोड्बैंड कनेक्शन उपलब्ध कराना।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति (एफ डी आई) :-

एफ डी आई प्रवाह को आकर्षित करने तथा दूरसंचार क्षेत्र को और अधिक आकर्षक तथा निवेशक अनुकूल बनाने हेतु सरकार ने इस क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को 74 प्रतिशत से बढाकर 100 प्रतिशत कर दिया है इस उपाय से दूरसंचार लाइसेंस धारियों को इक्विटी मजबूत बनाने तथा बाज़ार से घरेलु और साथ ही विदेशी कर्ज जुटाने के लिए सुविधा होगी ।

राष्ट्रीय ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क (एन.ओ.एफ.एन.)

ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क प्रमुख रूप से राज्यों की राजधानियों, जिलो तथा इलाको तक पहुँच गया है। देश के सभी 2.5 लाख ग्राम पंचायतो को जोड़ने के उद्देश्य से सरकार द्वारा " राष्ट्रीय ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क" परियोजना को मंजूरी दी गई। ग्रामीण क्षेत्रों में दूरसंचार सेवा प्रदाताओं को मोबाईल, इन्टरनेट तथा केबल टी.वी. जैसी भेदभाव रहित नेटवर्क पहुँच उपलब्ध कराई जायेगी। इस परियोजना को भारत ब्राडबेंड नेटवर्क लिमिटेड (बी.बी.एन.एल.) के द्वारा चलाया जा रहा है। अजमेर (राजस्थान) के अरियन, उत्तरी त्रिपुरा के पनिसागर ब्लाक तथा विशाखापट्टनम (आन्ध्रप्रदेश) के परावदा ब्लाक की सभी 59 ग्राम पंचायतों को कनेक्ट किया जा चुका है दिसम्बर 2014 के अंत तक परियोजना के तहत वितरित राशि 2010.00 करोड़ रूपये है। दिसम्बर 2016 तक एन ओ एफ एन परियोजना को पूरा किए जाने का लक्ष्य है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन :-

2007-08 में एकीकृत पहुँच सेवाओं (Unified Access Services या UAS) लाइसेंसों तथा 2G स्पेक्ट्रम (2G Spectrum) लाइसेंसों के आवंटन को लेकर टेलिकॉम नीति की काफ़ी आलोचना हुई है। महालेखा निरीक्षक ने अनुमान लगाया है कि आवंटन में की गई व्यापक गडबड़ी के कारण सरकार को 67,634 करोड़ रूपये से 1,76,645 करोड़ के बीच हानि उठानी पड़ी है। CAG के अनुसार, इस भारी हानि के निम्नलिखित कारण थे:-

(i) UAS लाइसेंसों की बिक्री 2008 की बाज़ार कीमतों के आधार न करके 2001 की कीमतों पर की गई। जबकि सात वर्ष की अवधि में कीमतों में कई गुणा वृद्धि हुई थी जिससे सरकार को भारी हानि का सामना करना पड़ा।

(ii) 122 नए आवंटित लाइसेंसों में से 70 लाइसेंस उन कम्पनियों को दिये गए जो टेलीकाम विभाग (DOT) द्वारा निर्धारित योग्यता शर्तों को भी पूरा नहीं करती थी। इनके आवेदन पत्रों की ठीक प्रकार जाँच पड़ताल नहीं की जा सकी तथा इसके साथ न ही कोई स्पष्ट तथा पारदर्शी विधि को अपनाया गया।

(iii) टेलिकॉम विभाग के मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदित लाइसेंसिंग नीति के केवल प्रथम चरण के आधार पर UAS लाइसेंसों को आवंटित कर दिया जबकि लाइसेसिंग नीति के द्वितीय चरण में

स्पेक्ट्रम की कीमतों के उचित निर्धारण के पश्चात ही लाइसेंसों को आवंटित किया जाना चाहिए था।

(iv) UAS लाइसेंस ऐसी कम्पनियों को आवंटित किए गए जो पहले से ही काम कर रही थी और अपने कोटे से अधिक लाइसेंस भी पुन: प्राप्त करने में वे सफल रही जो की दोषपूर्ण आवंटन को दर्शाती है।

इन बातों से सिद्द होता है कि UAS लाइसेंसों को जारी करने और 2G स्पेक्ट्रम के आवंटन में पारदर्शिता बिल्कुल नहीं थी। इसलिए एक जनहित याचिका पर निर्णय देते हुए , 02 फरवरी 2012 को उच्च न्यायालय ने तत्कालीन संचार मंत्री ए. राजा द्वारा ' पहले आओ ,पहले पाओ' की नीति पर आवंटित सभी 122 लाइसेंस को रद्द कर दिया ये नौ कम्पनियों को आवंटित किए गए थे, जिनमे भारतीय कंपनियों तथा विदेशी कम्पनियों की कुछ संयुक्त कंपनियाँ भी थी। इन निरस्त 2G स्पेक्ट्रम की नीलामी की प्रक्रिया पुन: 04 मार्च 2015 से प्रारम्भ किया जाना निर्धारित है।

14.20 मूल्यांकन प्रश्न

1 भारत में परिवहन व्यवस्था की व्याख्या कीजिये।

2 1951 के पश्चात परिवहन प्रणाली का विकास व्याख्या कीजिये।

3 निम्न पर टिप्पणी लिखिये _-

I. जल परिवहन (WATER TRANSPORT)

II. वायु परिवहन (AIR TRANSPORT)

III. दूरसंचार (Telecommunication)

IV. 12वीं पंचवर्षीय योजना तथा दूरसंचार विकास

4. आधारिक सरंचना से आप क्या समझते है ? भारत में इसके विकास का आलोचनात्मक मूल्याकंन किजिए।
5. ऊर्जा संकट से आप क्या समझते है ? इसके कारणों की व्याख्या करते हुए इसके समाधान के उपाय सुझाइए।
6. भारत में परिवहन व्यवस्था के विकास एवं वितरण को समझाए।
7. सड़क परिवहन क्या है ? इसके लाभों का वर्णन किजिए।
8. रेल परिवहन क्या है ? इसके विकास एवं इसके समक्ष मौजूद चुनौतियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
9. " सड़क तथा रेल परिवहन एक दूसरे के पूरक है न कि प्रतियोगी " समझाइए।
10. गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों की भारत में उपलब्धता तथा वितरण को समझाइए।

14.21 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. रूद्र दत्त एवं के.पी.एम. : इंडियन इकॉनोमी

सुन्दरम
2. भारत सरकार, योजना आयोग : छठी व सातवीं एवं आठवीं पंचवर्षीय योजनाओं संबंधी दस्तावेज
3. रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया : रिपोर्ट ऑन करेन्सी एण्ड फाईनेन्स

इकाई 15

भारत में नियोजन एवं विकास प्रक्रिया-नियोजित विकास की समीक्षा

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 पंचवर्षीय योजनाओं के उददेश्य
15.3 नियोजित आर्थिक विकास की विशेषताएँ
15.4 नियोजन की प्रमुख उपलब्धियां
15.5 नियोजन के कुछ महत्वपूर्ण सबक
15.6 नियोजित विकास के अप्राप्त उद्देश्य
15.7 नियोजित विकास की विफलताएँ
15.8 सारांश
15.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

* जान सकेंगे कि भारत में नियोजन के क्या लक्ष्य रहे हैं?
* समझ सकेंगे कि इस काल में हमारी उपलब्धियों में क्या कमियां रहीं।

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई में यह जानने का प्रयास करेंगे कि भारत में स्वतंत्रता के बाद पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विकास की उपलब्धियां क्या व कितनी रहीं? विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के प्रमुख उद्देश्य क्या रहे हैं एवं किस सीमा तक उन्हें प्राप्त किया गया है? इसी के साथ नियोजन की कमियों एवं विफलताओं पर भी आपका ध्यान आकृष्ट करेंगे।

स्वतंत्रता से पहले देश की आर्थिक समस्याओं के निवारण एवं आर्थिक विकास के लिए कुछ योजनाओं का निर्माण एवं प्रकाशन किया गया था। इन योजनाओं में देश के आठ प्रमुख उद्योगपतियों द्वारा प्रकाशित 'बम्बई योजना', भारतीय श्रम-संघ द्वारा निर्मित एवं प्रकाशित 'जन योजना' अखिल भारतीय विनिर्माणक संगठन द्वारा प्रकाशित 'विश्वेश्वरैया-योजना' तथा गांधीजी ने

आर्थिक विचारों पर आधारित श्रीमन्नारायण द्वारा निर्मित 'गांधीवादी योजना' प्रमुख है लेकिन इन सभी योजनाओं का केवल सेद्धांतिक महत्व ही है क्योंकि इनमें से किसी भी योजना का क्रियान्वयन नहीं हो सका।

अगस्त 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर सर्वप्रथम औद्योगिक क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन का क्रम प्रारंभ हुआ। देश की प्रथम औद्योगिक नीति की घोषणा सरकार द्वारा अप्रैल, 1948 में की जिसने मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाते हुए आर्थिक विकास के ढाँचे की भावी रूपरेखा प्रस्तुत की गई। 26 जनवरी 1950 से स्वतंत्र भारत का संविधान लागू हुआ जिससे देशवासियों को मौलिक अधिकारों की प्राप्ति एवं राज्य को नीति निर्देशक तत्वों के अनुरूप देश का भावी विकास करने का पथ प्रशस्त किया गया। मार्च 1950 में सरकार ने योजनाओं के निर्माण एवं सीमित साधनों के कुशलतम उपयोग के लिए पं जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में 'योजना आयोग' की स्थापना की। तभी से योजना आयोग द्वारा देश के आर्थिक विकास एवं आर्थिक-सामाजिक शोषण से मुक्ति के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया जा रहा है। हमारे देश में 1 अप्रैल 1951 से प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरूआत हुई। 31 मार्च 1990 को सातवीं पंचवर्षीय योजना समाप्त हुई है एवं आठवीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1992 से 1997 तक पूरी हुई। वर्तमान मे नौवीं पंचवर्षीय योजना चल रही है। यह अवधि योजनाओं के विकास के लाभों का मूल्यांकन करने के लिए पर्याप्त है। इस अवधि के दौरान योजना प्रक्रिया को कुछ संकटों का सामना भी करना पड़ा फिर भी योजना आयोग द्वारा योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन का क्रम आज तक अनवरत जारी है जो तालिका – 15.1 से स्पष्ट है।

तालिका 15.1 भारत की योजनाएँ

योजना	अवधि	सार्वजनिक क्षेत्र का योजना परिव्यय (करोड़ रुपये)
पहली पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 51 से 31 मार्च 56	1960
दूसरी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 56 से 31 मार्च 61	4600
तीसरी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 61 से 31 मार्च 66	8577
तीन वार्षिक योजनाएँ	1 अप्रैल 66 से 31 मार्च 69	6626
चौथी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 69 से 31 मार्च 74	15,779
पांचवी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 74 से 31 मार्च 79	39,426
वार्षिक योजना	1 अप्रैल 79 से 31 मार्च 80	12,177
छठी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 8० से 31 मार्च 85	1,10,467
सातवीं पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 85 से 31 मार्च 90	1,78,570
आठवीं पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 92 से 31 मार्च 97	4,34,100
नौवीं पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 97 से 31 मार्च 2002	8,59,200
दसवी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 2002 से 31 मार्च 2007	15,25,639
ग्यारवी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 2007 से 31 मार्च 2012	36,46,718

इस प्रकार तीसरी पंचवर्षीय योजना के तुरंत बाद चौथी पंचवर्षीय योजना प्रारंभ नहीं हो सकी एवं तीन वर्षों के लिए (1966-69) वार्षिक योजनाएँ बनाई गई। इस अवधि को 'योजना से छुट्टी' के नाम से भी जाना जाता है। तीसरी योजना की अवधि में 1962 में चीन का आक्रमण हुआ, 1965 में पाकिस्तान से युद्ध हुआ एवं 1965-66 में भयंकर सूखा पड़ा। इनसे भारतीय अर्थव्यवस्था पर भारी दबाव पड़ा एवं चौथी योजना को निर्धारित समय पर शुरू नहीं किया जा सका। इसी प्रकार पांचवी योजना के दौरान केन्द्र में जनता सरकार के आने से पांचवी योजना को एक वर्ष पूर्व मार्च 1978 में ही समाप्त कर दिया गया एवं 1978-83 की अवधि के लिए छठी योजना बनाई गई। लेकिन जनता सरकार के पतन के बाद पुनः 1980-85 की अवधि के लिए नई छठी योजना बनाई गई। अतः 1978-79 के योजना-परिव्यय को पांचवी योजना में सम्मिलित किया जाता है एवं 1979-80 के परिव्यय को अलग से वार्षिक योजना के रूप में दर्शाया जाता है।

15.2 पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य

इकाई के इस भाग में हम विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन करेंगे।

प्रथम योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे :—

1. देश के विभाजन से प्रभावितअर्थव्यवस्था का पुनरुत्थान करना
2. खाद्यान्न संकट को दूर करना एवं कच्चे माल की स्थिति को सुधारना।
3. मुद्रा स्फीति रोक लगाना।
4. आर्थिक पूंजी के निर्माण के लिए सड़क का निर्माण नहरों, तथा जलविद्युत एवं सिंचाई योजनाओं का निर्माण करना ताकि भविष्य में भारी विकास योजनाएं बनाई जा सकें।
5. विकास कार्यक्रमों के कुशलतम क्रियान्वयन के लिए उपयुक्त प्रशासनिक तंत्र की स्थापना करना।

द्वितीय योजना के प्रमुख उद्देश्य

पं नेहरू के समाजवादी ढंग के समाज की स्थापना के स्वप्न को साकार करने के लिए 1956 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा के साथ द्वितीय योजना के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए :—

1. लोगों का जीवन स्तर सुधारने के लिए राष्ट्रीय आय में तेजी से वृद्धि करना,
2. बुनियादी एवं भारी उद्योगों की स्थापना करते हुए देश का तेजी से औद्योगिकीकरण करना,
3. रोजगार के अवसरों का तेजी से विस्तार करना तथा,
4. आय तथा धन की असमानताओं में कमी करना।

तृतीय योजना के प्रमुख उद्देश्य

इस योजना के निर्माण के समय यह स्वीकार किया किया गया कि कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास को प्राथमिकता दिए बगैर देश का आर्थिक विकास संभव नहीं है। इसलिए

तृतीय योजना का लक्ष्य आत्म निर्भर एवं स्वयं-स्फूर्त अर्थव्यवस्था रखा गया। इसके साथ निम्नलिखित उद्देश्य भी रखे गए:

1. राष्ट्रीय आय में पांच प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करना,
2. खाद्यान में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना,
3. आधारभूत उद्योगों, जैसे इस्पात, रसायन, ईंधन तथा ऊर्जा का विकास व विस्तार करना,
4. मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग करने के लिए रोजगार के अवसरों में पर्याप्त विस्तार करना,
5. लोगों को अधिक समान अवसर प्रदान करना एवं आय तथा धन की असमानताओं में कमी करना।

चौथी योजना के उद्देश्य

इस योजना में 'स्थिरता के साथ विकास' एवं आत्मनिर्भरता की प्राप्ति की बात प्रमुखता से कही गई। इसके लिए निम्नलिखित उद्देश्य रखे गए—

1. राष्ट्रीय आय में 5.5 प्रतिशत आर्थिक वृद्धि दर प्राप्त करना,
2. मुद्रा-स्फीति पर नियंत्रण के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था पर अंकुश लगाना,
3. आत्मनिर्भरता प्राप्त करने, निर्यात बढ़ाना एवं विदेशी सहायता को कम करना
4. सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता प्राप्त करने के लिए आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को कम करना,
5. रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराना।

पांचवीं योजना के प्रमुख उद्देश्य

इस योजना में 'गरीबी उन्मूलन' एवं 'आत्म-निर्भरता की प्राप्ति' की बात जोर देकर कही गई, जिनके लिए निम्नलिखित उददेश्य रखे गए—

1. सकल राष्ट्रीय उत्पादन में 5.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करना,
2. उत्पादक रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना,
3. न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक राष्ट्रीय कार्यक्रम की शुरुआत करना ,
4. सामाजिक कल्याण का विस्तृत कार्यक्रम शुरू करना,
5. आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं का सरकारी संग्रहण एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार करना ताकि निर्धन वर्गों को ये वस्तुएं उचित मूल्यों पर उपलब्ध हो सकें,
6. निर्यात संवर्द्धन एवं आयात प्रतिस्थापन पर जोर देना,
7. सामाजिक, आर्थिक और क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिए संस्थागत, राजकोषीय एवं अन्य आवश्यक उपाय अपनाना,
8. गरीबी उन्मूलन की विकास विधि के रूप में घरेलू उत्पादन की दर को बढ़ाना एवं जनसंख्या की वृद्धि दर को घटाना।

छठी योजना के प्रमुख उद्देश्य

1977 में केन्द्र में जनता सरकार के आने से पांचवीं योजना को निर्धारित समय से एक वर्ष पूर्व ही समाप्त घोषित कर दिया गया एवं 1978-83 की अवधि के लिए, जनता सरकार द्वारा छठी योजना प्रारंभ की गई। परंतु जनता सरकार के पतन के बाद कांग्रेस सरकार ने भी जनता सरकार की छठी योजना को समाप्त कर दिया और 1980-85 की अवधि के लिए नई छठी योजना लागू की, जिसके निम्नलिखित उददेश्य निर्धारित किए गए:-

1. उत्पादकता में वृद्धि के साथ अर्थव्यवस्था की विकास दर में पर्याप्त वृद्धि करना,
2. आथिर्क एवं प्राविधिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए आधुनिकीकरण की प्रवृत्तियों को सुदृढ़ बनाना,
3. ऊर्जा के संरक्षण एवं कुशल उपयोग के साथ ऊर्जा के घरेलू साधनों का तेजी से विकास करना,
4. न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम द्वारा पिछड़े कमजोर एवं सामान्य जनता के जीवन स्तर में निर्धारित अवधि में राष्ट्रीय दृष्टि से स्वीकृत स्तर प्राप्त करना,
5. गरीबी एवं बेरोजगारी में उत्तरोत्तर कमी लाना,
6. आय एवं धन की असमानता में कमी करने के लिए सार्वजनिक नीतियों एवं सेवाओं के पुनर्वितरण के आधार को देश की निर्धन जनसंख्या के पक्ष में सुदृढ़ करना,
7. क्षेत्रीय असमानताओं में उत्तरोत्तर कमी करना,
8. जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए स्वैच्छिक स्वीकृति के आधार पर प्रयास करना,
9. परिस्थितिकीय एवं पर्यावरणीय परिसंपतियों का संरक्षण एवं सुधार करना,
10. उपयुक्त शिक्षा एवं संचार आदि के द्वारा विकास की प्रक्रिया में जनता के सभी वर्गों की सहभागिता को बढ़ावा देना।

सातवीं योजना के प्रमुख उद्देश्य

इस योजना में खाद्यात्र, रोजगार एवं उत्पादकता पर विशेष जोर दिया गया है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए योजना में निम्नलिखित कार्य-नीतियों का उल्लेख किया गया है।

1. अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादकता में वृद्धि के साथ, विद्यमान उत्पादन क्षमता का गहन उपयोग करना,
2. अधसंरचना संबंधी सुविधाओं की कमी को दूर करना,
3. विनियोजन प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना,
4. प्रशासनिक कार्यकुशलता को बढ़ाना,
5. आधुनिक तकनीक एवं विज्ञान का समुचित समन्वय करते हुए विकास करना,
6. निर्धन जनसंख्या, पिछड़े क्षेत्रों एवं राज्यों की उत्पादकता एवं आय में वृद्धि के विशेष प्रयास करना एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को जारी रखना,
7. स्वास्थ्य एवं शिक्षा सहित आधारभूत सुविधाओं का गुणात्मक सुधार करते हुए विस्तार करना,

8. जनसंख्या वृद्धि की दर को तेजी से कम करना,

इस प्रकार हमारे देश की पंचवर्षीय योजनाओं में विकास एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक साधनों के गरीबों के पक्ष में पुनर्वितरण पर भी जोर दिया गया है। इसके लिए गरीबी उन्मूलन, बेकारी निवारण एवं कीमत-स्थायित्व की बात कही जाती रही है तथा आत्मनिर्भरता एवं आधुनिकीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रमुख उद्देश्य (1992-97)

आठवीं योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्मलिखित हैं।

1. अर्थव्यवस्था का तेजी से बहुमुखी विकास
2. राष्ट्रीय आय में वृद्धि
3. गरीबी दूर करना,
4. बेरोजगारों को ऊंचे आय स्तर पर उत्पादक रोजगार उपलब्ध कराना,
5. विभिन्न क्षेत्रों एवं वर्गों के बीच विषमताओं में कमी लाना
6. जन साधारण की जरूरतों को पूरा करना एवं उनकी जीवनकोटि में सुधार लाना,
7. विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के लिए प्रयास करना।

नौवीं पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य (1997-2002)

नौंवी पंचवर्षीय योजना के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं-

1. गरीबी निवारण एवं पर्याप्त उत्पादक रोजगार के निर्माण हेतु कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता,
2. स्थाई मूल्यों के साथ-साथ अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर में तेजी लाना,
3. सभी के लिए खाद्य एवं पोषाहार सुरक्षा,
4. सुरक्षित पेयजल, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा, प्राथमिक शिक्षा और आवास आदि मूलभूत सुविधाएं एक निश्चित समयावधि में सबके लिए उपलब्ध कराना।
5. जनसंख्या नियंत्रण,
6. जन भागीदारी द्वारा विकास प्रक्रिया में पर्यावरणीय सुरक्षा सुनिश्चित करना,
7. महिलाओं एवं कमजोर वर्गों का सामाजिक उत्थान,
8. पंचायती राज संस्थाओं, सहकारिताओं, स्वंयसेवी संस्थाओं को प्रोत्साहन,
9. स्वायत्तता निर्माण पर बल देना,

दसवीं पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य (2002-2007)

1. योजना काल के दौरान जी. डी. पी. में वृद्धि दर 8 प्रतिशत पहुँचाना।
2. निर्धनता अनुपात को वर्ष 2007 तक कम करके 20 प्रतिशत और वर्ष 2012 तक कम करके 10 प्रतिशत तक लाना।
3. वर्ष 2007 तक प्राथमिक शिक्षा की पहुँच को सर्वव्यापी बनाना।
4. वर्ष 2001 और 2011 के बीच जनसंख्या की दसवर्षीय वृद्धि दर को 16.2 प्रतिशत तक कम करना।

5. साक्षरता में वृद्धि कर इसे वर्ष 2007 तक 72 प्रतिशत और वर्ष 2012 तक 80 प्रतिशत करना।
6. वर्ष 2007 तक वनों से घिरे क्षेत्र को 25 प्रतिशत और वर्ष 2012 तक 33 प्रतिशत बढ़ाना।
7. वर्ष 2012 तक पीने योग्य पानी की पहुँच सभी ग्रामों में क़ायम करना।
8. सभी मुख्य नदियों को वर्ष 2007 तक और अन्य अनुसुचित जल क्षेत्रों को वर्ष 2012 तक साफ़ करना।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य (2007-2012)

1. जीडीपी वृद्धि दर को 8% से बढ़ाकर 10% करना और इसे 12वीं योजना के दौरान 10% पर बरकार रखना ताकि 2016- 17 तक प्रति व्यक्ति आय को दोगुना किया जा सके।
2. कृषि आधारित वृद्धि दर को 4% प्रतिवर्ष तक बढ़ाना।
3. रोज़गार को 700 लाख नए अवसर पैदा करना। साक्षर बेरोज़गारी की दर को 5% से नीचे लाना।
4. 2011 से 2012 तक प्राथमिक स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की दर में 2003-04 के 52.2% के मुकाबले 20% की कमी करना।
5. 7 वर्षीय या अधिक के बच्चों व व्यक्तियों की साक्षरता दर को 85% तक बढ़ाना।
6. प्रजनन दर को घटाकर 2.1 के स्तर पर लाना।
7. बाल मृत्यु दर को घटाकर 28 प्रति 1000 व मातृ मृत्यु दर को '1 प्रति 1000' करना।
8. 2009 तक सभी के लिए पीने का स्वच्छ पानी उपलब्ध कराना।
9. 0-3 वर्ष की आयु में बच्चों के बीच कुपोषण के स्तर में वर्तमान के मुकाबले 50% तक की कमी लाना।
10. लिंग अनुपात को बढ़ाकर 2011-12 तक 935 व 2016-17 तक 950 करना
11. सभी गाँवों तक बिजली पहुँचाना।
12. नवंबर 2007 तक प्रत्येक गाँव में टेलीफोन सुविधा मुहैया कराना।
13. देश के वन क्षेत्र में 5% की वृद्धि कराना।
14. देश के प्रमुख शहरों में 2011-12 तक 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के मानको के अनुरूप वायु शुद्धता का स्तर प्राप्त करना।
15. 2016-17 तक ऊर्जा क्षमता में 20% की वृद्धि करना।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017)

1. योजना आयोग ने वर्ष 2012 से 2017 तक चलने वाली 12वीं पंचवर्षीय योजना में सालाना 10 फीसदी की आर्थिक विकास दर हासिल करने का लक्ष्य निर्धारित किया है ।

2. वैश्विक आर्थिक संकट का असर भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा है। इसी के चलते 11 पंचवर्षीय योजना में आर्थिक विकास दर की रफ्तार को 9 प्रतिशत से घटाकर 8.1 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया है।
3. सितंबर, 2008 में शुरू हुए आर्थिक संकट का असर इस वित्त वर्ष में बड़े पैमाने पर देखा गया है। यही वजह थी कि इस दौरान आर्थिक विकास दर घटकर 6.7 प्रतिशत हो गई थी। जबकि इससे पहले के तीन वित्त वर्षो में अर्थव्यवस्था में नौ फीसदी से ज्यादा की दर से आर्थिक विकास हुआ था।
4. वित्त वर्ष 2009-10 में अर्थव्यवस्था में हुए सुधार से आर्थिक विकास दर को थोड़ा बल मिला और यह 7.4 फीसदी तक पहुंच गई।
5. भारत सरकार ने चालू वित्त वर्ष में इसके बढ़कर 8.5 प्रतिशत तक होने का अनुमान लगाया।

15.3 नियोजित आर्थिक विकास की प्रमुख विशेषताएँ

भारत में पिछले सात दशकों में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से जो आर्थिक विकास हुआ, इस संबंध में दो प्रमुख विचारधारा हैं। पहली विचार धारा के अनुसार देश ने पर्याप्त आर्थिक विकास किया है एवं भारत 'विकासशील देशों में सबसे अधिक विकसित देशों की श्रेणी मे' आ गया है। दूसरी विचारधारा के अनुसार देश की अधिकांश जनसंख्या को विकास के लाभ की प्राप्ति नहीं हुई है। इस प्रकार पहली विचारधारा उत्पादन के भौतिक पहलू से संबंधित है जबकि दूसरी विचारधारा उत्पाद के वितरण पहलू से प्रभावितहै। देश की योजनाओं का उददेश्य न केवल 'राष्ट्रीय-रोटी' के आकार को बढ़ाना है अपितु इस 'रोटी' में सभी वर्गों को समुचित हिस्सा प्रदान करना भी है ताकि सामाजिक न्याय की प्राप्ति के साथ आर्थिक असमानताओं में कमी हो सके।

भारतीय नियोजनकर्ताओं के विकास के निम्मलिखित तीन पथों में अंतिम पथ-भारी उद्योगों के विकास से औद्योगिकीकरण के पथ का चुनाव किया है।

1. स्वचालित स्वतंत्रता बाजार का पथ
2. मजदूरी वस्तुओं की प्रमुखता सहित कृषि एवं ग्रामीण विकास का पथ, और
3. भारी उद्योगों की स्थापना से औद्योगिकीकरण का पथ।

डॉ. ब्रह्मानंद एवं डॉ. पंचमुखी ने स्वतंत्रता के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास प्रक्रिया के संबंध में निम्नलिखित तथ्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है:

1. वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि की वार्षिक दर जो सत्तर के मध्य तक 3.5 प्रतिशत थी। बाद में 4.5 प्रतिशत से भी कुछ अधिक हो गई। विकास दर में अस्थिरता का प्रमुख कारण कृषि क्षेत्र के उतार-चढ़ाव रहे हैं। सकल घरेलू उत्पादन एवं सरकारी व्यय का अनुपात जो पचास के प्रारंभिक वर्षों में 8 से 10 प्रतिशत के बीच था, अस्सी के मध्य तक 32-33 प्रतिशत तक पहुंच गया है। इसी प्रकार सकल घरेलू उत्पादन एवं कर-राजस्व का अनुपात इसी अवधि में

9-10 प्रतिशत से बढ़कर 16 से 18 प्रतिशत तक हो गया है। इसी अवधि में आय अनुपात की शुद्ध बचत का प्रतिशत 7-8 से बढ़कर 16-17 प्रतिशत हो गया है।

2. वृद्धिशील पूंजी उत्पादन अनुपात जो पचास के प्रारंभिक वर्षों में 2:1 था, बढ़कर अस्सी के मध्य तक 5:1 हो गया है।
3. मजदूरी-वस्तुओं की कुल पूर्ति की वार्षिक दर 3 एवं 3.5 प्रतिशत रही है तथा प्रतिव्यक्ति खाद्यात्र एवं खाद्य वस्तुओं का उपयोग बढ़ रहा है।
4. उपभोक्ता वस्तुओं की तुलना में विनियोग वस्तुओं की पूर्ति में विस्तार की दर दुगुनी है।
5. सार्वजनिक क्षेत्र की क्रियाओं का तेजी से विस्तार हुआ है तथा वर्तमान में कुल पूंजी भंडार का लगभग आधा सार्वजनिक क्षेत्र के स्वामित्व में है। लेकिन अधिकांश सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठान तीन प्रतिशत की औसत शुद्ध दर से प्रतिफल देने में भी सक्षम नहीं हैं।
6. बजट घाटे में तीव वृद्धि हुई है क्योंकि आर्थिक सहायता का भार बढ़ा है एवं सरकारी बचत अपर्याप्त है।
7. देश में काले धन की समानान्तर अर्थव्यवस्था मौजूद है।
8. विश्व-निर्यात में भारत का हिस्सा गिर रहा है तथा क्षमता से अधिक आयात किया जा रहा है।
9. विकसित देशों की मुद्रा के संदर्भ में रुपये की विनिमय दर लगातार गिर रही है, लेकिन इससे निर्यात के विकास में मदद नहीं मिली है।
10. उच्चतम एवं निम्नतम वर्ग के वेतन अनुपात में वृद्धि होने से विषमता बढ़ी है। गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों का प्रतिशत कम हुआ है।
11. परिवार नियोजन कार्यक्रम पूर्णतः सफल नहीं रहा है। मृत्यु दर तेजी से घटी है, औसत उम्र बढ़ी है लेकिन जनसंख्या वृद्धि दर आज भी दो प्रतिशत से अधिक है।
12. सफल घरेलू उत्पादन में कृषि क्षेत्र का हिस्सा जो पचास के प्रारंभिक वर्षों में 50 से 55 प्रतिशत तक था, 2016 में घटकर लगभग 15 प्रतिशत ही रह गया है। जबकि कृषि क्षेत्र पर निर्भर जनसंख्या का प्रतिशत अभी भी लगभग 56 बना हुआ है। सकल घरेलू उत्पादन में उद्योग एवं सेवा क्षेत्र दोनों का हिस्सा बढ़ा है।
13. संगठित क्षेत्र में रोजगार में वृद्धि की दर शहरीकरण में वृद्धि की दर से कम रही है। छिपी हुई बेराजगारी बढ़ रही है। ग्रामीण एवं गैर-पंजीकृत निर्माण क्षेत्रों में वास्तविक मजदूरी दरों में वृद्धि संगठित क्षेत्र की तुलना में कम रही है।
14. प्रति इकाई वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि के लिए इनपुट (विद्युत, कोयला, तेल, परिवहन आदि) की आवश्यकता पहले से अधिक मात्रा में होती है।
15. खनिजों एवं धातुओं के भंडारों में वृद्धि की जानकारी बहुत कम हुई है लेकिन इनका खनन एवं शोषण तेजी से बढ़ा है। इसी प्रकार सिंचाई क्षमता के पूरे उपयोग के नजदीक तेजी से बढ़ रहे हैं।

16. वर्तमान दर के पूर्वानुमान बताते हैं कि अर्थव्यवस्था को शीघ्र ही पानी, खाद्य तेल, दालें, पेट्रोलियम उत्पाद एवं उच्च कोटि के कोयले की भयंकर कमी का सामना करना होगा।

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त यह जानकारी भी जरूरी है कि नियोजन काल के वर्षों में, अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में भारत की प्रगति क्या व कितनी रही है। इसके लिए हम कुछ चुने हुए वर्षों, जैसे 1950-51, 1960-61, 1970-71, 1980-81 एवं 1990-91, 2000-2001, 2010-11 के आंकड़ों का उपयोग करेंगे।

आगे तालिका - 15.2 में भारतीय अर्थव्यवस्था के कुछ चुने हुए आर्थिक संकेतको को दर्शाया गया है। इनसे पता चलता है कि स्वतंत्रता के बाद देश ने किस दिशा में कितनी प्रगति की है।

तालिका 15.2

भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख संकेतक

क्र. स.	संकेतक	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	2010-11
1.	साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पादन 1970-71 की कीमतों पर (करोड़ रु.)	17,536	25,534	36,736	1,22,427* (980-81 की कीमतों पर)	475604*	4507637(2004-05 की कीमतों पर)
2.	प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन 1970-71 की कीमतों पर (रु.)	466	559	633	1630	4964*	33843(2004-05 की कीमतों पर)
3.	औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (आधार 1980-81)	18.3	36.2	65.3	100	212.6	165.5(आधार 2004-05)
4.	कृषि उत्पादन सूचकांक (आधार 1969-80 को समाप्त होने वाले तीन वर्ष)	58.5	86.7	111.5	135.3	192.2	215.3(आधार 1980-81)
5.	सकल घरेलू बचत (सकल उत्पादन के % के रूप मे)	10.2	13.7	16.8	21.2	23.9	30.1
6.	खाद्यान उत्पादन (मिलियन टन)	50.8	82	108.4	126.6	176.3	244.78
7.	तैयार स्टील (मिलि. टन)	1.04	2.39	4.64	6.82	10.65	66.01
8.	सीमेन्ट (मिलियन टन)	2.7	8	14.3	18.6	52.0	209.7
9.	कोयला (मिलि. टन)	32.8	55	76.3	119	232.6	570.8
10.	क्रूड तेल (मिलियन टन)	.26	.45	6.8	10.5	30.4	37.7
11.	थोक मूल्य सूचकांक (आधार 1970-71)	47.5	55.1	100	256.2	182.00 at 1980-81 Prices	
12.	केंद्र का बजट घाटा (करोड़ रु.)	-33	-117	285	2576	6080	373591
13.	निर्यात (करोड़ रु.)	601	660	1535	6711	15,741	251.136 billion
14.	आयात (करोड़ रु.)	650	1140	1634	12,549	22,399	369.769 billion

15.	विदेशी मुद्रा भंडार (करोड़ रु.)	911	186	438	4,822	7,287	262.933 billion dollar
16.	जनसंख्या (करोड़)	36.12	44.24	55.13	68.8	83.5	121.02 (Census 2011)
17.	जन्म दर (प्रति हजार)	39.9	41.7	36.9	33.9	29.0	22.1
18.	मृत्यु दर (प्रति हजार)	27.4	22.8	14.9	12.5	10.0	7.2
19.	जीवन प्रत्याशा पुरुष (वर्ष)	32.45	41.89	46.4	54.1	-	62.6
20.	जीवन प्रत्याशा (महिला वर्ष)	31.66	40.55	54.7	54.7	-	64.2
21.	साक्षरता दर का प्रतिशत	16.7	24	29.5	36.2	-	74.4
22.	प्रति व्यक्ति प्रति दिन शुद्ध उपलब्धि (ग्राम में)						
	(i) अनाज	334.2	399.7	417.6	416.2	408.2	
	(ii) दालें	60.7	69	51.2	37.5	33.2	
23.	प्रति व्यक्ति उपलब्धि (कि.ग्रा.)						
	(i) खाद्य तेल	-	3.2	3.5	3.8	5.9	
	(ii) वनस्पति	-	0.8	1.0	1.2	1.3	
	(iii) शक्कर	-	4.7	7.3	7.2	11.7	
24.	केन्द्र सरकार के उद्यम						
	(i) इकाइयां	5	48	87	163	221	248
	(ii) कुल पंजी विनियोग (करोड़ रु.)	29	953	3,606	18,207	58125	666848

15.4 नियोजन की प्रमुख उपलब्धियां

स्वतंत्रता के बाद देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए योजनाओं के मार्ग को अपनाने से अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं जहां स्वतंत्रता के पूर्व के पचास वर्षों में वास्तविक राष्ट्रीय आय में वार्षिक वृद्धि की दर मुश्किल से दो प्रतिशत रही, वहां स्वतंत्रता के बाद के चालीस वर्षों में यह लगभग 3.6 प्रतिशत रही। योजना काल के प्रारंभिक 35 वर्षों में वास्तविक प्रति व्यक्ति आय की वार्षिक वृद्धि दर 1.4 प्रतिशत एवं वास्तविक निजी उपभोग की वृद्धि दर 1.3 प्रतिशत रही। इसी प्रकार कृषि उत्पादन 2.7 प्रतिशत, कृषि क्षेत्र 1.0 प्रतिशत तथा कृषि-उत्पादकता लगभग सात गुना एवं खाद्यानों का उत्पादन लगभग तीन गुना बढ़ गया। औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक 5.8 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ा। निर्यात में वृद्धि दर 8.7 प्रतिशत वार्षिक रही एवं एक भारतीय की औसत उम्र बढ़कर लगभग 53 वर्ष हो गई। इस अवधि में देश की जनसंख्या के लगभग दुगुनी हो जाने एवं 1987 में शताब्दी के भयंकर सूखे के उपरांत भी भारतीय अर्थव्यवस्था विकास के पथ पर अग्रसर है । नियोजन की कुछ प्रमुख उपलब्धियों का उल्लेख आगे किया जा रहा है ।

1. **खाद्यान्नों मे आत्मनिर्भरता** : स्वतंत्रता के समय देश में खाद्यान्न-उत्पादन एवं खाद्यान्न-आवश्यकता में बहुत अंतर था। भारतीय कृषि को मानसून का जुआ कहा जाता था एवं खाद्यान्नों के आयात पर अर्थव्यवस्था निर्भर रहती थी। दूसरी एवं तीसरी योजना अवधि में पी.एल. 480 के अधीन खाद्यान्न का आयात किया जाता था। देश में आई हरित क्रांति के कारण, कुछ खाद्यानों का उत्पादन तेजी से बढ़ा। कुल मिलाकर अब भारत खाद्यान्नों के मामले में लगभग आत्मनिर्भर हो गया है, एवं पिछले कुछ वर्षों में तो खाद्यान्नों का थोड़ा बहुत निर्यात भी किया है।
2. **सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार** : समाजवादी ढंग के समाज की स्थापना करने के लिए स्वतंत्रता के बाद सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी से विस्तार किया गया। इससे अर्थव्यवस्था की औद्योगिक क्षमता का विविधकरण भी हुआ। शुरू में सार्वजनिक क्षेत्र अलाभदायकता के कारण आलोचना के पात्र बने, लेकिन धीरे-धीरे स्थिति में सुधार हुआ है, एवं ये थोड़ा बहुत लाभ भी देने लगे हैं।
3. **अद:संरचना का विकास :** किसी अर्थव्यवस्था का विकास उसकी आर्थिक अध:संरचना पर निर्भर करता है। स्वतंत्रता के बाद देश में ऊर्जा, सिंचाई, परिवहन एवं दूर-संचार की सुविधाओं के व्यापक विकास से कृषि, उद्योग एवं व्यापार—सभी को पर्याप्त मदद मिली है। इस्पात तथा सीमेंट जैसी आधारभूत वस्तुओं के उत्पादन में देश आत्मनिर्भर है।
4. **तकनीकी विकास एवं आधुनिकीकरण :** पिछले कुछ वर्षों से तकनीकी विकास एवं आधुनिकीकरण पर जोर देने से कुछ सुखद परिणाम सामने आए हैं। इससे देश का औद्योगिक ढांचा मजबूत हुआ है एवं विदेशी विशेषज्ञों पर निर्भरता में काफी कमी आई है। भारतीय तकनीकी विशेषज्ञों की मांग विदेशों में भी होने लगी है।
5. **आयात प्रतिस्थापन एवं निर्यात संवर्द्धन** : पहले भारत कुछ परंपरागत वस्तुओं का ही निर्यात करता था लेकिन अब निर्यात का पर्याप्त विविधिकरण हुआ है एवं गैर-परंपरागत वस्तुओं, पूंजीगत वस्तुओं, इंजीनियरी सामान आदि का निर्यात तेजी से बढ़ा है। इसी प्रकार खाद्यान, खाद, खनिज तेल, उपभोक्ता एवं पूंजीगत वस्तुओं का देश में ही उत्पादन होने से आयात का प्रतिस्थापन हुआ है।
6. **गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम** : पांचवी योजना में बेरोजगारी एवं निर्धनता पर प्रत्यक्ष प्रहार करने की वात कही गई। इसके लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम आदि अनेक कार्यक्रम लागू किए गए, जिनका गरीबी एवं बेरोजगारी के उन्मूलन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। सन् 1989-90 के बजट में 'नेहरू रोजगार योजना' लागू की गई है, जिसमें प्रत्येक गरीब परिवार के एक सदस्य को रोजगार देने की बात कही गई है।
7. **स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार** : योजना काल में मृत्यु-दर में उल्लेखनीय गिरावट हुई है। भारतीयों की औसत उम्र बढी है एवं सामान्य व्यक्ति को कुशल स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध हो रही हैं।

8. **शिक्षा में मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन :** शिक्षा प्रणाली के विकास से न केवल साक्षरता दर बढी है, अपितु प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञान के विशेषज्ञों की संख्या भी बढी है, जिसका उपयोग देश के चहुमुखी विकास के लिए हो रहा है।
9. **सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विकास :** नियोजन काल की एक प्रमुख उपलब्धि, सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सफलतापूर्वक काम करना भी है । आवश्यक वस्तुओं का वितरण इस प्रणाली के माध्यम से उचित कीमतों पर होता है। उचित मूल्यों की दुकानें गांवों एवं शहरों सभी जगह लोकप्रिय हैं। इनसे उपभोक्ताओं को मुद्रा स्फीति के दुष्प्रभावो से पर्याप्त मात्रा में बचाया जाता है। वस्तुओं की बाजार में कृत्रिम कमी होने पर एवं प्रारतिक विपदा एवं सूखे के समय, यह प्रणाली पिछले वर्षों मे प्रभावी रही है।
10. **बैंकिंग प्रणाली का विस्तार :** बैंकों के राष्ट्रीकरण एवं ग्रामीण बैको की स्थापना के बाद देश में बैंक शाखाओं का तीव्र विकास हुआ है । 30 जून 1969 को देश में, व्यापारिक बैको की कुल शाखाएं केवल 8262 थीं, जो जून 1988 में बढ़कर 55,410 हो गई। इनके फैलाव से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास हुआ एवं औद्योगिकीकरण में पर्याप्त मदद मिली।
11. **घरेलू उत्पादन में संरचनात्मक परिवर्तन :** शुद्ध घरेलू उत्पादन को तीन क्षेत्रों में बांटने की परंपरा रही है—(i) प्राथमिक क्षेत्र—जिसमें कृषि एवं वन, मत्स्य आदि संबंधित क्षेत्र सम्मिलित किए जाते हैं, (ii) द्वितीयक क्षेत्र—जिसमें विनिर्माण उद्योग एवं निर्माण आदि क्षेत्र सम्मिलित किए जाते हैं, और (iii) तृतीयक क्षेत्र—जिसमें व्यापार, परिवहन संचार, बैंकिंग, बीमा एवं विभिन्न सेवाओं आदि को सम्मिलित किया जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि अर्थव्यवस्था से, औद्योगिक अर्थव्यवस्था धीमी गति से प्रवेश कर रही है। आगे तालिका में स्थिर कीमतों पर (आधार 1970-71) शुद्ध घरेलू उत्पादन में वृद्धि की चक्रवृद्धि दरें दर्शाई गई हैं। इससे ज्ञात होता है कि यह वृद्धि की दर प्राथमिक क्षेत्र में, अन्य दोनों क्षेत्रों की तुलना में आधी से कम रही। वृद्धि की दरों में यह अंतर आर्थिक विकास च्चई एक सामान्य विशेषता है।

तालिका 15.3 वृद्धि की चक्रवृद्धि दरें

क्षेत्र	1950-51 से 1960-61 तक	1960-61 से 1970-71 तक	1970-71 से 1983-84 तक	1950-51 से 1983-84 तक	1950-51 से 2001-02 तक
प्राथमिक	2.93	2.26	1.98	2.35	2.06
द्वितीयक	5.36	5.02	4.16	4.78	4.51
तृतीयक	4.69	4.96	5.68	5.16	7.78
शुद्ध घरेलू उत्पादन	3.79	3.55	3.70	3.68	4.13

शुद्ध घरेलू उत्पादन में वृद्धि पहले दशक की तुलना में दूसरे दशक में कम हुई , तीसरे दशक में यह कुछ बढ़ी लेकिन पहले दशक की तुलना में यह कम ही थी। क्षेत्रानुसार विकास की एक प्रमुख विशेषता यह रही कि द्वितीयक क्षेत्र की वृद्धि दर उत्तरोत्तर तीनों दशकों में कम होती जा रही है । इस प्रकार औद्योगिकीकरण की नीति पूर्णतः सफल नहीं रही है । प्राथमिक क्षेत्र की वृद्धि दर में भी उत्तरोत्तर कमी हुई है, जिससे ज्ञात होता है कि कृषि योग्य भूमि के क्षेत्र में वृद्धि नहीं होने के कारण हरित क्रांति के लाभ पूर्ण रूप से नहीं मिल पाए हैं। तृतीय क्षेत्र के योगदान में उत्तरोत्तर वृद्धि पुनः आर्थिक विकास की प्रक्रिया के शुरूआत को पुष्ट करती है।

12. **जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण में अनुकूल परिवर्तन:** 1951 से 1971 के आंकड़े बताते हैं कि शुद्ध घरेलू उत्पादन में कृषि क्षेत्र का हिस्सा उत्तरोत्तर घटा लेकिन कृषि क्षेत्र पर निर्भर जनसंख्या मे कमी नहीं आई। लेकिन 1971-81 के दौरान इस प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ, जो अर्थव्यवस्था के विकास की दृष्टि से एक अनुकूल विशेषता मानी जा सकती है । आगे तालिका में हम अर्थव्यवस्था को केवल दो क्षेत्रों में बांट रहे हैं—कृषि एवं गैर कृषि क्षेत्र। तालिका से ज्ञात होता है कि शुद्ध घरेलू उत्पादन में कृषि का हिस्सा 1981 में घटकर 35.52 प्रतिशत हो गया, इसके साथ कुल श्रम शक्ति में, कृषि क्षेत्र में लगे श्रमिको का हिस्सा भी पहली बार घटकर 66.69 प्रतिशत हो गया। यह स्थिति अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक परिवर्तन में आर्थिक विकास की सूचक है । यह बात अलग है कि इस परिवर्तन की शुरूआत होने में भारत को तीस वर्ष लगे।

तालिका 15.4 शुद्ध घरेलू उत्पादन एवं श्रम शक्ति में कृषि एवं गैरकृषि क्षेत्र का योगदान

जनगणना वर्ष	कृषि क्षेत्र का हिस्सा (प्रतिशत)		गैर कृषि क्षेत्र का हिस्सा (प्रतिशत)	
	शुद्ध घरेलू उत्पादन	श्रम शक्ति	शुद्ध घरेलू उत्पादन	श्रम शक्ति
1961	49.3	69.5	50.7	30.5
1971	42.8	69.8	57.2	30.2
1981	35.5	66.7	64.5	33.3
2011	14.5	58.2	85.5	41.8

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के बाद देश ने अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में तेजी से विकास किया है, जिसके कारण देशवासियों की आर्थिक स्थिति में पूर्वापेक्षा उल्लेखनीय सुधार हुआ है । योजनाओं ने देश का चहुंमुखी विकास करने में पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है ।

15.5 नियोजन के कुछ महत्वपूर्ण सबक

प्रो. डी. टी. लाकड़वाला ने नियोजन के अनुभवों का विश्लेषण करते हुए योजना अवधि के दौरान सीखे गए कुछ महत्वपूर्ण सबक गिनाए हैं:

1. संस्थागत परिवर्तन, जो प्रथम दृष्टि में आकर्षक प्रतीत हुए थे, उन्हें लागू करने के पूर्व पर्याप्त विचार करना चाहिए। खाद्यान संकट के समय खाद्यान्नों के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण किया गया, लेकिन सभी प्रयासों के बावजूद यह कदम असफल रहा। सरकारी एजेंसियों के लिए यह सरल नहीं था कि समस्त बाजार योग्य अधिशेष को खरीद सके एवं पूरे देश मे इसका समुचित वितरण कर सके। इसलिए इससे नरम कदम अधिक सफल रहा, जिसमें उचित कीमत एवं वितरण प्रणाली अपनाई गई। अतः आवश्यकता इस बात की है कि कीमत एवं वितरण प्रणाली की समय-समय पर समीक्षा की जाए, जरूरत के अनुसार इसमें सुधार किया जाए और जब इससे किसी उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो तो इसे छोड़ दिया जाए।
2. राज्य को इन्हीं उद्यमों को चलाना चाहिए जिनमें कार्यकुशलता के मानदंड के साथ इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि भविष्य में इसमें सुधार की और संभावना है या नहीं। यह धारणा कि राज्य बीमार इकाइयों का अधिग्रहण करके उन्हें सफलता पूर्वक चला सकता है, सामान्यतया गलत साबित हुई है । कभी-कभी प्रतिस्पर्द्धात्मक निजी क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यप्रणाली में आशानुकूल सुधार ला सकता है । उदाहरण के लिए अतिरिक्त स्टाफ की समस्या से निपटना सार्वजनिक क्षेत्र के लिए मुश्किल है ।
3. आय एवं धन की असमानताओं को कम करने में अपनाए गए राजकोषीय उपाय प्रभावी नहीं रहे हैं तथा समुचित संस्थागत परिवर्तन होने में समय लगेगा। वर्तमान ऊँची दरों पर यदि सम्पन्न वर्ग की आय को बढ़ने दिया गया एवं इस वर्ग द्वारा यदि विलासिता-उपभोग पर नियंत्रण नहीं किया गया तो भविष्य में सामाजिक असंतोष एवं संघर्ष से इन्कारनहीं किया जा सकता, क्योंकि सम्पन्न वर्ग के संगठन अपने हितों की रक्षा हेतु बन रहे हैं, जिससे अन्य वर्गों के हितों की अनदेखी होती है ।
4. भारत जैसे गरीब देश में, सीमित साधनों पर दबाव बहुत अधिक है । अतः साधनों के उपयोग के लिए प्राथमिकताओं के निर्धारण में पर्याप्त जांच पड़ताल जरूरी है । गरीबतम वर्ग के हितों पर सर्वप्रथम ध्यान दिया जाए एवं दूसरे वर्गों की मांगों पर नियंत्रण रखा जाय।
5. गरीब-वर्ग के हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता इस तरीके से दी जानी चाहिए कि वे शीघ्र ही राष्ट्र की मुख्यधारा में सम्मिलित हो जाएं, न कि वे हमेशा के लिए अपनी अलग पहचान बनाए रखें एवं विशेष अधिकारों के लिए दबाव बनाए रखें।
6. पिछले कुछ वर्षों से अर्थव्यवस्था का बचत अनुपात स्थिर हो गया है । बचत बढ़ने के लिए बचत की सीमान्त प्रवृत्ति को बढ़ना चाहिए। ऐसा तभी संभव है, जब उपभोक्ता-संस्कृति को नियंत्रित किया जाए। ऐसा नहीं हो सकेगा, यदि विलासिता की उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन तेजी से बढ़ता रहेगा, क्योंकि इसका मध्य आय वर्ग पर मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव स्पष्टतया प्रतीत होने लगा है ।

इस प्रकार प्रो. लाकड़ावाला द्वारा रेखांकित किए गए उपर्युक्त तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं एवं इन्हें भावी योजनाओं का निर्माण करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। योजनाओं से संबंधित निर्णय शुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से लिए जाने चाहिए न कि राजनैतिक दृष्टिकोण से। इस दृष्टिकोण के

विकसित होने पर अर्थव्यवस्था के विकास में पर्याप्त मदद मिलेगी। विकास का पथ सदैव सीधा एवं सुगम नहीं होता, इसलिए आर्थिक नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में सतर्कता जरूरी है। योजनाओं के अनुभवों से शिक्षा लेते हुए प्रगति का पथ प्रशस्त किया जाना चाहिए। भारत जैसे विकासशील देश के लिए तो यह अधिक जरूरी है।

15.6 नियोजित विकास के अप्राप्त उद्देश्य

योजना-काल में निर्धारित उद्देश्यों में से कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति पूर्णतः नहीं हो पाई है। निम्नलिखित उद्देश्यों को निर्धारित स्वीकृत मात्रा में प्राप्त नहीं किया जा सका है।

1. **त्वरित विकास :** यद्यपि पिछले लगभग चालीस वर्षों में उल्लेखनीय विकास हुआ है, फिर भी नियोजन-काल के उत्तरोत्तर प्रत्येक दशक में वास्तविक कुल आय की वृद्धि दर एवं प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय की वृद्धि दर घटी है। प्रारंभिक तीन दशकों के प्रत्येक दशक में वास्तविक कुल आय की वृद्धि दर क्रमशः 3.8, 3.5 एवं 3.4 प्रतिशत एवं वास्तविक प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि दर प्रत्येक दशक में क्रमशः 1.8, 1.2 एवं 1.0 प्रतिशत ही रही है।
2. **बेरोजगारी एवं अल्परोजगार में कमी :** श्रम बाजार में नये श्रमिको के प्रवेश की तुलना में रोजगार के नये अवसरों का सृजन कहीं कम हो रहा है। प्रतिवर्ष लगभग 56 लाख श्रमिक, श्रम बाजार में प्रवेश करते हैं। छठी योजना के प्रारंभ में 120.2 लाख व्यक्ति अवशिष्ट बेरोजगार थे। योजना अवधि में रोजगार में 4.17 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि अनुमानित की गई लेकिन श्रम-शक्ति में लगभग इतने ही नव-प्रवेशको के कारण योजना के अंत में 119.8 लाख व्यक्तियों के पुनः अवशिष्ट बेराजगारों के रूप में शेष रहने का अनुमान लगाया गया। इसी प्रकार सातवीं योजना अवधि 404 लाख व्यक्तियों को रोजगार देने की बात कही गई है। इसके उपरान्त भी सातवीं योजना के अंत तक 72 लाख व्यक्ति अवशिष्ट बेरोजगार बने रहेंगे। इसी प्रकार सातवीं योजना के दौरान 94 लाख शिक्षित व्यक्तियों को नौकरी देने की आवश्यकता बताई गई है, लेकिन शिक्षित बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के लिए योजना में कोई विशिष्ट नीति नहीं बनाई गई है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की व्यापक समस्या बनी हुई है। वर्ष 2014 में भारत में बेरोजगारी की 3.8 % वार्षिक रही।

रोजगार की स्थिति

	31 मार्च को रोजगार की स्थिति (लाख में)		
	2009	2010	2011
सार्वजनिक	177.95	178.62	175.48
निजी	103.77	108.46	114.52
कुल	281.72	287.08	289.99
महिला	55.80	58.59	59.54

3. **सामाजिक न्याय :** सभी योजनाओं से आर्थिक असमानता एवं आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को कम करने की अपेक्षा की गई है। लेकिन सामाजिक न्याय की प्राप्ति अभी तक देशवासियों को अपेक्षित मात्रा में नहीं हो पाई है।

(i). **असमानता मे कमी** : एक अनुमान के अनुसार, उच्चतम दस प्रतिशत जनसंख्या को इस अवधि में बढ़ी हुई कुल व्यक्तिगत आय का दो तिहाई हिस्सा मिल गया है, जबकि शेष 90 प्रतिशत जनसंख्या को एक तिहाई हिस्से पर ही संतोष करना पड़ा है। इस प्रकार यह उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सका है।

(ii). **धन एवं आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण** : रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के एक सर्वेक्षण के अनुसार (1971-72), 70 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास 1,000 रु. से भी कम की परिसंपतियां थी जो कुछ ग्रामीण परिसंपतियों का केवल एक प्रतिशत थी, जबकि दूसरी तरफ केवल चार प्रतिशत ग्रामीण-परिवारों के पास 50,000 रु. या अधिक की परिसंपतियाँ थीं, जो कुल का तीस प्रतिशत से भी अधिक था। इसी प्रकार उच्च बीस औद्योगिक घरानों की परिसम्पतियाँ इन वर्षों में न केवल बढ़ी हैं, अपितु इनकी अर्थव्यवस्था पर पकड़ भी पहले से मजबूत हुई है।

4. **गरीबी उन्मूलन :** सातवीं योजना का कहना है कि विकास प्रक्रिया एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के कारण गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों का प्रतिशत, जो 1984-85 में 36.9 था, 1989-90 तक घटकर 25.8 रह जाएगा। इस प्रकार निर्धनों की संख्या सातवीं योजना के अंत तक 21.1 करोड़ रह जाएगी। 2009 में नियुक्त तेंदुलकर कमेटी ने NSSO के 61वे चक्र 2004-05 के मूल्यों पर कुल 37.2 % गरीबी बताई। सरकार के अनुमानों को स्वीकार भी कर लिया जाय तो भी निर्धनों की संख्या काफी अधिक है एवं गरीबी रेखा की अवधारणा को अब बदलने की जरूरत है क्योंकि यह अवधारणा बदली हुई विकास परिस्थितियों में काफी सँकुचित है, जो केवल उपभोग व्यय एवं कैलोरी उपयोग से संबंधितहै।

5. **कीमत स्थायित्व :** यह नाम लिया गया है कि विकासशील देशों में मुद्रा स्फीति आवश्यंभावी है। योजनाओं में स्थिरता के साथ विकास की बात कही तो जाती है, परंतु इसका क्रियान्वयन नहीं हो पाया है। कीमत स्तर में वृद्धि का सर्वाधिक दुष्प्रभाव असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों, बेरोजगारी, गरीबों एवं निश्चित आय-वर्ग के लोगों पर पड़ा है। इससे गरीबी रेखा से ठीक ऊपर गुजर-बसर करने वाले एकाएक गरीबी रेखा के नीचे ढकेले जाते हैं क्योंकि उनकी क्रय शक्ति कीमत वृद्धि के साथ-साथ घटती जाती है।

6. **क्षेत्रीय संतुलन:** भारत जैसे बड़े देश में प्रादेशिक असमानताएं योजनाओं के माध्यम से ही कम की जा सकती हैं, लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं हो पाया है। कुछ राज्य अत्यधिक उन्नत हुए हैं एवं कुछ पिछड़े हुए ही हैं।

15.7 नियोजित विकास की विफलताएँ

भारत के नियोजित आर्थिक विकास के दौरान कुछ कमियों एवं विफलताओं को और देखा जा सकता है, यथा

1. चालीस वर्षों के प्रयासों के पश्चात भी भू-सुधार लागू नहीं किये जा सके हैं। अधिकतम जोत कानूनों के अंतर्गत जिस जमीन का कब्जा लिया जा चुका है, उसे मुकदमेबाजी के कारण पूरी मात्रा में वितरित नहीं किया जा सका है। सातवीं योजना में भी चकबंदी, काश्तकारी नियमन एवं भूमि-अभिलेखों को अद्यतन बनाने की बात कही गई है लेकिन राजनीतिक मनोबल के अभाव, नौकरशाही की उदासीन प्रवृत्ति, गरीब किसानों एवं कृषि मजदूरों की निष्क्रियता एवं असंगठन एवं भू-सुधारों के क्रियान्वयन में कानूनी बाधाओं के कारण भू-सुधारों में प्रगति असंतोषजनक रही है।
2. **अर्थव्यवस्था में काले धन की मौजूदगी** के कारण सामाजिक न्याय की प्राप्ति में सरकारी नीतियां असफल रही हैं। द नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एंड पोलिसी के अनुमान के अनुसार सकल घरेलू उत्पादन में काली आय का अनुपात 18 से 21 प्रतिशत के बीच रहा है। 1983-84 में इस संस्थान ने 36786 करोड़ रु. की काली आय की उत्पत्ति का अनुमान लगाया है। तरक्की, कालाबाजारी एवं लाइसेंसिंग प्रणाली के कारण यह समस्या बनी हुई है एवं इससे निपटने के कारगर उपाय नहीं अपनाए जा सके हैं।
3. **नियोजन काल में व्यापार असंतुलन एवं भुगतान असंतुलन**—दोनों की समस्या विषम हुई है। सन् 2010-11 के कुल आयात 369.769 बिलियन डालर एवं कुल निर्यात 251.136 बिलियन डालर के ही अनुमानित किए गए है, इस प्रकार विदेशी व्यापार घाटा 118.633 बिलियन डालर का है। पिछले कुछ वर्षों में शुद्ध विदेशी सहायता की राशि, ऋण सेवा-प्रभार की तुलना में कम हो रही है। कुल विदेशी सहायता आधे से अधिक, ब्याज तथा ऋण की किश्त के भुगतान के रूप में चला जाता है। ऋण-जाल में फंसने के शुरूआती संकेत हैं। सन् 2011 में 326.6 डालर का विदेशी ऋण था।
4. **भारतीय रुपये की क्रय शक्ति वर्ष-प्रतिवर्ष कम** होती जा रही है। अर्थव्यवस्था में व्याप्त मुद्रा-स्फीति एवं सरकार द्वारा अपनाई गई व्यापक घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण रुपये का मूल्य तेजी से घटा है। अन्य देशों की मुद्राओं के मुकाबले भी रुपया कमजोर हुआ है। वर्ष 1980-81 में अमरीकी डॉलर एवं ब्रिटिश पाउंड के लिए क्रमशः 7.9 रु. एवं 18.5 रु. ही देने पड़ते थे, जबकि मार्च 2017 में एक डॉलर के लिए 65.42 रु. एवं एक पौंड के लिए 80.87 रु. दिए गए।
5. **पिछले वर्षों मे सरकारी-व्यय तेजी से बढ़ा है।** केन्द्र सरकार का कुल व्यय जो 1980-81 में केवल 22,495 करोड़ रु. था, बढ़कर 2010-11 (बजट) में 1197328 करोड़ रु. हो गया। वर्ष 1950-51 में यह व्यय केवल 504 करोड़ रु. ही था। केन्द्र सरकार का रक्षा व्यय एवं ब्याज के भुगतान पर व्यय 1980-81 में क्रमशः 3,571 एवं 2,253 करोड़ रु. था,

जो 2010-11 (बजट) में क्रमशः 154117 एवं 351145 करोड़ रु. होने का अनुमान है। इस प्रकार रक्षा व्यय से भी ब्याज भुगतान का व्यय बढ़ रहा है, जो चिंताजनक है। उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि योजनाओं से अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं हो सके हैं। प्रशासनिक भ्रष्टाचार के कारण योजनाओं का समुचित क्रियान्वयन नहीं हुआ है।

15.8 सारांश

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय विकास योजनाओं को पूर्ण सफलता नहीं मिली है। खाद्यान्न में हम न केवल आत्म-निर्भर हो गए हैं अपितु यदा-कदा अनाज का थोड़ा बहुत निर्यात भी करने लगे हैं। शताब्दी के भयंकर सूखे का पिछले दिनों भारत ने सफलतापूर्वक सामना किया है। फिर भी कृषि विकास की दर संतोषजनक नहीं रही है। दालों एवं तिलहनों के मामले में हमारी प्रगति निराशाजनक रही है। औद्योगिक विकास अपेक्षाकृत अधिक तेजी से हुआ है। उपभोक्ता वस्तुओं से बाजार भर गया है एवं इन वस्तुओं की मांग को पूरा करने के लिए उद्योगों में अवांछनीय प्रतियोगिता भी हो रही है जिससे सीमित संसाधनों का दुरुपयोग हुआ है। बिजली, कोयला, पेट्रोलियम पदार्थ, सीमेंट, इस्पात आदि वस्तुओं एवं परिवहन तथा संचार व्यवस्था पर भारी दबाव बना हुआ है। विदेशी व्यापार में आशातीत वृद्धि होने के उपरान्त भी विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा कम हुआ है, जो इस बात का सूचक है कि अन्य देशों के मुकाबले हमारी गति धीमी रही है। अर्थव्यवस्था पर आंतरिक एवं बाह्य ऋण का भार जरूरत से ज्यादा है, जिसके वार्षिक ब्याज के आंकड़े ही चौंकाने वाले हैं। जनसंख्या वृद्धि एवं मूल्य वृद्धि के कारण विकास के लाभ सामान्य नागरिक को नहीं मिल पाए हैं। कानून एवं व्यवस्था की शोचनीय स्थिति एवं प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार का दुष्प्रभाव विकास योजनाओं के क्रियान्वयन पर पड़ा है। गरीबी एवं बेकारी की समस्या आज भी बनी हुई है जो योजनाओं के लिए असली चुनौती है। आवश्यकता इस बात की है कि योजनाओं को ईमानदारी से क्रियान्वित किया जाए ताकि विकास की गति भी बढ़े एवं मौजूदा वितरण प्रणाली के विकास के लाभ आम जनता को प्राप्त हो सके। इसके अभाव में आय एवं धन की विषमताएं और बढ़ेंगी। संक्षेप में भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्या योजनाओं के निर्माण की न होकर योजनाओं के समुचित क्रियान्वयन की है।

15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अग्रवाल ए. एन. —भारतीय अर्थव्यवस्था, विकास

रूद्र दत्त, सुंदरम —भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चांद एंड कं.

एम. एल. झिंगन —विकास का अर्थव्यवस्था एवं आयोजन, कोणार्क पब्लिशर्स

श्री कृष्ण माहेश्वरी —भारत में आयोजन तथा आर्थिक विकास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

P.R. Brahamanand and V.R. Panchamukhi —The Development Process of the Indian Economy, Himalaya Publishing House, Bombay

G. O. I —Economic Survey.

15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. "भारत ने पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा पर्याप्त आर्थिक विकास किया है।" इस कथन की सप्रमाण पुष्टि कीजिए।
2. भारतीय नियोजन के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन करते हुए बताइए कि इन्हें किस सीमा तक प्राप्त किया जा सका है?
3. भारतीय नियोजन की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए नियोजन की उपलब्धियों एवं विफलताओं का वर्णन कीजिए।
4. स्वतंत्रता के बाद' भारत की विकास प्रक्रिया को समझाते हुए, भावी योजनाओं के लिए अपने सुझाव दीजिए।

इकाई 16

विकेन्द्रित नियोजन-पद्धति

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 केन्द्रित व विकेद्रित नियोजन में मुख्य अंतर
16.3 विकेन्द्रिएत नियोजन की कार्य-पद्धति (Methodology) पंचायती राज संस्थाओं से संबंध
(अ) योजना कैसे बनायी जाती है?
(ब) योजना की मशीनरी कैसी होती है?
16.4 विकेन्द्रित नियोजन की दिशा में प्रगति व अनुभव-कर्नाटक, पश्चिमी बंगाल व गुजरात में विकेन्द्रित नियोजन
16.5 विकेन्द्रित नियोजन के मार्ग में बाधाएं व समस्याए
16.6 विकेन्द्रित नियोजन की सफलता की आवश्यक शर्तें
16.7 भारत में विकेन्द्रित नियोजन का भविष्य व सुझाव
16.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
16.9 बौध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य विकेन्द्रित नियोजन पद्धति के अर्थ एवं उद्देश्यों से आपका परिचय कराना है।

16.1 प्रस्तावना

एक देश के आर्थिक साधनो का निर्धारित सामाजिक-आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग करने की विधि को नियोजन की पद्धति कहते है। इसके कई रूप है। इनमें से केन्द्रित व विकेन्द्रित नियोजन के रूप में विशेष चर्चा के विषय रहे है। केन्द्रित नियोजन को 'ऊपर से नियोजन' (Planning from above) भी कहते है। भारतमें योजना-आयोग द्वारा अब तक जो पंचवर्षीय योजनाएं बनायी गयी है वे इसी श्रेणी मे आती है। इसमें केन्द्रीय व राज्यीय स्तरों पर योजनाओं का निर्माण होता है। योजना-आयोग विभिन्न राज्य सरकारों से विचार-विमर्श करके उनकी योजनाओं के लिए सार्वजनिक व्यय की राशि स्वीकृत करता है। इस प्रकार केन्द्र व राज्यों के बीच आवश्यक सलाह से योजना बनायी जाती है। लेकिन इस पद्धति में राज्य-स्तर से, नीचे योजना की प्रक्रिया पर ध्यान नहीं दिया जाता। इसके विपरीत विकेन्द्रित नियोजन को'नीचे से नियोजन' (planning for

bottom) अथवा 'ग्रासरूट प्लानिंग' (grassroots planning) भी कहते है, जिसमें योजनाका निर्माण वस्तुत: ग्राम-स्तर से ऊपर खण्ड या तालुका-स्तर, फिर जिला-स्तर से ऊपर तथा आगे राज्य-स्तर के केन्द्र-स्तर की तरफ किया जाता है।"

इस प्रकार विकेन्द्रित नियोजन में योजना का निर्माण व क्रियान्वयन दृष्टि से सबसे छोटी इकाई, अर्थात् गांव, से आरंभ होता है, हालांकि व्यवहार नियोजन की इकाई 'जिला' या 'खण्ड' रखी जाती है, ताकि नियोजन की कार्यकुशलता बनी रही। स्मरण रहे कि विकेन्द्रित नियोजन व पंचायत राज संस्थाओं का परस्पर गहरा संबंध होता है, क्योंकि इस पद्धति में आर्थिक विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ राजनीतिक विकेन्द्रीयकरण भी आवश्यक माना गया है।

भारत जैसे विशाल देश के लिए विकेन्द्रित नियोजन निम्न कारणों से, विशेष रूप से, आवश्यक माना गया है।

(i). भारत के कुछ जिलों की जनसंख्या का अधिक होना :-

भारत में विकेन्द्रित नियोजन के पक्ष में प्रथम कारण यह दिया जाता है कि नियोजन अत्यावश्यक हो जाता है। हमारे देश में कई राज्यों की जनसंख्या व क्षेत्रफल फ्रांस व जर्मनी से अधिक है। ऐसे देश में नियोजन की प्रक्रिया को राज्य-स्तर पर रोक देने से आर्थिक विकास में बाधा पड़ सकती है, क्योंकि इससे राजनीतिक व आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

(ii). सभी लोगों को विकास की धारा में शामिल करने के लिए :-

अब तक के नियोजन का अनुभव रहा है कि कुछ लोग आर्थिक क्रिया व आर्थिक विकास की मुख्य धारा से बाहर रह गये थे। उन्हें विकास-कार्यक्रमों से या तो कोई लाभ नहीं मिला, अथवा अपर्याप्त लाभ मिला, जिससे विकास की दृष्टि से अन्तर्क्षेत्रीय व अंतर्वर्गीय असमानताएं बढ़ी। भावी नियोजन में इस कमी को दूर करने के लिए जिला व खण्ड नियोजन की तरफ बढ़ना आवश्यक माना गया है। ऐसा करके अब तक विकास के लाभों से वंचित लोगों को भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जा सकता है।

(iii). विकेन्द्रित नियोजन के माध्यम से ही स्थानीय साधनों व स्थानीय आवश्यकताओं में आवश्यक ताल-मेल बैठाया जा सकता है।

विभिन्न क्षेत्रों के आर्थिक साधन व उनकी आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती है। उनके विकास के स्तरों में भी काफी अंतर पाये जाते है। किसी खण्ड तालुका में ट्यूब-वेल की जरूरत होती है, तो किसी में जल-विकास की, किसी में पशु-चिकित्सा की तो किसी में संचार की, आदि। इसलिए स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्थानीय नियोजन ही अधिक उपयुक्त होता है। राष्ट्रव्यापी या राज्यव्यापी नियोजनों में क्रमश: देश व राज्यों की आवश्यकताओं का तो ध्यान रखा जा सकता है, लेकिन इससे नीचे के स्तरों की अलग-अलग प्रकार की जरूरतों पर ध्यान दे पाना दुष्कर होता है।

(iv). नियोजन की प्रक्रिया में आम आदमी की भागीदारी को प्रोत्साहन देने के लिए :-

विकेन्द्रित नियोजन के पक्ष में एक प्रबल तर्क यह है कि इसी के माध्यम से आम लोगों को नियोजन की प्रक्रिया में शामिल किया जा सकता है । जब ग्राम-स्तर पर नियोजन किया जाता है तो लोगों को योजना के निर्माण के समय अपनी बात कहने का अवसन मिलता है, और बाद में इसके क्रियान्वयन में भाग लेने का अवसर मिलता है, जो अन्यथा सम्भव नहीं था। इससे नियोजन अधिक व्यावहारिक, लचीला व परिणामोमुख बनाया जा सकता है।

(v). विकेन्द्रित नियोजन के अनुकूलतम परिणाम : -

वर्तमान समय में राज्य सरकारों के विभिन्न विभाग जिला-स्तर पर अपने-अपने काम देखते है, जैसे कोई सिंचाई का, कोई पशु-पालन का, कोई भू-संरक्षण का, आदि। इनमें प्राय: परस्पर ताल-मेल का अभाव रहता है । दूसरी तरफ सरकारी विभागों व पंचायती राज संस्थाओं में भी ताल-मेल की कमी रहती है । इस परिस्थिति में सरकारी व्यय का पूरा लाभ नहीं मिल पाता और काफी व्यय के निरर्थक चले जाने की अधिक सम्भावना रहती है । विकेद्रित नियोजन की प्रक्रिया में सरकारी एजेंसियों व जन प्रतिनिधि-एजेंसियों में अधिक ताल-मेल व समन्वय होने से व्यय से अनुकूलतम परिणाम निकल सकते है।

(vi). ऊर्जा-नियोजन की दृष्टि से विकेन्द्रीकरण लाभदायक :-

अक्टूबर 1983 में आर्थिक सलाहकार परिषद् ने विकास-नियोजन व क्रियान्वयन के विकेन्द्रीकरण पर प्रधानमंत्री को जो रिपोर्ट दी थी, उसमें इस बात पर जोर दिया गया था कि भारतीय गांवों में ऊर्जा का प्रभावपूर्ण नियोजन विकेन्द्रित नियोजन के माध्यम से ही सफल बनाया जा सकता है । ऊर्जा के परम्परागत साधनों (कोयला, जल-विद्युत, तेल) तथा गैर परम्परागत साधनों (वायु, लकड़ी, सौर-ऊर्जा, आदि) का सर्वोत्तम उपयोग ग्रामीण नियोजन के माध्यम से ही संभव है । गांवों की ऊर्जा-समस्या का हल भी इसी विधि से निकाला जा सकता है। गांवों में गोबर-गैस के चूल्हों का फैलाव इस दिशा में प्रगति का सूचक है।

(vii). गांवों को परस्पर जोड़ना तथा गांवों व छोटे कस्बों को परस्पर जोडना संभव :-

भारत के अधिकांश गांवों में जनसंख्या बहुत थोड़ी पायी जाती है और वे एक दूसरे से काफी दूर-दूर बसे होते है । उनमें परस्पर कड़ी स्थापित करने तथा उनको पास के छोटे शहरों सें जोड़ने के लिए इन्फ्रास्ट्रक्चर के विकास की आवश्यकता होती है जैसे, सड़क, गोदाम, व परिवहन की सुविधाएं आदि। ये काम विकेन्द्रित नियोजन से ही संभव हो सकते है जहाँ प्रत्येक क्षेत्र अपनी आवश्यकताएं.ठीक से पहचान पाता है और उनको पूरा करने में स्थानीय साधनों का भी योगदान दे सकता है।

(viii). मिट्टी, धरातल व जलवायु की विभिन्नताओं के कारण स्थानीय नियोजन जरूरी

प्राय: एक राज्य के विभिन्न भागों में जलवायु, वर्षो, मिट्टी आदि के अंतर पाये जाते है जिससे उनकें नियोजन में अंतर करना आवश्यक हो जाता है । भू-स्वामित्व, भूजोतों के अपखण्डन व वितरण, आदि के प्रश्न बड़े जटिल होते है । अतः विकेन्द्रित नियोजन के माध्यम से ही इन

विभिन्न प्रकार की दशाओं में अधिकतम आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार हमने देखा कि विकेन्द्रित नियोजन के माध्यम से ही; हम आर्थिक विकास की दर को ऊँचा कर सकते है, रोजगार-संवर्धन व निर्धनता-निवारण के कार्यक्रम अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से लागू कर सकते है, ऊर्जा व इन्फ्रास्ट्रक्चर के नियोजन को अधिक सफल बना सकते है, तथा लोगों की आवश्यकताओं के मुताविक नियोजन को अपनाकर उसमें उनकी भागीदारी को भी बढ़ा सकते है। कहने का आशय यह है कि भारत जैसे विशाल देश में, जो लोकतांत्रिक मूल्यों को विशेष आदर देता है, विकेन्द्रित नियोजन व पंचायती राज संस्थाओं के विकास से ही देशवासियों का जीवन-स्तर बेहतर बनाया जा सकता है। ग्रामवासियों, वनवासियों, गिरीवासियों अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों, खेतिहर मजदूरी, हरिजनों व अन्य पिछड़ी जातियों के आर्थिक कल्याण के लिए सरकार को आगामी कई वर्षो तक विकेन्द्रित नियोजन की प्रक्रिया व पद्धति के माध्यम से संघर्षरत रहना होगा, तभी वांछित सफलता मिल सकेगी।

16.2 केन्द्रित व विकेन्द्रित नियोजन में मुख्य अंतर

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारत विकेन्द्रित नियोजन की पद्धति को अपना कर अधिक लाभ उठा सकता है। योजना-आयोग के वर्तमान उपाध्यक्ष श्री रामकृष्ण हेगड़े ने आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में विकेन्द्रित नियोजन-प्रणाली को अपनाने पर बल दिया है। जैसा कि कहा जा चुका है भारत अब तक मूलत केन्द्रित नियोजन के मार्ग पर ही चलता रहा है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना योजना-आयोग द्वारा एक विशेष मॉडल के आधार पर केन्द्रीय स्तर पर तैयार की गई है।

केन्द्रिय नियोजन की पद्धति का व्यापक रूप से प्रयोग सोवियत संघ में किया गया है। भारत ने भी द्वितीय पंचवर्षीय योजना के आरंभ से नेहरू-महलानोबिस विकास-नीति के तहत सार्वजनिक क्षेत्र में भारी उद्योगों पर आधारित औद्योगिकीकरण का मार्ग ग्रहण किया था। तब से सातवीं पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्ष 1989-90 तक देश केन्द्रित नियोजन की पद्धति पर ही चलता रहा है, हल्लांकि सातवीं योजना (1985 -90) में कुछ राज्यों, जैसे कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, गुजरात आदि के विकेन्द्रित नियोजन की दिशा में कुछ कदम उठाये है। नीचे केन्द्रित व विकेन्द्रित नियोजन में मुख्य अंतर बतलाये गये है –

केन्द्रित नियोजन	विकेन्द्रित नियोजन
(i). इसका निर्माण सीधे राष्ट्रीय स्तर पर योजनाधिकारीकरतेहै । फिरनिचले स्तरों जैसे.राज्यीय स्तर, जिला-स्तर आदि पर विकास-कार्य किये जाते है।	(i). इसका निर्माण वस्तुतः ग्राम-स्तर से आरम्भ होता है, फिर खण्ड या तालुका- स्तर व जिला स्तर पर योजनाएं -बनायी जाती है। तत्पश्चात् राज्यीय योजनाए बनती है और अंत में राष्ट्रीय योजना बनती है । अतः इसकी निर्माण प्रक्रिया केन्द्रित नियोजन से विपरीत होती है।
(ii). इसमें नियोजित विकास की वार्षिक दर का निर्धारण विनियोग की राशि व पूँजी-उपत्ति अनुपात (Capital-out-put ratio) तथा जनसंख्या की वृद्धि, आदि के आधार पर निकाला जाता है। इसमें समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाता है।	(ii). इसमें व्यष्टि-दृष्टिकोण से प्रारम्भ किया जाता है क्योंकि गांव की योजना कार्यक्रम व प्रोजेक्टों से चालू करके खण्ड स्तर पर, फिर जिला-स्तर पर, और अंत में राष्ट्रीय स्तर पर पहुंचते है। अतः इसमें विकास की दर का अनुमान बाद में लगाया जाता है।
(iii). इसमें राजनीतिक केन्द्रीकरण हो जाता है। केन्द्रके हाथों में आर्थिक सत्ता सिमट जाती है।	(iii). इसमें राजनीतिक विकेन्द्रीयकरण हो जाता है, अर्थात् पंचायती राज संस्थाओं, जैसे जिला परिषदों, पंचायत-समितियों व ग्राम-पंचायतों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।
(iv). यह ज्यादातर अधिनायक तंत्र में सफल हो पाती है जैसे रूस की साम्यवादी अर्थव्यवस्था	(iv).यह ज्यादातर लोकतंत्र में जनसहयोग के आधार पर संचालित होने पर अच्छे परिणाम देती है।
(v).इसका निर्माण अपेक्षाकृत सरल व शीघ्रगामी होता है।	(v).इसका निर्माण जटिल होता है तथा उसमें सम भी अधिक लगता है।
(vi). यह बहुधा आम जनता की आकांक्षाओं व अभिलाषाओं का पर्याप्त ध्यान नहीं रख पाती।	(vi).यह सर्वसाधारण की आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान दे पाती है।

इस प्रकार केन्द्रित व विकेन्द्रित दोनों प्रकार की योजनाओं के अपने-अपने लक्षण होते है। प्रत्येक देश को अपनी राजनीतिक व्यवस्था, आकार, विकास की अवस्था व आवश्यकताओं के अनुरूप नियोजन की पद्धति का चुनाव करना चाहिए। स्मरण रहे कि केन्द्रित व विकेन्द्रित दोनों प्रकार की योजना-पद्धतियों में राष्ट्रीय स्तर पर योजना होती है, लेकिन उसके बनने की प्रक्रिया में

अंतर होने के कारण उसमें गुणात्मक भेद पाया जाता है जो काफी महत्वपूर्ण होता है, विकेन्द्रित योजना केन्द्रित योजना का सहायक व पूरक होती है।

16.3 विकेन्द्रित नियोजन की कार्य पद्धति-तथा पंचायती राज संस्थाओं से संबंध:

(अ) योजना कैसे बनायी जाती है?

जैसा कि पहले कहा जा चुका है विकेन्द्रित नियोजन में योजना का निर्माण नीचे से ऊपर की और चलता है। इसमें हम ग्राम-स्तर से प्रारम्भ कर सकते है। अतः इसमें सर्वप्रथम गाँवों के लिए योजनाएं बनायी जाती है। इन ग्राम्य योजनाओं में खण्ड या तालुका-स्तर पर आवश्यक संशोधन करके खण्ड-योजनाएं (block plans) बनायी जाती है। आगे चलकर खण्ड-योजनाओं को इकट्ठा करके जिलेवार योजनाएं बनती हैं। यही कम आगे राज्य व केन्द्र-स्तर पर जारी रख कर राष्ट्रीय योजना का निर्माण होता है।

(i). खण्ड स्तर नियोजन (Block- level planning) :-

यदि गांवों के लिए पृथक योजनाएं न बनाकर सीधे खण्ड-स्तर पर ही योजना बनायी हो तो थोड़ा भिन्न तरीके से चलना होगा। पूर्व जनता शासनकाल में छठी पंचवर्षीय योजना के संशोधित प्रारूप (1978 -8 3) (उस समय योजना आयोग के उपाध्यक्ष डा.डी.टी.लकड़ावाला थे) में खण्डस्तरीय योजना के निर्माण के लिए यह आवश्यक माना गया था सर्वप्रथम उस खण्ड के भौतिक व आर्थिक साधनों, मानवीय साधनों, आधार ढांचें (इन्फ्रास्ट्रक्चर) की सुविधाओँ तथा संस्थागत व्यवस्थाओं का सर्वेक्षण कराया जाय। खण्ड-स्तर की योजना का वित्तीय आकार निर्धारित करने के लिए निम्न बातों पर ध्यान दिया जाय-(1) राज्य-योजना का कोई निश्चित प्रतिशत, जैसे 10% खण्ड-योजना के लिए नियत किया जाय, (ii) समन्वित ग्रामीण विकास के लिए स्वीकृत केन्द्रीय अनुदान, (iii) राज्यों द्वारा संचालित खण्ड स्तरीय स्कीमों के लिए धन की व्यवस्था, (iv) स्थानीय वित्तीय साधन, (v) संस्थागत कर्ज (बैंकों आदि से)

खण्ड-स्तर की योजना में निम्न कार्यक्रम शामिल किये जा सकते है :- (i) उत्पादन के कार्यक्रम, जनशक्ति-नियोजन व दक्षता-विकास, आधारभूत न्यूनतम आवश्यकताएं व संस्थागत-सहयता, (ii) विभिन्न इन्फ्रास्ट्रक्चर-विनियोग कार्यक्रमों के स्थान-चयन के लिए क्षेत्रीय नियोजन, (iii) प्रमुख प्रोजेक्टों व उनके सहायक प्रोजेक्टों के लिए स्थान-चयन, (iv) आधारभूत इन्फ्रास्ट्रक्चर की व्यवस्था तथा (v) संगठन की स्थापना। खण्ड स्तरीय नियोजन में अदक्ष श्रमिको को रोजगार प्रदान करने के लिए सार्वजनिक निर्माण कार्यो की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(ii). जिला-नियोजन के निर्माण की प्रक्रिया :-

जिला-नियोजन की प्रक्रिया या तो खण्ड-योजनाओं को एकल करने व उनकी छानबीन व संशोधन के माध्यम से हो सकती है, अथवा, सीधे जिला-स्तर पर ही योजना बनायी जा सकती है। यह परिस्थितियों के अनुसार तय किया जा सकता है। चूँकि हमारे देश में जिला-नियोजन,

खण्ड-नियोजन तथा ग्राम-नियोजन के लिए कोई निर्धारित व सुनिश्चित स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाया हैं, इसलिए राज्य-स्तर से नीचे योजना के विकेन्द्रीकरण के कई स्वरूप सुझाए जा सकते है। यदि जिले को नियोजन की इकाई माना जाता है तो सीधे जिला-योजना बनाने के लिए निम्न पहलुओं पर ध्यान देना होगा-

(अ) स्थानीय साधन-उनका वर्तमान उपयोग व विकास की सम्भावनाएं,

(आ) स्थानीय लोगों की आवश्यकताएं

(इ) उस जिले में विभिन्न खण्डों के विकास में असमानताएँ तथा उनको नियोजन की प्रक्रिया के द्वारा कम करने के उपाय

(ई) मानवीय साधनों का विकास तथा बेरोजगार व अल्परोजगार को कम करने के उपाय

(उ) निर्धनता कम करने के उपाय

(ऊ) योजना के निर्माण व क्रियान्वयन में लोगों की भागीदारी के सुनिश्चित करने के उपाय।

इस प्रकार जिले की योजना को ठोस, विशिष्ट, व्यावहारिक व लचीला रूप दिया जाना चाहिए। योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उचित मात्रा में वित्तीय साधनों को जुटाने तथा संस्थागत व तकनीकी परिवर्तनों के लिए तैयारी की जानी चाहिए।

इस प्रकार योजना चाहे किसी भी स्तर पर बनायी जाय, उसकी मूलभूत प्रक्रिया में नौतिक व आर्थिक साधनों का सर्वेक्षण, स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं का अनुमान, मानवीय साधनों का उपयोग, बरोजगारी व निर्धनता दूर करने के लिए ठोस कार्यक्रम, संस्थागत व तकनीकी परिवर्तन, योजना के लिए आवश्यक मात्रा में वित्त का प्रबंध, आदि शामिल होते हैं। यह तो विकेन्द्रित नियोजन की चुनी गई प्रक्रिया पर निर्भर करेगा कि उसे गांव से प्रारंभ करके ऊपर खण्ड व जिले की ओर लाया जाय, अथवा खण्ड-स्तर से प्रारम्भ करके जिले की और लाया जाय, अथवा प्रारम्भ ही जिला-स्तर से किया जाय। विकेन्द्रित नियोजन के व्यापक रूप में इसे ग्राम-स्तर से प्रारम्भ करके खण्ड-स्तर, राज्य-स्तर व राष्ट्र-स्तर की तरफ लाते है।

(ब) योजना की मशीनरी कैसी होती है?

विकेन्द्रित नियोजन की मशीनरी का भी कोई एक निश्चित व अंतिम स्वरूप नहीं होता। यह पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना पर भी निर्भर करता है। हम जानते है कि गाँवों में ग्राम-सभा व ग्राम-पंचायतें होती है। ग्राम-पंचायतों में सरपंचों सदस्यों का सीधा चुनाव हो सकता है, अथवा केवल सदस्यों का प्रत्यक्ष चुनाव तथा सरपंच का पत्यक्ष चुनाव (स्वयं चुने हुए सदस्यों द्वारा) हो सकता है। खण्ड या पंचायत-समिति के अध्यक्ष सदस्यौं का भी प्रत्यक्ष चुनाव हो सकता है, अथवा केवल सदस्यो का प्रत्यक्ष चुनाव हो सकता हो सकता है। जिला-परिषद् के लिए केवल सदस्यों का प्रत्यक्ष चुनाव हो सकता है, अथवा अध्यक्ष का प्रत्यक्ष चुनाव कराया जा सकता है।

ग्राम-पंचायतों, पंचायत समितियों व जिला-परिषदों की नियोजित विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

जिला-परिषदों में पार्लियामेण्ट के सदस्य, एम एल.ए गण जिला परिषद् के अध्यक्ष, आदि भी होते है। स्मरण रहे कि जिला-परिषद ग्रामीण क्षेत्रों के लिए योजनाएं बनाती है। लेकिन सम्पूर्ण

जिले की योजना का काम जिला-नियोजन-बोर्ड (District Planning Board) को करना होता है। इसलिए जिला-नियोजन-बोर्ड को जिला-परिषद् की योजनाओं की समीक्षा करनी होती है तथा उनको जिले की तथा राज्य की योजना से समन्वित करनी होती है तथा उनको जिले की तथा राज्य की योजना से समन्वित व समायोजित करना होता है। इनको जिले के नगरीय क्षेत्रों की योजनाओं से भी समन्वय स्थापित करना होता है। जिला-नियोजन-बोर्डों के सदस्यों में निम्न शामिल होते है-एक राज्य का मंत्री (अध्यक्ष), एम पी, एम एल ए गण, जिला परिषदों के कुछ सदस्य, आदि। जिलाधीश इसका सदस्य-सचिव होता है । इस प्रकार नियोजन की मशीनरी में जिला-परिषद् व जिला-नियोजन-बोर्ड के परस्पर संबंध पर ध्यान दिया जाना चाहिए। ("पंचायती राज व जिला-नियोजन" पर जिला मजिस्ट्रेटों / जिलाधीशों की वर्क शॉप की रिपोर्ट, जुलाई, 1988 में प्रस्तावित) इसे चित्रवत् रूप में आगे दर्शाया गया है।

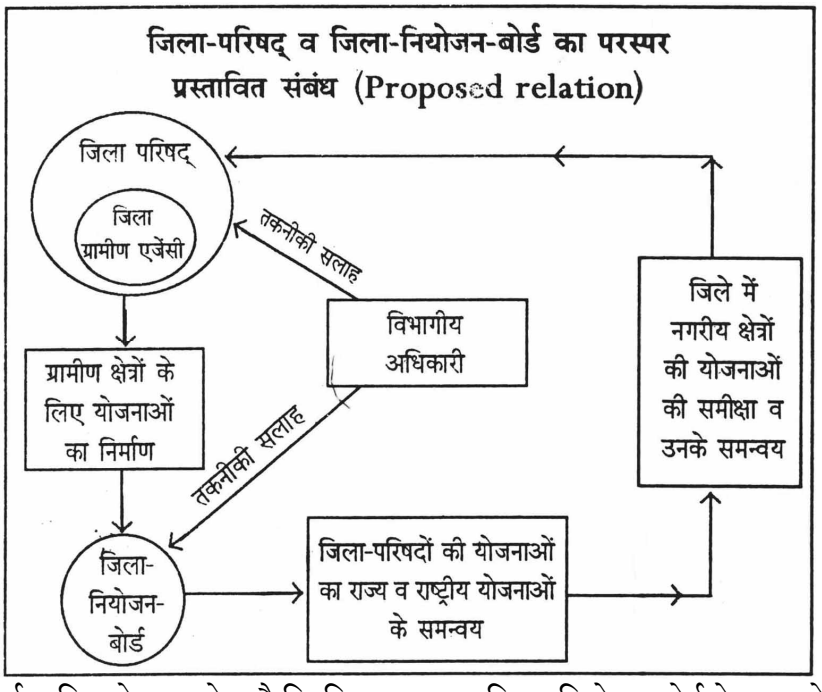

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट होता है कि जिला-स्तर पर जिला-नियोजन-बोर्ड के गठन से एक तरफ जिला-परिषदों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए निर्मित योजनाओं का राज्यीय योजनाओं से समन्वय बैठाना तथा दूसरी तरफ नगरीय योजनाओं के साथ भी समन्यय बैठाना सम्भव होगा। अतः तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित सदस्यों के रूप में इनको पूरा सहयेग मिलना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए योजना बनाने में जिला-ग्रामीण-विकास-एजेंसियों (DRDAs) का यगेदान भी मिलता है, जो ऊपर जिला-परिषद् के साथ छोटे गोले में दर्शाया गया है।

बोध प्रश्न- 1

1. विकेन्द्रित नियोजन का अर्थ लिखिए।
2. विकेन्द्रित नियोजन के तीन प्रमुख उद्देश्य या लाभ लिखिए।
3. .केन्द्रित व विकेन्द्रित नियोजन में तीन आधारभूत अंतर करिए।

4. जिले की योजना बनाने में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए,?
5. जिला नियोजन बोर्ड के गठन व कार्य का परिचय दीजिए।

16.4 विकेन्द्रित नियोजन की दिशा में प्रगति व अनुभव

भारत में विकेन्द्रित नियोजन पर जितनी चर्चा हुई है उसके मुताबिक व्यवहार में काम नहीं हो पाया है । इसमें स्थानीय संस्थाओं का चुनावों के आधार पर निर्माण किया जाता है, उनको अधिकार व वित्तीय साधन हस्तान्तरित किये जाते है, और सरकारी अधिकारी तथा जन-प्रतिनिधि परस्पर सहयोग करके विकास-कार्य सम्पन्न करते है । यह क्रिया ऊपर से तो सुगम लगती है लेकिन व्यवहार में इसका क्रियान्वयन काफी जटिल होता है । हमारे देश में सभी राज्यों में विकेन्द्रित नियोजन व पयाचती राज संस्थाओं का विकास एक सा नहीं हो पाया है । इस दिशा में कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, आध प्रदेश आदि में विशेष प्रगति हुई है । इनके अनुभवों का लाभ उठाकर भविष्य में अना राज्य भी विकेन्द्रित नियोजन की पद्धति को अपना सकते है । नीचे कर्नाटक, पश्चिम बंगाल व गुजरात व विकेन्द्रित नियोजन की प्रगति का उल्लेख किया जाता है ।

(i). **कर्नाटक मे विकेन्द्रित नियोजन :-** कर्नाटक में विकेन्द्रित नियोजन का प्रयोग 1987-88 से किया गया था। वहां मंडल-पंचायतों व जिला-परिषदों के प्रत्यक्ष चुनाव होते है । ग्रामसभा में गांव के 18 वर्ष से ऊपर के सभी व्यक्ति एकत्र होकर समय-समय पर विकास की समस्याओं पर विचार-विमर्श करते है । एक मण्डल में कई गांव होते है जिनकी कुल जनसंख्या8 हजार से 12 हजार के बीच होती है । इनके प्रधान व उप-प्रधान चुने हुए सदस्यों द्वारा चुने जाते है । इनमें स्त्रीयों की सदस्यता का अंश 25 %, तथा अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के सदस्यों व्य अंश 18 % रखा गया है । जिला-परिषदों को जिलों के विकास व कल्याण-प्रशासन में सर्वोच्च स्थान दिया गया है । इनके चुने हुए सदस्य ही अध्यक्ष व उपाध्यक्षों का चुनाव करते है । स्मरण रहे कि कर्नाटकमॉडल में ग्राम-पंचायतों के गठन का प्रावधान नहीं रखा गया है । जहां तक तालुक पंचायत समिति का प्रश्न है वह नामजद सदस्यों की संख्या होती है जिसमें मंडलों के सभी प्रधान, एम एल ए गण वगैर होते है । यह समिति विभिन्न मंडलों में समन्वय स्थापित करती है ।

कनार्टक में जिला-परिषद से ऊपर जिला-नियोजन-बोर्ड जैसी कोई शीर्ष संस्था नहीं रखी गयी है, जैसा कि पहले प्रस्तावितकार्यक्रम सुझाया गया था। जिला-परिषद् का अध्यक्ष इसका कार्यकारी अध्यक्ष, व जिला-विकास-कार्यक्रम-समिति का चेयरमैन होता है । यह योजना के सभी क्षेत्रों में विकास की समीक्षा करती है । कर्नाटक में 1988 -8 9 में जिला व मंडल स्तरों पर योजनाएं बनायी गयी थी। राज्य की योजना के व्यय का जिलेवार-विवरण जनसंख्या (50%), विभिन्न आर्थिक क्रियाओं के पिछड़ेपन, कमजोर वर्गों की समस्याओं तथा विशिष्ट क्षेत्रीय समस्याओं के आधार पर किया गया है । इसी प्रकार जिलों से मंडलों की ओर वित्तीय साधनों का आबंटन जनसंख्या (50%) क्षेत्रफल (15 %), सूखा क्षेत्र, खेतिहर मजदूरों की संख्या (10%) तथा प्रतिव्यक्ति सृजित साधन (10%) के आधार पर किया गया है । इस

प्रकार कर्नाटक में जिला-परिषद् जिला-स्तर पर नियोजन का निर्माण व क्रियान्वयन करने वाली अन्तिमन प्रमुख सस्था मानी जाती है। कनार्टक में राजकीय वित्त आयोग की स्थापना काफी प्रावधान है। यह राष्ट्रीय वित्त आयोग के नमूने पर स्थापित किया जाता है और यह राज्य सरकार की ओर से जिलों को वित्तीय साधनों के हस्तांतरण के बारे में सलाह देता है। कर्नाटक में जिला-ग्रामीण-विकास समितियों को (DRDAs) को समाप्त कर दिया गया है।

कर्नाटक मॉडल की एक विशेषता यह है कि इसमें जिलाधीश के अधिकार-क्षेत्र में केवल कानून व व्यवस्था ही रखे गये है, तथा विकास-कार्य जिला-मुख्य-सचिव को सौंपा गया है। कर्नाटक में विकेन्द्रित नियोजन की दिशा में ठोस प्रगति हुई है और इससे ग्रामीण विकास में मदद मिली है। इस मॉडल को अन्य राज्यों में भी अपनाने की आवश्यकता है। योजना आयोग के पूर्व उपाध्यक्ष श्री रामकृष्ण हेगड़े ने कर्नाटक में विकेन्द्रित नियोजन की आधारशीला रखने में भूतकाल में काफी योगदान दिया है।

(ii). **पश्चिम बंगाल में विकेन्द्रित नियोजन**-वैसे साम्यवाद में 'केन्द्रीयता' पर विशेष बल दिया जाता है, लेकिन पश्चिम बंगाल में 1978 में पंचायती व्यवस्था में श्रीगणेश कर दिया गया था। वहां पंचायतों के चुनाव दलगत आधार पर 1978, 1983 व 1988 में किये जा चुके है। वहां भूमि सुधारों के अंतर्गत बटाईदारों को भूमि व साख प्रदान की गई है तथा सीलिंग से ऊपर की भूमि का भूमिहीन श्रमिको में बंटवारा किया गया है।

पश्चिम बंगाल में विकेन्द्रित नियोजन की वास्तविक शुरूआत 1985-86 से हुई जो सातवीं पंचवर्षीय योजना का प्रथम वर्ष था। इस प्रकार वहां सातवीं योजना के दौरान विकेन्द्रित नियोजन के अनुभव प्राप्त हुए है। वैसे 1978 के पंचायती चुनावों के बाद ग्रामीण निर्माण कार्यो का नियोजन तथा ग्रामीण श्रमिको को जुटाने के काम पंचायतों के सुपुर्द कर दिये गये थे बाद में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी-कार्यक्रम, सूखा-राहत कार्यक्रम आदि भी पंचायतों को सौंपे गये। वहां जिला व खण्ड-स्तर पर नियोजन-मशीनरी काम कर रही है। वहां जिले की योजनाओं के माध्यम से ग्रामीण व शहरी जनता को समन्वित विकास करने का प्रयास किया गया है। पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या यह भी ध्यान दिया गया है। वहां साख-योजना बनाने पर विशेष ध्यान दिया गया है। कुल मिलाकर पश्चिम बंगाल में क्षेत्रीय नियोजन (Area Planning) की ओर नियोजन को मोड़ा गया है। 1985-86 की जिला-योजनाएं काफी कुशलता से तैयार की गई थी। लेकिन वित्तीय साधनों के अभाव तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के कारण वांछित सफलता नहीं मिल पायी है। वहां जिला-स्तर पर जिला-नियोजन व समन्वय समिति (DPCC) तथा जिला-नियोजन-समिति (DPC) होती है। DPCC में केबिनेट मंत्री अध्यक्ष होता है तथा एम पी व एम एल ए इसके सदस्य आदि होते है। DPCC के होने से नौकरशाही का प्रभाव बूढा'है और पंचायती राज संस्थाओं का कम हुआ है। अत: पश्चिम बंगाल को कर्नाटक के अनुभव से लाभ उठाना चाहिए जहां जिला-नियोजन-बोर्ड की सर्वोपरि होता है।

(iii). **गुजरात में विकेन्द्रित नियोजन :-** हाल में भारत सरकार द्वारा गुजरात के जिला-नियोजन की काफी सराहना हुई है। वहां विकेन्द्रित नियोजन का प्रयोग 1980- 81 से आरम्भ हो गया था। 1980-81 से 1988 -89 तक की अवधि में वहाँ जिला-नियोजन-बोर्डो को लगभग 288 करोड़ रुपये आवंटित किए गये जिनका उपयोग करके वहाँ क्लास-रूप, जल-पूर्ति कार्यक्रम, लिंक-सड़कें, विद्युतीकरण, आदिकार्य सम्पन्नकिये गये है। वहाँ राज्य-स्तर के जिला-स्तर तथा जिला-स्तर से तालुका-स्तर की ओर कोषों का आवंटन निश्चित सूत्र के आधार पर किया जाता है। वहाँ पिछड़े तालुको के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है। वहाँ राज्य की योजना का लगभग 173 व्यय जिला-स्तर की स्कीमों के लिए निर्धारित किया जाता है। इस एक-तिहाई का 2 0% जिला-नियोजन बोर्डो द्वारा चलायी जाने वाली व कार्यान्वित की जाने वाली योजनाओं के लिए नियत होता है तथा शेष 80% सामान्य जिला-स्तर की स्कीमों के लिए होता है। जों 20% राशि जिला-नियोजन-बोर्डो के पूर्ण-अधिकार क्षेत्र में होती है उसमें से 15% विवेकाधीन व्यय-राशि (discretionary outlay) होती है तथा 5% प्रेरणा-व्यय-राशि (incentive outlay) होती है। प्रेरणा-राशि के लिए यह शर्त होती है कि उसमें आम-जनता का भी योगदान होगा जो तालुका के पिछड़ेपन के अनुपात में होगा। जैसे सबसे ज्यादा पिछड़े तालुका के लिए आम जनता को योगदान 1 0% तथा सरकार का 90% उससे कम पिछड़े क्षैत्र के लिए जनता का 25% तथा सरकार का 75%, तथा सबसे कम पिछड़े क्षेत्र के लिए जनता का योगदान 50%, तथा सरकार का भी 5%। इस प्रकार प्रेरणा-व्यय-राशि की व्यवस्था से स्थानीय योगदान का अवसर भी उत्पन्न हो जाता है। इससे स्थानीय स्तर पर जनता की सीधी भागीदारी होने से उसकी रूचि विकास-कार्यक्रमों में काफी बढ़ जाती है। गुजरात के विकेन्द्रित नियोजन में जिला-स्तर पर राजकीय योजना का 1/3 अश आवंटित किया जाना एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात है। इससे सिद्ध होता है कि वहाँ प्रशासनिक सत्ता, अधिकार, कोषों आदि के हस्तान्तरण की दिशा में ठोस कदम उठाये गये है। प्रेरणा-व्यय-राशि की व्यवस्था से लोगों की स्थानीय नियोजन नें प्रत्यक्ष भागीदारी हो गई है। आशा है, आठवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में अन्य राज्य भी कर्नाटक, पश्चिम बंगाल व गुजरात आदि के जिला-नियोजन व पंचायती राज संस्थाओं के अनुभवों से लाभ उठाकर इस दिशा में अग्रसर होंगे।

16.5 विकेन्द्रित नियोजन के मार्ग मे बाधाएं व समस्याएं

भारत में विकेन्द्रित नियोजन के बड़े गुणगान हुए है, लेकिन वास्तविक जगत में इसकी प्रगति बहुत-कुछ नगण्य ही रही है। हमें उन कारणों की जानकारी करनी चाहिए जिन्होंने इसके मार्ग में बाधाएं पहुंचायी है ताकि भविष्य में उनको दूर करके विकेन्द्रित नियोजन को अधिक साकार रूप दिया जा सके तथा सफल बनाया जा सके। भारत में विकेन्द्रित नियोजन के मार्ग में निम्न प्रकार की बाधाएं आयी है

(i). **राज्य स्तर से नीचे की इकाइयों को संवेधानिक इकाई न मानकर मात्र प्रशासकि इकाई ही माना गया :-** प्रोफेसर सी टी.कुरियन का मत है कि भारत में दो-स्तर वाले

संघवाद में राज्यों को तो केन्द्र से जोड़ दिया गया, लेकिन राज्य-स्तर से नीचे की इकाइयों को केवल प्रशासनिक इकाइयां ही माना गया। उनको संविधान की दृष्टि से कोई 'स्टेटस' नहीं मिली, जिससे देश में विकेन्द्रित नियोजन की सम्भावनाएं सदैव सीमित ही बनी रही। यदि जिला, तालुका, आदि नीचे के स्तरों की इकाइयों को 'संवेधानिक स्टेटस ' मिलती तो इन स्तरों पर नियोजन को भी निस्संदेह बल मिलता।

(ii). **पंचायती चुनावों का राजनीतिकरण :-** भारत में पंचायती राज-संस्थाओं जैसे जिला-परिषदों ,पंचायत-समितियों तथा ग्राम-पंचायतों के चुनाव दलगत राजनीति के आधार पर कराये गये जिससे उनमें जनता के सच्चे प्रतिनिधि न पहुंच कर पार्टियों के नुमाइंदे ही पहुंच पाये, परिणामस्वरूप इनको पर्याप्त बल नहीं मिल पाया। यदि इनके चुनाव दलविहीन पद्धति पर कराये जाते तो सम्भवत अधिक योग्य व ईमानदार व्यक्ति पहुंच पाते और इनके विकास में मदद मिलती। पंचायती राज संस्थाओं के चुने हुए सदस्यों ने पुराने शक्ति-संतुलन व आर्थिक अंतरों को बनाये रखा जिससे इनके विकास का मार्ग प्रशस्त न हो सका। इममें स्थापित व निहित स्वार्थ वाले वर्ग का प्रभुत्व बना रहा जो विकास में बाधक था। कई बार राज्य सरकारों ने इनके चुनाव समय पर नहीं कराये और उनको बार-बार टालने से ये निष्क्रिय व निष्प्राण होती गयी।

(iii). **राज्य-स्तर पर विभागीय प्रशासन अपना वर्चस्व छोड़ने को तत्पर नहीं-**विकेन्द्रित नियोजन के मार्ग में एक बाधा यह भी रही कि राज्य-स्तर पर नौकरशाही व अफसरशाही (bureaucracy) अपने अधिकार व सत्ता नीचे के स्तरों पर जन-प्रतिनिधयों को साँपने से सदैव कतराती रही है । अतः सत्ता का नीचे की ओर हस्तान्तरण (devolution of Power) नहीं हो पाया। कर्नाटक में इस दिशा में प्रगति हुई, जिससे पंचायती राज संस्थाओं के प्राणों का संचार हुआ। लेकिन देश के सभी लोगों में ऐसा नहीं हो पाया। वास्तव मे सरकारी तंत्र व जनतंत्र के परस्पर सहयोग व तालमेल में कई बाधाएं रही है ।

(iv). **पंचायती राज संस्थाओं के पास पर्याप्त कोषों का अभाव :-** जिस प्रकार राज्य केन्द्र पर आश्रित रहते, उसी प्रकार पंचायती राज संस्थाएं धन व वित्तीय साधनों के लिए राज्य-सरकारों के मुंह की ओर देखती रहती है । उनके पास कोषों का अभाव पाया जाता है तथा उनके पास काम की जिम्मेदारियां अधिक होती है । उनके स्वयं के साधन भी सीमित होते है । वे उत्पादक परिसम्पत्तियों का निर्माण करके अपनी आमदनी नहीं बढ़ा पाती है । पिछड़े क्षेत्रों का विकास-कार्य काफी जटिल होता है । वहाँ इन्फ्रास्ट्रक्चर का अभाव पाया जाता है । पिछड़े क्षेत्रों के लोग कम आय के कारण अपना वित्तीय सहयोग भी नहीं दे पाते। इस प्रकार पर्याप्त कोषों के अभाव में इनकी प्रगति रूक जाती है ।

(v). **संस्थागत व सामाजिक परिवर्तनों का अभाव-**जब तक गांवों में भूमि-सुधार ठीक से लागू नहीं होतें तब तक वहां भूमि का आवंटन असमान बना रहता है । गांवों की आर्थिक व्यवस्था में सामन्ती तत्वों का बोलबाला होता है । महाजन, व्यापारी व प्रशासन ग्रामीण जनता के आर्थिक हितों की अनदेखी करते रहते है । गांवों में बरोजगारी, अल्परोजगार,

निर्धनता व असमानता वहां की अर्थव्यवस्था के अटूट अंग बन चुके है। अतः संस्थागत व सामाजिक परिवर्तन की लहर के बिना पंचायती राज संस्थाएं भी स्वार्थी व सिद्धान्तहीन लोगों के प्रभाव क्षेत्र में जकड़ी रहती है और अपने मूल उद्देश्य से भटक जाती है।

इस प्रकार विकेन्द्रित नियोजन के मार्ग में कई प्रकार की बाधाएं व कठिनाइयां रही है और इनमें से आज भी कुछ कायम है अत: सामाजिक - आर्थिक तथा संवेधानिक व प्रशासनिक ढांचों में आधारभूत परिवर्तन करके ही उनके विकास का मार्ग खोला जा सकता है।

बोध प्रश्न- 2

1. कर्नाटक में विकेन्द्रित नियोजन की प्रमुख बातें लिखिए।
2. विकेन्द्रित नियोजन के मार्ग में तीन मुख्य बाधाएं क्या रही है?
3. गुजरात में विकेन्द्रित नियोजन की प्रगति ने भारत सरकार को सबसे ज्यादा क्यों प्रभावित किया?

16.6 विकेन्द्रित नियोजन की सफलता की आवश्यक शर्तें

हमने अब तक के विवेचन में देखा कि विकेन्द्रित नियोजन के प्रति देश में एक प्रकार का भावनात्मक लगाव है। गांधीजी के 'ग्राम-स्वराज ' की अवधारणा में भी राजनीतिक व आर्थिक विकेन्द्रीकरण की मान्यताएं विद्यमान है। भारत में प्राचीन काल में पंचायत-प्रणाली सक्षम व कुशल ढंग से काम करती थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता पर बल दिया गया है। अतः प्रश्न उठता है कि नियोजन के चार दशक बाद तक भी देश विकेन्द्रित नियोजन की दिया में सराहनीय प्रगति क्यों नहीं कर सका और इसकी सफलता की आवश्यक शर्तें क्या है? हम ऊपर इसके मार्ग में आने वाली बाधाओं का उल्लेख कर चुके है। यहाँ इसकी सफलता के लिए आवश्यक आधारों का विवेचन किया जायेगा।

(i). **सर्वप्रथम केन्द्र से राज्यों की तरफ सत्ता, अधिकारों, निर्णय की प्रक्रिया व कोषों का पर्याप्त व संतोषजनक हस्तान्तरण किया जाय :-** राज्यों से जिलों व इनके नीचें के स्तरों पर राजनीतिक व आर्थिक सत्ता व साधनों का हस्तान्तरण करने से पूर्व यह आवश्यक है कि पहले केन्द्र से राज्यों की तरफ इस प्रकार के हस्तान्तरण पूरे किये जाएं। विद्वानों का मत है कि आज भी राज्यों के ऊपर दायित्व से ज्यादा हें, लेकिन उनको निभाने के लिए उनके पास पर्याप्त कोष नहीं है, और वे केन्द्र पर बहुत ज्यादा आश्रित है। इसलिए केंन्द्र-राज्य सम्बन्धों को अधिक व्यवस्थित करने की आवश्यकता है।

(ii). **योजना आयोग व योजना-तंत्र का पुनर्गठन :-** योजना आयोग को स्वायत्त संस्था बनाना चाहिए ताकि इसके कार्यों में सरकारी हस्तक्षेप न हो। साथ में राज्य-स्तर, जिला-स्तर व इसके नीचे के स्तरों पर भी योजना की इकाइयाँ स्थापित की जानी चाहिए। अभी तक सभी राज्यों व संघीय प्रदेशो में योजना-बोर्ड काम नहीं कर रहे है। दीर्घकालीन नियोजन पर तो काम केवल महाराष्ट्र, तमिलनाडु,, जम्मू व कश्मीर, कर्नाटक व आन्ध्र प्रदेश में ही कुछ सीमा तक हो पाया

है। अतः पहले सभी राज्यों के स्तर पर नियोजन-तंत्र को स्थापित किया जाना चाहिए ताकि उनके आर्थिक साधनों का सर्वेक्षण करके उनके उचित संरक्षण, विदोहन व उपयोग की बात सोची जा सके।

(iii). **स्थानीय संस्थाओं-**जिला-परिषदों, पंचायत समितियों व ग्राम-पंचायतों का गठन किया जाय तथा उनके चुनाव निश्चित अवधि में करवाए जाएँ ताकि वे सक्रिय बनी रहें। इसमें ढील न दी जाय, अन्यथा इनके प्रति कोई गम्भीरता नहीं रह जायगी। इसको प्रशासनिक अधिकार व वित्तीय अधिकार सौपे जाएँ तथा लोगों का भविष्य स्वयं उनके हाथों में दे दिया जाय ताकि वे अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर सकें। सरकारी प्रशासन व स्थानीय निकायों के कार्यो में पूरा ताल-मेल बैठाया जाय। सरकार के प्रशासनिक विभागों में राज्य-स्तर व जिला-स्तर के बीच समन्वय स्थापित किया जाय; तथा जिला-स्तर पर कार्यरत विभिन्न विभागों में परस्पर समन्वय स्थापित किया जाय। इन प्रक्रियाओं को क्रमश : लम्बवत् एकीकरण (Vertical integration) व क्षैक्षित एकीकरण (Horizontal integration) कहा जाता है।

(iv). **विकेन्द्रित नियोजन की सफलता तभी संभव हो सकती है जब गाँवों में भूमि-सुधार कार्यक्रम पूर्णतया लागू हो :-** कुछ लोगों का विचार है कि जब तक भूमि-सुधार लागू नहीं किये जाते तब तक गाँवों में सामन्ती वातावरण बना रहेगा और भूमि के वितरण की असमानता बनी रहने से सम्पनं भूस्वामी, जमींदार महाजन, साहूकार व व्यापार किसान का शोषण करते रहेंगे, और स्थानीय संस्थाओं में इन्हीं का प्रभाव व प्रभुत्व बना रहेगा। ये विकास के लाभ हडपते जायेंगे जिससे गाँवों के निर्धन लोग इनसे वंचित रह जायेंगे। इसलिए गाँवों के गरीबों का राजनीतिक संगठन होना चाहिए जो उनको उचित लाभ दिला सकें। सहकारी सुयुक्त खेती, चकबंदी व काश्तकारी सुधारों पर उचित ध्यान दिया जाना चाहिए। भूमि -सुधारों जैसे संस्थागत सुधारों की आवश्यकता इतनी अधिक है कि कुछ विचारक यह भी मानते है कि इनके होने पर राजकीय स्तर तक ही नियोजन काफी रहेगा और अन्य नीचे के स्तरों पर नियोजन को ले जाने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

(v). **जनता की भागीदारी,** स्थानीय वित्तीय साधनों का उपयोग व स्थानीय आवश्यकताओं में कड़ी स्थापना की जानी चाहिए। इससे लोगों की विकास-कार्यों में रूचि बढ़ेगी और वे पदाधिकारियों के कार्यों पर कड़ी निगरानी रख सकेंगे।

(vi). **नियोजन की इकाई सुनिश्चित की जानी चाहिए :-** वैसे विकेन्द्रित नियोजन की अन्तिम व आधारभूत इकाई गाँव होती है, लेकिन परिस्थितियों व साधनों को ध्यान में रख कर जिला व खण्ड पंचायत या 'गाँवों के एक समूह (cluster of villages) को नियोजन की इकाई के लिए चुना जा सकता है। लेकिन जो भी इकाई चुनी जाय उसके आर्थिक साधनों का समुचित सर्वेक्षण आवश्यक होता है ताकि उचित विकास-कार्यक्रम निर्धारित किये जा सके।

(vii). **इसमें कोई दो मत नहीं कि विकेन्द्रित नियोजन की भावी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इसमें भाग लेने वाले सभी व्यक्ति-**सरकारी अधिकारी व जन-प्रतिनिधि-अपने सीमित स्वाथों से ऊपर उठकर लोककल्याण की भावना से ओत-प्रोत हों।

अन्यथा भ्रष्टचार के व्याप्त रहने से इसकी प्रक्रिया निष्प्राण व निर्जीव बनी रहेगी। अतः राजनीतिक दलों, ऐच्छिक संगठनों व स्थानीय नेताओं तथा नागरिको को राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि मान कर कार्यरत रहना पड़ेगा।

(viii). स्थानीय आर्थिक साधनों जैसे उपजाऊ भूमि, जल-स्रोत, बन-सम्पदा व खनिज-सम्पदा का सार्वजनिक उपयोग सुनिचित किया जाय:-

डा.वी.एम.राव का मत है कि यदि गाँव के आर्थिक साधन जैसे भूमि जल, वन, खनिज-पदार्थ आदि स्थानीय या बाहरी व्यक्तियों के अधिकार में चले जाते है तो विकेन्द्रित नियोजन के लिंएविकास (growth) के क्षेत्र में बहुत कम काम रह जायगा। इसलिए गाँव के अप्रयुक्त उत्पादन साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व रहने से स्थानीय नियोजन का महत्व बढ़ जाता है। लेकिन निजी स्वामित्व की दशा में भी स्थानीय नियोजन साधनों के उपयोग को नियमित व नियन्त्रित अवश्यक कर सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि विकेन्द्रित नियोजन क़ी सफलता के लिए कई प्रकार की शर्तो का पूरा होना आवश्यक है। सच पूछा.जाय तो इसमें 'सम्पूर्ण क्रान्ति ' (Total revolution) की भावना निहित है इसके दायरे में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व प्रशासनिक तथा नैतिक सभी, के क्षेत्र आ जाते है। किसी भी बिन्दु पर कमी रह जाने से उसकी सफलता सन्देह के घेरे में आ जाती है।

16.7 भारत मे विकेन्द्रित नियोजन का भविष्य व सुझाव

हमारे देश में 1989 में आम चुनावों से पूर्व कांग्रेस (आई) सरकार ने संविधान में संशोधन करके पंचायती राज संस्थाओं को सुदढ करने का कार्यक्रम अपनाया था। इसके अंतर्गत पंचायतों के निर्धारित अवधि में चुनाव कराने, तथा इनमें स्त्रियों, अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों को उचित प्रतिनिधित्व देने पर जोर दिया गया था। यह संशोधन अब पारित हो चुका है। पंचायती राज व विकेन्द्रित नियोजन के मूलभूत मुद्दे अभी विद्यमान है और इस दिशा में कदम उठाये जाने का इन्तजार है।

भारतीय लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए यहाँ विकेन्द्रित नियोजन को सफल बनाना होना। इसका कोई विकल्प नहीं प्रतीत होता। लेकिन इसके लिए भारी.प्रयास भी आवश्यक होगी। सच पूछा जाय तो यह काम ऊपर से काफी सरल व सुगम लगता है, क्योंकि इसमें वस्तुतः एक ही बात निहित है कि स्थानीय संस्थाओं को सत्ता, शक्ति, निर्णय का अधिकार व कोषों का सच्चे अर्थ में हस्तान्तरण किया जाय। अतः केन्द्र-स्तर की ओर, तथा राज्य-स्तर से जिला-स्तर व अन्य नीचे के स्तरों की ओर ये हस्तान्तरण शीघ्र व पूर्ण रूप में सम्पन्न किये जाएं।

स्मरण रहे कि विकेन्द्रित नियोजन को एक समुचित दायरे में नहीं देखना है; जैसे ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमो समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय विकास रोजगार कार्यक्रम, सूखा सम्भवित्तक्षेत्र कार्यक्रम, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, आदि-को सम्पन्न करने-: लिए ही इसका उपयोग नहीं करना है, बल्कि इसे एक व्यापक व गहन कार्यक्रम व प्रक्रिया के रूप में लेना है

जिससे राष्ट्र का सम्पूर्ण राजनीतिक व आर्थिक कार्यकलाप बदला जा सकै, और लोगों का जीवन-स्तर ऊचा किया जा सके। अत: इसे केवल ग्रामीण क्षेत्रों में राहत-कार्यक्रमों को चलाने व जनता की भागीदारी को बढ़ाने का मामूली साधन न मानकर सम्पूर्ण सामाजिक परिवर्तन ' का सूत्रधार मानना चाहिए।

भारत में विकेन्द्रित नियोजन का भविष्य उज्जवल बनाया जा सकता है। वर्तमान सरकार ने आठवीं योजना में विकेन्द्रित नियोजन का दृष्टिकोण अपनाया गया है।

सुझाव :- योजना-आयोग के पूर्व सदस्य डा.सी.एच.हनुमन्ध राव ने अपने एक लेख में विकेन्द्रित नियोजन के लिए निम्न पाँच कार्यक्षेत्रों (areas of action) पर बल दिया है, ताकि इसकी सफलता सुनिश्चित की जा सके। ये कार्यक्षेत्र इस प्रकार है :

(i). **केन्द्रचालित योजनाओं में उचित संशोधन-**योजनाकाल में केन्द्रचालित योजनाओं की संख्या बढ़ने से राज्यों की स्वायत्तता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। इनका सम्बन्ध कृषि, ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा व निर्धनता-निवारण से होता है। इसलिए भविष्य में इन पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए, तथा इनकी संख्या यथासम्भव कम की जानी चाहिए। इससे स्थानीय नियोजन का महत्व बढ़ जायगा। नियोजन में केन्द्र का वर्चस्व भी कम हो जायगा।

(ii). **प्रादेशिक स्तर पर नियोजन के उपाय :-** प्रादेशिक असमानताएं कम करने के लिए, प्रादेशिक स्तर पर नियोजन अधिक प्रभावपूर्ण होता है। बड़े राज्यों के पिछड़े क्षेत्रों के विकास में जिला व खण्ड-नियोजन से काफी लाभ मिल सकता है तथा उनकी स्थानीय समस्याएं हल की जा सकती है। निर्धनता-निवारण कार्यक्रमों को लागू करने में स्थानीय नियोजन से मदद मिलती है।

(iii). **चुनावी स्तर होने चाहिएं ताकि निर्धनों को प्रतिनिधित्व मिल सके :-** प्राय: स्थानीय संस्थाओं में लघु व सीमान्त कृषकों, खैतिहार श्रमिकों, ग्रामीण कारीगरों,आदि के प्रतिनिधि पर्याप्त मात्रा में नहीं पहुंच पाते जिससे इनके हितों की रक्षा नहीं हो पाती। स्त्रियों, अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों को उचित आरक्षण देकर इनके हितों पर ध्यान देना सम्भव हो सकता है।

(iv). **ग्रामीण निर्थनों की शोषण से मुक्ति होनी चाहिए :-** देहातों में आज भी भूस्वामी, साहूकार व ठेकेदार गरीब लोगों का शोषण करते। अभी तक वहाँ संरचनात्मक परिवर्तन नहीं हो पाये है। इसलिए भूमि-सुधार, न्यूनतम मजदूरी कानून व संस्थागत साख की व्यवस्था करके इनको शोषण से मुक्त करना चाहिए। एक शोषणविहीन समाज की रचना ही विकेन्द्रित नियोजन की सफलता का आधार प्रस्तुत कर सकती है।

(v). **जनता की भागीदारी :-** निर्धनों का संगठित करके उनके हितों की रक्षा की जा सकती है। निहित स्वार्थी वर्ग से उनको संघर्ष के लिए तैयार किया जा सकता है। विकेन्द्रित नियोजन के लिए जनता की भागीदारी का विकास करना बहुत जरूरी है। लोग योजना के निर्माण व

क्रियान्वयन में भाग लेते है और कई बिन्दुओं पर विकास-कार्यों के सम्बन्ध में अपनी राय प्रकट करते है। इससे उनमें आत्म-विश्वास व सामाजिक चेतना उत्पन्न होती है।

आशा है वर्तमान सरकार विकेन्द्रित नियोजन की दिशा में ठोस कदम उठायेगी और उसको आवश्यक वैधानिक आधार दे पायेगी। भारत का आर्थिक भविष्य लोकतंत्र, सहकारिता, विकेन्द्रीकरण वं संस्थागत तथा तकनीकी परिवर्तनों की सफलता पर निर्भर करता है। ग्रामीण विकास में जिला-नियोजन की अहम भूमिका हो सकती है और होनी चाहिए।

बोध प्रश्न- 3

1. विकेन्द्रित नियोजन को सफल बनाने के लिए तीन उपाय बताइए।
2. संस्थागत सुधारों के अभाव में विकेन्द्रित नियोजन के मार्ग में किस 'प्रकार बाधा उपस्थित होती है?
3. क्या भारत में विकेन्द्रित नियोजन का भविष्य उज्जवल.है?

16.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

[1] Amitava Mukherjee, Denaturalised Planning, I &II, A rejoined, in the Economic Times of Dec.12 &14, 1989.

[2] Arun Ghose, Decentralised Planning: West Bengal Experience EPW, March 26, 1988.

[3] C.H. Hanumantha Rao, Decentralised Planning : An overview of Experience and Prospects ,EPW, February 25,1989

[4] L.C. Jain, Central Planning and Karnataka's Decentralised Planning, II Mainstream, May 2, 1987, pp.16-17.

[5] Report of Workshop of District Magistrates/collectors on Responsive Administration, Panchayati Raj and District Planning, July 1988.(mimeographed)

[6] V.M.Rao Decentralised Planning: Priority Economic Issues EPW, July 24, 1989.

16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

[1] विकेन्द्रित नियोजन में 'नीचे से ऊपर की ओर:' होता है; जैसे ग्राम-योजना, खण्ड-योजना, जिला-योजना, राज्य-योजना तथा अन्त में राष्ट्रीय योजना। इसे 'ग्रासरूट प्लानिंग' भी कहते है।

[2] (i) कुछ जिलों की जनसंख्या व क्षेत्र से अधिक होने से इनका पृथक नियोजन आवश्यक,

(ii). सभी लोगों को विकास की मुख्य धारा में लाना सम्भव,

(iii). स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप नियोजन।

[3] (i) केन्द्रित नियोजन ऊपर से नीचे तथा विकेन्द्रित नियोजन 'नीचे से ऊपर की ओर'

(ii). केन्द्रित नियोजन में 'समष्टि दृष्टिकोण' तथा विकेन्द्रित मे व्यक्ति-दृष्टकोण

(iii). प्रथम की सफलता के लिए अधिनायकतंत्र तथा द्वितीय के लिए लोकतांत्रिक पद्धति व सहकारिता तथा सक्रिय जन सहयोग आवश्यक।

[4] जिले के भौतिक व आर्थिक साधनों का सर्वेक्षण व अध्ययन, लोगों का आधारभूत आवश्यकताएं, बेरोजगारी, निर्धनता व खण्डवार असमानताएं कम करने के कार्यक्रमों "पर जोर इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास संस्थागत व तकनीकी परविर्तन,वित्त व्यवस्था आदि। जिला-नियोजन बौर्ड व जिला-परिषद का सफल संचालन व परस्पर सहयोग आवश्यक

[5] **जिला-नियोजन-बोर्ड का गठन :--** इसका अध्यक्ष राज्य का.मंत्री जिलाधीश-सदस्य-सचिव; एम.पी.एम.एल.ए. गण जिला-परिषद के चुने हुए सदस्य (रोदेशन से), पंचायत-समीतियों के अध्यक्ष (रोदेशन सें), जिला-परिषद् का अध्यक्ष, नगरीय प्राधिकरणों के अध्यक्ष, आदि।

जिला नियोजन बोर्ड जिला-परिषद् द्वारा तैयार ग्रामीण योजना की समीक्षा करेगा तथा उसका समन्वय राजकीय योजना से स्थापित करेगा। इसी प्रकार वह नगरीय योजनाओं की भी समीक्षा करेगा और उनका भी राजकीय योजना से उचित समन्वय स्थापित करेगा।

बोध प्रश्न-2

[1] (i) वहाँ मंडल पंचायतों व जिला-परिषदो के ही चुनाव होते है। ग्राम--पंचायतों का गठन नहीं किया जाता, (ii) वहाँ जिला-नियोजन-बोर्ड सर्वोपरि होते है (iii) वहाँ जिलाधीश कानून व व्यवस्था सम्हालते है तथा जिला-मुख्य-सचिव (District chief secretary) विकास व नियोजन का काम देखते है।

[2] (i) राज्य-स्तर से नीचे की इकाइयों को सदैव मात्र प्रशासनिक इकाई माना गया, उन्हें संवैधानिक स्टेट्स नहीं मिली।

(ii). राजकीय नौकरशाही उनको प्रशासनिक सत्ता व अधिकार सौपने से कतराती रही,

(iii). इनके पास कोषों का अभाव बना रहा।

[3] गुजरात में 1980-81 से अब तक जिला-नियोजन-बोर्डो को काफी धनराशि दी गई है। यह राज्य स्तर पर प्रस्तावितयोजना-व्यय का 1/3 होती है। इसका 20% जिला-नियोजन-बोर्ड अपने निर्णयानुसार व्यय कर सकते है। जिसका 5 %अंश प्रेरणा-व्यय माना जाता है जिसके साथ जनता का योगदान भी शामिल किया जाता है। जिला-नियोजन-बोर्डों द्वारा व्यय किये जाने से ग्रामीण सडकों, स्कूलों, पेयजल आदि की सुविधा बढ़ाने में प्रगति हुयी है।

बोध प्रश्न- 3

[1] (i) केन्द्र से राज्यों की ओर सत्ता, अधिकार, निर्णय की प्रक्रिया व कोषों का पर्याप्त व संतोषजनक हस्तान्तरण किया जाय,

(ii). योजना-तत्र का पुर्नगठन,

(iii). स्थानीय संस्थाओं का गठन व निश्चित अवधि के बाद अनिवार्य चुनाव।

[2] संस्थागत सुधारों के अभाव में भूमि-सुधार नहीं होने से भूमि के वितरण में असमानता बनी रहती है। गाँवों में साधन सम्पन्न व साधनहींन दो वर्ग बन जातें है। स्थानीय संस्थाओं में सम्पन्न वर्ग का वर्चस्व हो जाता है, जिससे वे गरीबों के हितों की उपेक्षा करते है और केवल अपने हितों का पोषण करते रहते है। इससे विकेन्द्रित नियोजन कामयाब नहीं हो पाता।

[3] भारत में विकेन्द्रित नियोजन का भविष्य उज्जवल बनाया जा सकता है। इसके लिए राजनीतिक व प्रशासनिक सत्ता, अधिकार निर्णय, की प्रक्रिया व कोषों का हस्तान्तरण सही रूप में जिला व इससे नीचे के स्तरों पर करना होगा। निर्धनों को शोषण से मुक्त करना होगा, उनका राजनीतिक संगठन भी करना होगा और स्थलीय विकास-कार्यों में जनता की विकसित करनी होगी, ताकि ग्रामीण निर्माण के कायं सम्पन्न किये जा सकें एवं कृषि, कुटीर उद्योग, सड़क, शिक्षा, चिकित्सा, पेयजल, आवास, आदि की सुविधाएं बढ़ सकें।

इकाई 17

भारत में शिक्षा का विकास

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 संरचना की विशेषतायें
17.3 संरचना का विकास व शिक्षा
17.4 कृषि संरचना पर शिक्षा का प्रभाव
17.5 औद्योगिक संरचना एवं शिक्षा
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें
17.9 निबन्धात्मक प्रश्न

17.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य कृषि व औद्योगिक संरचना के विकास में शिक्षा के योगदान के महत्व को बताना है। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप इन प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो जाएंगे.

* कृषि एवं औद्योगिक संरचना के विकास में शिक्षाकैसे एक महत्वपूर्ण योगदान करती है ?
* सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था में संरचना सेवाओं को प्रदान करने की विभिन्न विधियाँ।

17.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम सर्वप्रथम यह देखेंगे कि संरचना से तात्पर्य क्या है, संरचना की विशेषतायें क्या है? तथा शिक्षा संरचना उद्योगों के विकास में कैसे योगदान कर सकती है। इसके उपरान्त हम कृषि व औद्योगिक संरचना पर शिक्षा के प्रभाव का अलग-अलग अध्ययन करेंगे।

17.2 संरचना की विशेषतायें

संरचना किसी देश की पूंजी सम्पत्ति का एक हिस्सा होतीहै। इसको सामाजिक ऊपरी पूंजी के नाम से जाना जाता है जो प्रत्यक्ष उत्पादक पूंजी से अलग होता है। संरचना से हमारा तात्पर्य उन उत्पादको को मिलने वाली सेवाओं से होता है जोकि वास्तविक जीवन में यातायात, संचार, उर्जा, जल आपूर्ति, सिंचाई तथा विकास व्यवस्था से तथा संरचना उद्योग जैसे- कोयला, रसायनिक खाद,

सीमेन्ट तथा लोहा आदि से होता है। परन्तु जैसे कि योगस्योन का क्यन है कि सीधा निष्कर्ष यह है कि सामाजिक ऊपरी पूंजी वस्तुओं का एक सेट नहीं अपितु सम्पत्तियों का एक सेट है। "संरचना की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह बाह्य' बचतों का स्रोत है। इसी कारण एडम् स्मिथ ने संरचना के प्रावधान को सरकार के द्वारा किए जाने वाले कार्यो में रखा है। एडम स्मिथ का कहना था कि उनके अतिरिक्त सरकार अन्य उत्पादकता करने में कम सक्षम है। अतः उसको निजी क्षेत्र के लिये छोड़ा जाना चाहिये अर्थात् उसको अदृश्य हाथ के लिये छोड़ दिया जाना चाहिये। जब एक सड़क का निर्माण होता है तो इसका लाभ उन समस्त देश वासियों को होना है जो उस सड़क मार्ग पर रहते है। जब एक ऊर्जा संचार का सृजन किया जाता है तो उससे उन समस्त लोगों को लाभ पहुंचता है जो उससे लाभ प्राप्त कर सकते है। सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त ने वस्तुओं का विभाजन निजी वस्तु तथा सार्वजनिक वस्तु में किया गया है। निजी वस्तुयें वे वस्तुयें होती है जिनका प्रयोग कुछ विशेष व्यक्तियों तक ही सीमित होता है या जो आम जनता को प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध नहीं हो पाती। जबकि सार्वजनिक वस्तुओं का प्रयोग साधारण जन मानस को प्राप्त होता हैं और इस प्रकार इसका लाभ देश में अधिकतम देशवासियों को होता है। संरचना के लिये प्रदान की गयी सेवायें इस प्रकार की सार्वजनिक वस्तुओं में आती है। प्रो. रैगनर नर्कसे ने इस प्रकार की पूंजी की एक और विशेषता यह बतायी है कि इसके अंतर्गत बड़े स्तर पर मूल्यवान संरचनाओं का जन्म होता है। इस प्रकार इन मूल्यवान सेवाओं को प्रदान करने में सरकार का महत्व अत्यधिक है। विकासशील देशों में जहां आमतौर पर पूंजी की कमी है और देश के तीव्र विकास के लिये आधुनिक तकनीकी की आवश्यकता पड़ती है, सरकार पर इन सेवाओं को प्रदान करने का दायित्व अधिक आ जाता है। इसकी तुलना में विकसित राष्ट्रों में स्थिति ऐसी नहीं है।

17.3 संरचना का विकास व शिक्षा

अब हम यह देखेंगे कि शिक्षा का प्रसार संरचना के विकास को किस प्रकार प्रभावित करता है। किसी समाज में ज्ञान का भण्डार उसके निवासियों में निहित होता है तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होता जाता है। इस प्रक्रिया में ज्ञान के भण्डार में वृद्धि तथा उसकी किस्म में सुधार भी होना चाहिये ताकि मनुष्य में, संसार में होने वाली बातों को समझने की शक्ति अधिक हो सके और इस प्रकार मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों को और अधिक नियंत्रित करने के योग्य बन सकें ताकि संसार की तीव्र गति से बढ़ती हुयी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। शिक्षा को इसी प्रकार की भूमिका निभानी है। अतः इसके अंतर्गत अधिकाधिक नवयुवको के लिए पढ़ाई लिखाई का प्रावधान होना चाहिये तथा सेवारत लोगों के लिये ऐसा प्रशिक्षण दिया जाये कि वे उत्पादन विधि को भली भाँति समझ सकें। जब संसार के विकसित देशों में आर्थिक विकास की लहर आई तो इन देशों में उत्पादन के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के नव निर्माण देखने में आये जिंनका आधार वैज्ञानिक आविष्कार था। धीरे-धीरे यह नव आविष्कार वैज्ञानिक जीवन के अभिन्न अंग बन गये और इनको सुचारू रूप से लागू किया जाने लगा। इन तमाम उपलब्धियों के लिये एक उच्चतम शिक्षा प्रणाली का होना आवश्यक था जिसके अंतर्गत गणित इत्यादि के साथ--साथ प्राकृतिक व सामाजिक शक्तियों को

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने की क्षमता होनी चाहिये। इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली का विकास विकसित राष्ट्रों में प्रारम्भिक अवस्था में धीमा था। परन्तु बाद में इसमें तेजी आयी और अन्त में इन देशों में शिक्षा व्यापक रूप से फैल गयी तथा विश्वव्यापी प्रारम्भिक शिक्षा स्थापित हो गयी।

विकासशील राष्ट्रों में, जो पाश्चात्य शक्तियों की गुलामी में थे, शिक्षा वा प्रसार एक छोटे से क्षेत्र तक ही सीमित रहा जिसका मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी सरकार 'शासन चलाने के लिये अधिकारी तथा क्लर्क बनाना था। साथ ही साथ इसके द्वारा लाभ क्षेत्र को पहुंचा जो आधुनिक उद्योगों में थे तथा विदेशी व्यापार में लगे थे।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इन राष्ट्रों में अपनी सरकारें आयी तो शिक्षा के विकास पर ध्यान दिये जाने की बात की जाने लगी ताकि देश का आर्थिक विकास सम्भव हो सके। दुर्भाग्यवश शिक्षा का विकास उस गति से न हो पाया जैसा कि होना चाहिये था क्योंकि सरकार ने इसको प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथ में न रखकर इसमें विकास तथा वृद्धि की जिम्मेदारी निजी क्षेत्र पर डाल दी। अपने निहित स्वार्थों के कारण निजी संस्थाओं तथा व्यक्तियों ने शिक्षा के प्रसार व उसकी विभाग को आम जनता तक पहुंचाने में सफल न हो सके) शिक्षा मुख्य रूप से उच्च शिक्षा केवल कुछ ही लोगों तक सीमित होकर रह गयो और यही कारण है कि आज देश के सामने बड़ी समस्या शिक्षा के प्रसार की है। इसकी कमी के कारण आम जनता में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उन्माद है जो हमारी समस्त आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं का मूल कारण है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय शिक्षा की स्थिति को देखने के पश्चात् अब हम यह अध्ययन करेंगे कि शिक्षा के प्रसार का प्रभाव कृषि तथा औद्योगिक विकास की संरचना पर कैसे पड़ता है। भारत वर्ष में शिक्षा की दर 1981 की जनगणना के अनुसार 36.12% जो 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 74.4% हो गयी है।

यदि हम यह प्रश्न करें कि शिक्षा से क्या लाभ होता है तो हमें निम्नलिखित दो बातों पर ध्यान देना होगा।

(1) शिक्षा व्यक्ति विशेष की कार्यशक्ति में वृद्धि करती है।

(2) यह सरंचना की मांग को बढ़ाती है जैसे ऊर्जा तथा सिंचाई की खपत रासायनिक खाद तथा जल आपूर्ति इत्यादि। इसी प्रकार शिक्षा के प्रसार का प्रभाव यातायात, संचार सड़क यातायात के साधनों का प्रयोग बिजली के सामान का प्रयोग, लोहे की वस्तुओं का प्रयोग, घर बनाने के लिये सीमेन्ट आदि का इस्तेमाल करना पड़ता है।

17.4 कृषि संरचना पर शिक्षा का प्रभाव

कृषको के जीवन-स्तर में सुधार लाने में शिक्षा का उतना ही महत्व है, जितना कि आर्थिक विकास का। आर्थिक विकास का प्रभाव यह होता है कि कृषक अपने बच्चों को शिक्षा के लिये स्कूल भेजते है तथा उन्हें उच्च शिक्षा भी प्रदान कराने की चेष्टा करते है, जिससे उनकी कार्य क्षमता में वृद्धि होती है तथा उनकी योग्यता में सुधार होता हो इसका प्रभाव यह होता है कि किसान नये-नये तरीको को अपनाता है और कृषि में उत्पादकता को बढ़ाता है। वास्तव में शिक्षा तथा तकनीक का

विकास ही कृषि क्षेत्र में सुधार का एकमात्र साधन है। इसीलिये ये कहा जाता है कि आर्थिक विकास एक जटिल प्रगतिशील प्रक्रिया है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ शिक्षा जैसे कारकी का भी अधिक महत्व है। इस प्रकार के कृषक न केवल कृषि में सुधार में सफल होता है। यहाँ पर यह बात समझने के योग्य है कि शिक्षा से होने वाले लाभों को आसानी से तथा सही तरीके से मापा नहीं जा सकता। शिक्षा पर व्यय एक विनियोग के रूप में है जिसका लाभ दीर्घकाल में होता है, अर्थात् उसको हम मानवीय पूँजी में विनियोग कह सकते है। बच्चों में माता-पिता अपनी वर्तमान आवश्यकताओं की कटौती करके जो शिक्षा पर व्यय करते है उसका लाभ दीर्घकाल में प्राप्त होता है क्योंकि शिक्षा मनुष्य को न केवल अधिक उत्पादक बना देती है, वरन् उसे पारिवारिक क्षेत्र में ऐसे मूल्य प्रदान करती है जिससे वो अधिक सुखी तथा सम्पन्न जीवन व्यतीत कर सकता है। यह है वर्तमान त्याग का भविष्य में लाभ।

अब प्रश्न ये उठता है कि कृषि के आधुनिकीकरण में शिक्षित कृषको का क्या योगदान है?

शिक्षित युवक निम्नलिखित लाभ प्राप्त कर सकता है :-

(i). शिक्षा से उसे कृषि के बारे में सही समुचित सुचनायें प्राप्त होती है। वह यह जान लेता है कि सुविधायें कहीं, कब और कैसे प्राप्त हो सकती है?

(ii). शिक्षित कृषक लागत तथा मूल्य-विश्लेषण करके यह जान सकता है कि उसके लिए कौन सी सूचना अधिक लाभदायक हो सकती है?

(iii). शिक्षित कृषक इन सूचनाओं को शीघ्रता से प्राप्त कर सकता है तथा उसका प्रयोग कृषि में लाभदायक रूप से कर सकता है।

(iv). शिक्षित कृषक बोयी जाने वाली फसलों का अनुकूलतम समन्वय प्राप्त कर सकता है, तथा किस प्रकार की आधुनिक कृषि विधि अथवा तकनीक को कम से कम लागत पर लागू कर सकता है।

(v). यदि किसी कृषि यंत्र के आयात का मामला हो तो इसके बारे में भी यह निर्णय ले सकता है और कृषि में महान नव-प्रवर्तन ला सकता है।

(vi). कृषि विधियों को कम से कम लागत लागू करके अधिकतम उत्पादन किया जा सकता है।

इस प्रकार शिक्षा से कई महत्वपूर्ण बातें निकलती है, जैसे :-

(अ) नव प्रवर्तन प्रभाव, जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

(ब) साधनों का सही रूप से आवंटन और जिसका लाभ व केवल अधिक उत्पादन में मिलता है, बल्कि फसल को अच्छे से अच्छे दामों पर बेचने में सहायता मिल सकती है।

(स) इसका प्रभाव कृषको की तथा खेत में काम करने वाले शिक्षित मजदूरों के जीवन-स्तर में सुधार के रूप में भी होता है जैसे-अच्छा स्वास्थ्य, नियंत्रित परिवार, उच्च तथा वैज्ञानिक विचार आदि।

(द) इन शिक्षित कृषको के सम्पर्क में जो आस-पास के दूसरे कृषक अथवा रहने वाले आते है वे नयी पद्धतियों तथा जीवन-निर्वाह के नये तरीकें का अनुसरण कर सकते है और वे भी किसी हद तक लाभ उठा सकते है। निम्नलिखित चार्ट में शिक्षा के प्रभाव को विस्तार से दर्शाया गया है।

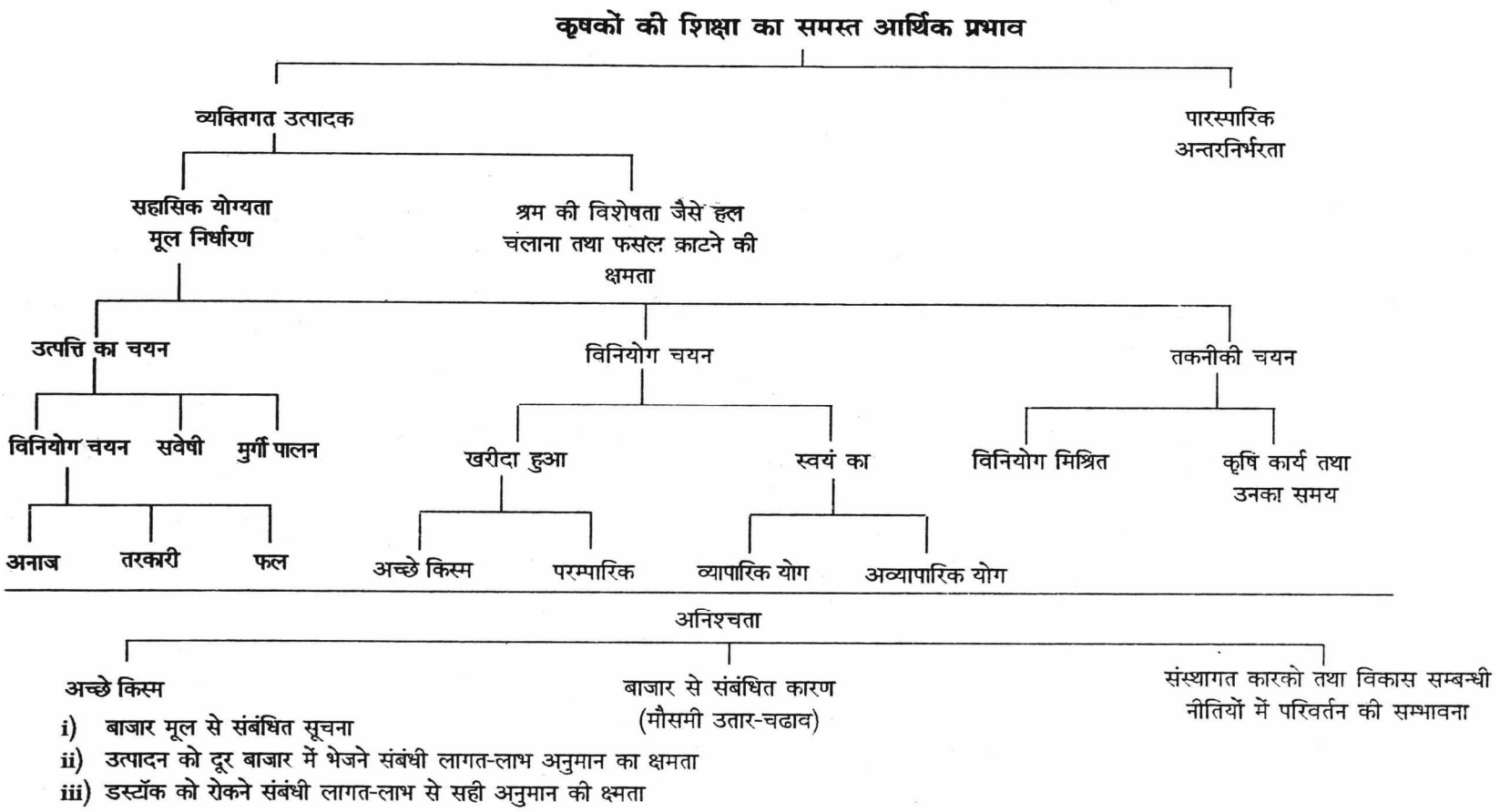
कृषकों की शिक्षा का समस्त आर्थिक प्रभाव
व्यक्तिगत उत्पादक
पारस्पारिक अन्तरनिर्भरता
सहासिक योग्यता मूल निर्धारण
श्रम की विशेषता जैसे हल चलाना तथा फसल काटने की क्षमता
उत्पत्ति का चयन
विनियोग चयन
तकनीकी चयन
विनियोग चयन
सवेषी
मुर्गी पालन
खरीदा हुआ
स्वयं का
विनियोग मिश्रित
कृषि कार्य तथा उनका समय
अनाज
तरकारी
फल
अच्छे किस्म
परम्पारिक
व्यापारिक योग
अव्यापारिक योग
अनिश्चता
अच्छे किस्म
बाजार से संबंधित कारण (मौसमी उतार-चढाव)
संस्थागत कारको तथा विकास सम्बन्धी नीतियों में परिवर्तन की सम्भावना
i) बाजार मूल से संबंधित सूचना
ii) उत्पादन को दूर बाजार में भेजने संबंधी लागत-लाभ अनुमान का क्षमता
iii) डस्टॉक को रोकने संबंधी लागत-लाभ से सही अनुमान की क्षमता

इसके विपरीत पारंपरिक कृषि में जहां कृषि तकनीक में नयी विधियां नये विचारों को नहीं लागू किया जाता और न वहां के कृषको म्रे शिक्षा, आधुनिकीकाण तथा नयी-नयी खोजों तथा सूचनाओं का लाभ प्राप्त नहीं होना, उसकी दशा अब भी पिछडे हुये साम्य-स्थिति में है। मुख्य रूप से दो कारक महत्वपूर्ण है, (अ) प्राकृतिक कारक अथवा प्राकृतिक, जिनके कारण कृषि को हानि पहुँचती है, और कृषक अपने को असहाय पाता है। (ब) दूसरे, बाजार में मांग-पूर्ति शक्तियों का फायदा उठाने में छोटे तथा सीमान्त कृषक असमर्थ रहते है। वह अपनी परिस्थितियों के अनुसार अपने उत्पादन का उचित मूल्य नहीं पाते। छोटे तथा सीमान्त कृषक अपनी कृषि में किसी प्रकार का जोखिम नहीं उठाना चाहते और वे उन्हीं पद्धतियों तथा फसलों को छांटते है जिनसे उसको निश्चित आय प्राप्त हो सके। क्योंकि उनको बाजार के बारे में सही सूचना भी नहीं प्राप्त हो पाती अतः वे आधुनिक चीजों को इस्तेमाल नहीं करते है ओर लकीर के फकीर बने रहते है। आज भी उसके उत्पादन का मुख्य ध्येय उपभोग है अर्थात् वर्ष भर के लिये अपने तथा अपने परिवार के लिये खान-पान जुटाना तथा अगली फसल के लिये बीज का प्रावधान करना। इसके विपरीत बड़े किसान कृषि में आधुनिकीकरण का पूर्ण लाभ उठाते है समय सें तथा सही सूचना प्राप्त करते है। सिंचाई, नये-नये बीज तथा अन्य आधुनिक विधियों का प्रयोग करके न केवल अधिक उत्पादन करता है, वरन् उसको बाजार में प्रचलित मूल्य अनुसार बेचकर अच्छे दाम प्राप्त करता है। सरकार के द्वारा चलाई गई योजनाओं तथा सुविधाओं का लाभ वास्तव में यही प्राप्त करता है तथा छोटे तथा सीमान्त कृषक जिनको यह लाभ मिलना चाहिये अथवा जिनके लिये यह योजनायें बनाई गई है वे उनसें वंचित रह जाते है, यह हमारा दुर्भाग्य है, और इस पर नियोजको को ध्यान देना चाहिये या इस विडम्बना का मुख्य कारण छोटे तथा सीमान्त कृषको में शिक्षा का अभाव है। केवल शिक्षा का प्रसार व आधुनिकीकरण से ही इनकी दयनीय दशा में सुधार लाकर आर्थिक दोहरेपन को दूर किया जा सकता है।

(अ) आर्थिक संरचना,

(ब) नियंत्रित बाजारी पद्धतियां,

(स) कृषि क्षेत्र में सहकारिता को प्रोत्साहन देना, तथा सहकारी साख समितियों तथा व्यापारिक तथा अन्य बैको द्वारा कृषको को साख प्रदान करवाना ताकि वे साहूकार तथा महाजनों के चंगुल से छूट सके।

(द) कृषि संबंधित लाभकारी सूचनायें, दूरदर्शन, रेडियो आदि से कृषको तक पहुंचाना। कृषि मेले का आयोजन करना इत्यादि।

इस प्रकार की सूचनायें विभिन्न कृषक समूहों के लिये भिन्न-भिन्न करनी पड़ेगी। अर्थात् छोटे तथा सीमान्त कृषको के लिये इसका आयोजन अलग तरीके से करना होगा। उनको नयी पद्धति को अपनाने के लिये दूसरे तरीके से प्रोत्साहित करना होगा, जबकि बड़े तथा विकसित कृषको के लिए यह आयोजन दूसरे ढंग का होगा। और इसका उद्देश्य भी भिन्न होगा।

गाँव में प्रेरको को भेजना अधिक लाभदायक होगा, छोटे तथा सीमान्त किसानों के लिये जबकि दूसरे वर्ग के कृषको के लिये हैंड बिल तथा अन्य छपी हुई सामग्री के द्वारा पहुंचाया जा

सकता है। यदि सरकार इन बिन्दुओं पर ध्यान दे तो शिक्षा तथा नये संचार-माध्यमों से सभी प्रकार के कृषको को लाभ हो सकता है।

अन्त में निष्कर्ष यही निकलता है कि सही रूप से शिक्षा का प्रसार तथा संचार साधनों का उचित प्रयोग हमारी कृषि की समस्याओं का एकमात्र समाधान हो सकता है। यदि कुछ कृषक नयी पद्धति अथवा नये तरीके अपनाते है तो उसका प्रभाव अन्य कृषको पर अवश्य पड़ेगा और इसको हम प्रदर्शन-प्रभाव कह सकते है। इस प्रभाव से वशीभूत होकर छोटा किसान भी पूंजी बाजार का लाभ उठा सकता है। तथा नयी-नयी आर्थिक संरचनाओं से लाभ प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार जो कृषक खेत में काम करते है वे कृषि शोध में भी महान योगदान दे सकते है। वे नयी पद्धतियों के प्रभाव का अध्ययन करके उनसे उत्पन्न परिणामो को अथवा उनसे उत्पन्न कठिनाइयों को शिक्षा-संस्थाओं में ले जाकर कृषि-शोध में योगदान दे सकते है। इस प्रकार कृषि में नये-अन्वेषणों को लागू करना एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे न केवल कृषि लाभ उठाती है बल्कि कृषि शोध की दिशा मे भी परिवर्तन ला सकती है। शिक्षको तथा शोधकर्ताओं को यह समझना चाहिये कि हम किसानों से भी बहुत कुछ सीख सकते है।

आधुनिक कृषि विनियोग के चयन तथा शिक्षा के संबंध का निम्न प्रकार दिखाया जा सकता है।

आधुनिक विनियोग = f(शिक्षा)

यह देखा गया है कि अधिक शिक्षित रसायनिक खाद तथा अधिक उर्वरक बीज तथा सिंचाई का अच्छा इस्तेमाल कर सकता है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते है कि शिक्षा का महत्व कृषि में अत्यधिक है। यह तथ्य एक गतिशील कृषि में और अधिक लागू होता है। इस प्रकार हम यह कह सकते है कि शिक्षा तथा आधुनिकीकरण के द्वारा ही कृषि का सही ढंग से विकास हो सकता है। अधिक शिक्षा का प्रभाव यह होगा कि कृषक अधिक आधुनिक बातों की मांग करेंगे, अधिक ऊर्जा का प्रयोग करेंगे तथा कृषि संवार एवं सूचना का प्रयोग सही ढंग से करके कृषि उत्पादन बढ़ाकर भारतीय अर्थव्यवस्था को सही मायनों में विकास की ओर अग्रसर करेंगे।

17.5 औद्योगिक संरचना एवं शिक्षा

ऊपर के भाग में हम यह देख चुके है कि शिक्षा किस प्रकार के कृषि में क्षेत्र में उन्नति का माध्यम बन सकती है तथा संचार व्यवस्था का समुचित उपयोग कर सकती है। इसी प्रकार औद्यौगिक संरचना के लिये भी शिक्षा का महत्व है। शिक्षा के औद्योगिक श्रमिको को नई तकनीकी ज्ञान होता है। उसमें सोचने की क्षमता बढ़ती है तथा एक शिक्षित नये अन्वेषणों के प्रति अधिक जागरूक होता है।

हमे विदित है कि शिक्षा के कारण नई-नई औद्योगिक संरचनाओं की मांग बढ़ती है। इस संबंध में हम यह कह सकते है कि इस प्रकार की संचरना उन क्षेत्रों में होती है वहां इसकी मांग विदित है अर्थात् जहां पर औद्योगिक विकास की परिस्थितियां उत्पन्न है। यहां पर झ सुविधाओं को प्रदान करने से हमारा औद्योगिक ढांचा अधिक संतुलित हो पाता है। इस प्रकार का औद्योगिक विकास

हमारे देश के लिये अधिक उत्तम नहीं माना गया है। हमारे नियोजनको ने देश में सन्तुलित विकास करने की नीति अपनायी है। जिसके अंतर्गत हम उद्योगों को उन स्थानों पर ले जाना चाहते है जहां उनका अभाव है। यह तब ही संभव हो सकता है जब हम इन स्थानों पर औद्योगिक संरचना प्रदान करें तथा अन्य सुविधाओं को कम दरों पर दें।

विकसित राष्ट्रों में प्रथम प्रकार का औद्योगिक विकास मुख्य रूप से देखने में आता है। इन देशों के औद्योगिक संरचना के साथ-साथ शिक्षा के 'औद्योगिकीकरण में अधिक योगदान दिया है। सरकार का काम मांग के अनुसार केवल औद्योगिक संरचना को प्रदान कना था। शेष औद्योगिक विकास स्वयं होता रहा।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् विकासशील राष्ट्रों में भी इसी प्रकार की पद्धति को अपनाया गया तथा औद्योगिकीकरण के लिये प्रचलित मांग अनुसार संरचना का विकास किया जैसे ऊर्जा की पूर्ति, यातायात के साधन आदि। वास्तव में इसके परिणाम स्वरूप शहरी क्षेत्रों में अथवा बड़े-बड़े उद्योगों को आस पास विकास की गति बढ़ी। वहां पर अत्यधिक जनसंख्याका दबाव पड़ा और इन राष्ट्रों में भी असन्तुलित औद्योगिक क्किास ने दृढ़ता प्राप्त की। दूसरी ओर जब इन देशों ने अधिक उर्वरक किस्म के बीजों के इस्तेमाल के कारण कृषि क्षेत्र में विद्युत तथा ऊर्जा शक्ति की अधिक मांग बढ़ी तो ऊर्जा के उत्पादन में विकास हुआ। परन्तु विद्युत अथवा ऊर्जा का उत्पादन उस अनुपात में न हो सका जिसमें अनुपात में देश में इसकी मांग बढ़ी। परिणाम स्वरूप ऊर्जा की कमी के कारण पम्प सेट में चलने में बाधा आयी। जल कूप का पूर्णरूप से इस्तेमाल न हो सका जिससे न केवल कृषि उत्पादन वरन् औद्योगिक उत्पादन में भी कमी आयी।

इसके विपरीत पारम्परिक कृषि में जहां पुरानी पद्धति का प्रयोग जारी था तथा कृषको की शिक्षा का भी अभाव था वहां औद्योगिक संरचना की भाग कमजोर थी और इस क्षेत्रों में इसका कुप्रभाव यह हुआ कि उत्पादन में वृद्धि इतनी नहीं हुयी जितनी कि होनी चाहिये थी। सत्य तो यह है कि जब राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान तथा विश्व बैक जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थायें ऋण देने की योजनाओं पर विचार करते है तो इसमें मुख्य रूप से यह देखा जाता है कि इस योजना में उत्पादन बढ़ाने की भविष्य में संभावनायें कैसी है। यदि इनमें शिक्षा तथा आधुनिकीकरण का समावेश है तो योजना के स्वीकार करने की संभावनायें अधिक हो जाती है क्यों ऋण देने वाली संस्था तभी समय अपना पैसा जोखिम में डालेगी जब उसे संतुष्टि हो जायेगी कि यह योजना पर्याप्त रूप से उत्पादक है। दूसरे शब्दों में ये संस्थायें इस बात का अध्ययन करती है कि योजना में विनियोगों पर वापसी की दर कितनी है। ऐसा इसलिये है कि यह संस्थायें योजना की अवसर लागत पर ध्यान देती है और ऋण उसी योजना पर देती है जहां वापसी की दर अधिक हो। जिस योजना के विषय में यह देखा जाता है कि वहां संरचना अथवा ऊपर पूंजी की मांग कम होतीहै। अथवा अर्थ यह निकलता है कि यहं विकास की दर तथा विनियोग पर वापसी दर कम हो और ऐसी योजनाओं की स्वीकृति की संभावनायें कम हो जाती है।

परंतु योजना के स्वीकार करने की उपर्युक्त विधि बहुत अधिक उचित नहीं है। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि जिन क्षेत्रों में संरचना की मांग कम है अथवा विनियोग की वापसी दर कम है, वहां पर विकास की आवश्यकता अधिक होती है। यदि इन क्षेत्रों में अथवा इन योजनाओं पर विनियोग न

किया गया तो यह सदा के लिये अविकसित तथा पिछड़ा रहेगा जिसका प्रभाव सम्पूर्ण विकास पर अच्छा नहीं पड़ता। इसीलिये विकासशील देशों में आधुनिक सरकारें ऐसे क्षेत्र में अधिक विकास की संरचना प्रदान कर रही है और यही अर्थ संतुलित विकास नीति का। दूसरे शब्दों में उद्योगों को इन अविकसित क्षेत्रों में लाने का प्रयास किया जाता है। यही बात अंतर्राष्ट्रीय ऋण के विषय में भी कही जा सकती है जहां सरकार को अपने दृष्टिकोण को अधिक प्रभावशाली रूप से बताना पड़ता है। कभी-कभी ऐसा देखा गया है यदि संरचना के विकास में हस्तक्षेप न किया जाये तो किसी क्षेत्र में असंतुलित विकास हो जाता है। उदाहरण के लिये यातायात में यदि हम किसी प्रकार के एक यातायात का अधिक विकास कर देते है तथा दूसरे प्रकार के यातायात के साधनों में ऐसा विकास नहीं होता है तो यातायात के साधनों के समन्वय की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जिसमें परिणाम अच्छे नहीं होते। प्रो.आर.नर्कसे ने इसी कारण इस बात पर अधिक जोर दिया है कि देश के संतुलित विकास के लिये औद्योगिक संरचना की मांग का सृजन करना चाहिये। प्रोनर्कसे संतुलित विकास सिद्धांत के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध अर्थशास्त्री है। इस प्रकार की पद्धति में किसी अर्थव्यवस्था का समुचित विकास होता है तथा नयी तकनीकी तथा स्थानीय साधनों का समुचित प्रयोग संभव हो जाता है। केवल संरचना के प्रदान करने से आर्थिक विकास नहीं होता। वास्तव में यह संरचना विभिन्न प्रकार के उत्पादन में सहयोग करके देश के उत्पादन तथा उत्पत्ति में वृद्धि संभव करती है। जिसका प्रभाव यह होता है कि नई-नई वस्तुओं तथा विधियों की मांग उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इसी को त्वरक प्रभाव कहा जा सकता है। कुछ अर्थशास्त्री जैसे हर्षमैन ने इस सिद्धान्त का विरोध किया है। उनके अनुसार इस प्रकार के दुर्लभ साधनों का उचित प्रयोग नहीं होता है। औद्योगिक संरचना को बनाने में इस प्रकार विकासशील राष्ट्रों में जो साधन लगाये जाते हैं वे मांग की अपेक्षा अधिक होते हैं। इनके प्रभाव से उत्पादन उचित गति से नहीं बढ़ता है। अतः इस प्रकार के अर्थशास्त्री संतुलित विकास नीति में संशोधन के पत्र में है।

दुसरी ओर प्रो.नर्कसे का कथन है कि यदि हम कम विकसित क्षेत्रों में संरचना नहीं देते है तो, इससे उत्पादन में कमी आती है। और देश को हानि हो सकती है। यहां पर हमें यह भी समझना चाहिये कि असंतुलित विकास नीति से अमीर और अधिक अमीर तथा गरीब और अधिक गरीब हो जाता है। अथवा विकसित क्षेत्र और अधिक विकसित हो जाता है तथा अवकसित क्षेत्र और अधिक पिछड़ जाता है। दूसरी ओर संतुलित विकास नीति से कम विकसित क्षेत्र अधिक विकास करते है और वहां के गरीब निवासी के जीवन स्तर में सुधार आता हैं। दुर्भाग्यवश हमारे देश में विकास के उद्देश्यों के विपरीत असंतुलन विद्यमान है और यही कारण है कि देश में कम विकसित क्षेत्र है और वहां के निवासी आर्थिक कठिनाई को सहन कर रहे है। यदि हमारे नियोजक इस बिंदु पर अधिक ध्यान दे तो अर्थव्यवस्था का विकास अधिक संतुलित रूप से किया जा सकता है और सामाजिक न्याय के उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है। इस प्रकार इस नीति के अनुसार देश के विभिन्न क्षेत्र में संभावितविकास संभव हो सकेगा और देश के दुर्लभ साधनों का अनुकुलतम प्रयोग भी संभव हो जायेगा। उदाहरण के लिये यदि हम ऊर्जा के क्षेत्र को देखे तो इसके अंतर्गत हमें ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों को एक साथ लेकर चलना पडेगा। तभी हम इस गम्भीर समस्या का समाधान कर

सकेंगे। ऊर्जा के विभिन्न स्रोत बिजली, कोयला, हवा, आणविक, बायोगैस तथा सौर ऊर्जा आदि का समन्वित विकास करना होगा। यही बात अन्य क्षेत्रों में भी लागू होती है। इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि जैसे-जैसे संरचना की मांग बड़े उसकी पूर्ति को सभी अनुपात में बढ़ाया जाये। और इस प्रकार यहां पर शिक्षा का महत्व अत्यधिक हो जाता है अर्थात् संरचना के विकास के लिये विभिन्न प्रकार के तकनीकी में निपुण लोगों की आवश्यकता होगी जो न केवल संरचना के उत्पादन में मदद दें अपितु उसें बनायें रखने में भी सहायक हों। इनके, अभाव में संरचना का ढांचा तोखड़ा है ही जायेगा वरन् साधारण कमी के कारण वह ठप्प हो जायेगा तथा उस पर विनियोजित की गयी करोड़ों की पूंजी एक प्रकार से व्यर्थ हो जायेगी।

17.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि कृषि तथा औद्योगिक संरचना के सृजन तथा उसके बनायें रखनें में शिक्षा का अत्यधिक महत्व है। यह बात विकासशील राष्ट्रों के लिये अधिक लागू होती है वहां नवशिक्षित तकनीक हाथ तथा विशेषज्ञ नयी-नयी उत्पादन पद्धतियों को अपनाते है। कहने का अर्थ यह है कि शिक्षित वर्ग इनका समुचित तथा वैज्ञानिक प्रयोग करता है जबकि शिक्षा के अभाव मे इसी सम्भावनायें कम हो जाती है। यदि हम शिक्षा की लागत तथा लाभ का विश्लेषण करें तो यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है कि जिन अर्थव्यवस्थाओं अथवा क्षेत्रों में शिक्षा पर अधिक व्यय हुआ है वहां पर इसका लाभ कई गुना अधिक देखने में आयेंगे। शिक्षा के कारण मांग बढ़ती है और विकास भी बढ़ता है। शिक्षा के लाभ को प्राप्त करने में विकास के स्तर का भी महत्व है।

17.7 शब्दावली

1. **सार्वजनिक वस्तु :-** सार्वजनिक वस्तुये होती है जो सरकार द्वारा उत्पन्न की जाती है तथा जिसमें व्यक्तिगत उपयोग सें दूसरों की उस वस्तु की प्राप्ति में कोई उत्तर नहीं पड़ता।
2. **नव निर्माण :-** नवनिर्माण का अर्थ है नये-नये आविष्कारों को प्रयोग में लाकर उत्पादन वृद्धि करना।
3. **संतुलित विकास सिद्धान्त :-** इस सिद्धान्त का अर्थ है कि उत्पादन में वृद्धि समस्त उद्योगों तथा समस्त क्षेत्रों में समान रूप से की जानी चाहिये। किसी क्षेत्र अथवा उद्योग को पीछे नहीं छोड़ना चाहिये।
4. **असंतुलित विकास सिद्धान्त :-** इसका अर्थ यह है कि किसी एक क्षेत्र या उद्योग में प्रारंभिक अवस्था में अत्यधिक विनियोग किया जाता है और इसके प्रभाव से अन्य क्षेत्रों के विकास की गति तय होती है।

17.8 कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

1. फोस्टर शैफील्ड (ऐड़ीड) ऐजुकेशन इन सरल डवलौग्मैन्ट.वर्ल्ड इयर बुक आफ एजुकेशन-1974 टी.डब्ल्यू शुल्जू तथा डी .पी.चौधरी लेख
2. योगसन : आर्थिक विकास तथा संरचना (ग्लसगो प्रेस 1967)
3. ए एस : भल्ला (ई डी) तकनीकी का चयन आई.एल.ओ.1985
4. आर्थिक सर्वेक्षण-1989
5. आर. एम. सुन्दरम् : आर्थिक नीति एवं विकास, सागे प्रकाशन-1989

17.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1:- संरचना की मुख्य विशेषनायें क्या होती है? उनका उल्लेख कीजिए।

2:- शिक्षा के प्रसार का औद्योगिक तथा कृषि संरचना के विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?

इकाई 18

जनसांख्यिकीय आयाम एवं आर्थिक विकास

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव
18.3 जनसंख्या एवं पूँजी निर्माण
18.3.1 प्रति व्यक्ति आय पर जनसंख्या आकार का प्रभाव
18.3.2 प्रति व्यक्ति आय पर जनसंख्या वृद्धि दर का प्रभाव
18.3.3 प्रति व्यक्ति आय पर जनसंख्या की आयु संरचना का प्रभाव
18.4 जनसंख्या वृद्धि का अन्य आर्थिक चरों पर प्रभाव
18.4.1 जनसंख्या वृद्धि एवं खाद्य पूर्ति
18.5 जनसंख्या वृद्धि एवं उत्पादन
18.6 जनसंख्या वृद्धि एवं बेरोजगारी
18.7 मानवीय साधन तथा आर्थिक विकास
18.8 प्रवासन का आर्थिक विकास पर प्रभाव
18.8.1 आन्तरिक प्रवासन का प्रभाव
18.8.2 अप्रवासन (Immigration)
18.8.3 उत्प्रवासन (Emigration)
18.9 सारांश
18.10 निबन्धात्मक प्रश्न
18.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.0 उद्देश्य

मानव की जिज्ञासा अपने तथा अपने परिवेश के बारे में जानने की उसके उत्पत्ति काल से रही है। वह इसके संबंध में विभिन्न उद्दश्यों को ध्यानगत रखकर किसी न किसी रूप में जानकारी एकत्रित करता रहा है। ये उद्देश्य कई प्रकार के हो सकते है जो समय, स्थान, उद्देश्य के अनुसार बदलते रहे है। मानवीय इतिहास में ऐसे अनेक साक्ष्य आज भी उपस्थित है जो इस बात को स्पष्ट करते है कि राज्य की रुचि जनसंख्या के विभिन्न आयामों-जन्म, मृत्यु आप्रवास तथा उत्प्रवास आदि में सर्वप्रथम राज्य की सुरक्षा तथा करों के माध्यम के राजस्व एकत्रित करने में रही है। जिसके कारण जनसंख्या का लेखा रखना आवश्यक हो गया होगा। इन दोनों ही उद्देश्यों ने जनसंख्या के गुणात्मक

(Qualitative) तथा परिमाणात्मक (Quantitative) पहलुओं का अध्ययन करने को बाध्य किया होगा। और इस प्रकार अध्ययन के लिए पंजीकृत जीवन समंको (Vital statistics) की आवश्यकता पड़ी होगी, जिसका सर्वप्रथम उल्लेख[1] ईसा से 1250 वर्ष ई.पू. मिश्र के नरेश रोमेश द्वितीय के काल में मिलता है। इसके अलावा बेवालोनिया, चीन तथा हिन्द सभ्यताओं में भी इसका भरपूर उल्लेख मिलता है।[2] और आज विश्व के लगभग सभी देशों में जनगणना का कार्य किया जा रहा है, जो इसकी उपादेयता को स्वत: सिद्ध करता है।

जनसंख्या तथा आर्थिक विकास में अन्योंन्याश्रित संबंध है। दोनों ही एक दूसरे के लिए कारण-प्रभाव संबंध स्थापित करतेहै। इस इकाई में हमारा जनसंख्या के अनेक आयाम-जन्म, मृत्यु, आप्रवास तथा उत्प्रवास (Birth, Death, immigration & Emigration) किस प्रकार किसी देश के आर्थिक विकास को प्रभावितकरते है - का अध्ययन करने का प्रमुख उद्देश्य है।

18.1 प्रस्तावना

किसी राष्ट्र में राष्ट्रीय आय, मजदूरी, लगान, रोजगार आदि आर्थिक विकास सूचकांको तथा जनसंख्या की परिमाणात्मक तथा गुणात्मक संरचना, मृत्यु-दर, जन्म-दर, घनत्व आदि जनांकिकीय विकास सूचकांको में बड़ा ही घनिष्ठ संबंध है। इस संबंध को प्रो० रिचार्ड गिल ने इन शब्दों में बड़े ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है-आर्थिक विकास एवं पंजीकृत प्रक्रिया(Mechanical Process) के साथ-साथ मानवीय उपक्रम (Human Enterprises) भी है। इसका प्रतिफल अन्ततः इसे क्रियान्वित करने वाले मनुष्यों की कुशलता, गुण एवं प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है। इस प्रकार हम देखते है कि वास्तव में मनुष्य उत्पादन का साधन है जो अपनी शारीरिक, मानसिक आदि प्रकार की योग्यताओं एवं क्षमताओं को नित्य प्रति प्रयोग में लाकर संसार के जीवन स्तर को ऊचाँ उठाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। मार्क्स तो इस संबंध में यहां तक कहता है कि मनुष्य ही समस्त उत्पादन का कारण है। वह ही केवल उत्पादक साधन है। किन्तु दूसरे ही क्षण यह भी बात उतनी ही महत्वपूर्ण है कि मानव-साधन में क्या गुण है तथा उनका प्रयोग किस प्रकार से किया जा रहा है, अर्थात् श्रमिक कुशल है या अकुशल। प्रो० कार्बर के विचार से यह और भी स्पाट हो जाता है "धनी वातावरण के बीच भी समुदाय एवं राष्ट्र-निर्धन रहे है अथवा मिट्टी की उर्वरता तथा प्रचुर प्राकृतिक साधनों के होते हुए भी पतन की ओर अथवा गरीबी की ओर चले गये है केवल इसलिये की यहां मानवीय तत्व निम्न कोटि का रहा है, अथवा उसको बिगड़ जाने के लिए छोड़ दिया गया है।" इसी प्रकार का मन प्रो० ए. मुखर्जी का भी है-"किसी भी राष्ट्र की उन्नति मानवीय संसाधन संगठित करने की क्षमता पर निर्भर करती है। नि:संदेह कसी भी देश में जन-शक्ति साधन राष्ट्र की भारी पूंजी मानी जाती है। लेकिन इन साधनों का यदि समुचित उपयोग न हो और नये रोजगार के अवसर न उपलब्ध किये जायें तो साधन राष्ट्र के लिए भारस्वरूप बन जाते हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र के विकास के लिए अपनाई गई नीति में जन-शक्ति मनुष्य स्वयं साधन तथा साध्य दोनों ही है। जो कि आर्थिक विकास के चरों के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है।

पेपलिसिस, पियर्स तथा एडलेयन के शब्दों में, "साधन के रूप में मनुष्य उत्पादन क्रियाओं में अन्य साधनों के साथ संयुक्त होने के लिए उत्पादन के रूप मे उपलब्ध होता है। उपभोक्ताओं के रूप में आर्थिक विकास का उद्देश्य उनकी आकांक्षाओं और अभिलाषाओं को अधिकतम प्राप्ति है। अतः किसी भी विश्लेषण में मानवीय तत्व पर इसके उत्पादन और उपभोक्ता दोनों रूपों में विचार किया जाना चाहिए।" अतः यह आवश्यक हो जाता है कि हम आर्थिक विकास तथा जनसंख्या विकास के आपसी संबंधों एवं प्रभावों का विस्तार से अध्ययन करें।

18.2 जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव

किसी भी अर्थव्यवस्था में विकास की गति प्राय: जनांकिकीय चरों (1) जनसंख्या का आकार, (2) जनसंख्या वृद्धि दर तथा (3) आयु संरचना-से बहुत हद तक प्रभावितहोता है। ये घटक उत्पादन उपभोग, शुद्ध विनियोग आदि को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से प्रभावितकरते रहते है, जिससे कि विकास की गति पर नियन्त्रण-सा लगता रहता है। वास्तविक विनियोग की मात्रा किसी अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण प्रक्रिया को तीव्रतर गतिं उसी अवस्था में प्रदान कर सकते है जबकि जनसंख्या की विकास-दर तथा उसके गुणात्मक एवं परिमाणात्मक दोनों ही पहलू इसके अनुरूप हों। दूसरे शब्दों में, प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय, जिले आर्थिक विकास का सूचकांक माना जाता है, में वृद्धि एक तो वात्तव में राष्ट्रीय आय की वृद्धि हो सकती है। दूसरे, यदि विकास यथावत् रहे और जनसंख्या प्रवास विदेशों को अधिक हो जायें, या फिर अधिक मृत्यु हो जाये, तो भी यह (प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय) अधिक होगा। इस प्रकार हम देखते है कि ये जनांकिकीय चर भी अर्थवयवस्था के विकास को विभिन्न दिशाओं प्रभावितकरते रहते है। इसलिये इनका विश्लेषण करना आवश्यक सा प्रतीत होता है। अतः जनसंख्या के प्रति व्यक्ति व्यक्ति आय पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन के द्वारा हम यह जान सकते है कि जनगणना आर्थिक विकास को किस प्रकार प्रभावितकरती है। इसे हम अग्रांकित तीन शीर्षको में अलग-अलग अर्थ-व्यवस्थाओं के लिए विश्लेषित कर सकते है।

18.3 जनसंख्या एवं पूजी निर्माण(Population & Capital Formation)

किसी भी अर्थव्यवस्था में हुई पूंजी-निर्माण को राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। अविकसित देशों में (विकासशील देशों में) पूंजीगत साधनों के अभाव के साथ-साथ कुशल एवं तकनीकी विशषज्ञों का भी अभाव देखा जाता है। प्राकृतिक साधनों को भी शोषित नहीं किया गया होता है। अतः इन अर्थव्यवस्थाओं में पूंजी-निर्माण पर जनसंख्या वृद्धि का प्रतिकूल नहीं, तो अच्छा प्रभाव भी नहीं पड़ता है। इन अर्थव्यवस्थाओं में उच्च प्रजनन-दर, उच्च मृत्यु-दर, अधिक जनसंख्या स्वत: ही समस्या होती है जो कि पूंजी-निर्माण में बाधक होती है।

1 Census Of India, 1961, Vol. XV (UP), Part i-B, P.P. Bhatnagar
2 (i) कोटिल्य का अर्थशास्त्र, (ii) आइने अकबरी

18.3.1 प्रतिव्यक्ति आय पर जनसंख्या आकार का प्रभाव (Effect of Population Size on Per capita Income)

जनसंख्या आकार तथा प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में प्रत्यक्ष संबध है। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ प्रति व्यक्ति आय में कमी, स्थिरता तथा वृद्धि देखी जा सकती है। यदि जनसंख्या स्थिर है और कुल राष्ट्रीय आय बढ़ रही है तो प्रति व्यक्ति आय बढ़ेगी। इसके विपरीत, राष्ट्रीय आय की वृद्धि से जनसंख्या आकार वृद्धि की गति अधिक होने पर प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय कम होगी। इस प्रकार, यदि दोनों ही समान गति से बढ़े तो प्रति व्यक्ति आय भी यथावत् रहेगी। इस तथ्य को हम एक उदाहरण से स्पष्ट कर सकते है।

तालिका 18.1

	सन् 1971			सन् 1991		
देश	जनसंख्या (करोड़ में)	कुल वास्तविक आय (करोड़ रु. में)	प्रति व्यक्ति आय (रु. में)	जनसंख्या (करोड़ में)	कुल वास्तविक आय (करोड़ में)	प्रति व्यक्ति आय (रु. में)
क	10	50	5	15	90	6
ख	12	84	7	18	126	7
ग	20	180	9	30	240	8

उपर्युक्त तीनों ही अर्थव्यवस्थाओं में सन् 1991 की कुल राष्ट्रीय आय 1971 की अपेक्षा अधिक है, किन्तु जनसंख्या में वृद्धि हो जाने के फलस्वरूप "क", "ख" और "ग" अर्थव्यवस्थाओं की प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय बढ़ी है, स्थिर रही है ओर कम हुई है। इससे स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है कि अर्थव्यवस्था "ग" में अवनति हो रही है। अतः अर्थव्यवस्थाओं में जनसंख्या के आधार का प्रति व्यक्ति आय पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। किन्तु विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में यह प्रभाव अधिक गहन रूप से परिलक्षित होता है।

इस सन्दर्भ में कारसेडर्स के द्वारा प्रतिपादित सर्वोत्तम जनसंख्या सिद्धान्त की चर्चा अत्यन्त उपयुक्त होती है। यह सिद्धान्त उस धारणा को स्पष्ट करता है जिस पर किसी अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक साधनों, तकनीकी आदि के प्रयोग का पूर्ण शोषण हो सके जिस पर कि प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है। अतः सर्वोत्तम जनसंख्या वह जनसंख्या है जिस पर कि किसी भी देश की प्रति व्यक्ति आय सर्वाधिक हो।

किन्तु जैसा कि हम देख चुके है, यह धारणा तुलनात्मक स्थैतिकी (Comparative Static) दशा की द्योतक है, जो कि व्यावहारिक नहीं है। व्यवहारिक जगत तो परिवर्तनीय है। दूसरे, इस सिद्धान्त की मान्यता ही है कि प्रति व्यक्ति आय का उत्पादन जनसंख्या के आकार पर निर्भर रहती है, जनसंख्या के प्रकार (Quality) पर नहीं, जो कि उचित नहीं है, क्योंकि किसी भी देश का कुल उत्पादन (राष्ट्रीय आय) वहां की कार्यकारी-जनसंख्या की प्रकृति, कार्यक्षमता, आयु-संरचना, तकनीकी कुशलता आदि पर निर्भर करता है।

18.3.2 प्रति व्यक्ति आय पर जनसंख्या वृद्धि-दर का प्रभाव

(Effect of Population Growth rate on Per Capita Income)

जनसंख्या वृद्धि किसी भी अर्थव्यवस्था के रहने वालों के जीवन स्तर को कई दिशाओं से प्रभावितकरती है। यदि यह दर अधिक है और विनियोग की मात्रा (दर) इससे कम है तो वहां के लोगों का जीवन स्तर प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के कम होने के कारण गिरेगा।

अतः हमें जनसंख्या विनियोग की आवश्यकता पड़ेगी। जनसंख्या विनियोग (Human Investment) से तात्पर्य उस विनियोग से है जिसकी आवश्यकता जनसंख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ एक स्थायी जीवन स्तर बनाये रखने के लिए पड़ती है। जबकि आर्थिक विनियोग (Economic Investment) वह विनियोग है जो जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक राष्ट्रीय आय वृद्धि दर बनाये रखने के लिए आवश्यक है, ताकि प्रति व्यक्ति आय बढ़े और उच्चतर जीवन को प्राप्त किया जा सके। इस प्रकर हम देखते है कि जनसख्या विनियोग का संबंध जनसंख्या वृद्धि के अलावा प्रति व्यक्ति वांछित दर से होता है।

जनसख्या में वृद्धि का प्रति व्यक्ति आय पर पड़ने वाले प्रभाव को प्रो० नर्क्स ने इस प्रकार व्यक्त किया है- "यदि किसी अर्थव्यवस्था में जनसंख्या में वृद्धि नहीं होती तो वह अपनी अतिरिक्त पूंजी (पूंजी निर्माण) को विद्यमान श्रमिको को अच्छे उपकरण, मशीनें, शिक्षा तथा प्रशिक्षण देने में प्रयुक्त करेंगे। इसे गहन-विनियोग केहते है। इससे कुल राष्ट्रीय आय के अलावा प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि होती है। परन्तु यदि जनसंख्या बढ़ती जति है तो सम्पूर्ण अतिरिक्त पूंजी अथवा इसका कुछ अंश अतिरिक्त श्रमिको (जो जनसंख्या में वृद्धि के कारण फलित होंगे) को वर्तमान उपकरणो को उपलब्ध कराने में लगाना पड़ेगा। अधिक श्रमिको को चालू प्रकार के उपकरण उपलब्ध कराना विस्तीर्ण विनियोग कहलाता है। अतः यदिं जनसंख्या में वृद्धि इतनी तेज देर कि समस्त अतिरिक्त पूंजी अतिरिक्त श्रमिको को वर्तमान उपकरणों को उपलब्ध कराने में ही लग जाती है तो राष्ट्रीय आय बढ़ेगी, परन्तु प्रति व्यक्ति आय नहीं बढ़ेगी।"

अतः जनसंख्या वृद्धि का प्रति व्यक्ति आय पर दो प्रकार से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा-एक तो यह अतिरिक्त पूंजी का वह भाग समाप्त कर देती है जिसे विद्यमान जनसंख्या की सज्जा सुधारने (अर्थात् उन्हें अच्छे उपकरण, मशीनें, शिक्षा आदि उपलब्ध कराना) में प्रयोग में लाया जाता है, और दूसरी ओर शेष पूंजी को अधिक श्रमिको को उपकरण उपलब्ध कराने में लगाना पड़ता है। इस प्रकार जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर को कम करती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का अनुमान है कि किसी देश में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 90% होने पर वहां वर्तमान प्रति व्यक्ति आय बनाये रखने के लिए उस देश की 2% से 5% बचतें आवश्यक है। विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि दर 25% वार्षिक है, इसलिए वर्तमान आर्थिक स्तर को बनाये रखने के लिए उस देश की जनसंख्या विनियोग के लिए 5% से 12.5% बचतों की आवश्यकता होती है। स्पेन्गलर का मत है कि किसी भी अल्प विकसित देश को 25 वर्षो में विकसित बनाने के

लिए प्रति व्यक्ति आय में 3.2% वार्षिक वृद्धि या 100 डालर से 220 डालर तक की वृद्धि के लिए राष्ट्रीय आय की 13.8% पूंजी की आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार का एक अनुमान नीचे दिया जा रहा है जिसमें विभिन्न देशों को अपने राष्ट्रीय उत्पाद का निम्न प्रतिशत अपनी वर्तमान आय बनाये रखने के लिए विनियोजित करना पड़ता है।

तालिका 18.2

राष्ट्रीय आय का स्तर बनाए रखने के लिए आवश्यक निवेश

कुल राष्ट्रीय उत्पादन का भाग	देश
5% से कम	अमेरिका, नार्वे, फ्रांस, स्वीडन, डेनमार्क, प० जर्मनी, ब्रिटेन, बेल्जियम, ग्रीस, पूर्तगाल।
5-7.5%	इथोपिया, सूडान, पाकिस्तान, नाइजीरिया, इंडोनेशिया चिली।
7.5-10%	पेरू, मलेशिया, यू० ए० आर०, थाईलैंड, मैक्सिको, टर्की।
10% से अधिक	कोलम्बिया, भारत, ब्राजील, थाना, ट्यूनीशिया

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विकासशील देशों में जो कि प्राय: कृषि प्रधान है (या रहते है), में विनियोग के अधिक होने के बावजूद भी उत्पादन में उत्पत्ति हास नियम लागू होने लगता है जिसके कारण जनसंख्या वृद्धि के साथ व्यक्ति आय गिरती ही जायेगी।

इस संदर्भ में हार्वे लिबिन्स्टीन[1] (Harvey Leibenstein) का विचार हैं कि आर्थिक विकास के लिए किसी भी जनसंख्या वृद्धि दर के संदर्भ में, प्रत्येक देश को (विकासशील, विशेषतया ग्रामीण क्षेत्र) कुछ न्यूनतम प्रयास (Minimum Effort) करना पड़ता है। "न्यूनतम प्रयास" से अभिप्राय उस विनियोग से है जो कम से कम जनसंख्या वृद्धि की दर के संदर्भ में इतना अवश्य होना चाहिए ताकि आर्थिक विकास के रास्तें में जनसंख्या संबंधी बाधाओं को हटाया जा सके। किन्तु लिबिन्स्टीन के विचारों को विकाशील देशों में व्यवहार में लाना कठिन सा प्रतीत होता है। इसका कारण है कि इन देशों में न्यूनतम स्तर के प्रयत्नों के लिए विदेशी सहायता, कुशल श्रम एवं प्रावैधिकी का अभाव होता है। इन देशों में पूंजी उपयोग में कमी लाकर एकत्रित की जा सकती है।

रिचार्ड नेल्सन (Richard Nelson) ने भी लिबिन्स्टीन से ही मिलता-जुलता विचार व्यक्त किया है। "न्यूनतम प्रयास" की ही भांति इन्होंने अपना "निम्न स्तरीय सन्तुलन-अवरोध[2] (Low Level Equilibrium Trap) सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जो कि मुख्यत: तीन समीकरणों पर आधारित है। इसके अनुसार, (1) उत्पादन फलन (Production Function) की भांति आय निर्धारण समीकरण (Income Department Equation) में आय, पूंजी की मात्रा, जनसंख्या के आकार तथा प्रावेधिक स्तर पर निर्भर करता है। (2) शुद्ध विनियोग, बचत से निर्मित पूंजी तथा कृषि के साथ नई जमीन कृषि योग्य बनाई जाती रही है। फिर भी अच्छी भूमि की कमी पाई जाती है। अत: प्रत्येक अर्थव्यवस्था में एक ऐसी अवस्था आती है जबकि विनियोग बन्द हो जाता है। उन्हीं के शब्दों में, विनियोग न करने की एक निम्नतम सीमा होती है। कोई भी व्यक्ति चाहे कितना भी भूखा क्यों न हो रेल की टूटी पटरियां नहीं खा सकता है। (3) इसी प्रकार इन्होंने एक जनसंख्या वृद्धि

समीकरण[3] (Population Growth Equation) प्रतिपादित किया है । जिसमें निम्न स्तरीय प्रति व्यक्ति आय वाले क्षेत्रों मे अल्पकालीन परिवर्तन या वृद्धि, मृत्यु-दरों के कारण उत्पन्न होता है, जो कि प्रति व्यक्ति आय पर निर्भर करता है। उच्च स्तरीय जीवन में मृत्यु दर प्रभावहीन सा रहता है।

नेल्सन का मत है कि यह अवरोध की व्यवस्था निम्न स्थिति में सम्भव हो पाती है-(1) प्रति व्यक्ति आय के स्तर तथा जनसंख्या वृद्धि दर में गहरा सह-संबंध है । (2) प्रति व्यक्ति आय की क्षमता प्रति व्यक्ति विनियोग में वृद्धि लाने के लिए कम होती है, (3) बिना जुती हुई भूमि की दुर्लभता है, तथा (4) उत्पादन विधियां की अकुशलता। किसी भी अविकसित देश में इनको पाया-जा सकता है।

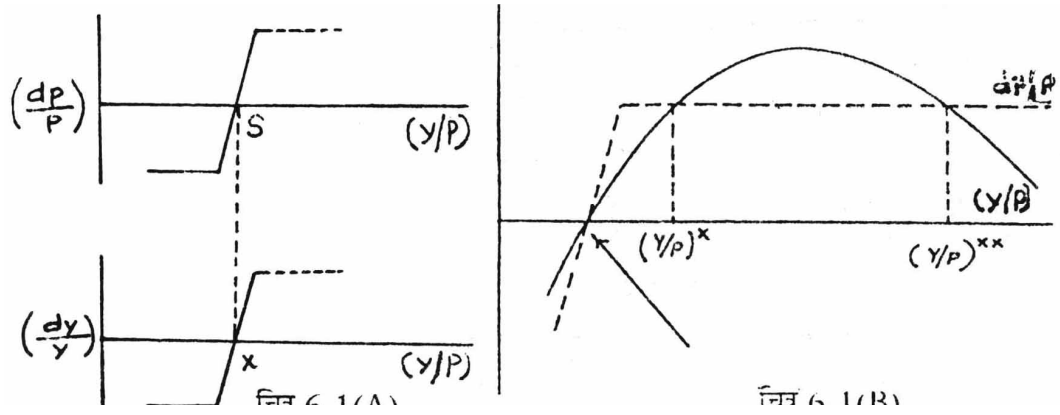

1. Leibenstein, Economic Backward and Economic Growth, New York, 1979.
2. R.R. Nelson, A theory of Low-Equilibrium Trap, A.E.R, Dec. 1956, 894-908.
3. "In areas…. The Y/P axis" – B. Higgins-Eco. Dev, pp. 395-397.

उपर्युक्त चित्र में (dp/p), (dy/y) तथा (y/p) क्रमश: जनसंख्या वृद्धि दर आयु वृद्धि दर तथा प्रात व्यक्ति आय को दर्शाते है। किसी भी जीवन निर्वाह स्तर पर वहां कि (dp/p) तथा (dy/y) वक्र एक दूसरे को काटते हैं, स्थिर संतुलन प्राप्त होगा, इस समय प्रति व्यक्ति आय (y/p) होगा। आय मे वृद्धि के किसी भी प्रकार के प्रयत्न के फलस्वरूप जनसंख्या में तेज वृद्धि होगा जिससे कि अर्थव्यवस्था पुन: निचले बिन्दु S पर संतुलन में आ जाएगा। इस प्रकार इस अवरोध (trap) से राहत पाने के लिए लिबिन्स्टीन की ही भांति जनसंख्या वृद्धि दर से आय वृद्धि दर तीव्र होनी चाहिए। यदि इस प्रकार की वृद्धि से $(य/p)^x$ प्रति व्यक्ति आय की व्यवस्था तक आसानी से पहुंचा जा सके तो बिना किसी सरकारी प्रयत्न के स्थिर साम्य बिन्दु $(y/p)^{xx}$ तक उट्टसानी से पहुंचा जा सकता है।

अत: बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण अर्थव्यवस्था में उत्पादन ह्रास नियम लागू होने लगता है और प्रति व्यक्ति आय घटने लगती है, जो कि आगे के चित्र 18.1.c से स्पष्ट है।

(1) जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ यदि प्राविधिक उन्नति (Technological Advancement) होती रहे, जो जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि होगी और प्रति व्यक्ति आय ML वक्र के पथ पर चलेगा तथा अर्थव्यवस्था में किसी प्रकार की विशिष्ट स्थिति उत्पन्न न होगी।

(2) किन्तु किसी भी प्रकार की प्राविधिक उनति की अनुपस्थिति में यह पथ MR होगा, जो कि क्रमशः समान प्रवृत्ति का द्योतक है।

(3) इसी प्रकार PP_1 जनसंख्या वृद्धि की अवस्था में प्राविधिक उन्नति के साथ प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि K_2 K_2 के बराबर होगी अर्थात् PM से बढ़कर P_1K_2 के बराबर होगी अर्थात् PM से बढ़कर P_1K_2 हो जाएगी। किन्तु यदि किसी भी प्रकार की प्रार्विधिक उन्नति नहीं हो रही है तो प्रति व्यक्ति आय PM से घटकर P_1K_1 रह जायेगी अर्थात् इसमें कमी K_1 K_3 के बराबर होगी।

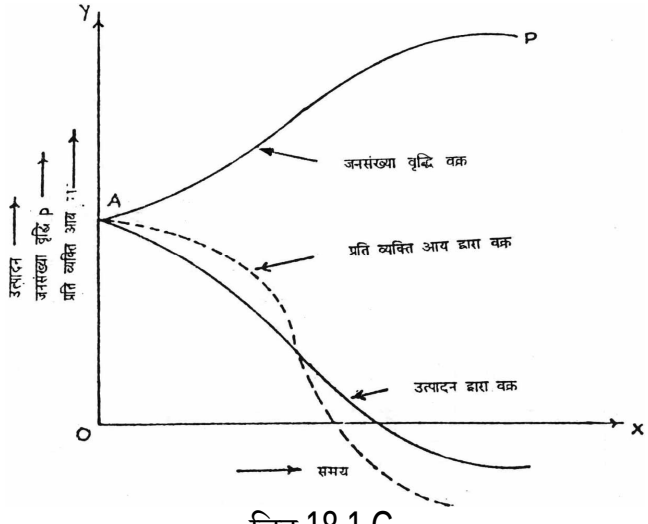

चित्र 18.1 C

प्रो० बो दत्त ने अपनी पुस्तक (The Economics ऑफ Industrialization के पृष्ठ 56) में लिखा है कि-"पूंजी संचय तथा प्राविधि के एक ऊँचे और बढ़ते हुए स्तर पर, बढ़ती हुई जनसंख्या वास्तविक उत्पादन का इसके सम्भावित्तस्तर पर

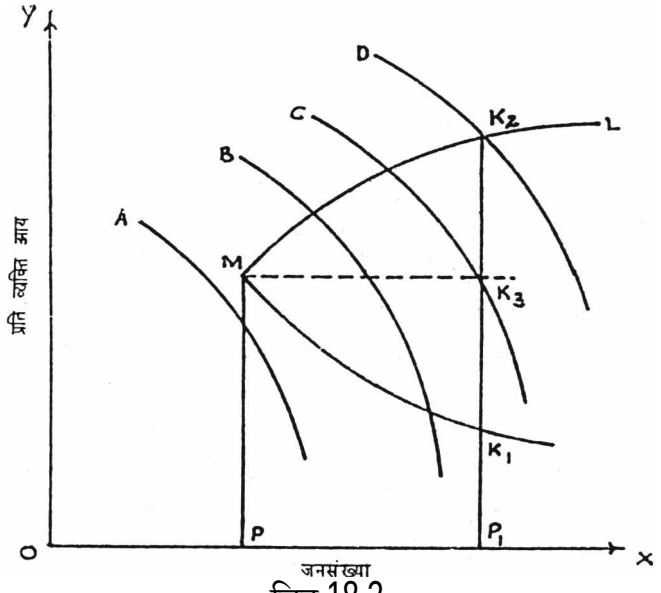

चित्र 18.2

अथवा उसके आसपास बनाये रखने में सहायता कर सकती है, और घटती हुई उन दोनों के मध्य अन्तर को बढ़ा सकती है। किन्तु दूसरी ओर बढ़ती हुई जनसंख्या की दशा में प्राविधिक उपलब्धियों का बढ़ता हुआ स्तर और पूंजी संचय में तीव्र होना आवश्यक है। यदि इन दोनों में वृद्धि नहीं हुई तो तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या एक खतरा है और तब किसी भी आर्थिक नीति को जनसंख्या नियन्त्रण नीति से संयुक्त करना आवश्यक हो जायेगा।"

प्रो० कोल एवं हूवर ने भी किसी निश्चित प्रति व्यक्ति आय को बनाये रखने के लिए बढ़ती हुई जनसंख्या वृद्धि की दशा में अधिक विनियोग दर की आवश्यकता को अनुमोदित किया है। अविकसित अर्थव्यवस्थाओं की स्थिति में विनियोग के स्तर को प्रचुर मात्रा में नहीं बढ़ाया जा सकता है।

क्योंकि इन देशों में कोई भी तरीका विनियोग का स्पष्ट नहीं होता है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि-दर के फलस्वरूप, जबकि पूंजी की पूर्ति बेलोचदार है, अधिक विनियोग आवश्यक हो जाता है, जो कि श्रमिको को प्राप्त सुविधाओं को दुगुना क रके किया जा सकता है।

इनका मत है कि 1930 में व्याप्त आर्थिक स्थिरता (Economic Stagnation) का भी कारण प्रचुर मात्रा में विनियोग की कमी हैं, जो कि कभी-कभी जनसंख्या में वृद्धि-दर की कमी का परिमाण है। किन्तु यह तर्क केवल विनियोग प्रवृत्ति की कमी की दशा में ही लागू होता है। अर्थात् कीन्स की शब्दावली में जब पूंजी की सीमान्त क्षमता (Marginal Efficiency of Capital) नीचा हो। पूर्णरुपेण औद्योगीकृत राष्ट्रों में मंदी की दशा में भी जनसंख्या वृद्धि उच्च विनियोग के लिए उत्प्रेरक का कार्य करती है। जनसंख्या वृद्धि-दर के प्रति व्यक्ति उत्पादन के प्रभाव को दो प्रमुख दशाओं में विश्लेषित किया जा सकता है। प्रथम कीन्स का मत था कि उस अर्थव्यवस्था में जहां अपेक्षाकृत आय अधिक है तथा जिसमें पूंजीगत वस्तुओं तथा श्रमिको की पूर्ण रोजगार की समस्या सतत् बनी रहती है, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए (पूंजीगत

वस्तुओं की मांग में वृद्धि के माध्यम से) उत्प्रेरक का कार्य करेगी जिसका परिणाम देश में आय में वृद्धि होगी। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में पूंजीगत वस्तुओं की मांग में वृद्धि जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि के द्वारा की जा सकती है। दूसरी प्रकार की अर्थव्यवस्था जिसमें पूंजी की पूर्ति की कमी है तो भी प्रभावपूर्ण मांग की कमी नहीं हैं। उपभोग की अपेक्षा बचत विनियोग के माध्यम से आय वृद्धि में अधिक सहायक होगा।

दूसरे अर्थव्यवस्था में, जहां प्रभावपूर्ण मांग की समस्या नहीं है। (अर्थात् या तो है ही नहीं या सरकारी प्रयत्नों के द्वारा सुलझाया जा चुका है) जनसंख्या में तीव वृद्धि के कारण प्रति श्रमिक उत्पादन बढ़ाने के लिए पूंजी की मात्रा में कमी आ जायेगी तथा प्रति व्यक्ति आय गिरेगी।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कीन्स का मत था कि दीर्घकालीन स्थैर्य (Secular Stagnation) से बचने के लिए जनसंख्या की तीव्र विकास दर लाभकारी है जो कि नीचे दिए चक्र से स्पष्ट होती है –

प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि → पूंजीगत की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि → अधिक पूंजी निर्माण तथा विनियोग → रोजगार उत्पादन व आय में वृद्धि ↓ प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि ↓ अधिक उत्पादन ← उद्योग की वर्तमान क्षमता का पूर्ण शोषण ← जनसंख्या की तीव्र वृद्धि दर ↑

प्रो० हैन्डरसन के अनुसार "घटती हुई जनसंख्या विकसित देशों के विकास को रोक सकी है।" इसी प्रकार के विचार प्रो० मिर्डल, ए० के भी हैं- "विकासोन्मुख-पूंजीवादी प्रणाली में बढ़ती जनसंख्या विकास की प्रथम अनिवार्यता है, घटती हुई जनसंख्या से विनियोजन का जोखिम बढ़ जाता है।" किन्तु ये सभी तर्क विकसित अर्थव्यवस्था में ही सम्भव है। अविकसित देशों के सन्दर्भ में वह तर्कसंगत नहीं है।

18.3.3 प्रति व्यक्ति आय पर जनसंख्या की आयु संरचना का प्रभाव(Effect of Age Structure of Population on Per Capita Income)

प्रत्येक देश की कार्यशील जनसंख्या (Working Population) की मात्रा, जो कि प्राय: 15 से 64 वर्ष तक के आयु वाले लोगों के द्वारा निर्मित होती है, वहां की राष्ट्रीय आय का निर्धारक तत्व माना जाता है। देश की आर्थिक प्रगति कार्यशील जनसंख्या के ऊपर निर्भर कहती है। किसी भी देश की कार्यशील जनसंख्या उस देश की मृत्यु-दर, जन्म दर आदि पर निर्भर करती है। मृत्यु-दर से प्रभाव को केवल उसी समय (कार्यशील जनसंख्या पर) देखा जा सकता है जबकि जनसंख्या में देश से बाहर साम्य है। जन्म-दर के प्रभाव को प्रो० एन्सले जे० कोल[2] के मतानुसार तीन शीर्षको - (1) आश्रितों का भार (Burden of Dependency) (2) श्रमशक्ति में वृद्धि-दर (Growth Rate of Labour Force) (3) जनसंख्या का घनत्व (Density ऑफ Population) में अध्ययन किया

जा सकता है। इन तीनों ही तथ्यों के द्वारा प्रति व्यक्ति आय पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन हम अगले खण्डों में करेंगे। इन तीनों ही शीर्षको के प्रभाव को जनसंख्या के वितरण-खंड के अन्तर्गत किया जा रहा है।

(अ) मृत्यु-दर का प्रभाव-मृत्यु-दर किसी भी देश की कार्यशील जनसंख्या हो सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टिकोणों से प्रभावितकरती है।

सामाजिक दृष्टिकोण से यदि देखा जाये तो भी कम मृत्यु दर के फलस्वरूप मृत्यु से उत्पन्न दु:खों, यातनाओं आदि में कमी आती है, लोगों के कार्यकाल में वृद्धि होती है। ज्यादा मृत्युओं के कारण ज्यादा लोग संस्कारों में करीब-करीब तेरह दिनों का कार्यकाल अनुत्पादक कार्यों में करने में व्यतीत करते है, जिससे भी राष्ट्रीय उत्पादन में कमी होती है चाहे यह कमी कितनी ही कम क्यों न हो पर इस प्रकार से भी श्रम कुछ दिनों तक बेकार रहता है। दूसरे, इन संस्कारों में यदि देखा जाए तो बेकार में शोकग्रस्त परिवार को कुछ धन व्यय करना पड़ता है जो पुन: उत्पादक नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार से नीची मृत्युदरों से समय, धन, श्रम आदि सभी चीजों की बचत होती है।

मृत्यु-दर के आर्थिक प्रभावों के स्पष्टीकरण के लिए हमें उस देश की विशिष्ट मृत्युदर के बारे में ज्ञान होना आवश्यक है। यदि देश में शिशु-मृत्यु दर कम है, तो आने वाले 20 वर्षों में कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि एक निश्चित अनुपात में होगी। यद्यपि इससे प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में पहले तो कमी होगी, फिर वृद्धि होगी। इसी प्रकार जन-स्वास्थ्य, आश्रितों के बढ़ते भार से गिरेगा। दूसरी तरफ यदि वृद्धि तथा अवकाश प्राप्त लोगों की मृत्यु अधिक हो रही है तो देश में आर्थिक समृद्धि बढ़ेगी। इसके कारण आश्रितों का भार प्रति परिवार घटेगा। जबकि आय स्थिर रहेगी, तो प्रति व्यक्ति आय बढ़ेगी। इसी प्रकार यदि देश में मृतको की संख्या, जिनकी आयु (15-64) वर्ष के बीच है, अधिक है, अर्थात् कार्यशील जनसंख्या मृत्युदर अधिक है तो राष्ट्रीय उत्पादन के गिरने से प्रति व्यक्ति आय घटेगी, पर इसमें घटी तीव्र न होगी, क्योंकि आय के साथ-साथ जनसंख्या भी घटती है। प्रजननता (Child Bearing Age 15-49) वर्ष की आयु की स्त्रियों की मृत्यु अधिक होने से जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आयेगी तथा यह कमी करीब-करीब 15 से 25 वर्षो मे प्रभावितकरेगी। स्त्री मृत्यु-दर का प्रभाव किसी देश में देर से पाया जाता है। अतः आर्थिक दृष्टि से सार्वजनिक स्वास्थ्य सुधार के उपाय जो कि मृत्यु-दर में कमी लाने के लिए किये जाते है, वे कार्यशील जनसंख्या के स्वास्थ्य में भी सुधार करते है, जिससे उनकी अनुपस्थिति, कमजोरी, थकावट आदि में कमी आती है। तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन व आय में वृद्धि होती है।

इतना ही नहीं मृत्यु-दर में कमी से कार्यशील जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि होती है। तथा बच्चों की संख्या (या आश्रितों की संख्या में) कमी आती है। इसी प्रकार विवाहित पुरुषों की मृत्यु-दर अधिक होने से विधवाओं की संख्या में वृद्धि होती है। जिसके भरण-पोषण का भार परिवार पर पड़ता है। यहां पर यह कहना उचित ही होगा कि कार्यशील जनसंख्या की वृद्धि (मृत्यु दर से कमी के कारण) से विवाह दर में वृद्धि के फलस्वरूप जन्म-दर (अर्थात् आश्रितों की संख्या) बढ़ेगी। जो कि एक-दूसरे को समायोजित कर देगा और राष्ट्रीय आय के बढ़ने पर भी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं होगी।

(ब) जन्म-दर का प्रभाव-उच्च प्रजनन किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विकास में कई प्रकार के अवरोध उत्पन्न करता है। इससे देश की जनसंख्या में कार्यकारी जनसंख्या का अनुपात, आश्रितों के अनुपात से कम होता है। इससे विनियोग की मात्रा कम होगी। यदि दो देश, जिनकी आय तथा कार्यकारी जनसंख्या समान है, की तुलना करें तो हमें मिलेगा कि कम प्रजनन-दर वाले देश में आश्रितों को संख्या कम होने के कारण बचत-क्षमता (Saving Capacity) अधिक है। यही बचत विनियोग के रूप में लगकर अगले वर्ष का राष्ट्रीय आय में वृद्धि करती है, जिससे प्रति व्यक्ति; आय में वृद्धि होती है। इसी बढ़ी हुई आय से पुन: बचत की मात्रा बढ़ती है। इस प्रकार विनियोग आय-वृद्धि की यह चक्र बराबर चलता रहता हैं।

प्रो० एन्सले, जे० कोल तथा ई० हूवर ने भारत की कार्यशील जनसंख्या पर जन्म-दर के पड़ने वाल प्रभावों को इस प्रकार: अनुमानित किया है। इनका मत है कि यदि भारत की जन्म-दर में 1957 तथा 1986 के बीच 50% की कमी हो जाये तो (15-64) वर्ष की आयु-वर्ग की जनसंख्या में केवल 8% की कमी उस दशा की तुलना में होगी जबकि प्रजनन-दर तीस ठर्षों तक स्थिर रहने, पर होती। इसका अपना मत है कि जन्म-दर श्रम की मात्रा तथा जनसंख्या में आयु वितरण को प्रभावित करता है। विकासशील देशों में प्रजनन-दर में कमी का प्रभाव श्रम की मात्रा पर लगभग 25 वर्षों तक नहीं के बराबर होता है। प्रजनन-दर की कमी के कारण आश्रित बच्चों की संख्या कम होती है, जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है। किन्तु इस प्रकार अच्छे उपयोग का प्रभाव श्रम तथा श्रम की कार्य-कुशलता में वृद्धि करेगा।

कोल तथा हूवर की भांति डा० जार्ज सी० जैदान (Dr. G.C. Jaidann) ने भी यह माना है कि यदि अविकसित देशों में 25 वर्षो में जन्म-दर 50% कम हो जाये और उसके बाद जन्म-दर को स्थिर रखा जाये तो इस अर्थव्यवस्था में निवासियों के रहन-सहन पर प्रभाव पड़ेगा।

अब हम उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर प्रिन्स्टन विश्वविद्यालय में स्थिर जनसंख्या कार्यालय के अध्ययन को देखेंगे। इसमें जनसंख्या की बनावट तथा आर्थिक विकास पर प्रजननता ह्रास के प्रभाव को दर्शाया गया है। अब मान लीजिए कि किसी विकसित देश की जनसंख्या 1000 है। तथा प्रक्षेपण (अ) में प्रजनन-दर यथा स्थिर है, जबकि प्रक्षेपण (ब) में लगभग 25 वर्षों में प्रजनन दर 50% कम हो जाती है। और उसके बाद यथास्थिर हो जाती है। प्रारम्भिक जनसंख्या एक मिलियन है। इस जनसंख्या की प्रारम्भिक जन्म-दर 44 तथा मृत्यु दर 14 प्रति हजार है। जिसके फलस्वरूप जनसंख्या प्रतिवर्ष 3 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। तथा औसत जीवन प्रत्यासा 53 वर्ष तथा सम्पूण मातृत्व काल में एक स्त्री को 6 बच्चे पैदा होते है। और इस प्रकार की आशा की जाती है कि आने वाले 30 वर्षों में औसत आयु 70 वर्ष के करीब हो जायेगी, जिससे कि मृत्यु-दरों में जन-स्वास्थ्य सेवाओं की वृद्धि एवं सुधार के कारण कमी होती जा रही है। यह सभी मान्यताएं दोनों ही प्रक्षेपणों के लिए लागू होती है।

तालिका 18.3

एक अर्द्ध-विकसित देश का जनसंख्या-प्रक्षेपण

(Projection of Population of an Underdeveloped Area)

आयु-वर्ग /वर्ष	0	10	20	30	40	50	60	150
0-1	454	616	870	1261	1840	2655	3848	110,700
(अ) 14-64	535	718	996	1406	2003	2901	4204	120,800
65	32	43	65	90	132	180	245	14,000
योग	**1000**	**2377**	**1931**	**2767**	**3975**	**5736**	**8297**	**246,500**
0-1	4.34	567	677	676	683	901	994	3014
(ब) 14-64	534	718	985	1287	1573	1860	2181	6613
65	32	43	65	90	132	188	245	850
(बी) योग	**1000**	**1328**	**1687**	**2053**	**2488**	**2950**	**3420**	**10477**

स्रोत- एस. सी. श्रीवास्तव जनांकिकी के प्रारूप, p.624

उपर्युक्त दोनों ही प्रक्षेपणों में अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों ही दशाओं में जनसंख्या के गुणात्मक पहलू का अध्ययन किया जायेगा। प्रथम 25 से 30 वर्षों में आश्रितों के भार में दोनों ही पक्षेपणों में पर्याप्त भिन्नता देखी जा सकती है। दोनों में ही यह अन्तर प्रसार-पूर्ण है इस अन्तर के फलस्वरूप कार्यशील जनसंख्या में (जनसंख्या के कारण) पर्याप्त अन्तर आने लगता है और यह अन्तर उस समय बढ़ ही जाता है जब तक कि इनमें स्थैर्य न आ जाये। इस प्रकार अल्पकाल व दीर्घकाल दोनों ही दशाओं में जनसंख्या के आयुवितरण में पर्याप्त भिन्नता देखी जा सकती है। मध्यकालीन स्थिति में श्रम की संख्या पर भू पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। किन्तु दीर्घकाल में श्रम-घनत्व में पर्याप्त अन्तर आ जाता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अल्पकाल में उच्च प्रजननता वाली जनसंख्या की अपेक्षा निम्न प्रजननता वाली जनसंख्या में आश्रितों के भार में कमी आती है। यह लगभग 30 वर्ष की अवस्था तक अधिकतम पर स्थिर हो जाता है। इसके फलस्वरूप मध्यकाल में दोनों की श्रमशक्ति में अन्तर आने लगता है जो कि लगभग 70 वर्ष में स्थिर हो जाता हैं। इस प्रकार श्रम शक्ति के अन्तर के फलस्वरूप दोनों ही देशों की आर्थिक स्थिति में अन्तर आने लगता है। अत: अधिक प्रजननता वाली जनसंख्या में प्रति व्यक्ति आय में कमी आने लगती है।

प्रजननता दर के इस कमी के कारण धीरे-धीरे लाभ होने लगता है। प्रारम्भ में यह लाभ नाम मात्र की है, परन्तु 30 वर्षों के पश्चात यह 40% हो जाता है। 60 वर्ष के पश्चात तो यह लाभ 100% से भी अधिक हो जाता है परन्तु 150 वर्ष बाद तो इस घटी प्रजननता वलिा जनसंख्या की आय में समान गति से चलती रहने वाली प्रजनन शक्ति की जनसंख्या से 6 गुनी वृद्धि हो जायेगी।

किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार प्रजननता में कमी राष्ट्र के औद्योगिकीकरण के साथ-साथ स्वत: आने लगती है। केवल राष्ट्र को शीघ्रातिशीघ्र औद्योगिक बनाने की आवश्यकता है। किन्तु

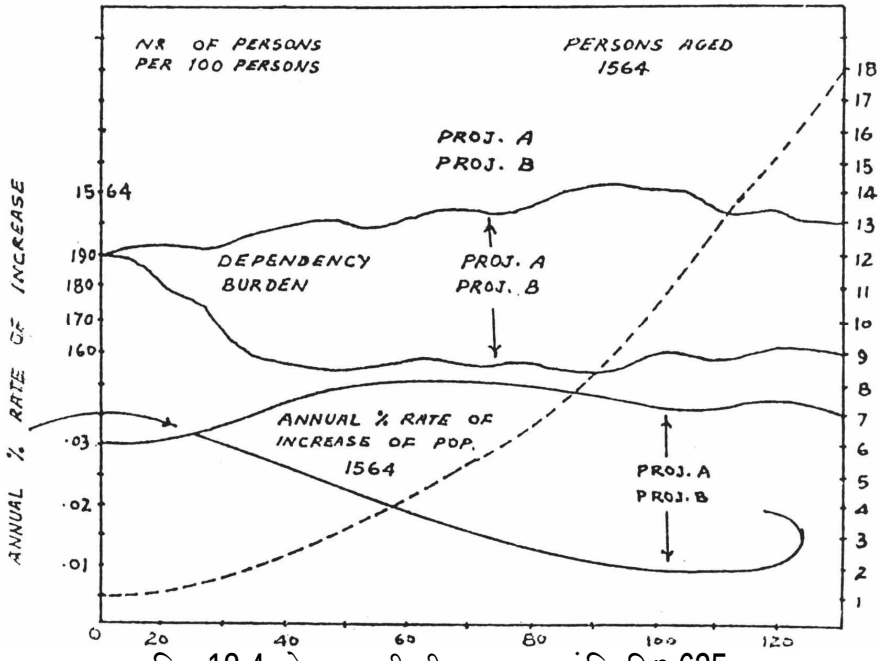

चित्र 18.4 स्रोत-एस.सी श्रीवास्तव, जनांकिकी p.625

विकासशील राष्ट्रों में प्रजननता को समान स्तर पर रख कर भारी विनियोग सम्भव नहीं है जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं हो सकती है।

18.4 जनसंख्या वृद्धि का अन्य आर्थिक चरों पर प्रभाव

18.4.1 जनसंख्या वृद्धि एवं खाद्यपूर्ति (Population Growth and Food Supply)

जनसंख्या वृद्धि तथा खाद्य पूर्ति के संबंध में माल्थस के मत को आप देख चुके है। साथ ही साथ आपने यह भी देख लिया है कि 25 वर्षों के अन्तराल पर सीमित भूमि पर बढ़ते हुए जनसंख्या भार के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति खाद्य सामग्री में किस प्रकार कमी आती जाती है। इसी संदर्भ में आज भी यह देखा जाए तो स्पष्ट है कि खाद्य एवं जनसंख्या वृद्धि की दर में किसी प्रकार की समता नहीं हें और यही असमानता सम्पूर्ण विश्व को भूख की ज्वाला में जलाती जा रही है। प्रो० ज्ञानचन्द के अध्ययन के अनुसार 1900 ई० से 1934 ई० के बीच जहां भारत की जनसंख्या में 21% से वृद्धि हुई वही कृषि योग्य भूमि के क्षेत्र में 11% की वृद्धि हुई। इसी प्रकार एक अन्य विद्वान श्री पी. के. वादल के अनुसार 1913-14 से 1934-35 के बीच जनसंख्या में प्राय: प्रतिवर्ष औसत रूप से 1% की वृद्धि हुई किन्तु खाद्यानों के उत्पादन में केवल 0.65% की वृद्धि हुई। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुमान के अनुसार वर्तमान प्रजनन दर तथा 9% की वार्षिक आय की वृद्धि के कारण 1980 तक इन विकासशील देशों की जनसंख्या में 78% वृद्धि होगी एवं खाद्यान्नों की मांग में 118% की वृद्धि होगी। यदि आय में 3% वृद्धि मानी जाये जो खाद्यान्नों की मांग में 238% वृद्धि होगी। भारतीय योजना आयोग के शब्दों में "हमरी खाद्य समस्या का प्रमुख कारण खाद्यान्न की मांग तथा पूर्ति का तत्कालीन असन्तुलन नहीं वरन् देश में खाद्यान्न की तुलना में जनसंख्या में निरन्तर अत्यधिक वृद्धि

है।" विश्व खाद्य संस्था के महानिदेशक श्री ए. एच. बोरमा के शब्दों में - "अगर आबादी की बाढ़ को नियन्त्रित न किया गया तो पर्याप्त भोजन मुहैया करने की सभी आशाएं धूल में मिल जायेगीं।" इसी प्रकार विश्व खाद्य समस्या के बारे में तथाकथित विशेषज्ञ का विचार किसी को भी आश्चर्यचकित करने के लिए पर्याप्त होगा - "कालान्तर में मनुष्य को सभी जीवकोषीय पदार्थों की बड़ी कुशलता से उत्पादन करने के लिए जल और थल के सभी स्रोतों एवं साधनों को संगठित करना होगा क्योंकि यही एकमात्र उपाय है जिससे वह खाद्य की पूर्ति में निरन्तर वृद्धि की उम्मीद कर सकता है।"

जनसंख्या का सबसे प्रमुख प्रभाव असन्तुलित भोजन की समस्या है। खाद्य समस्या पूर्ण अभाव की है। लेकिन असमान वितरण के कारण यह और उग्र हो गई है। दुनिया में जितना खाद्य उपलब्ध है, आज यदि उसे बराबर-बराबर बांट दिया जाये तो सभी लोग पोषक तत्वों के अभाव से पीड़ित नजर आएंगे। जोफ स्टान्सबरो के अनुसार इस समय दुनिया में 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों की संख्या एक अरब है। इनमें से 60 करोड़ तो कभी भी वयस्क नहीं हो सकेंगे। वे विभिन्न प्रकार से काल कवलित होंगे, लेकिन उनकी मृत्यु का मुख्य कारण होगा कि उन्हें पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक भोजन नहीं मिला। उनकी जिन्दगी की लौ जब तक टिमटिमाती है तब तक वे भूखे सोते, भूखे जागते तथा तमाम दिन भूख से संघर्ष करते रहते है। जैसा कि खाद्य वेज्ञानिक जार्ज ए० बोर्गस्ट्राम ने कहा है- "यह इन्सान की सबसे भयंकर विपत्ति है कि अधिकांश बच्चों की जिन्दगी मौत का भयंकर इन्तजार करने के अलावा और कुछ नहीं।

इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ की खाद्य एवं कृषि संगठन(FAO) का मत है कि कुपोषण का प्रभाव 5 वर्षो की आयु तक बुरी तरह प्रभावित करता है। इनका अनुमान है कि विकासशील देशों में आज 5 वर्ष से कम उम्र के 10 मिलियन बच्चे तीक्ष्ण कुपोषण 60 मिलियन सामान्य कुपोषण तथा 120 मिलियन गुप्त एवं सामान्य कुपोषण से प्रभावितहै। इस प्रकार लगभग समस्त शिशुओं का 50% किसी न किसी प्रकार के कुपोषण से प्रभावितहै जो निश्चित रूप से इनकी अकाल मृत्यु का कारण बनेगा। इसी प्रकार तृतीय विश्व खाद्य सर्वेक्षण का मत है कि लगभग 20% लोगों को पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं मिलता तथा 60% लोगों को सही प्रकार का भोजन नहीं मिलता। विश्व बैक के अध्यक्ष राबर्ट मैकनमारा का मत है कि विश्व में 100 मिलियन गरीब लोग है जो किसी न किसी प्रकार की कुपोषणता से प्रभावितहै तथा जो न आर्थिक विकास में सहायक होते है ओर न ही इसके लाभ में बराबर का हिस्सा बँटाते है तथा जो अशिक्षा, कुपोषण रोग, ऊँची शिशु मृत्यु दर तथा नीची जीवन आकांक्षा से युक्त है। कुपोषण से आज विश्व की 1.2 मिलियन जनसंख्या जो 15 वर्ष से कम उम्र की हैं, पीड़ित है।

इसके अतिरिक्त प्रो० सुखात्मे ने अल्पविकसित एवं विकसित देशों में प्रतिदिन प्राप्त कैलोरी तथा आवश्यक कैलोरी का उल्लेख किया है जिसके अनुसार अल्पविकसित देशों में 17% तथा विकसित देशों में 120% कैलोरी शक्ति प्राप्त है। प्रोटीन आपूर्ति का प्रतिशत प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 193 तथा 303 है। ऐशिया तथा सुदूरपूर्व देशों में यह प्रतिशत क्रमश : 94 तथा 185 है जो विकसित देशों की तुलना में बहुत कम इसी प्रकार भारत में बिहार तथा मद्रास में हुए गृह सर्वेक्षणों में यह बात सामने आती है कि 17 तथा 49% घरों में पर्याप्त कैलोरी का अभाव है। प्रोटीन की मात्रा इन राज्यों

में 5 तथा 34% है। इसके अलावा बहुत से ऐसे घर है जिनमें प्रोटीन तथा कैलोरी दोनों का ही सर्वथा अभाव है।

आज जनसंख्या का प्रभाव अपर्याप्त एवं असन्तुलित भोजन के रूप में विकासशील देशों में व्याप्त है। भरपेट भोजन यदि मिल भी जाये तो मनुष्य के निम्नतम पौष्टिक तत्वों को पूरा नहीं कर पाता। आज प्रोटीन, विटामिन आदि पोषक तत्वों के अभाव में तरह-तरह के रोग बचपन में ही हो जाते है जिसके कारण किसी भी देश श्रम-शक्ति में निरंतर ह्रास होता है। पोषक आहार की कमी के अन्य भी कई बड़े कारण स्पष्ट देखे जाते है जो कि किसी भी देश के आर्थक स्तर पर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अपना प्रभाव डालते रहते है इसके अभाव में शारीरिक उत्पादकता तथा रोग-निरोध की क्षमता घटती जाती है जिससे अनुपस्थिति बढ़ जाती है। इसकी कमी से शरीर का विकास स्थायी रूप से रुक जाता है। कई विकासशील देशों में बारह साल की उम्र वाले बच्चों का औसत कद यूरोप के आठ साल के बच्चों के औसत कद के बराबर होता है। पोषक आहार के भारतीय विशेषज्ञ डा0 सी0 गोपालन के अनुसार इस देश के देहाती इलाको के रहने वाले 80 प्रतिशत बच्चे पौष्टिक आहार की कमी के कारण बौनेपन के शिकार है। इसी प्रकार अमेरिकी विशेषज्ञ डा0 नेविन एस0 स्किमशा का मत है कि जीवन के पहले क्षणों में इसकी कमी से जीवन का विकास रुक जाता है तथा कभी-कभी तो बच्चा बदशक्ल हो जाता है। इसी प्रकार पौष्टिक आहार न मिलने से होने वाली बीमारियों के इलाज पर होने वाले खर्च के मुकाबले शुरू में ही आवश्यक पौषक तत्वों की व्यवस्था करना सस्ता होता है। बर्ग ने एक अनुमान का उल्लेख किया है : "गवाटेमाला में पौष्टिक आहार न मिलने के कारण होने वाले रोगों से पीड़ित हर रोगी को 90 दिन तक अस्पताल में रखने पर कुल 800 डालर तक खर्च बैठता है जबकि आहार में पौष्टिकता के अभाव को दूर करने पर साल भर का खर्च 7 से 10 डालर से अधिक नहीं होता है।" इसी प्रकार कुछ साल पूर्व फिलीपीन सरकार ने उत्पादन की हानि, श्रम-शक्ति की हानि और चिकित्सा तथा अंत्येष्टि पर होने वाले खर्च के आधार पर कुल हानि का जोड़ लगाने की कोशिश की थी। उसने हिसाब लगाया कि अकेले बेरी-बेरी से प्रतिवर्ष एक करोड़ दस लाख डालर को हानि होती है - यह हिसाब सिर्फ बेरी-बेरी के उन रोगियों के आधार पर लगाया गया जिनकी सरकार को जानकारी मिली।

अपौष्टिक आहार से न केवल शारीरिक विकास में कमी आती है बल्कि इससे मस्तिष्क के विकास में भी अवरोध उत्पन्न हो जाता है। कुछ मामलों में तो फिर उसे किसी तरह विकसित करना संभव नहीं होता। मानव पर आने वाली जो मुसीबतें उत्पादकता में गिरावट के जिम्मेदार हैं, उनमें से शायद यह सबसे विशाल, सबसे अधिक भयंकर और ऐसी है जो अन्य आपदाओं के मुकाबले सबसे अधिक स्थाई हें। मस्तिष्क को स्थाई क्षति पहुंचने के प्रभाव यद्यपि अब तक प्रयोगशालाओं में पशुओं पर किए गए परीक्षणों तक सीमित है तथापि वैज्ञानिक इससे मानव मस्तिष्क पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का निर्णायक रूप से पता लगा सकने में सफल हो गए है। इस क्षेत्र के विशेषज्ञों में डा0 नेविल एस0 स्किमाशा-अध्यक्ष, पोषक तत्व एवं खाद्य विभाग, मेसाचेसेट्स टेक्नोलाजी इंस्टीट्यूट, डा. एच. एफ. इकेन्वाल्ड तथा डा. पी. सी. फ्राई विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनका मत है कि इसकी कमी (पोषकता की कमी) से दिमाग के स्थाई रूप से अविकसित रह जाने का खतरा है।

इससे "विभाग के विकास को आघात पहुंचने के साथ-साथ कद का बढना भी जिस तरह रुक जाता है, उसके कारण आज 25 करोड़ से भी अधिक बच्चे खतरे में है।"

विकासशील दर्शा में गर्भवती एवं दूध पिलाने वाली माताओं में कुपोषक तत्व की कमी के दोहरे दुष्परिणाम देखने को मिलते है। एक तो माता का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जाता है और दूसरे बच्चे का मानसिक विकास रुक जाता है और यह कमी जीवन भर किसी प्रकार के भोजन से पूरी नहीं की जा सकती हैं। मैनचेस्टर विश्वविद्यालय के जॉन डविंग तथा जीन सेण्डर्स के 150 बच्चों के 7.2 वर्ष आयु तक के परीक्षणों ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि बच्चे के मस्तिष्क का विकास गर्म स्थिति के 10 सप्ताह से जन्म के दो वर्ष (From 10 Weeks Gestation to 2 Yrs. Age) तक की आयु में होता है। इस समय किसी भी प्रकार के पोषक तत्व कमी का तुरन्त एवं दीर्घकालीन प्रभाव बच्चें के मानसिक विकास पर पड़ता है। यही वह समय है जबकि मस्तिष्क बड़ा ही सूक्ष्मग्राही होता है तथा किसी प्रकार की कमी आसानी से दिखाई पड़ जाती है। डॉ. रोजर लेविन ने ब्रिटिश मैगजीन न्यू साइन्टिस्ट में अपने लैब "गरीबी के दोहरे मानसिक दुष्परिणाम" (poverty's Double Trap for the Brain) में लिखा है कि खाद्य एवं परिप्रेक्षीय उत्प्रेरण का अभाव (Food Deficiency and Lack of environmental stimulation) मस्तिष्क के विकास को बहुत अंशों तक प्रभावितकरते है। इनका मत है कि मस्तिष्क का विकास दो अवस्थाओं में होता है - एक 10 से 18 सप्ताह गर्म स्थिति में (10 to 18 Weeks of Gestation) जिसमें कोष (Cell) विकसित होता है। दूसरे 20 सप्ताह से जन्म के दो वर्ष तक (20 Weeks of Gestation to two years after birth) जिसमें कोषें तथा स्नायु तन्तुओं का आपस में संगठन होता है। इस प्रकार मस्तिष्क का विकास काल 10 सप्ताह से 2 वर्ष तक की आयु का है जिसमें बच्चा माँ पर भोजन के लिए पूर्णरूपेण आश्रित रहता है। इस अवधि में माता का किसी प्रकार कुपोषण बच्चे के मानसिक विकास को जीवन भर के लिए प्रभावित करता है। डार्विग ने इस अवधि में कुपोषण के द्वारा मानव मस्तिष्क के आकार तथा वजन में 25% की कमी पाई है। डॉ. ब्रेग को भी इसी प्रकार के प्रकार के परिणाम मिले है। डॉ. एडोल्फ सेवेज के मेक्सिको तथा लिनियरडो सिनिस्टेरा के कोलम्बिया के गाँवों में किए गए बच्चों के परिश्रम तथा पोषक तत्वों की कमी के परिणाम से इनकी सीखने की क्षमता, स्मरण शक्ति तथा अनुकरण करने की आदत पर पड़ता है। इन तथ्यों की प्रमाणिकता जैक्विन क्रेवियटो, रिचर्डसन आदि के परिणामों से सिद्ध हो जाती।

अतः इन वेज्ञानिक एवं सामाजिक अनुसंधानों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि जहां एक ओर तमाम शारीरिक रोग पाए जाते है, वहीं दूसरी ओर इसका अल्प आयु में मस्तिष्क पर पड़ने वाला भयंकर प्रभाव भी कम नहीं है। अतः पोष्टिक तत्वों तथा पर्याप्त भोजन के अभाव से किसी भी देश के विकास में बाधा उत्पन्न हो जाती है। इससे श्रम-शक्ति में कमी, शारीरिक उत्पादकता में कमी, रोग-निरोधक क्षमता में कमी के कारण स्वास्थ्य सेवाओं पर अधिक व्यय एवं अनुपस्थिति में वृद्धि होती है जो प्रगति के लिए बाधक है। यही नहीं कुपोषण का दीर्घकालीन प्रभाव बढ़ते हुए पारिवारिक भार, गिरती हुई खाद्य, वस्त्र गृह उपलब्धता के रूप में किसी देश के पूंजी निर्माण में एक

निरंतर छीज का स्रोत होता है, देश का विकास अधोगति की और उमुख होता है तथा सारे सरकारी प्रयत्न क्षुधा की ज्वाला में भस्म हो जाते है।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से हम इस निश्कर्ष पर पहुंचते है कि यदि इस प्रकार मानवीय क्षति को न रोका गया तो किसी भी विकासशील देश में विकास के सारे प्रयत्न असफल होते रहेंगे। इसलिए हर विकासशील देश को कम-से-कम खाद्यान्न के उत्पादन में शीघ्र ही आत्म-निर्भरता प्राप्त कर लेनी चाहिए। किन्तु इन सारे प्रयत्नों के फलस्वरूप भी खाद्यान्न उत्पादन विनियोग के अनुपात में कम ही रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुमान के अनुसार वर्तमान प्रजनन दर और 9% की वार्षिक आय वृद्धि के कारण 1980 तक इन देशों की जनसंख्या में 78% तथा खाद्यान्नों की मांग में 118% की वृद्धि होगी। यदि आयु में वृद्धि केवल 3% मानी जाए तो खाद्यान्नों की मांग में 238% से वृद्धि हो जाएगी। ऐसा हर विकासशील देश में उसकी कृषि पर निर्भरता तथा नीची उत्पादकता के कारण पाया जाता है।

इन परिस्थितियों में जनसंख्या की वृद्धि के साथ सामाजिक मदों, जैसे आवास का निर्माण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा आदि पर, विनियोग बढ़ता है जिनसे कि राष्ट्र की भौतिक सम्पदा में वृद्धि नहीं होती है। यद्यपि स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर विनियोग के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था की उत्पादकता में वृद्धि होती है, किन्तु इससे राष्ट्र के पूंजी निर्माण पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता है। विकसित राष्ट्रों में इस प्रकार की मदों पर विनियोग से राष्ट्रीय पूंजी का निमार्ण होता है, जबकि विकासशील देश में इस प्रकार का विनियोग अनुत्पादक कार्यो पर ही होता है।

विकासशील देशों में विकसित देशों की अपेक्षा अनुत्पादक जनसंख्या (15 वर्ष से कम तथा 60 वर्ष से अधिक) होने से प्रति परिवार का आश्रितता-भार अधिक हुआ करता है। हापकिन्स के अनुसार ग्रेट ब्रिटेन में जहां 1952 में उत्पादकता तथा अवकाश-प्राप्त जनसंख्या (15 से 60 वर्ष तथा 60 वर्ष के ऊपर) का अनुपात 6:1 का या वहीं यह 1982 में गिरकर 4:1 के होने की संभावना है जिसके फलस्वरूप उपभोक्ताओं की संख्या की अपेक्षा उत्पादको की संख्या में 2.9 प्रतिशत की कमी होगी जिससे जीवन स्तर के 3% से 4% गिरने की संभावना है। यही नहीं, यदि जनसंख्या-भार की गणना जनसंख्या के उत्पादन के योगदान के संदर्भ में करे तो किसी भी विकासशील देश में उत्पादन-आयु के किसी भी एक वयस्क की उपभोग की आवश्यकता। इकाई होगी, जबकि एक बच्चे की 1/3 इकाई तथा एक तूढ़े की 1/2 इकाई होगी। इस प्रकार इन विकासशील देशों की जनसंख्या में बच्चों, वयस्कों तथा बूढ़ों का प्रतिशत क्रमशः 42, 55 तथा 3 होगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन देशों में उत्पादक-उपभोक्ता अनुपात 100:128 है, जबकि यह अनुपात विकसित देशों से 119 उतपादको को 100 उपभाक्तोओं का भार वहन करना पड़ता है। इन देशों में बच्चों, वयस्कों तथा बूढ़ों का प्रतिशत क्रमशः 23 : 67:10 है। इसी प्रकार पश्चिमी यूरोप के औद्योगिकृत देशों की अपेक्षा ऐशिया के अधिकांश देशों में कार्यशील तथा आश्रितों का अनुपात अधिक (3 :4) है। इस तरह ऊँची आय वाले देशों (यू0 एस0 ए0) की अपेक्षा विकासशील देशों की स्थिति भी कम संतोषजनक नहीं है। इसी प्रकार एक अनुमान के अनुसार विकसित देशों में विकासशील देशों की

अपेक्षा राष्ट्रीय आय का कम भाग (विकासशील में 3% तथा विकसित में 01%) 15 वर्षो की आयु तक के बच्चों को मरने से बचाने के लिए किया जाता है।

18.5 जनसंख्या वृद्धि एवं उत्पादन

Population Growth and Production

अविकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि, पिछड़ी तकनीकी आदि के कारण उत्पादन तीव्र गति से नहीं होता। यही नहीं इसके फलस्वरूप संसाधनों का पूर्णरूपेण विदोहन नहीं हो पाता, जिसके कारण उत्पादन कम होता है जिसका परिणाम है कम प्रतिव्यक्ति आय, कम प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य सुविधा, अस्वस्थ वातावरण, अकुशल श्रमिक, शिक्षा का अभाव, जो पुन: इन अर्थव्यवस्थाओं को निम्न स्तरीय आय-जाल में फंसा देता है जिससे कि इनका पुन: निकलना तभी संभव हो पाता है जबकि ये देश (लिबिस्टीन के न्यूनतम प्रयास की भांति) जनसंख्या वृद्धि से अधिक विनियोग करें जो कि ये अपने उपभोग को काटने पर ही कर सकते है। इन अल्पविकसित देशों में साधनों की स्वरूपता के कारण आवश्यक पूंजी व प्राविधि की कमी के कारण जनसंखा के अनुरूप उत्पादन नहीं होता, इन देशों में जनसंख्या का उत्पादन में योगदान दो मुख्य बातों -(1) प्रति श्रमिक पूंजीगत उपकरणों की प्राप्ति एवं प्राविधिक स्तर तथा (2) जनसंख्या के गुणात्मक पक्ष या जनसंख्या की आयु-बनावट (जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है) पर निर्भर करता है। किन्तु प्राय: विद्वानों का मत है कि अल्प-विकसित देशों में छात्रों में अनुशासनहींनता, आय और सम्पत्ति के वितरण की विषमता, राजनैतिक अस्थिरता आदि आर्थिक विकास के प्रतिरोधों का मूल कारण जनसंख्या में वृद्धि ही है।

तालिका 18.4

जनसंख्या एवं उत्पादन वृद्धि की वाषिक प्रतिशत दर(1954-59)

जनसंख्या वृद्धि		कुल उत्पादन में वृद्धि जनसंख्या		
	1% से कम	1% से 3% तक	3% से 6% तक	6% से ऊपर
0.5% से कम	-	इंग्लैण्ड	-	-
0.5% से 1.5% तक		डेनमार्क	बर्मा, स्वीडन, डटली	यूगोस्लाविया, जापान
1.5% से	-	अर्जेन्टाइना,	यू० एस० ए० भारत	
2.5% तक		पाकिस्तान	कालम्बिया, थाईलैण्ड इंडोनेशिया, दक्षिणी कोरिया	कांगो
2.5% से ऊपर	-	-	इक्वेडोर, पेरू ग्वाटेमाला, श्रीलंका	चीन (ताईवान) वीन (मुख्य भूमि), रोडेशियम,

				टर्की,ब्राजील

परन्तु कु. आर. जेड हुसेन का मत है कि जनसंख्या या इसकी वृद्धि में कहीं भी प्रति व्यक्ति आय को स्थिर रखकर आर्थिक विकास में पूर्णरूप में बाधक नहीं रही है। उन्होंने अपने इस मत की पुष्टि के लिए निम्म आँकड़े प्रस्तुत किए है-

उपर्युक्त तालिका के अंको के अध्ययन से स्पष्ट है कि लगभग सभी अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या की अपेक्षा राष्ट्रीय उत्पादन (आय) में अधिक वृद्धि हुई है । परिणामत: अधिकांश विकासशील देशों में प्रति व्यक्ति आय में 2% की वृद्धि हुई है और चीन व ब्राजील आदि देशों में तो प्रति व्यक्ति आय में, वृद्धि की दर 6% से भी अधिक हुई है किन्तु इन सबका अर्थ यह नहीं है कि जनसंख्या में वृद्धि विकासोन्मुख देशों के विकास में कोई कठिनाई उपस्थित नहीं करती। स्वयं कु. हुसेन ने ही लिखा है "जनसंख्या में वृद्धि अर्द्ध-विकसित देशों मे जहां अन्य सहयोगी कारकों, विशेष रूप से पूंजी का अभाव होता है, विकास में दबाव उत्पन्न कर देता है।"

18.6 जनसंख्या वृद्धि एवं बेरोजगारी(Population Growth and Unemployment)

विकासशील तथा विकसित देशों में बेरोजगारी में एक विशेष प्रकार की भिन्नता पाई जाती है। विकासशील देशों में खुली बेरोजगारी, दुर्रोजगारी, सुसुप्त बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी आदि साधनों की न्यूनता तथा कृषि प्रधानता के कारण पाई जाती है। जबकि विकसित देशों में बेरोजगारी प्रभावपूर्ण मांग की कमी के कारण उत्पन्न होती हैं। विकासशील देशों में अन्य उत्पत्ति के साधनों के अभाव में अतिरिक्त श्रम को नहीं खपाया जा सकता है। वास्तव में इन देशों में बेरोजगारी का कारण बढ़ती हुई जनसंख्या है। इन देशों में प्रति व्यक्ति आय के साथ-साथ प्रति व्यक्ति उत्पत्ति के साधनों की उपलब्धता कम होती है। यहां पर अर्थव्यवस्था में श्रमिको की उत्पादकता भी कम होती है जिसके कारण भी बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होने लगती है। इन देशों की जनसंख्या में परिवर्तन के अर्थव्यवस्था पर दो प्रभाव पड़ते है : प्रथम - राष्ट्रीय व प्रति व्यक्ति आय प्राय : प्रभावितहोती है जिसे आय प्रभाव (Aggregate mode of Income Effect) कहते है, दूसरे - पूंजी-श्रम अनुपात में परिवर्तन आता है जिसे प्रतिस्थापन प्रभाव (Real Mode or Substitution Effect) कहते है। इसमें भारी कमी आने लगती है जिसके फलस्वरूप भी बेरोजगारी में वृद्धि होने लगती है। "इन देशों में मार्क्स-प्रकार की एवं अर्द्ध-बेकारी एवं छिपी बेकारी का पाया जाना पूंजी और आय की अपर्याप्तता के संदर्भ में स्पष्ट की जा सकती है।" भारतवर्ष में प्रतिवर्ष 3.3 मिलियन बेरोजगार और कुल श्रम शक्ति में जुड़ते जाते है। ऐसा अनुमान है कि भारत में 1951-81 के बीच नये बेरोजगारों की संख्या ग्रेट ब्रिटेन की आबादी की दुगुनी या संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान जनसंख्या की डेढ़ गुनी होगी। इस काल में भारत को 107 मि0 लोगों की रोजगार देने की व्यवस्था करनी पड़ेगी। डा0 वी0 के0 आर0 वी0 राव के अनुसार "इस 107 मि0 में से 67 मि0 को उद्योगों में और 40 मि0 को

कृषि में रोजगार देने की व्यव्वस्था करनी होगी।"[2] प्रो. नर्क्स का मत है कि इन अविकसित देशों में लगभग 25 प्रतिशत जनसंख्या छिपी बेरोजगारी से ग्रसित है।

18.7 मानवीय साधन तथा आर्थिक विकास)Human resources and Economic Growth)

मानवीय साधनों का आर्थिक विकास में कैसे उपयोग किया जाए, इस संदर्भ में आपने हार्वे लिबिन्सटीन (H. Leibenstein) रिचार्ड नैल्सन (R. Nelson) कोल एण्ड हूवर (Coale & Hoover) के मतों का अध्ययन किया। यहां हम कुछ अन्य भारतीय एवं विदेशी विद्वानों के मत संक्षेप में व्यक्ति कर रहे है -

(a) प्रो. प्रशान्त चन्द्र महालानोबीस इस मत के है कि विकासशील देशों में पूंजी की अपेक्षा श्रम साधनों की प्रचुरता रहती है। इन देशों में ऐसे उद्योगों में विनियोग किया जाना चाहिए जिसमें कम पूंजी तथा अधिक श्रम लगे। इस प्रकार इन देशों में अधिक श्रमिको को रोजगार मिल सकेगा। उसके अतिरिक्त इन्होंने पूंजीगत वस्तुओं को उत्पन्न करने पर जोर दिया। जैसा कि ऊपर के पैराग्राफ में हम देश चुके है कि प्रो. नर्क्स इन विकासशील देशों में छिपी हुई बेरोजगारी के समर्थक है जिसकी श्रम शक्ति की उत्पादकता नहीं के बराबर है। यदि इसका प्रयोग अन्य घरेलू कार्य में कर लिया जाए तो 15 से 30 प्रतिशत श्रम-शक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

अन्त में, मानवाय साधनो मे विनियोग से तात्पर्य शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, अच्छा भोजन, आदि से है जिसमें लोगों का जीवन-स्तर सुधरे तथा उत्पादकता में वृद्धि आए। प्रो. टी0 डब्ल्यू0 शुल्ज ने उत्पादकता बढ़ाने के संबंध में ठीक ही कहा है, "हमारी आर्थिक प्रणाली का सबसे बड़ा लक्षण मानवीय पूंजी का विकास है।"

डा. वी. के. आर. वी. राव का भी स्पष्ट कथन है कि मानव की कुशलता एवं दक्षता ही आर्थिक विकास का ढाँचा खड़ा किया जा सकता 'है। प्रो. गैलब्रेथ ने शिक्षा पर विनियोग को सबसे अच्छा विनियोग बताया है क्योंकि यह उपभेग एवं विनियोजन दानों ही है। प्रो. मार्शल का भी इसी प्रकार का मत है, "सबसे अधिक बहुमूल्य पूंजी वह है जो मनुष्यों में विनियोजित की जाती है।" दूसरे शब्दों में, पूंजी में सर्वोत्तम पूंजी मानव पूंजीहै।

18.8 प्रवासन का आर्थिक विकास पर प्रभाव (Effect of Migration on Economic Development)

किसी देश की आर्थिक विकास को उस देश का आन्तरिक तथा बहिर्प्रवास (Internal & International Migration) काफी सीमा तक प्रभावितकरती है। किस प्रकार के लोग, कितनी मात्रा में देश के ग्रामीण अंचलों से शहरों की ओर प्रवासित होकर जहां शहरी संतुलन को प्रभावितकहते है, वहीं देश से बाहर जाने वालों तथा देश में आने वालों की संख्या राष्ट्रीय विकास

सूचकांको को अनेक प्रकार से प्रभावित करता है। भारत में ब्रेन-ड्रेन की स्मस्या, शरणार्थियों की संख्या इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

18.8.1 आन्तरिक प्रवासन का प्रभाव (Impact of Internal Migration)

जहां तक आन्तरिक प्रवासन का प्रश्न है यह यद्यपि समग्र राष्ट्रीय विकास पर बहुत कम प्रभाव डालता है। परन्तु यह देश के शहरों एवं ग्रामीण अंचलों पर अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

ग्रामीण अंचलों से शहरों को प्रवासित होने वाली जनसंख्या की मात्रा, गुणात्मकता तथा प्रकृति जहां एक ओर उस शहर पर अतिरिक्त भार बनता है वही उन गांवों पर कृषि पर निर्भरता कम करता है। यही नहीं मानवीय पूंजी का भविष्य भी प्रगतिशील होता है। और प्रो. लेविस की दोहरी अर्थ व्यवस्था के विकासोन्मुख बनाता है।

18.8.2 अप्रवासन (Immigration)

अप्रवासन की मात्रा तथा गुणात्मक देश के आर्थिक संसाधनों पर अतिरिक्त भार होता है और कभी-कभी तो क्षेत्र विशेष का संतुलन भी बिगड़ने की स्थिति में आ जाता है भारत में बंगला देश से आये शरणार्थियों के लिए जहां एक ओर इनके भोजन, वस्त्र, आवास आदि की व्यवस्था करनी पड़ी और पड़ रही है, जो कि देश में लाखों वयस्कों के रोजगार के अवसर पर कुठाराघात है। हां, ऐसा अप्रवासन जो कि कुशल हो और प्रौद्योगिकी के निर्माण तथा विकास में सहायक हो, हमेशा स्वागत है। भारत में भिलाई, राउरकेला, बोकारो आदि लोह संयंत्रों में बाहर से आये इन्जीनियर्स तकनीशियन आदि की सहायता से हमें इन कारखानों की स्थापना आदि में सहायता मिली।

18.8.3 उत्प्रवासन (Emigration)

इसी प्रकार देश से बाहर जाने वालों की संख्या, गुणात्मकता आदि का भी देश की अर्थव्यवस्था पर अधिक प्रभाव पड़ता है। जहां इनसे विदेशी पूंजी देश में आती रहती है, वही इनके ऊपर (इनको कुशल उत्पादक बनाने की आयु तक) किये गये राष्ट्रीय व्यय का लाभ देश को न मिलकर विदेश को मिलता है। भारत के डाक्टर, इन्जीनियर्स, तकनीशियन आदि, अमेरिका, कनाडा, फ्रांस आदि देशों की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। इस प्रकार बेनड्रेन की समस्या देश की प्रगति में बाधक होती है। क्योंकि इससे मानवीय पूंजी का अभाव होता है।

18.9 सारांश (Summary)

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि जनसंख्या एवं आर्थिक विकास में गहन संबंध है। दोनों ही एक दूसरे के साध्य, कार्य एवं कारण तथा पर्याय कहे जा सकते है। दोनों ही को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। किन्तु यह बात अर्थव्यवस्थाओं पर करती है कि वे किस साध्य एवं किस साधन के रूप में लेते है। किन्तु इतना सत्य है कि मानवीय साधन का महत्व अर्थव्यवस्थाओं

के लिए सर्वोपरि है। यह केवल इतना उत्पादन का निर्णायक (Determinant) ही न रह कर उत्पादन का उद्देश्य (Object) भी है। मानवीय विकास के लिए ही सारे कार्य किये जाते है तो उसे उनके अनुरूप भी रहना चाहिए। इसके महत्व को श्री बेरा एनस्टेथ का शब्द बहुत ही सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है। आर्थिक विकास के लिए भौतिक अथवा प्राकृतिक साधन ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि मानवीय साधन का उपयुक्त विकास भी आवश्यक है। इस शर्त को पूरा करने में जनसंख्या पर नियन्त्रण भी आवश्यक है।

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र.1 किसी भी देश के आर्थिक विकास को जनसंख्या का विकास पर किस प्रकार प्रभावित करता है। विवेचना कीजिये।

(संकेत-हार्वे लिविन्स्टीन तथा रिचर्ड नेल्सन के विचारों को सचित्र व्याख्या दें)

प्र. 2 जनसंख्या के आकार तथा आयु संरचना का किसी देश के विकास पर पड़ने वाले प्रभावों का उल्लेख करें।

(संकेत-प्रतिव्यक्ति आय भोजन वस्त्र रोजगार आदि की स्थिति का विवेचना करके नेलसन तथा लिविन्स्टीन का उदाहरण दें)

प्र. 3 जनसंख्या प्रवासन किस प्रकार देश की मानवीय पूंजी में ह्रास/ वृद्धि करता है विवेचना करें।

(संकेत-प्रवासन का प्रभाव विस्तार से वर्णित करें)

प्र. 4 रिचर्ड नेल्सन के निम्न स्तरीय संतुलन अवरोध का सकचत्र वर्णन करें।

प्र. 5 अधोलिखित में से किन्हीं दो पर टिपणी लिखें :-

(अ) लिविन्स्टीन का न्यूनतम प्रयास

(ब) आय निर्धारण समीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि समीकरण

(स) जनसंख्या की आयु संरचना का आर्थक विकास पर प्रभाव

(द) जनसंख्या आकार का प्रतिए व्यक्ति आय/रोजगार/भोजन/उत्पादक पर प्रभाव

प्र. 6 जनसंख्या विकास दर का देश की मानवीय पूंजी निर्माण पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तार से वर्णन करें।

संकेत-जनसंख्या विकास पर तथा आयु संरचना का देश में जनसंख्या संरचना का वर्णन करें)

18.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Agarwal S.N. : India's Population, p.98

Bose Ashish : Environment and Population: Some Ecological and Demographic Implications for Development Planning in Asia, Paper Presented in the Second Asian Population Conference. Tokyo, Now. 1972, Published in Apss, No. 28 pp.

:

Bright Singh D. : Economics of Development, Asia Publishing House, Bombay 1962

Coale, A.J. : Population dilemma, pp. 50-69

Coale, A.J. And Hoover E.M. : Population Growth and Economic Development in Low Income Countries, Princeton 1958, p. 232.

Dandekar, V.M. And RATH, N. : Poverty in India (1971), Indian, School of political Economy.

Dandekar, V.M. : Presidential Address; Ind-Soc. Of Agri.

: Conf. Ludhiana, 1967

Gunnar, Myrdal. : Asian drama, Vol. II Chapter 28, Part 6, pp. 1464-1470.

: In Caloric Deficiencies and Protein Deficiencies (taken from APSS No.20, p.173)

Higgins, B. : Economic Development, Chaitanya Prakashan, Alld. 1962, pp.395-397.

Hopkings, W.A.B. : The Economics of an Aging Population, Jan. 1953, p.33.

Herzog, J. : Investment in Social Development: Some Implication of Demographic Conditions, Second Asian population Conference, Tokyo, Nov. 1972, APSS, No. 28, pp.190-204

Hauser, P.M. : The Population Dilemma, p. 51

Govt. Of India : Economic Survey, 1976-77, New Delhi.

Jain, S.P : Indian Population and Development, New Delhi, NCERT, 1977, p. 180.

Srivastava, S.C. : Studies in Demography जनांकिकी के प्रारूप

Kuznets, S. : "Demographic Aspect of modern Economic Growth", World Population Conference, 1965, background Papers, Belgrade, WPC/WP/380, p.1.

Leibenstein : Economic Backwardness and Economic Growth, N.Y., 1957.

MEIR, G.M. And Baldwin, R.E. : 'A Theory of Low-equilibrium Trap,'
: A.E.W. dec. 1956, pp. 894-904.

Sukhatme, P.V. : Feeding India's Growing Millions, londlondon.A.P.H. 1965.

— : Human Calorie and Protein needs and How far they are Satisfied Today in B.B.P. Cox and John Peel (Eds), Resource, and Population, London, Academic Press, 1973, p. 28

Scrimshaw, N.S. : Arch, Environ. Health, 1919.

Stansburry, J. : "kshudha Our Vikash Ki Samasya" is Spantology (Hindi) 1971, p. 17.

Spengler, J.J. : The Population Obstacle to Economic Betterment, A.E.R., Papers and Proceeding, Mya, 1951, pp. 343-54.

Villard, H.H. : Economic Development, Richard, N.Y., 1959, p. 196.

U.N., Fao. : Population, Food Supply and Agricultural Development, Rome 1975, pp. 47-48.

— : Population, Aspects of Social Development Report of a Regional Seminar and Selected Papers, A.P.S. No. 11, ESAFE, Bangkok, 1972.

— : International Social Development Review, No.2. pp-1-2.

— : Determinants and Consequences of Population Trends, U.N., 1953, 1973.

— : Economic Survey of Asia and the Far. Fast, 1973.

इकाई-10

परिशिष्ट

तालिका 5.1

सामान्य शिक्षा की प्रगति 1985-90

क्रम सं.	वितरण	1984- 85		1989-90		2013-14	
		संस्थाएं (संख्या)	विद्यार्थियों की संख्या (हजारों में)	संस्थाएं (संख्या)	विद्यार्थियों की संख्या (हजारों में)	संस्थाएं (संख्या)	विद्यार्थियों की संख्या (हजारों में)
1.	प्राथमिक शिक्षा (कक्षा I-V) (उम्र 6-10)	519701	83933	550700	97318	847118	130648
2.	माध्यमिक शिक्षा(कक्षा V-VIII) (उम्र 11-14)	129789	26153	143747	32188	425094	74413
3.	प्राथमिक शिक्षा(कक्षा I-VIII) (उम्र 6-14)	649580	110086	694447	129506		205061
4.	अनोपचारिक शिक्षा(कक्षा I-VIII) (उम्र 6-14)			27087	6400		
5.	कुल 1 to 4 मद 3 एवं4	649580	110086	721534	135906		
6.	उच्च / उच्चत्तर माध्यमिक स्कूल कक्षा IX-XII	58834	13828	76119	19970	135335	44734
7.	कालेज शिक्षा	4005	2577	4755	3814	**38498**	141046

	(कला विज्ञान वाणिज्य)						
8.	विश्वविद्यालय (Deemed University (सहित)	135	347	174	388	**760**	
9.	अभियान्त्रिक महाविद्यालय	198	145	278	733		
10	पोलीटेक्निक	389	148	840	284		

स्रोत:- आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992-97 भारत सरकार, योजना आयोग, नई दिल्ली

इकाई 19

भारत में निर्धनता व असमानता आकार, प्रकृति, कारण तथा इनको कम करने के उपाय

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 निर्धनता का अर्थ, आकार व प्रकृति
  19.2.1 निर्धनता-रेखा किसे कहते है?
  19.2.2 निर्धनता का आकार अथवा निर्धनता एवं प्रवृत्तियां (Trends)
  19.2.3 निर्धनता की प्रकृति
19.3 निर्धनता के कारण
  19.3.1 ग्रामीण निर्धनता के काररण
  19.3.2 शहरी निर्धनता के कारण
19.4 निर्धनता कम करने के सरकारी उपाय
  19.4.1 विभिन्न निर्धनता-उन्मूलन-कार्यक्रमों का संक्षिप्त परिचय व प्रगति
  19.4.2 कार्यक्रमों का मूल्यांकन व कमियाँ
19.5 निर्धनता-उन्मूलन के लिए सुझाव
19.6 असमानता का अर्थ, आकार व प्रकृति
  19.6.1 असमानता का अर्थ-आय के वितरण की असमानता
  19.6.2 आय की आसमानता का आकार व माप
  19.6.3 असमानता की प्रकृति
19.7 आय की असमानता के कारण
19.8 आय की असामानता को कम करने के संबंध में सरकारी उपाय
19.9 आय की असामानताओं को कम करने के लिए सुझाव
19.10 सारांश
19.11 शब्दावली
19.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
19.13 अभ्यासों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में निर्धनता व असमानता से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला जाएगा। नियोजित विकास के कई उद्देश्य होते है, जैसे विकास की दर से ऊँचा करना, आत्म-निर्भर विकास की ओर अग्रसर होना,निर्धनता का उन्मूलन करना, धन व आय की असमानताओं को कम करना, अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण करना, विकास में क्षेत्रीय या प्रादेशिक असंतुलन कम करना, आदि। इन उद्देश्यों में निर्धनता- उन्मूलन व आय की असमानताओं को कम करने पर सामाजिक कारणों से अधिक बल दिया जाता है । इन समस्याओं को हल करने के लिए यह जानना बहुत आवश्यक है कि निर्धनता को कैसे परिभाषित किया जाता है, निर्धनता की रेखा कैसे जानी जाती है, देश में कौन लोग अधिक निर्धन है, निर्धनता के कारण क्या है और इसको दूर करने के लिए सरकार ने योजनाओं में क्या उपाय किये है तथा इस दिशा में क्या उपलब्धियां रही है? आजकल सामाजिक न्याय के साथ विकास ' पर जोर दिया जाता है ताकि विकास के लाभ सर्वसाधारण तक पहुंच सकें। इसके लिए आर्थिक असमानता व विशेषकर आय की असमानताओं को कम करने के उपाय भी अपनाये जाते है । इसलिए आय की असमानता के माप की आवश्यकता होती है । साथ में असमानता के कारणों का अध्ययन किया जाता है तथा इसको कम करने के सरकारी उपायों की समीक्षा की जाती है ताकि भविष्य में असमानताओ को कम करने की दिशा में तेज गति से प्रगति की जा सके।

इस इकाई के अध्ययन से निर्धनता व असमानता के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान प्राप्त होगा जो नियोजन की सफलता का आंकलन करने के लिए बहुत आवश्यक माना जाता है।

19.1 प्रस्तावना

भारत में 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' के दायरे में आर्थिक विकास का मार्ग अपनाया गया है । इसमें सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र दोनों का विकास का समुचित अवसर दिया गया है। इस प्रकार हमारे देश में दी हुई सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक परिस्थितियों के अंतर्गत बेरोजगारी, गरीबी व असमानता की समस्याओं को हल करने का प्रयास किया जा रहा है । बेरोजगार लोगों को काम देकर तथा निर्धन लोगों की आमदनी बढ़ा कर उनका जीवन-स्तर ऊँचा करने के प्रयास किये जा रहे है। निर्धन व्यक्तियों को परिसम्पत्तियां (assets) देने के कार्यक्रम भी लागू किये गये है ताकि उनके लिए स्वरोजगार के अवसर उत्पन्न हो सके । उनके लिए मजदूरी पर रोजगार देने के कार्यक्रम भी लागू किये गये है। सरकार ने गरीबों के कल्याण के लिए शिक्षा, चिकित्सा व पोषण के कार्यक्रम भी अपनाये है। इस प्रकार आर्थिक ढाँचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये बिना निर्धनों की दशा सुधारने की कोशिश की जा रही है। साथ में आय की असमानता को कम करने के भी कई उपाय किये गये है ताकि आगे चल कर समतावादी व न्यायपूर्ण समाज की स्थापना हो सके।

निर्धनता व असमानता समाज के लिए अभिशाप है, और सरकार का यह दायित्व है कि वह उनको दूर करने का भरसक प्रयास करें, तभी विकास के लाभ समाज के सभी वर्गो को समान

रूप से प्राप्त हो सकते है। निर्धनता-उन्मूलन व असमानता कम करने से ही सामाजिक तनाव कम हो सकते है, श्रम की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है, जीवन-स्तर ऊँचा होता है, और देश उत्तरोत्तर नियोजित विकास के पथ पर तेजी से अग्रसर होता जाता है। इससे लोकतंत्र की जड़ें भी मजबूत होती है। इन समस्याओं का स्थायी समाधान निकालने के लिए इनकी प्रकृति व कारणों पर नीचे विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

19.2 निर्धनता का अर्थ, आकार व प्रकृति

19.2.1 निर्धनता-रेखा किसे कहते है?

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में निर्धनता-उन्मूलन' योजना के एक उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया गया था। विभिन्न अर्थशास्त्रियों जैसे प्रोफसेर वी.एम.दांडेकर, नीलकंठ रथ, ए.के. सेन, बी.एस.मिन्हास, प्रणव बर्धन, मोन्टेक अहलूवालिया, आदि के भारत में निर्धनता की प्रवृत्तियों पर अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये है। आजकल योजना आयोग की गरीबी की रेखा, गरीबी का अनुपात, आदि पर आवश्यक आकड़े पेश करता रहता है।

भारत में निर्धनता का विचार निरपेक्ष (absolute) रूप में लिया गया है। इसे केलोस की मात्रा' से जोड़ा गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रति दिन 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी से कम उपभोग करने वाले व्यक्ति निर्धन माने जाते है। पोषण-विशेषज्ञ विभिन्न खाद्य पदार्थों के उपभोग की कैलोरी की मात्रा ज्ञात कर लेते है। योजना आयोग द्वारा गठित 'न्यूनतम आवश्यकता व प्रभावपूर्ण उपभोक्ता मांग पर कार्यकारी दल' (1979) ने उपभोग के इन न्यूनतम स्तरों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों'के लिए प्रति व्यक्ति प्रति माह व्यय की राशि (1973-74के मूल्यों पर) लगभग 49 रुपये तथा शहरी क्षेत्रों के लिए 56.6 रुपये आंकी थी। इन्हें निर्धनता की रेखाएं माना गया था। आगे के वर्षो में कीमतों के परिवर्तनों के आधार पर ये सीमाएं बढ़ायी गयी हैं; जैसे 1983-84 के मूल्यों पर ये इस प्रकार आँकी गयी है:

गरीबी की रेखा (1983-84 के मूल्यों पर) ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 101 .80 रुपये का लगभग 102 रुपये शहरी क्षेत्रों के लिए 117.50 रुपये का लगभग 118 रुपये नीचे व्यय करने वाले व्यक्ति निर्धनों की श्रेणी में रखे गये। स्मरण रहे कि उपर्युक्त व्यय की राशियां खाद्य-पदार्थ तथा कुछ सीमा तक गैर-खाद्य पदार्थों पर व्यय से संबंध रखती है, लेकिन ये न्यूनतम कैलोरी की मात्रा के उपभोग की गारंटी अवश्य देती है। सरल रूप में इसका अर्थ इस प्रकार लगाया जायगा कि 1983-84 में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रति माह लगभग 102 रुपये व्यय करने वाले व्यक्ति को 2400 कैलोरी प्रति दिन उपभोग का स्तर मिल रहा था, तथा शहरी क्षेत्रों में 117.50 रुपये व्यय करने वाले व्यक्ति को 2100 कैलोरी प्रति दिन उपभोग का स्तर मिल रहा था। इससे नीचे व्यय करो वाले व्यक्ति गरीब माने गये।

हमें पुन: यह ध्यान रखना होगा कि भारत में निर्धनता का विचार एक सापेक्ष (relative) विचार नहीं है। सापेक्ष विचार के अंतर्गत चोटी के 10% या 5% व्यक्तियों के औसत व्यय की तुलना निम्नतम स्तर के 10% या 5% व्यक्तियों के औसत व्यय से की जाती है। इससे उनके बीच

असमानता का अनुमान तो लग जाता है, लेकिन निर्धनता का विचार, कैलोरी की मात्रा' से जोड़े जाने के कारण यह एक निरपेक्ष विचार ही माना गया है।

भारत में निर्धन व्यक्तियों की गिनती उपर्युक्त न्यूनतम प्रति व्यक्ति प्रति माह व्यय के आधार पर कर ली जाती है और उसका कुल जनसंख्या से अनुपात निर्धनता-अपुपात (Poverty-ratio) कहलाता है।

आजकल भारत में प्रति पांच वर्ष में राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन द्वारा संकलित, उपभोग-व्यय के आकड़ों के आधार पर निर्धनों की संख्या ज्ञात की जाती है।

यहां पर यह बतलाना भी आवश्यक है कि छठी पंचवर्षीय योजना के लिए प्रति परिवार वार्षिक व्यय की न्यूनतम राशि 3,500 रुपया आंकी गयी थी, जिससे नीचे व्यय करने वाले परिवार निर्धन माने गये थे। सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में इसे बढ़ाकर 6,400 रुपया कर दिया गया; लेकिन विभिन्न आय-सीमाओं के अनुसार गरीबों को चार श्रेणियों में विभाग किया गया जो इस प्रकार है.

तालिका 19.1 गरीबों की श्रेणियां एवं आय सीमा

प्रति परिवार वार्षिक(आय-सीमाएं रुपयों में)	निर्धनों की श्रेणी
(1) 0-2265	अति दरिद्र (destitute)
(2) 2266-3500	बहुत बहुत गरीब (very very poor)
(3) 3501-5000	बहुत गरीब (very poor)
(4) 5001-6400	गरीब (poor)

इस वर्गीकरण का प्रयोजन यह है कि साधनों के अभाव में प्रथम व द्वितीय श्रेणी के निर्धनों को लाभ पहुंचाने पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए, अर्थात् निर्धनों में भी अधिक निर्धन व्यक्तियों के कल्याण की बात पहले सोची जानी चाहिए।

विश्व बैक ने भी अत्यधिक निर्धनों (Ulter-Poor) का अनुमान प्रस्तुत किया है जिसमें सामान्य निर्धनता-रेखा के व्यय के 75% को इनके लिए न्यूनतम व्यय का आधार माना गया है। उदाहरण के लिए, विश्व बैक ने 1988 के लिए भारत में 39.6% लोगों, को निर्धनता रेखा से नीचे माना है; जबकि 'अत्यधिक निर्धनों' का अनुपात 19.2% ही आंका गया है। स्वाभाविक है कि अत्यधिक निर्धनों का अनुपात सामान्य निर्धनों के अनुपात से नीचा रहेगा।

19.2.2 निर्धनता का आकार अथवा निर्धनता-अनुपात एवं प्रवृत्तियां(Trends)

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न अवधियों के लिए निर्धनता-अनुपात निकालकर निर्धनता की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है। उनकी विधियों में अंतर होने से उनके परिणामों में भी अंतर पाया गया है। यहां हम योजना आयोग द्वारा सातवीं पंचवर्षीय योजना के खण्ड 1 में प्रस्तुत निर्धनता के माप निम्न तालिका में दर्शाते हैं :—

तालिका 19.2 भारत में निर्धनता का आकार

वर्ष	निर्धनता-अनुपात (प्रतिशत में)			निर्धनों की संख्या (मिलियन में)		
	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल
2004-05	41.8	25.7	34.4	326.3	80.8	407.1
2011-12	25.7	13.7	21.9	216.5	52.8	269.3

तालिका से निम्न बातें स्पष्ट होती है

(1) ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता की समस्या शहरी क्षेत्रों की तुलना में बहुत ज्यादा गम्भीर व पेचीदी है।

(2) 1977-78 में देश में 48% लोग निर्धन थे जो 2011-12 में घट कर 21.9% रह गए।

(3) यदि निर्धनता-उन्मूलन कार्यक्रम लक्ष्य के अनुरूप सफलता प्राप्त कर लें तो भी 1989-90 के अंत में भारत में 21 करोड़ व्यक्ति निर्धन आंके गये है। इससे समस्या गम्भीरता का अनुमान लगाया जा सकता है।

भारत में निर्धनता की स्थिति में राज्यवार काफी अंतर पाये जाते है। अनुमान है कि निम्न आठ राज्यों में देश के 50% निर्धन व्यक्ति पाये जाते है : आंध्र प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल। इन्हीं में देश के 50% बेरोजगार व्यक्ति भी केन्द्रित है।

2011-12में जहां समस्त भारत के लिए निर्धनता का अनुपात 21.9% था, वहीं पर ग्रामीण क्षेत्रों में बिहार में यह 34.05%, मध्य प्रदेश में 35.7% व उत्तर प्रदेश में 30.4% था। लेकिन हरियाणा में यह 11.6% तथा हिमाचल प्रदेश में 8.5% पाया गया।

डा.मोन्टेक अहलूवालिया ने ग्रामीण-निर्धनता का अनुपात 1956-57 से 1977-78 तक के सभी वर्षों के लिए पूरे सिरीज के रूप में दिया है, लेकिन उसमें उतार-चढ़ाव होने से कोई निश्चित प्रवृत्ति उभर कर सामने नहीं आयी है। जैसे 1956-57 में 44.5%, 19970-71 में 47.5 % तथा 1977-78 में 39.1% रहा। इस प्रकार विभिन्न वर्षों में निर्धनता-अनुपात में उतार-चढ़ाव आने मे कोई दीर्घकालीन प्रवृत्ति प्रगट नहीं हुई। प्रोफेसर वी.एम.दांडेकर के अनुसार ग्रामीण निर्धनता का अनुपात 1971 -7 2 में 46% से घटकर 1983 में 44.4%' पर ही आ पाया था। यह सरकारी अनुमानों से ऊँचा पाया गया है।

9.2.3 निर्धनता की प्रकति (Nature of Poverty)

(1) **प्रमुखतया ग्रामीण-**जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है भारत में निर्धनता का प्रकोप ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता खेतिहर भूमिहीन मजदूरों, लघु व सीमान्त कृषकों, ग्रामीण कारीगरों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ी जाति के लोगों, बंधुआ मजदूरों, आदि में काफी जटिल रूप में फैली हुई है। शहरी निर्धनता पर ग्रामीणों के पलायन का प्रभाव पड़ता है।

(2) **दीर्घकालीन स्वरूप** :-यह एक अल्पकालीन समस्या न होकर दीर्घकालीन व गहन समस्या है । पीढ़ियों से लोग भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, प्रशासनिक आदि कारणों से गरीबी के नागपाश में बंधे चले आ रहे है, जिनसे मुक्ति पाना कोई सहज कार्य नहीं है । यह केवल आर्थिक समस्या नहीं है । इसका संबंध सामाजिक पिछड़ेपन व सामन्ती परम्पराओं से भी है । अतः समस्या के स्थायी हल के लिए सभी पक्षों पर एक साथ प्रहार करके आमूल-चूल परिवर्तन लाना होगा।

(3) **कृषिगत उत्पादन के उतार-चढ़ाव से जुड़ी ग्रामीण निर्धनता :-** भारत में प्राय : यह देखा गया है कि ग्रामीण निर्धनता का सीधा संबंध कृषिगत उत्पादन से पाया जाता है । कृषिगत उत्पादन की दृष्टि से अनुकूल वर्षों में ग्रामीण निर्धनता घट जाती है । तथा प्रतिकूल वर्षो में यह बढ़ जाती है ।

(4) **यह मूलत: देश के अल्पविकास (Under development) की परिचायक है :-भारत में** श्रम-शक्ति की मांग व पूर्ति में भारी असंतुलन है । देश में आर्थिक विकास की गति धीमी है जिससे यह असंतुलन निरंतर बना रहता है, और फलस्वरूप निर्धनता ने काफी भयावह रूप धारण कर लिया है ।

अतः भारत में निर्धनता की समस्या दीर्घकालीन व अत्यधिक पेचीदा समस्या है । इसका विकास की सामाजिक प्रक्रिया, आर्थिक प्रक्रिया व राजनीतिक प्रक्रिया से गहरा संबंध है । जिनको समझे बिना व बदले बिना इस समस्या का स्थायी समाधान निकाल पाना अत्यंत दुष्कर है ।

बोध प्रश्न-1

(1) भारत में 'गरीबी की रेखा ' के संबंध में कौन-सा कथन सही है?

(अ) यह प्रति व्यक्ति प्रति माह न्यूनतम व्वय की वह मात्रा है जो लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति को संभव बनाती है ।

(ब) यह ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रति दिन न्यूनतम 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी प्रदान करने वाले खाद्य-पदार्थों की लागत होती है ।

(स) यह प्रति व्यक्ति प्रति माह वह न्यूनतम व्यय की राशि होती है जो न्यूनतम कैलोरी का उपभोग संभव बनाती है, और जिससे नीचे व्यय करने वाले लोग निर्धन माने जाते है । ()

(2) सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रतिवेदन के अनुसार 1977-78, 1984-85 व 1989-90 के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के लिए निर्धनता-अनुपात व निर्धनों की संख्या लिखिए।

(3) डा.मोन्टेक अहलूवालिया तथा योजना आयोग के अनुसार भारत में निर्धनता की प्रवृत्तिया बतलाइए।

(4) भारत में निर्धनता की प्रकृति क्या है?

19.3 निर्धनता के कारण

19.3.1 ग्रामीण निर्धनता के कारण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है भारत में अधिकांश निर्धनता गांवों में देखने को मिलती है। इसलिए सर्वप्रथम ग्रामीण निर्धनना के कारणों पर प्रकाश डाला गया है:

(1) **ग्रामीण जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि**: जनसंख्या में निरंतर वृद्धि व तेज गति से वृद्धि गरीबी की समस्या का मुख्य कारण माना गया है। भारत में ग्रमीण जनसंख्या 1951 में 36.1 करोड़ थी जो बढ कर 1981 में 68.4 करोड़ हो गई। 1971-81 की अवधि में यह 9 करोड़ बढ़ी। यदि 1991 के लिए ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात 85 करोड़ माना जाय तो 2011 के अन्त तक यह102.34 करोड़ से अधिक होने का अनुमान है। जनसंख्या की इस प्रकार की वृद्धि से श्रम-शक्ति भी बढ़ती है जिसका पर्याप्त काम न मिल पाने से गरीबी का बढ़ना स्वाभाविक है।

(2) **कार्यशील भूजोतों का असमान वितरण व भूमि-सुधारों के क्रियान्वयन मे कमी:-** भारत में भूमि-सुधारों ने कार्यशील जोतों के वितरण की असमानता को नहीं मिटाया। परिणामस्वरूप 1985-8 6 में भी सीमान्त जोते (1 हैक्टेयर से कम) लगभग 58% थी जिनमें कुल कृषित भूमि का 13% समाया हुआ था, जबकि बड़ी जोतें (10 हैक्टेयर व अधिक आकार की) 2% थी। हर बार भू जोतों की संगणना में सीमान्त जोतों की संख्या बढ़ जाती है। देश में भूमिहीनों की संख्या भी बढ़ रही है जिसे सर्वहाराकरण' की प्रक्रिया कह सकते है। अतः भूजोतों का 'सीमान्तकरण', भूमिहीनों का 'सर्वहाराकरण' व 'निर्धनीकरण ' परसर जुड़े हुए है। इन्हें एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता।

देश में भूमि पूर्णतया लागू न होंने से बटाईदारी प्रथा (share cropping), उप-काश्तकारी, आदि विद्यमान है। सीलिंग से अतिरिक्त भूमि का वितरण भूमिहीनों में नहीं हो पाया है। अतः भूमि-सुधार गरीबी करने की दिशा में योगदान नहीं कर पाये है।

(3) **कषिगत उत्पादन मे धीमी व अनियमित वृद्धि :-** योजनाकाल मे कृषिगत विकास की दीर्घकालीन दर लगभग 2.7% वार्षिक रही हैं जो जनसंख्या की 2% वृद्धि-दर से थोड़ी अधिक है। कूषिगत उत्पादन की धीमी वृद्धि गरीबी को कम करने की दृष्टि से अपर्याप्त रही है। साथ में इसमें वार्षिक उतार-चढ़ाव भी आते रहते है। भारत में कृषिगत उत्पादन के तेज गति से बढ़ने पर निर्धनता में कमी आती है, तथा इसमें भारी गिरावट आने से निर्धनता में वृद्धि होती हैं। अभी तक वर्षा पर आश्रित क्षेत्रों में सूखी खेती की विधि विस्तृत रूप से नहीं अपनायी गयी है जिससे उसका प्रभाव गरीबी दूर करने की दृष्टि से प्रगट नहीं हुआ है।

(4) **हरित क्रान्ति का प्रभाव**-हरित क्रान्ति के फलस्वरूप विभिन्न कृषित क्षेत्रों व विभिन्न कृषक-वर्गो के बीच असमानता बढ़ी है। यंत्रीकरण ने कुछ क्षेत्रों में बेरोजगारी में वृद्धि की है। अतः हरित क्रान्ति गरीबी कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण व स्पष्ट योगदान नहीं कर पायी है।

(5) **गाँवों मे निर्धन**-वर्ग द्वारा खरीदे जाने वाले खाद्य-पदार्थों की कीमतों में वृद्धि-स्व: धर्मनारायन ने गांवो में गरीबों द्वारा खरीदे जाने वाले खाद्य पदार्थों को कीमतों में वृद्धि का दुष्प्रभाव गरीबी पर आंका है। भूमिहीन श्रमिको पर इसका सीधा प्रभाव आता है, और सीमान्त व लघु कृषक भी इससे प्रभावितहुए बिना नहीं रहते।

(6) **गरीबों के लिए गांवों मे काँमन-प्रोपर्टी साधनों से मिलने वाले लाभों में भारी गिरावट :-** श्री एन.एस.जोधा व अन्य विद्वानों के अध्ययनों से पता चला है कि पहले ग्रामवासियों को चराई की काँमन भूमि, व्यर्थ भूमि, वन, जूल-साधनों, आदि के उपयोग से जों लाभ मिल जाते थे, वे अब इनके निजीकरण व व्यवसायीकरण से ठेकेदारों आदि के हाथो में चले जाने से काफी सिमट गये व संकुचित हो गये है जिससे गरीबी बढ़ी है।

(7) **गाँवों में जातिवाद, पिछड़ेपन व परम्परागत समाज को बोलबाला :-** गांव आज भी सामाजिक भेदभाव, ऊँच-नीच सम्प्रदायवाद, पिछड़ेपन व सामन्ती वातावरण से ग्रस्त है। कहीं भी समता की हवा नजर नहीं आती। समाज का उच्च वर्ग गरीबों के लिए निर्धारित कार्यक्रमों के लाभ उन तक नहीं पहुंचने देता। गरीबों में राजनीतिक संगठन का शक्ति का अभाव रहता है।

इस प्रकार विभिन्न सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक कारणों ने ग्रामीण निर्धनता को कायम रखा है। श्रम - शक्ति की कृषिपर आश्रितता बनी हुई है। ग्रामीण औद्योगिकीकरण का अभाव है। गॉवो में कल्याणकारी सेवाओं - शिक्षा, चिकित्सा, व पोषण का अभाव है। गाँवों का द्रुतगति से चहुंमुखी विकास ही इसका सही समाधान हैं।

19.3.2 शहरी निर्धनता के कारण

शहरों मे भीं, विशेषतया महानगरों में गंदी बस्तियों में निर्धनों की भरमार पायी जाती है। कफी संख्या में भिखारी व अन्य लोग फुटपाथों पर जीवन व्यतीत करते है।

वैसे शहरी निर्धनता भी सामान्य निर्धनता के कारणों से प्रभावितहोती है, लेकिन इसके विशेष कारण निमाकित है :-

(1) **गाँवों से शहरों की ओर जनसंख्या का पलायन**-ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार न मिल पाने के कारण लोग शहरों की ओर प्रस्थान करते है जिससे वहां भीड़भाड़ बढ़ती है, तथा आवास, शिक्षा, चिकित्सा, पेयजल, आदि पर दबाव बढ़ते है औंर निर्धनता बढ़ती है।

(2) **शहरों मे भी परम्परागत घरेलू उद्योगों का पतन गरीबी को बढ़ाता है।** स्वरोजगार में त्रगे कारीगर मशीन-निर्मित वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा 'मे अपने परम्परागत रोजगार से हाथ धो बैठते है। लघु व बड़ी औद्योगिक इकाइयों के रूग्ण हो जाने व उनके बंद हो जाने से श्रमि को में बेकारी फैलने से भी शहरी निर्धनता बढ़ती है।

(3) **शहरों में श्रम-शक्ति की मांग उसकी पूर्ति में कम होने से बरोजगारी पायी जाती है।** इससे निर्धनता बढ़ती है जो दक्ष, अर्द्ध-दक्ष वे पुरुष व महिला-अदक्ष श्रमिको में पायी जा सकती है। लेकिन जिन शहरी व्यक्तियों के पास शिक्षा, परिसम्पत्ति, दक्षता व अन्य साधनों

का अभाव होता है वे तो निरंतर पिसते जाते है, और महंगाई, सामाजिक, प्रथाओं व अभावों के शिकार होते जाते है। इससे उनका जीवन-स्तर घटता जाता है और वे गरीबों की श्रेणी में प्रवेश करते जाते है।

इस प्रकार अनेक कारणों ने मिलकर भारत में निर्धनता को बनाये रखा है। विद्वानों का यह मत सही है कि यदि निर्धनता का विचार केवल 'कैलोरी की मात्रा ' से न जोड़ कर लोगों की 'सभी न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं', जैसे न्यूनतम भोजन, वस्त्र, आवास, दवा, शिक्षा, मनोरंजन, आदि से जोड़ा जाय तो गरीबी की रेखा से नीचे अपने वाले का प्रतिशत व कुल संख्या आज भी अपेक्षा ऊँची जायेगी। यही कारण है कि विश्व बैक ने अपनी 1990 की विकास-रिपोर्ट में निर्धनता के विचार को 'न्यूनतम आवश्यकताओं ' से जोड़ा है, न कि कैलोरी के उपयोग की न्यूनतम मात्रा से।

भारत गरीबी के संबंध61 वें एन.एस.एस. अनुमान

भारत में संपूर्ण स्तर पर गरीबी के संबंध में कुछ तथ्य तथा अनुमान - 61 वें एन.एस.एस. चक्र पर आधारित - योजना आयोग प्रत्येक पांच वर्ष में एनएसएस द्वारा किये गये गृहस्थ उपभोक्ता व्यय के संबंध में बड़े न्यादर्श(सैम्पल) सर्वेक्षा से प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग करके गरीबी का अनुमान लगाता है। यह गरीबी रेखा को मासिक प्रतिव्यक्ति उपभोग व्यय के आधार पर परिभाषित करता है योजना आयोन ने एनएसएस के 61 वें चक्र द्वारा संकलित उचबम आंकड़ों के आधार पर 2004-05 मूल्य पर ग्रामीण क्षेत्र के लिए 356 रूपया तथा शहरी क्षेत्र के लिए 539 व्यय के आधार पर 2005 पर अनुमान लगाया –

	गरीबी (प्रतिशत)
ग्रामीण	28.3
शहरी क्षेत्र	25.7
अखिल भारतीय स्तर	27.5

अर्जुन सेन गुप्ता 2004 - 05 मूल्य पर - 77 प्रतिशत (प्रतिदिन 20 रूपया) एवं एन.पी. सक्सेना कमेटी (2009)

तेन्दुलकर सुरेश डी2009 - 61 वें चक्र पर आधारित

2009 में नियुक्त तेन्दुलकर कमेटी ने गरीबी की माप के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाया तथा एन.एस.एस.ओ. के 61 वें चक्र में आंकड़ों को आधार मानते हुए जिसके अनुसार 2004-05 मूल्य पर ग्रामीण उपभोग व्यय रुपया 446.8 लगभग 447 रूपया तथा शहरी क्षेत्र के लिए जो 578.80 रूपया लगभग 579 मासिक आता है, यह अनुमान लगाया कि सम्पूर्ण गरीबी 37.2 प्रतिशत तथ्रर ग्रामीण क्षेत्र के लिए 41.8 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्र के लिए 25.7 प्रतिशत रही, 2004-05 मूल्य पर तेन्दुलकर कमेटी तथा लकड़ावाला कमेटी का गरीबी संबंधी तुलनात्मक अनुमान इस प्रकार है -

	लकडवाला सूत्र 2004-05 मूल्य पर	तेन्दुलकर सूत्र 2004-05 मूल्य पर
ग्रामीण	28.3	41.8
शहरी	25.7	25.7
अखिल भारतीय स्तर	27.5	37.2

उपर्युक्त दी गयी तुलनात्मक स्थिति से यह स्पष्ट है कि समग्र स्तर पर तेन्दुलकर कमेटी का अनुमान 32.7 प्रतिशत रहा, जबकि लकड़ावाला सूत्र पर यह केवल 27.5 प्रतिशत रहता। ऐसा मानते हैं कि तेन्दुलकर का उपभोग व्यय संबंधी अनुमान लकड़ावाला अनुमान से अधिक है पर सेनगुप्ता के अनुमान से कम है। 66 वें चक्र पर आधारित 2011-12 के लिये योजना आयोग का अनुमान (तेन्दुलकर कमेटी सूत्र पर आधारित) तेन्दुलकर सूत्र पर आधारित एनएसएसओ के 66 वे चक्र से प्राप्त उपभोग व्यय के संदर्भ में 2011-12 के लिए योजना आयोग ने जो शुरू में कमेटी ने नयी मेथडालजी के अन्तर्गत, तुलनात्मक स्थिति की दृष्टि से पिछले वर्ष के लिए गरीबी के अनुमान दिए। कमेटी के अनुसार 1993-94 में गरीबी रेखा से नीचे गरीबों की संख्या ग्रामीण क्षेत्र में 50.1 प्रतिशत शहरी क्षेत्र में 31.8 तथा पूरे देश के लिए 45.3 प्रतिशत रही।

19.4 निर्धनता कम करने के सरकारी उपाय

19.4.1 विभिन्न निर्धनता-उन्मूलन-कार्यक्रमों का संक्षिप्त परिचय व प्रगति

योजनाकाल के प्रारम्भिक वर्षो में यह समझा गया था कि आर्थिक विकास का प्रभाव निर्धनता-उन्मूलन के रूप में प्रकट होगा। इसे 'टपकने वाला प्रभाव ' (trickle-down effect) माना गया था। लेकिन जब यह प्रभाव प्रगट नहीं हुआ तो निर्धनता पर प्रहार करने के लिए विशिष्ट कार्यक्रम अपनाये गये। विकास का प्रभाव निर्धनता-उन्मूलन के रूप में इसलिए प्रगट नहीं हुआ कि सर्वप्रथम विकास की वार्षिक दर केवल 3.5% रही, जो अपर्याप्त थी, और द्वितीय विकास के लाभों का वितरण समान रूप से नहीं हो पाया क्योंकि समाज में समरूपता नहीं थी। साधन-सम्पन्न लोगों ने विकास के लाभ हाथिया लिए, और साधनहींन लोग इनसे वंचित रह गये। इस कमी को दूर करने के लिए पाचवी पंचवर्षीय योजना व बाद मे गरीबी व बेरोजगारी दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम चलाये गये। इनमें निर्धनता-उन्मूलन की दृष्टि से एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) का सर्वाधिक महत्व माना गया है। कुछ सीमा तक ट्राइसम के अंतर्गत प्रशिक्षण से भी लाभ पहुंचा है। लेकिन मजदूरी पर रोजगार देने की दृष्टि से राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) व ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP) काफी महत्व हैं जिन्हें परसर मिलाकर 1989-90 में जवाहर रोजगार योजना (JRY) के रूप में अधिक व्यापक रूप से प्रारम्भ किया गया। इन कार्यक्रमों के अलावा ' विभिन्न क्षेत्रीय कार्यक्रमों, जैसे सूखा सम्भाव्य क्षेत्र कार्यक्रम, मरू विकास कार्यक्रम, जनजाति क्षेत्र विकास कार्यक्रम, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम, पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम आदि का भी निर्धनता-उन्मूलन की दृष्टि से

रोजगार बढ़ाने की दृष्टि से महत्व रहा है। नीचे निर्धनता-उन्मूलन की दृष्टि से IRDP,NREP व RLEGP का संक्षिप्त परिचय दिया गया है तथा इनकी उपलब्धियो व प्रगति का उल्लेख किया गया है।

(1) **एकीकृत (समान्वित) ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP):-** यह -उन्मूलन का प्रमुख कार्यक्रम है। इसका प्रारम्भ 1976-77 में हुआ था। 1978 -7 9 में यह 2300 विकास-खण्डों में लागू किया गया और 2 अक्टूबर 1980, से देश के समस्त 5011 खण्डों- में फैला दिया गया। इसके अंतर्गत चुने हुँए निर्धन परिवारों को आय-सृजन करने वाली परिसम्पत्तियाँ उपलब्ध की जाती है। इसके लिए सब्सिडी व कर्ज की व्यवस्था की जाती है। इससे स्वरोजगार के अवसर उत्पन्न होते है। छठी पंचवर्षीय योजना में 1500 करोड़ रु की सब्सिडी देने का वित्तीय प्रावधान किया गया था जिसमें केन्द्र व राज्यों का हिस्सा आधा-आधा रखा गया था। साथ में 3 000 करोड़ रु तक के कर्ज सहकारी व व्यापारिक बैको से दिलाने का लक्ष्य रखा गया था और कुल 1 1/2 करोड़ परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर्र उठाने का लक्ष्य रखा गया था। इनमें कम से कम 30% अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के शामिल किए जाने थे। निर्धनों को कृषि व सहायक क्रियाओं, ग्रामीण व कुटीर उद्योगों व सेवा-क्षेत्र की क्रियाओं के माध्यम से लाभान्वित किया जाना था।

छठी योजना में.कुल विनियोग 4763 करोड़ रु.का हुआ जो 4500 करोड़ रु के लक्ष्य से अधिक रहा। कुल लाभान्वित परिवार 1.66 करोड़; रहे जो 1.5 करोड़ के लक्ष्य से अधिक थे। प्रति परिवार विनियोग की राशि 2876 रुपये रही जिसमें सब्सिडी की मात्रा 1003 रुपये व कर्ज की मात्रा 1873 रुपये रही। इस प्रकार 'सब्सिडी-कर्ज का अनुपात 1:1 .8 7 रहा।[1]

सातवी योजना में सब्सिडी की कुल राशि 3316 करोड़ रुपये थी जो लक्ष्य से अधिक थी तथा कुल अवधि-कर्ज की मात्रा 8688 करोड़ रुपये रही जिससे 1.6 करोड़ परिवार लाभान्वित हुए। योजना के प्रथम चार वर्षो में लगभग 1.4 8 'करोड़ परिवारों को लाभान्वित किया जा चुका था। वर्ष 1988-89 में प्रति परिवार विनियोग की राशि 4348 रुपये (पुरानों के लिए) तथा 5069 रुपये (नयों के लिए) हो गई थी।[2] इस प्रकार 'एग्राविका' से कुछ सीमा तक निर्धन वर्ग को लाभ पहुचा है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत निर्धनों को दुधारू पशु, सिलाई की मशीनें, ऊँट गाडिगां, खुदरा-दुकानें, हथकरघा कुटी व्यवसाय व अन्य प्रकार की परिसम्पत्ति देने का प्रयास किया गया है ताकि वे अपनी आमदनी बढ़ाकर गरीबी की रेखा से ऊपर आ सकें।

(2) **राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP)-**यह कार्यक्रम अक्टूबर 1980 से प्रारम्भ किया गया तथा अप्रैल 1981 से नियमित योजना का अंग बन गया'। इसका उद्देश्य प्रति वर्ष 30 से 40 करोड़ मानव-दिवस काम का सृजन करना, टिकाऊ सामुदायिक परिसम्पत्तियों का निर्माण करना

---

[1] A Review of the Agricultural credit System in India, RBI, 1989, p.746.

तथा निर्धनों के पोषण-स्तर व जीवन-स्तर में सुधार करना था। छठी योजना में इस कार्यक्रम के लिए 1873 करोड़ रु.की धनराशि उपलब्ध की गई। (राज्यों का अंश 794 करोड़ रु.) तथा वास्तविक उपयोग 1843 करोड़ रु की राशि का ही हो पाया। 1980-85 की अवधि में कुल 177.5 करोड़ मानव-दिवस के रोजगार का सृजन क्रिया गया। सातवीं योजना में 'केन्द्र ने इस कार्यक्रम के लिए लगभग 3092 करोड़ रुपए व्यय किए गए और कुल 145 करोड़ मानव-दिवस का रोजगार-सृजन किया गया था।

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP)[2] :- यह कार्यक्रम अगस्त 1983 में शुरू किया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य प्रत्येक ग्रामीण भूमिहीन परिवार में कम से कम एक सदस्य को वर्ष में 100 दिन तक का रोजगार उपलब्ध कराना था। छठी योजना में केन्द्र द्वारा इस कार्यक्रम पर व्यय हेतु 500 करोड़ रु निर्धारित किये गये।1983 -84 व 1984-85 में कुल 26.3 करोड़ मानव दिवस का काम दिया गया जो लक्ष्य से कम था। सातवीं योजना में केन्द्र द्वारा इस कार्यक्रम पर व्यय हेतु 2412 करोड़ रुपए व्यय किए गए और कुल 115 करोड़ मानव-दिवस का रोजगार सृजन करने का लक्ष्य रखा गया।

NREP व RLEPG के माध्यम से सामाजिक वानिकी, वृक्षारोपाण, स्कूल भवनों के निर्माण, लघु सिंचाई, आवास आदि पर बल दिया गया है। 1989-90 में इनका विलयन जवाहर रोजगार योजना में कर दिया गया। इसी वर्ष के लिंए इस योजना पर 2625 करोड़ रु आवंटित किये गये जिसमें केन्द्र का अंश 80% तथा राज्यों का 20% रखा गया। JRY के माध्यम से ग्रामीण निर्धन परिवारों में से प्रत्येक परिवार में से कम से कम एक व्यक्ति के लिए 100 दिन तक का कम उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया। इसमें 30% ' आरक्षण ग्रामीण महिलाओं के लिए किया गया।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में जवाहर रोजगार योजना का अंतिम स्वरूप स्पष्ट हो गया है।

19.4.2 कार्यक्रमों का मूल्यांकन व कमियाँ

हम ऊपर बतला चुके है कि निर्धनता-उन्मूलन की दृष्टि से एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का स्थान सर्वोपरि माना गया है। लेकिन मजदूरी पर रोजगार उपलब्ध करके निर्धनता कम करने की दृष्टि से अन्य कार्यक्रमों, विशेषतया NREP व RLEGP, का भी महत्व स्वीकार किया गया है। इन कार्यक्रमों से लोग लाभान्वित हुए है, लेकिन कुछ कमियां भी सामने आयी है जिन्हें दूर करके उनकी उपयोगिता में वृद्धि की जानी चाहिए। हम नीचे विशेषतया IRDP की कमियों पर ध्यान आकर्षित करेंगे जिसका निर्धनता-उन्मूलन से सीधा संबंध है।

---

[2] वही, पृ.749, आगे NREP व RLEGP की प्रगति के आकड़े भी इसी स्रोत पर आधारित है।

(1) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन में कई प्रकार की कमियाँ व अकुशलताएं बतलायी गयी है जैसे कुछ गैर-निर्धन परिवारों का चयन, दी जाने वाली परिसम्पत्तियों का स्थानीय निर्धन परिवारों की आवश्यकताओं व दक्षताओं से ताल-मेल न होना, परिसम्पत्ति का रख-रखाव न कर पाना जिससे उनके नष्ट होने का भय बना रहना, आगे-पीछे की कड़ियों का अभाव (जैसे दुधारू पशुओं के लिए चारे व पशु -आहार का अभाव तथा दूध की बिक्री के लिए विपणन का अभाव आदि), सब्सिडी के संबंध में भ्रष्टाचार व दुरूपयोग की शिकायतें, कर्ज की वसूली में कठिनाइयाँ, आदि, आदि।

(2) एकीकृत, ग्रामीण विकास कार्यक्रम के माध्यम से दी जाने वाली सहायता व कर्ज की राशि गरीबी की रेखा से ऊपर ले जाने की दृष्टि से अपर्याप्त मानी गयी है जिससे दूसरी बार पुन: वित्तीय सहायता की मांग की गयी है।

(3) कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि बहुत निर्धन -व्यक्तियों को स्वरोजगार में न लगाकर मजदूरी पर रोजगार में लगाया जाय तो ज्यादा लाभकारी होगा, क्योंकि वे परिसम्पत्तियों को काम में लेने को क्षमता नहीं रखते । प्रोफेसर नीलकंठ रथ IRDP के माध्यम से निर्धनता-उन्मूलन को संभव नहीं मानते। इसमें सब्सिडी का महत्व रहने से सदैव उसके दुरुपयोग की सम्भावना बनी रहती है। अतः पहले विकास की प्रक्रिया में टपकने का प्रभाव ' (trickle-down effect) उत्पन्न न होने से निर्धनता उन्मूलन में बाधा पड़ी, लेकिन विशिष्ट कार्यक्रमों के रिसाव-प्रभाव (leakage effect) की वजह से काफी धनराशि गरीबों तक नहीं पहुंच पाती और बिचौलियों में नष्ट हो जाती है । इससे वित्तीय साधनों का सदुपयोग नहीं हो पाता है।

(4) NREP व RLEGP के माध्यम से अल्पकालिक रोजगार ही मिल पाया है। अतः इन्होंने राहत-सहायता के रूप में कार्य किया है।

(5) विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत सुदृढ़ व उत्पादक परियोजनाओं का अभाव रहने से उनसे दीर्घकालीन विकास की प्रक्रिया को बल नहीं मिल पाता। उनका विकेन्द्रित नियोजन से ताल-मेल नहीं बैठाया गया है जिसके अभाव में उनके दूरगामी प्रभाव कमजोर रह- गये है।

19.5 निर्धनताउन्मूलन के लिए सुझाव

निर्धनता-उन्मूलन की समस्या अत्यंत जटिल व पेचीदा मानी गयी है। इसका कोई सुगम हल नहीं है। भारत में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम सबसे बड़ा निर्धनता-उन्मूलन क्रार्यक्रम है जिसके क्रियान्वयन का मूल्यांकन विभिन्न समितियों, कार्यकारी दलों, संस्थाओं व अनुसंधानकर्ताओं ने किया है। इसमें इस कार्यक्रम को नई दिशा देने के कई सुझाव दिये गये है। सार्वजनिक लेखा-समिति (1986-87) ने लोक सभा सचिवालय की इक्कानवीं: (91) रिपोर्ट (1987), जिलो-नियोजन पर कार्यकारी दल की रिपोर्ट (1984), ग्रामीण विकास के प्रशासनिक प्रबन्ध की समीक्षा के लिए नियुक्त डा.जी.वी.के.राव समिति की रिपोर्ट (1985) तथा भारत में कृषिगत साख-प्रणाली की समीक्षा पर खुसरो रिपोर्ट (1989) आदि में एकीकृत ग्रामीण विकास

कार्यक्रम की व्यापक रूप से समीक्षा की गई है और इसे अधिक सफल बनाने के लिए अनेक सुझाव दिये गये है।

चूकि निर्धनता की समस्या काफी गहन व बहुआयामी है, इसलिए इसको हल करनें के लिए सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक सभी क्षेत्रों में भारी परिवर्तन करने होंगे, तभी इस दिशा में सफलता सुनिश्चित की जा सकेगी।

कुछ महत्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार है:-

(1) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम को नई दिशा प्रदान करने के लिए निम्न परिवर्तन किये जाने आवश्यक है:-

(i). यह कार्यक्रम इस समय बिखरे हुए परिवार-आधार (family-basis) पर चलाया जा रहा है। इसके स्थान पर इसे एक सुनियोजित संसाधन-आधारित क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम के अंतर्गत चलाया जाना चाहिए। इसके लिए जिला, खण्ड व ग्राम स्तर पर योजनाएं बनानी होंगी। इन योजनाओं में उन क्षेत्रों के आर्थिक विकास की सम्भावनाओं का पता लगाना होगा। इसके लिए प्रोजेक्ट-दृष्टिकोण अपनाना होगा।जैसे यदि कहीं पोशाक बनाने, जेम पालिश व कटाई, गलीचा बुनाई, आदि का काम हो सकता है तो इनके विकास पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। सभी खण्डों के लिए एक-सी योजनाएं बनाना व लागू करना नितान्त गलत व अव्यावहारिक होगा।

(ii). निर्धनों के चुनाव व उनके लिए आर्थिक क्रियाओं के चुनाव में बैको की भागीदारी बढ़ानी होगी। इसके लिए यह बेहतर होगा कि उनको गरीबों की एक 'मास्टर लिस्ट ' पाँच वर्ष के लिए दे दी जाय और वे स्वयं यह तय करें कि किन गरीबों को किन कामों के लिए कर्ज दिया जाए ताकि वे गरीबी की रेखा से ऊपर आ सकें।

(iii). 'आधारभूत सुविधाओं के विकास (सड़क, जल-पूर्ति, विद्युत, आदि) पर अधिक बल दिया जाय, और कार्यक्रमों के लिए आगे-पीछे की कड़ियाँ सुनिश्चित की जाएं और उनको विकसित किया जाय जैसे दुधारू पशुओं के लिए चारा तथा आहार व दूध की बिक्री की उचित व्यवस्था, आदि।

(iv). सब्सिडी का दुरुपयोग रोकने के लिए यह कर्ज के अंतिम भुगतान के साथ समायोजित (adjust) की जाय तो उत्तम होगा। इससे कर्ज व परिसम्पत्ति पर निगाह भी बढ़ जायगी और उनकी क्षति रुकेगी।

(2) जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए "एक परिवार एक बच्चा" को लागू करने के लिए अभियान तेज किया जाय। इसके लिए महिला व बाल-कल्याण पर अधिक ध्यान दिया जाय तथा स्त्रियों के लिए शिक्षा, चिकित्सा वं रोजगार उपलब्ध कराने पर बल दिया जाय।

(3) 'बहुत बहुत गरीब ' व 'अत्यधिक दरिद्र ' वर्ग के लोगों के लिए, जो परिसम्पत्ति का प्रबंध करने में समर्थ न हों, उनको 'मजदूरी पर रोजगार' दिया जाय। अपाहिज, बूढ़े व कमजोर लोगों के लिए 'सामाजिक सुरक्षा' के मार्फत नि:शुल्क सुविधाएं उपलब्ध करने पर जोर दिया जाय।

(4) न्यूनतम मजदूरी कानून , 1948 व बंधुआ श्रम-व्यवस्था (समाप्ति) कानून, 1976 कड़ाई से लागू किया जाय।

(5) भूमि-सुधार कानूनों को प्रभावकारी ढंग से लागू किया जाय। इससे कृषिगत उत्पादन बढ़ेगा तथा भूमि के पुनर्वितरण से समतावादी समाज-व्यवस्था की दिशा में प्रगति होगी।

(6) विकेन्द्रित नियोजन का पंचायती राज संस्थाओं से ताल-मेल बैठाया जाय ताकि योजनाओं के क्रियान्वयन में सर्वसाधारण की भागीदारी हो सके। इसके लिए 'राजनीतिक इच्छा-शक्ति ' को विकसित किया जाना चाहिए।

(7) ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के परस्पर समन्वय बैठाया जाना चाहिए। वर्तमान में एक परिवार कई कार्यक्रमों के दायरे में आता है और एक क्षेत्र में कई कार्यक्रम एक-साथ संचालित हो रहे है जिससे काफी श्रम व अनिश्चितता की दशाएं उत्पन्न हो गई है । अतः विकेन्द्रित नियोजन को अधिक कारगर बना कर धीरे-धीरे विशिष्ट कार्यक्रमों की संख्या कम करते जाना चाहिए। एक विशिष्ट राष्ट्रीय रोजगार गारंटी कार्यक्रम को चलाने पर अधिक बल दिया जाना चाहिए जो 'सुरक्षा-जाल ' (safety-net) का काम करेगा और बेकार लोगों को रोजगार की गारंटी अवश्य प्रदान करेगा।

(8) ग्रामीण निर्धनों का राजनीतिक संगठन बनाया जाना चाहीए जो उनके लिए निर्धारित साधन उन तक पहुंचाने में मदद देगा। वह उनके लिए सतत संघर्षरत भी रहेगा।

आशा है, दिये हुए आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक ढाँचे के अंतर्गत निर्धनता-उन्मूलन के लिए उपर्युक्त दिशाओं में प्रयास करने इस दिशा में अधिक सफलता मिल पायेगी।

बोध प्रश्न-2

(1) ग्रामीण निर्धनता के चार प्रमुख कारण बताइए।

(2) क्या आप इस मत से सहमत है कि 'शहरी निर्धनता ' ग्रामीण निर्धनता का विस्तार मात्र है?

(3) विकास का 'टपकने वाला प्रभाव ' (trickle-down effect) स्पष्ट कीजिए।

(4) निर्धनता-उन्मूलन की दृष्टि से एकीकृत ग्रामीण कार्यक्रम की प्रमुख विशेषताएं बतलाए।

(5) निर्धनता-उन्मूलन कार्यक्रमों में मुख्य कमियाँ क्या रही हैं?

(6) भारत में निर्धनता-उन्मूलन की दिशा में ठोस प्रगति के लिए पांच सुझाव दीजिए। '

19.6 समानता का अर्थ, आकार व प्रकृति

19.6.1 असमानता का अर्थ-आय के वितरण की असमानता

एक देश में कई प्रकार की आर्थिक असमानताएं पायी जा सकती है जैसे धन के वितरण में असमानता, आय की असमानता, उपभोग व्यय में असमानता आदि । सामाजिक असमानताओं में अवसर की असमानताओं का भी उल्लेख किया जाता है और सामाजिक ऊँच-नीच का विवेचन

किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में मुख्य सम्पत्ति भूमि मानी जाती है और स्थायित्व के अनुसार एवं कार्यशील भूजोतों के अनुसार वितरण की असमानता का वर्णन किया जा सकता है।

प्राय: असमानता के अंतर्गत हम आय के वितरण की असमानता का विवेचन करते है जिसमें विभिन्न समूहों के अनुसार पारिवारिक आय का वितरण दर्शाया जाता है। विभिन्न अवधियों के लिए एक देश में पारिवारिक आय के वितरण का अध्ययन करके यह पता लगाया जा सकता है कि आय के वितरण किस दिशा में हो रहा है। इसी प्रकार एक अवधि के लिए विभिन्न देशों में आय के वितरण की तुलना की जा सकती है। अतः आजकल आर्थिक विकास के अध्ययन में आय के वितरण के अध्ययन का महत्व बढ़ गया है।

19.6.2 आय की असमानता का आकार व माप

भारत में राष्ट्रीय आय के वितरण के आकड़े लम्बी अवधि के लिए नहीं मिलते। हमें राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन (NSSO) के द्वारा एकत्र उपभोक्ता के व्यय के आंकड़ो का उपयोग करने से देश में उपभोग की असमानता की जानकारी होती है। भारत में व्यावहारिक आर्थिक अनुसंधान की राष्ट्रीय परिषद् (NCAER) नई दिल्ली ने भी आय, बचत व उपभोग-व्यय के अखिल भारतीय पारिवारिक सर्वेक्षण (1972) के द्वारा 1967-68 की अवधि के लिए शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के लिए खर्च के योग्य आय के वितरण के आंकड़े प्रकाशित किये है। जिनसे आय के वितरण की असमानता का अनुमान लगाया जा सकता है।

विश्व विकास रिपोर्ट, 1990, 2012 मे वर्ष 1983 व 2010 के लिए भारत के लिए आय की असमानता की निम्न सारणी दी गई है:

तालिका 19.3 आय की असमानता

परिवारों का प्रतिशत समूह	पारिवारिक आय में प्रतिशत अंश	
	1983	2010
0-20	8.1	9
20-40	12.3	12
40-60	16.3	16
60-80	22.0	21
80-100	41.4	43
90-100	26.7	29

1983 में चोटी के 10% के पास आय का अंश 26.7% रहा।

उपर्युक्त तालिका से 1983 व 2010 के लिए भारत में आय के वितरण की असमानता अनुमान लगाया जा सकता है। निम्नतम 20% परिवारों के पास कुल पारिवारिक आय का 8% अंश पाया गया, जबकि चोटी के 20% परिवारों के पास यह अंश लगभग 41% या 2/4 पाया गया। अलग से यह सूचना भी दी गई है कि चोटी के 10% परिवारों के पास पारिवारिक आय का 26.7%

(अगभाग 1/4 अंश) था। इस प्रकार निमतम 20% परिवारों व उच्चतम 20% परिवारों के बीच आय के प्रतिशतों की असमानता का अनुपात 1:5 पाया गया।

गिनी-अनुपात (Gini ratio):- आय के वितरण की आसमानता जानने के लिए गिनी-अनुपात ज्ञात किया जाता है। 1975-76 के लिए भारत के लिए यह 0.3844 रहा था, जो घट कर 1983 में 0.3044 पर आ गया। इसका अर्थ यह हुआ कि 1975-83 की अवधि में आय के वितरण की असमानता में कुछ कमी आयी है ग्रामीण क्षेत्रों के लिए गिनी गुणांक जो 2004-05 में गिनी-अनुपात के बढ़ने से (इसकी अधिकतम राशि 1 होती है) आय की असमानता बढ़ती है और इसके घटने से (इसकी न्यूनतम राशि शून्य होती है) आय की असमानता कम होती है।

भारत मे उपभोग-व्यय की असमानता-एस.पी.गुप्ता व के.एल.दत्ता के अनुसार 1977-78, 1983 व 2009-10 के लिए उपभोग-व्यय के लिए गिनी-अनुपात इस प्रकार रहे:-

तालिका 19.4 ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के लिए गिनी-अनुपात

वर्ष	ग्रामीण क्षेत्र	शहरी क्षेत्र
1977-78	0.337	0.353
1983	0.297	0.332
2009-10	0.28	0.39

इस प्रकार 1977-78, 1983 व 2009-10 की अवधि में उपभोग-व्यय में गिनी-अनुपात शहरी व ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में कुछ कम हुआ है। लेकिन यह ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में अधिक रहा है।

19.6.3 असमानता की प्रकृति

(1) **विकास के प्रारम्म मे असमानता :-** आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विकास के साथ-साथ आय व उपभोग की असमानता में वृद्धि की प्रवृत्ति पायी जाती है क्योंकि समाज में विभिन्न वर्ग विकास के समान रूप से लाभान्वित नहीं होते। साधन-सम्पन्न वर्ग अपनी स्थिति और मजबूत कर लेता है और' साधनहींन वर्ग विकास के लाभ कम मात्रा में प्राप्त कर पाता है। अतः विकास के साथ-साथ असमानता में वृद्धि हो सकती है, जिसे कम करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपाय करने आवश्यक हो जाते है।

(2) **सम्पत्ति के वितरण की असमानता आय के वितरण की असमानता से अधिक :-** हम यह भी स्मरण रखना होगा कि धन व सम्पत्ति के वितरण की असमानता का गिनी-अनुपात आय का उपभोग के वितरण की असमानता के गिनी-अनुपात से ऊँचा पाया जाता है। उदाहरण के लिए, भारत में कार्यशील जोतों के वितरण का गिनी-अनुपात 1985-86 में 0.5974 पाया गया जबकि 1983 में आय के वितरण का गिनी-अनुपात केवल 0.3044 ही था। अतः धन की असमानताएं आय अथवा उपभोग की असमानताओं से ऊँची पायी जाती है। इन दोनों में परस्पर संबंध होता है, लेकिन असमानता का अंश भिन्न-भिन्न पाया जाता हैं।

(3) **असमानता में निरंतरता की प्रवृत्ति :-** आर्थिक क्षेत्र में किसी भी प्रकार की असमानता में बने रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है। यदि किसी आधार-वर्ष में धन की' परिसम्पत्ति की असमानता को न बदला जाय तो कालान्तर में भी वह जारी रहती है, अथवा बढ़ भी सकती है। अतः असमानता को कम करने के लिए कठोर कदम उठाने पड़ते है, अन्यथा यह बराबर बनी रहती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्तराधिकार या विरासत की प्रथा के कारण धन का हस्तान्तरण पीढ़ी-दर-पीढ़ी होता रहता है जिससे असमानताएं जारी रहती है।

बोध प्रश्न-3

(1) असमानताएं कितनी प्रकार की होती है

(2) भारत में आय की असमानता का गिनी-अनुपात लिखिए।

(3) 1983 में भारत के आय के वितरण का उल्लेख कीजिए।

(4) असमानता की प्रकृत्ति (nature) के बारे में तीन बातें लिखिए।

19.7 आय की असमानता के कारण

भारत में नियोजित मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढाँचे में आर्थिक विकास किया जा रहा है। यहां कृषि, लघु उद्योग, खनन, व्यापार व परिवहन में निजी क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। अर्थव्यवस्था पूँजीवादी बाजार-प्रणाली के नियमों से काफी सीमा तक प्रभावितहोती है। अतः देश में धन, आय, उपभोग, आदि की असमानताओं का पाया जाना स्वाभाविक है।

भारत में उपभोग व आय की असमानता के लिए निम्न कारण उत्तरदायी माने जा सकते है:-

(1) **ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि व पूँजीगत साधनों का असमान वितरण:-**ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि परिसम्पत्ति का मुख्य रूप होती है। योजनाकाल में कार्यशील जोतों के वितरण में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। 1960-61 में 1 हैक्टेयर तक की सीमान्त जोतें 41% थी और उनमें कुल कृषित भूमि का 7% अंश था। 1985-86 में सीमान्त जोतों का अंश 58% हो गया और इनमें कृषित भूमि का 13% अंश पाया गया। इसके विपरीत 10 हैक्टेयर व अधिक आकार की बड़ी जोते 1960-61 में 5% थी तथा उनमें कृषित भूमि का 31% अंश था। 1985-86 में इनका अंश 2% हो गया तथा इनमें कृषि 'भूमि का 20.5% अंश पाया गया। इस प्रकार योजनाकाल के 25 वर्षों के बाद 'भी भूमि का वितरण काफी असमान बना हुआ है। बड़े भूस्वामी सिंचाई, बीच, उर्वरक, साख, आदि की सुविधाओं का लाभ लघु व सीमान्त कृषको की तुलना में ज्यादा मात्रा में.उठाते है। हरित क्रान्ति ने भी 1966 के बाद अंतर्प्रादेशिक व अंतर्वर्गीय असमानताएं बढ़ायी है। भारत में कार्यशील भूजोतों के वितरण का गिनी-अनुपात 1970-71 में 0.6207 था जो 1985-86 में 0.5974 हो गया। इसमें कुछ कमी होने पर भी यह आज भी काफी ऊँचा बना हुआ है।

भारत में भूमिसुधारों का ठीक से क्रियान्वयन नहीं होने से मौखिक काश्तकारी (oral tenancy) ,फसल-बटाई, प्रथा, बंधुआ मजदूरी की प्रथा, आदि विद्यमान है। देहातों में ट्रैक्टर, बैल, दुधारू 'पशु, औजार आदि के वितरण में भी काफी असमानता पायी जाती है। कृषि आय

के आय-कर-मुक्त होने से भी असमानता कायम रही है। बड़े किसान अपनी सुदृढ़ राजनीतिक स्थिति के कारण ऊँचे वसूली मूल्य, उर्वरक-सब्सिडी, आदि का लाभ उठा कर अपनी आय ऊँची रखने में समर्थ हो जाते है, जबकि भूमिहीन श्रमिको की स्थिति बदतर होती जाती है।

(2) **औद्योगिक जगत मे बड़े व्यावसायिक घरानों का परिसम्पत्तियों पर अधिकार:-** भारत में निजीक्षेत्र में आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण पाया जाता है और वह योजनाकाल में बढ़ा है। 1986-87 में 10 चोटी के औद्योगिक घरानों की परिसम्पत्ति का मूल्य 18638 करोड़ रु.था जिसमें टाटा-बिड़ला घरानों का अंश लगभग आधा था। बड़ी कम्पनियों (भारतीय व विदेशी दोनों) के प्रबंधको के वेतन, भत्ते व अन्य देय राशियाँ बहुत ऊंची होती है। ये देश की प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय की तुलना में बहुत अधिक होती है। ये देश की प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय की तुलना में बहुत अधिक होती है। इससे आय की असमानताएं ऊँची बनी रहती है।

(3) **काली मुद्रा का प्रसार :-** भारत में कर की चोरी, भ्रष्टाचार व अन्य कारणों से काली मुद्रा का प्रसार बढ़ा है। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री सर माल्कम- आदिशेशैया के अनुसार 1984-85 में यह 80 हजार करोड़ रु.हो गयी थी, जो राष्ट्रीय आय का 40% थी।

देश में एक समानान्तर अर्थव्यवस्था चल रही है जो मुद्रास्फीति, असमानता व निर्धनता को बढ़ाती है।

(4) शिक्षा के अवसरों में असमानता होने से आय की असमानता बनी रहती है। आज भी उच्च शिक्षा व उच्च नौकरियों के अवसर कुलीन व सम्भ्रान्त परिवारों को अधिक सुलभ है, और पिछड़ी जातियों के लिए अपेक्षाकृत सीमित है।

(5) बेरोजगारी, अल्परोजगार व निर्धनता की समस्याओं के बने, रहने से भी असमानता बनी रहती है।

(6) देश में कोई अल्प-नीति नहीं है। अतः उसके अभाव में आय की असमानता बनी रहती है। मजदूरी, ब्याज, मुनाफा व किराये में आमदनी का कोई नियमन नहीं है।

(7) मुद्रास्फीति के कारण भी आय की असमानता बढ़ती है। योजनाकाल में आम उपभोग की वस्तुओं के भाव बढने से लोगों की वास्तविक आमदनी बहुत घट गई है। 1990 में रुपये की क्रयशक्ति 1960 'की तुलना में लगभग 1/10 रह गयी है।

देश में बड़े व्यवसायी व उद्योगपति, राजनीतिक नेता, सरकारी अफसर, ठेकेदार व बड़े किसान अपने हितों को आगे बढ़ाने में समर्थ व सक्षम है, जबकि खेतिहर मजदूर घरेलू उद्योग में संलग्न कारीगर, पिछड़ी जाति के लोग, आदि विकास की दोड़ में पिछड़ गये है। ऐसी स्थिति में आर्थिक असमानताओं का बढ़ना व जारी रहना स्वाभाविक है। देश में 'गरीबी की रेखा' की तो बात की जाती है, लेकिन सम्पन्नता की रेखा' (line of affluence) की कोई बात नहीं करता अभी तक समानता की दिशा में ठोस व कड़े कदम नहीं उठाये गये है।

19.8 आय की असमानता को कम करने के संबंध में सरकारी उपाय

भारत में योजनाकाल में 'समता व न्याय के साथ विकास' (growth with equity) की चर्चा की जाती है। इस संबंध में कुछ प्रयास भी किये गये है लेकिन अभी तक इस दिशा में अपर्याप्त सफलता ही मिल पायी है। आय की असमानता को कम करने के लिए विभिन्न सरकारी उपाय इस प्रकार किये गये है:-

(1) **प्रगतिशील प्रत्यक्ष कर, विशेषतया वैयक्तिक आयकर:-**भारत में समानता की तरफ अग्रसर होने के लिए धन-कर (wealth tax), आयकर, उपहार-कर, आदि का उपयोग किया गया है। 2015-16 के केन्द्रीय बजट, के अनुसार 2.5 लाख रुपये से अधिक की आय पर, 10% कर राशि पर सरचार्ज के अलावा आयकर की अधिकतम सीमान्त दर 30% है। देश में आयकर को कानूनी तौर पर बचा लेने व आय को छुपा कर कर की चोरी के प्रयास किये जाने से आयकर आय की असमानता को कम करने में विफल रहा है।

(2) सरकार ने व्यावसायिक व व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर छापे, तलाशियाँ, जब्तियों, चालानों व कानूनी कार्यवाही करके काला धन व काली मुद्रा को बाहर निकालने के प्रयास किये है और ये निरंतर जारी है। लेकिन इनमें प्रक्रिया बड़ी जटिल व लम्बी चलती है और समस्या का कोई स्थायी समाधान नहीं निकल पाता।

(3) सरकार ने भूमि का वितरण अधिक समान -बनाने के लिए भूमि सीमा (Ceiling) कानून बनाये है, लेकिन उनका क्रियान्वयन ठीक से नहीं हो पाया है।

(4) सरकार ने एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) व ग्रामीण युवको को प्रशिक्षण देने (ट्राइसम) के माध्यम से गरीबों के लिए स्वरोजगार के अवसर उत्पन्न करने का प्रयास किया है तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम व ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (बाद में जवाहर रोजगार कार्यक्रम) के माध्यम से मजदूरी पर रोजगार बढ़ाया गया है। इससे रोजगार व गरीब लोगों की कुछ सीमा तक आमदनी बढ़ी है।

(5) सामाजिक सुरक्षा- कार्यक्रमों जैसे पेंशन, प्रोविडेण्ट- कोष, प्रसूति-सहायता, तथा कल्याण-कार्यक्रमों जैसे शिक्षा, चिकित्सा व पोषण- कार्यक्रम चला कर लोगों को लाभ पहुंचाने के प्रयास किये गये है।

(6) कीमत-नियंत्रण व राष्ट्रव्यापी सार्वजनिक वितरण.प्रणली को अपनाकर अलग, चीनी, खाद्य-तेल, आदि की सप्लाई निर्धारित भावों पर बढ़ा कर लोगों को कुछ सीमा तक मुद्रा स्फीति की चपेट एसे बचाने का प्रयास किया गया है लेकिन इसका प्रभाव शहरी क्षेत्रों तक विशेष रूप से सीमित रहा है।

(7) निजी क्षेत्र के एकाधिकारी प्रवृत्तियों को कम करने के लिए न MRTP अधिनियम 1969 लागू किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र, सहकारी क्षेत्र व लघु क्षेत्र का विकास किया गया। परन्तु अब उदारीकरण की प्रक्रिया ये प्रयास शिथिल हो गए है।

इस प्रकार आय की असमानताओं को कम करने के लिए योजनाकाल में विभिन्न प्रकार के प्रयास किये गये है, लेकिन दिये हुए आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक ढाँचे में असमानताओं को कम करने की अपनी सीमाएं व कठिनाइयां होने से अपर्याप्त सफलता' नहीं मिल पायी है। अतः भविष्य में निम्न दिशाओं में प्रयास करने की आवश्यकता है।

19.9 आय की असमानताओं को कम करने के लिए सुझाव

बेरोजगारी, निर्धनता व असमानता के प्रश्न 'बहुत जटिल व पेचीदे माने गये है। भारत जैसे जनाधिक्य वाले विकासशील देश में इनका समुचित व संतोषजनक हल निकाल पाना लोकतांत्रिक व्यवस्था में विशेष रूप से कठिन है। फिर भी आय की असमानताओं को कम करने के लिए निम्न उपयोगी सुझावों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

(1) नियोजन व विकास की व्यूहरचना में आमूल-चूल परिवर्तन-विकास की व्यूहरचना में रोजगार पर बल दिया जाना चाहिए। साधन-आधारित क्षेत्रीय नियोजन, विकेन्द्रित नियोजन, उत्पादक प्रोजेक्टों का चुनाव व समुदायिक परिसम्पतियों का निर्माण आदि एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते है इन सभी में स्थानीय साधनों का उपयोग स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है। इस प्रक्रिया में असमानता कम करने के बीच विद्यमान रहते है। केन्द्रिय नियोजन में नौकरशाही के निर्णयों का बोलबाला होने से विशेष लाभ नहीं मिल पाते। योजना के निर्माण, क्रियान्वयन आदि में सर्वसाधारण की भागीदारी से सामाजिक परिवर्तन व पूर्ण कायापलट की दशाएं उत्पन्न होती है।

(2) सार्वजनिक उपक्रमों व निजी उपक्रमों में प्रबंध, पूँजी व लाभ सभी में धीरे-धीरे श्रम की साझेदारी बढ़ायी जानी चाहिए जैसा कि कुछ यूरोपीय देशों जैसे फ्रांस, इटली, आदि में किया गया है। इससे औद्योगिक शक्ति बढ़ेगी और आय की समानता की दिशा में ठोस प्रगति हो'पायेगी।

(3) आधुनिक टेक्नोलोजी, आन्तरिक व विदेशी प्रतिस्पर्धा, पैमाने की किफायतें प्राप्त करके अर्थव्यवस्था को अधिक कार्यकुशल, अधिक उत्पादक विकासोन्मुख व लाभकारी बनाया जाना चाहिए। इससे लागतें कम होंगी व कीमतें भी नियमित होंगी।

(4) ग्राम व शहर की खाई कम करने के लिए ग्रामों का सर्वाधिक विकास किया जाना चाहिए। इससे ग्रामीण जनता का शहरों की तरफ पलायन रूकेगा। छोटे नगरों व कस्बों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

आशा है कि इक्कसवीं शताब्दी में भारतीय नियोजन नई दिशाओं में अग्रसर होकर गरीबी व असमानता जैसी जटिल समस्याओं का समाधान निकालने में अधिक सफलता प्राप्त कर पायेगा।

बोध प्रश्न-4

(1) भारत में आय की असमानता के चार प्रमुख कारण लिखिए,

(2) मुद्रास्फीति आय की असमानता को बढ़ाती है, स्पष्ट कीजिए।

(3) सरकार द्वारा आय की असमानता को कम करने के लिए कौन-चार उपाय किये गये है?

(4) आय की असमानताओं को कम करने के लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे?

(5) ऐसे कार्यक्रम बताइए जिनसे निर्धनता की असमानता दोनों पर कडा प्रहार सम्भव हो सकता है।

19.10 सारांश

भारत में निर्धनता व असमानता की समस्याएं बहुत जटिल व दीर्घकालीन रूप धारण कये हुए है। निर्धनता की धारणा निरपेक्ष है, और इसका संबंध कैलोरी की मात्रा' से किया गया है। वर्तमान समय में योजना आयोग के अनुसार लगभग 30% जनता गरीबी,क़ी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में सीमान्त व लघु कृषक, भूमिहीन श्रमिक, ग्रामीण कारीगर, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति व अन्य पिछड़ी जाति के अधिकांश लोग, आदि 'गरीबी के शिकार है।

निर्धनता की समस्या सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दशाओँ की देन है। सरकारी ने इसके समाधान के लिए योजनाओं में विकास-कार्यक्रम तथा विशिष्ट कार्यक्रम'अपनाये है। इनसे कुछ लाभ मिले है, लेकिन भविष्य में इनकी कमियों को दूर करके तथा विकेन्द्रित नियोजन पद्धति को अपना कर निर्धनता दूर करने का प्रयास जारी रखना होगा।'

असमानता धन की, आय की व व्यय आदि की हो सकती है। भारत में आय की असमानता का गिनी-अनुपात 1983 के लिए 0.3044 एवं 2009 में 0.339 रहा था। आज भी असमानता का अनुपात काफी ऊँचा है। गांवों में भू-जोतों का स्वामित्व काफी असमान है। इनके संबंध में कार्यशील जोतों में असमानता का गिनी-अनुपात 1985-86 में 0.5974 पाया गया जो काफी ऊँचा था। सरकार ने असमानता कम करने के लिए प्रत्यक्ष करों का उपयोग किया है, लेकिन उनमें काफी मात्रा में कर-वंचन होने से असमानता कम करने में कठिनाई रही है। भविष्य में सम्पूर्ण नियोजन-तन्त्र को ग्रामोन्मुख व रोजगारोन्मुख बना कर इन समस्याओ पर कड़ा प्रहार करने से ही विशेष सफलता की आशा की जा सकती है।

19.11 शब्दावली

(1) **निर्धनता की रेखा (Poverty line):-** गाँवों में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2400 कैलोरी तथा शहरों में 2100 कैलोरी से कम उपभोग करने वाले व्यक्ति निर्धन माने जाते है। व्यय की दृष्टि से 1983-84 के भावों पर गांवों में प्रति व्यक्ति प्रति माह 101 .80 रुपये तथा शहरों में 117.50 रुपये से कम व्यय करने वाले व्यक्ति निर्धन माने गये है।

(2) **निर्धनता-अनुपात (Poverty ratio):-** कुल निर्धन व्यक्तियों क़ा कुल जनसंख्या से अनुपात निर्धनता-अनुपात कहलाता है। यह ग्रामणी क्षेत्रों समस्त क्षेत्रों के अनुसार अथवा राज्यवार व विभिन्न समुदायों (अनुसूचित जाति, आदि) के अनुसार ज्ञात किया जा सकता है।

(3) **असमानता का गिनी-अनुपात:-**यह असमानता को ज्ञात करने के लिए कम में लिया जाता है। इसके लिए आय की पूर्ण समानता की रेखा व लॉरेन्ज वक्र के बीच की दूरी का क्षेत्रफल आय

की पूर्ण समानता व आय की पूर्ण असमानता के बीच की दूरी या क्षेत्रफल का भाग दिया जाता है।

(4) **प्रत्यक्ष कर:-** ये वे कर होते है जिनका भार करदाताओं को ही वहन करना होता है जैसे व्यक्तिगत आयकर, कम्पनी लाभ कर, धन-कर, उपहार-कर आदि। ये आय की असमानता को कम करने के लिए काम में लिये जाते है तथा सरकारी राजस्व बढ़ाने में भी सहायक होते है।

(5) **विकेन्द्रित नियोजन:-**इसे 'नीचे के नियोजन' (planning from below) भी कहते है। इसमें जिला, खण्ड व ग्राम स्तर पर योजनाएं बनायी जाती है। इससे बेरोजगारी, निर्धनता व असमानता दूर करने में विशेष मदद मिलती है।

19.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

(1) Mishra & Puri, Indian Economy, latest Ed.

(2) L.N. Nathuramka, भारतीय उर्लशास्त्र समस्याएं, नवीनतम संस्करण

(3) D. Bandyopdhyay, Direct Intervention Programmes for Poverty Alleviation-An Appraisal, an article in EPW, June 25,1988, pp. A-77 to 1-88.

(4) A review of the Agricultural Credit System in India, Report, (RBI, Bombay), 1989, ch. 21 (IRDP), Pay VIII, pp. 741-782.

19.13 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

(1) (स)

	(2) ग्रामीण-निर्धनता के अनुपात प्रतिशत में (%)	ग्रामीण निर्धनों की संख्या (करोड़ में)
1977-78	51.2	25.3
1984-85	39.9	22.2
1989-90	28.2	16.9

(2) डा.मोन्टेक अहलूवालिया के अनुसार 1956-57 से 1977-78 के बीच ग्रामीण निर्धनता में कोई निश्चित प्रवृत्ति नहीं। योजना-आयोग के अनुसार 1977-7 8 से 1989-90 के बीच निर्धनता-अनुपात में कमी।

(3) (अ) मूलतः ग्रामीण

(ब) दीर्घकालीन

(स) कृषिगत उत्पादन के उतार-चढ़ाव से जुड़ी

(द) मूलतः अल्पविकास की परिचायक।

बोध प्रश्न-2

(1) (1) ग्रामीण जनसंख्या में तीव्रगति से वृद्धि

(2) कार्यशील भू-जोतों का असमान, वितरण व भूमि-सुधारों के क्रियान्वयन में कमी

(3) गांवों में निर्धन-वर्ग द्वारा खरीदे जाने वाली खाद्य-पदार्थों की कीमतों में वृद्धि

(4) कृषिगत उत्पादन में धीमी व अनियमित वृद्धि।

(2) हां, कुछ सीमा तक यह सही है कि क्योंकि ग्रामीण जनता के शहरों की ओर निरंतर पलायन से शहरी निर्धनता का दबाव बढ़ता है। लेकिन अन्य कारणों ने भी शहरी निर्धनता को बढ़ाया है। इस संबंध में शहरों में घरेलू उद्योगों का पतन व श्रम की पूर्ति की मांग से अधिक होना जैसे कारण गिनाये जा सकते है।

(3) विकास के टपकने वाले प्रभाव' का अर्थ है स्वयं विकास की प्रक्रिया से निर्धनता का कम होना, बेरोजगारी कम होना। भारत में यह प्रभाव कमजोर रहा क्योंकि गांवों में विभिन्न जन-समूह एक-से नहीं है, और विकास के अधिक लाभ सम्पन्न वर्ग ने हथिया लिए। इसलिए निर्धनता-उन्मूलन के लिए विशिष्ट कार्यक्रम अपनाने पड़े।

(4) (i) इससे स्वरोजगार के अवसर उत्पन्न किये जाते है और गरीबों को कोई-न-कोई परिसम्पत्ति (asset) दी जती है; जैसे दुधारू पशु, हथकरघा, सिलाई की मशीन आदि।

इसमें सब्सिडी व कर्ज की व्यवस्था की जाती है। जिनका अनुपात प्राय: 1:2 पाया जाता है।

(ii). आमदनी बढ़ने से लोग गरीबी की रेखा से ऊपर आ सकते है।

(iii). इसमें केन्द्र व राज्यों का अंश सब्सिडी या वित्तीय साधनों में आधा-आधा होता है।

(5) (i) ये परिवार-आधारित होने से संकुचित रहे है। इन्हें संसाधन-आधारित क्षेत्रीय नियोजन का अंग बनाया जाना चाहिए था।

(ii). इनमें प्रशासनिक दृष्टि से कई प्रकार की कमियां व दोष रहे है जैसे गलत परिवारों का चयन, सभी खण्डों में एक से कार्यक्रम अपनाना स्थानीय साधनों व स्थानीय आवश्यकताओं का ध्यान न रखना, सब्सिडी का दुरुपयोग आदि।

(iii). अवास्तविक लक्ष्य निर्धारित करना।

(iv). कार्यक्रम के आगे-पीछे की कड़ियों (linkages) पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया।

(6) (i) जिला, खण्ड व ग्राम स्तर पर प्रोजेक्ट-आधारित नियोजन तथा आर्थिक विकास,

(ii). भूमि-सुधारों का प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन

(iii). सामाजिक कल्याण संबंधी कार्यक्रमों का विस्तार- शिक्षा,चिकित्सा, पोषण आदि

(iv). निर्धनों का राजनीतिक संगठन

बोध प्रश्न-3

(1) (i) धन की असमानता

(ii). आय की असमानता

(iii). उपयोग-व्यय की असमानता

(iv). अवसर की असमानता

(2) 1983 के लिए आय के वितरण का गिनी-अनुपात 0.3044 रहा था।

(3) निम्नतम 20% परिवारों के पास आय का 8% या 1/12 अंश
उच्चतम 20% परिवारों के पास आय का 41% या 2/5 अंश
उच्चतम 10% परिवारों के पास आय का 27% या 1/4 अंश।

(4) (i) विकास के प्रारम्भ में इसमें बढ़ों की प्रवृत्ति
(ii). सम्पत्ति के वितरण की असमानता आय के वितरण की असमानता से अधिक
(iii). असमानता में जारी रहने या निरंतरता की प्रवृत्ति

बोध प्रश्न - 4

(1) (i) ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि व पूँजीगत साधनों का असमान वितरण
(ii). औद्योगिक जगत में बड़े व्यावसायिक घरानों का परिसम्पत्तियों पर अधिकार
(iii). कालीमुद्रा का प्रसार
(iv). देश में व्याप्त बेरोजगारी, अल्परोजगार व निर्धनता

(2) मुद्रास्फीति से धनी अधिक धनी हो जाते है और गरीब अधिक गरीब हो जाते है। धनी लोग मुनाफे, ब्याज, आदि के रूप में अधिक आय जुटा लेते है जबकि गरीब लोगों की क्रय शक्ति काफी घट जाती है। इससे आय की असमानता घटती है। भारत में 1990 में 1960 की तुलना में रुपये का मूल्य 10 पैसे रह गया है।

(3) (i) प्रगतिशील प्रत्यक्ष कर, विशेषतया वैयक्तिक आय कर का उपयोग
(ii). काली मुद्रा को बाहर निकालने के लिए छापे, तलाशियां, वगैरह;
(iii). स्वरोजगार व मजदूरी पर रोजगार देने के कार्यक्रमों का लागू किया जाना
(iv). सामाजिक सुरक्षा व सामाजिक कल्याण के कार्यक्रम लागू करना

(4) (i) विकास की व्यूहरचना में आमूल-चूल परिवर्तन-स्थानीय साधनों व स्थानीय आवश्यकताओं से ताल-मेल बैठाते हुए स्थानीय /विकेन्द्रित नियोजन पद्धति अपनाना व उसे रोजगारोन्मुख बनाना'
(ii). श्रमिको को प्रबन्ध, पूँजी व लाभ सभी में भागीदारी देना
(iii). अर्थव्यवस्था आधुनिकीकरण न लागत-कुशलता बढ़ाना
(iv). ग्राम व शहर की खाई पाटना, छोटे शहरो व कस्बों का औद्योगिकीकरण करना।

(5) (i) नियोजन का केन्द्र ग्राम,खण्ड,जिला हो, तथा विकास का आधार रोजगार बनाया जाय
(ii). आम उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया जाय तथा मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 5% से नीची रखी जाय।
(iii). सामाजिक कल्याण – शिक्षा, चिकित्सा व पोषण पर सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करके आम आदमी को विशेष लाभ पहुंचाया जाय ।

इकाई 20

बेरोजगारी स्वरूप तथा आकार-उद्योगीकरण तथा रोजगार एवं रोजगार नीति

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 बेरोजगारी का स्वरूप
 20.2.1 बेरोजगारी के प्रकार
 20.2.2 विकसित तथा अविकसित देशों में बेरोजगारी का स्वरूप
20.3 बेरोजगारी के कारण
20.4 भारत में बेरोजगारी के अनुमान
20.5 भारत सरकार की रोजगार सम्बन्धी नीति
20.6 भारत में शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी
20.7 भारत में उद्योगीकरण तथा रोजगार
20.8 सारांश
20.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
20.10 निबन्धात्मक प्रश्न

20.0 उद्देश्य

भारत में प्रत्येक वर्ष रोजगार चाहने वालों की संख्या की तुलना में रोजगार के अवसर बहुत कम बढ़े है। भारत की जनसंख्या वृद्धि की दर पिछले कई दशकों से 2 प्रतिशत वार्षिक से अधिक रही जबकि रोजगार के अवसर धीमी गति से बढ़े यही कारण है रोजगार कार्यालयों में पंजीकृत आवेदको की संख्या में विस्फोटक वृद्धि हुई है। यह भी सर्वविदित ही है कि केवल शहरी एवं शिक्षित युवा ही अपना पंजीकरण करवाते है। एक अनुमान के अनुसार नौवीं योजना अवधि (1997-2002) में जनसंख्या 94.98 करोड़ से बढ़कर 102 करोड़ हो जाएगी। रोजगार इसी अवधि में 39.72 करोड़ से बढ़कर 45.2 करोड़ होंगे। जबकि बेरोजगारों की संख्या इस अवधि में 5.9 करोड़ तक बढ़ने का अनुमान है। अर्थात् बेरोजगारों में 1.18 करोड़ की वृद्धि प्रतिवर्ष होगी। नौवीं योजना में कुल बेरोजगार 10.6 करोड़ होने का अनुमान है।

भारत में रोजगार की औसत वार्षिक वृद्धि दर (संगठित एवं असंगठित).दोनो क्षेत्रों में 1972- 78 की अवधि में 2.75% वार्षिक थी जो घटकर 1977-83 की अवधि में 1.77% रह गई। रोजगार वृद्धि की दर 1987-94 की अवधि में यह पुन: बढ़कर 2.37% वार्षिक हो गई। परन्तु

संगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि की दर घटी यह गिरावट सार्वजनिक क्षेत्र में अधिक रही। अब यह नकारात्मक हो गई है। निजी क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़े है। 1996 में इसमें 5.62% की वृद्धि हुई यह आर्थिक उदारीकरण का परिणाम है । परन्तु निजीक्षेत्र की प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की तुलना में काफी कम हैं। इस कारण सम्भव हैं निजी क्षेत्र भविष्य में इस वृद्धि दर को कायम न रख सकें। उदारीकरण के पाँच वर्षों में (1991-95) संगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर निरन्तर घटी है। अतः इस इकाई का उद्देश्य आपको:

- बेरोजगारी के स्वरूप तथा आकार के बारे में विस्तृत जानकारी देना है
- इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बेरोजगारी के विभिन्न प्रकार एवं इसके कारणों से परिचित हो सकेगे।

20.1 प्रस्तावना

भारत एक अल्पविकसित किन्तु विकासशील देश है। हमारे देश में सारी श्रमिक सख्या रोजगार में नियोजित नहीं है। इसका एक बड़ा भाग बेरोजगारी की स्थिति में है। बेराजगारी भारत को मूलभूत एवं अत्यन्त गम्भीर समस्या है। यह सम्पूर्ण देश में बहुत व्यापक रूप में फैली हुई है और प्रतिवर्ष इसमें निरन्तर वृद्धि हो रही है।

हमारे देश मे बेरोजगारी का स्वरूप औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों की अपेक्षा भिन्न है। लार्ड केन्स के विश्लेषण के अनुसार विकसित देशों में बेरोजगारी का मूल कारण समर्थ मांग का अभाव (Lack of effective Demand) है। इसका अर्थ यह है कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं में मशीने बेकार हो जाती है और श्रम की मांग उद्योगों के उत्पादन की मांग से कम हो जाने के कारण गिर जाती है। इस कारण केन्स ने बेरोजगारी को दूर करने के उपचारों में इस बात पर बल दिया कि देश में मन्दी को रोकने के लिए समर्थ मांग को पर्याप्त स्तर पर ऊँचा रखना होगा।

भारत में बेरोजगारी गांवों तथा शहरों में व्यापक रूप में फैली हुई है। वह समस्या शिक्षित वर्गो के बीच भी विद्यमान है और अशिक्षित वर्गों में भी व्यापक रूप में फैली हुई है। देश में काफी बड़ी संख्या में श्रमिक बेरोजगार है या अल्प-रोजगार की स्थिति में है। हमारे देश में ऐसे श्रमिक भी है जो वर्ष के कुछ महीनों में तो रोजगार में रहते है और शेष महीनों में बेरोजगारी का जीवन बिताते है।

बेरोजगारी के अनेक आर्थिक एवं सामाजिक टुष्परिणाम होते है । आशिक मात्रा में बेरोजगारी की स्थिति में राष्ट्रीय उत्पादन की मात्रा कम हो जाती है जिसका पूंजी निर्माण, व्यापार-व्यवसाय और देश की आर्थिक प्रगति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सामाजिक सुरक्षा के अभाव में बेरोजगार व्यक्ति प्राय: अनेंक बुराईयों-जैसे चोरी, डकैती बेईमानी शराबखोरी आदि के शिकार हो जाते है।

20.2 बेरोजगारी का स्वरूप

भारतीय अर्थव्यवस्था में श्रम की अधिकता है और भूमि पूंजी, उद्यम आदि का अभाव है। देश की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, भूमि पर जनभार अधिक है। और जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि की दर भी ऊँची है। जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होने के कारण श्रम-शक्ति में भी अतितीव्र गति सें निरन्तर वृद्धि हो रही हैं।

भारत में बेरोजगारी के स्वरूप की जानकारी के आधार पर हो हम इसके लिए उपयुक्त नीति व उपाय के बारें में नीति निर्धारण कर सकते है।

हमारे देश में औद्यौगिक क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा है जिसमें सीमित मात्रा में ही श्रमिको को रोजगार मिल सकता है। परम्परागत कुटीर एवं लघु उद्योगों में रोजगार देने की मात्रा तो अधिक होता है लेकिन इनके विकास में बाधाये अधिक होने के कारण इनका विकास धीमी गति से ही हो पा रहा है। भारत में प्रतिवर्ष श्रमशक्ति में वृद्धि हो रही है परंतु श्रम बाजार में प्रवेश करने वाले सभी नये श्रमिको को रोजगार नहीं मिल पा रहा है। इस कारण देश में बेरोजगारी की स्थिति गम्भीर एवं जटिल होती जा रही है।

20.2.1 संरचनात्मक बेरोजगारी (Structural Unemployment)

भारत की बेरोजगारी देश के पिछले आर्थिक ढाँचे के साथ संबंधित है। हमारे देश में बेरोजगारी दीर्घकालिक है क्योंकि यह देश के अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के साथ गहरे तौर पर संबंधित है। देश में बचत की दर तथा पूंजी निर्माण की मात्रा विकसित देशों की तुलना में नीची है इसलिये रोजगार की मात्रा भी अल्प ही है। देश में नये काम-धन्धे एवं रोजगार की मात्रा इतनी कम है कि प्रतिवर्ष रोजगार की मात्रा में नाममात्र की वृद्धि होती है। इस कारण रोजगार की मात्रा लगभग स्थिर रहती है। निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या एवं उपलब्ध रोजगार के अवसरों में भारी अन्तर होने के कारण बेरोजगारी स्थायी या दीर्घकालिक हो गई है देश में बेरोजगारी की समस्या का समाधान तीव्र आर्थिक विकास द्वारा ही संभव है।

बेरोजगारी के प्रकार (Types Of unemployment)

भारत में बेरोजगारी के निम्न प्रकार है एवं रूप है।

(i). प्रच्छन्न बेरोजगारी (Disguised unemployment)

प्रच्छन्न बेरोजगारी प्राय : ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती है। इस प्रकार की बेरोजगारी में ऊपरी तौर पर तो श्रमिक काम में लगे दिखाई देते है परन्तु वास्तव में वे बेरोजगार होते है। इनकी यह बेरोजगारी छिपी होती है। क्योंकि इन श्रमिको का काम में लगे होने क उपरान्त भी उत्पादन में कोई योगदान नहीं होता है। अर्थात् इन श्रमिको का सीमान्त उत्पादन शून्य होता है। प्रा० नर्कसे के अनुसार अल्प विकसित देशों में कृषि क्षेत्र में काफी संख्या में ऐसे श्रमिक लगे होते है जिन्हें कृषि से हटा लिया जावे तो भी उत्पादन में किसी प्रकार की कमी नहीं होगी। इस प्रकार के श्रमिक आर्थिक

दृष्टि से बेरोजगार की श्रेणी में आवेंगे जबकि देखने में ये काम पर लगे हुए दिखाई देते है स्पष्टतः इन श्रमिको की बेराजगारी छिपी हुई या प्रछन्न बेरोजगारी होती है।

(ii). खुली बेरोजगारी

इस श्रेणी में श्रमिको का वह वर्ग आता है जिन्हें किसी प्रकार का काम उपलब्ध नहीं है। काम न मिलने से यह वर्ग पूरी तरह से बेरोजगार है। इस प्रकार की बेरोजगारी ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में पाई जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगार व्यक्ति काम की तलाश में शहरी क्षेत्रों में आते रहते है। शहरों में काम उपलब्ध होने के कारण वे वहां बेरोजगारी की श्रेणी में पड़े रहते है। ऐसे श्रमिको को जब तक रोजगार नहीं मिलता है इन्हें खुली बेरोजगारी को क्षेणी में माना जाता है। इस श्रेणी में अधिकतर साधारण कोटि के श्रमिक होते है जो उद्योग एवं कारखानों में रोजगार प्राप्त करना चाहते है। इस श्रेणी में शिक्षित बेरोजगार वर्ग के श्रमिक भी सम्मलित होते है।

(iii). शिक्षित बेरोजगारी

शिक्षित बेरोजगारी की स्थिति भी देश में अत्यन्त जटिल होती जा रही है। इस श्रेंणी में वे श्रमिक आते है जिनको शिक्षित करने के लिए देश में आर्थिक संसाधनों का उपयोग किया गया है ओर विशेष ज्ञान शिक्षा एवं दक्षता के कारण इस प्रकार के श्रमिको को काम करने की क्षमता अन्य साधारण श्रमिको की अपेक्षा अधिक होती है। यह श्रमिक विशेष प्रकार के कार्य करने के योग्य होते है इसलिए काम के प्रति इनकी प्रत्याशाये भी भिन्न प्रकार की होती है।

इस श्रेणी में ऐसे व्यक्ति भी होते है जिन्हें अपनी शिक्षा के अनुरूप काम नहीं मिला होता है या उपलब्ध कार्य उनकी क्षमता से कम होता है। इस स्थिति में यह श्रमिक अल्प रोजगार की स्थिति में होते हैं देश में बड़ी संख्या में ऐसे व्यक्ति है जिन्हे किसी प्रकार का काम उपलब्ध नहीं हें। इस प्रकार के शिक्षित व्यक्ति खुली बेरोजगारी की श्रेणी में आते है।

देश में शिक्षा के प्रकार होने से शहरी क्षेत्रों में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। इस समस्या के समाधान के लिए विशेष प्रयास अपेक्षित है।

(iv). ग्रामीण क्षेत्रों मे बेरोजगारी

भारत में अधिकांश बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती है। हमारे देश में कृषि का व्यवसाय देश वासियों का प्रमुख तथा प्रधान व्यवसाय है परन्तु यह मौसमी व्यवसाय होता है। देश के विभिन्न राज्यों में मौसमी बेरोजगारी की स्थिति भिन्न-भिन्न होती है। एक अनुमान के अनुसार लगभग पांच से सात माह तक ग्रामीण श्रमशक्ति का बड़ा भाग बेरोजगार रहता है। देश में कुटीर उद्योगों के पराभव के कारण कृषि क्षेत्र के श्रमिको को अपना फालतू समय कुटीर उद्योगों में लगाने का अवसर भी समाप्त हो गया है।

हमारे देश में कृषि क्षेत्र में निरन्तर अल्प रोजगार तथा अदृश्य बेरोजगारी की विकट एवं गम्भीर समस्या है। देश में भूमि पर निर्भर कार्यशील जनसंख्या में तो निरन्तर वृद्धि हो रही है परन्तु कृषि योग्य क्षेत्र में उस परिमाण में वृद्धि नहीं हो पाई है। इसलिये कृषि में जनाधिक्य की स्थिति पैदा हो गई है। हमारे यहां कृषि में आवश्यकता से अधिक व्यक्ति लगे हुए है। इसलिए कृषि में प्रतिव्यक्ति औसत उत्पादकता बहुत ही कम है।

20.2.2 विकसित तथा अविकसित देशों मे बेरोजगारी का स्वरूप

विकसित देशों में बेरोजगारी की समस्या मूलतः व्यापार चक्र से संबंधित रहती है। इन देशों में व्यापार चक्र में मन्दी की स्थिति उत्पन्न होने पर बहुत से श्रमिक एक साथ बेकार हो जाते है। पूंजीवादी देशों में व्यापार चक्र के कारण बेकारी की स्थिति उत्पन्न होती रहती है। इस प्रकार की बेरोजगारी अल्पकालीन होती है। आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि होने पर बेरोजगारी की स्थिति भी समाप्त हो जाती है। आर्थिक मन्दी की स्थिति में प्रभावपूर्ण मांग कम हो जाती है। मांग कम होने से उत्पादन कम कर दिया जाता है। अनेक कारखाने बन्द हो जाते है या उत्पादन की मात्रा कम कर दी जाती है। इसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में श्रमिक बेरोजगारी हो जाते है।

अल्पविकसित देशों में बेरोजगारी का कारण आर्थिक मन्दी या प्रभावपूर्ण मांग का अभाव नहीं है। इन देशों में बेरोजगारी मूल रूप से जनशक्ति के पूर्ति पक्ष से जुड़ी हुई है। अल्पविकसित देशों में उत्पादन क्षमता तथा विकास का स्तर नीचा होता है। इस कारण यहां रोजगार के अवसर सीमित रहते है और अधिसंख्या श्रमिक बेरोजगार रहते है। इस प्रकार की बेकारी को दूर करने के लिए उत्पादन क्षमता में तीव्रगति से वृद्धि करनी आवश्यक है। यह तभी संभव है जब इन देशों में पूजी निर्माण में भी तेजी से वृद्धि की जाय जबकि विकसित देशों में बेरोजगारी का स्वरूप चक्रिय बेरोजगारी होती है जो मांग में कमी आने के कारण पैदा होता है। उनका निराकरण प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि करके किया जा सकता है।

भारत में बेरोजगारी का फैलाव बहुत अधिक है। यह दीर्घकालिक स्वरूप की समस्या है। हमारे देश में बेरोजगारी जन-शक्ति के पूर्ति पक्ष से संबंधित है। देश में पूंजी निर्माण की दर बहुत नीची है और उत्पादन क्षमता भी काफी कम है। हमारे देश में बहुत बड़ी मात्रा में प्रच्छन्न बेरोजगारी विद्यमान है। कृषि अर्थव्यवस्था होने के कारण यहां अल्प रोजगार तथा मौसमी बेरोगारी की स्थिति पाई जाती है।

हमारे देश में खुली बेरोजगारी प्राय: शहरी देशों में पाई जाती है। ग्रामों में ऐसे लोगों की संख्या अधिक है जो सारे साल में काफी समय बेरोजगार रहते है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकाश जनसंख्या कृषि कार्य से जुड़ी रहती है जिसे मौसमी आधार पर समय-समय पर थोड़ा बहुत रोजगार मिलता रहता है। हमारे यहां बेरोजगारी की समस्या प्रमुख रूप से ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या है। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार व्यक्ति काम की तलाश में शहरों में आते रहते है जिससे शहरी क्षेत्र में अकुशल तथा अशिक्षित व्यक्तियों की बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न होती है।

20.3 बेरोजगारी के कारण

भारत में पिछले 50 वर्षों में नियोजित आर्थिक विकास के बावजूद बेरोजगारी की समस्या अधिक जटिल हुई है। इस दौरान जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है जिससे बहुत अधिक संख्या में नये लोग श्रम-बाजार में सम्मलित हो रहे है। योजना काल में ग्रामीण उद्योगीकरण में विशेष प्रगति नहीं हुई है। कृषि के क्षेत्र में भी नवीन विधियों का प्रयोग पिछले 35 वर्षों से ही सम्भव हुआ है। देश

को शिक्षा नीति भी दोषपूर्ण रही है तथा सरकार के पास आर्थिक साधनों का अभाव बना रहा है। सामाजिक पिछड़ेपन के कारण श्रमिक गतिशीलता में रुकावट बनी रही है। समय-समय पर प्राकृतिक प्रकोपों के कारण भी बेरोजगारी की स्थिति में वृद्धि हुई है। भारत में बेरोजगारी के प्रमुख कारण निम्न प्रकार है

(1) जनसंख्या की तीव्रवृद्धि
(2) कृषिगत विकास का अभाव
(3) सार्वजनिक क्षेत्र में विनियोग का अभाव
(4) पूंजी गहन योजनाओं पर अधिक जोर
(5) शिक्षा प्रणाली के दोष
(6) निजी क्षेत्र में अनिश्चितता की स्थिति तथा सरकारी नियंत्रण
(7) रोजगार नीति व जनशक्ति नियोजन

(1) जनसंख्या की तीव्र वृद्धि

भारत में बेरोजगारी में तीव्र गति से वृद्धि का मुख्य एवं महत्वपूर्ण कारण निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या है। देश में जनसंख्या 2.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है जबकि रोजगार की सुविधाएं उस दर से नहीं बढ़ रही है। अब देश में आर्थिक विकास की दर जनसंख्या की वृद्धि दर की तुलना में कम होती है तो बेरोजगारी की समस्या पैदा होती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले देश में कुटीर उद्योगों के पतन के कारण रोजगार के अवसर समाप्त होते गये। अंग्रेजो के शासनकाल में देश की अर्थव्यवस्था गतिहीन बनी रही। उस काल में आधुनिक ढंग के बड़े पैमाने के उद्योगों की स्थापना नहीं की गई इस कारण देश में रोजगार के नये अवसर बहुत सीमित मात्रा में सृजित हुए।

प्रो० सुंदरम के अनुमानों के अनुसार 1981 -9 1 के दशक में श्रम-शक्ति में 8 करोड़ लोगों की वृद्धि हुई है। उनके अनुमान के अनुसार 1991.2001 के दस वर्षों में जनसंख्या में अधिक तीव्र वृद्धि होने के कारण श्रमशक्ति में लगभग 10 करोड़ लोगों की वृद्धि हो जावेगी। अर्थात् एक करोड़ व्यक्ति प्रतिवर्ष देश की श्रमशक्ति में जुड़ते रहेंगे। यह एक विस्फोटक स्थिति होगी।

(2) कृषिगत विकास का अभाव

देश में 1951 में नियोजन का कार्य चल रहा है। परन्तु यह नियोजन त्रुटिपूर्ण रहा है। भारत में कृषिगत विकास की दर बहुत धीमी रही हैं। हमारे देश में कृषि विकास की दर 2% से कम हो रही है। जब तक खाद्य फसलों की पैदावार में तेजी से वृद्धि नहीं होगी तब तक कृषि एवं गैर कृषि क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सृजित नहीं होंगे। देश में कृषिगत विकास की धीमी गति ने बेरोजगारी की समस्या को अधिक जटिल बना दिया है।

(3) सार्वजनिक क्षेत्र में विनियोग का अभाव

देश में नये-नये कारखाने खुलने से रोजगार की स्थिति में सुधार होता है। सार्वजनिक क्षेत्र में पूँजी निवेश करने से बड़े पैमाने पर नये रोजगार के अवसर सृजित होते है। हमारे देश में 1965 के पश्चात सार्वजनिक विनियोग की वार्षिक वृद्धि की दर पहले की तुलना में कम रही है। विदेशी सहायता की अनिश्चितता की स्थिति, मुदा स्फीति तथा 1965 व 1971 के युद्ध के कारण देश में

पूंजी निवेश में धीमी गति से वृद्धि हुई है। सार्वजनिक विनियोग के कम होने के कारण रोजगार के अवसर भी पर्याप्त मात्रा में नहीं बढ़े है। सार्वजनिक विनियोग की धीमी वृद्धि दर के कारण देश में आधार ढाँचे का भी पर्याप्त विकास नहीं हुआ है। जिनका निजी क्षेत्र कें विनियोग पर भी प्रभाव पड़ा है। सार्वजनिक तथा निजी विनियन की वृद्धि दर धीमी रहने के कारण रोजगार के अवसर पर्याप्त मात्रा में नहीं बढ़ सके है।

(4) पूंजीगहन योजनाओं पर अधिक जोर

हमने द्वितीय पंचवर्षीय योजना से पूंजी गहन तथा आधारभूत उद्योगों के विकास पर अधिक चल दिया है। इसके अन्तर्गत भारी इन्जीनियरी भारी रसायन आदि उद्योगों से अधिक पूंजी निवेश किया गया किन्तु इन उद्योगों की स्थापना से रोजगार के अवसरों में अधिक वृद्धि नहीं हुई। इस प्रकार के उद्योगों की स्थापना से अल्पकाल में रोजगार के अवसर बहुत कम सृजित होते है। इस दौरान कुटीर लघु, एवं ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहित करने का संकल्प तो दोहराया गया परन्तु उस दिशा में सफल प्रयास नहीं किये गये। इससे बेरोजगारी की मात्रा में निरंतर वृद्धि होती रही हैं।

(5) शिक्षा प्रणाली के दोष

हमारे देश में शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण रही है। अभी तक शिक्षा प्रणाली को आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं बनाया जा सका है। प्रारम्भ से ही शिक्षा प्रणाली में नौकरी तलाश करने वाले लोगों के वर्ग को जन्म दिया है। इससे स्वरोजगार को कभी बढ़ावा नहीं दिया गया है। इसी कारण शिक्षित बेरोजगारी की मात्रा में निरन्तर वृद्धि हो रही है। 1990 के प्रारम्भ में हाईस्कूल या इससे अधिक शिक्षा प्राप्ति शिक्षित बेरोजगारों की संख्या 195 लाख से अधिक आंकी गई है। इस स्थिति को बदलने के लिए हमें व्यवसाय प्रधान शिक्षा प्रणाली का अवलम्बन करना होगा।

(6) निजी क्षेत्र में अनिश्चितता की स्थिति तथा सरकारी नियंत्रण

सरकार द्वारा निजी क्षेत्रों पर आर्थिक नियंत्रण की नीति अपनाये जाने के कारण निजी क्षेत्र हतोत्साहित हुआ है। इस कारण निजी क्षेत्र में रोजगार के अवसर अपेक्षा के अनुरूप सृजित नहीं हुए है। सरकार की राजकोषीय नीतियां निजी विनियोग को प्रोत्साहित नहीं कर पाई है। सरकार द्वारा अनेक प्रकार के औद्योगिक नियत्रण लगाये गये है जिससे उन्हें अपने कार्यो का विस्तार करने में कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है। सरकारी नियंत्रण में ढील देने की नीति अपनाने के परिणाम स्वरूप उन्हें अपने कार्यों के विस्तार का अवसर मिलेगा जिससे रोजगार के अधिक अवसर सृजित हो सकेंगे।

(7) रोजगार नीति व जन शक्ति नियोजन

हमने 1951 से देश में पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश के आर्थिक विकास का संकल्प लिया परन्तु इन योजनाओं में देश की अधिसंख्य जनसंख्या को रोजगार देने की कोई व्यापक तथा प्रगतिशील नीति का निर्धारण नहीं किया गया। हमने जन-शक्ति नियोजन की निरन्तर अपेक्षा की है। इसी कारण देश में रोजगार को मात्रा बढ़ने के उपरान्त भी बेरोजगारी की समस्या निरन्तर उग्र हो रही है।

20.4 भारत में बेरोजगारी के अनुमान

भारत में बेरोजगारी की मात्रा का अनुमान लगाना कठिन कार्य है। आर्थिक नियोजन के बावजूद बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है। बेरोजगारी की श्रेणी में बालक, युवा, प्रोढ, स्त्री पुरुष सभी समाविष्ट है जो शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में फैले हुए है। देश में ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी अधिक व्यापक है। शहरों में कुशल, अकुशल, शिक्षित तथा अशिक्षित सभी वर्गों में बेरोजगारी की भयावह स्थिति है। देश में खुली बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी, अल्प रोजगार तथा प्रच्छन्न रोजगार सभी का अन्तहीन सिलसिला चला जा रहा है। सन् 1985 में विभिन्न आयु वर्गो में बेरोजगारों की स्थिति निम्न प्रकार थीं:

आयु वर्ग	बेरोजगारी
1. बालक तथा वृद्ध	90.20 लाख
2. 15 वर्ष की आयु तक	80.37 लाख
3. 15-59 आयुवर्ग	80.67 लाख

सातवी पंचवर्षीय योजना के दौरान बेरोजगारों की स्थिति में विशेष सुधार की आशायें नहीं हैं। सातवीं योजना के दौरान 20 मिलियन अतिरिक्त रोजगार के अवसरों का सृजन करने का प्रावधान था। उदारीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के बाद बेरोजगारी की संख्या में और वद्धि हुई। इस शताब्दी के अन्त में भारत में कुल 10 करोड़ सें अधिक व्यक्ति बेरोजगार होंगे। सन् 1984-85 और 1989-90 कें बीच रोजगार की वृद्धि की दर विभिन्न क्षेत्रों में निम्न प्रकार आंकी गई है।

तालिका 20.1: विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार का अनुपात

क्र.सं.	क्षेत्र	1972-73	2004-05	2011-12
1.	कृषि	73.9	58.5	48.9
2.	खनन तथा खनिज	0.4	0.6	0.5
3.	विनिर्माण उद्योग	8.9	11.7	12.8
4.	निर्माण	1.8	5.6	10.6
5.	विद्युत	0.2	0.3	0.4
6.	व्यापार, होटल व रेस्तरां	5.1	10.2	11.4
7.	परिवहन, भंडारण एवं संचार	1.8	3.8	4.4
8.	वित्तीय, वास्तविक संपदा, व्यावसायिक सेवाएँ	0.5	1.5	2.6
9.	सामुदायिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ	7.4	7.7	8.2
	योग	**100**	**100**	**100**

Source: India labour and Employment Report 2014, IHD, Delhi.

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 1985-90 के दौरान 40.4 मिलियन नये रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जा सकेंगे। इस दौरान 36.3 मिलियन नये लोग श्रम बाजार में जुड़ जावेंगे। 1985 से पूर्व देश में 7.8 मिलियन व्यक्ति बेरोजगार थे। 1985-90 के दौरान 44 मिलियन से अधिक व्यक्ति बेरोजगार होंगे जबकि 1985-90 के दौरान कुल 40 मिलियन नये रोजगार के अवसर सृजित होंगे। इस प्रकार 1990के30 मिलियन व्यक्ति बेरोजगारी स्थिति में रहेंगे।

इन आँकड़ों के उपरान्त भी देश में बेरोजगारी की सही स्थिति आंकलन करना अत्यधिक कठिन कार्य है सन् 1991 की जनगणना ने बेरोजगारी की स्थिति का कुछ स्पष्ट आंकलन किया है ।

20.5 भारत सरकार की रोजगार संबंधी नीति

भारत सरकार ने बेरोजगारी के संबंध में1970 में "भगवती समिति की स्थापना की थी। इस समिति ने 16 मई 1973 को अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें बताया गया कि 1971 में 187 लाख व्यक्ति बेरोजगार थें । इनमें 90 लाख व्यक्तियों के पास कोई रोजगार नहीं था। 97 लाख व्यक्तियों के पास सप्ताह में मात्र 14 घण्टे का काम था अर्थात् यह भी बेरोजगारों की ही श्रेणी में आते थे। इस समिति ने बेरोजगारी' को दूर करने के निम्न'सुझाव दिये थे:

1. जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के लिए लड़को को न्यूनतम विवाह आयु 21 वर्ष तथा लड़कियों को विवाह आयु- 18 वर्ष को जावे।
2. रोजगार तथा श्रम शक्ति नियोजन पर एक राष्ट्रीय आयोग गठित किया जावे।
3. काम देने की मौलिक अधिकार की योजना सम्पूर्ण देश पर लागू की जावे।
4. बेरोजगार व्यक्तियों को काम की गारंटी देने के लिए एक देशव्यापी कार्यक्रम लागू किया जावें।जो लोग रोजगार में लगे हुए है उनके लिए रोजगार की हानि होने पर बीमा व्यवस्था लागू की जावे।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण, सड़क निर्माण, लघु सिंचाई तथा ग्रामीण भवन निर्माण की योजनाओं को आगामी दो वर्षों में तेजी से लागू किया जावे। रोजगार कार्यक्रमो को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए आवश्यक संसाधन की व्यवस्था की जावे।
6. सप्ताह के काम के घण्टों को 48 घण्टे से घटाकर 42 घण्टे किया जावे कारखानों में सप्ताह में सात दिन पूरी क्षमता से काम होना चाहिए।
7. श्रम प्रधान उद्योगों के लिए करो में छूट और रियायत की व्यवस्था की जावे तथा बड़े-बड़े नगरों से उद्योगों का विकेन्द्रीकरण किया जावे।
8. कृषि क्षेत्र में श्रम बचाने वाली भारी मशीनों के प्रयोग पर नियंत्रण लगाया जावे।
9. शिक्षा तथा प्रशिक्षण के क्षेत्र में वार्षिक दर से 5 लाख नौकरियों के लिए प्रबन्ध किया जावे।
10. राज्य स्तर पर रोजगार तथा श्रम शक्ति नियोजन व्यवस्था कार्यो की देखभाल के लिए पृथक विभाग स्थापित किये जावे।

भारत में सन् 1951 के पश्चात् प्रथम बार पांचवी पंचवर्षीय योजना में बेरोजगारी दूर करने पर विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना में अधिक रोजगार उपलब्ध कराने को एक प्रमुख उद्देश्य माना

गया था। इस योजना में यह भी स्वीकारा गया कि बेकार श्रम शक्ति को समुचित रूप में प्रयोग में लाने पर विकास क्षेत्र को पर्याप्त मदद मिलेगी।

पांचवी पंचवर्षीय योजना में रोजगार के अवसर बढ़ाने 'के लिए लघु सिचाई, पशुपालन, दुध व्यवसाय वन, भू-सरक्षण, क्षेत्रीय विकास, वेयर-हाउसिंग, लघु उद्योग, लघु कृषक विकास, सीमान्त कृषक व खेतिहर मजदूरों की विकास एजेन्सी, सूखाग्रस्त क्षेत्रों का विकास एवं सड़क परिवहन के विकास पर विशेष बल देने का निश्चय किया गया। इसके अलावा मजदूरी पर रोजगार तथा स्वरोजगार को बढ़ावा देने के लिए ग्रामीण जलापूर्ति, प्राथमिक शिक्षा, भूमिहीनों के लिए आवासीय सुविधा, ग्रामीण विद्युतीकरण एवं ग्रामीण क्षेत्रों में एवं शहरों में भवन निमार्ण को प्राथमिकता देने पर जोर दिया गया।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85)

छठी योजनाकाल में कुल 3 करोड़ 40 लाख व्यक्तियों को रोजगार देने का कार्यक्रम निश्चित किया गया। जबकि कुल बेरोजगारों की संख्या 4 करोड़ 60 लाख आंकी गयी इस योजनाकाल में रोजगार में वार्षिक वृद्धि की दर 4.2% निर्धारित की गई जबकि श्रम शक्ति में वार्षिक वृद्धि दर 2.5% अनुमानित की गई।

छठी योजना में अतिरिक्त रोजगार के अवसर सृजित करने के लिए निम्न प्रबन्ध किये गये

(1) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत देश के प्रत्येक खण्ड में 3000 निर्धन परिवारों को कृषि तथा गैर कृषि धन्धों में काम देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। यह ग्रामीण निर्धनता को दूर करने का कार्यक्रम है । इसमें प्रत्येक खण्ड में प्रतिवर्ष 600 परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराने की व्यवरथा की गई जिससे पांच वर्षों में 3000 निर्धन परिवारों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकेंगे। इस कार्यक्रम में पांच वर्ष की अवधि में प्रत्येक खण्ड पर 35 लाख रु० खर्च करने का प्रावधान किया गया। छठी योजना में इस कार्यक्रम से 1.5 करोड़ परिवारों को लाभ पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया। इस कार्यक्रम के लिए योजना में 1500 करोड़ रु0 तथा बैको से 3000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया।

(2) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम

यह कार्यक्रम "काम के बदले अनाज" कार्यक्रम का संशोधित रूप है । इसके अन्तर्गत सुस्त मौसम में श्रमिको को रोजगार प्रदान करने की व्यवस्था की गई। इसके द्वारा वर्ष में 30 से 40 करोड़ श्रम-दिवस सृजित होने की व्यवस्था की गई है ।

(3) ग्रामीण युवावर्ग स्व-रोजगार प्रशिक्षण योजना

इस योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिवर्ष 2 लाख युवा व्यक्तियों को स्व-रोजगार का प्रशिक्षण देने का कार्यक्रम निर्धारित किया गया। इन व्यक्तियों को प्रशिक्षित करके स्व-रोजगार के लिए तैयार किया जावेगा जिससे वे स्वयं का काम-धन्धा चालू कर सके। इन प्रशिक्षित व्यक्तियों को बैको से कर्ज दिलवाने की भी व्यवस्था की गई। छठी योजना में इस कार्यक्रम द्वारा 9.4 लाख युवाओं को

प्रशिक्षण दिया गया। इनमें से 50 प्रतिशत से अधिक स्व-रोजगार में लग गये है। इस कार्यक्रम का लाभ अनुसूचित जाति तथा जनजाति के व्यक्तियों को भी प्राप्त हुआ है।

(4) न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में प्रारम्भिक शिक्षा, खेतीहर मजदूरों के लिए आवासीय भूखण्ड, पेयजल अपूर्ति, सड़क निमार्ण एवं स्वास्थ्य सुधार आदि की व्यवस्था करके नये नये रोजगार के अवसर सृजित करने का प्रावधान किया गया।

(5) आपरेशन फ्लड- II कार्यक्रम

इस कार्यक्रम में एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में दूध की पूर्ति करने के लिए विशेष प्रयास करने का निर्णय किया गया। इस प्रकार की दुधविकास परियोजनाओं सें दूध व्यवसाय में कार्यरत लाखों ग्रामीण परिवारों को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे तथा उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा।

(6) ग्रामीण लघु उद्योग विकास कार्यक्रम

इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योगों का तीव्र गति से विकास करना तथा इस क्षेत्र में 90 लाख से अधिक बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया।

(7) मछली पालन विकास कार्यक्रम

मछली पालन के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए मछली कृषक विकास एजेन्सियों द्वारा मछुआरों के परिवारों को लाभ पहुंचाने का कार्यक्रम निर्धारित किया गया। यह एजेन्सियां देश के आन्तरिक तथा तटीय प्रदेशों में मछली उद्योग को प्रोत्साहित करने के कार्य करेंगी।

(8) अनुसूचित जाति, जनजाति विकास कार्यक्रम

छठी योजनाकाल में ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए विशेष अभियान चलाने का कार्यक्रम निर्धारित किया गया। जिससे इन जातियों के बेरोजगार श्रमिको को त्वरित आधार पर रोजगार में सहभागी बनाया जा सके।

(9) ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम

यह कार्यक्रम सम्पूर्ण देश में सन् 1983 मे लागू किया गया। इस कार्यक्रम के द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ आधार पर विकसित करने के लिए टिकाऊ परिसम्पतियों का निमार्ण करने पर जोर दिया गया। इस कार्यक्रम में भूमिहीन परिवार के कम से कम एक व्यक्ति को वर्ष में 100 दिन तक का काम दिलाने का प्रावधान किया गया। इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए केन्द्र सरकार राज्य सरकारों एवं संघीय प्रदेशों को शतप्रतिशत अनुदान देती हैं।

(10) शिक्षित बेरोजगार व्यक्तियों के लिए स्व-रोजगार कार्यक्रम

यह कार्यक्रम 1983 में प्रारम्भ किया गया। इसमें शहरी इलाको में रहने वाले बेरोजगार नवयुवको को स्व-रोजगार के लिए 25 हजार रु० तक का कर्ज देने कीं व्यवस्था है। यह कार्यक्रम 10 लाख से कम जनसंख्या वाले शहरी क्षेत्रों में लागू किया गया है। यह कार्यक्रम जिला उद्योग केन्द्रों के द्वारा संचालित होता है।

(11) राज्य सरकारों द्वारा विशेष रोजगार कार्यक्रम

देश में मध्यप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, तथा महाराष्ट्र सरकारों द्वारा अपने राज्यों में विशेष रोजगार कार्यक्रम लागू किये गये हैं। अनेक राज्यों ने शिक्षित बेरोजगारी के लिए प्रशिक्षण व्यवस्था, वित्तीय सहायता तथा अन्य सुविधायें देने का प्रबन्ध किया है । राज्यों के अकुशल श्रमिको को रोजगार देने के लिए विशेष कार्यक्रम अपनाये गये हैं। महाराष्ट्र सरकार ने 1972 से रोजगर गारंटी कार्यक्रम लागू किया है । इस कार्यक्रम में अकुशल तथा शारीरिक श्रम करने वाले श्रमिको को रोजगार के प्रबन्ध किये जाते हैं। महाराष्ट्र सरकार ने 1977 में रोजगार गारंटी कानून भी बनाया है । इसी आधार पर अन्य राज्य सरकारों ने भी बेरोजगार लोगों को रोजगार देने के कार्यक्रम बनाये हैं।

सातवी पंचवर्षीय योजना में रोजगार संबंधी नीति

सातवी योजना के प्रारम्भ में 92 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे । 1985-90 के दौरान 3.9 करोड़ व्यक्ति श्रम-बाजार में जुड़ जावेंगे इस आधार पर कुल 4.82 करोड़ व्यक्तियों के लिए रोजगार के प्रबन्ध करने अपेक्षित होंगे। योजना अवधि में 4.04 करोड़ अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे। इस प्रकार 82 लाख व्यक्ति सातवीं योजना के अन्त में बेरोजगार रहेंगे। इस योजना में रोजगार को वार्षिक वृद्धि दर 3.99% रहने का अनुमान है । योजना काल में कृषि क्षेत्र में 1.8 करोड़ बेरोजगार तथा विनिर्माण क्षेत्र में 67 लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध होने का अनुमान लगाया गया था ।

सातवीं योजना में अतिरिक्त रोजगार का सृजन करने के लिए निम्न कार्यक्रम व नीतियां अपनाई गई हैं। इनके साथ ही छठी योजना में लागू किये गये कार्यक्रम सातवीं योजना में भी लागू रहेंगे।

(1) कृषि क्षेत्र में सुधार के कार्यक्रम

कृषि उद्योग में सुधार करने के लिए सिंचाई सुविधाओं का पर्याप्त विकास एवं पूरा उपयोग किया गया है । सूखी खेती में नवीन तकनीक से उत्पादन, मोटे अनाज, तिलहन, चावल दालों आदि के उत्पादन में वृद्धि, भूमि सुधार के कार्यक्रम, पशुपालन, मछली पालन व वृक्षारोपण के कार्यक्रम त्वरित आधार पर लागू किये गये हैं।

(2) कृषि कार्यों के नवीन तकनीक

इनके अन्तर्गत कृषि का उत्पादन बढ़ाने के लिए उर्वरक, कीटनाशक दवाईया व कृषि से संबंधित मशीनों के उपयोग को बढ़ावा दिया गया है ।

(3) लघु उद्योगों का विस्तार

सातवीं योजना में लघु उद्योगों के विस्तार पर विशेष बल दिया गया जिससे ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में अधिक रोजगार के अवसर सृजित हुए हैं ।

(4) भवन निर्माण

भवन निर्माण के कार्यक्रम ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में तेजी से लागू किये गये । भवन निर्माण एवं गहन रोजगार कार्यक्रम हैं जिससे काफी बड़ी मात्रा में रोजगार सृजित होते हैं ।

(5) बाढ़-नियंत्रण एवं सिंचित क्षेत्र विकास

देश में बाढ़-नियंत्रण के कार्यक्रमों तथा सिंचित क्षेत्र विकास कार्यक्रमों के द्वारा रोजगार के नये अवसर सृजित किये गये हैं।

(6) परिवहन सुविधाओं का विकास

सातवीं योजना में ग्रामीण तथा शहरी सड़कों के विकास पर विशेष जोर दिया गया है। इसके साथ ही आन्तरिक जल-परिवहन, सड़क परिवहन, समुद्री जहाजों के निर्माण आदि द्वारा नये रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है।

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत रोजगार उपलब्ध कराने के विशेष कार्यक्रम अपनाये गये हैं। देश में ग्रामीण निर्माण कार्यक्रमों तथा ग्रामीण रोजगार की शीघ्र परिणाम देने वाली योजना-क्रेश स्कीम आदि पर भारी मात्रा में विनियोग किया गया है। इनसे रोजगार के नये अवसरों का सृजन हुआ है। सातवीं योजना में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण युवाओं के लिए स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, शिक्षित बेरोजगारों के लिए स्व-रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी स्कीम आदि के लागू होने से करोड़ों बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार तथा स्व-रोजगार के अवसर प्राप्त हुए हैं।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा

भारत में राष्ट्रीय रोजगार सेवा 1965 में प्रारम्भ की गई इसके अन्तर्गत प्रशिक्षित कर्मचारियों द्वारा अनेक रोजगार कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये। यह रोजगार कार्यालय काम की तलाश करने वाले सभी प्रकार के व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने में सहायता करता है। इन कार्यालयों में भूतपूर्व सेनिक, अनुसूचित जाति एवं जनजाति, विश्वविद्यालय के विद्यार्थी, शरीरिक रूप से अपंग व्यक्ति तथा व्यावसायिक और प्रबन्धक पदों के उम्मीदवारों को रोजगार प्राप्त करने में सहायता एवं सहयोग दिया जाता है। रोजगार कार्यालय कानून 1959 के अन्तर्गत 25 या 25 से अधिक श्रमिको को रोजगार देने वाले मालिको को रोजगार कार्यालयों में अपने यहां के रिक्त पदों के बारे में सूचना देते रहना अनिवार्य है।

देश के समस्त रोजगार कार्यालयों तथा सभी विश्वविद्यालयों के रोजगार सूचना तथा मार्गदर्शन केन्द्रों द्वारा युवक-युवतियों को काम धन्धे से संबंधित मार्गदर्शन और रोजगार संबंधी परामर्श दिया जाता है।

शिक्षित युवक-युवतियों को लाभदायक रोजगार दिलाने की दिशा में प्रवृत करने के लिए रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय के मार्गदर्शन और आजीविका परामर्श कार्यक्रमों को विस्तृत और व्यवस्थित किया गया है। रोजगार सेवा अनुसंधान और प्रशिक्षण के केन्द्रीय संस्थान में रोजगार संबंधी मार्गदर्शन चाहने वालों को व्यवसाय संबंधी साहित्य भी उपलब्ध कराया जाता है।

भारत में बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने के लिए निम्न बिंदुओं पर विशेष ध्यान दिया जाना अपेक्षित है :

(1) योजनाओं में विनियोग के स्वरूप में परिवर्तन किया जावे।

(2) जनसंख्या की वृद्धि दर को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जावे।

(3) विनियोग की दर में वद्धि की जावे।
(4) जनशक्ति का प्रभावी नियोजन किया जावे।
(5) कृषि क्षेत्र में संस्थागत परिवर्तन किये जावे।
(6) कृषि के विभिन्न सहायक धन्धों का विकास किया जावे।
(7) ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगारोन्मुख नियोजन किया जावे।
(8) ग्रामीण निर्माण कार्यक्रमों का विस्तार किया जावे।
(9) शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन किया जावे।
(10) रोजगार प्रदान करने वाले कार्यालयों का ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार किया जावे।
(11) महाराष्ट्र सरकार की रोजगार गारंटी योजना के आधार पर अन्य राज्यों में कार्यक्रम बनाये जावे।
(12) ग्रामीण औद्यौगीकरण को बढ़ावा दिया जावे।
(13) महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाये जावे।
(14) कृषि क्षेत्र में वृद्धि की जावे। लाखों एकड़ बंजर तथा बेकार पड़ी जमीन को अल्प प्रयास से कृषि योग्य बनाया जा सकता है। इससे ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार में वृद्धि होगी।
(15) मानवीय श्रम पर अधिकाधिक बल दिया जाना चाहिए।
(16) देश में सार्वजनिक सेवाओं, प्रशासनिक सेवाओं तथा सामाजिक सेवाओं का विस्तार करना चाहिए इससे शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार प्राप्त होगा।

दसवी पंचवर्षीय योजना में रोजगार संबंधी नीति

महानरेगा

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार अधिनियम किसी एक वित्तिय वर्ष में प्रत्येक ऐसे ग्रामीण परिवार के एक व्यस्क सदस्य को कम से कम 100 दिन रोजगार की गारंटी प्रदान करता है जो अकुशल शारीरिक श्रम के लिए तैयार है। इस प्रकार MGRNREGS अन्य मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों से इस अर्थ में भिन्न कि है की वह ग्रामीण जनता को संसद के एक अधिनियम से माध्यम से रोजगार की कानूनी गारंटी प्रदान करता है और मात्र अन्य मजदूरी रोजगार कार्यक्रम की तरह का ही एक कार्यक्रम नहीं है। अधिकार आधारित ढाँचे के कारण तथा मांग प्रेरित दृष्टिकोण के कारण MGRNREGS पिछड़े मजूदरी रोजगाकर कार्यक्रमों से नितान्त भिन्न है। मुख्य विशेषताएं है - समयबद्ध रोजगार गारंटी तथा 15 दिनों में मजदूरी भुगतान, राज्य सरकारों को रोजगार प्रदान करने के लिए प्रोत्साहन (इस योजना में यह प्रावधान है कि राज्य सरकार रोजगार प्रदान करती है तो उसकी 90 प्रतिशत लागत केन्द्र सरकार उठाएगी और यदि वह ऐसा नहीं करती तो पूरा बेरोजगारी भत्ता उसे स्वयं देना होगा) तथा श्रम प्रधान कार्यक्रमों को लागु करना (बिना ठेकेदारों और बिना मशीनरी का प्रयोग किए।) लाभभोगियों में कम से कम 33 प्रतिशत स्त्रियां होनी चाहिए।

यह अधिनियम विकेन्द्रीकरण तथा नीचे तथा नीचे के स्तर तक प्रजातांत्रिक ढाँचे को मजबूत करने का एक अनमोल अस्त्र भी है। महानरेगा के अन्तर्गत मजदूरी दर 100 रूपये प्रति दिन रखी गई थी।

महानरेगा का कार्यान्वयन

महानरेगा विश्वभर में पहला अधिनियम है जो इतने बड़े पैमाने पर मजदूरी रोजगार गारण्टी देता है। महानरेगा की मुख्य उपलब्धियां निम्नलिखित है।

1. रोजगार अवसरों की वृद्धि
2. मजदूरी आय में वृद्धि तथा न्यूनतम मजदूरी का भाव
3. महिलाओं व पिछड़े वर्गों को अधिक लाभ
4. वित्तिय अन्र्वेशन या समावेशन
5. देश के प्राकृतिक संसाधन आधार को मजबूत बनाना

महानरेगा की आलोचनाएं

1. **कार्यान्वयन में अनुत्साह -** हाल की अविध में महानरेगा को लागू करने में अनुत्साह फैल रहा है। रोजगार सृजन की गति हकम हो रही है।
2. **कार्यान्वयन में अनियमितताएं -** महानरेगा के कार्यान्वयन में व्यापक अनियमिताएं है तथा घूसखोरी व्याप्त है।
3. **नामावली में छेड़छाड़ -** नामावली में छोड़छाड व परिवर्तन करने के कई किस्से सामने आए है। उदाहरण के लिए अनुपस्थिति को उपस्थिमि में बदलने, काम के दिनों में हेर फेर जैसी गड़बड़िया की गई है।
4. **व्यापक भ्रष्टाचार -** विभिन्न शोधकर्ताओं और संगठनों द्वारा देश के विभिन्न भागों में किए गए सर्वेक्षणों में महानरेगा में व्यापक स्तर पर फैले भ्रष्टाचार का पता लगा है।
5. **मजदूरी के भुगतान में देरी-** कई राज्यों से शिकायत आई हैं कि मजदूरी का भुगतान 15 दिनों की निर्धारित अवधि मे नहीं किया जाता है। जो लोग महानरेगा के कार्यों में काम करने आते है।
6. **मजदूरी का गिरता हिस्सा -** यह बात सामने आई है कि कई ग्राम पंचायतों के भुगतानों की हिस्से में तेज गिरावट आई है।
7. **स्टाफ की कमी -** महानरेगा के सफल कार्यान्वयन मे समर्पित प्रशासनिक व तकनीकी स्टाफ की कमी एक बहुत बड़ी अड़चन रही है।
8. **बेरोजगारी भत्ते की अदायगी न होना -** जैसा पहले कहा गया है, अधिनियम की धाराओं में यह व्यवस्था है कि बेरोगारी भत्ते का भुगतान राज्य सरकार को करना पड़ेगा। यह प्रावधान को इसलिए शामिल किया गया ताकि राज्य सरकारें रोजगार प्रदान करने की भरसक कोशिश करें क्योंकि रोजगार प्रदान करने की 90 प्रतिशत लागत का भार केन्द्र सरकार उठाती है।

20.6 भारत में शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी

हमारे देश में शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी की गम्भीर समस्या है। शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी का एक कारण यह रहा है कि हमारे यहां पिछले वर्षों में जिस परिमाण में शिक्षा का विस्तार हुआ है उस तुलना में अर्थव्यवस्था का विकास नहीं हुआ है। रोजगार सेवा कार्यालयों में मैट्रिक तथा उससे ऊपर की योग्यता वाले लाखों बेरोजगार त्यक्तियों के नाम प्रतिवर्ष पंजीकृत होते रहते हैं। देश के लाखों शिक्षित बेरोजगार ऐसे भी हैं जिन्होंने किन्हीं कारणों से रोजगार कार्यालयों में अपने नाम पंजीकृत नहीं कराये हैं। इन सब का कुल योग अत्याधिक भयावह स्थिति का चित्रण प्रस्तुत करता है। हमारे देश में केरल, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में आधे से अधिक शिक्षित बेरोजगार निवास करते हैं।

1985 में शिक्षित बेरोजगारी की संख्या 47 लाख आँकी गई थी। इनमें 32 लाख मैट्रिक तथा हायर सेकेण्डरी पास बेकार व्यक्ति थे तथा 12 लाख व्यक्ति स्नातक स्तर तथा प्राविधिक डिप्लोमा डिग्री प्राप्त थे।

सातवीं योजना काल में शिक्षित बेरोजगारी की संख्या में काफी वृद्धि होने का अनुमान है। 1985 में देश में शिक्षित श्रमिको की संख्या 3 करोड़ थी। 1990 तक यह बढ़कर 4.1 करोड़ हो गई है। इस प्रकार सातवीं योजना के दौरान 1.1 करोड़ नये शिक्षित व्यक्ति जुड़ गये हैं।

हमारे देश में शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी का एक प्रमुख कारण शिक्षा नीति तथा मानव शक्ति नियोजन में समन्वय का अभाव रहा है। देश में एक ओर प्राविधिक योग्यता प्राप्त शिक्षित वर्ग के लोग बेरोजगार बने रहते हैं जबकि आर्थिक विकास के लिए आवश्यक योग्यता एवं दक्षता वाले लोगों का अभाव रहता है। देश में कम्प्यूटर प्रशिक्षित व्यक्तियों, इलेक्ट्रिकल तथा मेकेनिकल इन्जीनियरों, डाक्टर, सर्जन, पेरा मेडिकल स्टाफ इलेक्ट्रिशियनों विश्वविद्यालय के प्राध्यापको तथा उच्चतम माध्यमिक विद्यालय में विज्ञान तथा गणित के अध्यापको की कमी रहती है। जबकि स्नातक तथा स्नातकोत्तर डिग्रीधारी कला एवं वाणिज्य विषयों के शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार का अल्प रोजगार की स्थिति में अनेक वर्षों तक भटकते रहते हैं।

इस स्थिति को दूर करने के लिए माध्यमिक शिक्षा के बाद विश्वविद्यालय में जाने की प्रवृत्ति को रोका जाना चाहिए। दसवीं कक्षा के बाद छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके लिए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, पोलीटेकनिक व कृषि स्कूलों आदि का विस्तार करने की नीति होनी चाहिए तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए स्वरोजगार कार्यक्रमों के अन्तर्गत लघु उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित करना चाहिए। नौकरियों में डिग्री की अनिवार्यता को समाप्त करना चाहिए।

20.7 भारत मे उद्योगीकरण तथा रोजगार

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हमारा देश औद्योगिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ था। उस समय कुल श्रमिको का 9.3 प्रतिशत खनन तथा विनिर्माण के कार्यों में कार्यरत था। 1971 मे 9.8 प्रतिशत

था तथा 1981 में यह प्रतिशत बढ़कर 12.7 हो गया। 1951 से 1981 के दौरान 30 वर्षों में इसमें मात्र 3 प्रतिशत की वृद्धि हुई। भारत का 1951 के बाद औद्योगिक विकास हुआ है। औद्योगिक उत्पादन के आधार पर भारत का विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशों में विशिष्ट स्थान हो गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रारम्भिक वर्षों में भारत मे उपभोक्ता-वस्तुओं के उद्योगों की प्रधानता थी। इस्पात, सीमेन्ट, उर्वरक, भारी रसायन, भारी मशीनरी आदि उद्योगों का अभाव था। अतः योजना के प्रारम्भिक वर्षों में देर का औद्योगिक ढांचा काफी विकृत तथा असन्तुलित था। देश में पूंजीगत उद्योगों का अभाव था। योजनाकाल में आधारभूत तथा भारी उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित करने के कार्यक्रम निर्धारित किये गये। 1980-81 में देश में 96,503 फैक्ट्रियों में 77.20 लाख व्यक्ति रोजगार पर नियोजित थे।

पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान औद्योगिक नियोजन के अन्तर्गत निम्नलिखित उद्देश्यों पर जोर दिया गया।

(1) सार्वजनिक क्षेत्र का तीव्र गति से विस्तार करना जिससे यह औद्योगिक क्षेत्र में प्रभुत्व की स्थिति प्राप्त कर सके।

(2) भारी आधारभूत तथा पूंजीगत उद्योगों के विकास को प्राथमिकता देना।

(3) औद्योगिक विकास द्वारा क्षेत्रीय असमानताओं व असन्तुलन को दूर करना।

(4) औद्योगिक उत्पादन क्षमता में विस्तार करना।

(5) आर्थिक सत्ता के निजी हाथों के केन्द्रीयकरण को कम करना तथा एकाधिकार की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना।

(6) अर्थव्यवस्था में कुटीर तथा लघु उद्योगों के विकास पर विशेष ध्यान देना।

पिछले 40 वर्षों में देश में उपभोक्ता उद्योगों के अन्तर्गत चीनी, वनस्पति, सूती वस्त्र, साईकिल आदि उद्योगों का विकास हुआ है मध्यवर्ती उद्योगों में सूत, जूट का माल, मनुष्य निर्मित रेशे, तथा पैट्रोलियम पदार्थ उत्पादन करने वाले उद्योगों का विकास हुआ है। आधारभूत उद्योगों में इस्पात, सीमेन्ट, उर्वरक व विद्युत आदि उद्योगों का विकास हुआ है और पूंजीगत उद्योगों के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के भारी मशीनरी तथा इन्जीनियरिंग उद्योग एवं परिवहन उपकरण के उद्योगों की स्थापना की गई है। इन सभी उद्योगों की स्थापना से देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है।

देश में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया का सूत्रपात 1951 के बाद प्रारम्भ हुआ। इस कार्यक्रम में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में भारी मात्रा में पूंजी निवेश किया गया है। देश में औद्योगिक आधार का अनेक क्षेत्रों में विस्तार हुआ है। आधार तथा पूंजीगत उद्योगों में आत्मनिर्भरता प्राप्त की है। औद्योगिकीकरण के कारण देश में प्रबन्धकीय एवं साहस उठाने वालों के एक नये वर्ग का जन्म हुआ है।

भारत की रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने भारतीय अर्थव्यवस्था के संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि का अध्ययन किया है। संगठित क्षेत्र में वे सभी प्रतिष्ठान सम्मिलित होते हैं जिनमें सार्वजनिक क्षेत्र या निजी क्षेत्र के अधीन कृषि से भिन्न क्षेत्र में 10 या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं।

तृतीय पंचवर्षीय योजनाकाल में रोजगार में औसत वार्षिक वृद्धि दर 6.0 प्रतिशत रही। यह सार्वजनिक क्षेत्र में 5.9 प्रतिशत और निजी क्षेत्र में 6.2% थी। 1966-67 और 1967-68 के दो वर्षों में सूखे और औद्योगिक क्षेत्र के प्रतिसार के कारण रोजगार की स्थिति में गिरावट आ गई थी इसके बाद की वार्षिक योजनाओं में रोजगार की चक्रवृद्धि की दर मात्र एक प्रतिशत रही। सार्वजनिक क्षेत्र में बेरोजगारों की वार्षिक वृद्धि दर 2.6 प्रतिशत आँकी गई जबकि इसी दौरान निजी क्षेत्र में यह वृद्धि दर नकारात्मक होकर (-) 1.3 प्रतिशत तक गिर गई। वार्षिक योजनाओं के दौरान व्यापक स्तर पर निजी क्षेत्र में श्रमिको की छटनी के कारण रोजगार की वृद्धि नकारात्मक रही।

चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान रोजगार की स्थिति में सुधार हुआ और संगठित क्षेत्र में औसत वार्षिक वृद्धि की दर 3 प्रतिशत हो गई।

इस दौरान सार्वजनिक क्षेत्र में औसत वृद्धि की दर 4.4 प्रतिशत आँकी गई जबकि निजी क्षेत्र में यह मात्र 0.8 प्रतिशत थी। स्पष्ट है कि चौथी योजना काल में निजी क्षेत्र में रोजगार के बहुत कम अवसर उपलब्ध हुए। चौथी योजना के दौरान सरकार ने 14 बड़े व्यावसायिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया था इसके साथ ही कोकिंग कोल माइन्स का काम भी सरकारी क्षेत्र में ले लिया गया था तथा अनेक बीमार सूती वस्त्र की मिलों को भी सरकार ने अपने स्वामित्व में ले लिया था। निजी क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र में इन संस्थानों के परिवर्तन के कारण निजी क्षेत्र में रोजगार के अवसर कम हो गये और सार्वजनिक क्षेत्र के रोजगार में वृद्धि हुई सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में 3.3 प्रतिशत की ही वृद्धि हो पाई। 1979-81 में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में रोजगार में बहुत ही धीमी गति से वृद्धि हुई। यह वृद्धि दर 1.5 प्रतिशत हो रही जो कार्यकारी जनसंख्या की वृद्धि दर से बहुत कम थी।

तालिका 20.2

भारत मे संगठित क्षेत्र मे रोजगार की वृद्धि

वर्ष	रोजगार प्राप्त श्रमिको की सं0 (लाखों में)			प्रतिशत भाग	
	सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र	कुल	सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र
1961	70.50	50.40	120.90	58	42
1972	113.05	67.69	180.74	63	37
1980	150.78	72.37	223.15	68	32
1981	154.80	74.37	229.17	68	32
1991	190.6	76.8	267.4	71.20	28.8
2001	191.4	85.5	276.9	69.12	30.88
2011	175.5	114.2	289.7	60.58	39.42

स्रोत-रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बुलेटिन

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 1961-81 के बीच सार्वजनिक क्षैत्र में निरन्तर वृद्धि होती रही तथा कुल रोजगार में सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार 58 प्रतिशत से बढ़कर 68 प्रतिशत हो गया। इसके विपरीत निजी क्षेत्र में रोजगार की मात्रा 42 प्रतिशत से पटकर मात्र 32 प्रतिशत रह गई स्पष्ट है

कि सरकारी क्षेत्र के उद्योग संगठित क्षेत्र मे कुल रोजगार के दो-तिहाई से अधिक रोजगार के अवसर की व्यवस्था कर रहे थे। जबकि निजी क्षेत्र में एक-तिहाई से कम रोजगार कें अवसर उपलब्ध कराये गये थे। उपर्युक्त तालिका के अनुसार 1961-81 के दौरान रोजगार की वार्षिक वृद्धि की दर मे निरन्तर गिरावट आई है। सरकारी क्षेत्र में 1961-66 के बीच वार्षिक वृद्धि दर 5.9 प्रतिशत थी। 1966- 69 में यह घट कर 2.6 प्रतिशत हो गई। 1969- 74 में इसमें सुधार हुआ और यह बढ़कर 4.4 प्रतिशत उचित की गई। 1974-79 में उसमें पुन: गिरावट आई और 3.8 प्रतिशत रही। अगले दो वर्षा में इसका औसत मात्र 1.5 प्रतिशत ही रहा। इसी प्रकार निजी क्षैत्र में रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 1961.66 में यहाँ 6.2% थी यह अगले तीन वर्षों (1966-69) में नकारात्मक होकर (-) 1.3 प्रतिशत अंकित की गई। 1969.74 में इसमें सुधार हुआ जब यह बढकर 3.0 प्रतिशत हो गई। 1974-79 में इसमें पुन: गिरावट आई तथा यह 2.8 प्रतिशत तक घट गई। अगले दो वर्षो में इसमें काफी कमी रही और यह 1.5 प्रतिशत पर बनी रही। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र दोनों के कुल योग का विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि 1961-66 में कुछ रोजगार में 6.0 प्रतिशत की वृद्धि आँकी गई। 1966-69 में यह वृद्धि मात्र 1.0 प्रतिशत रही। 1969-74 में इसमें सुधार हुआ जब यह बढ़कर 3.0 प्रतिशत हो गई। 1974-79 में यह वृद्धि दर गिरकर 2.8 प्रतिशत रही और अगले दो वर्ष में (1979.81) मे इसमें पुन: गिरावट आई और यह 1.5 प्रतिशत हो अंकित की गई।

निम्न तालिका में सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र में क्षेत्रानुसार रोजगार की वृद्धि को दर्शाया गया है।

तालिका 20.3 भारत मे रोजगार की क्षेत्रानुसार वृद्धि (हजारों में)

औद्योगिक वर्गीकरण	सरकारी क्षेत्र			निजी क्षेत्र		
	रोजगार		वार्षिक	रोजगार		वार्षिक
	1961	1979	चक्रवृद्धि दर	1961	1979	चक्रवृद्धि दर
1. बागान उद्योग एवं बानिकी	180	777	8.5	670	841	1.2
2. खनन एवं खदान	129	771	10.4	550	124	-7.8
3. विनिर्माण	369	1416	7.8	3020	4433	2.1
4. निर्माण	603	1032	3.0	240	83	-5.6
5. बिजली गैस जलसम्भारण	224	634	5.9	40	34	-0.9
6. व्यापार एवं वाणिज्य	94	99	0.3	160	281	3.1
7. परिवहन एवं संचार	1724	2597	2.3	80	71	-0.6
8. सेवाये	3727	7718	4.1	280	1341	9.0
योग	7050	15045	4.3	5040	7232	2.0

उपयुक्त तालिका 20.3 से स्पष्ट है कि 1961-79 के बीच सरकारी क्षेत्र में खनन एवं खदान मे सबसे अधिक 10.4 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त हुई। इसके बाद बागान एवं वानिकी में 8.3% और निर्माण उद्योग में 7.8% की वृद्धि दर आँकी गई। परिवहन एवं संचार उद्योग में केवल 2.3% की वृद्धि दर रही। निजी क्षैत्र में सबसे अधिक वृद्धि दर सेवाओं मे 9% रही किन्तु खनन एवं खदान तथा विनिर्माण उद्योगों में रोजगार की स्थिति निराशाजनक रही क्योंकि इन उद्योगों में रोजगार की वृद्धि नकारात्मक आँकी गई।

1961-79 के दौरान संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर मात्र 3.45 प्रतिशत आँकी गई। देश में पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करने के लिए यह वृद्धि दर बहुत ही निराशजनक रहीं। अतः यह आवश्यकता महसूस की गई कि हमें हमारी राष्ट्रीय नीतियों में इस प्रकार परिवर्तन करना चाहिए कि जिससे उत्पादन की अधिक वृद्धि दर का रोजगार की अधिक वृद्धि दर से सामजस्य स्थापित किया जा सके। उत्पादन की दर बढ़ाने के लिए विनियोग दर में तेजी से वृद्धि करने के प्रबन्ध किये जावे तथा रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराने के लिए अधुनिकीकरण के नाम पर श्रम बचाव मशीनरी के प्रचलन की गति को धीमा किया जाना चाहिए।

तालिका 20.4

भारत में 1971-1987 के बीच सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में रोजगार की स्थिति

(हजार में)

उद्योग	1971	1976	1981	1985	1986	1987
सार्वजनिक क्षेत्र						
1. कृषि तथा संबधित उद्योग	281	350	463	498	526	557
2. खनिज नथा खनन	254	719	818	974	966	942
3. विनिर्माण	862	1113	1502	1761	1815	1862
4. निर्माण उद्योग	595	992	1089	1146	1181	1184
5. बिजली गैस तथा जलापूर्ति	455	536	683	760	785	791
6. व्यापार एवं व्यवसाय	367	56	117	131	131	134
7. यातायात व संवाद वहन	2238	2418	2409	2894	2929	2972
8. सेवाये	5476	7129	8103	9106	9315	9587
योग	**11,098**	**13,322**	**15,484**	**17,269**	**17,683**	**18,028**
निजी क्षेत्र						
1. कृषि तथा संबधित उद्योग	824	827	858	807	822	848
2. खनिज नथा खनन	340	132	130	113	111	91
3. विनिर्माण	3940	4158	4545	4421	4421	4409
4. निर्माण उद्योग	163	94	72	70	70	58

5. बिजली गैस तथा जलापूर्ति	46	35	35	39	39	40
6. व्यापार एवं व्यवसाय	294	287	277	277	277	277
7. यातायात व संवाद वहन	94	74	60	54	54	52
8. सेवाये	1032	1238	1418	1528	1528	1588
योग	**6734**	**6844**	**7395**	**7309**	**7309**	**7369**
सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र						
योग	**17,832**	**20,717**	**22,842**	**24,578**	**25,056**	**25,397**

स्रोत- आर्थिक सर्वेक्षण-1988-89 तथा अन्य स्रोत

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि निजी क्षेत्र की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध हुए है । सार्वजनिक क्षेत्र में विनिर्माण उद्योग में अत्यधिक रोजगार के अवसर सृजित हुए है। इसके बाद भवन निर्माण उद्योग में अधिक रोजगार सृजित हुआ है। सेवाओं में भी नये-नये रोजगार के अवसर सृजित होते रहते है।

निजी क्षेत्र में भी विनिर्माण उद्योगों में ही सर्वाधिक रोजगार की व्यवस्था रही है। इसके बाद सेवाओं में और कृषि उद्योग में रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होते रहे है। सार्वजनिक क्षेत्र में सबसे कम रोजगार के अवसर व्यापार तथा व्यवसाय में सृजित हुए जबकि निजी क्षेत्र में यातायात तथा संवादवहन के क्षेत्र में रोजगार के अवसर कम सृजित हुए।

तालिका 20.5

भारत में रोजगार के आकार के अनुसार फैक्ट्रियों मे प्रमुख लक्षण

रोजगार का आकार	**फैक्ट्रियों की संख्या**	**रोजगार (हजार में)**
0-49 श्रमिक	79,297	1,306
	(78.5)	(17.5)
50-99 श्रमिक	10,959	707
	(10.9)	(10.7)
100-199 श्रमिक	5,356	756
	(5.3)	(10.1)
200-499 श्रमिक	3,286	1,339
	(3.2)	(18.0)
500-999 श्रमिक	1,208	1,042
	(1.2)	(13.9)
1000-1999 श्रमिक	550	911
	(0.5)	(12.2)
2000-4999 श्रमिक	308	885

	(0.3)	(11.8)
5000 और अधिक श्रमिक	52	43
	(0.1)	(5.8)
योग	1,01,016	7,472
	(100.0)	(100.0)

पिछले दशक में देश में रोजगार की स्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ है। छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त में लक्ष्य से अधिक रोजगार के अवसर सृजित हुए है। सातवी योजना में भी 4 करोड़ से अधिक रोजगार के अवसर सृजित होने का अनुमान लगाया गया है। परन्तु पिछले वर्षों की बेरोजगारों की संख्या को नई श्रम शक्ति में जोड़ने पर सातवी योजना की समाप्ति पर 82 लाख से अधिक व्यक्ति बेरोजगारी की स्थिति में रहेंगे।

रोजगार के बारे में वर्तमान स्थिति

श्री टी0 एस0 पपोला के अनुमान के अनुसार 1972-73 से कुल रोजगार की विकास दर में गिरावट आ रही है। छठी तथा सातवीं योजना के दौरान सकल उत्पादन में वृद्धि होने के उपरान्त भी देश में रोजगार की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर से कम रही है। कृषि क्षेत्र में रोजगार में गिरावट आई है और ग्रामीण क्षेत्र में ग्रामीण व्यक्तियों की अन्य उद्योग व्यवसायों में काम न मिलने के कारण बेरोजगारी तथा अल्प रोजगार की मात्रा में वृद्धि हुई है। इस स्थिति में श्रमिको को भवन निर्माण तथा खनन उद्योग में रोजगार के अवसर बदलने से कुछ राहत मिली है। 1983 से 1987-88 के दौरान देश में रोजगार में मात्र 1.55 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई है जबकि इस दौरान जनसंख्या 2.1 प्रतिशत बढ़ा है और कार्यशील जनसंख्या में इससे भी अधिक वृद्धि हुई है भारत में 1972 से 1988 तक की अवधि में रोजगार की वृद्धि की दर निम्न प्रकार थी।

तालिका 20.6

भारत मे प्रमुख क्षेत्रों में रोजगार वृद्धि दर

क्षेत्र	**1972 -73 से 1977-78**	**1977-78 से 1983**	**1983 से 1987-88**
कृषि	2.32	1.20	0.65
खनिज एवं खनन	4.68	5.58	6.16
विनिर्माण	5.10	3.75	2.10
बिजली गैस तथा जलापूर्ति	12.23	5.07	4.64
यातायात तथा संवाद वहन	4.85	6.35	2.67
अन्य सेवाए	3.67	4.69	2.50
योग	**2.82**	**2.22**	**1.55**

स्रोत-इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली-2 फरवरी 1991

80 के दशक मे रोजगार की स्थिति में एक विषय समस्या यह उत्पन्न हुई कि संगठित औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर बहुत ही कम रही है। इस दशक में बिजली गैस जलापूर्ति और अन्य सेवाओं को छोड़कर संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर से कम रही है। इस दशक में भूमिहीन कृषको की संख्या में भी अपेक्षाकृत वृद्धि हुई हए। इस कारण ग्रामीण क्षेत्र में खुली बेरोजगारी बढ़ी है। शहरी क्षेत्र में 1973 में खुली बेरोजगारी 2.77 प्रतिशत थी। 1987-88 में यह बढ़कर 3.77 प्रतिशत हो गई।

देश में 1990-95 के दौरान में 3 करोड़ 70 लाख नये व्यक्तियों के श्रम शक्ति में जुड़ने का अनुमान है। 1995-2000 के दौरान 4 करोड़ 10 लाख अतिरिक्त व्यक्ति श्रम' शक्ति में जुड़ जायेंगे। यदि हम 1995 तक सभी रोजगार चाहने वालों को काम देने का लक्ष्य रखते है तो आठवीं योजना में 6 करोड़ 50 लाख नये रोजगार के अवसर सृजित करने थे। सन् 2000 तक पूर्ण रोजगार देने का लक्ष्य निश्चित होता है तो 10 करोड़ 60 लाख नये रोजगार के अवसर उत्पन्न करने पड़ेंगे।

रोजगार के इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हमें रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर को आठवी योजना में 4.0 प्रतिशत प्रतिवर्ष होनी चाहिए थी। परन्तु 1983- 1987 के बीच हमारे यहां रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर मात्र 1.55 प्रतिशत ही रही है। इसलिए हमें 2000 तक पूर्ण रोजगार का ल६य निर्धारित करते हुए 1990-2000 में रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 3 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अधिक निश्चित करने के बावजूद बेरोजगारी की समस्या समाप्त नहीं होगी एवं भारतवर्ष बेरोजगारों की एक बड़ी सेना के साथ -इक्कसवीं शताब्दी में प्रवेश करेगा।

20.8 सारांश

बेरोजगारी का स्वरूप तथा आकार

1. बेरोजगारी का अर्थ-बेरोजगारी का स्वरूप संचालक बेरोजगारी -बेरोजगारी के प्रकार –प्रच्छन्न बेरोजगारी-खुली बेरोजगारी-शिक्षित बेरोजगारी-ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी -विकसित तथा अविकसित देशों में बेरोजगारी का स्वरूप-बेरोजगारी के कारण-भारत में बेरोजगारी के अनुमान
2. भारत सरकार की रोजगार संबंधी नीतिबेरोजगारी दूर करने के सुझाव -भारत में शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी
3. भारत में औद्योगिकीकरण एवं रोजगार-भारत में संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि-भारत में रोजगार की क्षेत्रानुसार वृद्धि-भारत में 1971 -87 के बीच सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में रोजगार की स्थिति-भारत में रोजगार के आकार के अनुसार फैक्ट्रियों में प्रमुख लक्षण-रोजगार के बारे में वर्तमान स्थिति।

20.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भारतीय अर्थव्यवस्था : ए.एन.अग्रवाल
2. भारतीय अर्थशास्त्र : लक्ष्मी नारायण नाथूरामका

3. आर्थिक विकास के सिद्धान्त एवं भारत में आर्थिक नियोजन : प्रो. जी.एल.गुप्ता
4. भारतीय अर्थव्यवस्था : रुद्रदत्त एवं सुंदरम्
5. भारतीय अर्थव्यवस्था : डा0 मामोरिया एवं जैन
6. Indian Economy : S.K. Ray
7. Indian Economy Problems of Development and Planning : A.N. Agarwal
8. India – Economic Information Year Book 1989-90 : A.N. Agarwal, H.O.Verma and R.C. Gupta

20.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में बेरोजगारी की समस्या एवं समाधान पर एक विश्लेषणात्मक लेख लिखिये।
   संकेतः इसमें बेरोजगारी की समस्या तथा इसे दूर करने के उपाय का विस्तार से वर्णन करना है।
2. भारत में बेरोजगारी के कारणों पर प्रकाश डालिये। देश में इस समस्या के हल के लिए क्या प्रयास किये जा रहे है? इसको दूर करने के लिए आप क्या उपाय बतायेंगे?
   संकेतः इसमें बेरोजगारी के कारण लिखने है तथा इसे दूर करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में तथा विशेष रूप से 1970 के बाद के प्रयासों का उल्लेख करना है।
3. भारत में ग्रामीण बेरोजगारी के स्वरूप पर प्रकाश डालिये। इस समस्या के समाधान के लिए आप क्या उपाय सुझायेंगे?
   संकेत.इसमें ग्रामीण बेरोजगारी के कारण तथा ग्रामीण बेरोजगारी के सरकारी प्रयास देने है।
4. भारत में शिक्षित बेरोजगारी की वर्तमान स्थिति का उल्लेख कीजिये। आयोजना काल में बेरोजगारी बढने के कारणों का विश्लेषण कीजिये।
   संकेतः इसमें शिक्षित बेरोजगारी की स्थिति के बारे में उल्लेख करना है। योजनाकाल में जिन कारणों से बेरोजगारी बढ़ी है उन कारणों का उल्लेख करना है।

इकाई 21

कृषि भूमि सम्बन्ध एवं भूमि सुधार
(Agrarian Relation and Land Reforms)

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 कृषि भूमि सम्बन्ध
- 21.2.1 कृषि भूमि सम्बन्ध से तात्पर्य
- 21.2.2 कृषि भूमि सम्बन्ध के प्रकार
- 21.2.3 कृषि भूमि सम्बन्धों की समीक्षा के लिए नियुक्त कर्मचारी दल
- 21.2.4 कृषि भूमि सम्बन्धों में समय के साथ हुए परिवर्तन

21.3 भारत में भूमि सुधार कार्यक्रम
- 21.3.1 भूमि सुधार कार्यक्रम से तात्पर्य
- 21.3.2 भूमि सुधार कार्यक्रमों के उद्देश्य
- 21.3.3 भूमि सुधार कार्यक्रम
  - ——मध्यस्थों की समाप्ति
  - ——भू-धारण पद्धति में सुधार
  - ——जोत की उच्चतम सीमा नियत करना
  - ——कृषि भूमि का पुनर्गठन/जोत चकबन्दी करना
  - ——सहकारी कृषि का गठन
- 21.3.4 भूमि सुधार कानूनों के क्रियान्वयन से प्राप्त लाभ
- 21.3.5 भूमि सुधार कार्यक्रमों की असंतोषजनक प्रगति के कारण

21.4 सारांश
21.5 शब्दावली
21.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं पाठ्य सामग्री

21.0 उद्देश्य

भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास विषय के इस तृतीय खण्ड की प्रस्तुत इकाई में कृषि भूमि सम्बन्ध एवं भारत में हुए भूमि सुधार कार्यक्रमों का विवेचन किया जा रहा है। प्रस्तुत अध्ययन के पश्चात् आप निम्न ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे :-

* कृषि भूमि सम्बन्धों को परिभाषित करते हुए उन्हें विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकेंगे।
* कृषि भूमि सम्बन्धों में हुए परिवर्तन एवं उनसे कृषि उत्पादन पर होने वाले प्रभावों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
* भूमि सुधार कार्यक्रम से तात्पर्य एवं विभिन्न भूमि सुधार कार्यक्रमों के कारण कृषको को प्राप्त लाभ का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
* भूमि सुधार कार्यक्रमों को अपनाने में आने वाली कठिनाईयों का ज्ञान प्राप्त करके उनके सुधार हेतु उपाय सुझा वित्तकर सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाइयों में भारत में व्याप्त गरीबी एवं आय असमानता तथा कृषि श्रमिको में व्याप्त बेरोजगारी समस्या उसकी प्रवृत्ति, बेरोजगारी का आकलन व इस समस्या को हल करने के लिए अपनाए गए उपायों का अध्ययन आप कर चुके है। गरीबी एवं बेरोजगारी दोनों ही देश की प्रमुख आर्थिक समस्याएं है जिनके होने मे देश में विकास की गति में तीव्रता नहीं आ पाई है। प्रस्तुत इकाई में कृषि भूमि सम्बन्धों एंव भूमि सुधार कार्यक्रमों का विवेचन किया जा रहा है जो उपर्युक्त दोनों ही समस्याओं को उत्पन्न करने में सहायक रहे है।

कृषि भूमि सम्बन्ध तथा भूमि सुधार कार्यक्रमों एवं कृषि उत्पादन में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। उचित कृषि भूमि सम्बन्ध के होने तथा भूमि सुधार कार्यक्रम अपनाने पर कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है। कृषको को भूमि पर स्थायी स्वामित्व अधिकार प्राप्त होने, भूमि के लगान की उचित राशि निर्धारित करने तथा भूमि पर स्थायी सुधार करने के अधिकार प्राप्त होने पर उन्हें उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा मिलती है। इसके विपरीत इनके अभाव में कृषको में उत्पादन वृद्धि की प्रेरणा का ह्रास होता है। प्रस्तुत इकाई में उन सभी कृषि भूमि संबंधों एवं भूमि सुधार के लिए सरकार द्वारा अपनाए गए विभिन्न कार्यक्रमों जैसे मध्यस्थों की समाप्ति, भू-धारण पद्धति में सुधार, जोत की उच्चतम सीमा नियत करना, जोत चकबन्दी आदि का अध्ययन किया जायेगा। पिछले दशक से इन क्षेत्रों में किए गए प्रयासों के कारण उत्पादन भूमि के आधारधारिक संरचना में परिवर्तन आया है तथा कृषि क्षेत्र में उत्पादन में वृद्धि हुई है। फलस्वरूप कृषको को भूमि की प्रति इकाई क्षेत्र से लाभ की राशि भी अधिक प्राप्त होने लग गई है।

21.2 कृषि सम्बन्ध (Agrarian Relations)

कृषि भूमि उत्पादन का प्रमुख साधन है। पूर्व काल से ही मनुष्य एवं भूमि में प्रबल संबंध विद्यमान है। मनुष्य भूमि से विभिन्न कृषि वस्तुओं का उत्पादन करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता आया है। भूमि की पूर्ति देश में सीमित होने के कारण प्रारंभ से ही इसके स्वामित्व संबंधी प्रश्न उठे है। भूमि पर स्वामित्व होने से मनुष्य को अपनी खुशहाली एवं सुरक्षितता, सुनिश्चित एवं अन्तर्निष्ठ होना लगता है। भूमि पर स्वामित्व होने वाले कृषक, अपनी भूमि पर इच्छानुसार उत्पादों का उत्पादन करके आय एवं संतोष प्राप्त करते है।प्राप्त आय से कृषक अपना जीवन निर्वाह उचित स्तर पर करते है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषि भूमि संबंधों की महत्ता अधिक है, क्योंकि कृषि क्षेत्र राष्ट्रीय आय का एक बहुत बड़ा अंश प्रदान करता है। वर्ष 1950 में कृषि क्षेत्र, राष्ट्रीय कुल आय का 59 प्रतिशत अंश प्रदान करना था, लेकिन अन्य क्षेत्रों प्रमुखतया औद्योगिक क्षेत्र के विकास से कृषि क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में अंशदान कम होकर वर्तमान में भी 31 प्रतिशत अंश प्रदान करता है।

भार में कृषि भूमि, कृषक संपत्ति का एक प्रमुख अवयव है। कृषको के पास अन्य सम्पत्ति का अभाव होता है। कृषि भूमि कृषको में असमान रूप से वितरित है। कृषि भूमि एक ओर ग्रामीण क्षेत्र में कृषको का रोजगार उपलब्धि एवं जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन है लेकिन दूसरी ओर इसका असमान वितरण ही देश के ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त गरीबी एवं आय असमानता का प्रमुख कारण भी हें। ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक वैमनस्यता में हुई वृद्धि का प्रमुख कारण भी कृषि भूमि संबंध हीहै। अतः इस खण्ड में कृषि भूमि संबंधों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

21.2.1 कृषि भूमि संबंध के तात्पर्य

कृषि भूमि संबंध उन मनुष्यों में जो भूमि के स्वामी एवं भूमि पर कार्य करके भूमि से प्राप्त उत्पादन का आपस मे विनिमय करते है, उनके आपसी संबंधों के घोतक होते है। भूमि के स्वामी कृषि भूमि एवं कृषि यन्त्रों के स्वामी होते है तथा दूसरी ओर अन्य मनुष्य जो उस भूमि के स्वामी नहीं होते है वे भू स्वामियों से प्राप्त भूमि पर कृषि करके उत्पादित उत्पादन की मात्रा को आपस में विनिमय करते है। विनियम विभिन्न कृषको एवं भू-स्वामियों में विभिन्न दर से होता है। इस प्रकार भू-स्वामियों एवं भूमि पर कृषित करने वाले दोनों वर्गो में व्याप्त संबंध को कृषि भूमि संबंध से संबोधित किया जाता है।'

भू-स्वामियों एवं कृषको में पाये जाने वाले इन संबंधों में बहुत विभिन्नता पाई जाती है। साथ ही उनमें पाये जाने वाले संबंधों में निरंतर परिवर्तन हाते रहते है। यह परीवर्तन धीमी गति से सूक्ष्म स्तर पर होते है, जिसके कारण आए हुए परिवर्तन पुरानी विधि में पूर्ण रूप से सम्मिलित या

संलग्न हो जाते है और उनका आभास साधारणतया नहीं होता है[3] अतः कृषि भूमि संबंधों का विस्तृत अध्ययन करना आवश्यक है।

21.2.2 कृषि भूमि सम्बन्ध के प्रकार

कृषि भूमि संबंध प्रमुखतया तीन प्रकार के होते है : -

1. पूर्ण समान्तवादी सम्बन्ध (Pure Feudal Relations)

इस प्रकार के संबंधों में भूमि पर स्वामित्व पूर्णतया सामन्तों का होता है। भूमि पर कृषि करने वाले कृषक भू-स्वामियों अर्थात् सामन्तों की इच्छा पर पूर्णतया आश्रित होते है।

पूर्ण सामन्तवादी प्रथा को जागीरदारी प्रथा भी कहते है। इस प्रथा में गांव के व्यक्ति सामन्तों से भूमि प्राप्त करके कृषि करते थे और भूमि से प्राप्त उत्पादों को आपस में समझौते के अनुसार (Crop share basis) भू-स्वामी एवं कृषक बांटते थे। भूमि पर कृषि करने वाले कृषको को आसामी कृषक (tenant farmer) कहते है। इन आसामी कृषको को चरागाह भूमि के उपयोग के लिए भी भू-स्वामी को नकद अथवा प्राप्त उत्पाद के रूप में कर देना होता था। साथ ही आसामी कृषको को सामान्तों के यहां विवाह अथवा अन्य समारोह पर भेंट या उपहार भी देनी होती थी। सामान्त वर्ग कृषको से भूमि के उपयोग के उपलक्ष में उत्पादित फसल का 25 से 50 प्रतिशत भाग लगान के रूप में ले लेते थे और आसामी कृषको के पास शेष बचत बहुत कम होता थी। इस प्रकार सामन्तवादी प्रथा में कृषको का शोषण होता था। इस प्रकार के संबंध ही मनुष्य एवं भूमि में इस प्रथा की प्रमुख विशेषता होती थी। कृषको से प्राप्त उत्पाद की मात्रा को सामन्त विक्रय करते अपना जीवन निर्वाह करते थे। यही उत्पाद बाजार में अधिशेष उत्पादन के रूप में कहलाता है। पूर्ण सामान्तवादी प्रथा में व्याप्त उपरोक्त दोषों के कारण, यह संबंध निरंतर विच्छेदन एवं विघटन की ओर अग्रसर हुए और वर्तमान में पूर्ण रूप से समाप्त हो चुके है।

---

[3] Agrarian relations are the mutual relations among men as a class who exchange their activities in the process of production and exchange . In the sphere of production who owns land and agriculture implements and in the sphere of distribution and exchange the objective of production , i.e.,production for use value or for exchange value determine the type of agrarian relations. However, it is very difficult to identify the pure nature of agrarian relations because in this sphere relations of production change slowly almost imperceptibly, coalescing and evermerging with old forms".

Harihar Bhakta ; Agrarian Relations and Development (Regional Study of North-West Bihar), Indian Journal of Agricultural Economics, Vol.XXXVI (4) October-December 1981,p.166.

2. पूर्ण पूँजीवादी सम्बन्ध (Pure Capitalist Relation)

इस प्रकार के संबंधों में भूमि पर स्वामित्व पूँजीपतियों अर्थात् उन व्यक्तियों का होता है जो स्वयं उत्पादन में भागीदार नहीं होते है। भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उत्पादन की उन्नत विधियों को अपनाया जाता है। पूँजीपति भूमि से अधिक उत्पादन या आय प्राप्त के लिए उन फसलों का चुनाव करता हैं जिनकी बाजार में सर्वाधिक मांग होती है तथा जिनके लेने से लाभ अधिक प्राप्त होता है। काश्तकार भूमि पर कृषि करने के लिए पूर्णतया बाजार की आवश्यकता वाले उत्पादों के उत्पादन एवं उन्नत कृषि विधि के अपनाने के लिए भू-स्वामी की इच्छा पर आश्रित होता है।

पूंजीवादी संबंध में निम्न गुण विद्यमान होते है :-

(अ) उत्पादन का प्रमुख साधन भूमि पर स्वामित्व उन व्यक्तियों का होता है जो उत्पादन में स्वयं भागीदार नहीं होते है।

(ब) उत्पादन का प्रमुख उद्देश्य लाभ प्राप्त करना होता है जिसके कारण भूमि पर उत्पादन करने के लिए फसलों का चुनाव बाजार की मांग के अनुसार किया जाता है।

(स) काश्तकार खेती की दृष्टि से पूँजीपति की इच्छा पर निर्भर रहता है तथा स्वयं निर्णय नहीं ले सकता है।

(द) पूंजीपति भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए नई तकनीकी विधियों के अपनाने के लिए निरंतर प्रयास करता है।

पूर्ण पूँजीवादी संबंध निरंतर अग्रसर हो रहे है। समाज के समृद्ध व्यक्ति अधिक कीमत पर भूमि क्रय कर लेते है और उस पर कृषि करवाने के लिए श्रमिको की सहायता लेते है। कृषि क्षेत्र में कर के नहीं होने से भी पूँजीवादी विधि का प्रसार हुआ है। वर्तमान में देश के प्रत्येक क्षेत्र में बड़े-बड़े कृषि फार्म पूँजीपतियों ने स्थापित कर लिये है जहाँ वाणिज्यिक फसलों का बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है।

3. अर्द्ध सामन्तवादी संबंध (Semi-Feudal Relations)

इस प्रकार के संबंध में भूमि या तो काश्तकार के अधिकार में अथवा उनके सीधे स्वामित्व में होती है। उत्पादक कृषको को अपनी आवश्यकता के अनुसार विभिन्न फसलों का उत्पादन करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। यह संबंध पूर्ण सामन्तवादी प्रथा से भिन्न है इसमें कृषक भू-खण्ड का कृषि करने के दृष्टिकोण से स्वामी होता है।

कृषि भूमि संबधों के ऐतिहासिक अध्ययन से स्पष्ट है कि पूर्ण सामान्तवादी संबंध देश में प्राय विच्छेदित हो चुके है तथा पूर्ण पूंजीवादी संबंध निरंतर अग्रसर हो रहे है। वर्तमान में भूमि संबंध इन दोनों के मिश्रित रूप में विद्यमान है। स्वतन्त्रता के पश्चात सामन्तवादी प्रथा की समाप्ति पर विशेष बल दिया गया था। इसका प्रमुख कारण सामन्तों द्वारा कृषको का शोषण करना, बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भूमि की आवश्यकता एवं उस पर स्वामित्व प्राप्त करने की' इच्छा का होना था। ऐसा महसूस किया गया भूमि पर स्वामित्व प्राप्त कृषक भूमि से अधिक मात्रा में फसलों का उत्पादन कर सकते हैं। सामाजिक दृष्टिकोण से भी सामन्तवादी 'अर्द्ध सामन्तवादी प्रथा की समाप्ति अनिवार्य

हो गई थी, क्योंकि इसके होने से समाज मे व्याप्त असमानता के कारण आपसी वैमनस्यता में वृद्धि हुई है। एक तरफ तो समाज के कुछ ही व्यक्तियों के पास भूमि का अधिकांश भाग केन्द्रित था, जो उत्पादन वृद्धि में किसी भी प्रकार प्रत्यक्ष रूप में भूमिका नहीं निभाते है बल्कि भूमि पर पराक्षयी के रूप में होते है। दूसरी तरफ समाज का एक बहुत बड़ा भाग जो उत्पादन वृद्धि करने में प्रत्यक्ष भूमिका निभाते है उन्हे भूमि पर किसी प्रकार का स्वामित्व प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार इन दोनो वर्गों में बढ़ती हुई सामाजिक असमानता को समाप्ति के लिए सामन्तवादी प्रथा का अन्त होना आवश्यक हो गया था।

अर्द्ध सामन्तवादी प्रथा के अंतर्गत कृषको के भूमि से संस्थागत सम्बन्ध:

भूमि पर कृषि करने वाले कृषको के स्वामित्व की दृष्टि से निम्न तीन प्रकार के संस्थागत संबंध पाये जातेहै:

1. भू-स्वामी कृषक (Owner Cultivator)

यह वे कृषक होते है जो भूमि के स्वयं ही स्वामी होते है और स्वयं ही अपनी भूमि को कृषित करते है। भू-स्वामी कृषित भूमि की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए भूमि पर विभिन्न रूप में जैसे कुंआ बनाने, भूमि को समतल करने, बाढ़ लगाने आदि कार्यों पर पूँजी निवेश करते है। इस विधि में पूँजी के निवेश करने से प्राप्त अतिरिक्त उत्पादन की मात्रा अथव आय से भू-स्वामी कृषको को ही शत प्रतिशत लाभ होता है।

2. पट्टे पर भूमि प्राप्त भू-धारक कृषक (Lease Holder)

इस विधि में भू-धारक कृषक भू-स्वामियों से एक निश्चित समयावधि के लिए प्राप्त भूमि पर कृषि करते है। भू-धारक कृषक कृषि के भूमि के स्वामी नहीं होते है। भू-धारक भूमि का लगान भू-स्वामी को उनके मध्य पूर्व में निर्धारित शर्तो के अनुसार भुगतान करता है।

भू-स्वामी, भू-धारक को भूमि एक निश्चित समय जैसे एक वर्ष या दो वर्ष के लिए कृषि करने के लिए देता है और समय की समाप्ति पर भू-धारक से भूमि वापिस लेकर दूसरे काश्तकार को कृषि करने के लिए देता है। अतः इस विधि में भू-धारक कृषक प्राप्त भूमि पर स्थाई सुधार के कार्य करने जैसे कुआं बनाना, भूमि को समतल करना, पक्का घोरा बनाना आदि पर पूँजी निवेश नहीं करता है। ऐसी स्थिति में भूमि का सुधार नहीं होता है और भूमि से आय की वृद्धि नहीं हो पाती है। कृषि करने के लिए प्राप्त भूमि के समय अनिश्चितता की स्थिति में भू-धारक कृषक भूमि में गोबर की खाद भी कम से कम प्रयोग करता है क्योंकि भू-स्वामी द्वारा भू-धारक कृषक को भूमि से पृथक किये जाने की स्थिति में उसके द्वारा किये गये पूँजी निवेश का पूर्ण लाभ उसे प्राप्त नहीं होता है।

3. बटाई पर भूमि प्राप्त भू-धारक कृषक (Share Cropper)

इस विधि में भी भू-धारक कृषक भूमि का स्वामी नहीं होता है बल्कि भू-स्वामी से एक निश्चित समयावधि तक कृषि करने के लिए भूमि प्राप्त करता है। इस विधि में भू-धारक कृषक, भूमि का लगान भू-स्वामी को निश्चित राशि में नहीं देकर प्राप्त उत्पादन की मात्रा का एक भाग के रूप में देता है। बटाई विधि में भू-धारक एवं भू-स्वामी पूर्व में हुए समझौते के अनुसार उत्पादन लागत की राशि एवं भूमि से प्राप्त विभिन्न उत्पादों की उत्पादन मात्रा को आपस में विभाजित करते है। अतः

उपरोक्त दोनों विधियों-पट्टे पर प्राप्त भूमि एवं बटाई पर प्राप्त भूमि में लगान के भुगतान विधि में ही अन्तर होता है लेकिन अन्य सभी बातों में दोनों विधियाँ समान है। अतः कुछ विद्वानों ने कृषको को दो ही श्रेणी में विभक्त किया है:

1. भू-स्वामी कृषक (Owner cultivators)
2. आसामी कृषक (Tenant cultivators)

आसामी कृषक की श्रेणी में पट्टे पर भूमि प्राप्त करने वाले एवं बटाई पर भूमि प्राप्त करने वाले दोनों ही श्रेणी के कृषक सम्मिलित होते है। बटाई पर भूमि देकर की जाने वाली कृषि में लगान भुगतान की निम्न दो विधियाँ होती है।

(अ) उत्पाद की मात्रा का 50: 50 के अनुपात में विभाजन करना

इस विधि में प्रमुख कृषि निविष्टों-उत्पादन बीज, उर्वरक, कीटनाशक दवाईयां तथा सिंचाई के लिए प्रयोगित बिजली अथवा डीजल तेल के भुगतान की राशि का भू-स्वामी एवं आसामी कृषक के मध्य समान रूप से विभाजन किया जाता है तथा मानव व बैल श्रम की लागत पूर्णतया आसामी कृषक को वहन करनी होती है। भूमि का राजस्व भू-स्वामी को वहन करना होता है। उपयोगित निविष्टों के कारण भूमि से प्राप्त सभी उत्पादों एवं उनके उपोत्पाद की मात्रा का 50-50 के अनुपात में भू-स्वामी एवं आसामी कृषक में विभाजन कर लिया जाता है।

(ब) स्थिर मात्रा में भूमि का लगान भुगतान करना

इस विधि में सभी कृषि लागत (भू-राजस्व के अतिरिक्त) आसामी कृषक को वहन करनी होती है। भू-राजस्व राशि का भुगतान भू-स्वामी द्वारा सरकार को किया जाता है। तथा भूमिका लगान कृषक एवं भू-स्वामी में आपसी समझौते के अनुसार एक निश्चित राशि के रूप में अथवा उत्पादित फसल के रूप में भू-स्वामी को देना होता है। लगान की राशि उत्पादन की मात्रा से प्रभावितनहीं होती है अर्थात् उत्पादन अधिक, कम एंव नहीं प्राप्त होने की सभी स्थितियों में आसामी कृषको द्वारा समान मात्रा में भू-स्वामी को देना होता है।

उपर्युक्त दोनों ही विधियों में भूमि भू-स्वामी द्वारा कृषको को बटाई पर दी जाती है।भूमि के बटाई पर देने की यह प्रथा भूमि की उत्पादकता में वृद्धि, जनसंख्या में वृद्धि एवं काश्तकारी कानूनों की अड़चन के कारण धीरे-धीरे कम होती जा रही है। वर्तमान में भूमि को बटाई पर देने की यह विधि अनेक स्थानों पर जैसे अपाहिज व्यक्तियों के स्वामित्व की भूमि, विधवाओं की भूमि, सेना में कार्यरत सेनिको के स्वामित्व की भूमि में साधारणतया पाई जाती है। पर्याप्त सिंचाई सुविधा एवं ट्रैक्टर सुविधा वाले दीर्घ जोत कृषक भी लघु पड़ौसी कृषको की भूमि को बटाई पर ले जाने में सक्षम होते हैं। लघु कृषक अपने पास उत्पादन साधनों की कमी के कारण अपनी भूमि को दीर्घ कृषको को देते है। इस प्रकार इस विधि से दीर्घ एवं लघु जोत दोनों ही कृषको को लाभ प्राप्त होता है।

इस प्रकार की बटाई विधि के होने से देश में अनुपस्थित भू-स्वामियों की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। ऐसा पाया गया है कि कृषि निविष्टों एवं मानव श्रम का उपयोग स्वयं के स्वामित्व वाली भूमि पर बटाई पर ली गई भूमि की अपेक्षा प्रति इकाई भूमि के क्षेत्र में अधिक होता है। जिससे कृषको को आय भी अधिक प्राप्त होती है और देश में खाद्यानों का उत्पादन भी अधिक होता है।

21.2.3 कृषि भूमि सम्बन्धों की समीक्षा के लिए नियुक्त कार्यकारी दल, 1972 (Task Force on Agrarian Relations)

भारत सरकार के योजना आयोग ने फरवरी 1972 में कृषि भुमि संबंधों की समीक्षा के लिए एक कार्यकारी दल की नियुक्ति श्री पी. एस. अप्पू की अध्यक्षता में की थी जिसका मुख्य उद्देश्य भूमि सुधार के अंतर्गत अपनाये गये उपायो का आलोचनात्मक समीक्षा करके वृतान्त प्रस्तुत करना था। कार्यकारी दल ने महसूस किया कि भू-धारण प्रथा में मध्यस्थों के उन्मूलन संबंधी पारित कानूनों की अनुपालना तो वृहत स्तर पर दक्षता से हुई है। लेकिन भू-धारणा सुधार एवं जोत को उच्चतम सीमा कानून अपने निर्धारित नीति से बहुत दूर हें।कार्यकारी दल ने अपने वृतान्त में इसके निम्न कारण दिये है।

1. पारित कानूनों को लागू करने में राजनैतिक इच्छा का नहीं होना !
2. लाभान्वित होने वाले कृषक वर्ग द्वारा पारित कानूनों की अनुपालना के लिए सरकार पर आवश्यक दबाव नहीं डालना। सागाजिक एवं आर्थिक असमर्थता के कारण अधिकांश कृषक ऐसा नहीं कर पाते हैं।
3. सरकारी अधिकारियों द्वारा भूमि सुधार कार्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं की उपेक्षा करना क्योंकि उन्हें लगान वसूली एत अन्य कार्य भी प्राथमिकता पर करने होने है।
4. घोषित नीति को कार्यान्वित करने में कानूनन अड़चनों का होना एवं प्रभावितसमृद्ध वर्ग द्वारा न्यायालय से इनके कार्यान्वित में देरी करने के लिए स्थगन आदेश प्राप्त कर लेना।
5. सरकार द्वारा भूमि युधार कार्यक्रमों को क्रियान्वयन करने के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान नहीं करना।
6. भूमि संबंधित अभिलेख सही एवं पूर्ण उपलब्धनहीं होना।
7. केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार तथा विभिन्न सरकारों में भूमि कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए सही तालमेल का नहीं होना, जिससे इनकी प्रगति विभिन्न राज्यों में समान नहीं है।

   कार्यकारी दल ने अपने वृतान्त में उपरोक्त कमियों को दूर करने के लिए सुझाव दिए

   (I). भूमि सुधार कानून में व्याप्त कमियों को दूर करना।

   (II). भू-सीमा के निर्धारण कें लिए नया कानून बनाना एवं उससे प्राप्त अधिशेष भूमि को भूमिहीन श्रमिको में वितरित करना।

   (III). भूमि सुधार कार्यक्रमों के कार्यान्वित करने के लिए एक पृथक व्यवस्था स्थापित करना एवं उसे आवश्यक अधिकार कानूनन प्रदान करना।

   (IV). भूमि सुधारों को पूर्णरूप से कार्यान्वित करने एवं राजनैतिक प्रभावों को करने के लिए कृषको में आवश्यक चेतना जागृत करना।

21.2.4 कृषि भूमि सम्बन्धों मे समय के साथ हुए परिवर्तन

वर्तमान में विद्यमान कृषि भूमि सम्बन्धों की संरचना में समय के साथ अनेक परिवर्तन हुए है । यह परिवर्तन भूमि सुधार कार्यक्रमों के अपनाने के फलस्वरूप आये है । कृषि भूमि सम्बन्धों में समय के साथ हुए प्रमुख परिवर्तन निमांकित है.

1. लघु एवं सीमान्त कृषको की संख्या एवं अनुपात में वृद्धि (Increase in number and proportion of small and marginal farmers)

भूमिसुधार कार्यक्रमों के लागू होने के फलस्वरूप देश में लघु कृषको (एक से दो हैक्टर भूमि का क्षेत्र) एवं सीमान्त कृषको (एक हैक्टर से कम भूमि का क्षेत्र) की संख्या एवं उनके पास उपलब्ध भूमि के क्षेत्र में निरन्तर वृद्धि हुई है । दूसरी ओर दीर्घ जोत कृषको (10 हैक्टर से अधिक भूमि का क्षेत्र) की प्रतिशतता एवं उसके पास उपलब्ध भूमि के क्षेत्रफल में कमी हुई है । तालिका 21.1 में पिछली तीन कृषि जनगणना के आंकड़े प्रदर्शित किये गये है जो उपरोक्त तथ्यों- की पुष्टि करते है ।

तालिका 21.1 विभिन्न जोत कृषको की संख्या एवं उनकेपास उपलब्ध भूमि का क्षेत्रफल

कृषक श्रेणी संख्या (मिलियन में) उपलब्ध जोत क्षेत्रफल

कृषक श्रेणी	**संख्या (मिलियन मे)**			**उपलब्ध जोत (मिलियन हैक्टेयर में)**		
	1970-71	**1990-91**	**2010-11**	**1970-71**	**1990-91**	**2010-11**
सीमान्त कृषक (1 हेक्टर से कम)	36(51 %)	62(58 %)	67.1 %	15(9%)	25(15%)	22.5%
लघु कृषक (1-4 हेक्टर)	24 (34%)	34(33 %)	27.9	49 (30%)	67(41%)	45.7
मध्यम जोत कृषक (4-10 हेक्टर)	8 (11%)	8(7%)	4.2	48 (30%)	45(27%)	21.2
दीर्घ जोत कृषक (10 हैक्टर व ऊपर)	11 (4%)	2(1%)	0.7	50(31%)	29(27%)	10.6
कुल	**71 (100 %)**	**106 (100%)**	**100**	**162(100%)**	**166(100%)**	**100**

तालिका 21.1 से स्पष्ट है कि 1990-91 में लघु एवं सीमान्त जोत कृषक कुल कृषको की संख्या का 91 प्रतिशत होते हुए भी उनके पास कुल जोत क्षेत्रफल का 56 प्रतिशत क्षेत्रफल उपलब्ध था । जबकि दीर्घजोत कृषको की संख्या मात्र 1 प्रतिशत होने पर भी उनके पास कुल जोत क्षेत्रफल

का 17 प्रतिशत भाग है। अतः स्पष्ट है कि विभिन्न कृषक वर्गो के पास भूमि का वितरण समान मात्रा में ना होकर दीर्घ जोत कृषको के पास अधिक है । उपरोक्त काल में दीर्घ जोत कृषको के पास उपलब्ध क्षेत्र में कमी आई है लेकिन अभी भी भूमि का वितरण बहुत असमान है जिसमें सुधार लाना आवश्यक है।

2. भूमिहीन परिवारों की प्रतिशतता में कमी (Decline in the proportion of landless households)

भूमि सुधार कार्यक्रमों विशेषकर जोत की उच्चतम सीमा नीति कें क्रियान्वयन से देश में भूमिहीन कृषक परिवारों की प्रतिशतता में कमी आई है। देश में जोत की उच्चतम सीमा कानून के क्रियान्वयन से प्राप्त अधिशेष भूमि को भूमिहीन परिवारों में वितरण करने से भूमिहीन कृषक प रिवारों की संख्या में निरंतर कमी आई है। देश में वर्ष 1953 -5 4 में भूमिहीन कृषक परिवार कुल परिवारो का 23.9 प्रतिशत थे। यह प्रतिशतता कम लेकर 1970-71 में 9.34 रह गई।

3. जोत के औसत आकार मे कमी होना (Decrease in average size of holding)

देश में जनससंख्या की वृद्धि संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन तथा भूमि की मांग की अधिकता के कारण जोत संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है । वर्ष 1970-71 की कृषि जनगणना के अनुसार देश में कुल जोत 70.493 मिलियन था,जो जोत अपखण्डन के कारण 1990-9 1 की कृषि जनगणना के अनुसार 106 मिलियन हो गई। इसके कारण जोत का औसत क्षेत्रफल 1970-71 में 2.28 हैक्टर से कम होकर 1976-77 में 2 .00 हैक्टर एवं 1990-91 में मात्र 1.57 हैक्टर ही रह गया ।

4. आसामी कृषको एवं बटाई पर प्राप्त होने वाले भूमि के क्षेत्र मे कमी होना (Decline in number of tenant farmers and leased in land area)

भूमि सुधार कार्यक्रमों के फलस्वरूप दूसरों की भूमि को बटाई पर प्राप्त करके कृषित करने वाले आसामी कृषको (Tenant farmers) की संख्या में निरन्तर कमी आई है । मध्यस्थों की समाप्ति के लिए पारित कानूनों के फलस्वरूप बटाई पर कृषि करने वाले आसामी कृषको को भूमि पर स्वामित्व अधिकार प्राप्त हो गये है और वे अब भू-स्वामी कृषको की श्रेणी में आ गये है। साथ ही बटाई पर दी जाने वाली भूमि के क्षेत्र में कमी आई है। पहले जो कृषक भूमि की अधिकता के कारण अधिशेष भूमि को दूसरे कृषको को बटाई पर देते थे, वे अब जोत की उच्चतम सीमा लागू होने से अपने पास सीमित क्षेत्रफल के कारण बटाई पर नहीं देते है। अतः बटाई पर दी जाने वाली भूमि के क्षेत्रफल में भी कमी आई है।

5. कृषि श्रमिको की संख्या में वृद्धि (Increase in number of Agricultural Labourers)

भूमि सुधार कार्यक्रमों के अपनाने से देश में लघु एवं सीमान्त कृषको तथा कृषि श्रमिको की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। लघु एवं सीमान्त कृषक अपनी जोत से पर्याप्त कार्य के अभाव में बचे हुए समय में दूसरों के फार्म पर कार्य करते है और कृषि श्रमिको की श्रेणी में वर्गीकृत हो जाते है। पूर्व

में जब जोत का आकार बड़ा होता तो था, कृषको को अपनी ही फार्म पर पर्याप्त कार्य उपलब्ध हो जाता था और उन्हे दूसरों के फार्म पर मजदूरी करने के लिए नहीं जाना पड़ता था।

देश में कृषि श्रमिको की संख्या 1961 में 31.5 मिलियन थी जो बढ़कर 1971 में 47.1 मिलियन हो गई। कुल श्रमशक्ति में कृषि श्रमिको का प्रतिशत 1961 में 16.7 प्रतिशत था जो बढ़कर 1971 मे 25.7 प्रतिशत हो गया । इसके विपरीत, उपरोक्त काल में कृषको की संख्या 99 .6 मिलियन से कम होकर 78 .6 मिलियन ही रह गयी।

6. मध्यस्थों की समाप्ति (Abolition of intermediaries)

भूमि सुधार कार्यक्रम के अपनाने से देश में सरकार एवं कृषक के मध्य में विद्यमान मध्यस्थ जैसे जमींदार एवं जागीरदार समाप्त हो गए है तथा काश्तकार सरकार के सीधे सम्पर्क मे आ गए है। कृषको को भूमि पर स्वामित्व अधिकार भी प्राप्त हो गये है। कृषको अपने स्वामित्व वाली भूमि पर स्थायी सुधार करके अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते है। मक्कों का समाप्ति के कारण देश के लाखों कृषक सरकार के सीधे सम्पर्क में आ गए है।

7. कृषित एवं स्वामित्व जोत की स्थिति मे परिवर्तन (Change in Operational and Ownership Holdings)

भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता हुआ भार तथा भूमि की प्राप्ति की सामाजिक इच्छा की प्रबलता के कारण, देश की विभिन्न राज्य सरकारों ने भूमि सुधार की दिशा में अनेक कानून पारित किये है, जिनके कारण कृषित जोत एवं स्वामित्व जोत की स्थिति में परिवर्तन हुए है।स्वामित्व जोत के क्षेत्रफल में वृद्धि एवं कृषित जोत क्षेत्र में कमी आई है।

21.3 भारत में भूमि सुधार कार्यक्रम)Land Reforms in India)

कृषि क्षेत्र में उत्पादकता में वृद्धि लाने वाले कारको को दो मुख्य समूहों तकनीकी एवं संस्थागत में विभाजित किया जाता है।तकनीकी कारको में कृषि निविष्टों का उचित मात्रा में उपयोग करना सम्मिलित है जिनके कारण उत्पादकता में परोक्ष रूप से वृद्धि होती है। दूसरे वर्ग में उत्पादन वृद्धि के वे कारण आते है जिन्हें संस्थागत कहते है। इनमें प्रमुखतया भूमि सुधार कार्यक्रम सम्मिलित होते है। उदाहरण के लिए भूमि पर कृषको का स्थायी स्वामित्व होने पर ही वे सिंचाई साधन का विकास कर सकते है,। सिंचाई साधन के विकास होने पर फार्म पर उन्नत बीजों एवं उर्वरक का संतुलित मात्रा में उपयोग कर पाना संभव है। अत तकनीकी एवं संस्थागत कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि लाने के लिए एक दूसरे के समपूरक होते है।

21.3.1 भूमि सुधार कार्यक्रम से तात्पर्य

भूमि सुधार से तात्पर्य देश में भूमि व्यवस्था में उन परिवर्तनों के करने से है जिनके द्वारा भूमि व्यवस्था में सुधार करके कृषको को भूमि की उत्पादकता बढ़ाने एवं उन्हें उचित जीवन स्तर प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। भूमि सुधार शब्द का अर्थ बड़ा विस्तृत है, जिसके अंतर्गत न केवल भूमि -अवस्था के सुधार ही सम्मिलित है बल्कि भूमि सुधार कार्यक्रम में भूमि का पुन वितरण करके

भूमि का स्वामित्व कृषको को प्रदान करना, जोत अपखण्डन को रोक कर जोत के आकार में वृद्धि करना, कृषको की भूमि-धारण विधि में सुधार लाना, भूमि पर लगने वाले लगान की राशि में कमी करना, सहकारी कृषि एवं कृषि का पुर्नगठन, आदि सम्मिलित होते है। दूसरे शब्दों में भूमि सुधार के अंतर्गत भूमि पर सामन्तवादी प्रथा की समाप्ति, आसामी कृषको एवं भूमिहीनों को भूमि पर स्वामित्व अधिकार प्रदान करना, भूमि का लगान राशि का निर्धारण करना मुख्यतया सम्मिलित होता है।

भूमि पर स्वामित्व की सामाजवादी प्रथा, देश में लघु एवं सीमान्त जोतों के अधिक संख्या में होने भूमि का वितरण समान नहीं होने, जोत उप विभाजन एवं अपखण्डन, कृषको से अधिक मात्रा में लगान लेने, कृषको को भूमि पर स्थाई अधिकार प्राप्त नहीं होने के कारण, कृषको में उत्पादन वृद्धि को प्रेरणा ह्रास होता है। फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में कम पूंजी का निवेश एवं कृषको को कृषि क्षेत्र से कम आय एवं कम बचत राशि प्राप्त होती है। कृषको में गरीबी भी बढ़ती है।

भूमि सुधार कार्यक्रम नया नहीं है। वर्ष 1946 में कांग्रेस के चुनाव घोषणा पत्र में सुधार के लिए निर्णय लिया गया था कि कृषक एवं सरकार के मध्य पाए जाने वाले मध्यस्थों को समाप्त किया जाये और मध्यस्थों को भूमि के बदले क्षतिपूर्ति राशि का भुगतान किया जावे। ग्राम्य सुधार समिति, 1948 ने भी सुझाव दिया था कि भूमि पर स्वामित्व कृषक का लेना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ ने या अपने वृतान्त में लिखा था कि भारत में भूमि सम्बन्धी पद्धति उचित नहीं होने से आर्थिक विकास नहीं हो रहा है।

21.3.2 भूमि सुधार कार्यक्रमों के उद्देश्य

भूमि सुधार कार्यक्रमों को गरीबी उन्मूलन, कृषि में आधुनिकीकरण तथा उत्पादकता में वृद्धि के क्षेत्र में प्रमुख तत्व माने जाते है। भूमि के पुन: वितरण विधि द्वारा गरीब भूमिहीनों को स्थायी सम्पदा प्राप्त होती है जिससे वे भूमि आधारित एवं अन्य सहायक उद्यम अपना सकते है और आय में वृद्धि कर सकते है। इसी प्रकार जोत चकबन्दी, भू-धारण में सुधार भूमि अभिलेखों मे सही बनाकर लघु एवं सीमान्त कृषक भी उन्नत सुधार कार्यक्रम अपनाकर अपने भूमि के क्षेत्र से कृषि उत्पादकता एवं उत्पादन की मात्रा में वृद्धि कर सकते है।

आजादी के बाद भूमि सुधारों को ग्रामीण विकास का महत्वपूर्ण अंग माना है। इन्हें पुराने सामंतवादी सामाजिक आर्थिक ढाँचे को तोड़ने का माध्यम समझा एवं यह भी अपेक्षा की गई कि इनसे कृषि उत्पादकता बढ़ेगी। गरीब कृषको एवं कृषि मजदूरों के लिए आर्थिक विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का मार्ग भी भूमि सुधारों को समझा गया।

भू-स्वामित्व चाहे कितने ही छोटी जोत का क्यों न हो, अपने साथ मनोवैज्ञानिक और सामाजिक मूल्य लिए हुए होता है। यह सामाजिक मूल्य केवल गरीब वर्गों का स्तर ही नहीं बढ़ाता बल्कि सामाजिक जीवन के अस्तित्व का आभास भी कराता है। इसलिए भूमि सुधार कार्यक्रमों को आर्थिक विकास का माध्यम और सामाजिक उत्थान का आधार भी माना गया है।

भूमि सुधार कार्यक्रमों के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित है :

1. सीमित भूमि उत्पादन-साधन का अनुकूलतम उपयोग करना

देश में भूमि सीमित मात्रा में है तथा सीमित भूमि से अधिकतम मात्रा में उत्पादन प्राप्त करने के लिए इस साधन का अनुकूलतम उपयोग करना आवश्यक है। अतः आवश्यक है कि जोत की उच्चतम सीमा का निर्धारण होवे, जोत एक खण्ड में हो अथवा जोत के विभिन्न खण्ड पास पास होवे। ऐसा होने से कृषक अपने पास उपलब्ध अन्य सीमित साधन जैसे श्रम एवं पूँजी का पूर्ण उपयोग कर सकेंगे और प्रत्येक उत्पादन-साधन से उत्पादन की अधिकतम सीमान्त मात्रा प्राप्त कर सकेंगे। अतः कृषको के पास उपलब्ध सीमित साधनों से अधिकतम मात्रा में उत्पादन प्राप्त करने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रमों को अपनाना आवश्यक है।

2. सीमित भूमि साधन से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के इच्छुक होना

भूमि सुधार कार्यक्रमों का दूसरा प्रमुख उद्देश्य कृषको को भूमि से अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के इच्छुक होना है। यह तब ही संभव है जब कृषको को भूमि पर स्थायी स्वामित्व अधिकार प्राप्त होवे, भूमि का लगान अधिक राशि में नहीं होवे तथा पट्टे पर प्राप्त भूमि की शर्तें कृषको के लिए लाभकारी होवे। यह कार्यक्रम कृषको को भूमि के क्षेत्र पर स्थायी सुधार करने की प्रेरणा प्रदान करता है, जिससे कृषक भूमि पर अधिक राशि में पूँजी निवेश करते है।

3. कृषि में तकनीकी ज्ञान ये विस्तार एवं उत्पादन वृद्धि में आने वाली बाधाओं को दूर करना

संक्षिप्त में भूमि सुधार कर्यक्रमों का प्रमुख उद्देश्य सरकार एवं कृषको के मध्य में पाये जाने वाले मध्यस्थों को समाप्त करके उन कृषको को झूम पर स्वामित्व प्रदान करना है जो भूमि को स्वयं कृषित करते है।

21.3.3 भूमि सुधार कार्यक्रम

प्रमुख भूमि सुधार कार्यक्रमों को उनके उद्देश्यों के अनुसार निम्न वर्गो में विभाजित किया जाता है।

(1) मध्यस्थों की समाप्ति (Abolition of Intermediaries)

भूमि सुधार के लिए किए गये प्रयासों में प्रथम कार्यक्रम मध्यस्थों की समाप्ति करने तथा भूमि का स्वामित्व जोतने वाले कृषक को प्रदान करने (Land to the tiller) का है। इसका मुख्य उद्देश्य सरकार एवं कृषको के मध्य पाए जाने वाले मध्यस्थों को समाप्त करके कृषको को सरकार से सीधे सम्पर्क में लाने से है।

मध्यस्थ भूमि के सर्वोच्च स्वामी (सरकार) एवं भूमि पर कृषि करने वाले काश्तकारों के मध्य कार्य करने वाला वर्ग होता है यह वर्ग सरकार से नियत शर्तो पर भूमि प्राप्त करते है। कुछ मध्यस्थों को उनके द्वारा सरकार को प्रदान की गई सेवाओं के लिए भूमि प्राप्त होती है। मध्यस्थ भूमि के अस्थायी भू-स्वामी होते है। मध्यस्थ सरकार को राजस्व की नियत राशि जमा कराते है और भूमि को कृषको को कृषित करने के लिए देकर उनसे लगान के रूप में काफी राशि प्राप्त करते है। प्राप्त लाभ से आरामप्रद एवं ऐश का जीवनयापन करते है। मध्यस्थ कृषको से लगान की राशि के

अतिरिक्त अन्य लागतें भी वसूल करते है तथा उनसे बेगार भी लेते है। इस प्रकार मध्यस्थ कृषको का शोषण करते है।

भारत में भू धारण प्रणाली :-सरकार तथा भू-स्वामी के आपसी सम्बन्धों के आधार पर भारत में भू-धारण प्रणाली निम्न तीन प्रकार की थी -

(i). **रैयतवारी -** इसके अंतर्गत भूमि का सर्वोच्च स्वामित्व सरकार के हाथ में होता था, किन्तु रैयत या भूमि के स्वामी का सरकार के साथ सीधा सम्बन्ध होता था। नियमित रूप से भू-राजस्व जमा करने पर भू-स्वामी को भूमि को कृषित करने, हस्तांतरित करने, बेचने अथवा बन्धक रखने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। भू-स्वामी कृषको को भूमि जोतने के लिए दूसरे कृषको को लगान पर देने अर्थात् उपपटेदारी (Sub leasing) पर देने की स्वतंत्रता होती है लेकिन उन्हें भूमि के कानूनन स्थायी अधिकार प्राप्त नहीं होते है। भू-स्वामी द्वारा भू-राजस्व सरकार को समय पर नहीं जमा कराने की स्थिति में सरकार उस भूमि से अन्य कृषक को उचित अधिकार के साथ दे सकती थी। इस प्रकार इस विधि में कृषको की भूमि पर मौरूसी अधिकार (Occupancy rights) ही प्राप्त थे न कि भूमि के स्थायी अधिकार प्राप्त थे।

(ii). **महलवारी -** इस पद्धति में गांव की समस्त भूमि पर गांव के किसानों का संयुक्त अधिकार होता था, और समस्त भूमि को एक इकाई मानकर लगान निर्धारित किया जाता था। प्रत्येक इकाई को महाल कहते थे। भूमि का स्वामित्व किसी एक व्यक्ति के पास न होकर पूरे ग्राम समूह के पास होते थे। भूमि का राजस्व सरकार को जमा कराने को दायित्व ग्राम के सभी कृषको का सामूहिक रूप से होता था। प्रत्येक कृषक भूमि पर निजी रूप से खेती कर सकता था। साथ ही कृषको को भूमि पर पैतृक अधिकार प्राप्त थे। इस प्रथा में लगान की वसूली के लिए भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न नियम प्रचलित थे।

(iii). **जमींदारी एवं जागीरदारी -** इस पद्धति में भूमि का प्रबन्ध बड़े राजा-महाराजाओं एवं अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। इन्हें भूमि के प्रबंध के अधिकार सरकारी सेवा के बदले दिए जाते थे। ये जागीरदार भूमि के सर्वोच्च स्वामी नहीं होते थे। बल्कि प्रशासन का कार्य करते थे एवं कृषको से लगान वसूल करते थे। देश में जागीरदारी एवं जमींदारी प्रथा का प्रचलन ब्रिटिश सरकार के काल में हुआ था। ब्रिटिश सरकार ने देश में कृषको की भू-राजस्व राशि के निर्धारित, वसूली एवं इसके संशोधन में होने वाली कठिनाई से मुक्ति पाने के लिए इस प्रथा को चुना था। कुछ राज्यों में जागीरदारी एवं जमींदारी प्रथा के अतिरिक्त अन्य प्रकार की भू-धारण प्रणालियां भी प्रचलित थी जैसे बिस्वेदारी प्रथा, मालगुजारी प्रथा, इनामदारी एवं माफीदारी प्रथा आदि।

उपर्युक्त सभी प्रकार की भू-पद्धतियों में कृषको से भू-राजस्व उपज के भाग के रूप में अधिक मात्रा में वसूल किया जाता था, जिससे कृषको के पास उपज की मात्रा बहुत कम रह जाती थी। अतः वे कृषि के विकास के लिए अधिक पूँजी का कृषि में निवेश नहीं कर पाते थे। साथ ही कृषको को भूमि पर स्वामित्व अधिकार प्राप्त नहीं होने के कारण तथा भूमि पर कृषि करने के समय की अनिश्चितता के कारण वे भूमि सुधार तथा कृषि विकास के लिए आवश्यक साधनों जैसे कुओं का निर्माण, सिंचाई के लिए पक्की नालियाँ बनाने, भूमि को समतल करने खाद डालने आदि कार्यो

पर पूँजी निवेश नहीं करते थे क्योंकि उन्हे भूमि से बेदखल किए जाने का भय बना रहता था। इन सब कारणों से कृषि उत्पादकता कम होती थी और कृषि विकास के नहीं होने से देश आर्थिक समृद्धि के क्षेत्र में अग्रसर नहीं हो पाता है। अतः स्वतंत्र भारत में भू-घृति प्रथाओं की समाप्ति की आवश्यकता प्रतीत हुई।

मध्यस्थों की समाप्ति के लिए समय-समय पर सरकार पर दबाव पड़ा, उसका प्रमुख कारण एक वर्ग विशेष के व्यक्तियों के पास भूमि के स्वामित्व का केन्द्रीकरण होने का विरोध था। मध्यस्थ वर्ग उत्पादन में वृद्धि करने में किसी प्रकार की भूमिका नहीं अदा करते है बल्कि भूमि पर पराश्रयी होते है। इस प्रथा के कारण वास्तव में भूमि को जोतने वाले कृषक भूमि के स्वामित्व अधिकार से वंचित होते है। अतः सामन्तवादी तथा अर्द्धसामन्तवादी प्रथा को समाप्त करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। फलस्वरूप स्वतंत्रता के पश्चात् इन के उन्मूलन के लिए विभिन्न राज्य सरकारों ने कानून पारित किए।

मध्यस्थों की समाप्ति के लिए विभिन्न राज्यों में कानून 1950 से 1960 के दशक में पारित हुए। मध्यस्थों की समाप्ति के लिए सर्वप्रथम प्रयास उत्तर प्रदेश राज्य में किए गए नथा इसके बाद अन्य राज्यों में किए गए चूंकि भूमि सुधार क्रियान्वित करने दायित्व राज्य सरकारों पर हैं, अतः विभिन्न राज्यों में पृथक कानून पारित किए गए। इन कानूनों के कारण प्राय सभी राज्यों में मध्यस्थ समाप्त हो गए और देश के 20 मिलियन से अधिक कृषक अब सरकार के सीधे सम्पर्क में आ गए है। तथा कृषको को अनेक प्रकार की सुविधाए प्राप्त होने लग गयी है।

(2) भू-धारण पद्धति में सुधार (Tenancy Reforms)

भूमि सुधार कार्यक्रमों में दूसरा प्रमुख पहलू भू -धारण पद्धति में सुधार है। भू-धारण के विभिन्न पहलुओं जैसे लगान राशि का निर्धारण, भूमि पर कृषि करने की अवधि की अनिश्चितता एवं भूमि के हस्तान्तरण आदि के लिए भी कानून बनाने की आवश्यकता महसूस की गई। जमींदार एवं जागीरदार वर्ग कृषको से उत्पादित उपज की मात्रा की एक चौथाई से अधिक भाग लगान के रूप में वसूल करते थे, जिससे कृषको के पास शेष राशि कृषि व्यवसाय में निवेश करने के लिए बहुत कम रहती थी। साथ ही जमींदार कृषको को इच्छानुसार भूमि से बेदखल कर देते थे। जिससे कृषको में भूमि पर कृषि करने के की अनिश्चितता बनी रहती थी। इस अनिश्चितता के वातावरण में कृषक भूमि पर स्थायी के उपायों के अपनाने में रुचि नहीं लेते थे। कृषको द्वारा स्थायी सुधार कार्यो में पूँजी निवेश की गई राशि का लाभ अनेक बार भूमि से बेदखल की अवस्था में कृषको को प्राप्त नहीं होता था। कृषक धन एवं अन्य प्रकार की आवश्यकता होने पर अपनी भूमि को अन्य व्यक्तियों एवं रिश्तेदारों को विक्रय अथवा भेंट स्वरूप नहीं दे सकते थे। इस प्रकार उपरोक्त विषयों पर भी भू-धारण पद्धति में सुधार लाने की आवश्यकता स्वतंत्रता के उपरान्त महसूस की गई। भू-धारण सुधार कार्यक्रमों को प्रमुखतया निम्न तीन श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है, जिन्हें भू-धारण के तीन "एफ" भी कहते है।

1 भूमि का उचित लगान निर्धारण करना (Fixation of Fair Rent)

2 भू-धारको के लिए भ्रम पर स्वामित्व अधिकार नियत करना (Fixity of Tenure for Tenants)

3 भूमि पर प्राप्त स्वामित्व अधिकार को स्थानान्तरित करने का प्रावधान (Free Transferability of Land Rights)

उपरोक्त विषयों पर सुधार लाने हेतु विभिन्न राज्यों में वर्ष 1948 से 1955 की अवधि में कानून पारित किये गये। इनके फलस्वरूप सभी राज्यों मे भूमि के लगान की राशि भूमि की किस्म के अनुसार प्रति हैक्टर भूमि पर नियत की जा चुकी है। कृषको को अब भूमि का लगान प्राप्त उत्पादन की मात्रा के एक भाग के रूप में नहीं देना होता है बल्कि पूर्व निर्धारित एक नियत राशि ही देनी होती है। अधिक उत्पादन होने पर उसका सम्पूर्ण लाभ कृषक को ही प्राप्त होता है। इसके साथ ही सभी राज्यों के कृषको को उनके द्वारा कृषित की जाने वाली भूमि पर स्थायी स्वामित्व अधिकार प्राप्त हो गये है। कृषको को अपने स्वामित्व की भूमि पर पट्टा एवं पास बुक प्राप्त हो गये है। साथ ही कृषक अब अपने स्वामित्व की भूमि को दूसरे काश्तकारों एवं व्यक्तियों को विक्रय कर सकते है या उपहार में दे सकते है। इस प्रकार भू-धारण सुधार कानूनों से कृषक वर्ग को लाभ प्राप्त हुआ है।

उपरोक्त कानूनों के बावजूद भी भू-धारण प्रथा में कुछ कमियाँ व्याप्त है। उदाहरण के लिए अनेक स्थानों पर कृषको को भूमि मौखिक भू-धारण पद्धति से उपलब्ध कराई जाती है। भू-स्वामी कृषको से लगान की अधिक राशि वसूल करते है। साथ ही विभिन्न राज्यों में भी भूमि के निर्धारित लगान की राशि में बहुत असमानता व्याप्त है।

(3) जोत की उच्चतम सीमा नियम करना (Imposition of Ceiling on Land Holdings)

देश में उपलब्ध भूमिका विभिन्न कृषको में वितरण में बहुत असमानता व्याप्त है। वर्ष 1990-91 की कृषि जनगणना के अनुसार 58 प्रतिशत सीमान्त जोत कृषको के पास कुल कृषित भूमि का मात्र 15 प्रतिशत क्षेत्र ही है। दूसरी ओर 1 प्रतिशत दीर्घ जोत कृषको के पास 17 प्रतिशत भूमिका क्षेत्र है।

तालिका-21.2 भारत मे विभिन्न जोत श्रेणी के अंतर्गत क्षेत्रफल, 2010-11

जीत श्रेणी		जोत संख्या (प्रतिशत)	भूमि का क्षेत्र (प्रतिशत)
1. सीमान्त जोत	(एक हैक्टर से कम)	67.1	22.5
2. लघु जोत	(एक से चार हैक्टर)	27.9	45.7
3. मध्य जोत	(चार से दस हैक्टर)	4.2	21.2
4. दीर्घ जोत	(दस हैक्टर से अधिक)	0.7	10.6
	कुल	100	100

जीत का क्षेत्रफल कम एवं अधिक दोनो हो उत्पादन की दृष्टि से अहितकर होता है। जोत के अंतर्गत अधिक क्षेत्रफल होने तथा उत्पादन के अन्य साधन आवश्यक मात्रा में नहीं होने की अवस्था मे कृषको को भूमि का कुछ क्षेत्रफल अकृषित छोड़ना होता है, साथ ही क्षेत्रफल की अधिकता की

अवस्था में दक्ष प्रबन्ध के अभाव में भूमि के प्रति इकाई क्षेत्रफल से उत्पादन कम प्राप्त होता है। जोत के अंतर्गत क्षेत्रफल के कम होने पर सिंचाई के साधन एवं अन्य स्थायी सुधारों में पूंजी का निवेश करना लाभकर नहीं होता है। ऐसी स्थिति में भी भूमि के प्रति इकाई क्षेत्रफल से उत्पादन कम प्राप्त होता है। अतः जोत की अनुकूलतम सीमा का निर्धारण करना आवश्यक है।।

जोत की उच्चतम सीमा (भू-सीमा) से तात्पर्य एक व्यक्ति अथवा परिवार के लिए भूमि के नियत क्षेत्र के स्वामत्वि प्राप्त होने के उपरान्त अधिक भूमि रखने पर कानून नियंत्रण से है। भू-सीमा एक कृषक परिवार के लिए भूमि का अधिकतम क्षेत्र नियत करती है। जोत की उच्चतम सीमा निर्धारित करने का उद्देश्य अनुकूलतम जोत के क्षेत्र वाले फार्मों का निर्माण करना हे जिससे प्रति इकाई भूमि के क्षेत्र से उत्पादन अधिक प्राप्त होवे, उत्पादन लागत कम आवे एवं शुद्ध लाभ की राशि अधिक प्राप्त होवे।

भू-सीमा भूमि के पुन: वितरण का एक तरीका है। एक कृषक के पास निर्धारित सीमा से अधिक भूमि का क्षेत्र होने पर, अतिरिक्त भूमि उस कृषक से लेकर लघु एवं सीमान्त कृषको तथा कृषि श्रमिको में निर्धारित प्राथमिकता के आधार पर वितरित की जाती है, जिससे इस वर्ग के कृषको की जोत को आर्थिक जोत बनाया जा सके तथा देश में भूमिहीन श्रमिको की संख्या में कमी हो सके। इस प्रकार इस भूमि सुधार कार्यक्रम द्वारा देश में कृषि जोतों के अंतर्ग त व्याप्त क्षेत्रफल असमानता को कम करने का प्रयास किया जाता है।

भू-सीमा निर्धारण के लाभ

(1) भू-सीमा निर्धारण से देश में विभिन्न व्यक्तियों के पास उपलब्ध भूमि के स्वामित्व में व्याप्त समानता समाप्त हो जाती है। एक कल्याणकारी राज्य में यह सामाजिक असमानता सर्वथा अनुपयुक्त है। इसके होने से राष्ट्र समाजवादी लक्ष्य की प्राप्ति के उद्देश्य के लिए अग्रसर होता है।

(2) भू-सीमा के निर्धारण से प्राप्त अतिरिक्त भूमि के क्षेत्रफल को लघु एवं सीमान्त जोत कृषको में वितरित करके उनकी जोत को आर्थिक बनाया जा सकता है। इसी प्रकार अतिरिक्त भूमिको भूमिहीन श्रमिको में वितरित करके उनकी संख्या में कमी की जा सकती है। इससे इस वर्ग के कृषको एवं कृषि श्रमिको में आत्म विश्वास बढ़ेगा एवं उनकी समाज में प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी।

(3) भू-सीमा के निर्धारण से दीर्घ जोत कृषकों.के यहां साधारणतया उत्पादन साधनों के अभाव में कुछ क्षेत्रफल अकृषित रह जाता था, वह अघन नहीं रह पाता है। इससे देश में कृषित क्षेत्रफल एवं सघन कृषि अपनाने से कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है।

(4) भू-सीमा में निर्धारण के बाद कृषक अपनी सीमित भूमि के क्षेत्रफल पर सघन कृषि पद्धति अपनाकर आर्थिक उत्पादन एवं लाभ प्राप्त कर पाते है।

(5) भू-सीमा में क्रियान्वयन से समाज में दीर्घ जोन एवं लघु जोत कृषको में व्याप्त वैमनस्यता समाप्त हो जाती है।

सीमा का निर्धारण

भू-सीमा निर्धारण का मुख्य आधार भूमि का वह क्षेत्रफल है जिससे प्राप्त आय से कृषक परिवार उचित जीवन स्तर एवं आवश्यक सुख-सुविधा प्राप्त कर सके। अत: भू-सीमा निर्धारित का स्तर एक समान नहीं होकर पृथक पृथक होता है । भूमि की विभिन्न किस्मों के लिए जोत की उच्चतम सीमा इस प्रकार निर्धारित की जाती है कि सभी प्रकार की भूमि की उच्चतम सीमा करने क्षेत्रों से कृषको को लगभग समान आय प्राप्त हो सके। समान आय का यह उदेश्य विभिन्न प्रकार की भूमि के लिए भू-सीमा के लिए भू-सीमा हेतु जोत का समतुल्य क्षेत्र ज्ञात करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है । भू-सीमा के लिए क्षेत्रफल निर्धारित करते समय निम्न कारको को दृष्टिगत रखा जाता है :

(I). भूमि की उर्वरा शक्ति।

(II). भूमि पर उपलब्ध सिंचाई सुविधा।

(III). भूमिपर उत्पन्न की जा सकने वाली फसलें।

(IV). विभिन्न फसलों से प्रति हैक्टर प्राप्त संभावितलाभ।

(V). क्षेत्र में मौसम की प्रतिकूलता होने की संभावना का प्रतिफल।

(VI). क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व।

वर्ष 1950 से 1960 के दशक में विभिन्न राज्यों ने जोत की उच्चतम' सीमा निर्धारण (Ceiling on land holdings) कानून पारित किये। इन पारित कानूनों के द्वारा विभिन्न प्रकार की भूमि पर जोत की उच्चतम सीमा का क्षेत्रफल निर्धारित किया गया। कानून के क्रियान्वयन के फलस्वरूप प्राप्त अधिशेष भूमि को लघु एवं सीमान्त कृषको में वितरित की गई। इस प्रकार इससे लघु एवं सीमान्त जोतों के क्षेत्रफल में भी वृद्धि हुई। वर्ष 1972 में राष्ट्रीय नीति के अनुसार सभी राज्यों में जोत की उच्चतम सीमा कानून में पुन: संशोधन करके जोत की उच्चतम सीमा पूर्व की अपेक्षा कम की गई एवं अनेक प्रकार की दी गई रियायतें वापिस ले ली गई, जिससे निर्धारित भूमि प्राप्ति का लक्ष्य प्राप्त हो सके।

जोत की उच्चतम सीमा कानूनों के क्रियान्वयन से प्राप्त परिणामों के अवलोंकन से स्पष्ट है कि इनकी प्रगति संतोषजनक नहीं है । अनुमानित क्षेत्र से बहुत कम क्षेत्रफल भूमि का अधिशेष घोषित हो पाया और घोषित-अधिशेष क्षेत्रफल का मात्र एक भाग ही लघु एवं सीमान्त कृषको में वितरण हेतु उपलब्ध हो पाया। अधिकांश भूमिका क्षेत्रफल कानून में कमियों एवं कृषको की चतुराई से उच्चतम सीमा क्षेत्र में नहीं आ पाया। घोषित अधिशेष क्षेत्रफल भी न्यायालय से फैसला नहीं होने से वित

रित नहीं हो सका, जो सारणी 21.3 में स्पष्ट है ।

तालिका -21.3 जोत की उच्चतम सीमा कानून से प्राप्त अधिशेष भूमि का क्षेत्र

(मिलियन हैक्टर)

विवरण	**भूमि का क्षेत्र**
राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 16वें दौर (1960-61) के अनुसार अनुमानित अधिशेष भूमि	8.87
राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 26वे दौर (1971-72 के अनुसार अनुमानित अधिशेष भूमि	4.80
कृषि जनगणना 1970-71 के अनुसार अनुमानित अधिशेष	12.10
कृषि जनगणना 1977 के अनुसार अनुमानित अधिशेष भूमि	8.88
वर्ष 1986 तक वास्तविक अधिघोषित अधिशेष भूमि का क्षेत्रफल	2.94
प्राप्त अधिशेष भूमि में से वर्ष 1986 तक वितरित भूमि का क्षेत्रफल	1.82

इस प्रकार देश में जोत की उच्चतम सीमा कानूनों के होने के फलस्वरूप भी अब तक कुल कृषित भूमि का 2 प्रतिशत से भी कम भूमि का क्षेत्र अधिशेष घोषित हो पाया है। एक अधिकृत अनुमान के अनुसार लगभग 9 प्रतिशत भूमि सीमा निर्धारण के बाद भू-आधिक्य के रूप में उपलब्ध होनी चाहिए थी। अतः इस क्षेत्र में हुई प्रगति नगण्य है। जोत उच्चतम सीमा की असंतोषजनक प्रगति के, मुख्य कारण कानून में उन धाराओं का होना है जिनका लाभ लेकर अधिकतम जोत सीमा का उल्लंघन हो रहा है, ये है

(I). परिवार में 5 सदस्यों से अधिक होने पर सीमा से दुगुनी भूमि रखने का प्रावधान।

(II). प्रत्येक बालिग पुत्र के लिए अलग से सीमा निर्धारण।

(III). संयुक्त परिवार के प्रत्येक शेयर होल्डर को सीमा निर्धारण के लिए अलग इकाई मानना।

(IV). बेनामी हस्तान्तरण

(V). चाय, काफी, कोको, रबर, इलायची के बागानों को सीमा से छूट।

(VI). धार्मिक और धर्मार्थ संस्थाओं द्वारा सीमा से अधिक भूमि रखने की स्वीकृति तथा

(VII). सार्वजनिक निवेश द्वारा नई सिंचित भूमि पर सीमा छूट का होना

इन प्रावधानों के दुरूपयोग ने अधिकतम जोत सीमा निर्धारण कानूनों के उद्देश्यों को विफल कर दिया है।

(4) कृषि भूमि का पुनर्गठन (Agrarian Reorganisation) एवं जोत चकबंदी

भूमि सुधार के इस कार्यक्रम में जोत उपविभाजन एवं 'अपखण्डन की रोकथाम करना तथा जोतों का चकबंदी करना सम्मिलित होता है। देश में प्रचलित वंशागति कानून, लघु इकाई परिवारों की बढ़ती प्रबल इच्छा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के कृषि अतिरिक्त अन्य साधन उपलब्ध नहीं होने के कारण कृषको के पास उपलब्ध भूमि का निरन्तर अपखडन होता जा रहा है। जिससे जोत छोटी ही नहीं होती जा रही है बल्कि जोत के खण्ड एक दूसरे से काफी दूर भी होते जाते है। इसके

कारण कृषक अपने पास उपलब्ध उत्पादन-साधनों का पूर्ण एवं दक्षता से उपयोग नहीं कर पाते है। उदाहरणतः उपलब्ध सिंचाई सुविधा का एक खण्ड पर पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है जबकि दूसरे खण्ड पर सिंचाई साधन का पूर्ण अभाव होता है। सभी जोत खंडों पर पूर्ण दक्षता से देखभाल करना भी संभव नहीं हो पाता है। श्रमिक तथा बैल शक्ति का भूमि के एक खण्ड से दूसरे खण्ड तक जाने मे काफी समय का ह्रास हो जाता है। इस प्रकार प्रति इकाई भूमि क्षेत्र से उत्पादन कम प्राप्त होता है। और प्रति इकाई भार पर उत्पादन लागत अधिक जाती है। इस प्रकार की: प्रथा की समाप्ति के.लिए भूमि सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत जोत चकबंदी प्रथा शुरू की गई।

जोत चकबंदी के तात्पर्य

बिखरे हुए भू-खण्डों को एकत्र करना चकबंदी कहलाता है। जोत चकबंदी में कृषको के खेतों का एकीकरण एवं पुन.विभाजन करना होता है, जिससे जोत के खण्डों की संख्या कम हो जावे। जोत चकबंदी में विभिन्न कृषको को उनके जोत के अनेक खण्डों के स्थान पर समान मात्रा मे कुल भूमि का क्षेत्रफल एक ही स्थान पर देने का प्रयास किया जाता है।

जोत चकबंदी से निम्न लाभ प्राप्त होते है

(I). जोत-चकबंदी, कृषको की सिंचाई की समस्या सुलझाने में सहायक होती है। चकबंदी करने से कृषक खेत पर कुआं बनाकर पूरे फार्म पर सिंचाई की व्यवस्था कर सकते है।

(II). जोत चकबंदी से जोत का एक स्थान पर क्षेत्रफल में वृद्धि होवे तो उन्नत कृषि यंत्रों का उपयोग सुगम एवं लाभकर होता है।

(III). जोत चकबंदी करने से कृषक फार्म पर उत्तम फसल चक्र अपना सकते है।

(IV). जोत चकबंदी में छोटे छोटे खण्डों की मेडों को तोड़ने से फार्म पर भूमि के क्षेत्र में वृद्धि होती है।

(V). जोत चकबंदी करने से खेत पर चौकीदारी करने में आसानी रहती है।

(VI). जोत चकबंदी से श्रमिको एवं बैलों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की आवश्यकता नहीं होती है।

(VII). जोत चकबंदी से कार्य पर व्यावहारिक दक्षता में वृद्धि होती है।

जोत चकबंदी के लिए सर्वप्रथम प्रयास वर्ष 1905 में स्वेच्छा के आधार पर देश के मध्यवर्ती प्रदेशों में शुरू हुई। लेकिन जोत चकबंदी के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकी, क्योंकि इसका आधार स्वेच्छिक था। स्वतंत्रता के उपरान्त देश में स्वेच्छा से चकबंदी के स्थान पर अनिवार्य चकबंदी पद्धति अपनाई गई। फलस्वरूप देश के सभी राज्यों (तमिलनाडु एवं केरल के अतिरिक्त) में जोत चकबंदी के लिए 1947 से 1962 के काल में कानून पारित किए गए। इन कानूनों के पारित होने के पश्चात चकबंदी के क्षेत्र में कुछ प्रगति हुई।

जोत चकबंदी के क्षेत्र में हुई असन्तोषजनक प्रगति के प्रमुखकारणों में निम्न प्रमुख है .

(I). कृषको का पैतृक हम से लगाव होने से भूमि को दूसरे कृषको से विनिमय करने की अनिच्छा होना।

(II). समान उर्वरता वाली भूमिका क्षेत्रफल उपलब्ध नहीं होना।,

(III). जोत चकबंदी के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव होना।

(IV). भूमि के स्वामित्व के सभी अभिलेख उपलब्ध नहीं होना एवं

(V). जमीदारों, कृषको एवं अन्य व्यक्तियों द्वारा चकबंदी का विरोध करना एवं उनके द्वारा झूठे दावे प्रस्तुत करके कार्य की गति में रूकावट प्रदान करना।

चकबंदी की प्रगति में विभिन्न राज्यों में बहुत असमानता है। पंजाब एवं हरियाणा राज्यों में चकबंदी का कार्य पूर्ण हो चुका है, जबकि अनेक राज्यों में प्रगति का स्तर बहुच कम है। देश में पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-80) तक 44326 मिलियन हैक्टर क्षेत्र (कुल भूमि का 25 प्रतिशत) एवं छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) के अंत तक 51.8 मिलियन हैक्टर भूमि की चकबंदी की जा चुकी है जो कुल कृषित क्षेत्रफल का 33 प्रतिशत है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में अतिरिक्त 25 प्रतिशत भूमि के क्षेत्र पर चकबंटी करने का लक्ष्य रखा गया है। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि चकबंदी के क्षेत्र में हुई प्रगति आशानुकूल नहीं रही है। अनेक क्षेत्रों में चकबंदी करने के पश्चात् भूमिका पुन: अपखण्डन हो गया है। अत: चकबंदी करने के साथ-साथ भविष्य में जोतों के होने वाले अपखण्डों को रोकना भी आवश्यक है।

(5) सहकारी कृषि का गठन (Organization of Cooperative Farming)

भूमि सुधार कार्यक्रमों के अंतर्गत सहकारी कृषि का गठन भी प्रमुख है। इसके अंतर्गत लघु जोत कृषक सहकारी समिति बनाकर उपलब्ध उत्पादन साधनों को सम्मिलित रूप में उपयोग करके कृषि करते है। इसके होने से प्रति इकाई उत्पादन की मात्रा पर उत्पादन-लागत कम आती है। कृषक ट्रैक्टर द्वारा भूमि की जुताई एवं सिंचाई के लिए सम्मिलित रूप से कुआँ बनाकर तथा आवश्यक मात्रा में बीज एवं खाद सम्मिलित रूप से क्रय करके उत्पादन लागत में कमी लाते हैं।

21.3.4 भूमि सुधार कानूनों के क्रियान्वयन से प्राप्त लाभ

भूमि सुधार कानूनों के विभिन्न पहलुओं के क्रियान्वयन से कृषक वर्ग एवं देश के कृषि विकास हेतु निम्न लाभ प्राप्त हुए है :-

(1) सामन्तवादी प्रथा की समाप्ति से देश में भू-धारण की जो शोषणयुक्त प्रणाली विद्यमान थी, वह समाप्त हो गई है। कृषको को भूमि पर स्थायी अधिकार प्राप्त हो गये है। भूमि के स्वामित्व अथवा कृषि करने संबंधी व्याप्त अनिश्चितता समाप्त हो गई है। कृषक भूमि पर स्थायी सुधार हेतु पूँजी का निवेश कर रहे है जिससे भूमि की उत्पादकता में वृद्धि हुई है।

(2) भूमि सुधारों के परिणामस्वरूप कृषि उतादों की उत्पादन लागत में कमी हुई है। प्रति इकाई क्षेत्र से कृषक को अब पहले की अपेक्षा अधिक उत्पादन की मात्रा प्राप्त होती है तथा प्राप्त अतिरिक्त उत्पादन मात्रा लगान के रूप में कृषक द्वारा सरकार को नहीं देना होता है। अतिरिक्त उत्पादन मात्रा से कृषक स्वयं ही लाभान्वित होता है।

(3) भूमि सुधारों के फलस्वरूप देश में कृषित क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है। यह वृद्धि चरागाह क्षेत्र में कमी होने तथा परत भूमि एवं अकृष्य भूमि के क्षेत्र में कमी होने से हुई है। वर्ष 1951 से 1961 के दशक में देश में परत भूमि के क्षेत्र में 8 प्रतिशत तथा 1961 से 1971 के दशक में 23

प्रतिशत कमी आई है। कृषक अब उपलब्ध पूर्ण क्षेत्र पर कृषि करते है जबकि पूर्व में भूमि की अधिकता के कारण वे काफी क्षेत्र परत रखते थे।

21.3.5 भूमि सुधार कार्यक्रमों की असंतोषजनक प्रगति के कारण

भूमि सुधार कार्यक्रम कृषको के लिए लाभकर होते हुए भी विभिन्न क्षेत्रों में इनकी प्रगति संतोषजनक नहीं है। प्रारंभ में भूमि सुधार कार्यक्रम विशेष जोश के साथ देश में शुरू किये गये, लेकिन समय के साथ अनेक कारणवश इनके क्रियान्वयन के जोश में निरन्तर कमी होती गई। वर्तमान में भूमिसुधार कार्यक्रमों को मात्र औपचारिक के रूप में अनुपालना की जा रही है। इसके प्रमुख कारण निम्नांकित है :

(1) भूमि सुधार कार्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं के लिए पारित कानूनों में अनेक कमियों (Loopholes) का होना, जिसके कारण प्रभावितजमींदार, जागीरदार एवं दीर्घ जोत कृषक न्यायालय में जाकर उनके क्रियान्वयन पर स्थगन आदेश ले आते है। इससे क्रियान्वयन के क्षेत्र में स्थिरता आ जाती है और इसी अवधि में वे अन्य उपायों वे अपनाकर कानून के चंगुल से बच निकलते है।

(2) भूमि सुधार कार्यक्रमों को लागू करने में सरकार की पूर्ण रूप से राजनैतिक अनिच्छा का होना।

(3) कृषक एवं कृषि श्रमिक वर्ग का भूमि सुधार कानूनों के प्रति जागरूक नहीं होना तथा इनके क्रियान्वयन के लिए सरकार पर दबाव नहीं डालना।

(4) राजकीय अधिकारियों का भूमि सुधार कार्यक्रमों को क्रियान्वयन करने के प्रति नरम रुख (Luck warm or apathetic attitude) का होना। अनेक अधिकारी सामन्त या बड़े जमींदार वर्ग से होते है अतः इनके क्रियान्वयन से वे स्वयं अथवा उनके रिश्तेदार अथवा वर्ग विशेष के प्रभावितहोने के भय से दिलचस्पी नहीं लेते है।

(5) भूमि के अधिकारों का सही अभिलेख उपलब्ध नहीं होना जिससे क्रियान्वयन में परेशानी आना। अनेक स्थानों पर अभिलेखों में भूमि एक व्यक्ति के नाम होती है लेक्लि वास्तव में वह भूमि उस व्यक्ति के पास नहीं होकर दूसरे व्यक्ति के पास होती है।

(6) भूमि सुधार कानूनों के क्रियान्वयन में कानूनन अड़चनों का होना।

(7) सरकार द्वारा भूमिसुधार कार्यक्रमों को क्रियान्वयन में विकास के अन्य कार्यो के समान प्राथमिकता नहीं देना। भूमि सुधार कार्यक्रमों को पृथक रूप से एकल कार्यक्रम के रूप में लेना भी इसके क्रियान्वयन की गति को धीमी करते है।

(8) विभिन्न भूमि सुधार कानूनों को सरकार द्वारा अलग-अलग समय पर बनाने से उनमें आपस में सामन्जस्य नहीं होना, कानून पारित करने एवं क्रियान्वयन में समयान्तर का होना, भूमिसुधार कानून विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा एक रूपता में पारित नहीं करना भी इनकी प्रगति में बाधक है

बोध प्रश्न

1. कृषि भूमि सम्बन्ध से क्या अभिप्राय है? विभिन्न प्रकार के कृषि भूमिसम्बन्धों की विवेचना कीजिए।
2. भूमिसुधार से क्या तात्पर्य है। भूमिसुधार कार्यक्रमों के उद्देश्य लिखिए।
3. भूमि सुधार के विभिन्न कार्यक्रमों की विवेचना कीजिए।
4. भूमि सुधार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से कृषि भूमि सम्बन्धों में हुए परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए।

21.4 सारांश

भूमि कृषि उत्पादन का प्रमुख साधन है। मनुष्य एक् भूमि में प्रबल सम्बन्ध विद्यमान है। कृषि भूमि सम्बन्ध, भू-स्वामी एवं काश्तकारों के आपसी सम्बन्धों का प्रतीक होते है।

कृषि भूमि सम्बन्ध पूर्ण सामन्तवादी, पूर्ण पूँजीवादी अर्द्धसामन्तवादी होते है। भूमि पर कृषित करने एवं स्वामित्व अधिकार के अनुसार कृषको को दो श्रेणी में विभक्त किया जाता है भू-स्वामी कृषक एवं आसामी कृषक।

कृषि भूमि सम्बन्धों में निरन्तर परिवर्तन हुए है जिसके कारण देश में लधु एवं सीमान्त कृषको की संख्या एवं उनके पास उपलब्ध भूमि के क्षेत्र में वृद्धि, भूमिहीन परिवारों की प्रतिशतता में कमी, जोत के औसत आंकार में कमी, उगसमी कृषको की संख्या एवं उनके द्वारा कृषित क्षेत्र में कमी एवं मध्यस्थों की समाप्ति प्रमुख है।

भूमि सुधार कार्यक्रमों के प्रमुख अवयव मध्यस्थों की समाप्ति, भू-धारण पद्धति में सुधार, जोत की उच्चतम सीमा नियत करना, कृषि भूमि का पुर्नगठन, एवं सहकारी कृषि का अपनाना है।

21.5 शब्दावली

काश्तकारी प्रथा-लगान पर भूमि लेने या देने की प्रथा को काश्तकारी प्रथा कहते है।

कृषि भूमि सम्बन्ध सुधार (Agrarian Reforms)-कृषि भूमि सम्बन्ध सुधार में भूमि सूधार, काश्तकारी सुधार, कृषको को कृषि निविष्टों एवं कृषि ऋण की पूर्ति करने, कृषि के लिए तकनीकी सलाह प्रदान करना एवं वह सभी बातें सम्मिलित होती है। जिसका कृषि विकास से सीधा सम्बन्ध होता है। अतः यह शब्द बहुत ही विस्तृत शब्द है।

भू- भूमि (Land Tenure)-भू-घृति से तात्पर्य भूमि को पट्टे पर देने की शर्तो एवं अन्य परिस्थितियों के ज्ञान से है। भू-घृतियो में कृषि करने हेतु ली गई भूमि के अधिकार, स्वामित्व, राजस्व भुगतान आदि ज्ञान सम्मिलित होता है।

भू- धारक प्रणाली (Tenancy System) भूमि का स्वामित्व तथा भूमि के प्रति एवं दायित्व निर्धारित होते है। भू-धारण प्रणाली से इस बात की जानकारी प्राप्त होती हं कि भूमिका स्वामी कौन है और कृषक का भू-स्वामी से क्या सम्बन्ध होता है।

जोत की उच्चतम सीमा (Ceiling on holding)-जोत की उच्चतम सीमा से तात्पर्य किसी अधिनियम द्वारा एक निश्चित सीमा से अधिक भूमि के धारण अथवा स्वामित्व पर रोक लगाना है।

जोत चकबंदी (Consolidation of holding)-भूमि विखंडन की समस्या जोतों की चकबंदी से हल की जा सकती है। इसके अन्तर्गत किसान की बिखरी हुई जोतों को एक स्थान या चक में इकट्ठा करने का प्रबंध किया जाना है एवं किसानों को एक खान पर उनके बिखरे हुए टुकड़ों के कुल मूल्य के बराबर की इकट्ठी भूमि दी जाती है।

21.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं पाठ्य सामग्री

1. अग्रवाल, एन.एल., भारतीय कृषि अर्थतन्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं.1,
2. Dantwala, M.L., Indian Agricultural Development Since Independence ,a Collection of Essays, Oxford and IBH Publishing House, New Delhi,1985 pp.65-86.
3. Conference papers on change in Agrarian Structure and Agrarian Relations in States of India Since Independence, Indian Journal of AgriculturalEconomics,Vol.XXXVI,No.4,October-December 1981,pp.134-196.
4. Rapporteurs Report on Changes in Agrarian Structure and Agrarian Relations in States of India Since independence; Indian Journal of Agricultural Economics,Vol.XXXVII,No.1,January-March 1982,pp..29-33
5. Report No.15 of National Commission on Agriculture Ministry of Agriculture, Government of India, New Delhi 1976.
6. YOJANA-Fortnightly magazine, Govt. of India, New Delhi.

परिशिष्ट

इकाई-21

कृषि भूमि संबंध व भूमिसुधार

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में भूमि सुधार कार्यक्रम इस प्रकार थे।

1. जिन राज्यों ने काश्तकारों के अधिकारों की सुरक्षा व लगान नियमन के कानून नहीं बनाए थे, उन्हें सातवीं योजना में इन कानूनों को बनाने के लिए कहा गया। अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के भूमि अधिकारों की रक्षा करने पर बल दिया गया ताकि उनसे भूमि छीनी न जा सके।
2. सीलिंग में घोषित भूमि व वितरित भूमि का अन्तर कम करने पर जोर दिया गया।
3. सीलिंग से ऊपर की अतिरिक्त भूमि जिन लोगों को मिली है, उन्हें वित्तीय सहायता देने पर जोर दिया गया। उनके लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम व अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का भूमि सुधार से तालमेल बिठाया गया।
4. देश के पूर्वी भाग में चावल का उत्पादन बढ़ाने के लिए चकबंदी का काम पूरा करने पर जोर दिया गया।
5. सभी राज्यों में भूमि-रिकार्डो को नवीनतम बनाने पर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता स्वीकार की गई। बिना मापी गई भूमिका वैज्ञानिक सर्वेक्षण कराने तथा काश्तकारों व बटाईदारों के अधिकारों के रिकार्ड बनाने पर ध्यान आकर्षित किया गया। इस कार्य में राज्य सरकारों को मदद देने, रेवेन्यू मशीनरी को सुदृढ़ करने तथा कर्मारियों को प्रशिक्षण देने और उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने पर बल दिया गया।
6. सीलिंग से ऊपर की भूमि प्राप्त करने वाले लोगों को वित्तीय सहायता देने पर जोर दिया गया ताकि वे उत्पादन बढ़ाने में सफल हो सकें।

आठवी पंचवर्षीय योजना (1992-97) में भूमि सुधार

आठवीं योजना में इस बात पर बल दिया गया कि वास्तविक कृषक अपने अधिकारो के प्रति जागरूक ही और भूमिसुधारों से आवश्यक लाभ प्राप्त कर सकें। इस योजना में भूमि सुधार के निम्न उद्देश्य रखे गये :

(I). ग्रामीण सम्बन्धों को पुर्नगठित करके समताकारी समाज की रचना करना।

(II). भूमिसम्बन्धों में शोषण समाप्त करना।

(III). "भूमि उसको जोतने वाले की" का लक्ष्य प्राप्त करना।

(IV). ग्रामीण गरीब वर्ग के भूमि आधार को व्यापक करके उसकी आथिक सामाजिक दशा को सुधारना।

(V). कृषिगत उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि करना।

(VI). स्थानीय संस्थाओं में समानता का अधिक मात्रा में समावेश करना।

यह आशा की गई कि काश्तकारों व बटाईदारों के संगठन से छिपी हुई काश्तकारियों को पहचानने में मदद मिलेगी। सीलिंग से ऊपर 'सरप्लस भूमि' का पता लगाया जाना चाहिए।

कॉमन सम्पत्ति के साधनों पर पंचायतों का अधिकार स्थापित करने का प्रयास करना होगा ताकि उन पर व्यक्ति अपना अधिकार जमाने की कोशिश न करे। गरीबों को उनसे अपनी आमदनी बढ़ाने का अवसर मिलना चाहिए।

राज्यों को भूमि सुधारों में प्राप्त सफलता के सूचकांक के आधार पर केन्द्रीय सहायता के वितरण करने पर जोर दिया गया।

आशा को गई कि आठवीं योजना में व आगामी वर्षों में काश्तकारी सुधारों, सीलिंग कानूनों को लागू करने, चकबन्दी, भूमि रिकार्ड ठीक करने व गाँव के गरीबों के लिए कॉमन प्रोपर्टी के लाभ सुरक्षित करने पर जोर देने से भूमि सुधार कार्यक्रम का महत्व बढ़ेगा।

इकाई 22

हरित क्रान्ति
(Green Revolution)

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 हरित क्रान्ति
22.2.1 हरित क्रान्ति से तात्पर्य
22.2.2 हरित क्रान्ति का प्रादुर्भाव
22.2.3 हरित क्रान्ति के अवयव
22.2.4 हरित क्रान्ति का कृषि क्षेत्र पर आर्थिक प्रभाव
22.2.5 हरित क्रान्ति का सामाजिक प्रभाव
22.2.6 हरित क्रान्ति का कृषि श्रम की आवश्यकता पर
22.3 सारांश
22.4 शब्दावली
22.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं पाठ्य सामग्री

22.0 उद्देश्य

भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास विषय के इस तृतीय खण्ड की प्रस्तुत इकाई में कृषि क्षेत्र में आई हरित क्रान्ति से सम्बन्धित ज्ञान का विवेचन किया जा रहा है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे : -

* हरित क्रान्ति से क्या तात्पर्य है? हरित क्रान्ति का देश में प्रादुर्भार्द किस प्रकार एवं किस समय हुआ?
* हरित क्रान्ति के प्रमुख अवयव कौन-कौन से है? विपिन कृषि निवेशों का हरित क्रान्ति लाने में क्या योगदान है?
* हरित क्रान्ति के कारण कृषि क्षेत्र में आए आर्थिक प्रभाव जान सकेगें।
* हरित क्रान्ति के कारण कृषको एवं विभिन्न क्षेत्रों के कृषि क्षेत्र में प्राप्त आय पर प्रभाव पड़ा है?
* हरित क्रान्ति के कारण कृषि श्रम की माँग एवं देश में रोजगार उपलब्धि पर होने वाले प्रभाव को जान सकेगें।

22.1 प्रस्तावना

वर्ष 1965-66 व 1966-67 के सूखा ने देश में खाद्यान उपलब्धियों की समस्या को विषय बना दिया और उत्पन्न स्थिति ने कृषि वैज्ञानिको के समक्ष कृषि उत्पादन में वृद्धि लाने के लिए चुनौती की कृषि वैज्ञानिको ने अपने अथक अनुसंधान परिणामों के फलस्वरूप उन्मत किस्म के बीज, विभिन्न उर्वरक, कीटनाशी दवाईयों एवं उन्मत कृषि यन्त्र तथा कृषि उत्पादन की नई विधि का आविष्कार किया। दूसरी ओर सरकार ने भूमिसुधार एवं कृषि क्षेत्र में आवश्यक आधार धारिक संरचनाओं में सुधार एवं विकास भी किया। अतः भूमि सुधार कार्यक्रम एवं कृषि निविष्टों एवं उचित कृषि विधि के उपयोग तथा प्रसार ज्ञान के फलस्वरूप देश में खाद्यान (प्रमुखतया गेहूँ, चावल एवं मोटे अनाज) में तीव्र दर से वृद्धि हुई। इस खाद्यान उत्पादन में वृद्धि की हुई असाधारण दर को कृषि वैज्ञानिको ने हरित क्रान्ति का नाम दिया। इसके कारण खाद्यान उत्पादन कृषको की आय एवं कृषि श्रम की माँग में वृद्धि हुई। प्रस्तुत इकाई में इन पहलुओं का विस्तार : से वर्णन किया गया है।

22.2 हरित क्रान्ति)Green Revolution)

22.2.1 हरित क्रान्ति से तात्पर्य.हरित क्रान्ति, हरित एवं क्रान्ति शब्द के मिलने से बना है। क्रान्ति से नात्र्या किसी घटना में द्रुतगति से परिवर्तन होने तथा उन परिवर्तनो का प्रभाव आने वाले लम्बे समय तक रहने से है। हरित शब्द कृषि फसलों का सूचक है। अतः हरित क्रांति से तात्पर्य कृषि उत्पादन में अल्पकाल में विशेष गति से वृद्धि का होना तथा उत्पादन की यह वृद्धि दर आने वाले लम्बे समय तक बनाये रखने से है। दूसरे शब्दों में हरित क्रान्ति से आभिप्राय : देश के सिंचित एवं असिंचित कृषि क्षेत्रों में अधिक उपज देने वाले संकर एवं बौनी किस्म के बीजों के उपयोग द्वारा कृषि उत्पादन में द्रुतगति से वृद्धि करना है। अधिक उत्पादन देने वाली किस्मों के बीजों द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि करना, अथवा कृषि विकास कें क्षेत्र में अपनाये जा रहे नये तकनीकी ज्ञान को ही "हरित क्रान्ति" का नाम दिया गया है।

22.2.2 हरित क्रान्ति का प्रांर्दुभाव भारत में हरित क्रान्ति वर्ष, 1966-67 के उपरान्त काल में आई है। यह हरित क्रान्ति, कृषि क्षेत्र में नये तकनीकी ज्ञान के आविष्कार एवं प्रसार का परिणाम है। हरित क्रान्ति के जन्मदाता का श्रेय नोबल पुरस्कार विजेता प्रो. नोरमन बारलोग को जाना है।

देश में कृषि क्षेत्र में तकनीकी ज्ञान का आविष्कार एवं उसका वृहत स्तर पर उपयोग उन्मत एवं अधिक उत्पादन देने वाले संकर एवं बोने किस्म के बीजों का आविष्कार, विभिन्न उर्वरको का अधिक मात्रा में उत्पादन एवं संतुलित मात्रा में उपयोग, सिचाई सुविंधाओ का विकास, कीटनाशक दवाईयों का उपयोग, कृषि क्षेत्र में उन्नत औजार एवं मशीनों का अधिकाधिक उपयोग, कृषि में विद्युतीकरण, कृषि क्षेत्र में ऋण का विस्तार, आदि के सम्मिलित प्रयासों के फलस्वरूप वर्ष 1966-67 कें उपरान्त काल में उत्पादन में.तीव्र गति से वृद्धि हुई हैं। उत्पादन वृद्धि की इस

असाधारण गतिदर को देश के कृषि वैज्ञानिको ने हरित क्रान्ति का नाम दिया है। इस प्रकार हरित क्रान्ति का प्रार्दुभाव देश मे वर्प 1966-67 के उपरान्त काल में हुआ है।

22.2.3 हरित क्रान्ति के अवयव: हरित क्रान्ति का प्रमुख अवयव अधिक उत्पादन देने वाली बौनी एवं संकर किस्म के उन्मत बीजों का आविष्कार है। इनके आविष्कार एवं उपयोग से भूमि की उत्पादकता में वृद्धि के साथ-साथ फार्म पर फसल गहनता में भी वृद्धि हुई है। कम समय मे पकने वाली किस्मों के आविष्कार के कारण कृषक अब वर्ष में दो फसलों के स्थान पर बान एवं बार फसल या लन म सक्षम हो गया है। इस प्रकार प्रति इकाई भूमि के क्षेत्र से वर्ष में कृषि उत्पादन की प्राप्त उत्पादन मात्रा पहले की अपेक्षा कई गुना प्राप्त होने लग गई है। उन्नत किस्म के बीजों में कृषि करने के लिए सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि, उर्वरको की खपत की मात्रा में वृद्धि, फसल सरक्षण उपाय अपनाने, कृषि कार्यो का समय एवं उचित दक्षता से पूरा करने के लिए कृषि राजा एवं मशीनों का उपयोग भी आवश्यक हो गया है। कृषि उत्पादन में वृद्धि की यह असाधारण गति, इन सभी उपायों के सम्मिलित प्रयास का प्रतिफल है। दूसरे शब्दों में इन उपायों के एक पैकेज के रूप में ही अपनाने से कृषि उत्पादन में यह वृद्धि दर प्राप्त हो पाई है। अत हरित क्रान्ति के प्रमुख अवयव निम्न है -

1. अधिक उपज देने वाले संकर एवं बौनी किस्मों कें उन्मत बीजों काउपयोग।
2. बहुफसलीय कार्यक्रम का विस्तार।
3. उर्वरको का उचित समय पर सिफारिश मात्रा' में सन्तुलित रूप मे, उपयोग।
4. सिंचाई सुविधाओं का विकास।
5. फसल संरक्षण उपायों का अपनाना।
6. कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए आवश्यक आधारभूत सुविधाओं जैसे कृषि ऋण की उपलब्धि, कृषि विपणन के लिए परिवहन, संग्रहण एवं मण्डी सुविधाओं का विकास, आदि।
7. कृषको उत्पाद की प्रेरणादायक कीमतें प्रदान करना।
8. कृषि शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुसंधान सुविधाओं का विकास।
9. कृषि क्षेत्र में विद्यूत का प्रसार।

हरित क्रान्ति के प्रार्दुभाव के पूर्व, कृषक फार्म पर उत्पादन बढ़ाने के लिए पुरानी विधियों, फार्म पर उत्पादित बीज एवं खाद तथा उत्पादन वृद्धि के अन्य साधनों का कम मात्रा में उपयोग करते थे; जिसके कारण उन्हें भूमि के प्रति इकाई क्षेत्र से उत्पादन की मात्रा कम प्राप्त होती थी। हरित क्रान्ति के कारण कृषक निश्चिता (Stagnation) की स्थिति से बाहर जाकर गतिशीलता के मात्र में प्रवेश कर गये है।

22.2.4 हरित क्रान्ति का कृषि क्षेत्र पर प्रभाव : हरित क्रान्ति के फलस्वरूप देश के सभी क्षेत्रों के सभी जोत कृषको को लाभ प्राप्त हुआ है। यह लाभ उनको फार्म पर प्रति इकाई भूमि के क्षेत्र से उत्पादकता एवं आय में वृद्धि के कारण प्राप्त होता है। लेकिन यह लाभ विभिन्न कृषको को उनके द्वारा प्रायोगित ज्ञान के स्तर की विभिन्नता के कारण समान मात्रा में प्राप्त नहीं होकर, अपनाये गये तकनीकी ज्ञान स्तर की विभिन्नता कें कारण विभिन्न मात्रा में प्राप्त होता है। अधिक लाभ प्राप्त होने वाले एवं कम लाभ प्राप्त होने वाले दोनों ही प्रकार के कृषक हरित क्रान्ति के प्रति

जागरूक है। आय की असमानता ने सामाजिक विषमताओं को भी जन्म दिया है। अतः यहाँ पर हरित क्रान्ति के उपरोक्त दोनों प्रकार के प्रभावों की विवेचना की जा रही है।

हरित क्रान्ति का कृषि क्षेत्र पर आने वाले प्रभाव को निम्न दो, श्रेणियों में विभाजित करके अध्ययन किया जा सकता है : -

1. आर्थिक प्रभाव (Economic Impact)

अ. कृषि उत्पादों की उत्पादकता में वृद्धि।

ब. क्षीर उत्पादन में वृद्धि

2. सामाजिक प्रभाव (Sociological Impact)

अ कृषको की व्यक्तिगत आय असमानता में वृद्धि।

ब. विभिन्न क्षेत्र के कृषको की आय असमानता में वृद्धि।

हरित क्रान्ति का आर्थिक प्रभाव : हरित क्रान्ति के फलस्वरूप कृषि उत्पादको को प्रति इकाई भूमि के क्षेत्र से प्राप्त उत्पादकता एवं अल्पकाल में पकने वाली किस्मों के आविष्कार के कारण फसल गहनता में वृद्धि के कारण प्रति फार्म प्राप्त उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हुई है जिसके फलस्वरूप कृषि उत्पादों की उत्पादन लागत में कमी आई है तथा कृषको को अपने फार्म क्षेत्र से अधिक शुद्ध लाभ की राशि प्राप्त होने लग-गई है। इस प्रकार कृषको के आर्थिक स्तर में सुधार हुआ है। इन्हें कृषि क्षेत्र में हरित क्रान्ति का आर्थिक प्रभाव कहा गया है।

(1) कृषि उत्पादों की उत्पादकता में वृद्धि

हरित क्रान्ति का प्रथम आर्थिक प्रभाव, कृषि उत्पादों की प्रति हैक्टर भूमि के क्षेत्र से प्राप्त उत्पादकता स्तर में वृद्धि होना है। निम्न सारणी में भारत में विभिन्न फसलों की विभिन्न काल में भूमि के प्रति हैक्टर क्षेत्र सें प्राप्त उत्पादकता प्रदर्शित का गई है।

सारणी-22.1 भारत में विभिन्न फसलों की उत्पादकता

(किलोग्राम प्रति हैक्टर)

फसल	वर्ष							
	1950-51	1965-66	1969-70	1975-76	1980-81	1984-85	1985-86	1994-95
गेहू	663	827	1209	1410	1630	1870	2046	2550
चावल	668	-	1073	1235	1336	1417	1368	1920
ज्वार	-	522	591	660	713	633	780	
बाजरा	-	-	426	496	458	569	344	
मक्का	-	-	968	1203	1139	146	1146	1490
अनाज	-	865	1041	1142	1265	1323		
दलहन	-	-	531	533	473	526	544	-
मूँगफली	-	720	935	736	898	719	1040	
कपास	88	122	138	132	196	197	246	

Source: Indian Agriculture in Brief, Directorate of Economics and Statistics, Ministry of Agriculture, Government of India, New Delhi – Various issues

सारणी से स्पष्ट है कि हरित क्रान्ति के बाद के वर्षो में देश में विभिन्न फसलों की उत्पादकता के स्तर में विशेष दर से वृद्धि हुई है। यह वृद्धि दर खाद्यानों में अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक हुई हैं। गैर खाद्यानों वाली फसलों की अपेक्षा उत्पादकता में वद्धि की दर कम है। खाद्यानों में गेहूँ एवं चावल की उत्पादकता में वृद्धि की गति अन्य खाद्यान्नों जैसे जार, बाजरा, मक्का एवं जौ की अपेक्षा अधिक है। इसी कारण अनेक वैज्ञानिको ने इसे हरित क्रान्ति के स्थान पर गेहूँ क्रान्ति से भी सम्बोधित किया है।

(2) कृषि उत्पादन मे, वृद्धि

हरित क्रान्ति का दूसरा आर्थिक प्रभाव क्षेत्र मे, कुल उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होना है। हरित क्रान्ति के प्रार्दुभाव के उपरान्त देश में कृषि उत्पादन की कुल मात्रा में तीव गति से वद्धि है जो सारणी 22.2 से स्पष्ट है -

सारणी-22.2 देश में खाद्यानों का उत्पादन

(मिलियन टन)

वर्ष	कुल खाद्यान्न उत्पादन	चावल उत्पादन	गेहू उत्पादन
1950-51	5092	-	6.46
1960-61	82.02	-	-
1965-66	72.347	-	10.39
1970-71	108.422	42.23	23.83
1975-76	121.030	48.74	28.85
1980-81	129.90	55.63	36.31
1982-83	129.520	47.12	42.79
1983-84	152.037	60.10	45.48
1985-86	150.440	63.82	47.05
1986-87	143.420	60.56	44.32
1987-88	138.410	56.43	45.10
1990-91	176.000	75.00	55.0
1996-97	191.000	81.00	65.0
1997-98	192.004	82.03	65.9
1998-99(Estimate)	195.002	82.02	69.1

वर्ष 1965-66 के उपरान्त कुल खाद्यानों के उत्पादन में तीव्र से वृद्धि 'हुई है, जिसका प्रमुख श्रेय हरित क्रान्ति को जाता है। खाद्यान्नों का उत्पादन स्तर 1965-66 में 72.347 मिलियन टन था जो बढ़कर 1970-71 में 108.422 टन, 1975-76 में 121.03 मिलियन टन, 1980-81 में 129-590 मिलियन टन " 1985-86 में 130-440 मिलियन टन हो गया। 1996-97 में कुल खाद्यात्र उत्पादन 191 मिलियन टन हो गया था जो 129 1998-99 में 195.2 मिलियन टन हो जाने का है। देश में

सूखा के कारण वर्ष 1986-87 एवं 1987-88 में खाद्यान्न उत्पादन में आई है। इस प्रकार पिछले 20 वर्षों में खाद्यानों के उत्पादन स्तर में 100 प्रतिशत से वृद्धि हुई है। इस शताब्दी के अन्त तक देश की 95 करोड़ जनसंख्या के लिए खाद्यान्न आवश्यकत 200 मिलियन टन होने का अनुमान है जों आशा है कि हरित क्रान्ति के प्राप्त हो सकेगी।

खाद्यान्नों के अतर्गत सवांधिक उत्पादन -वृद्धि गेंहू के उत्पादन में हुई है। गेहू का उत्पादन वर्ष 1965-66 में 10.39 मिलियन टन था, वह बढकर 1996-97 में 65 मिलियन टन पहुँच गया अर्थात् उत्पादन में 6 गुना से अधिक वृद्धि हुई है वर्ष 1998-99 में गेंहूँ का उत्पादन 69 मिलियन टन होने की संभावना है। ऐसा संसार के इतिहास में अद्वितीय है। उपरोक्त काल में धान (चावल) एवं मोटे अनाजों के उत्पादन में भी विशेष दर से वृद्धि हुई है। दलहन एवं तिलहन फसलों के उत्पादन में विशेष वृद्धि नहीं हुई है।

22.2.5 हरित क्रान्ति का सामाजिक प्रभाव: हरित क्रान्ति के उपरोक्त आर्थिक प्रभावों के फलस्वरूप सामाजिक क्षेत्र में निम्न सामाजिक विषमताएं भी उत्पन्न हो गई है जिनके कारण विभिन्न जोन स्तर के कृषको एवं विभिन्न क्षेत्रों के कृषको में वैमनस्यता की भावना को बढ़ावा मिलता है। हरित क्रान्ति के सामाजिक क्षेत्र में आनेवाले कुप्रभाव निम्न दो श्रेणी में विभक्त किये गये है:

(1) कृषको की व्यक्तिगत आय असमानता में वृद्धि

हरित क्रान्ति के कारण वर्तमान में व्याप्त दीर्घ एवं लघु जोत कृषको अथवा धनी एवं निर्धन वर्ग कृषको के मध्य पाये जाने वाली आय असमानता में वृद्धि हुई है। हरित क्रान्ति के फलस्वरूप धनी कृषक अधिक धनी हो गये है और गरीब कृषक उसी आय स्तर पर रह जाने से दोनों वर्गो के कृषको के मध्य पाई जाने वाली आय के अन्तर में वृद्धि हुई है।

वैज्ञानिको का मानना है कि नया तकनीकी ज्ञान स्तर अथवा हरित क्रान्ति उत्पादन के पैमाने के प्रति उदासीन (Neutral to Scale) होता है। अर्थात् सभी जोत स्तर के कृषक तकनीकी ज्ञान के उपयोग से समान उत्पादकता स्तर प्राप्त कर सकते है। तकनीकी दृष्टिकोण से वैज्ञानिको का यह दृष्टिकोण सही है, लेकिन संस्थागत कारणों से बड़े कृषक हरित क्रान्ति से वास्तविक परिस्थिति में अधिक लाभ प्राप्त कर पाने में सक्षम होते है। मध्यम एवं लघु जोत कृषको को दीर्घ जीत कृषको के समान मात्रा में लाभ प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार के अन्तर का प्रमुख कारण नये तकनीकी ज्ञान के उपयोग में काफी मात्रा में पूँजी का निवेश होना है। नये तकनीकी ज्ञान में उन्मत बीज, आवश्यक मात्रा मे उर्वरक एवं कटिनश्ट्ट दवाईयाँ, सिंचाई के लिए विद्युत का उपयोग, उन्मत कृषि यन्त्रों की आवश्यकता, आदि के फलस्वरूप फसलों के कृषित करने पर प्रति हैक्टर व्यय राशि अधिक आती है। उत्पादन के विभिन्न निविष्ट सम्मिलित रूप में (पैकेज) उपयोग करने से ही आवश्यक उत्पादन स्तर या आय प्राप्त कराने में सदनम होतै है। पूँजी का इतनी अधिक मात्रा में निवेश करना, लघु एवं मध्यम जोत अथवा निर्धन कृषको के लिए संभव नहीं होता है क्योंकि उनके पास संचय की गई धनराशि का अभाव होता है। साथ ही इन कृषको को संस्थागत साधनों से प्रतिभूत के अभाव में आवश्यक राशि में उन सुविधा भी उपलब्ध नई हो पाती है। अतः आवश्यक राशि में धन के अभाव

में हरित क्रान्ति का पूर्ण लाभ सीमान्त, लघु एवं मध्यम जोत कृषको अथवा निर्धन कृषको को नहीं मिल पाता है, जबकि दीर्घ जोत कृषक या धनी कृषक संस्थागत - साधनों से आवश्यक राशि में ऋण प्राप्त करने में सक्षम होते है और उनके पास पूर्व बचत की राशि भी होती है जिन्हें वे कृषि में निवेश करके अधिक लाभ कमा पाते है। इस प्रकार हरित क्रान्ति के कारण वास्तविक परिस्थिति में विभिन्न स्तर के कृषको को प्राप्त होने वाले लाभ की कुल राशि में अन्तर होता है। जिसके कारण धनी कृषक की अपेक्षा अधिक धनी एवं निर्धन कृषक -पहले की अपेक्षा निर्धन होने से, दोनों स्तर के कृषको के मध्य पाये जाने वाली आय के अन्तर में निरन्तर वृद्धि हुई हैं। कृषक समाज धनी एवं निर्धन वर्ग में विभक्त होते जा रहा है। इस आय असमानता की बढ़ती हुई खाई ने उनमें आपस में वैमनस्यता की भावना जागृत कर दी है।

नये तकनीकी ज्ञान स्तर के उपयोग में जोखिम की अधिकता के कारण, लघु एवं निर्धन वर्ग के कृषक जोखिम वहन अपना क्षमता कम होने के कारण, इस ज्ञन को ऐसे अपनाते है। जबकि दीर्घ जोत कृषक या धनी कृषक कृषि प्रसार अधिकारीयों से प्राप्त के आधार पर शीघ्र अपना पाने में सक्षम होते है। इस प्रकार नये ज्ञान को सर्वप्रथम अपनाने वाले कृषक (Early adopters), देर से अपनाने वाले (laggards) की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त ही नहीं करते है, बल्कि लाभ की राशि भी बहुत पहले प्राप्त करते है। अन्य कृषक जब इस ज्ञान स्तर को अपना बनाते है तो प्रति बढ़ने के कारण प्रति इकाई लाभ कम होता जाता है। अतः लघु एवं निर्धन वर्ग कृषको को कम प्राप्त होने के साथ-साथ, उन्हे लाभ देर से भी प्राप्त होता है जिससे दोनों वर्गों के कृषको 'कट की खाई अत्याधिक विस्तृत होती जा रही हैं।

(2) विभिन्न क्षेत्रों के क्षको की आय असमानता मे वृद्धि (Regional Disparities of the Farmers)

नये तकनीकी ज्ञान अर्थात् हरित क्रान्ति का दूसरा सामाजिक कुप्रभाव देश के विभिन्न राज्यों के कृषको अथवा एक ही राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के कृषको की आय असमानता में वृद्धि करना है। हरित क्रान्ति का अपनाना उन ही क्षेत्रों में संभव हो सका है, जहाँ पर पर्याप्त एवं समुचित सिंचाई सुविधायें उपलब्ध है। पर्याप्त सिंचाई सुविधा नहीं होने वाले' क्षेत्रों अर्थात् सूखे क्षेत्रों में उन्मत एवं संकर बीज एवं उर्वरको का उपयोग संभव नहीं होता है। सिंचाई की सुविधा देश के सभी राज्यों एवं राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में समान नहीं है। वर्तमान में देश के 30 प्रतिशत क्षेत्र में ही सिंचाई की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध है एवं शेष 70 प्रतिशत क्षेत्र कृषि उत्पादन के लिए वर्ग पर ही निर्भर है। उदाहरण के लिए पंजाब एवं हरियाणा राज्य में सिचाई की सुविधा अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक है। इसी प्रकार राजस्थान राज्य के श्रीगंगानगर एवं कोटा जिलों में सिंचाई की पर्याप्त सुविधा नहरों के विस्तार के कारण विद्यमान है, जबकि पश्चिमी राजस्थान के जिलो में सिंचाई सुविधाओं का अभाव है। इस कारण उन राज्यों एवं क्षेत्रों के कृषको को जहाँ पर पर्याप्त सिंचाई सुविधा विद्यमान है, आय अधिक प्राप्त होती है। तथा सूखाग्रस्त एवं कम सिंचाई वाले क्षेत्रों में हरित क्रान्ति का प्रभाव कम अथवा नगन्य है। इस प्रकर विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध सिचाई सुविधा के कारण क्षैत्रिक आय असमानता में भी वुद्धि हुई है। जो क्षेत्र 'पहले समृद्वशील, वे हरित क्रान्ति के प्रार्दुभाव के कारण

अधिक समृद्शाही हो गये है और पिछड़े राज्याक्षेत्र अधिक पिछड़ गये हैं। इस प्रकार हरित क्रान्ति के आर्थिक प्रभाव के साथ-साथ देश में सामाजिक कुप्रभाव भी आये है।

देश में खाद्यानों की कमी एवं बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यानों की आपूर्ति में वृद्धि करने के लिए हरित क्रान्ति का आना देश के लिए वरदान साबित हुआ है। इसी हरित क्रान्ति से हम पूर्ण आशान्वित है कि आने वाले समय में उत्पादन में और अधिक वृद्धि करके बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न आवश्यकता की पूर्ति करके देश खाद्यान्न उत्पादन में आत्म-निर्भर रह सकेगा।

22.2.6 हरित क्रान्ति का कवि श्रम पर प्रभाव : भारतीय कृषि में उन्नत बीज, तकनीकी ज्ञान एवं यंत्रीकण का उपयोग पिछले दो दशकों से निरन्तर बढ़ता जा रहा है। परिणाम स्वरूप प्रति इकाई भूमि के क्षेत्र की उत्पादकता एवं आय में वृद्धि हुए है। लेकिन इन सबके उपयोग से कृषि श्रम की माँग पर पड़ने वाले प्रभावों के संबंध में अनेक भ्रान्तियॉ व्याप्त है। कुछ व्यक्तियों का मत है कि कृषि में यन्त्रीकरण को अपनाने से श्रमिको में बेरोजगारी बढ़ती है जो कि भारत जैसे अधिक श्रमशक्ति वाले देश के लिए उचित नहीं है। व्यक्तियों का मत है कि कृषि में यन्त्रीकरण के अपनाने सें भूमि की उत्पादकता में वृद्धि, है जिससे श्रम कीब मांग में वृद्धि होती है एवं उपलब्ध रोजगार में वृद्धि होती है। कृषि में मात्र यन्त्रीकरण अपनाने से उत्पादन में वृद्धि नहीं होती है बल्कि उन्मत बीज, उर्वरक, सिंचाई के जल, कृषि में उन्नत यन्त्रों एवं नए तकनीकी ज्ञान के सम्मिलित उपयोग से उत्पादन वृद्धि होती है। अतः.इस भाग में हरित क्रान्ति के भिन्न अवयवों के सामाजिक उपयोग के कारण कृषि श्रम पर आने वाले प्रभाव का वर्णन किया गया है।

हरित क्रान्ति का कृषि श्रम पर दो प्रकार का प्रभाव आता है -

(1) प्रत्यक्ष प्रभाव- उन्मत बीजों के उपयोग नए तकनीकी ज्ञान तथा कृषि में यन्त्रीकरण के अपनाने का कृषि श्रम की आवश्यकता पर आने वाला प्रभाव धनात्मक होता है, क्योंकि कम अवधि में पकने वाली किस्मों को अपनाने से कृषक भूमि के एक इकाई 'क्षेत्र से वर्ष में 3 से 4 फसले सुगमता से लेकर बहुफसलीय कार्यक्रम अपना पाते है। इसमें फार्म फसल गहनता (cropping intensity') एवं कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है। अधिक उत्पादन की मात्रा की कटाई, गहाई, ढुलाई के लिए अधिक श्रम की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के आने वाले प्रभावों को प्रत्यक्ष प्रभावों की श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है क्योंकि इस प्रकार के प्रभावों को सुगमता से आकलन किया जा सकता है।

राष्ट्रीय कृषि आयोग के वृतांत से स्पष्ट है कि क्षेत्र में अधिक पैदावार देने वाले उन्नत किस्मों को लेने से देशी किस्मों की अपेक्षा 30 मानव दिवस प्रति एकड प्रति वर्ष श्रम की अधिक आवश्यकता होती है। इसी प्रकार बहुफसलीय कार्यक्रम के एक एकड़ भूमि क्षेत्र पर अपनाने से 26 मानव दिवस श्रम की अधिक आवश्यकता होता है। विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा किए गए अध्ययनों से भी ऐसे प्रमाण प्राप्त हुए है। श्रम की आवश्यकता में सभी जोत कृषको के यहां वृद्धि होती है।

(11) अप्रत्यक्ष प्रभाव-उन्नत बीजों एवं कृषि में यन्त्रीकरण के अपनाने से कृषि श्रम की माँग पर आने वाले दूसरे प्रकार के प्रभाव को अप्रत्यक्ष श्रेणी के होते है। फार्म पर उन्मत बीजों को अधिक मात्रा में उपयोग करने से सिंचाई, उर्वरक, कीटनाशी दवाईयों का अधिक मात्रा में उपयोग

करना होता है। कृषि में यन्त्रीकरण के अपनाने से कृषि यन्त्रों के निर्मित करने, विक्रय करने एवं उन्हें कार्यगत रखने के लिए श्रमिको की अधिक आवश्यकता होती है। अत: उत्पादन साधनों की बढ़ती हुई आवश्यकता की की पूर्ति के लिए इनके उत्पादन विपणन आदि कार्यों के लिए अधिक श्रमिको की आवश्यकता होती है जिससे श्रम की कुल आवश्यकता में वृद्धि होती है। इस प्रकार अतिरिक्त श्रम की मात्रा में जो वृद्धि होती है वह अप्रत्यक्ष प्रभाव की श्रेणी में आती है क्योंकि इस प्रकार के प्रभावों के आकलन का कार्य कठिन होता है।

अतः हरित क्रान्ति के फलस्वरूप कृषि श्रम की माँग में वृद्धि होती है। मांग में परिवर्तन के साथ-साथ श्रम की विभिन्न समय में होने वाली माँग की मात्रा में भी परिवर्तन होता है। श्रम की कम माँग वाले मौसम एवं अधिक मॉग वाले मौसम के रूप में भी परिवर्तन होता है तथा विभिन्न महीनों में श्रमिको की मांग की असमानता भी कम हो जाती है।

बोध प्रश्न

1. हरित क्रान्ति से क्या अभिप्राय है?
2. हरित क्रान्ति के प्रमुख अवयव कौन-कौन से है?
3. हरित क्रान्ति को "गेहूँ-क्रान्ति" के नाम से क्यों सम्बोधन किया जाता है?
4. हरित क्रान्ति के आर्थिक एवं सामाजिक प्रभावों की विवेचना कीजिए।

22.3 सारांश

हरित क्रान्ति से तात्पर्य कृषि उत्पादन में अल्पकाल में विशेष गति से वृद्धि का होना तथा यह वृद्धि: दर लम्बे समय तक बने रखने से है। देश में हरित क्रान्ति का प्रार्दुभाव वर्ष। 1966-67 के उपरान्त काल में हुआ है और इसके जन्मदाता का श्रेय प्रो.नारमन घोरलोग को है।

हरित क्रान्ति के प्रमुख अवयव-अधिक उपज देने वाले संकर एवं बौनी किमी के उन्मत बीज, बहुफसलीय कार्यक्रम, उर्वरको का सन्तुलित मात्रा में उपयोग, सिंचाई सुविधाओं का विकास फसल संरक्षण उपायों का अपनाना, आधारभूत सुविधाओं का विकास, कृषको को प्रेरणादायक कीमतें प्रदान करना, कृषि शिक्षा, प्रशिक्षण सुविधा एवं अनुसन्धान का विकास एवं कृषि क्षेत्र में विलुत प्रसार का होना है।

हरित क्रांति के कारण निम्न दो प्रकार के आर्थिक प्रभाव कृषि क्षेत्र में विद्युत प्रसार होना है :

(i). कृषि उत्पादों की उत्पादकता में वृद्धि होना।

(ii). कृषि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होना।

इन दोनों ही प्रभावों के कारण कृषको की आय में वृद्धि हुई है। हरित क्रांति कें कारण आए सामाजिक प्रभाव भी निम्न दो प्रकार के होते है :

(i). कृषको की व्यक्तिगत आय असमानता में वृद्धि होना।।

(ii). विभिन्न क्षेत्रों कें कृषको की आय असमानता में वृद्धि होना।

हरित क्रान्ति के कारण कृषि श्रम की कुल माँग में भी वृद्धि हुई है तथा कृषि, श्रम के माँग के समय में भी परिवर्तन आया हैं।

22.4 शब्दावली

Green Revolution – Can be defined as a change from traditional farming to a production syndrome encompassing the use high yielding grain seed genotype, chemical fertilizers, non traditional farm management techniques and modern irrigation equipments and machinery

22.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं पात्य सामग्री

(i). अग्रवाल, एन.एल., भारतीय कृषि का अर्थतंत्र, राजस्थान हिन्दी यन्त्र अकादमी, प्लाट नं.1, मालाना संस्थानिक क्षेत्र जयपुर

(ii). Indian Journal of Agriculture Economics various issues

इकाई 23

भारतीय कृषि विकास की उपलब्धियां तथा कमियाँ (Major Achievements of Agricultural Growth and the Deficiencies)

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 नियोजन और कृषि विकास
23.2 कृषि विकास की उपलब्धियाँ
 23.2.1 कृषि उत्पादन में वृद्धि
 23.2.2 कृषि का आधुनिकीकरण
 23.2.3 खाद्यान्न आत्मनिर्भरता
23.3 कृषि क्षेत्र में असन्तुलन व कमियाँ
 23.3.1 कृषि उत्पादन की अस्थिरता
 23.3.2 फसलवार असन्तुलन
 23.3.3 क्षेत्रीय असंतुलन
 23.3.4 कृषि विकास और सामाजिक न्याय
23.4 सारांश
23.5 शब्दावली
23.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
23.7 निबन्धात्मक प्रश्न

23.0 उद्देश्य

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार है। कुल श्रमिक का लगभग दो—तिहाई भाग कृषि क्षेत्र से जीविकोपार्जन कर रहा है और राष्ट्रीय आय का लगभग एक—तिहाई भाग कृषि क्षेत्र से ही प्राप्त होता है। कृषि क्षेत्र की उन्नति पर देश के करोड़ों लोगों का आर्थिक भविष्य निर्भर करता है। देश के आर्थिक विकास में भी कृषि की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। यह कहना अतिशियोक्ति न होगी की भारत वर्ष के लोगों की खुशहाली और भारतीय अर्थ व्यवस्था की प्रगति भारतीय कृषि के विकास के बिना सम्भव नहीं है।

कृषि के विकास को भारतीय पंचवर्षीय योजनाओं में एक केन्द्रस्थ स्थान दिया गया है। योजना काल में कृषि को एक गतिशीलता प्राप्त हुयी है और कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये है

।कृषि उत्पादन तेजी के साथ बढ़ा है और कृषि में आधुनिक तकनीक का काफी व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा हें। फिर भी कृषि क्षेत्र में असन्तुलन, असमानता और आसीरता की समस्यायें बनी हुयी है।

इस इकाई में हम योजनोत्तर काल में भारतीय कृषि की उपलब्धियों और उसकी कमियों की व्याख्या करेंगे। कृषि विकास को आंकने के कई आधार हो सकते है। कृषि उत्पदन में वृद्धि की दर एक ऐसा ही प्रमुख आधार है। लेकिन कृषि क्षेत्र की उपलब्धियों को आकने का सही और व्यापक आधार यह होगा कि तुम यह देखें कि कहाँ तक कृषि क्षेत्र के विकास ने हमारी पंचवर्षीय योजनाओं के प्रमुख लक्ष्यों जैसे तोव वृद्धि दर, आत्म निर्भरता, अधिक रोजगार, क्षेत्रीय व वर्गीय असमानताओं में कमी, आदि को प्राप्त करने में सहायत की है। हमारा यह अध्ययन इसी कसौटी को ध्यान में रखकर किया जायेगा।

इस इकाई में हम योजना काल में हुये कृषि क्षेत्र के विकास पर एक विहगम दृष्टि डालेगे और उसकी कमियों की ओर संकेत करेगे। सबसे पहले हम योजनाओं में कृषि विकास की प्राथमिकता और नीति की चर्चा करेगें। उसके बाद हम आपको कृषि उत्पादन की वृद्धि दर तथा कृषि क्षेत्र की अन्य उपलब्धियों के बारे में बतायेगे। इकाई के अन्तिम खण्ड में कृषि क्षेत्र के महत्वपूर्ण असंतुलनों की ओर ध्यान आकर्षित किया जायेगा तथा कृषि विकास और सामाजिक न्याय के सम्बन्ध को देखा जायेगा।

इस इकाई के अध्ययन से आपको भारतीय कृषि की मुख्य उपलब्धिया ज्ञान हो सकेगा तथा भावी कृषि विकास नीति के सम्बन्ध के कुछ सोचने का मौका मिलेगा।

23.1 नियोजन और कृषि विकास

स्वतन्त्रत प्राप्ति के समय भारतीय कृषि एक पिछड़ी हुयी व अवरोध की स्थिति में थी। कृषि की पुरातन तकनीक सदियों से चली आ रही थी और औसत पैदावार बहुत कम थी। करोड़ों कृषक दरिद्रता का जीवन व्यतीत कर रहे थे। पंचवर्षीय योजनाओं में देश के आर्म्रिक विकास में कृषि की प्रमुख भूमिका को स्वीकार किया गया तथा कृषि विकास के व्यापक कदम उठाये गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि के पुनर्सगठन को पूरा महत्व दिया गया तथा कुल योजना परिव्यय का लगभग 37 प्रतिशत कृषि व सिंचाई के लिये आबंटित किया गया। लेकिन यह आवटन दूसरी पंचवर्षीय योजना में केवल 21 प्रतिशत रह गया, जब औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दी गयी। इस दौरान भारत की आयतित खाद्यान पर निर्भरता बढ़ती गयी और पुन : तीसरी योजना में कृषि और उद्योगों के सन्तुलित विकास की बात की गयी। तब से कृषि उत्पादन का विकास और ग्रामीण निर्धनता का उन्मूलन योजनाओं के मुख्य लक्ष्यों में रहे है, यद्यपि कृषि क्षेत्र को उतने संसाधन प्राप्त नहीं हो सके जितना कि वांछनीय था।

योजना काल के प्रारम्भ में कृषि सुधार के लिये दो प्रकार के कार्यक्रमों पर बल दिया गया। एक तो संस्थात्मक ढाँचे में परिवर्तन जिसके अन्तर्गत भूमि सुधार सहकारिता और सामुदायिक

विकास कार्यक्रम अपनाये गये तथा दूसरा उत्पादन वृद्धि के कार्यक्रम जिसमें तकनीकी सुधार कृषिगत क्षेत्र का विस्तार और सिंचाई की योजनाओं पर बल दिया गया।

योजना काल के प्रथम दशक में खाद्यान उत्पादन में लगभग 60 प्रतिशत बढ़ोतरी हुयी, जिसका प्रमुख कारण कृषि के क्षेत्र में वृद्धि था। अतः यह अनुभव किया गया कि कृषि उत्पादन बढ़ाने के कार्यक्रमों पर अधिक जोर दिया जाय। अत: तीसरी पंचवर्षीय योजन में चयनित जिलों में सघन कृषि जिला कार्यक्रम (Integrated District Development Programme) प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत चयनित जिलों में कृषि विकास के लिये आवश्यक सुविधाओं को एक साथ उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया गया।

छठवें दशक के प्रारम्भिक वर्षों में खाद्यान उत्पादन में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुयी। 1965—66 के भयंकर दुर्भिक्ष से स्थिति और भी गम्भीर हो गयी। अतः सरकार को 'कृषि विकास की एक नवीन नीति सोचने के लिये बाध्य होना पड़ा। इस नीति के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्रों में उन्नतशील बीजों तथा रसायनिक खाद्य और अन्य साधन उपलब्ध कराने पर बल दिया गया तथा कृषको को उनके उत्पादन के लिये उचित मूल्य दिलाने की नीति अपनायी गयी। यही नवीन कृषि विकास नीति आगामी वर्षो में भारतीय कृषि के आधुनिकीकरण का आधार बनी। इस आधुनिक तकनीक के अपनाने से जो कृषि उत्पादन में वृद्धि हुयी इसी को हरित क्रांति के नाम से जाना जाता है जिसकी सफलता के लिये भारत को विश्वभर में सराहा गया।

23.2 कृषि विकास की उपलब्धियाँ

23.2.1 कृषि उत्पादन में वृद्धि : नियोजन काल में कृषि उत्पादन में उत्साहवर्धक वृद्धि हुई है। कृषि उत्पादन का सूचनांक जो 1968—71 के औसत पर 100 था 1950 में 58.5 से बढ़कर 1988—86 में 158.4 हो गया। खाद्यान्न उत्पादन भी इस दौरान तीन गुने के लगभग बढ़ा। 1988—89 में लगभग 18.5 करोड़ टन खाद्यान उत्पादन की आशा है, जबकि 1950—51 में वह केवल 5.08 करोड़ टन था। 1949—50 से 1985—86 में कृषि उत्पादन की वृद्धि दर 2.64 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है। खाद्यान्न तथा गैर खाद्यान्न फसलों का उत्पादन भी लगभग इसी दर से बढ़ा है। यद्यपि कृषि उत्पादन की वृद्धि दर योजना के लक्ष्यों की तुलना में कम रही है फिर भी अपने आय में वह सन्तोषजनक है और जनसंख्या वृद्धि दर से कुछ अधिक रही है। कृषि विकास की यह महत्वपूर्ण उपलब्धि और भी अधिक स्पष्ट प्रतीत होती है जब हम यह देखते है कि ब्रिटिश शासन के दौरान (1891 से 1946 के बीच) कृषि उत्पादन की वृद्धि दर केवल 0.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी, खाद्यान उत्पादन की 0.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष और गैर खाद्यान्न फसलों की 1.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष। अन्य देशों की तुलना में भी भारत में कृषि विकास की वृद्धि दर कम नहीं पायी गयी है।

कृषि की वृद्धि दर का अध्ययन प्राय : दो कालों के आधार पर किया जाता है हरित क्रांति के पूर्व का काल और हरित क्रांति के बाद का काल। जैसा आप ऊपर देख चुके है हरित क्रांति का प्रारम्भ छठे दशक के मध्य से हुआ था। तालिका 23.1 में प्रमुख फसलों के क्षेत्र, उत्पादन तथा औसत पैदावार की वृद्धि दरें दीर्घ काल (1949—50 से 1983—84) तथा हरित क्रांति के काल

(1967—68 से 1985—86) में दर्शायी गयी है। इस तालिका पर आपको गहन रूप से दृष्टि—पात करना चाहिये।

इस तालिका से जो कुछ प्रमुख बिन्दु उभरते है वह इस प्रकार है। प्रथम, हरित क्रांति काल में व उसके पूर्व के काल में कृषि की उत्पादन की वृद्धि दर लगभग समान रही है। द्वितीय, हरित क्रांति के पूर्वकाल में उत्पादन वृद्धि में कृषि क्षेत्र के बढ़ने का अधिक योगदान था, जो अब कम हो गया हें। तृतीय, हरित क्रांति काल में औसत पैदावार अधिक तीव्रता से बढ़ी है, जो कृषि तकनीक के परिवर्तन का द्योतक है। चतुर्थ, विभिन्न फसलों की वृद्धि दर में काफी अन्तर रहे है।

23.2.2 कृषि का आधुनिकीकरण: पिछले दशकों में कृषि की तकनीक और ढाँचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये है। कृषि क्षेत्र में आधुनिकीकरण (Modernization) और व्यापारी करण (Commercialization) की प्रवृत्तियाँ तेज हुयी है, सिंचाई की सेवाओं का काफी विस्तार हुआ है और फसल गहनता (Cropping Intensity) बढ़ी है। जैसा कि तालिका 23.2 में दर्शाया गया है कृषि में आधुनिक साधनों जैसे नये किस्म के —

तालिका 23.1 All—India Compound Growth Rates of Area, Production and Yield of Principal Crops –

(In per cent per annum)

Crop	1949-50 to 1985-86			1949-50 to 1964-65			1967-68 to 1985-86		
	Area	Production	Yield	Area	Production	Yield	Area	Production	Yield
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
Rice	0.90	2.52	1.60	1.33	3.49	2.13	0.65	2.54	1.92
Wheat	2.73	6.00	3.18	2.68	3.99	1.27	2.41	5.64	3.15
Jowar	-0.20	1.30	1.50	0.99	2.50	1.50	-0.69	1.65	2.36
Bajra	0.23	1.87	1.65	1.08	2.34	1.24	-0.85	0.19	0.85
Maize	1.72	2.57	0.84	2.66	3.87	1.18	-0.07	0.98	1.06
Ragi	0.19	1.73	1.54	0.84	3.08	2.22	0.26	2.14	1.90
Small Millets	-0.95	-1.09	-0.14	-0.30	-0.20	0.09	-2.18	-1.84	0.35
Barley	-2.29	-0.96	1.36	-0.64	-0.28	0.36	-4.72	-3.03	1.75
Coarse Cercals	-0.04	1.36	1.27	0.90	2.23	1.29	-0.94	0.66	1.55
Total Cercals	0.79	2.98	1.85	1.30	3.24	1.68	0.31	2.97	2.21
Gram	-0.56	0.03	0.51	1.64	2.66	0.54	-0.38	-0.21	0.15
Tur (Atha)	0.70	0.51	-0.19	0.57	-1.34	-1.90	1.23	1.93	0.69
Other Pulses	0.77	0.54	-0.23	2.07	1.28	-0.77	0.76	0.96	0.20
Total Pulses	0.32	0.32	0.17	1.90	1.39	-0.22	0.44	0.65	0.29

Total Foodgrains	0.69	2.64	1.73	1.41	2.93	1.43	0.34	2.74	2.30
Sugarcane	1.90	3.00	1.15	3.27	4.26	1.12	1.58	2.70	1.11
Groundnut	1.29	1.84	0.54	4.01	4.33	0.31	0.01	0.98	0.96
Sesamum	Neg	0.45	0.51	0.14	-0.32	-0.36	-0.46	0.97	1.45
Rapeseed & Mustard	1.72	3.27	1.53	2.97	3.36	0.37	1.25	3.17	1.89
Seven Oilseeds	1.04	2.05	0.81	2.64	3.24	0.13	0.30	1.74	1.43
Coconut	-	-	-	-	-	-	0.90	0.53	-0.37
Total Oilseeds	0.96	2.00	0.71	2.69	3.11	0.20	0.23	1.65	1.28
Cotton (Lint)	0.42	2.43	2.01	2.47	4.56	2.04	0.02	2.35	2.34
Jute & Mesta	1.01	1.63	0.66	3.86	4.20	0.73	1.09	2.68	1.32
Total Fibres	0.43	2.19	1.66	2.57	4.45	1.68	0.12	2.37	2.09
Potato	3.95	5.98	1.94	4.37	4.27	-0.11	3.82	6.99	3.05
Tobacco	0.70	2.16	1.47	1.66	2.79	0.96	0.05	2.15	2.11
Total									
Non-foodgrains	1.12	2.62	1.11	2.52	3.54	0.93	0.62	2.55	1.48
All Crops	0.78	2.64	1.54	1.61	3.13	1.30	0.41	2.68	2.03

Neg— Negligible.

Notes: 1. Seven Oilseeds include Groundnut, Sesamum. Rapeseed & Mustard, Linseed, Castor seed. Nigerseed and Sunflower.

2. Total Oilseeds include Seven Oilseeds, Coconut & Cottonseed.

Source: Directorate of Economics and Statistics, Area and Production of Principal Crops in India, 1985—86, Ministry of Agriculture, New Delhi.

तालिका 23.2 कृषि विकास के कुछ चयनित आंकड़े

वर्ष	प्रति हैक्टर खाद्यान उत्पादन (किलो ग्रा0)	फसल गहनता	शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल (लाख है)	रासायनिक खाद की खपत (लाख टन)	उन्नतशील बीजों के अन्तर्गत क्षेत्रफल (लाख है0 में)
1950—51	522	111.0	208.5	0.7	—
1955—56	605	114.0	227.6	1.6	—
1960—61	710	114.7	246.6	5.6	—
1965—66	629	114.0	263.4	7.8	—
1970—71	872	117.7	311.0	21.6	152.8
1975—76	944	121.0	345.9	29.0	318.9
1980—81	1023	123.5	388.0	55.2	450.0
1985—86	1175	126.4*	419.6*	84.7	554.2
1996—97	191	—	800	70	750
1997—98	192.43	—	—	—	—
1998—99	195.25	—	—	—	—

स्रोत : (1) कृषि मन्त्रालय, भारत मे मुख्य फसलों का क्षेत्रफल व उत्पादन नई दिल्ली (वार्षिक)

(2) वित्त मन्त्रालय आर्थिक सर्वेक्षण, नई दिल्ली (वार्षिक)

बीज, रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग बहुत तेजी से चढ़ा है, विशेषकर हरित क्रांति प्रारम्भ होने के पश्चात्। कृषि क्षेत्र में मशीनों और बिजली का प्रयोग भी काफी बढ़ा है। कृषि के आधुनिकीकरण में सरकार द्वारा किये गये विभिन्न प्रयासों की एक प्रमुख भूमिका रही है जिनमें विशेष उल्लेखनीय है सिंचाई सुविधाओं का विकास कृषि अनुसंन्धान तथा प्रशिक्षण सुविधाओं की व्यवस्था तथा ऋण व साधनों मे वितरण व्यवस्था का प्रबन्ध यहाँ पर यह बात भी कह देना उचित होगा कि कृषि तकनीक का आधुनिकीकरण अभी कुछ ही क्षेत्रों तक सीमित रहा है।

23.2.3 खाद्यान्न आत्मनिर्भरता : हरित क्रांति की सफलता ने भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है देश की खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता (Self Sufficiency in Food grains)। पांचवे व छठे दशक में हमको बड़ी मात्रा में खाद्यान्न बाहर से मंगाना पड़ता था और उसके लिये विदेशों से आर्थिक सहायता भी लेनी पड़ती थी। लेकिन पिछले दो दशकों से हम न केवल खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो गये हैं वरन् हमारे पास खाद्यान्न का काफी बड़ा सुरक्षित कोष भी है जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली को चलाने और मूल्यों को स्थिर रखने के काम आता है।

23.3 कृषि क्षेत्र के असन्तुलन व कमियाँ

यद्यपि भारतीय कृषि की उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण रही है, फिर भी उसमें काफी कमियाँ और असन्तुलन रहे हैं, कृषि के उत्पादन में अस्थिरता रही है, औसत पैदावार भी अन्तर्राष्ट्रीय तुलना में अभी बहुत कम है, कृषि क्षेत्र में आय व साधनों की असमानतायें बनी हुयी है तथा ग्रामीण गरीबी की समस्या गम्भीर बनी हुयी है और रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि कम हुई है। इन कमियों में से कुछ महत्वपूर्ण बातों की चर्चा हम कुछ विस्तार से करेंगे।

23.3.1 कृषि उत्पादन की अस्थिरता : कृषि क्षेत्र की यह एक समस्या रही है कि कृषि उत्पादन में काफी अस्थिरता रही है। किसी वर्ष तो यह समस्या काफी गम्भीर हो गयी है। उदाहरणार्थ 1965—66 में खाद्यान उत्पादन 723 लाख टन रहा जो पिछले वर्ष के 893 लाख टन की तुलना में लगभग 20 प्रतिशत कम था। इसी प्रकार 1979—80 का खाद्यान्न उत्पादन पिछले वर्ष की तुलना में 17 प्रतिशत कम था। 1986—87 तथा 1987—88 के वर्ष भी कृषि की दृष्टि से खराब वर्ष थे। कृषि उत्पादन के परिवर्तन मुख्यतः औसत पैदावार के परिवर्तनों के कारण होते है। एक अध्ययन के अनुसार 1971—86 के बीच खाद्यान्न की औसत पैदावार में परिवर्तनशीलता का गुणांक (Coefficient of Variation) 12.57 प्रतिशत था। कृषि उत्पादन को अस्थिरता इस बात का द्योतक है कि अभी भी हमारी कृषि मुख्यतः वर्षा पर आधारित है। सिंचाई सुविधाओं के विस्तार के बावजूद अभी कृषि क्षेत्र का कुल 30 प्रतिशत सिंचित कृषि पर आधारित है। यह भी पाया गया है कि हरित क्रांति के पश्चात के काल में कृषि उत्पादन की अस्थिरता बढ़ी है।

23.3.2 फसलवार असंतुलन : जैसा कि आप तालिका 1 से देखेगें विभिन फसलों के उत्पादन की वृद्धि दरों में काफी असंतुलन रहे हैं। सर्वाधिक तीव्र वृद्धि गेहूँ के उत्पादन में हुई है, लगभग 6.00 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से। चावल का उत्पादन 2—52 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ा है। मोटे आनाजों की वृद्धि दर असंतोष जनक रही है और हरित क्रांति कालमें उससे पूर्व के काल की तुलना में घट गयी है। कृषि विकास में एक विशेष असंतुलन जिस पर सबका ध्यान गया है वह है दलहन की पैदावार में अवरोध की स्थिति, जिससे प्रतिव्यक्ति प्रोटीन उपलब्धि काफी कम हो गयी है। दालों का उत्पादन पिछले लगभग 20 वर्षों से 112 लाख टन के आसपास ही रहा है।

यही परिस्थिति और गैर खाद्यान्न फसलों के संदर्भ में भी देखने में आती है। सरसों को छोड़कर अन्य तिलहन फसलों के उत्पादन की दर भी काफी कम रही है। फलस्वरूप हमे कई सौ करोड़ रुपये के खाद्य तेलों का आयात करना पड़ रहा है। गन्ने और आलू की फसलों को छोड़कर अन्य और खाद्यान्न फसलों के उत्पादन की वृद्धि भी कुछ ऐसी रही है जिसको सन्तोषप्रद नहीं कहा जा सकता है।

23.3.3 क्षेत्रीय असंतुलन: कृषि विकास की एक समस्या जो बहुचर्चित रही है वह है क्षेत्रीय असंतुलन की समस्या। जैसा कि हम ऊपर भी कह चुके हैं हरित क्रांति का प्रभाव अभी कुछ ही क्षेत्रों तक सीमित रहा है। तालिका 23.3 में कृषि क्षेत्र के असंतुलनों के कुछ आंकड़े दिये गये हैं जैसा कि आप देखेगें देश के विभिन्न क्षेत्रों व राज्यों में कृषि विकास के स्तर में काफी असमानतायें हैं

जो प्रति हैक्टेयर उत्पादकता, रसायनिक खादों के प्रयोग तथा सिंचाई सुविधाओं के अन्तरों से स्पष्ट होती है।

कृषि उत्पादन की वृद्धि दरों में हमको और भी अधिक अन्तर दिखायी पड़ते हैं। जैसा कि आय तालिका 23.3 से स्वयं देखेगें हरित क्रांति का प्रभाव उत्तरी भारत के कुछ प्रान्तों तक (विशेषकर पंजाब, हरियाणा, और उत्तर प्रदेश) सीमित रहा है। ये वे राज्य है जहाँ सिंचाई की अधिक सुविधायें उपलब्ध हैं और जहाँ गेहूँ की खेती अधिक होती है। 1960—63 और 1980—83 के बीच हुई कृषि उत्पादन की वृद्धि का आधे से अधिक योगदान केवल इन्हीं तीन राज्यों के द्वारा किया गया है। आप यह भी देखेंगे

तालिका 23.3 कृषि में क्षेत्रीय असन्तुलन के आंकड़े

राज्य	प्रति हैक्टर उत्पादन (रू०) 1980—83 स्थिर मूल्यों पर	1960—63 तथा 1980—83 के बीच वृद्धि दर (%) प्रतिवर्ष	1960—63 तथा 1980—83 के बीच उत्पादन वृद्धि में योगदान (%)	कुल सिंचित क्षेत्रफल(%) 1980—83	रासायनिक खाद प्रति हैक्टर (किलो) 1980—83
1. हरियाणा	1355	4.88	7.61	64.2	54
2. हिमाचल प्रदेश	—	2.23	0.53	—	—
3. जम्मू व कश्मीर	1345	4.58	1.30	40.8	27
4. पंजाब	2270	6.83	18.60	98.6	129
5. उत्तर प्रदेश	1215	3.51	25.00	45.1	52
उत्तरी क्षेत्र	1395	4.42	53.10	56.1	64
6. असम	1714	2.27	2.17	17.0	4
7. बिहार	921	0.60	1.64	33.2	20
8. उड़ीसा	888	0.37	0.68	22.7	10
9. प0 बंगाल	1453	1.17	3.15	28.6	37
पूर्वी क्षेत्र	1137	0.93	7.65	27.2	20
10. गुजरात	1033	2.73	6.76	27.1	42
11. मध्य प्रदेश	604	1.34	4.63	12.6	11
12. महाराष्ट्र	694	2.10	7.17	14.2	26
13. राजस्थान	445	3.14	5.76	25.2	9
केन्द्रीय क्षेत्र	651	2.17	24.30	18.3	19
14. आंध्रप्रदेश	1266	2.33	9.20	37.1	54

15. कर्नाटक	926	1.71	3.71	17.2	37
16. केरल	2146	0.70	0.34	14.8	39
17. तमिलनाडू	1676	0.62	1.72	51.3	79
दक्षिणी क्षेत्र	1308	1.59	15.00	31.6	52
भारतवर्ष	1037	2.44	100.00	31.0	36

स्रोत : Patterns in Indian Agricultural Development G.S. Bhalla and D.S. Tyagi (1989).

आप यह भी देखेंगे कि पूर्वी और दक्षिणी क्षेत्रों के राज्यों में कृषि की वृद्धि दर बहुत कम रही है। गैर सिंचित क्षेत्रों के लिये हम अभी उस प्रकार की तकनीक विकसित नहीं कर पाये हैं जो सिंचित क्षेत्रों के लिये उपलब्ध है। सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धि के अतिरिक्त इन क्षेत्रीय असंतुलनों के अन्य कारण भी हैं, जिनमें संस्थागत (कृषि में उत्पादन के सम्बन्ध), जनाकिक (छोटे आकार के खेत) व प्राकृतिक (वर्षा—बाढ़, सूखा) कारण विशेष उल्लेखनीय हैं।

यदि आप जिला स्तर पर देखें तो आप कृषि क्षेत्र में इसी प्रकार के असन्तुलन पायेगें, जो न केवल समूचे देश के स्तर पर हैं, बल्कि प्रत्येक राज्य में भी देखने को मिलते हैं, इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण आंकडे तालिका 23.4 में दिये गये हैं। जैसा कि आप देखेगें देश के 281 जिलों, जिनका डा० भल्ला और डा० त्यागी ने अध्ययन किया था, में 89 जिलों की उत्पादकता का स्तर 1250 रुपये प्रति एकड़ से अधिक था। इन जिलों का कुल क्षेत्रफल में भाग केवल 27.3 प्रतिशत था, जबकि उत्पादन में उनका भाग 45.5 प्रतिशत था। इसके विपरीत 84 जिलों में उत्पादकता का स्तर 750 रु० प्रति हैक्टेयर से कम था और इन जिलों का उत्पादन में प्रतिशत भाग क्षेत्रफल में प्रतिशत भाग का लगभग आधा ही था। आप यह भी देखेंगे कि जिला स्तर पर उत्पादकता के अन्तर आधुनिक साधनों के प्रयोग (रसायनिक खाद, ट्रैक्टर आदि) तथा सिंचाई की सुविधाओं के साथ जुड़े हुये हैं। अतः स्पष्ट है कि जिन क्षेत्रों और राज्यों में सिंचाई की सुविधाओं और कृषि क्षेत्र के विकास में सरकारी और व्यक्तिगत स्तर पर अधिक व्यय किया गया है, ये कृषि के क्षेत्र में अधिक उन्नतिशील है।

तालिका 23.4 जिला स्तर पर कृषि क्षेत्र की विषमतायें 1980-83

उत्पादकता रु०/हे०	कुल संख्या	क्षेत्रफल में %/भाग	उत्पादन में प्रतिशत भाग	रसायनिक खाद (किलो०/है०)	ट्रेक्टर (प्रति हजार)	कुल सिंचित क्षेत्रफल (प्रतिशत)
उच्च 1250 तथा अधिक	89	27.3	45.5	90.7	4.3	66.2
मध्यम 750 से 1250	108	40.6	37.9	35.0	1.4	37.8
निम्न 750 से कम	84	32.1	16.6	16.1	0.8	15.4
समस्त जिले	281	100	100.0	44.1	2.0	38.3

स्रोत : G.S. Bhalla and D.S. Tyagi (1989).

23.3.4 कृषि विकास और सामाजिक न्याय : हरित क्रांति की सामाजिक न्याय की दृष्टि से कड़ी आलोचना उसके प्रारम्भिक वर्षों से होती रही है। अनेक विद्वानों के विचार में हरित क्रांति का लाभ बड़े और सम्पन्न किसानों को मिला है और उससे ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न वर्गों में असमानतायें बढ़ी हैं। पर यह एक विवाद का विषय रहा है। यह सही है कि आधुनिक तकनीक को अपनाने में अधिक साधनों की आवश्यकता थी, अतः बड़े और साधन सम्पन्न कृषक, जिनको ऋण तथा अन्य बातों की भी अपेक्षाकृत अधिक उपलब्धि रही है, नयी तकनीक को अपनाने में अन्य कृषक वर्गों से आगे रहे। लेकिन अपने आप में नवीन तकनीक पैमाने के प्रतिफल के प्रति तटस्थ है। पिछले दशकों में छोटे किसानों ने भी व्यापक स्तर पर नवीन तकनीक को अपनाया है और वह भी कृषि के विकास से लाभान्वित हुये हैं।

कृषि की नवीन तकनीक की यह भी आलोचना रही है कि इससे मशीनीकरण में वृद्धि हुई है। और रोजगार के स्तर में अधिक वृद्धि नहीं हुई है। यह सही है कि कृषि में उत्पादन वृद्धि की तुलना में रोजगार की वृद्धि सीमित दर पर हुयी है। फिर भी कुल मिलाकर कृषि में रोजगार का स्तर बढ़ा है और वास्तविक मजदूरी भी बढ़ी है, जिससे कृषि श्रमिको की स्थिति में सुधार हुआ है।

कृषि उत्पादन की महत्वपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद भी हम यह कह सकते हैं कि अभी भी ग्रामवासियों की औसत आर्थिक स्थिति में बहुत उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है और अभी भी गांवों की लगभग 40 प्रतिशत जनता (1983—84) गरीबी की रेखा के नीचे है। इसका एक कारण तो यह है कि प्रति व्यक्ति उत्पादन में विशेष उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई और दूसरे कृषि ढांचा (Agrarian Structure) मूल रूप से परिवर्तित नहीं हुआ है। यह सर्वविदित ही है कि अधिकतम जोत और भूम के पुनर्वितरण के उपायों को कोई विशेष सफलता नहीं मिली है। भूमि के वितरण की असमानतायें लगभग यथावत रही है। बटाई (Sub-Letting) भी मौखिक रूप से व्यापक है। इसके अतिरिक्त लघु और सीमान्त कृषको और खेतिहर मजदूरों की संख्या में बड़ी मात्रा में वृद्धि हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में अर्द्धबेकारी और बेकारी (Under employment and unemployment) भी बढ़ी है।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि सामाजिक न्याय की दृष्टि से कृषि विकास की उपलब्धियां काफी असंतोषजनक रही है।

23.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपको यह ज्ञात हुआ कि भारतीय कृषि जो वर्तमान शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक अवरोध की स्थिति में थी, योजना काल में तीव्रता से अग्रसर हुई है। सरकार के द्वारा कृषि विकास के जो कार्यक्रम अपनाये गये और कृषिको के श्रम और लगन से कृषि उत्पादन तीव्रता के साथ बढ़ा है और कृषि का आधुनिकीकरण और व्यापारीकरण एक सीमा तक हुआ है। कृषि के विकास के फलस्वरूप हम खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गये हैं। इससे सार्वजनिक वितरण प्रणाली को चलाने तथा मूल्यों पर अंकुश रखने में भी सहायता मिली है।

इन उपलब्धियों के बावजूद भी कृषि क्षेत्र का विकास पूर्णतया संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। कृषि के विकास में अभी भी कई असंतुलन हैं जो कृषि के उत्पादन की अस्थिरता, तथा विभिन्न फसलों और क्षेत्रों के बीच वृद्धि दरों के अन्तरों में परिलक्षित होते हैं। सामाजिक न्याय की दृष्टि से भी कृषि के विकास में कमियाँ रही हैं। कृषि विकास का लाभ समान रूप से सभी ग्रामीण वर्गों को नहीं मिला है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की समस्या बनी हुयी है हमारे कृषि के ढाँचे में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

आगामी पंचवर्षीय योजनाओं में हमें इन असंतुलनों की ओर ध्यान देना होगा। दलहन व तिलहन की फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के विशेष प्रयत्न करने होंगे। इसी प्रकार पिछड़े क्षेत्रों और प्रान्तों, विशेषकर, असिंचित कृषि वाले क्षेत्रों में कृषि विकास कार्यक्रमों पर अधिक बल देना होगा। साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि छोटे कृषको और खेतिहार मजदूरों की आर्थिक स्थिति में कैसे सुधार हो।

23.5 शब्दावली

कृषि का ढांचा (Agrarian Structure)

कृषि क्षेत्र में उत्पादन के साधनों का वितरण तथा उत्पादन के सम्बन्धों का स्वरूप।

नवीन कृषि विकास रणनीति (New Agricultural Strategy)

छठवें दशक के मध्य में कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिये अपनायी गयी नीति जिसमें कृषि की नवीन तकनीक—उन्नतशील बीज, रसायनिक खाद, सिंचाई को बढ़ावा देने पर बल दिया गया।

हरित क्रांति (Green Revolution)

नये उन्नतशील बीजों और नवीन तकनीक के प्रयोग से कृषि उत्पादन व उत्पादकता की वृद्धि।

कृषि का आधुनिकीकरण (Agricultural Modernization)

कृषि के क्षेत्र में उत्पादन के आधुनिक साधनों और तकनीक का प्रयोग।

कृषि का व्यापारीकरण (Commercialization of Agriculture)

कृषि के क्षेत्र में साधनों के क्रय व उत्पादन की बिक्री बाजार के माध्यम से होना।

खाद्यान्न आत्मनिर्भरता (Food Self Sufficiency)

खाद्यान्न की मांग को पूरा करने के लिए देश की अपनी क्षमता।

क्षेत्रीय असंतुलन (Regional imbalances)

विभिन राज्यों, क्षेत्रों व जिलों में कृषि की पैदावार और वृद्धि दर में पाये जाने वाले अन्तर

सामाजिक न्याय (Social Justice)

पिछड़े और कमजोर वर्गों की विकास के लाभों में समुचित भागीदारी।

23.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ए0 एन0 अग्रवाल, भारतीय कवि की समस्यायें।

रूद्र दत्त एवं सुन्दरम्, भारतीय अर्थव्यवस्था

G.S. Bhalla and D.S. Tyagi, Patterns in Indian Agricultural Development – A District Level Study, Institute for Studies in Industrial Development, New Delhi, 1989.

Sheila Bhalla, 'Trends in Employment in Indian Agriculture, Land and Asset Distribution', Indian Journal of Agricultural Economics, Vol.42, No. 4, October-December 1987.

B.M. Bhatia, Indian Agricultural: A Policy Perspective, Sage Publications, New Delhi, 1988.

P.R. Brahmanand and V.R. Panchmukhi, The Development Process of the Indian Economy, Himalaya Publishing House, Bombay, 1987.

Indian Council of Social Science Research, Alternatives in Agricultural Development, Allied Publishers, New Delhi, 1980.

Indian Society of Agricultural Economics, Indian Agricultural Development Since Independence, New Delhi, Oxford and I.B.H., 1986.

V.K.R.V. Rao, 'Some Reflections on the Problems Facing Indian Agriculture', Indian Journal of Agricultural Economics, Vol. 44, No. 4, October-December 1989.

23.7 निबन्धात्मक प्रश्न

(लगभग 200 शब्दों में उत्तर दें)

1. योजनाकाल में प्रारम्भ में भारतीय कृषि की अवस्था पर प्रकाश डालिये।
2. कृषि विकास की नवीन रणनीति से आप क्या समझते हैं?
3. हरित क्रांति का अर्थ और कारण बताइये।
4. योजनाकाल में कृषि विकास की क्या महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही हैं? (500 शब्द)
5. कृषि में प्रमुख क्षेत्रीय असंतुलनों व उनके कारणों पर प्रकाश डालिये।
6. क्या सामाजिक न्याय की दृष्टि से भारतीय कृषि की उपलब्धियाँ संतोषजनक रही हैं?

इकाई 24
खाद्य सुरक्षा तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली

इकाई की रुपरेखा

24.1 उद्देश्य
24.2 प्रस्तावना
24.3 खाद्य सुरक्षा का तात्पर्य
24.4 भारत में खाद्य सुरक्षा की स्थिति
24.5 खाद्यान्नों का उत्पादन व उपलब्धता
24.6 सार्वजनिक वितरण प्रणाली
24.6.1 सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कार्यप्रणाली
24.6.2 खाद्यान्नों की अधिप्राप्ति, उठाव व भण्डार
24.6.3 सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर निर्भरता
24.6.4 विकेन्द्रित अधिप्राप्ति व खुले बाजार की बिक्री
24.7 सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मूल्यांकन
24.8 खाद्य सुरक्षा के लिए कल्याणकारी योजनाएँ
24.9 बोध प्रश्न
24.10 सारांश
24.11 शब्दावली
24.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
24.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

24.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- यह जान सकेगें कि खाद्य सुरक्षा का क्या तात्पर्य है ?
- भारत में खाद्य सुरक्षा की स्थिति क्या है ?
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली का कार्यकरण का अनुभव (भारत के सन्दर्भ में तथा खाद्य सुरक्षा) जान सकेंगे।

24.2 प्रस्तावना

भोजन, वस्त्र व आवास मूलभूत आवश्यकता है जो प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध होनी चाहिए। पेयजल, बेहतर स्वास्थ्य तथा शिक्षा के बिना सामान्य जीवन संभव नहीं है। इनमें भोजन प्राथमिक आवश्यकता है जैसे कि नारमन बारला ॅग कहते है भोजन प्राप्त करना उन सभी का नैतिक अधिकार है जिन्होनें इस पृथ्वी पर जन्म लिया है। भारत में गरीबी का मापदण्ड भी कैलोरी उपभोग से जुड़ा हुआ है ग्रामीण क्षेत्र में 2400 कैलोरी प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन प्राप्त नहीं होने वाले व्यक्ति को गरीब माना गया है। यदि व्यक्ति को पर्याप्त भोजन प्राप्त नहीं होता है तो यह सरकार की जिम्मेदारी है कि व्यक्ति को पर्याप्त खाद्यान्न उपलब्ध करावे। भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर है लेकिन आबादी का एक बड़ा भाग खाद्यान्न की मूलभूत आवश्यकता के पूर्ण होने से वंचित है। बड़ा भाग इस मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति से वंचित है जबकि खाद्यान्नों का पर्याप्त उत्पादन व भण्डार है। इस परिप्रेक्ष्य में इस समस्या का समुचित ज्ञान आवश्यक है। कम आय वर्ग को खाद्यान्न तथा आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति के लिए भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली कार्यरत है। इसका देश में विस्तृत नेटवर्क है जिसके द्वारा देश में 5.32 लाख से अधिक उचित मूल्य की दुकानों द्वारा 18.04 करोड़ से अधिक परिवारो को आवश्यक वस्तुएँ एवं खाद्यान्न की उपलब्धता कराई जा रही है। लेकिन अभी भी कम आयवर्ग, महिलाओं, देश के प्रतिकूल परिस्थिति वाले स्थानों, बच्चों को अभी भी पर्याप्त मात्रा में वर्ष भर खाद्यान्नों के अभाव का सामना करना पड़ता है।

24.3 खाद्य सुरक्षा का तात्पर्य

खाद्य सुरक्षा का तात्पर्य है कि सभी लोगों तक खाद्यान्नों की भौतिक तथा आर्थिक पहुँच। भौतिक पहुँच का तात्पर्य है खाद्यान्नों की पूर्ति उनकी आवश्यकता के अनुरुप हो। अर्थात् देश में खाद्यान्न की मात्रा पर्याप्त हो। खाद्यान्न उत्पादन इसका महत्पवपूर्ण घटक है। यदि देश में खाद्यान्नों का उत्पादन अपर्याप्त हो तो आयातों के माध्यम से पूरा किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यदि देश में वर्ष प्रतिवर्ष खाद्यान्न उत्पादन में उतार चढ़ाव हो तो बैफर स्टाक का निर्माण किया जा सकता है किसी वर्ष विशेष में खाद्यान्न उत्पादन कम हो तो पूर्ति बफर स्टाक से की जा सकती है अथवा आयात किया जा सकता है। देश में खाद्यान्न उत्पादन पर्याप्त होने पर भी आवश्यक नहीं कि सबको खाद्यन्न उपलब्ध हो क्योंकि यदि खाधानों की कीमत ऊँची हो तो कम आय वर्ग के पास इतनी क्रय शक्ति नहीं होती है कि वह उनको क्रय कर सके। इसलिए खाद्यान्नों की कीमत इतनी हो कि सभी उसे क्रय कर सके। इसे आर्थिक पहुँच कहते है। इसके अतिरिक्त सभी तक खाद्यान्नों की पहुँच सभी समयो में होनी चाहिए। देश के समस्त भागों में रहने वाले लोगो के लिए स्वस्थ व सक्रिय जीवन जीने के लिए पर्याप्त खाद्यान्नो की उपलब्धता होनी चाहिए। अर्थात् देश के सभी लोगो को (बच्चे व महिलाओ सहित) को सभी समयों में स्वस्थ व सक्रिय जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक खाद्यान्नो की भौतिक व आर्थिक पहुँच को खाद्य सुरक्षा कह सकते है। अर्थात् खाद्य सुरक्षा के निम्न

आयाम है (1) देश मे खाद्यान्नो की पर्याप्त आपूर्ति हो इसमें उत्पादन, आयात व बफर स्टाक का निर्माण महत्वपूर्ण है (2) देश के सभी लोगों तक खाद्यान्नो की पहुँच हो अर्थात् खाद्यान्नो की कीमत इतनी हो कि वे क्रय कर सकें। (3) खाद्यान्न सक्रिय व स्वस्थ जीवन जीने के लिए पर्याप्त पौष्टिकता से युक्त होना चाहिए। तथा (4) यह उपलब्धता सभी समयों में होनी चाहिए अर्थात् खाद्यान्न उपलब्धता में स्थायित्व होना चाहिए।

24.4 भारत में खाद्य सुरक्षा की स्थिति

वर्तमान मे भारत एक तीव्र गति से बढ़ती अर्थव्यवस्था के रुप में उभर रहा है। यह विश्व की दूसरी सबसे बड़ी आबादी वाला देश है। देश के निवासियों को खाद्य सुरक्षा एक महत्वपूर्ण पहलू है तथा आजादी के पश्चात से ही इस हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किए गए है। खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए भारत ने वर्तमान कृषि परिदृश्य में गरीब वर्ग को समय पर पर्याप्त मात्रा में तथा उचित कीमत पर आपूर्ति बढ़ाने पर बल दिया है। पिछले कुछ दशकों में सकल घरेलू उत्पाद में प्रभावपूर्ण वृ िद्ध रही है तथा कृषि उत्पादन भी बढ़ा है फिर भी जनसंख्या की गरीब वर्ग में चिरकालीन भूख तथा भुखमरी विद्यमान है। राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण के 66 वें दौर (2009-10) के अनुसार ग्रामीण भारत में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2147 किलो कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र में 2123 किलो कैलोरी भोजन द्वारा प्राप्त की। इसी प्रकार राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण की 68 वें दौर (2011-12) की पोषण ग्राह्यता रिपोर्ट के अनुसार सबसे कम 5 प्रतिशत मासिक प्रतिव्यक्ति व्यय वाले 57 प्रतिशत ग्रामीण परिवारो में रहने वाले भागो का प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 2160 किलो कैलोरी उपभोग था। इस निम्नतम 5 प्रतिशत मासिक प्रतिव्यक्ति उपभोग वर्ग का प्रोटीन उपभोग मात्र 43 ग्राम था जबकि उच्चतम 5 प्रतिशत में यह 91 ग्राम था। शहरी क्षेत्र में न्यूनतम 5 प्रतिशत का औसत प्रोटीन उपभोग 440 ग्राम था जबकि उच्चतम 5 प्रतिशत का 87 ग्राम।

भारत में दुनियाँ के दूसरे सबसे अधिक 19.46 करोड़ लोग कुपोषित थे (खाद्य एवं कृषि संगठन, रिपोर्ट 2015)। इसके अलावा देश की 27 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे है। यह चिन्ता का विषय है। खाद्य एवं कृषि आयोग के अनुसार भारत में कुपोषण की स्थिति निम्न प्रकार है

तालिका 24.1 भारत में कम आहार की स्थिति

वर्ष	कम आहार वाले व्यक्तियों की संख्या	कुल जनसंख्या में कम आहार
	पाने वालों का प्रतिशत	
1990-92	210.1	23.7
2000-02	185.5	17.5
2005-07	233.8	20.5
2010-12	189.9	15.6
2014-16	194.6	15.2

स्रौत: खाद्य एवं कृषि संगठन(एफ. ए. ओ.), 2015

वैश्विक भूखमरी सूचकांक (जी.एच.आई) 2015 के अनुसार विश्व के 120 देशों में भारत का स्थान 55 वाँ था। भारत की 25 प्रतिशत जनसंख्या भूखमरी का शिकार है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एन. एफ. एच. एस.) 2005-06 के अनुसार देश में 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों में 20 प्रतिशत क्षीणकाय, 48 प्रतिशत कम वृद्धि वाले तथा 43 प्रतिशत कम वजन वाले थे। 50 प्रतिशत बच्चे तथा 80 प्रतिशत तथा महिलाये रक्त अल्पता से ग्रसित था। ये समंक भारत में बच्चों व महिलाओं के खराब स्वस्थ्य व पोषण को इंगित करते है।

24.5 खाद्यान्नों का उत्पादन तथा उपलब्धता

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने योजनागत विकास का मार्ग अपनाया। इन योजनाओं में आत्मनिर्भरता को महत्वपूर्ण लक्ष्य के रुप में समाहित किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास को प्रमुख स्थान दिया गया। 1960 के दशक के मध्य से भारत ने हरित क्रान्ति का मार्ग अपनाया। स्वतंत्रता के समय भारत में खाद्यान्नों का अभाव था व खाद्य आपूर्ति के लिए आयातों पर निर्भरता थी। 1960 के दशक के प्रारम्भ में भारत ने खाद्य संकटो का सामना किया लेकिन हरित क्रान्ति अपनाने के पश्चात 1970 के दशक में भारत खाद्यान के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर चुका था। 1980 से पूर्व तक कृषि क्षेत्र में विस्तार के कारण खाद्यान्न उत्पादन बढ़ा व उसके पश्चात उत्पादकता वृद्धि के कारण खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हुई लेकिन 1990 के दशक के पश्चात खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि दर में महत्वपूर्ण कमी देखी गई। 1991 के पश्चात खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर घटकर जनसंख्या वृद्धि दर से भी कम हो गई। तो भी खाद्यान्न उत्पादन जो 1950-51 में 5.08 करोड़ टन था। 2014-15 बढ़कर 25 करोड़ टन हो गया।

खाद्यान्न का उत्पादन व उपलब्धता में अन्तर होता है इसके तीन महत्वपूर्ण होते है। (1) आयात (2) स्टाक में परिवर्तन व (3) अन्य उपयोग। आयात द्वारा खाद्यान्न उपलब्धता बढ़ती है तथा निर्यात द्वारा खाद्यान्न उपलब्धता कम होती है। खाद्यान्न का स्टाक खाद्य सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है। बेहतर उत्पादन के वर्षो में अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पादन का भण्डार किया जाता है। अल्प उत्पादन के वर्षो में इसका खाद्य सुरक्षा के लिए उपयोग किया जाता है। भारत में खाद्य भण्डारण का कार्य सरकारी स्तर पर भारतीय खाद्य निगम करता है। निजी स्तर पर कृषको द्वारा भी खाद्य भण्डारण किया जाता है। तृतीय घटक अन्य उपयोग है इसमें खाद्यान्न का एक भाग बीज के रुप में अथवा पशुओं के लिए उपयोग के कार्य में प्रयुक्त होता है। न्यूनतम समर्थन कीमत पर या वसूली कीमतो पर सरकार द्वारा बफर स्टाक निर्माण करने तथा देश के अधिक उत्पादन से कम उत्पादन वाले क्षेत्रों में खाद्यान्न के परिहवन का कार्य सरकार द्वारा किया जाता है। खाद्यान्न उत्पादन, आयात व भण्डारण खाद्य आपूर्ति के महत्वपूर्ण घटक है तालिका द्वारा देश में खाद्यान्न उत्पादन, आयात, उपलब्धता, सरकारी खरीद तथा सार्वजनिक वितरण की स्थिति को दर्शाया गया है।

तालिका 24.2 भारत में खाद्यान्न की शुद्ध उपलब्धता, सरकारी खरीद तथा सार्वजनिक वितरण (दस लाख टन में)

वर्ष	शुद्ध उत्पादन	शुद्ध आयात	शुद्ध उपलब्धता	सरकारी खरीद	सार्वजनिक वितरण	आयात उपलब्धता के प्रतिशत	सरकारी खरीद उत्पादन के प्रतिशत रुप में
1961-61	72.0	3.5	75.7	0.5	4.0	4.6	0.7
1970-71	94.9	2.0	94.3	8.9	7.8	2.1	9.7
1980-81	113.4	0.7	114.3	13.0	13.0	0.6	11.4
1990-91	154.3	(-) 0.1	158.6	19.6	20.8	0.0	12.7
2000-01	182.8	(-) 1.4	167.5	35.5	12.8	(-) 0.8	19.7
2010-11	213.9	(-) 2.9	203.1	64.5	47.9	(-) 1.4	30.15

स्रौत: आर्थिक समीक्षा, 2015-16 वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

योजनागत विकास के दौरान खाद्यान्न उत्पादन जो 1960-61 में 7.2 करोड़ टन था 2011-12 में 21.39 करोड़ टन हो गया। आयात की मात्रा में कमी हुई तथा शुद्ध उपलब्धता जो 1960-61 में 7.57 करोड़ टन थी। 2010-11 में 20.31 करोड़ टन हो गई। सरकारी खरीद में निरन्तर वृद्धि देखी जा सकती है। सार्वजनिक वितरण 2010-11 में 4.79 करोड़ टन हो गया। सरकारी खरीद उत्पादन की तुलना में तेजी से बढ़ी है।

तालिका 24.4 अनाज व दालो की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता

(ग्राम में)

वर्ष	अनाज	दाले	योग
1960-61	399.7	69.0	468.7
1970-71	417.6	51.2	468.8
1980-81	417.3	37.5	454.8
1990-91	468.5	41.6	510.1
2001-01	386.2	30.0	416.2
2010-11	410.6	43.0	453.6
2012-13	358.1	43.3	401.4

स्रौत: आर्थिक समीक्षा 2015-16, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार

अनाज व दालों की प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता में 2012-13 में 1960-61 की तुलना में कमी आई है। 1960-61 में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन अनाज उपलब्धता 399.7 ग्राम से घटकर 2012-13 में 358.1 ग्राम हो गई तथा दालों की उपलब्धता 69.0 ग्राम से 43.3 ग्राम हो गई। प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन अनाज की उपलब्धता 1990-91 तक बढ़ी लेकिन उसके बाद कम हो गई लेकिन दालो की उपलब्धता तो सतत रुप में कम हुई है। 1991 के पश्चात अनाज उत्पादन की वृद्धि दर घट गई है। व अनाज भण्डारण की मात्रा तेजी से बढ़ी है। प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन अनाज व दालो की उपलब्धता को 365 दिन मानकर कुल उपलब्धता को जनसंख्या की मात्रा से विभाजित किया जाता है। यह तर्क

दिया जाता है कि प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन अनाज का उपयोग घट रहा है। क्योंकि खाद्य में गैर खाद्यान्न उत्पादों (फल, सब्जी, दूध, मांस, मछली, अण्डा) का हिस्सा बढ़ रहा है। राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन के अनुसार परिवार को उपयोग व्यय में खाद्यान्न का अनुपात घट रहा है। दूसरा कारण यह कि 1991 के बाद खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर जनसंख्या वृद्धि दर से कम हो गई है।

जैसा कि खाद्य सुरक्षा के तात्पर्य के भाग में हम जान चुके है कि अनाज की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता के अलावा उपभोक्ता की अनाज को क्रय कर सकने की क्षमता भी खाद्य सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। खाद्यान्न की आर्थिक पहुँच के लिए आवश्यक है कि खाद्यान्न की कीमत इतनी हो कि उपभोक्ता इसे क्रय कर सके। इस तथ्य के आलोक में देश में कृषि उत्पादों की कीमतो पर अध्ययन आवश्यक है। कृषि उत्पादों की कीमतो व विनिर्मित उत्पादों की कीमतो के परिवर्तन को आगे तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका 24.5 विनिर्मित उत्पादों की तुलना में कृषि उत्पादों की थोक कीमत सूचकांक (आधार वर्ष 2004-05)

वर्ष	कृषि उत्पादों का कीमत सूचकांक	विनिर्मित उत्पादों का कीमत सूचकांक	विनिर्मित उत्पाद के प्रतिशत रुप में कृषि उत्पादों का कीमत सूचकांक
2005-06	103.4	102.4	100.97
2006-07	112.5	108.2	103.97
2007-08	121.5	113.4	107.14
2010-11	176.6	130.1	135.74
2013-14	233.0	151.5	153.79
2014-15	243.9	155.1	157.72

स्रौत: आर्थिक समीक्षा, 2015-16, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार

तालिका के अनुसार देश में सतत रुप से कृषि उत्पादों की कीमतो में वृद्धि विनिर्मित वस्तुओं की कीमतों की तुलना में अधिक हुई है। खाद्य सुरक्षा के लिए यह चिन्ता का विषय है। एक ओर कृषक वर्ग के लिए यह उचित है कि कृषि उत्पादों की कीमतें तेजी से बढ़ रही है लेकिन यह देश की खाद्य सुरक्षा के हित में नहीं है क्योंकि विकासशील देशों में जनसंख्या का बड़ा भाग अपनी आय का बड़ा अनुपात खाद्यान्न पर खर्च करता है तथा इनकी तेजी से कीमत में वृद्धि खाद्य सुरक्षा के लिए चुनौति उत्पन्न करता है।

24.6 सार्वजनिक वितरण प्रणाली

सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा कम आय वर्ग को उपभोग की बुनियादी वस्तुएँ कम कीमत पर उपलब्ध कराई जाती है ताकि न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकें भारत में

इसके अधीन चावल, गेहूँ, चीनी व कैरोसीन जैसी वस्तुएँ उपलब्ध कराई जाती है। भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली इस कम आय वर्ग को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने का महत्वपूर्ण साधन है। आधुनिक सार्वजनिक वितरण प्रणाली की शुरुआत समग्र खाद्य प्रबंधन नीति के तहत 1965 में आरंभ की गई। इसका उद्ेश्य खाद्यान्नों की कीमत में स्थिरता, किसानों को उनके उत्पादन के लिए कीमत समर्थन प्रदान करना तथा देश के खाद्यान्न अभाव क्षेत्रों व कम आय वर्ग के लोगों को कम कीमत पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना है। इसके अन्तर्गत न्यूनतम समर्थन कीमत की घोषणा की जाती है ताकि कृषि उत्पादों की कीमतें अधिक उत्पादन की दशा में नीचे नहीं जावें क्योंकि इन कीमतों पर सरकार द्वारा अनाज का क्रय किया जाता है। अनाज उत्पादन के तत्काल पश्चात उनकी कीमतें कम होती है व किसानों को बाध्य होकर अनाज सस्ते में स्थानीय व्यापारी को बेचना पड़ता है। न्यूनतम समर्थन कीमत इस तरह किसानों को उनके उत्पादन के लिए कीमत समर्थन प्रदान करता है। इस वसूली कीमत पर खाद्यान्नों के क्रय को भण्डार किया जाता है जो बफर स्टाक बनाता है। कम उत्पादन के वर्षों में इस बफर स्टाक का प्रयोग कर खाद्यान्नों के अभाव को दूर किया जाता है तथा अधिक उत्पादन के वर्षों में यह अनाज के भण्डार में वृद्धि करता है।

देश के खाद्यान्न अधिक उत्पादन क्षेत्रों से कम उत्पादन क्षेत्रों में परिवहन का कार्य भी इसी प्रणाली के तहत आता है। इन भण्डारों से खाद्यान्न केन्द्रीय निर्गमन कीमतों पर उचित मूल्य की दुकानों द्वारा कम कीमत पर विक्रय हेतु वितरित किया जाता है। ताकि कम आय वर्ग को उचित कीमत पर खाद्यान्न उपलब्ध कराया जा सके। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में केन्द्रीय व राज्य सरकार दोनो की भूमिका होती है। न्यूनतम समर्थन कीमतों की घोषणा अनाज को परिवहन, भण्डारण तथा केन्द्रीय खाद्य निगम व राज्य ऐजेंसियों के द्वारा अनाज की खरीद में केन्द्र सरकार की भूमिका होती है। अनाज को उचित मूल्य की दुकानों द्वारा वितरण व लाभार्थियों का चयन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। भारत की सार्वजनिक वितरण प्रणाली विश्व की एक बड़ी खाद्य वितरण प्रणालियों में से एक है। वर्तमान में इसके द्वारा 5.32 लाख उचित मूल्य की दुकानों द्वारा 18.04 करोड़ परिवारों को लाभान्वित किया जा रहा है।

24.6.1 सार्वजनिक वितरण प्रणाली कार्य प्रणाली

केन्द्र सरकार द्वारा खाद्यान्नों की न्यूनतम समर्थन कीमत की घोषणा फसल की बुआई के समय की जाती है। सरकार इन कीमतों की घोषणा कृषि लागत व कीमत आयोग की सिफारिश पर करती है। भारतीय खाद्य निगम तथा राज्य ऐजेंसियों के द्वारा केन्द्र सरकार वसूली कीमतों पर अनाज की खरीद करती है। अनाज की खरीद कर इसका भण्डारण किया जाता है। अनाज का यह भण्डार बफर स्टाक का काम करता है। खाद्यान्न के अधिक उत्पादन वाले क्षेत्रों से कम उत्पादन वाले क्षेत्रों में हस्तान्तरण का कार्य भी भारतीय खाद्य निगम ही करता है। केन्द्र सरकार द्वारा घोषित केन्द्रीय निर्गमन कीमतें पर उचित मूल्य की दुकानों के लिए खाद्यान्न आवंटित किया जाता है। केन्द्रीय निर्गमन कीमतें खाद्यान्न की आर्थिक लागत से कम होती है। आर्थिक लागत में क्रय, भण्डारण व परिवहन की लागतें सम्मिलित होती है। इसके पश्चात उचित मूल्य की दुकानों द्वारा कम कीमत पर लाभार्थियों को खाद्यान्न आवंटन कर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रारंभ होने के पश्चात निरन्तर इसका विस्तार हुआ है। वसूली कीमतों पर खाद्यान्नों के क्रय, भण्डारण व वितरण में निरन्तर वृद्धि हुई है। उत्तरोत्तर लाभार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई है। खाद्यान्न सब्सिडी की राशि में भी निरन्तर वृद्धि हुई है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली का लाभ उन लोगों को भी मिल रहा था जो वास्तव में गरीब नहीं थे व यह प्रमुख रुप से शहरी क्षेत्रों में विस्तृत थी इस समस्या के समाधान के लिए सरकार ने 1992 में पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली लागू की गई। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सरल, मजबूत व कारगर बनाने तथा इसे पहाड़ी, दूरवर्ती तथा अगम्य क्षेत्रों में जहाँ समाज का गरीब वर्ग निवास करता है तक पहुँचाने का कार्य किया गया। इस कार्यक्रम का विस्तार 1775 ब्लाक में किया गया। इसके तहत 20 किलोग्राम अनाज प्रति कार्ड उपलब्ध कराया गया। इसके पश्चात जून 1997 में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली लागू की गई। इसके तहत उपभोक्ताओं को दो वर्गो में बांटा गया गरीबी रेखा के नीचे तथा गरीबी रेखा के ऊपर। दोनों के लिए खाद्यान्न की कीमत अलग-अलग रखी गई। बी.पी.एल. को खाद्यान्न आर्थिक लागत के 50 प्रतिशत पर तथा ए.पी.एल. को खाद्यान्न आर्थिक लागत पर उपलब्ध कराया गया। इस प्रणाली में खाद्यान्न प्रतिव्यक्ति के स्थान पर प्रति परिवार उपलब्ध कराने का प्रावधान रखा गया। इसके पश्चात राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून ( ) लागू किया गया इसके तहत देश की दो-तिहाई आबादी को सम्मिलित किया गया। इसमें लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत 75 प्रतिशत ग्रामीण व 50 प्रतिशत शहरी जनसंख्या को प्रतिमाह प्रतिव्यक्ति 5 किलोग्राम अनाज उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया।

न्यूनतम समर्थन कीमत

देश में खाद्य सुरक्षा का महत्वपूर्ण पहलू न्यूनतम समर्थन कीमतों की घोषणा व वसूली कीमतों पर सरकार द्वारा अनाज की खरीद है। इसके द्वारा उत्पादको को कीमत समर्थन दिया जाता है ताकि अनाज उत्पादन के तत्काल पश्चात व अधिक उत्पादन की दशा में कृषि उत्पादों की कीमत नहीं गिरे व कृषक हितों की सुरक्षा की जा सकें। न्यूनतम समर्थन कीमतें तालिका में प्रदर्शित है। इस तालिका से स्पष्ट है कि न्यूनतम समर्थन कीमतों में निरन्तर वृद्धि हुई है।

तालिका 24.6 न्यूनतम समर्थन कीमतें गेहूँ व चावल **रुपये/प्रति क्विंटल**

वर्ष	गेहूँ	चावल
1999-2000	550	490
2004-05	630	560
2010-11	1100	1000
2014-15	1400	1350

स्रौत: खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय, भारत सरकार

1999-2000 में गेंहूँ की न्यूनतम समर्थन कीमत 550 रु से बढ़कर 2014-15 में 1400 रु प्रति क्विंटल हो गया। व चावल की न्यूनतम समर्थन कीमत इसी अवधि में 490 रु प्रति क्विंटल से 1350 रु प्रति क्विंटल हो गई। इन कीमतों में निरन्तर वृद्धि हुई है लेकिन इन कीमतों का वास्तविक

लाभ उन्हीं किसानों को हुआ है जिनके पास अतिरेक उत्पादन है तथा उन्हीं राज्यों में हुआ है जहाँ से सरकारी खरीद के अधिकतर भाग की प्राप्ति की जाती है। गेहूँ खरीद का अधिकतर भाग पंजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश, राजस्थान व उत्तरप्रदेश से होता है वहीं चावल की खरीद का अधिकतर भाग पंजाब, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश, उड़ीसा, हरियाणा व पश्चिम बंगाल से होता है।

24.6.2 खाद्यान्नों की आधि प्राप्ति, उठाव तथा भण्डारण

खाद्य सुरक्षा के लिए खाद्यान्नों की अधिप्राप्ति (सरकारी खरीद) की मात्रा में निरन्तर वृद्धि हुई है। 1990-91 में गेहूँ व चावल की अधिप्राप्ति 23.74 मिलियन टन थी जो 2012-13 में बढ़कर 72.19 मिलियन टन हो गई जो तीन गुना है। अधिप्राप्ति की मात्रा में वर्ष प्रतिवर्ष उच्चावच है लेकिन समयोपरि इसमें वृद्धि हुई। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में 1990-91 में खाद्यान्नों का उठाव 16.49 मिलियन टन से बढ़कर 2012-13 में 62.78 मिलियन टन हो गया। इसके अलावा खाद्यान्न का भण्डार जो 1990-91 में 15.81 मिलियन टन था 2012-13 में बढ़कर मिलियन टन हो गया। खाद्यान्न का भण्डार जितना अधिक होता है सब्सिडी पर व्यय अधिक होता है।

तालिका 24.7 खाद्यान्नों की अधिप्राप्ति (सरकारी खरीद), उठाव तथा भण्डारण

(मिलियन टन में)

वर्ष	अधिप्राप्ति	उठाव	भण्डार
1990-91	23.74	16.49	15.81
2000-01	37.64	18.21	44.98
2004-05	41.47	41.47	17.97
2010-11	56.71	53.00	44.31
2012-13	72.19	62.78	59.76

स्रौत:- हैण्ड बुक आफ इंडियन इकोनामी, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया।

न्यूनतम समर्थन कीमत तेजी से बढ़ने से अनाज की अधिप्राप्ति अधिक होती है जो खुले बाजार में अनाज की उपलब्धता को कम करती है तथा कीमतें बढ़ जाती है। अगले वर्ष न्यूनतम समर्थन कीमत बाजार कीमत से ऊँची रखी जाती है। खाद्यान्नों का उठाव अधिप्राप्ति की तुलना में कम होने से भण्डार की मात्रा में वृद्धि होती है। जो खाद्य सब्सिडी को बढ़ाती है। खाद्यान्न के भण्डार सरकार के तय मानको से बहुत अधिक है। केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को बी.पी.एल. तथा ए.पी.एल परिवारों के लिए खाद्यान्नों का आवंटन केन्द्रीय निर्गमन कीमतों पर किया जाता है। ये कीमतें न्यूनतम समर्थन कीमतों से कम होती है व इनके अन्तर का भार सरकार द्वारा सब्सिडी के रुप में वहन किया जाता है। लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली लागू होने के बाद ए.पी.एल. व बी.पी.एल. के लिए अलग-अलग निर्गमन कीमतें होती है। 2000-01 में बी.पी.एल. के लिए निर्गमन कीमत आर्थिक लागत का 50 प्रतिशत तथा ए.पी.एल. के लिए आर्थिक लागत के समान रखी गई है। वर्ष 2000 से अन्त्योदय अन्न योजना के तहत अलग जारी कीमतों की घोषणा की जाती है।

तालिका 24.8 सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए केन्द्रीय जारी कीमत

रुपयें/प्रति क्विंटल

वर्ष	गेहूँ	चावल
1990-91	234	289
2000-01		
APL	830	1087
BPL	415	565
AAY	200	300
2002 Is vc rd	610	795
	415	565
	200	300

स्रौत: खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण विभाग, भारत सरकार

ए.पी.एल. के लिए खाद्यान्नों की जारी कीमतें बाजार कीमतों से अधिक होती है। भारतीय खाद निगम की आर्थिक लागत (खरीद परिवहन व भण्डार लागत) इसकी अकुशलता के कारण अधिक है। इसके कारण ए.पी.एल. परिवार खाद्यान्न आवश्यकता के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली की अपेक्षा बाजार पर आश्रित है।

24.6.3 सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर निर्भरता

खाद्यान्न के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर निर्भरता के संबंध में राष्ट्रीय सेम्पल संगठन द्वारा (68वें दौर के सर्वेक्षण) अध्ययन किए गए। उनके अनुसार 2011-12 में ग्रामीण क्षेत्रों में चावल के लिए उपभोग का 27.9 प्रतिशत व गेहूँ के लिए 17.3 प्रतिशत सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर निर्भर थे जबकि चीनी व केरोसीन के लिए यह निर्भरता 15.8 प्रतिशत व 80.8 प्रतिशत थी। इसी प्रकार शहरी क्षेत्र में चावल के 19.6 प्रतिशत गेहूँ के लिए 10.1 प्रतिशत व चीनी के लिए 10.3 प्रतिशत उपभोग मात्रा सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर आश्रित थी।

इसी प्रकार 2011-12 में पिछले 30 दिन की संदर्भ अवधि के दौरान सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर निर्भर परिवारों का प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में गेहूँ के लिए 45.9 प्रतिशत व चावल के लिए 33.9 प्रतिशत था जबकि शहरी क्षेत्र में चावल के लिए 23.3 प्रतिशत व गेहूँ के लिए 19.0 प्रतिशत था। अर्थात् रिपोर्टिंग परिवारों में ग्रामीण क्षेत्र में शहरी क्षेत्र की अपेक्षा सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर निर्भरता अधिक दिखाई। व कुल उपभोग में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का भाग ग्रामीण क्षेत्र में शहरी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक पाया गया।

राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन के आँकड़े दर्शाते है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर खाद्य सुरक्षा के लिए निर्भरता क्षेत्रीय विषमता रखती है। चावल के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली

पर निर्भरता दक्षिण भारत के राज्यों में सर्वाधिक थी व गेहूँ के लिए महाराष्ट्र के ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक थी। पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश व राजस्थान जैसे राज्यों में यह निर्भरता कम थी।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत खाद्य सुरक्षा पर सब्सिडी का भार निरन्तर बढ़ता जा रहा है। वर्ष 2005-06 में यह 23071 करोड़ रु तथा जो बढ़कर वर्ष 2013-14 में 89470 करोड़ रु हो गया। सरकार द्वारा खाद्यान्नों के बफर स्टाक को बनाये रखने का कुल व्यय इसके द्वारा कृषि, ग्राम विकास, सिंचाई व बाढ़ नियंत्रण पर कुल व्यय से भी अधिक था। सब्सिडी बढ़ने का प्रमुख कारण भारतीय खाद्य निगम की आर्थिक लागत तथा निर्गमन कीमत में बढ़ता अन्तर तथा खाद्यान्न खरीद मात्रा में वृद्धि है। बढ़ते रिसाव, उच्च प्रशासनिक लागतें, भ्रष्टाचार व कुप्रबंधन के कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली की लागत बढ़ गई है। यदि सब्सिडी की इस राशि का उपयोग कृषि निवेश में किया जावे तो उत्पादकता में वृद्धि होगी। उच्च मात्रा में सब्सिडी बाजार को विकृत करती है तथा सरकारी बजट पर भार बढ़ाती है।

24.6.4 विकेन्द्रित अधिप्राप्ति योजना तथा खुले बाजार में बिक्री योजना

1997 में विकेन्द्रित अधिप्राप्ति योजना आरंभ की गई व कई राज्यों ने इसे अपनाया। इसमें खाद्यान्न की अधिप्राप्ति भण्डार तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली व अन्य खाद्य योजनाओं को निर्गमन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। इस प्रणाली में आर्थिक लागत तथा निर्गमन कीमत के अन्तर के बराबर सब्सिडी का भुगतान केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है। इसका उ६ेश्य यह है कि (1) अधिक किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य के दायरे में लाया जा सके। (2) सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दक्षता में सुधार किया जा सके (3) स्थानीय रुचि के अनुसार खाद्यान्न विविधता उपलब्ध कराई जा सके तथा (4) परिवहन लागत को कम किया जा सके। कई राज्य सरकारों ने इसका विरोध इस आधार पर किया कि इसके लिए आवश्यक आधारभूत संरचना तथा वित्तीय संसाधन राज्य सरकारों के पास नहीं है। विकेन्द्रित अधिप्राप्ति से अधिप्राप्ति कम होगी व किसानों के हित में नहीं होती व केवल व्यापारी वर्ग को इससे लाभ होता है।

खाद्य अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए 2008 में सरकार ने खुले बाजार बिक्री योजना (घरेलू) के अन्तर्गत खुले बाजार में गेहूँ निर्गमन का निर्णय किया। इसे दो तरीको से किया जाना था। (1) खुदरा उपभोक्ताओं को विक्रय के लिए राज्य सरकार को आवंटन तथा (2) खुली निविदा प्रणाली से भारतीय खाद निगम द्वारा बड़े उपभोक्ताओं को विक्रय। इससे गेहूँ की थोक कीमत वृद्धि दर नियंत्रण लगेगा। 2014-15 में इस योजना के तहत 10 मिलियन टन गेहूँ का आवंटन किया गया। वर्ष 2014-15 से सरकार ने पुराने स्टाक में खाद्यान्न को खुले बाजार में विभेदित कीमतों पर विक्रय का निर्णय लिया है।

24.7 सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मूल्यांकन

देश के खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा अनाज की कीमतों में विचरण कम हुआ है। आबादी का एक बड़ा भाग जो निर्धन है को खाद सुरक्षा (कम कीमत पर अनाज आवंटन) मुहैया कराई है तथा कृषको

को उनकी उपज का उचित प्रेरणा मूल्य (न्यूनतम समर्थन कीमत द्वारा) प्रदान किया गया है लेकिन इससे जुड़ी अनेक समस्याएँ है।

1. न्यूनतम समर्थन कीमतों की घोषणा राष्ट्रीय स्तर पर की जाती है। इसक द्वारा प्रभावी कीमत समर्थन केवल गेहूँ व चावल तथा कुछेक राज्यों तक ही है। इसके द्वारा गेहूँ व चावल के पक्ष में विषम संरचना बन गई है। जबकि देश दलहन व तिलहन के आयात पर निर्भर है। इनकी कीमतें अक्सर न्यूनतम समर्थन कीमतों से नीचे चली जाती है अर्थात् इनके लिए प्रभावी कीमत समर्थन नहीं है।
2. 1 जनवरी 2015 को बफर स्टाक के मानक 21.41 मिलियन टन की तुलना में वास्तविक भण्डार 61.6 मिलियन टन था। इतने बड़े अनाज भण्डार को रखने की लागत वसूली कीमतों के 40 से 50 प्रतिशत तक है। दूसरी ओर अनाज कीमतों मे वृद्धि ऊँची बनी हुई है। यह खाद्य नीति पर प्रश्न पैदा करती है।
3. खाद्य सुरक्षा वित्तीय भार सब्सिडी के रुप में बहुत अधिक हो गया है। 2013-14 में यह 89470 करोड़ रु तक पहुँच गया। इस भार को सार्वजनिक वितरण प्रणाली को तर्क संगत करके कम किया जाना चाहिए। जुलाई 2002 से निर्गमन कीमतें स्थिर है व आर्थिक लागत बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून लागू होने के पश्चात आर्थिक लागत व निर्गमन कीमत का अन्तर बढ़ रहा है। दूसरी ओर अधिप्राप्ति बढ़ रही है। इससे खाद्य सब्सिडी का भार असहनीय स्तर तक हो रहा है।
4. सार्वजनिक वितरण प्रणाली में रिसाव-राज्य सरकारों द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत अनाज का उठाव तथा उपभोग में अन्तर है। योजना आयोग कि रिपोर्ट (2005) के अनुसार बिहार व पंजाब जैसे राज्यों में रिसाव की मात्रा 75 प्रतिशत से अधिक है। हरियाणा, मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश में यह 50 से 75 प्रतिशत तक है। इसी प्रकार उचित मूल्य की दुकानों के स्तर पर बिहार, हरियाणा व पंजाब में रिसाव 50 प्रतिशत से अधिक था। राजस्थान व उत्तर प्रदेश में यह 25 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक था। अतः प्रणाली में रिसाव का स्तर ऊँचा है व इसे कम किया जाना चाहिए।
5. सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार व्याप्त है तथा पारदर्शिता की कमी है। सूचना तकनीक व प्रत्यक्ष लाभ हस्तान्तरण का प्रयोग कर इसे कम किया जा सकता है। लाभार्थियों की सूचना को आनलाईन किया जाना चाहिए।
6. सार्वजनिक वितरण प्रणाली में खाद्यान्न की गुणवत्ता कमजोर है। विभिन्न राज्यों में, शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर कम आय वर्ग की निर्भरता में अन्तर है व भारत में कुपोषण के स्तर विशेषकर महिलाओं व बालको में देखते हुए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत करने की आवश्यकता है।

24.8 खाद सुरक्षा के लिए कल्याणकारी योजनाएँ

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अतिरिक्त निर्धन आय परिवारों, निराश्रितों, बुजुर्गों, महिलाओं तथा बच्चों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए अन्य योजनाएँ कार्यरत है । इनमें अन्त्योदय अन्न योजना, एकीकृत बाल विकास सेवा, मध्यान भोजन योजना तथा राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून प्रमुख है।

1. अन्त्योदय अन्न योजना - दिसम्बर 2000 में इस योजना को लागू किया गया। यह केन्द्र प्रायोजित योजना है । इसके तहत सबसे गरीब 1 करोड़ परिवारों को 3 रु. किलो चावल तथा 2 रु किलो गेहूँ प्रति परिवार प्रतिमाह 35 किलो अनाज उपलब्ध कराया जाता है । इस योजना में भूमिहीन, सीमांत कृषक, दस्तकार, आकस्मिक श्रमिक, महिला, बुजुर्ग निराश्रित व अक्षम व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया है । इस योजना का क्षेत्र 1 करोड़ से बढ़ाया जाना चाहिए तथा अनाज की मात्रा में भी वृद्धि की जानी चाहिए।
2. अन्नपूर्ण योजना - वर्ष 2000-01 से ग्रामीण विकास मंत्रालय की इस योजना के अन्तर्गत 65 वर्ष आयु से अधिक के वरिष्ठ नागरिको जिन्हें वृद्धावस्था पेंशन का लाभ नहीं मिल रहा है को प्रतिमाह प्रतिव्यक्ति 10 किलो अनाज निशुल्क दिया जाता है ।
3. एकीकृत बाल विकास सेवायें - यूनिसेफ की सहायता से 2 अक्टूबर 1975 को इस कार्यक्रम को आरंभ किया गया। शिशु मृत्यु दर को कम करना, माताओं के स्वास्थ्य में सुधार तथा गरीबी व भूखमरी में कमी इस कार्यक्रम का प्रमुख उ६ेश्य है । 2005 से यह कार्यक्रम सम्पूर्ण देश में लागू किया गया। यह कार्यक्रम 13.40 लाख आंगनबाड़ी केन्द्रों के माध्यम से संचालित किया जा रहा है । टीकाकरण, स्वास्थ्य जांच, गर्भवती व धात्री महिलाओं के लिए पूरक आहार तथा 3 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए विद्यालय पूर्व शिक्षा की व्यवस्था है । 12वी पंचवर्षीय योजना में इसके लिए 1,23500 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया।
4. दोपहर भोजन योजना - 1995 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा आरंभ की गई केन्द्र प्रायोजित योजना है । इस योजना में राजकीय विद्यालय में प्रारम्भिक स्तर पर अध्ययनरत बच्चों को दोपहर का भोजन प्रदान किया जाता है ताकि बच्चों के पोषण स्तर में सुधार हो, अधिगम बेहतर हों, नामांकन व ठहराव बढ़े तथा विद्यालय बीच में छोड़ने की दर कम हो। इस कार्यक्रम में भोजन कि किस्म, गुणवत्ता व पर्यावरण के विस्तृत मार्गदर्शन निर्दिश जारी किए गए है । वर्तमान में 65 लाख विद्यालयों के माध्यम से 12 करोड़ बच्चों को लाभान्वित किया जा रहा है । 2013-14 में इसके लिए 13200 करोड़ रुपये आवंटित किए गए।
5. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून - सितम्बर 2013 को लागू इस कानून का मुख्य उ६ेश्य देश की दो तिहाई आबादी को सब्सिडीयुक्त खाद्यान्न उपलब्ध कराना है । यह लोगो को बेहतर व सम्मानजनक जीवन के लिए पर्याप्त मात्रा में गुणवत्ता युक्त भोजन उपलब्ध कराता है । समन्वित बाल विकास योजना व सार्वजनिक वितरण प्रणाली को इसमें सम्मिलित किया

गया है। यह 75 प्रतिशत ग्रामीण आबादी व 50 प्रतिशत शहरी आबादी को खाद्यान्न का कानूनी अधिकार देता है। प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह 3रु किलो चावल 2रु किलो गेहूँ तथा 1रु किलो मोटा अनाज की दर से 5 किलो अनाज उपलब्ध कराया जावेगा। निर्धनों की योग्यता का निर्धारण राज्य सरकारों द्वारा किया जावेगा। 18 वर्ष से अधिक आयु की महिला को परिवार के मुखिया के रुप में राशन कार्ड उपलब्ध कराया जावेगा। 6-14 वर्ष के आयु के बच्चों को पकाया हुआ गर्म भोजन उपलब्ध कराया जायेगा। खाद्यान्न सुरक्षा उपलब्ध न कराने की स्थिति मे राज्य सरकार खाद्य सुरक्षा भत्ता देगी। जिला स्तर पर इसमें समस्या निस्तारण प्रणाली का प्रावधान किया गया है।

24.9 बोध प्रश्न

1. खाद्य सुरक्षा केा परिभाषित कीजिए।
2. भारत में खाद्य सुरक्षा की स्थिति की समीक्षा कीजिए।
3. भारत में खाद्यान्नों के उत्पादन व उपलब्धता की स्थिति की समीक्षा कीजिए।
4. भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कार्य प्रणाली लिखिए।
5. खाद्यान्नों की अधिप्राप्ति, उठाव, भण्डारण की भारत में स्थिति की समीक्षा कीजिए।
6. खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर निर्भरता की स्थिति का उल्लेख कीजिए।
7. खाद्यान्नों की विकेन्द्रित अधिप्राप्ति तथा खुले बाजार में बिकी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
8. भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मूल्यांकन कीजिए।
9. खाद्य सुरक्षा के लिए भारत में कल्याणकारी योजनाओं को उल्लेख कीजिए।

24.10 सारांश

प्रत्येक नागरिक के स्वास्थ्य व सक्रिय जीवन व्यतीत करने के लिए खाद्य सुरक्षा एक बुनियादी आवश्यकता है। यदि व्यक्ति इस आवश्यकता को पूर्ण करने में असफल रहता है तो इसे पूरा करना सरकार की जिम्मेदारी है। विकासशील देशों में अभी भी बड़ी मात्रा में निर्धन आय वर्ग को पर्याप्त व उचित भोजन उपलब्ध नहीं है। भारत में कुपोषण अभी भी बड़ी समस्या बनी हुई है। भारत खाद्यान्न उत्पादन में योजनागत विकास का मार्ग अपनाकर आत्मनिर्भरता प्राप्त कर चुका है। सरकार द्वारा इस हेतु अनेक नीतिगत उपाय किए गए है जिससे कि नागरिको को खाद्य सुरक्षा प्राप्त हो। सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली देश की कम आय वर्ग को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने की महत्वपूर्ण है। इसके कार्यक्रम में अदक्षता, भ्रष्टाचार व अकार्यकुशलता है जिसके चलते देश में पर्याप्त अनाज भण्डार, खाद्यन्नों की ऊँची कीमते तथा कुपोषण विद्यमान है। इसलिए देश में खाद्य प्रबंधन को बेहतर करने, पारदर्शी करे, भ्रष्टाचार मुक्त करने तथा सूचना प्राद्योगिकी के प्रयोग द्वारा कुशल करने की आवश्यकता है।

24.11 शब्दावली

- खाद्य सुरक्षा: देश के सभी लोगो तक खाद्यान्नों की भौतिक व आर्थिक पहुँच। भौतिकी पहुँच का तात्पर्य पर्याप्त उत्पादन मात्रा से है तथा आर्थिक पहुँच का तात्पर्य अल्प आय वर्ग द्वारा खाद्यान्न क्रय करने की उनकी क्षमता से है ।
- न्यूनतम समर्थन कीमत: केन्द्र सरकार द्वारा प्रमुख फसलों की बुआई के समय केन्द्रीय लागत व कीमत आयोग की अनुशंसा पर इनकी घोषणा करती है। तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली में आवंटन हेतु इन कीमतों पर खाद्यान्न की खरीद करती है।
- निर्गमन कीमतें: जिन कीमतों पर केन्द्र सरकार राज्यों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा खाद्यान्न वितरण के लिए सरकारो को आवंटित करती है।
- आर्थिक लागत: भारतीय खाद्य निगम द्वारा अनाज की वसूली कीमत, भण्डारण व परिवहन का योग आर्थिक लागत कहलाता है।
- उपभोक्ता सब्सिडी: आर्थिक लागत तथा निर्गमन कीमतों का अन्तर उपभोक्ता सब्सिडी है।

24.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा।
2. राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण रिपोर्ट।
3. रिजर्व बैंक, हैण्ड बुक आफ स्टेटिस्सटिक्स आन इंडियन इकानामी।

24.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. खण्ड 1.3 को देखें
2. खण्ड 1.4 को देखें
3. खण्ड 1.5 को देखें
4. खण्ड 1.6.1 को देखें
5. खण्ड 1.6.2 को देखें
6. खण्ड 1.6.3 को देखें
7. खण्ड 1.6.4 को देखें
8. खण्ड 1.7 को देखें
9. खण्ड 1.8 को देखें

इकाई 25
विश्व व्यापार संगठन व भारतीय कृषि

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 कृषि पर समझौता
  25.2.1 घरेलू समर्थन
  25.2.2 बाजार पहुँच
  25.2.3 निर्यात सहायता को कम करना
  25.2.4 बौद्धिक सम्पदा अधिकार तथा स्वच्छता व पादप स्वच्छता के कानून
25.3 विश्व व्यापार संगठन का कृषि पर समझौता व भारतीय कृषि
25.4 विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते के पश्चात् का अनुभव
25.5 विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते पर विकासशील देशों के लिए आवश्यक सुझाव
25.6 बोध प्रश्न
25.7 सारांश
25.8 शब्दावली
25.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
25.10 बोध प्रश्नो के उत्तर

25.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- यह जान सकेंगे कि विश्व व्यापार संगठन का कृषि पर समझौता क्या है ?
- कृषि के संबंधमें बौद्धिक सम्पदा व स्वच्छता व पादप स्वच्छता क्या है ?
- इन समझौतों का भारतीय कृषि पर प्रभाव व मूल्यांकन कर सकेंगे।

25.2 प्रस्तावना

विश्व व्यापार की स्थापना 1 जनवरी 1995 को हुई। व्यापार व प्रशुल्क पर सामान्य समझौता (गैट) के आठवें दौर के पश्चात् इसकी स्थापना हुई। यह अब तक का सबसे महत्वकांक्षी व्यापार समझौता है । यह बहुपक्षीय स्वतंत्र व्यापार, मजबूत विवाद निपटान प्रणाली , गैर विभेदकारी व्यापार को समर्पित संगठन है । इसका प्रमुख कार्य इस बात को सुनिश्चित करना है कि सदस्य देश व्यापार समझौते के अनुरुप कार्य करें। गैट की स्थापना के बाद उसका प्रमुख कार्य गैर प्रशुल्क

व्यापार बाधाओं को हटाना तथा प्रशुल्क दरों को व्यवस्थित व कम करना। गैट के आठवें दौर में कुछ नये विषयों पर विश्व व्यापार के नियम समाहित किये गये। इनमें वस्त्रों पर समझौता, सेवा व्यापार पर समझौता, कृषि पर समझौता तथा बौद्धिक सम्पदा अधिकार पर समझौता प्रमुख है । भारत जैसे देश में कार्यबल के रोजगार, बड़ी आबादी की आजीविका, खाद्य सुरक्षा व विश्व व्यापार की दृष्टि से कृषि महत्वपूर्ण है । कृषि के संबंधमें विश्व व्यापार संगठन के नियमों का भारतीय कृषि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ने वाला है । कृषि के संबंध में विश्व व्यापार संगठन में विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख प्रावधानों का ज्ञान आवश्यक है ताकि उनके भारतीय कृषि व भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों को आंकलन किया जा सके तथा विकासशील देशों के अनुरुप कृषि नियमों को विश्व व्यापार संगठन के आगे आने वाले वार्ता के दौरों में समाहित किया जा सके।

25.3 विश्व व्यापार संगठन का कृषि पर समझौता

विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते का प्रमुख उ ेश्य व्यापार बाधाओं को हटाना, पारदर्शी बाजार पहूँच को बढ़ावा देना तथा वैश्विक बाजार का एकीकरण है । लेकिन समझौते के प्रावधान जटिल तथा विवादास्पद है । विकसित व विकासशील देशों में कृषि प्रणाली में अन्तर है । विकासशील देशों के लिए कृषि क्षेत्र आजीविका व खाद सुरक्षा के लिए बेहद महत्वपूर्ण है जबकि विकसित देशों में यह पूजीगहन तथा वाणिज्यिक स्वरुप की है । संदेह यह है कि यह समझौता कही विकसित देशों द्वारा कृषि क्षेत्र के माध्यम से विकासशील देशों के शोषण का उपकरण तो नहीं है । विश्व व्यापार संगठन के कृषि के समझौते के तीन प्रमुख आधार है यथा घरेलू समर्थन, बाजार पहुँच तथा नियति सब्सिडी।

25.3.1 घरेलू समर्थन

इसके अन्तर्गत वह सब्सिडी आती है जो सुनिश्चित न्यूनतम कीमत या आगत सब्सिडी के रुप में प्रत्यक्ष तथा उत्पाद विशिष्ट को दी जाती है । इसके तीन बॉक्स में विभाजित किया गया है (1) हरित बॉक्स - इसमें दी जाने वाली सब्सिडी व्यापार को विरूपित नहीं करने वाली या न्यूनतम विरूपित करने वाली मानी गई। पर्यावरण कार्यक्रम, कृषि अनुसंधान तथा विकास सब्सिडी के तहत किया गया भुगतान इसके अन्तर्गत आता है । यह इस तरह का भुगतान है जो उत्पाद विशिष्ट नहीं है । इसके तहत दी जाने वाली सब्सिडी को कम करने की आवश्यकता नहीं है तथा सब्सिडी की कोई सीमा भी नहीं है । यह सब्सिडी उत्पाद विशिष्ट के साथ जुड़ी हुई नहीं मानी गई है तथा सभी किसानों को समान रुप से वितरित मानी गइ है । अमेरीका जैसे देश में कुल सब्सिडी का 90 प्रतिशत इस श्रेणी में दिया जाता है । (2) नीला बॉक्स - इसके अधीन वह सब्सिडी भुगतान आता है जो कृषि का उत्पादन सीमित रखने के लिए तथा क्षतिपूर्ति भुगतान के रुप में दिया जाता है । यूरोपीय देशों में उत्पादन को सीमित रखने के लिए कृषको को इस तरह की सब्सिडी दी जाती है । क्षतिपूर्ति भुगतान वह सब्सिडी भुगतान है जो समर्थन कीमत व बाजार कीमत में अन्तर के कारण हानिपूर्ति के लिए कृषको को किया जाता है । कृषको को समर्थन कीमत तथा बाजार कीमत के अन्तर को उत्पादन मात्रा से गुणा कर हानिपूर्ति भुगतान किया जाता है । इस तरह की सब्सिडी अमेरीका में दी जाती है ।

नीला बॉक्स के अधीन आनेवाली सब्सिडी भुगतान को भी व्यापार को विरूपित करने वाला नहीं माना गया है । इसलिए इसे भी कम करने की आवश्यकता नहीं है । विश्व व्यापार संगठन के कृषि समझौते के अनुसार भारत इस तरह की सब्सिडी दे सकता है अथवा बढ़ा भी सकता है । (3) विशिष्ट एवं विभेदक बॉक्स-इसके अधीन वह सहायता आती है जो विकासशील देशों में गरीब व कम आय वाले किसानों को निवेश सहायता तथा कृषि आगत के रुप में दी जाती है । इसे भी व्यापार को विरूपित नहीं करने वाली सब्सिडी माना गया है । (4) पीला या अम्बर बॉक्स-इसके अन्तर्गत आने वाली सहायता को कम न नियमित करने की आवश्यकता को समझौते में रखा गया है । इस सहायता का आंकलन समर्थन के समग्र माप (AMS) द्वारा किया जाना है व इसे सीमित कर समाप्त किये जाने का प्रावधान रखा गया है । इसके अन्तर्गत वह भुगतान आता है जो हरित बॉक्स, नीला बॉक्स तथा विशिष्ट एवं विभेदक बॉक्स के अतिरिक्त कृषि उत्पादन पर सरकार द्वारा व्यय किया जाता है । इस तरह की सहायता के लिए सदस्य देशों के लिए यह आवश्यक किया गया है कि 1986-88 को आधार मानकर यह बतायें कि उनके यहाँ 1986-88 में कितनी सहायता दी गई व तय कार्यक्रम के अनुसार इसे सीमित करने व कम करने का लक्ष्य रखा गया। विकसित देशों के लिए यह लक्ष्य रखा गया कि वे इस तरह की सहायता को वर्ष 1995 से 2000 के मध्य 6 वर्षो में 20 प्रतिशत की कमी करें तथा विकासशील देश 1995 से 2004 तक (10 वर्षो में) 13 प्रतिशत की कटौति करें। इसके अधीन सब्सिडी को कम करने का आधार वर्ष 1986-88 रखा गया है । 1986-88 में विकसित देशों में इस तरह की सब्सिडी का स्तर ऊँचा था तथा विकासशील देशों में बहुत सीमित थी। इसलिए कम करने बावजूद विकसित देशों में इस तरह की सब्सिडी का स्तर ऊँचा बना रहता है ।

पीला या अम्बर बॉक्स में समर्थन का ऑकलन समर्थन के समग्र माप द्वारा किया जाना है । इसके दो भाग है (1) उत्पाद विशिष्ट समर्थन उत्पाद विशिष्ट समर्थन की गणना बाह्य संकेत कीमत तथा घरेलू समर्थन कीमत से अन्तर को उत्पाद विशिष्ट की मात्रा से गुणा करके किया जाना है । (2) गैर उत्पाद विशिष्ट सहायता-इसकी की गणना कृषि आगतो पर दी जान वाली सहायता से किया जाना है । सहायता को कम करने की बाध्यता उपर्युक्त दोनो को समाहित करके की जानी है । इसके अतिरिक्त विकासशील देशों को उत्पादन के कुल मूल्य के 5 प्रतिशत से कम तथा विकसित देशों को उत्पादन के कुल मूल्य के 10 प्रतिशत से कम सहायता को कम करने की बाध्यता से मुक्त रखा गया है । सहायता को कम करने की बाध्यता केवल व्यापार को विरूपित करने वाली सब्सिडी के लिए रखा गया है । तथा व्यापार को विरूपित नहीं करने वाली सहायता को कम करने की बाध्यता से मुक्त रखा गया है ।

25.3.2 बाजार पहूँच

बाजार पहूँच प्रावधान के अधीन प्रमुख तथ्य यह है कि गैर प्रशुल्क बाधाओं को देशों के बीच व्यापार में समाप्त किया जावें इन्हें प्रशुल्क से प्रतिस्थापित किया जावे तथा इन प्रशुल्कों को उत्तरोत्तर कम करने की बाध्यता सदस्य देशों पर रखी गई है । गैर प्रशुल्क बाधाओं में मात्रात्मक प्रतिबंध एक है । जिसके तहत आयात की एक सुनिश्चित मात्रा आयात करने के प्रतिबंध होते है ।

विश्व व्यापार संगठन की एक प्रमुख विशेषता गैर प्रशुल्क बाधाओं को समाप्त करना व इन्हें प्रशुल्क बाधाओं से प्रतिस्थापित करना तथा प्रशुल्क के स्तर को नीचा करना रहा है । इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पारदर्शिता आती है तथा स्वतंत्र व्यापार प्रोत्साहित होता है । कृषि समझौते में भी इसी के अनुरुप गैर प्रशुल्क बाधाओं को समाप्त करना इन्हें प्रशुल्कों से प्रतिस्थापन करना तथा प्रशुल्कों को सतत रुप में नीचे लाने का प्रावधान रखा गया है । कृषि पर समझौते में यह कहा गया है कि विकसित देश 1986-88 के आधार वर्ष से 6 वर्षों में (1995 से 2000 तक) 36 प्रशुल्क कम करेगें तथा विकासशील देश 1986-88 के आधार वर्ष से 10 वर्षो में (1995 से 2004 तक) 24 प्रतिशत प्रशुल्कों को कम करेंगे।

तालिका 25.1 कृषि पर समझौते में विभिन्न संरक्षण मानको को कम करने की बाध्यता

क्रं सं.	मानक	विकसित देश 1995-2000 (6 वर्ष में)	विकासशील देश 1995-2004 (10 वर्षो में)
1	घरेलू समर्थन (1986-88 के स्तर) में सहायता का समग्रमाप	20	13
2	प्रशुल्क (1986-88 के स्तर) मे कृषि वस्तुओं के लिए	36	24
3	निर्यात सहायता (1986-88 के स्तर से)	36	24
4	सहायता प्राप्त निर्यातो की मात्रा (1986-88 के स्तर से)	21	10
5	बजट में निर्यात सहायता (1986-88 के स्तर से)	36	24

25.3.3 निर्यात सहायता को कम करना

यह कृषि आगतों पर सब्सिडी, निर्यातो को सस्ता करने या निर्यात के लिए अन्य प्रेरणायें जैसे आयात प्रशुल्क कम करने के रुप मे हो सकती है। इनके कारण दूसरे देश के उत्पाद बहुत सस्ते हो सकते है । जिनकी कम कीमत घरेलू कृषि क्षेत्र को नुकसान पहुँचा सकती है । कृषि निर्यात सहायता के संबंधमें प्रावधान किया गया है कि विकसित देश सब्सिडी प्राप्त निर्यातो की मात्रा को 6 वर्ष की अवधि (1995 से 2000 तक) में 21 प्रतिशत कम करेगे तथा विकासशील देश सब्सिडी प्राप्त निर्यात मात्रा को 1986-88 की तुलना में 10 वर्षो की अवधि (1995 से 2004 तक) में 10 प्रतिशत तक की कमी करेगे। बजट में कृषि के लिए निर्यात सहायता को कम करने की वचनबद्धता

भी सदस्य देशो के लिए रखी गई है। इस निर्यात सहायता को भी 1986-88 को आधार मानकर कम करने की बाध्यता रखी गई है। समझौते में कहा गया है कि इस तरह की निर्यात सहायता में विकसित देश 6 वर्षों की अवधि में (1995 ये 2000 तक) 36 प्रतिशत की कटौति करेगें तथा विकासशील देश दस वर्ष की अवधि में (1995 से 2004 तक) 24 प्रतिशत की कटौति करेगे। पुन: यह तथ्य ध्यान योग्य है कि 1986-88 जिसको आधार वर्ष माना गया है वर्ष में विकसित देशों का कृषि निर्यात सब्सिडी स्तर ऊँचा था तथा विकासशील देशों में यह नगण्य मात्रा में थी अर्थात् विकसित देश अगर नियत अनुपात में कमी करते है तो भी उनके सब्सिडी का स्तर बहुत ऊँचा बना रहता है।

उक्त निर्यात सहायता के प्रावधानों के बावजूद अमेरिका अपने निर्यात साख गारन्टी कार्यक्रम द्वारा इन नियमों की उपेक्षा कर रहा है। इस साख गारन्टी कार्यक्रम में अमेरिका उनके कृषि उत्पाद क्रेताओं को सब्सिडी युक्त साख देता है। जो दीर्घअवधि में वापस चुकाया जाता है। यह सामान्यत खाद्य सहायता कार्यक्रम जैसे पी.एल.-'480 के द्वारा किया जाता है इसके अधीन अमेरिका अल्पविकसित देशो को अत्यधिक खाद्य सहायता दे रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि इन देशो की इस पर निर्भरता स्थाई हो गई है व उनका कृषि विकास हतोत्साहित हुआ है। यह सब्सिडी भी व्यापार को विरूपित करने वाली है लेकिन यह विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते से बाहर है।

25.3.1 बौद्धिक सम्पदा अधिकार तथा स्वच्छता व पादप स्वच्छता के कानून

विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते के अलावा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों पर समझौता तथा स्वच्छता व पादप स्वच्छता पर बने नियमों का कृषि पर प्रभाव होगा। अत: इनका अध्ययन आवश्यक है। पेटेंट कानून में सदस्य देशों से अपेक्षा की गई है कि वें पौध किस्मों की सुरक्षा के लिए पेटेंट या सुई जेनेरिस अथवा दोनों को ही अपनाने के लिए कानून बनाये। तथा पौध किस्मों की सुरक्षा के लिए पेटेंट या सुई जेनेरिस के कानूनों की पालना सुनिश्चित करें। इस हेतु भारत सरकार ने पेटेंट की अपेक्षा सुई जेनेरिस पद्धति को अपनाने का निर्णय किया है।

भौगोलिक संकेत बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का एक अंग है। भौगोलिक संकेत से तात्पर्य वस्तु विशेष की स्थानीय सम्बद्धता से है। उसी स्थान की वस्तु को उस श्रेणी में शामिल किया जायेगा अन्य स्थान की उत्पादित वस्तु को नहीं चाहे उनके गुण समरूप हो। उदाहरण के लिए 'शैम्पेन' भौगोलिक संकेत है। फ्रांस के किसी विशेष क्षेत्र में तैयार शराब को 'शैम्पेन' कहा जाता है। अन्य स्थान पर उत्पादित समान गुण व विशेषता से युक्त उत्पाद को यह नाम नहीं दिया जा सकता। भौगोलिक संकेत वस्तु के उद्गम स्थान से सम्बद्ध है। भारत में भी इस तरह के उत्पाद है जैसे दार्जिलिंग चाय, कोल्हापुरी चप्पल, अलफॉन्सो आम स्थान विशेष के उद्गम से सम्बद्ध है। भारत में कई कृषि उत्पाद अद्वितीय किस्म के है व इनकी विविधता में भारत समृद्ध है। इस हेतु प्रयास कर 'भौगोलिक संकेत' को बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में समाहित किया जा सकता है ताकि कोई दूसरा देश इनका गलत फायदा न उठा सके।

स्वच्छता व पादप स्वच्छता (सैनेटरी एण्ड फाइटोसैनेटरी) पर समझौते के अनुसार प्रत्येक सदस्य देश को स्वच्छता व पादप स्वच्छता के मानदण्डों का पालन करना चाहिए। देशों के

भौगोलिक व प्राकृतिक दशायें भिन्न होने के कारण सदस्य देशो के स्वच्छता व पादप स्वच्छता पर नियम भिन्न-भिन्न हो सकते है लेकिन इन नियमों व मानको के पीछे वैज्ञानिक अनुसंधान का आधार होना चाहिए। प्रत्येक सदस्य देश वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर बनाये स्वच्छता व पादप स्वच्छता के मानदण्डो को अपने आयातों पर लागू कर सकता है । ये मानदण्ड मानव, पशु तथा पेड़-पौधों के स्वास्थ्य की सुरक्षा के उपाय के रुप में है । कोई देश मानव, पशु तथा पेड़-पौधों के स्वास्थ्य की सुरक्षा के नाम पर बिना वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर मनमाने ढ़ग से अपने आयातों पर स्वच्छता व पादप स्वच्छता के नियम बनाकर लागू नहीं कर सकता। 'स्वच्छता व पादप स्वच्छता' के मानदण्ड अच्छे उद्देश्य यथा मानव पशु तथा पेड़-पौधों की सुरक्षा के लिए बनाये गए है लेकिन विश्व व्यापार में गैर प्रशुल्क व्यापार बाधाओं के बढते प्रयोग के माहौल में इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि विकसित देश विकासशील देशों के कृषि आयातों को रोकने के लिए इनका गलत प्रयोग कर सकते है ।

इस तरह के स्वच्छता व पादप स्वच्छता पर मानदण्ड बनाना उच्च तकनीक तथा उच्च लागत पर आधारित है । इनका बनाना विकासशील देशो के लिए कठिन है । इसलिए इनके लागू होने को टाला जाना चाहिए।

हांगकांग मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में विश्व व्यापार संगठन ने कृषि के सन्दर्भ में महत्पवपूर्ण वार्ता हुई। सम्मेलन में कृषि के संबंधमें निम्न प्रावधानो को समाहित किया गया।

1- असामान्य सस्ते आयातों के प्रवेश तथा आयातों में असामान्य वृद्धि की स्थिति में विकासशील देशों को अतिरिक्त अस्थाई सुरक्षा प्रशुल्क लगाने की अनुमति प्रदान की गई। इसे विशेष सुरक्षा प्रणाली नाम दिया गया।
2- खाद्य सुरक्षा, आजीविक सुरक्षा व ग्रामीण विकास के लिए विकासशील देशो को विशिष्ट उत्पादों के लिए उपयुक्त व लोचशील प्रशुल्क दरों के प्रयोग की अनुमति दी गई।
3- वर्ष 2013 तक विकसित देश कृषि पर निर्यात सब्सिडी को पूर्णतया समाप्त कर देगे लेकिन घरेलू समर्थन जारी रख सकेंगे।
4- विकसित देश कपास पर निर्यात सहायता को 2006 में समाप्त कर देगे।

25.4 विश्व व्यापार संगठन का कृषि पर समझौता व भारतीय कृषि

कृषि पर समझौते द्वारा सदस्य देशों के मध्य कृषि उत्पाद की निर्यात सहायता को कम करने, घरेलू समर्थन को हटाने तथा बाजार पहुँच बढाने के प्रावधानों के सन्दर्भ में यह माना गया कि कृषि व्यापार बढ़ेगा तथा भारत को इससे लाभ होगा। विभिन्न अध्ययनों में यह माना गया कि यह समझौता भारत में कृषि व्यापार के हित में है हालांकि अनेक सन्देह व्यक्त किए गए। प्रायोगिक आर्थिक अनुसंधान के लिए राष्ट्रीय परिषद (नेशनल काउंसिल फार एप्लाइड इकनामिक रिसर्च) ने 1994 में अपने अध्ययन में पाया कि विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते के भारत पर निम्न प्रभाव होगे।

1- इससे भारतीय कृषि उत्पाद के निर्यातों में वृद्धि होगी यह अनुमान लगाया गया कि केवल गेहूँ व चावल का व्यापार 270 बिलियन डॉलर हो जायेगा।

2- नये खुले बाजारों में कृषि निर्यात के लिए विकासशील देशो में प्रतिस्पर्धा बढ़ जायेगी व देश के कृषि निर्यात वृद्धि इस हेतु देश की तैयारियों पर निर्भर करेगा।

3- यह सन्देह व्यक्त किया गया कि यदि कृषि पर समझौते के अनुरूप तैयारी नहीं की गई तो देश कृषि पदार्थों का सबसे बड़ा आयातक हो जायेगा तथा यह भारतीय कृषि संरचना को नष्ट कर देगा।

4- यदि विश्व व्यापार की चिन्ता भी न करे तो आगे आने वाले समय में देश की कृषि उत्पाद आवश्यकता को पूरा करने के लिए भारत को अपने कृषि क्षेत्र को उन्नत बनाना होगा।

यह माना गया कि विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते से भारत को किसी तरह की सब्सिडी मे कमी नहीं करनी पड़ेगी क्योंकिं विकासशील देशों के लिए यह कृषि स्तर के 5 से 6 प्रतिशत तक है। अर्थात् सब्सिडी घटाने के स्थान पर बढ़ा सकते है। जबकि विकसित देशो को बड़ी मात्रा मे सब्सिडी कम करनी पड़ेगी इससे भारत के कृषि उत्पादो के निर्यात सस्ते होगे तथा विकसित देशो के कृषि उत्पादो की तुलना मे प्रतिस्पर्धा में आयेगे। भारत को सार्वजनिक वितरण प्रणाली, कृषि उत्पादो की सरकारी खरीद, क्षेत्रीय विकास के कार्यक्रम, फसल बीमा, कृषि अनुसंधान व आधारभूत विकास पर व्यय में किसी तरह की कमी नहीं करनी पड़ेगी।

उपर्युक्त लाभों की संभावना के साथ कृषि उत्पादो के वैश्विक व्यापार में वृद्धि के कुछ अन्तर्निहित खतरें है। जो भारतीय कृषि की चुनौतियों के रुप मे व्यक्त की जा सकती है।

1- वैश्विक बाजार पर निर्भरता में वृद्धि देश की खाद्यान्न आत्मनिर्भरता को कमजोर करती है। खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता हमारे योजनागत विकास मार्ग का एक प्रमुख प्रयास रहा है। बड़ी आबादी को खाद्य सुरक्षा का अभाव तथा बड़ी संख्या में छोटे व सीमान्त कृषको की आजीविका के कृषि पर निर्भरता का तंत्र कमजोर हो सकता है।

2- न्यूनतम समर्थन तथा अनाज की सरकारी खरीद कृषि के फसल प्रारुप के लिए महत्वपूर्ण रही है। यदि कृषि उत्पादो का विश्व व्यापार बढ़ता है तो फसल प्रारुप विदेशी व्यापार की शर्तो के अनुरुप निर्धारित हो सकता है। जो देश की खाद्यान्न आवश्यकता के अनुरुप फसल प्रारुप को परिवर्तित कर सकता है।

3- अध्ययन दर्शाते है कि देश में कृषि उत्पादों की कीमतो क तुलना में कृषि उत्पादों की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतो में अधिक उतार चढ़ाव आते है। ये अत्यधिक उतार चढ़ाव बड़ी कृषक आबादी की आजीविका के लिए संकट उत्पन्न कर सकते है।

4- देश में कृषि की कार्यशील जोत का 80 प्रतिशत 2 हैक्टेयर से कम का है। विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते से कृषि उत्पादो के विदेशी व्यापार में वृद्धि होगी इससे सीमान्त व लघु कृषक विदेशी संकेतो के अनुरुप कृषि में परिवर्तन में सक्षम नहीं होगे। केवल बड़े कृषक इसके अनुरुप परिवर्तन में सक्षम होगे अर्थात् विदेशी व्यापार के लिए

कृषि को खोलने से कृषि के बड़ी संख्या में लघु व सीमान्त जोत वाले कृषको को नुकसान होगा।

25.5 विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते के पश्चात के अनुभव

यद्यपि भारत ने आर्थिक सुधार आरंभ कर दिए है तथा सतत रुप से प्रशुल्क तथा गैर प्रशुल्क बाधाओं को हटाया है । कृषि में समझौता के तहत बाजार पहुँच की बाधाओं को हटाकर, घरेलू समर्थन को कम करके तथा निर्यात सहायता को कम करने के प्रावधानों द्वारा कृषि उत्पाद व्यापार उदारीकरण को तेजी दी है । लेकिन कृषि पर समझौते के अनुरुप विकसित देशों की प्रतिबद्धताओं में अनेक कमियाँ देखी गई है ।

1- विकसित देशो ने कृषि क्षेत्र को घरेलू समर्थन कम करने की वचनबद्धता का पालन नहीं किया। विकसित देशो में अभी भी बड़ी मात्रा में कृषि क्षेत्र को घरेलू समर्थन किया जाता है । अमेरिका ने 2005 में कृषि क्षेत्र को 42.7 अरब डालर की घरेलू सहायता दी, जापान ने 2005 में 47.4 अरब डालर तथा यूरोपीयन यूनियन ने 2005 में 133.8 बिलियन की घरेलू सहायता कृषि क्षेत्र को दी। अर्थात् विकसित देश घरेलू समर्थन को कम नहीं कर रहे।

2- विकसित देश पीले या अम्बर बॉक्स की व्यापार को विरुपित करने वाली सब्सिडी को ग्रीन बॉक्स जो व्यापार को विरुपित नहीं करती की ओर स्थानान्तरित कर रहे है ताकि कृषि पर समझौते से वंचना की जा सके।

3- विकसित देशो द्वारा कृषि क्षेत्र को कृषि समझौते के अनुरुप समर्थन के समग्र माप को कम करने के बावजूद इसका ऊँचा स्तर बना हुआ है क्योंकि समर्थन को कम करने का आधार वर्ष 1986-88 रखा गया। इस समय विकसित देशो में कृषि को समर्थन स्तर बहुत ऊँचा था।

4- अमेरीका व यूरोपीय देशो में अभी भी कृषि को निर्यात सहायता बहुत अधिक दी जाती है क्योंकि इन देशो की घरेलू कीमते अन्तर्राष्ट्रीय कीमतो से काफी ऊँची है । निर्यात सहायता द्वारा निर्यात की कीमतो को घटाकर विकसित देश व्यापार को विरूपित कर रहे है ।

5- विकासशील देशो के निर्यात पर स्वच्छता व पादप स्वच्छता के कठोर मानदण्ड लगा कर उनके निर्यात से भेदभाव कर रहे है ।

6- विकसित देशो द्वारा अपने किसानो को उत्तरोतर अधिक घरेलू समर्थन प्रदान किये जाने के कारण कृषि वस्तुओं की अन्तर्राष्ट्रीय कीमते निरन्तर गिरती जा रही है ।

7- विकसित देश विकासशील देशों के कृषि निर्यातो को न्यूनतम बाजार पहुँच भी उपलब्ध नहीं करा रहे है ।

8- विकसित देश कृषि पर समझौते की अपनी बाध्यताओं को पूरा नहीं कर रहे।

9- विकसित देश विकासशील देशो के कृषि निर्यात पर अनेक प्रशुल्क तथा गैर प्रशुल्क बाधायें खड़ी कर रहे है।

25.6 विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते पर विकासशील देशो के लिए आवश्यक सुझाव

1- कृषि संवृद्धि दर में गिरावट का प्रमुख कारण कृषि में सार्वजनिक निवेश की गिरावट है। इसलिए इस गिरावट को रोकने के लिए कृषि में सार्वजनिक निवेश बढ़ाया जावें। अध्ययन दर्शाते है कि कृषि में सार्वजनिक निवेश 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़े तो कृषि वृद्धि दर 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष प्राप्त की जा सकती है।

2- कृषि में निर्यात क्षमता को बढ़ाने के लिए कृषि क्षेत्र में संरचनात्मक कमजोरियो को दूर करने की आवश्यकता है। अर्थात् कृषि में सार्वजनिक निवेश बढ़े, अधिक उत्पादकता वाली नई किस्मों का प्रयोग हो, उर्वरक का संतुलित उपभाग हों, पर्याप्त प्रोत्साहन व्यवस्था हों तथा फसल पश्चात् मूल्य वर्धन पर्याप्त हो। इसके साथ ही विद्युत, संचार, विपणन, परिवहन तथा अन्य आधारभूत संरचना का तेजी के साथ विकास हो।

3- भारत विकासशील देशो का विश्व व्यापार संगठन वार्ता में स्वभाविक नेतृत्वकर्ता देश है। सब विकासशील देश अपने देश में कृषको के हित में विकसित देशो को कृषि समझौतों की पालना के लिए दबाव डालें। विभिन्न तरह की सब्सिडी व सहायता को तेजी से कम करने के लिए विश्व व्यापार संगठन की वार्ता में दबाव बनाये। विश्व व्यापार संगठन दुनियाँ का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक संगठन है। इसमें न किसी के पास वीटो पावर है व न आई.एम.एफ तथा विश्व बैंक की तरह सहायता आधारित वोट शक्ति। इसलिए कृषि समझौते को विकासशील देशों के हित में बनाने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।

4- खाद्यान्न आत्मनिर्भरता, खाद्य सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा आदि विषय कृषि पर समझौते में विकासशील देशो के लिए महत्वपूर्ण है। विश्व व्यापार संगठन की वार्ताओं में इन विषयों को ध्यान में रखते हुए वार्ता में आगे बढ़े।

5- 'स्वच्छता व पादप स्वच्छता' तथा समर्थन के समग्र माप जैसे विषयों की जटिलताओं व दुरुपयोग को समाप्त किया जाना चाहिए।

6- विकसित देशो के हरा बॉक्स सब्सिडी की भाँति विकासशील देशो को खाद्य सुरक्षा बॉक्स व विकास बॉक्स की स्थापना की जावे ताकि इसके तहत दी जाने वाली सब्सिडी विकसित देशो द्वारा ग्रीन बॉक्स सब्सिडी की भाँति कम करने की वचनबद्धता से मुक्त हो।

25.7 बोध प्रश्न

1- विश्व व्यापार संगठन गैट से किस तरह भिन्न है ?
2- विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते में घरेलू समर्थन में कमी के प्रावधान लिखिए।
3- कृषि पर विश्व व्यापार संगठन के समझौते में बाजार पहूँच को बढ़ाने वाले प्रावधान लिखिए।
4- निर्यात सहायता को कम करने के विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते के विकासशील व विकसित देशो के प्रावधानो का वर्णन कीजिए।
5- बौद्धिक सम्पदा अधिकार तथा स्वच्छता व पादप स्वच्छता पर कृषि समझौते के प्रमुख प्रावधान लिखिए।
6- हांगकांग के मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में कृषि पर समझौते के प्रमुख प्रावधान जिन पर सहमति हुई क्या थे।
7- विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते के भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले अपेक्षित प्रभावों का वर्णन कीजिए।
8- विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के पश्चात भारतीय कृषि पर प्रमुख चुनौतियाँ क्या है ?
9- विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते के पश्चात के अनुभवों का परीक्षण कीजिए।
10- विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते के अनुभवों के आलोक में विकासशील देशों के पक्ष में करने हेतु आवश्यक सुझावों को रेखांकित कीजिए।

25.8 सारांश

जैसा कि विदित है विश्व व्यापार के समझौतो की सदस्य देशो द्वारा अनुपालना की देखरेख के लिए विश्व व्यापार संगठन की स्थापना की गई। यह बहुपक्षीय व्यापार, मजबूत विवाद् निपटान प्रणाली से युक्त गैर विभेदकारी व स्वतंत्र व्यापार को समर्पित संगठन है । उरूग्वे दौर के समझौतों में एक प्रमुख समझौता कृषि पर समझौता था। कृषि पदार्थों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने के लिए यह समझौता किया गया। कृषि पर समझौते में तीन प्रमुख प्रावधान थे। कृषि पदार्थों की बाजार पहुँच को बढ़ावा, कृषि उत्पादन को घरेलू समर्थन जो व्यापार को विरूपित करते है को कम करना तथा कृषि उत्पाद को प्रदत्त निर्यात सहायता को घटाना। बौद्धिक सम्पदा अधिकार तथा स्वच्छता व पादप पर भी प्रावधान समझौते में किए गए। गैर प्रशुल्क बाधाओं को हटाना उन्हें प्रशुल्क बाधाओं से प्रतिस्थापित करना तथा उत्तरोतर प्रशुल्क के स्तर को नीचे लाने के लक्ष्य रखे गए।

विकसित व विकासशील देशों के लिए बाजार पहुँच, घरेलू समर्थन तथा निर्यात सहायता को कम करने के लक्ष्य रखे गए। विकसित देशो के लिए कम समय अवधि में अधिक प्रशुल्क कटौति तथा विकासशील देशो के लिए अधिक समय अवधि में कम प्रशुल्क कटौति के लक्ष्य रखे गए। कृषि पर समझौते के समय यह अपेक्षा थी कि इस समझौते के लागू होने से भारत के कृषि

निर्यातों में वृद्धि होगी तथा यदि देश पर्याप्त तैयारी के साथ प्रयास करें तो देश की कृषि व अर्थव्यवस्था के हित में यह समझौता होगा। लेकिन विकसित देशों ने प्रावधानों का गंभीरता से पालन नहीं किया। विभिन्न प्रयासों के द्वारा विकसित देशों ने अपने घरेलू बाजार को विदेशी कृषि उत्पादों के आयात से संरक्षित रखा। प्रशुल्क व सहायता कटौति के बावजूद विकसित देशो की कृषि इतनी संरक्षित थी कि विकासशील देशो के लिए उनके बाजार नहीं खुले।

भारत जैसे देश के लिए कृषि बड़ी आबादी की आजीविका, खाद्य सुरक्षा व खाद्यान्न आत्मनिर्भरता के लिए महत्वपूर्ण है । खाद्यानों में आत्मनिर्भरता, कृषि उत्पादों की कीमतो में अत्यधिक उतार चढ़ाव, लघु व सीमान्त कृषक के हितों को ध्यान में रखते हुए भारत को विश्व व्यापार संगठन के वार्ताओ के आने वाले दौरो में अपना पक्ष मजबूती से आगे बढ़ाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कृषि क्षेत्र को प्रतिस्पधरी, उत्पादक व कम लागत वाला बनाने के लिए सार्वजनिक निवेश तथा आधारभूत संरचना को बेहतर करने की आवश्यकता है ।

25.9 शब्दावली

1- गैट (GATT) जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड एण्ड टेरिफ : व्यापार व प्रशुल्क पर समान्य समझौता 1947 में विश्व के देशों ने इस समझौते को अपनाया इसका उ ेश्य सदस्य देशो के बीच गैर प्रशुल्क व्यापार बाधाओं को हटाना तथा प्रशुल्क दरों को कम कर स्वतंत्र व्यापार को प्रोत्साहित करना था।

2- विश्व व्यापार संगठन : 1 जनवरी 1995 को गैट के उरुग्वे दौर (1986-88) के फलस्वरुप इस संगठन की स्थापना हुई। यह संगठन बहुपक्षीय स्वतंत्र व्यापार के लिए कार्यरत है । सदस्य देशों में समानता का व्यवहार (सर्वाधिक अनुगृह राष्ट्र के प्रावधान द्वारा) पर आधारित है । यह सदस्य देशों द्वारा विश्व व्यापार के समझौतो की अनुपालना सुनिश्चित करता है ।

3- ग्रीन बॉक्स - पर्यावरण संरक्षण, कृषि अनुसंधान व विकास के लिए देशो द्वारा अपने कृषि क्षेत्र को दी जाने वाली सहायता है जो व्यापार को विरूपित नहीं करती।

4- नीला बॉक्स: कृषि उत्पादन सीमित रखने व कृषको को हानिपूर्ति के लिए किया जाने वाला भुगतान जो देश अपने कृषि क्षेत्र को करता है । इस श्रेणी में आता है । यह भी व्यापार को विरूपित न करने वाला सब्सिडी भुगतान माना गया है ।

5- पीला या अम्बर बॉक्स : ग्रीन बॉक्स व नीला बॉक्स के अतिरिक्त कृषि को सब्सिडी इस श्रेणी में आता है । इसे समर्थन के समग्र माप द्वारा मापा जाता है । तथा इसे व्यापार को विरुपित करने वाला माना गया है ।

6- विशिष्ट एवं विभेदक बॉक्स : विकासशील देशो में कम आय वाले किसानों को निवेश सहायता व कृषि आगत के रुप में सहायता को इसमें समाहित किया गया है । इस श्रेणी की सहायता व्यापार को विरुपित नहीं करती।

7- बौद्धिक सम्पदा अधिकार : अविष्कारक या खोजकर्ता को अपने अविष्कार या खोज का उचित मूल्य मिले व इसकी नकल करके दूसरे लोग इसका दुरुपयोग न करे इस हेतु बौद्धिक सम्पदा अधिकारो की अपेक्षा है । इसमें सात तरह की बौद्धिक सम्पदा शामिल होती है इनमें पेटेंट, कॉपीराइट, ट्रेडमार्क, औद्योगिक डिजाइन, इंटीग्रेटेड सर्किट के लेआउट डिजाइन, गुप्त सूचना तथा भौगोलिक संकेत हैं।

8- स्वच्छता व पादप स्वच्छता - मानव, पशु तथा पेड़-पौधों के स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए वैज्ञानिक आधार पर बनाये गए मापदण्ड इसमें समाहित होते है ।

25.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1- विश्व व्यापार संगठन भारत के परिप्रेक्ष्य में, शैलेन्द्र कुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

2- भारतीय अर्थव्यवस्था, मिश्र तथा पुरी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

3- भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मीनारायण नाथूरामका, कालेज बुक हाउस, जयपुर।

25.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1- विश्व व्यापार संगठन की स्थापना गैट के उरुग्वे दौर के पश्चात हुई। विश्व व्यापार संगठन स्थाई है । यह बहुपक्षीय व्यापार व स्वतंत्र व्यापार को समर्पित संगठन है । देखें भाग - 25.2

2- ग्रीन बॉक्स, नीला बॉक्स तथा विशिष्ट व विभेदक व्यवहार बॉक्स के अधीन सब्सिडी व्यापार विरुपित नहीं करती व इसे कम करने की आवश्यकता नहीं। पीला या अम्बर बॉक्स के अधीन सहायता को विकसित देश 6 वर्ष में 20 प्रतिशत तथा विकासशील देश 10 वर्ष में 13 प्रतिशत कम करेंगे। देखें भाग - 2.3.1

3- बाजार पहुँच बढ़ाने के लिए गैर प्रशुल्क बाधाओं को समाप्त करना तथा प्रशुल्कों को सीमित कर उत्तरोतर नीचे लाना प्रमुख है । विकसित देश 1986-88 के स्तर से 6 वर्षो 36 प्रतिशत तथा विकासशील देश 10 वर्षो में 24 प्रतिशत प्रशुल्क को कमी लाने हेतु मानदण्ड तय किए गए। देखें भाग-2.3.2

4- देश के कृषि उत्पादों के निर्यात को बढ़ाने के लिए दी जाने वाली सहायता इस श्रेणी में आती है । देखें भाग- 2.3.3

5- देशो से अपेक्षा थी कि पेटेंट या सुई जेनेरिस अथवा दोनो के लिए कानून बनाये। स्वच्छता व पादप स्वच्छता पर मानदण्ड वैज्ञानिक आधार पर बनाये। बौद्धिक सम्पदा अधिकार तथा स्वच्छता व पादप स्वच्छता में विवरण। देखें भाग- 2.3.4

6- खाद्य सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा व ग्रामीण विकास के लिए, असामान्य आयात वृद्धि की दशा में प्रशुल्क लगाने, विकसित देशों द्वारा निर्यात सब्सिडी को पूर्णत: समाप्त करने के प्रावधान है । देखें भाग - 2.3.4

7- भारत का कृषि उत्पादों का निर्यात बढ़ेगा, कृषि उत्पादों की स्पर्धात्मक क्षमता में विस्तार होगा कृषि समझौता व भारतीय कृषि में वर्णन किया गया है। देखें भाग - 2.4

8- खाद्यान्न आत्मनिर्भरता, खाद्यान्न कीमत स्थिरता, कम आय वाले किसानों की सुरक्षा आदि है। देखें भाग - 2.4

9- कृषि उत्पादों का व्यापार नहीं बढ़ा, प्रशुल्क कम नहीं हुए, विकसित देश अभी भी संरक्षणात्मक उपाय अपना रहे है। देखें भाग - 2.5

10- कृषि में सार्वजनिक निवेश बढ़े, कृषि में संरचनात्मक कमजोरी दूर हो खाद्यान्न आत्मनिर्भरता, खाद्य सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा के विषय महत्वपूर्ण है। देखें भाग - 2.6

इकाई 26

भारत में औद्योगक विकास की प्रवृति एवं समस्याएं

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य

26.1 प्रस्तावना

26.2 स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व औद्यौगिक विकास ऐतिहासिक सिंहावलोकन

26.3 नियोजन एवं औद्योगिक विकास

26.3.1 प्रथम गाजना (1951 –56)

26.3.2 द्वितीय योजना (1956–61)

26.3.3 तृतीय योजना (1967 –66)

26.3.4 तीन वार्षिक योजनाएं (1966–69)

26.3.5 चतुर्थ योजना (1969–74)

26.3.6 पांचवी योजना (1974–79)

26.3.7 छठी योजना (1979–85)

26.3.8 सातवीं योजना (1985 –90)

26.3.9 आठवी योजना (1992–97)

26.3.10 नवी योजना (1997-2002)

26.3.11 दसवीं योजना (2002-2007)

26.3.12 ग्यारवी योजना (2007-12)

26.4 विकास के मार्ग में बाधाएं

26.5 सारांश

26.6 शब्दावली

26.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

26.0 उद्देश्य

अर्थव्यवस्था के विकास में उद्योगो की अहम् भूमिक होती है । इसलिए इसके विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं एवं विकास की प्रवृति का ज्ञान अर्थशास्त्र के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक है। इस इकाई को पढने के बाद आप :

- जान सकेंगे कि उद्योगों के सन्दर्भ में भारत की क्या स्थिति थी?
- योजनाओं के क्रियान्वयन के परिणाम स्वरूप.औद्योगिक विकास की क्या स्थिति रही?
- औद्योगिक विकास के मार्ग में आनेवाली बाधाओं से परिचित हो जाएंगे।

26.1 प्रस्तावना

किसी भी देश के औद्योगिक विकास का ज्ञान विकास की भावी रणनीति बनाने वे लिए अत्यन्त आवश्यक है । इसके लिए योजनाबद्ध विकास के द्वारा भारत में किए गए प्रयासों की दिशा एवं इसके मार्ग में आ रही बाधाओं का ज्ञान जरूरी है । इस हेतु केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा उपलब्ध कराए गए आकड़ों के साथ–साथ केन्द्रीय खान ब्यूरो, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया बुलेटिन, बजटपूर्व आर्थिक सर्वेक्षण एवं योजनाओं का अध्ययन किया जाएगा। इस विश्लेषण में आपको औद्योगिक तेजी एवं मन्दी के कारणों एवं विकास के मार्ग में आ रही बाधाओं की जानकारी दी जाएगी।

26.2 स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व औद्योगिक विकास: एतिहासिक सिंहावलोकन

प्राचीन भारत में बहुत उन्नत घरेलू – उद्योग थे। रायल कमीशन ने लिखा था कि,' 'आधुनिक औद्योगिक प्रणाली के जन्म स्थान पश्चिमी यूरोप में जब असभ्य जनतातियां निवास करती थीं, भारत उन दिनों अपने शासको के धन वैभव एवं कारीगरों की कलाकृतियों के लिए जाना जाता था। " आप सभी परिचित है कि भारत में निर्मित ढाका की मलमल विश्व प्रसिद्ध थीं। प्रो॰ वेबर ने लिखा है, "In the Production of delicate woven fabrics, in the mixing of colours, the working of metals and precious stones, the predation of essences an all manner of technical arts has from early times enjoyed word wide celebrity." हिन्दू शासको के अन्तिम दिनों में भारतीय उद्योगों का पतन आरम्भ हुआ एवं पठान शासको के समय अत्यधिक बढ़ गया वह कुछ सीमा तक मुगल शासनकाल मैं स्थिर हुआ। मुगलों के शासन काल में कई नगर एवं कसबे अपने घरेलू उद्योगों के लिए प्रसिद्ध हुऐ जैसे ढाका की मलमल, हाथीदांत के लिए मुर्शिदाबाद, जयपुर का संगमरमर उद्योग, गाजीपुर का इत्र एवं लखनऊ की वेलवेट इत्यादि। भारत के बढ़ते वैभव ने विदेशी व्यापारियों को अपनी ओर आकर्षित किया। सबसे पहले

पुर्तगाली आए फिर डच तथा अन्त में अंग्रेज एवं फ्रेंच व्यापारी भारत आए। फ्रेंच एवं अंग्रेजों की दुश्मनी में अन्तत : अंग्रेज व्यापारी विजयी हुवे। अंग्रेजों ने भारतीय माल को यूरोपीय बाजारों में बेचा एवं मुनाफा कमाया।

इंग्लैंड में औद्यौगिक क्रान्ति के प्रारम्भ होने पर अंग्रेज व्यापारियों एवं ईस्ट इण्डिया कंपनी के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। अब भारत उनके उद्योगों के लिए कच्चामाल निर्यात करनें के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया। इसके साथ ही; यहां की विशाल जनसंख्या उन्हें अपने, उद्योगों के लिए भावी बाजार के रूप में नजर। आने लगी। बाद में स्वतंत्र छोड़ा की नीति (Policy of Laissez Faire) के फैल हो जाने एवं बार–बार पड़ने वाले अकाल के परिणाम स्वरूप अकाल आयोगों द्वारा भारत के औद्योगिकीकरण पर बल दिया गया। इसके बाद राजनीतिक पुनर्जागरण के युग मैं भी भारत में स्वदेशी उद्योगों की नींव रखी। परन्तु राजकीय समर्थन व सहयोग न मिलने से यह अधिक आगे न बढ़ सके। प्रथम विश्वयुद्ध के समय (1914–18) भारत को अपने उद्योगों के विकास के लिए नए अवसर मिले। 1916 में भारतीय उद्योग आयोग की स्थापना की गई जिसने भारत मैं औद्योगिकीकरण की सम्पूर्ण संभावनाओं का अध्ययन किया। आयोग ने उद्योगों को राजकीय प्रोत्साहन देने की वकालत की। जहाँ प्रथम विश्वयुद्ध के समय भारत मैं उद्योगों का विकास हुआ वही मन्दी के समय युद्ध उपरान्त उन्हें धक्का लगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ के साथ ही भारत में उद्योगों को पुन : गति मिली परन्तु अधिक उत्साह जनक परिणाम सामने नहीं – ' इस अवधि में राजकीय अथवा सरकारी विभागों की मांग 'बढ़ने एवं निजी क्षेत्र की क्रय क्षमता में वृद्धि होने से औद्योगिक उत्पादों की मांग बढी। उद्योगों का विकास हुआ परन्तु विश्व के अन्य देशों में औद्यौगिक प्रगति के मुकाबले यह नगण्य था। भारत में कुछ उद्योगों जैसे सूती वस्त्र स्टील, तेल, मशीन टूल्स, विद्युत सामग्री, औजार एवं पुर्जे लुनी वस्त्र, होजरी, जूते, चमड़े का सामान आदि में संतोषजनक वृद्धि हुई। वस्तुत: स्वतंत्र प्राप्ति के समय भारत एक पिछड़ा हुआ देश ही था।

26.3 नियोजन एवं औद्योगिक विकास

अब हम विभिन्न योजनाओं में औद्योगिक प्रगति की चर्चा करेंगे।

26.3.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951 –56)

प्रथम योजना की अवधि में औद्योगिक उत्पादन ने गति पकड़ी। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (1951.100) प्रथम योजना की समाप्ति पर 121.9 था। इस प्रकार योजना अवधि में उत्पादन 2204 बढ़ा। यह उद्योगों की प्रस्तावितक्षमता का पूरा उपयोग करने एवं क्षमता में विस्तार 'करने से सम्भव हो सका। कई नए उद्योग की इस योजना अवधि में प्रारम्भ किए गए। इस योजना अवधि मैं सार्वजनिक क्षेत्र का विकास करने के साथ साथ निजीक्षेत्र को भी सहायता उपलब्ध कराई कई। विद्युत उत्पादन क्षमता जो 1 950– 51 में मात्र, 2.3 मिलियनकिलोवाट थी योजना के अन्त में

34 मिलियन किलोवाट हो गई। सूती वस्त्र, रबड़, सल्फयूरिक एसिउ, कास्टिकसोड़ा, अमोनियम सल्फेट, सीमेन्ट, खाद्य तेल, साईकलों अदि का उत्पादन बढ़ा।

26.3.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–61)

प्रथम योजना में प्रारम्भ औद्योगिक विकास की दर द्वितीय योजना में जारी रही। आपको स्मरण होगा कि द्वितीय योजना में भारी उद्योगों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी।। परन्तु औद्यौगिक कच्चे माल की कमी के कारण उद्योगों की विकास दर में कुछ गिरावट आई। सूती वस्त्र उद्योग की समस्याओं के लिए सरकार ने एक अलग समिति गठित की। 1951–55 की अवधि में जहां औद्योगिक विकास की औसत दर 5.5%' थी वही 1956 में यह 8.6%' 1957 में 3.5% एवं 1958 में गिरकर 1.5% वार्षिक रह गई। 1959 में औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 151 हो गया। जो पिछले वर्ष के मुकाबले 8.2% वृद्धि का द्योतक था। इस वृद्धि का कारण आयातों को उदार बनाकर अधिक मात्रा में कच्चे माल की पूर्ति, आन्तरिक माँग में वृद्धि, नई औद्योगिक वातावरण का उन्नत होना था। 1960 मे पिछले वर्ष की तुलना में उत्पादन 12.1% बढ़ा तथा सूचकांक 170.3 हो गया। इस प्रकार योजना अवधि में 39.1% वृद्धि दर्ज की गई।

26.3.3 तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961 –66)

तृतीय पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष 1961 –62 में औद्योगिक वृद्धि का लक्ष्य14 प्रतिशत रखा गया परन्तु वास्तविक दर 4604 ही प्राप्त हो सकी। औद्योगिक कच्चे माल की अनुपलब्धता के कारण लक्ष्य को प्राप्त करने में कठिनाई आयी। विदेशी कच्चेमाल का उपयोग करने वाले उद्योगों में समस्या रही क्योंकि विदेशी विनिमय की कठिनाइयों के कारण आयातों पर प्रतिबन्ध रहे। इसके अतिरिक्त उर्जा व यातायात क्षेत्र में धीमी प्रगति का प्रभाव भी देखने में आया। इन सभी बाधाओं के बावजूद नए–नए क्षेत्रों में उद्योग लगाए गए।

औद्योगिक उत्पादन का, सूचकांक (1960=100) 1965 में 153.7 हो गया। औद्योगिक विकास के मांग में आने वाली बाधाओं जैसे यातायात, उर्जा, सीमेन्ट, कोयला स्टील आदि क्षेत्रों का तेजी से विकास हुआ। इन सभी तत्वों के अतिरिक्त सरकारों द्वारा विभित्र राजकोषीय रियायतें व सुविधाएं भी औद्योगिक प्रगति के लिए जिम्मेदार थी।

26.3.4 तीन वार्षिक योजनाएं (1966–69)

1966 में औसत औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 1965 के स्तर से कम हो गया एवं 1967 में यह 151.4 रह गया। देश के सम्मुख गम्भीर सूखे एवं विदेशी विनिमय संकट के चलते कच्चे माल की उपलब्धता में कमी आई। कुछ उद्योगों को उर्जा संकट के कारण बिजली नहीं मिली। परन्तु 1968 में इसमें कुछ सुधार आया व सूचकांक 161.1 हो गया। सरकार की कड़ी लाइसेन्सिंग नीति भी उद्योगों के मार्ग का रोड़ा बन गई।

26.3.5 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1 969–74)

योजना में छूटी के बाद 1969 तथा 1970 के वर्षों में औद्योगिक उत्पादन ने फिर गति पकड़ी। 1970 में औद्योगिक उत्पादन (1960=100) सूचकांक 1807 हो गया। उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए उदार आयातों की नीति का अनुसरण किया गया। कन्ट्रोल की कीमतो में कुछ छूट से वातावरण में सुधार आया। औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति के तहत उद्योगों के लिए व्यापक नीति निर्माण हुआ' इनकी समस्याओं के लिए सरकार द्वारा विभित्र अध्ययन दल बनाए गए। चतुर्थ योजना में औसत वृद्धि दर 4.1% रही जो लक्ष्य से लगभग आधी थी। उद्योगों की क्षमता का पूरा उपयोग वहीं हो पाया।

26.3.6 पॉचवी योजना (1974–79)

पाँचवी योजना में औद्योगिक विकास की दर अधिक ऊँची तो नहीं रही फिर भी इसमें गति आई। 1974 में यह दर 4% रही। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (1970=100)1974 में 114.3 तथा 1975 में 1197 हो गया। सरकार द्वारा विद्युत, स्टील, कोयला आदि क्षेत्रों के विकास के लिए किए गए प्रयासों से औद्योगिक विकास को बल मिला। औद्योगिक लाइसेन्सिंग नीति में कुछ उदारीकरण की नीति को अपनाया गया। उद्योगों की स्थापित क्षमता का पूरा उपयोग करने पर बल दिया गया। 1977 में औद्योगिक उत्पादन5.3% बढा' कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर विशेष ध्यान दिया गया। 1977 में सूचकांक बढ़कर 140 हो गया। परन्तु बाद में कुछ राज्यों में विद्युत संकट गहरा होने, कोयले की आपूर्ति में बाधा आने तथा यातायात सम्बन्धी समस्याओं एवं औद्योगिक अशान्ति से औद्योगिक विकास की गति अवरुद्ध हो गई।

26.3.7 छठी योजना (1980–85)

औद्योगिक उत्पादन के सामान्य सूचकांक (आधार 1970–100) में छठी योजना अवधि में निरन्तर वृद्धि हुई। आँकड़ो के आधार पर देखा जाय तो यह 1980 में 1507 से बढ़कर– 1981 में 1646, 1982 में 172, 1983 में 1797 तथा 1984 में 189.3 हो गया। इस वृद्धि की मुख्य वजह इसके तीन प्रमुख घटको में लगातार वृद्धि होना है । खान एवं खनन का सूचकांक 144.2 से बढ़कर योजना अवधि में 240 हो गया। विनिर्माण एवं विद्युत उत्पादन के सूचकांको में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। औद्योगिक क्षेत्र का कार्य निष्पादन अच्छा होने के पीछे आधारभूत संरचना के क्षेत्रों का श्रेष्ठ कार्य निष्पादन उत्तरदायी था। सीमेन्ट, विश्रुत परिवहन आदि क्षेत्रों के साथ–साथ कृषि क्षेत्र में श्रेष्ठ प्रदर्शन से औद्योगिक मांग बढ़ी। औद्योगिक श्रमिको की स्थिति में से औद्योगिक शान्ति बनी रही। इन्हीं सभी कारणों से औद्योगिक क्षेत्र का प्रदर्शन अच्छा रहा।

यह प्रदर्शन और भी श्रेष्ठ रहता यदि कुछ बाधाएं उपस्थित नहीं होती। उदाहरणार्थ कुछ अति महत्वपूर्ण आधारभूत उद्योगों जैसे बिजली, कोयला स्टील में मांग तथा पूर्ति में भारी अन्तराल बना रहा। पंजाब मैं हालात चिन्ताजनक रहे। पश्चिम बंगाल मैं जूट मिलों की हड़ताल, बन्दरगाहों पर गोदी कर्मचारियों की हड़ताल एवं आधुनिकीकरण की धीमी रफ्तार इसके लिए उत्तरदायी थी। इसी अवधि

में औद्योगिक उत्पादन सूचकांक को अधिक विस्तृत बनाया गया जिससे देश की औद्योगिक क्षेत्र की सही तस्वीर सामने आ सके। 1980–81 के दशक में औद्योगिक प्रगति 1970 के दशक की तुलना मैं श्रेष्ठ रही।

26.3.8 सातवीं योजना (1985–90)

सातवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक (1980–81=100) के आधार पर वृद्धि दर 8.7% रही। यह सूचकांक 1984–85 में 1309 से बढ़कर1985–86 में 142,1986–87 में 155.1 1987–88 में 1664, 1988–89 में 181.1 तथा 1989–90 में 188.1 ले गया। विभित्र उद्योगों में वृद्धि दर को चार क्षेत्रों में विभाजित कर 1553 उद्योगों की स्थिति इस प्रकार रही।

तालिका 26.1

चुने हुए क्षेत्रों में वृद्धि दर (सातवीं योजना)

	उद्योग समूह	भार	पिछले वर्ष कि तुलना में % वृद्धि	
			1989–89	1989–90
1.	आधारभूत उद्योग	36.36	10.8	4.7
2.	उपभोक्ता टिकाऊ उद्योग	2.20	19.3	0.8
3.	उपभोक्ता गैर टिकाऊ उद्योग	19.56	2.8	5.9
4.	पूँजीगत सामान	11.32	9.0	9.1
5.	मध्यवर्ती वस्तुएं	16.10	13.2	2.2
6.	सभी उद्योग	85.54	9.8	5.1

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण भारत सरकार वर्ष 1989–90 पृष्ठ 53

सांतवी योजना में औद्योगिक उत्पादन में विनिर्माण क्षेत्र की औसत वृद्धि दर (1980–81=100)9.9% रही। इसमें भी विद्युत मशीनें, रसायन एवं रसायन उद्योगों की वृद्धि दर क्रमश: 25.8% व 11.7% रही। इन दोनों उद्योग समूहों ने औद्योगिक वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। छठी योजना की तुलना में सातवीं योजना में औसत वार्षिक वृद्धि ऊँची रही। औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर संतोषजनक होने के पीछे निम्नलिखित तत्व उत्तरदायी थे।

1. लाइसेन्सिंग के लिए जरूरी क्षेत्रों एवं प्रक्रियाओं में परिवर्तन।
2. तकनीकी का आयात।
3. पूँजीगत साज सामान का अधिक आयात

4. स्थापित क्षमता का बेहतर उपयोग।

5. कई उद्योगों में उतारो का वृहत आधार।

6. उदारीकरण की नीति जैसे एम.आर०टी.पी. आधिनियम– के तहत् सम्पति सीमा में वृद्धि,लाइसेंन्सिंग से मुक्ति की सीमा बढ़ाकर 50करोड़ रुपया निर्धारित करना, गैर एम. आर०टी०पी एवं गैर फेरा कम्पनियों को पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने पर लाइसेन्स से मुक्ति, इत्यादि।

7. सार्वजनिक क्षेत्र का कार्य निथादन – 31 मार्च 1991 को सार्वजनिक उपक्रमों कुल संख्या 246 थी। भारत सरकार के इन उपक्रमों में कुल विनियोग 11 3,234 करोड़ रुपए था। इनमें से 236 कार्यरत थे जिनमें 101,702 करोड़ रु. की पूँजी विनियोजित थी एवं 23 लाख कर्मचारी कार्यरत थे। इनमें से 131 उद्योगों में 5731 करोड़ रुपए का शुद्ध लाभ अर्जित किया तथा 1०9 उद्योगों को 3064 करोड़ रुपए का घाटा हुआ।

8. राज्य के स्तर पर लगभग 1100 राजकीय उपक्रम थे जिनमें लगभग 50,000 करोड़ रुपए की पूँजी लगी हुई थी। इनमें से अधिकांश की स्थिति चिन्ताजनक थी। इस प्रकार सातवीं योजना में औद्योगिक विकास संतोषजनक रहा। इस योजना में उद्योगों पर 19708 करोड़ रुपए केन्द्र सरकार एवं शेष राज्य सरकारों द्वारा व्यय किया। जाना था। इ वास्तविक व्यय चालू कीमतो पर 26295 करोड़ रुपए हुआ।

26.3.9 आठवीं योजना 1992–97

1980 के दशक में प्राप्त उपलब्धियों को मजबूत करने के उद्देश्य से आठवीं योजना मैं आर्थिक सुधार प्रारम्भ करते हुए सरकार ने निजीकरण एवं उदारीकरण की प्रक्रिया अपनाई। उद्योगों की सरकार पर निर्भरता कम करने के कई प्रयास किए गए। इन सुधारों का लक्ष्य भारतीय उद्योगों को विश्व प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करना है ।

1991 में भारत सरकार ने नई औद्योगिक नीति की घोषणा की एवं सार्वजनिक क्षेत्र के लिए रिजर्व उद्योगों की संख्या 29 से घटाकर 17 कर दी। उद्योगों को विश्व प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करने की दृष्टि से नियंत्रणों में छूट दी गई। औद्योगिक क्रियाकलापों में निजी क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया गया एव यह स्पष्ट किया गया कि सार्वजनिक क्षेत्र अब आधारभूत एवं महत्वपूर्ण उद्योगों तक ही सीमित रहेगा। उद्योगों को विस्तार व आधुनिकीकरण के लिए छूट दी जाएगी व उनकी बजट सहायता पर निर्भरता कम की जाएगी। लौह धातु उद्योग. की भविष्य में विकास सम्भावनाएं प्रबल है इसी तरह पूँजीगत साज समान में विदेशी सहयोग से तकनीकी के आधुनिकीकरण पर ध्यान दिया जाएगा। इलैक्ट्रोनिक उद्योगों में भारत में अभी तक वांछित प्रगति नहीं हुई है । उदारीकरण की प्रक्रिया से इसमें गति आएगी। उर्वरक उद्योग में अभी तक सरकारी नियंत्रण एवं कीमत निर्धारण प्रतिबन्धों के कारण वांछित प्रगति नहीं हो सकी। शक्कर के क्षेत्र में भारत अब आत्मनिर्भर हो चुका है । इसके उत्पादन बढ़ाने व निर्यात पर बल दिया जाएगा। सूती वस्त्र

के क्षेत्र मैं आधुनिकीकरण के साथ–साथ हथकरघा क्षेत्र में उच्च मूल्य उत्पादों को तैयार कर निर्यातोन्मुख बनाया जाएगा।

आठवीं योजना में वृद्धि दर 5.6 प्रतिशत रहने का लक्ष्य है । इसमें विनिर्माण क्षेत्र में वृद्धि दर 7.3 एवं निर्यातो में 13.6 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य है । लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए वृद्धि– दर का लक्ष्य अधिक रखा गया है । लघु एवं कुटीर उद्योगों में बढ़ती रूग्णता पर भी चिन्ता व्यक्त की गई।

नौवी योजना में औद्यौगिक उत्पादन के सूचकांक एव विकास लक्ष्यों का अध्ययन कर विद्यार्थी अपने ज्ञान में नवीनतम जानकारी का समावेश करे।

26.3.10 नवी योजना (1997-2002)

26.3.11 दसवीं योजना (2002-2007)

26.3.12 ग्यारवी योजना (2007-12)

26.4 विकास के मार्ग में बाधाएं

भारत में औद्योगिक विकास का मार्ग समतल नहीं है । पिछले वर्षों में भारतीय उद्योग पतियों ने कई उतार–चढ़ाव देखें है । मुख्य बाधाओं को इन शीर्षको में रखा जा सकता

(1) उर्जा की समस्या – भारत उर्जा के क्षेत्र में प्रारम्भ से ही पिछड़ा रहा। औद्योगिकीकरण के कारण तथा कृषि में बढ़ते उर्जा उपयोग के कारण उर्जा की मांग तेजी से बड़ी परन्तु इसकी आपूर्ति में कुछ धीमी प्रगति के कारण मांग एवं पूर्ति के बीच अन्तराल लगातार बढ़ता रहा। सरकार के पास संसाधनों की कमी व उत्पादन एवं वितरण में भारी छीजत के कारण विद्युत क्षेत्र सरकार के लिए घाटे का सौदा रहा। हाल ही वर्षों में भारत सरकार ने विश्रुत उत्पादन एवं वितरण के लिए नियामक आयोग गठित करने का सुझाव दिया। राजस्थान सरकार द्वारा, अपने राज्य में राज्य विश्रुत नियामक आयोग का गठन कर दिया गया है । अब विश्रुत क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी पर बल दिया जा रहा है । भारत सरकार इसके लिए कई विदेशी कम्पनियों से समझौता कर चुकी है ।

(2) कुशल श्रमिको की समस्या – भारत में श्रम शक्ति अकुशल एवं अधिकांश श्रमिक अशिक्षित है । इसके कारण उद्योगों के विकास में बाधा आती है ।

(3) अच्छी किस्म की मशीनरी की उपलब्धता की समस्या।

(4) कच्चे माल की कमी – कुछ उद्योगों को छोडकर भारत में औद्योगिक कच्चेमाल की कमी का सामना करना पड़ता है । इसके अतिरिक्त उपलब्ध कच्चे माल की किस्म भी घटिया है । इस कमी को: पूरा करने के लिए उद्योगों को आयातित माल पर निर्भर रहना पड़ता है ।

(5) वित्त की समस्या – वित्त के अभाव में उद्योगों की स्थापना व आधुनिकीकरण नहीं हो सकता। भारत में उद्योगों के आधुनिकीकरण के लिए भारी पूँजी विनियोग की आवश्यकता है । यहाँ का पूँजी बाजार अविकसित है । यद्यपि उदारीकरण के इस दौर में भारतीय पूँजी बाजार ने अपने आपको कुछ हद तक तैयार किया है फिर भी छोटे निवेशको का विश्वास पूँजी बाजार में अभी नहीं लौटा है । ऐसी स्थिति में शेयर व ऋणपत्र बेचने में कठिनाई होती है एवं उद्योगों की राज्य पर निर्भरता अधिक है ।

(6) औद्योगिक श्रमिको में अनुशासन की कमी के कारण भारतीय उद्योगों को श्रमादिवसो का अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ता. है। इससे हम उत्पादन लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकते।

(7) ऊँची लागतें – भारतीय श्रमिको की अकुशलता पूँजी की ऊँची लागत, घटिया कच्चामाल तथा उत्पादन में होने वाली रूकावटों से औद्योगिक माल की लागत अधिक आती है। इससे हमारे उद्योगपति उच्च क्वालिटी वाले माल का उत्पादन नहीं कर पाते। वे अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक पाते। परिणाम स्वरूप धीरे–धीरे वे रूग्ण हो जाते है एवं इसमें विनियोजित पूँजी डूब जाती है।

26.5 सारांश

भारतीय उद्योगों की विकास यात्रा काफी सुखद नहीं रही है। पिछले पचास वर्षो में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि दर 5 प्रतिशत से भी कम रही है। इस लिए कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस वृद्धि दर पर चिन्ता व्यक्त की है एवं वे रोजगार के घटते अवसरों से भी चिन्तित है। अब भविष्य में भारतीय उद्योगों को विश्व प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करना होगा। सरकार ने बीमा क्षेत्र में विदेशी कम्पनियों के प्रवेश पर रोक समाप्त करने का विधेयक दिसम्बर1999 में पास कर दिया है। इस प्रकार अब भारत आर्थिक सुधारों के द्वितीय चरण में प्रवेश कर गया है।

26.6 शब्दावली

1. Basic Industries आधारभूत उद्योग।।
2. Consumer Durables उपभोक्ता टिकाऊ उद्योग।
3. Consumer Non durables उपभोक्ता गैर टिकाऊ उद्योग।
4. Capital goods industries पूँजीगत साज सामान।
5. Wage goods मजदूरी वस्तुएं।
6. Intermediate goodsमध्यवर्ती वस्तुएं
7. Index of Industrial Production औद्योगिक 'सूचकांक।
8. Manufacturing Industries विनिर्माण उद्योग।

26.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें।

1. Govt. of India– Various five year Plans.
2. Govt. of India – Economic Survey (every year)
3. RBI. Report on currency & Finance

इकाई 27
नई औद्योगिक नीति

इकाई रूपरेखा

27.0 उद्देश्य
27.1 प्रस्तावना
27.2 औद्योगिक नीति का अर्थ एवं महत्व
27.3 नवीन औद्योगिक नीति 1991
27.4 नवीन औद्योगिक नीति की प्रमुख बातें
27.5 नवीन औद्योगिक नीति का सकारात्मक पहलू
27.6 नवीन औद्योगिक नीति का नकारात्मक पहलू
27.7 सारांश
27.8 बोध प्रश्न
27.9 सन्दर्भ

27.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य है कि हम इस इकाई के पश्चात् हम

- औद्योगिक नीति का अर्थ व महत्व जान सकेंगे।
- आर्थिक सुधारों के बाद जारी पहली नीति के विविध पक्षों की जानकारी ले सकेंगे।
- नवीन नीति की पूर्व नीतियों से आसान तुलना।
- औद्योगिक नीति के सकारात्मक व नकारात्मक पहलूओं का ज्ञान।
- औद्योगिक नीति की प्रासंगिकता को जान पायेंगे।

27.2प्रस्तावना

-किसी भी देश का विकास मार्ग औद्योगिक संरचना के विकास के बिना संभव नहीं है । स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय औद्योगिक इकाईयाँ पूर्णत: ब्रिटिश सत्ता की दया पर निर्भर थी, जिनका वास्तविक उत्थान उन समय परिस्थितियों में इतना सहज व आसान नहीं था। भारतीय आर्थिक तन्त्र को सुचारू दिशा देने के लिए विविध रणनीतियों का सहारा लिया गया यथा पंचवर्षीय योजनाएँ। आर्थिक वातावरण में सकारात्मक दशा व दिशा का निर्माण करने हेतू अब भारत स्वतंत्र रूप से नीति-निर्माण व संचालन हेतू आगे बढ़ाने लगा था।

औद्योगिक क्षेत्र को विकास के मार्ग पर प्रशस्त करने के लिए वह आवश्य हो गया कि कुछ विशेष रणनीतियों को अपनाया जाये। भारत में इस दिशा में पहला प्रयास वर्ष 1948 में किया गया जिसे अधिक विस्तार दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान मिला जिसमें भारी व आधारभूत उद्योगों की स्थापना को प्रधान लक्ष्य के तौर पर अपनाया गया। औद्योगिक विकास को प्रेरीत करने के लिए समय-समय पर विभिन्न सरकारों द्वारा औद्योगिक नीतियाँ जानी जाती रही है । प्रथम औद्योगिक नीति जो 1948 में पेश की गई में जिसमें उद्योगों को चार श्रेणीयों के विभाजित किया गया। राज्य एकाधिकार, मिश्रित सरकारी नियन्त्रण क्षेत्र एवं निजिक्षेत्र। वर्ष 1956 की नीति ने सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार पर अधिक जोर दिया।

वर्ष 1977 में आई पहली गैर-कांग्रेसी जनता सरकार ने कुछ महत्वपूर्ण सुधार किये गये जैसे-लघु उद्योगों के लिए आरक्षित इकाईयों में बढोतरी, शिशु उद्योग की शुरूआत जिला उद्योग केद्रो की स्थापना आदि। यह औद्योगिक नीति निश्चित तौर पर भारतीय आर्थिक प्रणाली को समाजवाद की ओर ले जाने का प्रयास था। समाजवाद की नीति पर आधारित इस नीति ने अनेक प्रकार के नियन्त्रण और प्रतिबन्धों का सृजन किया जो अति नियन्त्रण व अति प्रबन्धन में बदल गये। जिसका सकारात्मक परिणाम ना मिलकर अकुशलता व भष्टाचार के रूप में दुष्परिणाम नज़र आने लगया। देश की इन विपरीत परिस्थितियों ने ही वर्ष 1991 में आर्थिक सुधारों की अनिवार्यता तय कर दी थी और 1991 में इन सभी नीतियों का परित्याग कर हमें आर्थिक सुधारों के वातावरण में एक सुधारवादी या यों कहें कि उदारवादी औद्योगिक नीति अपनानी पड़ी।

27.3औद्योगिक नीति का अर्थ व महत्व:-

औद्योगिक नीति से अर्थ उस सरकारी रणनीति या सोच से है जो औद्योगिक विकास को मूर्त रूप देने के लिए समयबद्ध नियमों व सिद्धान्तो के निर्माण पर आधारित है।

दूसरे शब्दों में औद्योगिक नीति का अर्थ सरकार की उस औपचारिक घोषणा से है, जिसमें औद्योगिक विकास को समर्पित नीतियों का उल्लेख किया जाता है । इन नीतियों में उन सभी सिद्धान्तों, नियमों व रीतियों का विवरण दिया होता है, जो उद्योगों के विकास व स्थापना हेतू आवश्यक हैं। इन नीतियों के निर्माण के समय देश के आर्थिक, सामाजिक क्षेत्र के साथ उलब्ध संसाधनों व तकनीकी क्षमता को आधार बनाया जाता है।

प्रश्न जहाँ तक किसी की देश में जारी की जाने वाली औद्योगिक नीति के महत्व का है तो एक देश के लिए औद्योगिक नीति उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी की संचालन के लिए राजनैतिक नीतियाँ हैं। औद्योगिक नीति के प्रमुख महत्व निम्न है :-

(अ) औद्योगिक नीति देश के औद्योगिक विकास की एक सुनियोजित रूपरेखा प्रस्तुत करती है ।

(ब) इससे देश के उपलब्ध संसाधनों व तकनीक का कुशलतम प्रयोग संभव हो पाता है।

(स) देश के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक वातावरण का निर्माण संभव होता है।

(द) सरकार को एक समयबद्ध जिम्मेदारी का अहसास कराती है।

(च) जनसाधारण को राजकीय लक्ष्यों को समझने व उनसे जुड़ने का अवसर प्रदान करती हैं।

1- नवीन औद्योगिक नीति 1991 :- भारत में औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के लिए पहला सार्थक प्रयास वर्ष 1948 में किया गया, जब पहली औद्योगिक नीति जारी की गई। वर्ष 1956 में दूसरी नीति जारी की गई, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार हुआ और प्रतिबन्धों में बढ़ोत्तरी हुई। भारत में आगामी वर्षों में जारी 1977,1980,1990 की नीतियों में कुछ सुधारवादी कदम अवश्य उठाये गये किन्तु ये नाकाफी थे।

वर्ष 1991 में देश को गंभीर आर्थिक संकट से बाहर निकालने के लिए सुधारवादी नवीन आर्थिक नीतियों को स्वीकार किया गया। देश में मुद्रा का अवमूलन अपनाया गया। इसी दिशा में आगे बढ़ते हुए श्री पी.वी. नरसिम्हाराव के नेतृत्व वाली भारतीय सरकार के उद्योग राज्यमंत्री पी.जे. कुरियन ने 24 जुलाई 1991 में नवीन औद्योगिक एवं लाइसेंस नीति की घोषणा की जो देश में व्याप्त लाइसेंस प्रतिबन्ध औद्योगिक नियन्त्रण, नौकरशाही का हस्तक्षेप के समापन और औद्योगिक विकास का उदारवादी मार्ग प्रशस्त करती है । 24 जुलाई 1991 में जारी की गई यह नवीन औद्योगिक नीति नि: सन्देह भारतीय औद्योगिक विकास रणनीति में एक मील का पत्थर साबित हुई है।

27.4 नवीन औद्योगिक के प्रमुख उद्देश्य:-

यद्यपि स्पष्ट तौर पर औद्योगिक नीति में किसी उद्देश्य का जीक्र नहीं किया गया है, किन्तु इस प्रस्ताव का अध्ययन करने के पश्चात् कुछ सामान्य बातें निकलकर बाहर आती है वे इसका अधार या लक्ष्य तय करती है जैसे :-

(अ) भारतीय औद्योगिक क्षेत्र को नियमों से मुक्त करना।

(ब) उद्योगों को बाजार शक्तियों के अधीन स्वतंत्र छोड़ देना।

(स) उत्पादन व उत्पादकात में निरन्तर वृद्धि लाना।

(द) रोजगार के अवसरों का विस्तार करना।

(च) देश में उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण व कुशलतम उपयोग।

(छ) औद्योगिक क्षेत्र में अन्तराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा क्षमता को विकसित करना।

(ज) विश्व स्तर पर भारत की भागीदारी सुनिश्चित करना।

(झ) औद्योगिक विकास के लिए नवीन वातावरण निर्मित करना।

24 जुलाई 1991 में जारी की गई इस नवीन औद्योगिक नीति में उदारीकरण की ओर अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गये, जिनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था को बाजारोन्मुख बनाना व विकास में निजि क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ावा देना है। इस नवीन औद्योगिक नीति में निम्न नीतिगत उपाय किये गये:

1- औद्योगिक लाइसेन्स नीति में उदारीकरण।
2- विदेशी पूंजी निवेश को प्रोत्साहन।
3- विदेशी प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन।
4- सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति नीति।
5- एकाधिरात्मक एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार-व्यवहार अधिनियम में (MRTP Act) परिवर्तन।
6- अन्य सुधार।

4-1 औद्योगिक लाइसेंस नीति में उदारीकरण :-

उद्यमकर्ताओं को स्वतंत्र वातावरण प्रदान करने व निवेश संबंधी निर्णय लेने का अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से यह महत्वपूर्ण माना गया कि बदलती परिस्थितियों के अनुकूल व्यवसायिक प्रक्रियाओं में तेजी लाने के लिए तथा निजि क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए अनिवार्य औद्योगिक लाइसेन्स व्यवस्था में शिथिलता बरती जायेगी। पूर्व में जहाँ 35 से ज्यादा श्रेणीयों में लाइसेन्स की आवश्यकता होती थी उसे 1991 में घटाकर 18 कर दिया गया जिनमें से 14 अप्रैल 1993 में मोटरकार, चमड़ा, रेफ्रीजरेटर, वाशिंगमशीन व एयरकण्डीशनर्स पर से प्रतिबन्ध हटाकर संख्या 15 कर दी गई। वर्तमान में केवल 5 उद्योग ही ऐसे रह गये हैं जहॉ लाइसेन्स की अनिवार्यता बची हुई है ये निम्न है :-

(अ) एल्कोहल युक्त पेय निर्माण

(ब) तम्बाकू, सिगार, सिगरेट

(स) इलेक्ट्रोनिक्स, एयरोस्पेस तथा रखा उपकरण

(द) डिटोनेटिंग फ्यूज, सेफ्टी फ्यूज, गन पाउडर, माचिस व औद्योगिक विस्फोट

(च) खतरनाक रसायन

इनके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र हेतु अब केवल तीन उद्योग ही आरक्षित रखे गये है । परमाणु उर्जा, खनिज, रेल परिवहन।

4-2 विदेशी पूंजी निवेश को प्रोत्साहन :-

वर्ष 1991 से पहले विदेशी पूंजी भागीदारी 40 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती थी लेकिन नई नीति के अन्र्तगत विदेशी पूंजी के निवेश की सीमा को बढ़ाकर 51 प्रतिशत कर दिया गया। बाद में कई उद्योगों में यह सीमा 51 प्रतिशत से बढाकर 74 प्रतिशत और वर्तमान में 100 प्रतिश कर दी गई है। नई नीति में यह खुलापन भारतीय प्रतिबद्धता व दृढता का भी सूचक है।

4.3 विदेशी प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन:-

इस नीति में उच्च प्राथमिकता प्राप्त 35 उद्योगों के लिए विदेशी तकनीक के समझौते के स्वत: अनुमोदन का प्रावधान किया गया। यह भी स्पष्ट किया गया कि विदेशी प्रौद्योगिकी को रॉयल्टी दी जायेगी।

प्रौद्योगिकी समझौते के तहत घरेलू बिक्री पर 5 प्रतिशत रॉयल्टी तथा निर्यात बिक्री पर 8 प्रतिशत रॉयल्टी तथा एकमुश्त 1 करोड़ तक का टैक्नोलॉजी भुगतान किया जा सकेगा लेकिन कुल भुगतान समझौते की तारीख से 10 वर्ष की अवधि में बिक्री का 8 प्रतिश से ज्यादा नहीं होना चाहिए।

4.4 सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति नीति:-

1991 से पहले 1956 में पेश की गई औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र का अधिक विस्तार व महत्व दिया जिसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1991 से पूर्व 17 उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित किये गये थे जिनकी संख्या 1991 में घटकर 8 कर दी गई। बाद में पॉच और उद्योगों को इस श्रेणी से हटा लिया गया वर्तमान में केवल 3 उद्योग ही सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित किये गये हैं।

इस नवीन नीति में सार्वजनिक क्षेत्र को निजि क्षेत्र से प्रतिस्पर्धा के जीवितरखने लायक बनाने का भी लक्ष्य लिया गया। ऐसी इकाईयॉ जिनका संचलन महज बोझ बन चुका हैं। उनके सरकारी हिस्से का एक अंश म्यूचअल फण्ड वित्तिय संस्थाओं उद्योगों व आम जनता में बेचा जायेगा ताकि सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों के लिए साधन जुटाये जा सकें। गम्भीर रूप से रूग्ण इकाइयों के लिए औद्योगिक एवं वित्तिय पुनर्निमाण बोर्ड से सलाह लेना तथा ऐसी इकाईयॉ जो पुन: स्वस्थ नहीं हो सकती उन्हें बन्द करने का निर्णय लिया गया। इस प्रकार इस नीति में यह स्पष्ट किया गया कि अब सार्वजनिक इकाईयों के बोझ को और नहीं सहन किया जायेगा।

4.5 MRTP Act में संशोधन:-

इस अधिनियम को वर्ष 1970 में बनाया गया था। नई नीति के तहत अब कम्पनीयों की परिसम्पत्ति सीमा जो पहले 100 करोड़ रूपये थी को समाप्त कर दिया गया है । अब नई इकाईयों की स्थापना, विस्तार विलयन, समामेलन तथा अधिग्रहण आदि के लिए तथा निदेशको की नियुक्ति के लिए केन्द्रीय सरकार से पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं है । इस कानून लक्ष्य अब उद्योगों की इकाईयों को नियंत्रित करने के बजाय प्रतिबन्धात्मक नीतियों को निरूत्साहित करना है । इसका उद्वेश्य ये था कि जितने भी प्रभुत्व सम्पन्न औद्योगिक घराने एकाधिकारी उद्योग है

उन्हें निरूत्साहित किया जाये और स्पष्ट किया गया कि यदि उद्योग में सुधार अथवा विस्तार करना है तो इसके लिए सरकार की अनुमति लेनी होगी।

4.6 अन्य सुधार:-

आयात शुल्को में कटौती, पूंजी लाभों पर रियायत, विद्युत उत्पादन करने के लिए पॉच वर्ष तक कर छूट, 2 लाख रूपये तक की उधारियों के लिए न्यूनतम ब्याज दर सीमा समाप्त, रूग्ण इकाईयों के लिए 1985 के Sick Industrial Companies Act के संशोधन आदि।

27.5. नवीन औद्योगिक नीति की प्रमुख बातें:-

24 जुलाई 1991 में जारी नवीन औद्योगिक नीति की प्रमुख बातें निम्न रही:-

(1) परियोजनाओं को लाइसेन्स से छूट

(2) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को 40 प्रतिशत से बढाना

(3) सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी हिस्सेदारी कम करना

(4) रूग्ण इकाईयों को औद्योगिक एवं पुनर्निमाण निगम को सौंपना

(5) MRTP Act की अधिकतम परिसम्पत्ती सीमा की समाप्ति

(6) सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या में कमि

(7) अनिवार्य लाइसेन्स का संकुचन

(8) वर्तमान में जारी रजिस्ट्रेशन योजना की समाप्त

(9) वित्तिय संस्थानों द्वारा जारी ऋणों को इक्विटी में बदलने की छूट

(10) विदेशी तकनीक पर रॉयल्टी का प्रावधान

(11) विदेशी मुद्रा नियन्त्रण में परिवर्तन

(12) शत प्रतिशत निर्यातोंन्मुखी इकाईयों को शुल्क बिना मशीनरी, कच्चा माल, पुर्जे व उपभोग सामग्री प्राप्ति की छूट।

(13) निर्यातों के FOB माल के 50 प्रतिशत भाग की बिक्री देश में की जा सकती है।

27.6. नवीन औद्योगिक नीति के सकारात्मक पहलू:-

24 जुलाई 1991 में जारी उदारीकरण की इस नवीन औद्योगिक नीति का चतुर्दिक स्वागत हुआ है । फिक्की, एसौचैम, चैम्बर ऑफ कॉमर्स ए.आई.एम.ओ. सभी ने इसको सराहा है । नवीन औद्योगिक नीति भावी औद्योगिकीकरण के लिए उपयुक्त एवं सार्थक सिद्ध होगी। उत्पादन को

बढ़ावा मिलेगा, निवेश व प्रौद्योगिकी विज्ञान सकारात्मक पहलूओं को निम्न प्रकार बतलाया जा सकता है :-

6.1 उदारीकरण को समर्पित इस नीति में लाइसेन्स नीति MRTP Act व विदेश नीति में हुए संशोधनों से समय की बचत होगी जिसे उत्पादकीय कार्यों में लगाया जा सकेगा।

6.2 सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगो की संख्या की सीमितता निजिक्षेत्र को पनपने का उचित अवसर देगा।

6.3 इससे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की कुशलता में अभिवृद्धि होगी।

6.4 विदेशी निवेश व प्रौद्योगिकी का हस्तान्तरण उत्पादन एवं उत्पादकता पर सकारात्मक प्रभाव डालेगा।

6.5 MRTP Act में संशोधन अनुचित व्यापार विधियों को रोकने तथा प्रतिस्पर्धा निर्माण में सहायक होगा।

6.6 विदेशी निवेश व खुलेपन से उद्योगों की स्थापना और उनका विस्तार आसान होगा।

6.8 भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुडाव संभव होगा।

6.9 क्षेत्रीय असमानता में कमि आयेगी।

6.10 विदेशी उपक्रमों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त

27.7. नवीन औद्योगिक नीति का नकारात्मक पहलू:-

नवीन औद्योगिक नीति के सन्दर्भ में कुछ विद्वान विरोधाभासी तर्क प्रस्तुत करते हैं जो निम्न हैं :-

(1) विदेशी निवेश को अधिक प्रोत्साहन देशी निवेश के लिए चुनौती

(2) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के प्रोत्साहन के बजाय हतोत्साहन

(3) बहुराष्ट्री कम्पनीयों का सकारात्मक योगदान विचारणीय?

(4) विदेशी विनिमय का अधिक बर्हिगमन

(5) लघु व कुटीर उद्योगों के अस्तित्व पर संकट

(6) बेरोजगारी व गरीबी की समस्या को बढ़ोतरी

(7) व्यवसायिक उपनिवेशवाद की ओर बढ़ता भारत

27.8. सारांश:-

प्रत्येक परिवर्तन अवसरों व चुनौतियों का मिश्राण होता है । नई औद्यागिक नीति के प्रारम्भिक झटके निश्चित तौर पर बहुत गम्भीर और आत्मघाती नज़र आये, लेकिन समय के साथ-साथ भारतीय उद्योग जगत ने यह सिद्ध कर दिया की वह हर चुनौती को उपलब्धि में बदलने का हुनर रखता है ।

इस चुनौती को स्वीकार करने का ही परिणाम है कि भारत आज विश्व की सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में शामिल है । कभी विदेशी बहुराष्ट्रीय निगमों के नाम से कांप जाने वाला हिन्दुस्तान का उद्योग जगत एक विशाल वट वृक्ष का रूप ले चुका है, जिसकी शाखाएं आज विश्व के कोने-कोने में फैली हुई है और अपने अस्तित्व और क्षमता का बोध कराती है।

279. बोध प्रश्न:-

(1) नवीन औद्योगिक नीति के क्या उद्देश्य हैं?

(2) 24 जुलाई 1991 को जारी औद्योगिक नीति की प्रमुख बातें क्या है?

(3) 1991 की नवीन नीति की रणनीति का विस्तार से विश्लेषण कीजिए?

(4) नवीन औद्योगिक नीति के सकारात्मक व नकारात्मक पहलूओं का विश्लेषण कीजिए।

(5) औद्योगिक लाईसेंसिंग नीति से आप क्या समझते हैं? इस सन्दर्भ में MRTP Act का विवेचन कीजिए।

27.10. सन्दर्भ:-

1- भारतीय अर्थव्यवस्था - मिश्र एवं पुरी
2- भारतीय अर्थव्यवस्था - दत्त एवं सुन्दरम
3- भारतीय अर्थव्यवस्था - बी.एल. ओझा
4- भारतीय अर्थव्यवस्था विवेचन - रमेश सिंह
5- भारतीय अर्थव्यवस्था विवेचन - लाल एवं लाल
6- India un bound- Gurcharan Singh
7- India Economy- Uma Kapila
8- Hand book of Statistics on the Indian economy 2015-16

इकाई 28
लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व व समस्याएँ

इकाई रूपरेखा

28.1 उद्देश्य

27.2 प्रस्तावना

28.3 अर्थ एवं परिभाषा

28.4 लघु व कुटीर उद्योगों में अन्तर

28.5 लघु व कुटीर उद्योगों का वर्गीकरण

28.6 भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु व कुटीर उद्योगों का महत्व

28.7 लघु व कुटीर उद्योगों की समस्याएँ

28.8 सारांश

28.9 बोध प्रश्न

28.10 शब्दावली

28.11 सन्दर्भ

28.1उद्देश्य:-

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य है कि हम इकाई के अध्ययन के पश्चात्

- लघु व कुटीर उद्योगों का अर्थ व परिभाषा जान सकें।
- लघु व कुटीर उद्योगों का वर्गीकरण व उनमें अन्तर को जान सकें।
- लघु व कुटीर उद्योगों का अर्थव्यवस्था में क्या महत्व है ?
- वर्तमान परिस्थितियों में स्वयं को जीवितरख पाने में इन्हें किन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है ।

28.2प्रस्तावना:-

किसी भी देश के वास्तविक विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसकी आर्थिक प्रणाली के समस्त आयामों का विकास हो। किसी भी देश के विकास के इन विभिन्न पायदानों का मुख्य आधार उस देश की औद्योगिक कुशलता या औद्योगिक विकास है । औद्योगिक संरचना का एकपक्षीय विचार निश्चित ही परिणाम की शुद्धता को सुनिश्चित नहीं कर पाता है । अत: औद्योगिक संरचना के

एक विस्तृत (बडे) पहलू वृहद उद्योगों अवश्य हैं किन्तु लघु व कुटीर उद्योगों के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता है विशेष तौर पर ऐसे देशों में जहाँ उच्च तकनीक, पूंजी का अभाव व श्रम की असीमित पूर्ति विद्यमान है।

पाश्चात्य देशों में छोटे पैमाने पर पाया जाने वाला उत्पादन संगठन बड़े पैमाने के उत्पादन संगठन का पूरक होता है यानि वह पूंजीवादी तौर पर संगठित होता है । भारत जैसे विकासशील देशों में लघु व कुटीर उद्योग पूंजीवादी तौर पर इतने सशक्त और संगठित नहीं होते हैं। सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ जिनमें श्रम की असीमिता, निम्न तकनीक, पूंजी का अभाव, कृषि प्रधनता आदि ने लघु व कुटीर उद्योगों को पनपने का एक उत्तम वातावरण दिया है । यही कारण रहा कि प्रारम्भिक समयावधि में भारत में लघु व कुटीर उद्योगों का विस्तार बहुत तीव्र गति से हुआ किन्तु ब्रिटिश काल से इनका पतन होना प्रारम्भ हो गया जैसा प्रो. सी.आर. दास लिखते हैं ''अठारहवीं शताब्दी में भारत एक बहुत बड़ा खेतिहर और औद्योगिक देश था जिसका अंग्रेजो की स्वार्थपरायणता ने मटियामेट कर दिया।''

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस दिशा में पुन: प्रयास शुरू किये गये किन्तु संगठन की लचर स्थिति व वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा के दौर में लघु व कुटीर उद्योग स्वयं को जीवितरख पाने में अक्षम नज़र आ रहे हैं।

28.3 अर्थ एवं परिभाषा

कुटीर उद्योगों का आशय उन उद्योग-धन्धों से है जो एक ही परिवार के सदस्यों की सहायता से एक ही छत के नीचे पूर्णकालिक या अंशकालिक तौर पर संचालित किये जाते हैं, इनमें पूंजी निवेश नाम मात्र का पाया जाता है तथा उत्पादन भी प्राय: हाथों से ही किया जाता है।

लघु व कुटीर उद्योगों के सम्बन्ध में किसी निश्चित व प्रमाणिक परिभाषा का दिया जाना संभव नहीं है क्योंकि समय और परिस्थितियों के अनुसार इन्हें परिभाषित करने के आधारों में परिर्वतन आया है । राजकोषीय आयोग के अनुसार लघु उद्योग वह हैं। जिसमें मुख्यत: 10 से 15 लोग कार्यरत रहते हैं। इसमें वे सब इकाई व संस्थान शामिल हैं जिनमें पांच लाख रूपए से कम पूंजी लगी हुई होती है । वर्तमान समय में लघु उद्योगों को परिभाषित करने के लिए श्रमिको की संख्या के विचार को त्यागकर केवल विनियोजित पूंजी पर ध्यान दिया जाने लगा है । वर्ष 1980 में जहाँ विनियोजन की सीमा क्रमश: 20 लाख व 25 लाख रूपए थी वर्ष 1990 में 60 लाख रूपए व 75 लाख रूपए हो गई। वहीं अत्यन्त लघु के समबन्ध में ये सीमाएँ 1980 में 1 लाख रूपए 1985 में 2 लाख रूपए थी जो 1990 में बढ़ाकर 5 लाख रूपए कर दी गई।

1 मार्च 1991 को लघु उद्योग में पूँजी निवेश सीमा 60 लाख रूपये व 75 लाख रूपए से बढ़ाकर 3 करोड़ रूपए तथा अत्यन्त लघु इकाईयों के सम्बन्ध में 5 लाख रूपए से बढ़ाकर 25 लाख रूपए कर दी गई। केन्द्रीय मंत्री मण्डल ने पुन: 17 फरवरी 1999 में संशोधन करते हुए प्लॉण्ट व मशीनरी में निवेश की सीमा को घटाकर क्रमश: 3 करोड़ रूपए व 1 करोड़ रूपए कर दिया गया जबकि अति लघु इकाईयों की निवेश सीमा पूर्ववत 25 लाख रूपए ही रखी गई।

28.4. लघु व कुटीर उद्योगों में अन्तर:

- सामान्य तौर पर लघु व कुटीर उद्योगों को एक ही मान लिया जाता है किन्तु इनमें पाये जाने वाले अन्तर को निम्न आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है:-

4.1 संचालन के आधार पर:-कुटीर उद्योगों का संचालन एक ही परिवार के सदस्यों द्वारा अपने घर में किया जाता है जबकि उघु उद्योगों का संचालन वेतन भोगी श्रमिको द्वारा किया जाता है।

4.2 यांत्रिक प्रयोग: - कुटीर उद्योगों में यंत्रों का प्रयोग न्यून व सीमित होता है जबकि लघु उद्योगों में पूंजी व मशीनरी का प्रयोग अधिक होता है।

4.3 पूंजी उपयोग:- कुटीर उद्योगों में पूंजी व विनियोजन नाममात्र का होता है जबकि लघु उद्योगों में अपेक्षाकृत अधिक पूंजी लगाई जाती हे।

4.4 उत्पादन विधि:- कुटीर उद्योगों में प्राय: परम्परागत विधियों (श्रम प्रधान तकनीक) से परम्परागत वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है जबकि लघु उद्योगों में यांत्रिक तकनीक (पूंजी प्रधान तकनीक) यानि मशीनरी का प्रयोग किया जाता है।

4.5 बाजार के आधार पर: - कुटीर उद्योगों का बाजार सीमित होता है ये सामान्यत: स्थानीय बाजार की मांग की पूर्ति कर पाने में सक्षम होते हैं। जबकि लघु उद्योग अपेक्षाकृत व्यापक बाजार मांग की पूर्ति कर पाते हैं।

5. लघु व कुटीर उद्योगों का वर्गीकरण:- परम्परागत तौर पर लघु व कुटीर उद्योगों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है - (अ) ग्रामीण कुटीर उद्योग (ब) शहरी कुटीर उद्योग

(अ) ग्रामीण कुटीर उद्योग:- इनमें सामान्यत: पशुपालन, करघे का काम मधुमक्खि पालन, मछली पालन, टोकरी बनाना, चमड़ा बनाना, तेल घाणी, बर्तन बनाना आदि शामिल हैं।

(ब) शहरी कुटीर उद्योग:- ये वे हैं जो शहरी क्षेत्रों में स्थापित किये गये हैं जैसे-खिलौना बनाना, कपड़ा बनाना, फर्नीचर, साबुन बनाना, हथकरघा, रंगाई छपाई आदि।

छोटे लघु व मध्यम उद्यम विकास अधिनियम 2006 के अनुसार इन उद्योगों को दो वर्गो में विभाजित किया गया है :-

(1) विनिर्माण उद्यम (2) सेवा उद्यम

2006 का यह अधिनियम इन दो प्रमुख वर्गों को संयंत्रव मशीनरी में निवेश तथा उपस्करों के आधार पर तीन उप वर्गों-छोटे-लघु व मध्यम (मझले) में विभाजित करता है।

5.1 विनिर्माण उद्योग:

अ. छोटे उद्यम - 25 लाख रूपए तक का निवेश

ब. लघु उद्यम - 25 लाख रूपए से 5 करोड़ रूपए तक निवेश

स. मझले उद्यम - 5 करोड़ से 10 करोड़ रूपए तक निवेश

5.2 सेवा उद्योग:

अ. छोटे उद्यम - 10 लाख रूपए तक का निवेश

ब. लघु उद्यम - 10 लाख रूपए से 2 करोड़ रूपए तक निवेश

स. मझले उद्यम - 2 करोड़ से 5 करोड़ रूपए तक निवेश

28.6. भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु व कुटीर उद्योगों का महत्व

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु व कुटीर उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है । भारत जैसे विकासशील देशों ने जहॉ पूंजी का अभाव गरीबी, बेरोजगारी, अल्प तकनीकी ज्ञान का व्यापक विस्तार हो वहॉ लघु व कुटीर उद्योग आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सभी दृष्टिकोणों से औद्योगिक विकास भी आधारशिला है । भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु व कुटीर उद्योगों के महत्व व आवश्यकता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि लघु उद्योग भारत की क्षमताओं और विकास की नवीन स्थितियों का मार्ग प्रशस्त करने का माध्यम है जिसमें लाखों लोगों की उत्पादन क्षमता का प्रयोग किया जा सकता है । भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु व कुटीर उद्योगों के महत्व को मोरारजी देसाई के शब्द स्पष्ट करते हैं। ''ऐसे उद्योगों से ग्रामीण लोगों को जो अधिकांश समय बेरोजगार रहते हैं पूर्ण अथवा आंशिक रोजगार प्राप्त होता है ।''

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु व कुटीर उद्योगों के महत्व को विस्तार से निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :-

तालिका-I लघु उद्योगों का निष्पादन

वर्ष	इकाईयॉ (लाखों में)			उत्पादन (करोड़ रू. में)		रोजगार (लाखों में)	नियति (करोड़ रू.में)
	पंजीकृत	अपंजीकृत	कुल	चलू कीमतों पर	1993.94 के मूल्यों पर		
1995-1996	11.57	71.27	82.84	147772	121175	197.93	36470
1999-2000	12.32	84.83	97.15	233760	170379	229.10	54200
2000-2001	13.10	88.00	101.10	161297	184401	239.09	69797

2001-2002	13.75	91.46	105.21	282270	195613	249.09	71244
2002-2003	14.68	95.42	109.49	314850	306771	260.21	86013
2003-2004	15.54	98.41	113.95	364547	336344	282.57	97644
2004-2005	16.57	102.02	118.59	429796	372938	299.35	124417
2005-2006	18.70	104.70	123.40	497842	418884	322.28	177600
2007-2008	-	-	271.79	790750	532979	626.34	182536
2008-2009	-	-	285.16	880305	-	659.35	202017
2009-2010	-	-	298.08	982919	-	659.38	-

स्त्रोत : आर्थिक समीक्षा (2007-08), 2014-15, 2015-16

6.1 **कम पूंजी व अधिक उत्पादन** :-भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था है जहाँ पूंजी का नितान्त अभाव है । देश की इन परिस्थितियों में लघु व कुटीर उद्योगों में थोडी पूंजी लगाकर ही आय, उत्पादन व रोजगार में वृद्धि संभव है । वर्ष 1995-96 में जहॉ 82.84 लाख इकाईयॉ थी जिनका उत्पादन 1,47,712 करोड़ रूपए था वर्ष 2000-01 में बढ़कर क्रमश : 101.10 लाख इकाई उत्पादन 161297 करोड़ रूपए हो गया। औद्योगिक उत्पादन में लघु व कुटीर उद्योगों का हिस्सा वर्ष 2009-10 में बढ़कर 982919 करोड़ रूपए व इकाईयों की संख्या बढ़कर 298.08 लाख हो गई थी।

6.2 **रोजगार अवसरों का सृजन**:- लघु व कुटीर उद्योग रोजगार के प्रमुख स्त्रोत हैं। जिनके विकास से अर्द्ध बेरोजगारी व पूर्ण बेरोजगारी का निदान सम्भव है । वर्ष 1951 में लघु व कुटीर उद्योगों में 61.4 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त था वह वर्ष 1995-96 में बढ़कर 197.93 लाख व 2001 में 239.09 लाख हो गया। लघु व कुटीर उद्योग क्षेत्र में रोजगार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा और वर्ष 2009-10 में 695.38 लाख होग प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तौर पर इन उद्योगों में रोजगार प्राप्त थे।

6.3 **निर्यात में योगदान:-**स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बड़े पैमाने पर लघु उद्योगों की स्थापना के कारण निर्यात में इनका योगदान लगातार बढ़ता जा रहा है । लघु व कुटीर उद्योगों का कुल निर्यात वर्ष 1995-96 में 36,470 करोड़ रूपए था जो 2000-01 में 69,979 करोड़ हो गया। वर्ष 2008-09 में यह बढ़कर 202017 करोड़ रूपए हो गया है ।

6.4 **विदेशी मुद्रा का अर्जन**:-लघु व कुटीर उद्योगों में निर्मित उत्पाद अब देश के स्थानीय बाजार से वैश्विक क्षेत्र तक पहुंचने लगे हैं जिससे विदेशी मुद्रा का अर्जन बढ़ा है और देश को विदेशी

विनिमय संकट से लड़ने में सहायता मिलि है । वर्तमान में भारत में कुल निर्यात में लघु व कुटीर उद्योगों का हिस्सा लगभग 35 प्रतिशत है।

6.5 **राष्ट्रीय आय का बेहतर आवंटन (वितरण) :-** लघु व कुटीर उद्योगें का आर्थिक प्रणाली में महत्व इस रूप में बढ़ जाता है कि इनकी सहायता से राष्ट्रीय आय का अधिक बेहतर व न्यायोचित वितरण हो सकता है । लघु व कुटीर उद्योगों द्वारा राष्ट्रीय आय का विवरण दो रूप में हो सकता है-पहला लघु उद्योगें का स्वामित्व बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक व्यापक व विस्तृत है तथा दूसरा लघु व कुटीर उद्योगों में रोजगार सृजन की क्षमता भी वृहद उद्योगों से अधिक होती है । इन उद्योगों में श्रमिक शोषण का ना पाया जाना राष्ट्रीय आय का अधिक समान विवरण आसान बनाता है।

6.6 **उद्योगों के विकेन्द्रीकरण में सहायक:-** कुटीर व लघु उद्योगों से देश में उद्योगों के विकेन्द्रीकरण में सहायता प्राप्त होती है । बड़े उद्योगें की स्थानीय स्तर पर स्थापना इतना आसान नहीं होता किन्तु लघु व कुटीर उद्योगों को गांवों व कस्बों में आसानी से स्थापित किया जा सकता है । उद्योगों के विकेन्द्रीकरण में दो प्रमुख लाभ है-पहला स्थानीय प्रतिभा व साधनों का कुशलतम उपयोग, दूसरा औद्योगिक प्रदेशों की असमानता का समाधान''

6.7 **स्थानीय पूंजी व साधनों का कुशलतम उपयोग:-** किसी भी देश में विभिन्न संसाधन ऐसे होते हैं जिनकी मांग बड़े स्तर के उद्योगों द्वारा लगभग शून्य होती हे। किन्तु लघु उद्योगों का कुशलतम प्रयोग किया जाना संभव हो पाता है।

6.8 **औद्योगिक विवादों से मुक्ति:-** बड़े पैमाने के उद्योगों में पूंजी व श्रम साधनों के संघर्ष के कारण घेराव, तालाबन्दी, हड़ताल जैसी घटनाए आम होती जा रही है । लघु व कुटीर उद्योगों में श्रमिको की सीमित संख्या व व्यक्तिगत संगठन तथा प्रबन्धन का पाया जाना पारस्परिक सद्भावना का निर्माण करती है और औद्योगिक विवाद व श्रम संघर्षों की संभावना को कम करती है।

6.9 **परम्परागत व कलात्मक उद्योगों को संरक्षण:-** लघु व कुटीर उद्योग परम्परागत एवं कलात्मक वस्तुओं के उत्पादन को संरक्षण प्रदान करते हैं। इन उद्योगों के ग्रामीण व परम्परागत क्षेत्रों को संरक्षण के साथ-साथ निर्यात के माध्यम से विदेशी मुद्रा का अर्जन भी संभव हुआ है।

28.6.10 **असामान्य परस्थितियों में आर्थिक सुरक्षा:-**

वैश्वीकरण के दौर में जहाँ बहुराष्ट्रीय निगमों का जाल बिछा हुआ है और हर देश दूसरे से गहरे तौर पर जुड़ा हुआ है । ऐसी परिस्थितियों में वैश्विक स्तर पर उत्पन्न होने वाले आर्थिक उतार-चढावों का प्रभाव सभी देशों पर पड़ता है । इन असामान्य परिस्थितियों में देश की आर्थिक सुदृढता को बनाये रखने में लघु व कुटीर उद्योग अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं।

7- **लघु व कुटीर उद्योगों की समस्याएँ :-**भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु व कुटीर उद्योगों का अत्यधिक महत्व है । यद्यपि लघु व कुटीर के विकास के लिए सरकार द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से अनेक कदम उठाये गये हैं पर इन उद्योगों को कई ऐसी समस्याओं का

सामना करना पड़ता है जिनके परिणामस्वरूप या तो ये इकाईयॉ रूग्णता जैसी स्थिति में पहुच जाती हैं या फिर बन्द हो जाती है । लघु इकाईयों की रूग्णता का स्तर कितना व्यापक है इस बात का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि मार्च 2001 के अन्त तक लगभग 2.5 लाख इकाईयॉ रूग्ण स्थिति में थी जिनमें बैंकों का 4506 करोड़ रूपये फंसा हुआ था। लघु व कुटीर उद्योगों की इन विभिन्न समस्याए निम्नलिखित है :-

7-1 **वित्त व साख की समस्या** :- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यद्यपि सरकारी प्रयासों से इन क्षेत्रों में वित्त की समुचित व्यवस्था का प्रयास किया गया है किन्तु आज भी पूंजी व साख का अभाव लघु व कुटीर उद्योगों की प्रधान समस्या बनी हुई है । लघु इकाईयों का पूंजी आधार कमजोर होने का कारण संगठन व साझेदारी में एकाकी स्वामित्व का पाया जाना है जो आसान ऋण उपलब्धता को सुनिश्चित नहीं कर पाते हैं।

7-2 **कच्चे माल की समस्या :-** लघु व कुटीर उद्योगों के समक्ष विद्यमान सबसे पहली समस्या कच्चे माल की उपलब्धता की है जो इन्हें उचित समय और उचित मूल्य पर नहीं मिल पाता है । साधनों की समितता के कारण ये पर्याप्त कच्चा माल क्रय नहीं करपाते क्योंकि कम मात्रा में क्रय किये जाने के कारण इन्हें अधिक कीमत चुकानी पड़ती है । बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा होने के कारण उन्हें उन्नत किस्म का कच्चा माल भी बाजार में नहीं मिल पाता है । कच्चे माल की आपूर्ति हेतू स्थानीय बाजारों पर अत्यधिक निर्भरता पायी जाती है ।

7-3 **तकनीकी समस्या :-** अधिकांश लघु इकाईयॉ पुराने यंत्रों व तकनीक का इस्तेमाल करती है जिसमें उनके उत्पादित माल की क्वालिटी भी घटिया होती है । तकनीकि सुद्रढ़ता के अभाव में ये इकाईयॉ बाजार के बदलाव रूचि, फैशन इत्यादि के साथ शीघ्र सामंजस्य नहीं बैठा पाती हैं। शिक्षा का अभाव वित्त की कठिनाई तथा सीमित बाजार के कारण उत्पादन की परम्परागत तकनीक पर निर्भरता कनी हुई है ।

7-4 **विपणन की समस्या :-**लघु व कुटीर उद्योगों की विपणन की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है । लघु उद्योगों के पास विपणन हेतु कोई संगठन नहीं पाया जाता है जो बाजार में निर्मित उत्पाद को बेचने में सहायता या मदद कर सके। लघु इकाईयों द्वारा मानक वस्तुओं का भी उत्पादन नहीं किया जाता है इसलिए उनका माल बड़ी इकाईयों की तुलना में सहज ही नहीं बिक पाता है । यद्यपि सरकार द्वारा इन्हें प्रतिष्पर्धा के वातावरण मे संरक्षित करने के लिए अनेक वस्तुओं का उत्पादन लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित कर दिया गया है ।

7-5 **अस्वस्थता (रूग्णता) की समस्या** :- लघु व कुटीर उद्योगों की प्रमुख समस्या अस्वस्थता (रूग्णता) की है । लघु इकाईयों के सन्दर्भ में रूग्णता के दो पक्ष हैं- (अ) ऐसी इकाईयाँ जिनका पुन: संचालन संभव नहीं है । (ब) ऐसी इकाईयॉ जिनका पुन: संचालन संभव है किन्तु वित्तिय संसाधन की अपर्याप्तता मुख्य समस्या है । देश में 31 मार्च 2003 तक, 1,67,980 रूगण इकाईयॉ थी जिनमें बैंकिंग क्षेत्र का 5706 करोड़ फंसा हुआ था जिनमें से 1,62,791 इकाईयों को पूर्नजिवित्तकर पाना संभव नहीं है जिसमें 4569 करोड़ रूपए फंसा हुआ है ।

7-6 **उत्पादन का सीमित क्षेत्र** :-लघु उद्योगों की विविध समस्याओं का कारण व इनके उत्पादन क्षेत्र का सीमित पाया जाना है, जहॉ पहले कलात्मक व परम्परागत उत्पादों के लिए उच्च मूल्य आसानी में मिल जाता था अब वह उतना आसान नहीं रहा है।

7-7 **श्रमिको की अकुशलता** :- लघु व कुटीर उद्योगें की एक बड़ी समस्या कारीगरों की अशिक्षा व उनका तकनीकी स्तर बहुत नीचा पाया जाना है । नवीन उत्पादन विधियों के प्रति इनका रवैया उदासीनतापूर्ण रहता है । यह तकनीकी लोचहीनता इनके पिछडेपन का प्रमुख कारक है।

7-8 **प्रमापीकरण का अभाव** :-इन उद्योगों द्वारा निर्मित माल किसी निश्चित प्रमाप(मानक) लिए नहीं होती अत: ये ना तो बाजार में अपनी मांग मजबूत कर पाते हैं ओर ना ही इन्हें अपने उत्पाद का उचित मूल्य मिल पाता है।

7-9 **विद्युत शक्ति की कमी** :- कुटीर व लघु उद्योगों की एक मुख्य समस्या शक्ति साधन की कमि का पाया जाना है । इन उद्योगों को उचित मात्रा में व सस्ती दरों पर विद्युत शक्ति नहीं मिल पाने के कारण में ठीक से उत्पादन नहीं कर पाते हैं।

7-10 **बडे उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा** :- बड़े उद्योगों द्वारा निर्मित माल अपेक्षाकृत सस्ता, अच्छी किस्म का और आकर्षक होता है, बड़े पैमाने के उद्योग उत्पादन की आधुनिक विधियों का प्रयोग तो करते ही हैं साथ ही वे विपणन आदि में भी कुशल होते हैं जिसके कारण लघु व कुटीर उद्योग प्रतियोगिता में नहीं टिक पाते हैं।

7-11 **सूचनाओं का अभाव :-** इन उद्योगों का संगठन इतना सशक्त नहीं होता है यही कारण है कि इन्हे बाजार, उत्पादन व विपणन के सन्दर्भ में उचित व प्रमाणिक सूचनाएँ नहीं मिल पाती है।

28.8. सारांश:-

लघु व कुटीर उद्योगों के सम्बन्ध में विभिन्न पक्षों का परिचय प्राप्त कर लेने के बाद सारांश के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि यह भारतीय अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा जिसने देश को विकास की नई दिशा प्रदान की तथा एक लम्बे समय तक वैश्विक स्तर पर भारत की पहचान को निर्मित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रारम्भिक उत्थान के दौर के बाद गुलामी की जंजीरों ने जकड़े हिन्दुस्तान का सबसे सशक्त पहलू लघु व कुटीर उद्योग लगातार विरोधी नीतियों के कारण ध्वस्त होता चला गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इसे पुन: जीवितकरने का सार्थक प्रयास विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यय से किया गया। किन्तु जिस सहारे व संरक्षण का यह क्षेत्र वास्तव में हकदार था इसे इतना नहीं मिल पाया और लम्बे समय बाद भी वहीं समस्यायें जस की तस बनी हुई है।

28.9. बोध प्रश्न:-

1- लघु व कुटीर उद्योग किसे कहते हैं ?
2- लघु व कुटीर उद्योगों में अन्तर को बतलाइए ?
3- लघु व कुटीर उद्योगों का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्व को स्पष्ट कीजिए?
4- लघु व कुटीर उद्योगों को किन प्रमुख समस्याओं का सामना करना पड़ता है विस्तार से समझाइए ?

28.10. शब्दावली:-

1- श्रम प्रधान तकनीक :- वह तकनीक जिसमें श्रम का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग होता है।
2- पूंजी प्रधान तकनीक :- वह तकनीक जिमें पूंजी का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग होता है।
3- प्रमापीकरण : किसी वस्तु या उत्पाद की गुणवत्ता को प्रदर्शित करने का आधार।
4- विनियोग : किसी आर्थिक प्रक्रिया में पूंजी या साधनों के लगाकर नवीन प्रक्रिया का सृजन करना।

28.11. सन्दर्भ

1- आर्थिक समीक्षा 2015-16
2- Hand book of Statistics on the Indian economy 2015-16
3- भारतीय अर्थव्यवस्था दन्त एवं सुन्दरम
4- भारतीय अर्थव्यवस्था मिश्र एवं पुरी
5- भारतीय अर्थव्यवस्था विवेचन रमेश सिंह
6- India un bound- Gurcharan Singh
7- Indian Economy – Uma Kapila

इकाई 29
नवीन आर्थिक नीति : एक विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य
29.1 प्रस्तावना
29.2 पृष्ठभूमि
29.3 भारत में आर्थिक सुधार
29.3.1 स्थायित्वकारी उपाय / समष्टि आर्थिक स्थिरीकरण
29.3.2 संरचनात्मक/ढाँचागत सुधार
29.4 उदारीकरण
29.5 निजीकरण
29.6 वैश्वीकरण
29.7 आर्थिक सुधारों का मूल्यांकन
29.8 आर्थिक सुधारों की सीमाएँ
29.9 द्वितीय चरण के आर्थिक सुधार
29.10 आर्थिक सुधारों की भावी दिशा
29.11 सारांश

29.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि नवीन आर्थिक नीति क्या है ? और इसे किन परिस्थितियों में अपनाया गया।
- भारत के विकास में नवीन आर्थिक नीति कहाँ तक सफल रही है इसके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढाँचे को अपनाना। इसमें बाजार अर्थव्यवस्था की विशेषताओं के साथ-साथ नियोजित अर्थव्यवस्था की विशेषताएं थी। कुछ विद्वानों का मत है कि इस अवधि में इतने अधिक नियम कानून बनाये गए कि उनसे आर्थिक संवृद्धि और विकास की समुचित प्रक्रिया ही अवरुद्द हो गई। वर्ष 1981 में भारत को विदेशी ऋणों के मामले में भारी संकट का सामना करना पड़ा। सरकार अपने विदेशी ऋणों के भुगतान करने की स्थिति में नहीं थी। पेट्रोल एवं रक्षा उपकरणों आदि आवश्यक वस्तुओं के आयात के लिए सामान्य रूप से रखा गया विदेशी मुद्रा रिजर्व मात्र पन्द्रह दिनों के लिए आवश्यक आयात का भुगतान करने

योग्य भी नहीं बचा था। इस संकट को आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि ने और भी गहन बना दिया था। इन सभी कारणों से सरकार ने कुछ नई नीतियों को अपनाया और इसने हमारी विकास रणनीतियो की सम्पूर्ण दिशा को ही बदल दिया। इस आर्थिक संकट का समाधान करने के लिए जिस विकास युक्ति को चुना गया उसे ही **नवीन आर्थिक नीति** कहा गया।

29.2 पृष्ठभूमि

उपरोक्त उल्लेखित आर्थिक संकट का वास्तविक उद्गम स्त्रोत 1980 के दशक में अर्थव्यवस्था में अकुशल प्रबंधन के कारण था। सामान्य प्रशासन चलने और आपनी विभिन्न नीतियों के क्रियांवयन के लिए सरकार करों और सार्वजनिक उद्यम आदि माध्यम से फंड जुटाती है। जब व्यय आय से अधिक हो तो सरकार बैंकों जनसामान्य तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों से उधार लेने को बाध्य हो जाती है इस प्रकार वह आपने घाटे का वित्तीय प्रबंध कर लेती है। कच्चे तेल तथा रक्षा उपकरणों आदि के आयात के लिए हमें डॉलरो में भुगतान करना होता है और ये डॉलर हम अपने उत्पादन के निर्यात तथा प्रवासी भारतीयों द्वारा अर्जित विदेशी मुद्रा से प्राप्त करते है। स्वतंत्रता से 1990 तक की अवधि के मध्य विशेष रूप से जनसंख्या विस्फोट की अवधि (1971 व बाद में) में सरकार की विकास नीतियों की आवश्यकता रही क्योंकि राजस्व कम होने पर भी बेरोजगारी, निर्धनता और जनसँख्या विस्फोट के कारण सरकार को अपने राजस्व से अधिक खर्चा करना पड़ा।यही नहीं सरकार द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमों पर होने वाले व्यय के कारण अतिरिक्त की प्राप्ति भी नहीं हुई। जब सरकार को प्रतिरक्षा और सामाजिक क्षेत्रों पर अपने संसाधनों का एक बड़ा अंश खर्च करना पड़ रहा था और यह स्पष्ट था कि इन क्षेत्रों से किसी भी प्रतिफल की सम्भावना नहीं थी। बढते हुए खर्चो की पूर्ति के लिए कई बार तो अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों तथा अन्य देशों से उधार ली गई विदेशी मुद्रा को उपभोग कार्यों पर ही खर्च करने दिया गया। इस प्रकार के अनावश्यक खर्चो को नियंत्रित करने का न तो कोई प्रयास किया गया, न ही निरंतर बढते आयात के लिए प्रतिस्थापन या वित्त जुटाने की व्यवस्था पर कोई ध्यान दिया गया।

1980 के दशक के अंत तक सरकार का व्यय, उसके राजस्व से इतना अधिक हो गया की उसे धारण क्षमता से अधिक माना जाने लगा। अनेक आवश्यक वस्तुओं की कीमते तेजी से बढने लगी। आयात की वृद्धि इतनी तीव्र रही कि निर्यात की संवृद्धि से कोई तालमेल नहीं हो पा रहा था। जैसा की पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि विदेशी मुद्रा के सुरक्षित भण्डार इतने क्षीण हो गए थे कि दो सप्ताह की आयात आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते थे। अन्तर्राष्ट्रीय ऋणदाताओं की ब्याज चुकाने के लिए भारत सरकार के पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा नहीं बची थी।

29.3 भारत में आर्थिक सुधार

आर्थिक सुधारों की शुरुआत 1991 में प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव की अध्यक्षता में बनी सरकार के शासनकाल में हुई जब तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह ने अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के लिए कई आर्थिक कदमो की घोषणा की जो कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष तथा विश्व बैंक द्वारा भारत

को 07 बिलियन डॉलर के उधार देते समय निर्धारित किये गए थे । आर्थिक संकटो से निपटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों विश्व बैंक तथा आई.एम.एफ. द्वारा जारी 07 बिलियन डॉलर की राशि के बदले कुछ शर्तें भारत पर इन संस्थानों द्वारा लगाईं गई जो कि निम्न थी :-

→ भारत सरकार उदारीकरण करेगी ।

→ सरकार निजी क्षेत्र पर लगे प्रतिबंधों को हटाएगी तथा अनेक क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप को कम करेगी ।

→ साथ ही विदेशी व्यापार पर लगे अनेक प्रतिबंधों को हटाएगी।

इस प्रकार भारत सरकार द्वारा जुलाई 1991 में विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.) की ये शर्तें मान ली और नई आर्थिक नीति की घोषणा की । इसके तहत **एल पी जी (उदारीकरण , निजीकरण व वैश्वीकरण)** से जुड़े विभिन्न कार्यक्रम अपनाये गए ।

हाल ही के कुछ अर्थशास्त्रियों ने तर्क दिया की आर्थिक सुधारो की शुरुआत 1980 के दशक में हो गई थी प्रो . अरविन्द पानागढ़िया के अनुसार भारत में आर्थिक सुधारों की शुरुआत 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में राजीव गाँधी के कार्यकाल में हो गई थी । इस तर्क के समर्थन में वे केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में 1987 में आई. जे. पटेल के अभिभाषण का उल्लेख करते है जिसमे पटेल ने पहले डेढ़ वर्ष में राजीव गाँधी द्वारा आरंभ किये गए सुधारों को नई आर्थिक नीति की संज्ञा दी थी। अपने स्वंय के अध्ययन में प्रो. पानागढ़िया ने 1988 के बाद की अवधि को सुधार अवधि माना है । परन्तु वे इस बात को भी स्वीकार करते है कि 1991-92 में उदारीकरण के लिए उठाए कदम पिछली अवधि में उठाए गए छुट-पुट कदमो की तुलना में काफी व्यापक थे । यद्यपी राजनैतिक विरोध के डर से तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह ने सुधारों को पिछली नीतियों का ही जारी रहना व विस्तार बताया, परन्तु वास्तव में जो कदम उठाए गए वे पुराने नीतिगत ढाँचे के पूर्ण परित्याग तथा उदारीकरण का खुला समर्थन थे । यही कारण है कि भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बंधित अधिकतर अध्ययनों में आर्थिक सुधारों की शुरुआत 1991 से मानी जाती है । इन आर्थिक सुधारों को 'नई आर्थिक नीति ' तथा 'नरसिंह राव– मनमोहन सिंह विकास युक्ति ' के नाम से भी जाना जाता है ।

इस नवीन आर्थिक नीति या विकास युक्ति में व्यापक आर्थिक सुधारों को सम्मिलित किया गया । इन समस्त नीतियों का उद्देश्य अर्थव्यवस्था में अधिक स्पर्धापूर्ण व्यावसायिक वातावरण की रचना करना तथा फर्मो के व्यापर में प्रवेश करने और उनकी संवृद्धि में आने वाली बाधाओं को दूर करना था । इन नीतियों को दो उपसमूहों में विभाजित किया जा सकता है ।

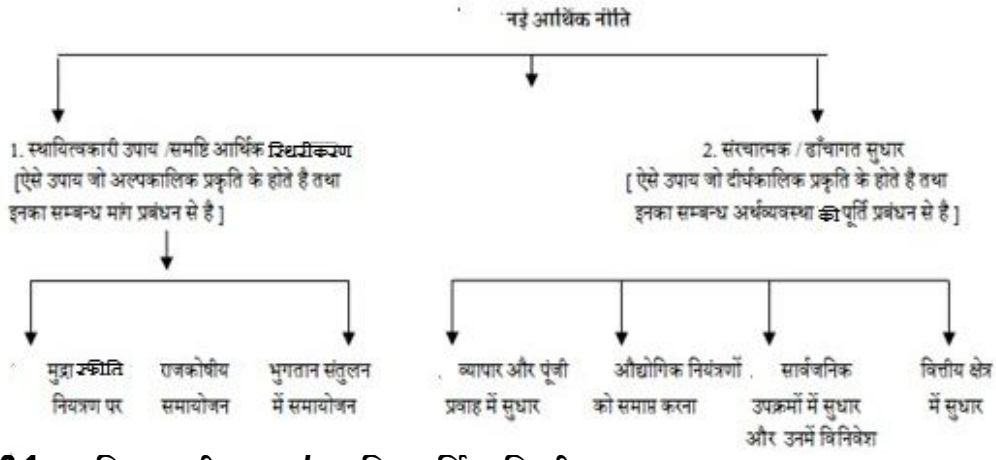

29.3.1 स्थायित्वकारी उपाय / समष्टि आर्थिक स्थिरीकरण

ये ऐसे उपाय है जो कि अल्पकालीन प्रकृति के होते है। जिनका सम्बन्ध अर्थवयवस्था में मांग के प्रबंधन से है। ये आर्थिक स्थायित्व को प्रकट करते है जो कि आर्थिक संकट से मुक्ति के लिए आवश्यक होता है। काँग्रेस सरकार ने , जो जून 1991 में पुन: सत्ता में आई , आर्थिक संकट पर काबू करने के लिए स्थायित्वकारी उपायों के प्रति जिनमे :- मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण , राजकोषीय समायोजन और भुगतान संतुलन की स्थिति में सुधार के लिए आवश्यक नीतियों के लिए अपनी प्रतिबद्दता जताई और आवश्यक उपायों की घोषणा की।

1. **मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण**

1990-91 में मुद्रा स्फीति की वार्षिक दर 10 प्रतिशत के ऊपर थी। इसे एक ओर तो मौद्रिक और राजकोषीय अनुशासन के द्वारा और दूसरी ओर मांग और पूर्ति में उचित सामंजस्य द्वारा सुधार के नीचे ला पाना संभव था परन्तु सरकार दोनों ही मोर्चो पर असफल रही। प्रारम्भ में 1992-93 में कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों में संतोषजनक उत्पादन हुआ। मांग पक्ष में भी सरकार द्वारा सावधानी से काम लिये जाने के कारण तथा राजकोषीय घाटे को भी कम करके इसे G.D.P के 5.3 प्रतिशत पर लाया गया जिसके चलते मुद्रास्फीति पर इन उपायों का अच्छा प्रभाव पड़ा और 1993 के आरंभ में मुद्रास्फीति की दर 7.0 प्रतिशत वार्षिक हो गई। परन्तु इसके बाद सरकार द्वारा मौद्रिक तथा राजकोषीय अनुशासन की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया जिसके चलते 1994-95 में मुद्रास्फीति एक बार पुन: 10 प्रतिशत से ऊपर 12.6 प्रतिशत पहुँच गई। 1995-96 में पुन: सरकार द्वारा मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि की दर को नीचे लाया गया जिसके चलते जनवरी 1996 में मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 5 प्रतिशत पर आ गई। 1996-97 में मौद्रिक विस्तार में ढील के बावजूद मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 4.6 प्रतिशत रही क्योंकि राजनीतिक कारणों से ईंधन की कीमतों में कोई वृद्धि नहीं की गई। 1997-98 में खाद्य पदार्थों की कीमतों में केवल 3.0 प्रतिशत की वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति की दर 4.4 प्रतिशत रही।

2000-01 से 2013-14 की अवधि में आठ वर्ष ऐसे थे जब मुद्रास्फीति की औसत वार्षिक दर 5.5 प्रतिशत से भी अधिक रही है। 2000-01, 2004-05, 2006-07, 2008-09, 2010-11

तथा 2012-13 तथा 2013-14 ये सभी वर्ष ऐसे थे जब ईंधन की कीमते अत्यधिक थी । 09 अगस्त 2008 के दिन मुद्रास्फीति की दर 12.8 प्रतिशत के स्तर को छू गई । वही दूसरी ओर 2008-09 के उतरार्द्ध में विश्वव्यापी मंदी के चलते अर्थव्यवस्था में शिथिलता की स्थिति रही । इसके परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति की दर में भी तेज गिरावट हुई और 04 अप्रैल 2009 के दिन यह दर केवल 0.18 प्रतिशत थी । अप्रैल 2009 में मुद्रास्फीति की दर केवल 1.3 प्रतिशत थी जो जून 2009 से अगस्त 2009 के मध्य ऋणात्मक हो गई । परन्तु 2009-10 की अंतिम त्रिमाही में उच्च मुद्रास्फीति का दौर शुरू हुआ । यह दौर अगले दो वर्ष भी जारी रहा और व्यापक वस्तु समूहों में फैला । वस्तुत: थोक कीमत सूचकांक के रूप में खाद्य मुद्रास्फीति दर 2010-11 में 15.6 प्रतिशत के उच्च स्तर पर थी। केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन के नए उपभोक्ता सूचकांक के अनुसार (आधार वर्ष 2012 = 100) जनवरी 2015 'में उपभोक्ता कीमतों में वृद्धि की दर 5.1 प्रतिशत थी जो रिजर्व बैंक द्वारा जनवरी 2015 के लिए लक्षित 08 प्रतिशत तथा जनवरी 2016 के लिए लक्षित 6 प्रतिशत दर से भी कम रही । खाद्य वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि के चलते अक्टूबर 2015 में यह 4.41% के स्तर पर है ।

2. **राजकोषीय समायोजन** :-

आर्थिक संकट जिसका जन्म 1980 के दशक में हुआ का एक मुख्य कारण राजकोषीय अनुशासन में गडबड़ी था जहाँ 1970 के दशक में शुरुआत में सरकार का राजकोषीय घाटा जी.डी.पी. के 04 प्रतिशत से कम स्तर पर था वह 1990 के दशक के प्रारम्भ में बढकर जी.डी.पी. से 12.5% तक पहुँच गया । भुगतान संतुलन तथा मुद्रास्फीति की समस्याओं के समाधान के लिए राजकोषीय समायोजन अति आवशयक है । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार सार्वजनिक व्यय को सख्ती से नियंत्रित करना चाहती थी और कर एवं कर भिन्न राजस्व को बढाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया । 1991 के बाद से व्यक्तिगत आय पर लगाए गए करों की दरों में निरंतर कमी की गई है इसके पीछे मुख्य धरणा यह थी की उच्च कर दरों के कारण से कर-वंचन होता है जबकि इसके विपरीत कम कर दरों की स्थिति में कर का दायरा बढाता है तथा बचतों को बढावा मिलता है और लोग स्वेच्छा से अपनी आय का विवरण देते है । निगम कर की दर , जो पहले बहुत अधिक थी , धीरे –धीरे कम कर दी गई है । अप्रत्यक्ष करों में भी सुधार प्रयास किए जा रहे है जैसे , वस्तु तथा सेवा कर (जी.एस.टी.) ताकि सभी वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए एक सांझे राष्ट्रीय स्तर के बाजार की रचना की जा सके । इस क्षेत्र में सुधारों का एक और घटक सरलीकरण भी है । करदाताओ के द्वारा नियम पालन को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक प्रक्रियाओं को सरल बनाया गया है ।

केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों द्वारा राजकोषीय अनुशासन के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु न केवल राजस्व पर ध्यान केंद्रित किया गया बल्कि सार्वजनिक व्यय को भी नियंत्रित करने के प्रयास नई आर्थिक नीति में अपनाए गए । 1991-92 से सब्सिडी व्यय में कटौती प्रारम्भ की गयी तथा इस प्रक्रिया को आगे भी निरंतर जारी रखने के प्रयास किए गए और निरपेक्ष प्रशासनिक कीमत प्रणाली कायम करने का लक्ष्य सरकारों द्वारा निर्धारित किया गया ।

इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को अपने सार्वजनिक उद्यमों ,विशेषकर राज्य बिजली बोर्डो एवं सड़क परिवहन निगमों की स्थिति सुधारने के लिए प्रोत्साहन देगी । केन्द्रीय सार्वजनिक उद्यमों को मिलने बाले बजट समर्थन (Budgetary Support) हटा लिए जाने का निर्णय लिया गया तथा उन्हें अपनी कुशलता एवं लाभदायकता को उन्नत करने के लिए मजबूत बनाने का प्रयास किया जाना प्रस्तावितकिया गया । यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि भारत में राजकोषीय असंतुलन का प्रधान कारण लोक व्यय में विवेकहीन वृद्धि है । इसलिए राजकोषीय असंतुलन को ठीक करना है तो लोक व्यय को जी.डी.पी. के 25 प्रतिशत के स्तर पर लाना होगा। जबकि यह 2009-10 में 29.1 प्रतिशत के स्तर पर था। अत: लोक व्यय पर नियंत्रण लगाना बहुत आवश्यक है परन्तु यह ध्यान रखने की बात है कि आधारिक संरचना और बुनियादी सामाजिक क्षेत्रों के विकास पर पूँजी व्यय में कटौती न की जाए। अत: सरकार के उपयोग व्यय जैसे प्रतिरक्षा और प्रशासन पर व्यय ,ब्याज के भुगतानो एवं आर्थिक सहायता (Subsidy) भुगतानों में कमी करनी होगी।

केन्द्रीय सरकार ने राजकोषीय समायोजन के लिए जो कार्यक्रम शुरू किया उसके अंतर्गत राजकोषीय घाटे को 1990-91 में जी.डी.पी.के 7.8 प्रतिशत से घटकर 1991-92 में 5.6 प्रतिशत और 1992-93 में 5.3 प्रतिशत पर लाया गया । सरकार ने यह भी घोषणा की कि वह 1990 के दशक के मध्य तक राजकोषीय घाटे को जी.डी.पी. के 3.4 प्रतिशत तक ले आएगी । वास्तव में 1993-94 में राजकोषीय स्थिति एक बार फिर बिगड़ी और केन्द्र सरकार का राजकोषीय घाटा एक बार फिर बढकर जी.डी.पी. का 07 प्रतिशत हो गया। इसके बाद इसमें गिरावट दर्ज की गई। सरकार ने वर्ष 2004 में राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंध (Fiscal Responsibility and Budget Management FRBM) अधिनियम को पारित कर अपनाया । उक्त अधिनियम के अपनाने से अगले कुछ वर्षों तक सरकार राजकोषीय घाटे को नियंत्रित करने में आंशिक रूप से सफल हुई । परन्तु विश्व में अस्थिर आर्थिक हालातों के चलते तथा वर्ष 2008-09 की मंदी के दौर में पुन: राजकोषीय घाटा बढकर 6.0 प्रतिशत के स्तर तक जा पहुँचा। वही वर्ष 2010-11 में 4.9 प्रतिशत तथा 2011-12 में फिर बढकर 5.7% तक के स्तर तक जा पहुँचा। पेट्रोल तथा डीजल के मूल्यों को बाजार प्रणाली द्वारा निर्धारित करने के लिए खुला छोड़ने आर्थिक सहायता का कुछ बोझ कम हुआ जिससे 2012-13 और 2013-14 में लगातार दो वर्षों में कम होते हुए यह क्रमश: 4.9 तथा 4.4 प्रतिशत के स्तर पर आ पहुँचा।

सरकार द्वारा आर्थिक अनुदान पर व्यय, सार्वजनिक सेवाओं की आपूर्ति हेतु छंदम अर्थ सहायता राशि ब्याज के भुगतान ,उपभोग व्यय तथा घरेलु लोक ऋण आदि के वर्तमान स्तर को अभी भी काफी हद तक नियंत्रण तथा नियंत्रित किया जाना अति आवश्यक है अब तक सरकार वास्तव में कठोर सुधारात्मक उपाय अपनाने में असफल रही है । उसने इस कमी को कुछ अन्य सरल तथा अविवेकी उपायों द्वारा पूरा करने की कोशिश की है । उसने विकास कार्यों तथा सामाजिक सेवाओं पर व्यय में कटौती की है। सरकार के विकास कार्यों पर पूँजी व्यय में कटौती से पूँजी निर्माण

की दर में कमी होती है। सामाजिक सेवाओं पर व्यय में कटौती का बुरा प्रभाव अल्पकाल में पता लगा पाना संभव नहीं है परन्तु दीर्घकाल में इसके परिणाम सामने आने स्वाभाविक है।

3. भुगतान संतुलन में समायोजन

विदेशी क्षेत्रक में पहला सुधार विदेशी विनिमय बाजार में किया गया था। 1991में भुगतान संतुलन की समस्या के तत्कालीन निदान के लिए अन्य देशो की मुद्रा की तुलना में रूपये का अवमूल्यन किया गया। इससे देश में विदेशी विनिमय के आगमन में वृद्धि हुई। मार्च 1991 में भारत के पास विदेशी विनिमय कोष की राशि 2.2 अरब डॉलर थी जो दिसम्बर 2012 के अंत में बढकर 295.6 बिलियन डॉलर हो गई। विगत दो दशकों में भुगतान संतुलन संबंधी जो भी नीतियाँ अपनाई गई है वे स्थिरीकरण एवं ढांचागत सुधारों से निर्देशित है। भारत में भुगतान संतुलन की समस्याएं विशेष रूप से इस कारण से उत्पन्न हुई है की प्राय: निर्यात से होने वाली आय, आयतों पर होने वाले व्यय की अपेक्षा कम पड़ जाती है। जिसके चलते निर्यात आय और आयात व्यय के मध्य उत्पन्न यह अंतराल भुगतान संतुलन की स्थिति को बिगाड़ देता है। यह अंतराल जितना अधिक होगा उतनी ही भुगतान संतुलन की स्थिति नाजुक होगी। 1980 के दशक की शुरुआत में व्यापार संतुलन घाटा बहुत ज्यादा था। निर्यात से आय, आयात व्यय के केवल 52.4 प्रतिशत के बराबर थी। 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में थोडा सुधार हुआ और 1990-91 में निर्यात से कुल आय, आयात पर कुल व्यय की 66.2 प्रतिशत रही। यह स्थिति 1991 में रूपये के अवमूल्यन करने से उत्पन्न हुई थी जिसे लंबे समय बनाए रखना संभव नहीं था। अत: विनिमय दर के क्षेत्र में विभिन्न उपाय करना अति आवश्यक हो गया था।

जुलाई 1991 के समय जब रूपये का 18-19 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया। साथ ही विदेशी विनिमय बाजार में रूपये के मूल्य के निर्धारण को भी सरकारी नियंत्रण से मुक्त कराने की पहल की गई। इसके बाद 1992-93 के बजट में उदारीकृत विनिमय दर प्रबंधन प्रणाली (Liberalized Exchange Rate Management System) अपनाई गई। इस प्रणाली में दोहरी विनिमय दर प्रणाली अपनाई गई जिसके तहत 40 प्रतिशत विदेशी विनिमय को सरकारी कीमत पर देना अनिवार्य थी तथा शेष 60 प्रतिशत को बाजार दर पर परिवर्तित किया जा सकता था 1993-94 में बजट में एकीकृत (United) विनिमय दर प्रणाली अपनाई गई। यह बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दर प्रणाली है। इस प्रकार अब भारत में रूपये की विनिमय दर का निर्धारण बाजार की शक्तियों (मांग व पूर्ति) के द्वारा होता है न की सरकारी नीतियों द्वारा परन्तु बाजार में अत्यधिक उतार – चढाव न हो पाए ,इसलिए भारतीय रिजर्व बैंक बाजार में हस्तक्षेप करता रहता है। इस प्रकार भारत में विनिमय दर प्रणाली प्रबंधित तिरने की प्रणाली (Managed Float Regime) है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के अनुसार ,यह विनिमय दर निर्धारण प्रणाली समय की कसौटी पर खरी उतरी है क्योंकि इसमें लचीलेपन (Flexibility) तथा व्यावहारिकता (Pragmatism) का सही मिश्रण है।

29.3.2 संरचनात्मक /ढाँचागत सुधार:-

जैसे स्थायित्वकारी उपाय अल्पकालीन प्रकृति के थे ,वही दूसरी ओर संरचनात्मक सुधार दीर्घकालीन उपाय है, जिनका उद्देश्य अर्थवयवस्था की कुशलता को सुधारना तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रोंको की अनम्यताओं को दूर के भारत की अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा क्षमता को संवर्धित करना है। संक्षेप में जुलाई 1991 से अर्थव्यवस्था के पूर्ति पक्ष को ठीक करने के लिए जो सुधार किये गए उन्हें संरचात्मक/ढांचागत सुधार कहा गया। इस दृष्टि से सरकार ने अनेक नीतियाँ प्रारम्भ की। मौटे तौर पर इसके तीन उपवर्ग है :-उदारीकरण निजीकरण और वैश्वीकरण जिन्हें संक्षेप में **एल पी जी** सुधार के नाम से भी जाना जाता है। वस्तुत: पहली दो नीतिगत रणनीतियाँ है। अंतिम नीति को इन दो रणनीतियों का परिणाम कहा जा सकता है।

29.4 उदारीकरण

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की रणनीति को अपनाकर पूंजीवाद और समाजवाद दोनों की विशेषताओं को अपनाते हुए पंचवर्षीय योजनाओं की रणनीति को अपनाया। आर्थिक गतिविधियों के नियमन के लिए सरकार द्वारा कई नियम-कानून बनाए तथा अपनाए गए जिससे की सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में उचित सामंजस्य स्थापित हो सके तथा कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सके ,परन्तु कालान्तर में यही कानून तथा नियम संवृद्धि और विकास के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा बन गए। उदारीकरण इन्ही प्रतिबंधो को दूर कर अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को 'मुक्त' करने की नीति थी। जैसे कि हम पूर्व में चर्चा कर चुके है कि आर्थिक सुधारो की सुगबुगाहट 1980 के दशक में ही प्रारम्भ हो चुकी थी जैसे औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली आयात-नियात नीति ,तकनीकी उन्नयन, राजकोषीय और विदेशी निवेश नीतियों में उदारीकरण आदि। किन्तु ,1991 में नीतियाँ कही अधिक व्यापक थी जैसे औद्योगिक नियंत्रणों को समाप्त करना, वित्तीय क्षेत्र में सुधार, कर सुधार, व्यापार तथा पूंजी प्रवाह आदि जिन पर 1991 के बाद से विशेष ध्यान दिया गया।

1. औद्योगिक नियंत्रणों को समाप्त करना (Industrial Deregulation) :-

भारत में घरेलू आर्थिक क्रियाओ पर आयोजन काल के प्रारम्भिक चार दशकों में अनेक भौतिक नियंत्रण रहे है। जिनमे सबसे पहले (क) औद्योगिक लाइसेन्स की व्यवस्था थी, जिसमे उद्यमी को एक फर्म स्थापित करने ,बंद करने या उत्पादन की मात्रा का निर्धारण करने के लिए किसी न किसी सरकारी विभाग या अधिकारी से अनुमति प्राप्त करनी होती थी। इस नियंत्रण का उद्देश्य था नए उपक्रमों के प्रवेश और पुराने उपक्रमों के विस्तार पर नियंत्रण रखना था। दूसरा (ख) अनेक उद्योगों में तो निजी उद्यमियों का प्रवेश ही निषिद् था वो केवल सार्वजनिक तथा लघु क्षेत्रों के लिए आरक्षित थे। तीसरा (ग) विभिन्न औद्योगिक उत्पादों पर कीमत एवं वितरण सम्बन्धी नियंत्रण

इत्यादि । जगदीश भगवती और पद्म्मा देसाई ने इस नियंत्रण व्यवस्था की शुरू से ही काफी आलोचना की है।[4]

यह व्यापक तौर पर स्वीकार किया जाता है कि औद्योगिक नियमन की अनेक रीतियो के परिणाम स्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में कार्यकुशलता के स्तर पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ा। अत: 1991 में ढांचागत सुधारों का व्यापक कार्यक्रम आरम्भ होने से पहले ही 1980 के दशक में ही विभिन्न नियंत्रणों में ढील दी गई थी। परन्तु जुलाई 1991 में घोषित नई औद्योगिक नीति में औद्योगिक अर्थव्यवस्था पर नियंत्रणों मर भरी कमी कर अनेक उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया। अआब केवल 05 उत्पाद वर्गों को छोडकर अन्य सभी वस्तुओं के उत्पादन के लिए लाइसेंस की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया है।

ये 5 उत्पाद वर्ग निम्न है :-

(i) एल्कोहल युक्त पेय पदार्थों का आसवन एवं निर्माण

(ii) तम्बाकू के सिगार एवं सिगरेट तथा तम्बाकू से बनी अन्य मादक वस्तुयें

(iii) इलेक्ट्रानिक एयरोस्पेश तथा रक्षा साज सामान

(iv) औद्योगिक विस्फोटक तथा

(v) जोखिम वाले रसायन।

इसके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 1956 की औद्योगिक नीति में आरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से हटाकर 1991 की औद्योगिक नीति में 08 कर दी गई थी जो अब केवल 02 रह गई है जिसमे प्रथम उद्योग :- परमाणु ऊर्जा तथा दूसरा उद्योग है:- रेल परिवहन।

उल्लेखनीय है कि औद्योगिक लाइसेंस लेना निम्नाकित अवस्थाओं में आवश्यक है:

(i) अनिवार्य लाइसेंसिंग के अंतर्गत आने वाले किसी मद या वस्तु का निर्माण (उपरोक्त 05 मदों में से) करना।

(ii) यदि प्रोजेक्ट 10 लाख से अधिक जनसंख्या (1991 की जनगणना) वाले शहर के पास प्रतिबंधात्मक सीमा में आ रहा हो।

(iii) जब कोई मद जिसका उत्पादन या विनिर्माण लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित हो और उसका विनिर्माण लघु क्षेत्र द्वारा नहीं हो।

इस प्रकार उदारीकरण के इस दौर ने अब लाइसेंसिंग नीति को लगभग समाप्त कर दिया। अब उद्योगों द्वारा उत्पादित अनेक वस्तुएं भी अब अनारक्षित श्रेणी में आ गई है। 30 जुलाई 2010 तक केवल 18 उत्पाद ही इसके लिए आरक्षित रह गए। अनेक उद्योगों को अब बाजार में कीमतों के निर्धारण की अनुमति मिल गई है।

---

[4] Jagdish N. Bhagwati and Padma Desai, India: planning for Industrialisation (Landon 1970), P-499

2. वित्तीयक क्षेत्रक सुधार (Financial Sector Reforms):-

वित्त के क्षेत्रक में व्यवसायिक और निवेश बैंक, स्टॉक एक्सचेंज तथा विदेशी मुद्रा बाजार जैसी वित्तीय संस्थाएं सम्मिलित है। भारत में वित्तीय क्षेत्रक का नियंत्रण रिजर्व बैंक का दायित्व है। भारतीय रिजर्व बैंक के विभिन्न नियम और कसौटियों के माध्यम से ही बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थानों के कार्यों का नियमन होता है। रिजर्व बैंक ही तय करता है कि कोई बैंक अपने पास कितनी मुद्रा जमा रख सकता है । यही ब्याज की दरों को नियत करता है । विभिन्न क्षेत्रको को उधार देने की प्रकृति इत्यादि को भी यही तय करता है । वित्तीय क्षेत्रक सुधार नीतियों का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि रिजर्व बैंक को इस क्षेत्रक के नियंत्रक की भूमिका से हटाकर इस क्षेत्रक के एक सहायक की भूमिका तक उसे सीमित कर दिया गया। जिसका अर्थ है कि वित्तीय क्षेत्रक रिजर्व बैंक से सलाह किए बिना ही कई मामलों में अपने निर्णय लेने में स्वतन्त्र हो जाएगा।

वित्तीय क्षेत्रक में सुधार को ध्यान में रखते हुए तत्कालीन केन्द्र सरकार ने एम. नरसिंहम की अध्यक्षता में देश की वित्तीय व्यवस्था पर विचार करने हेतु एक समिति का गठन किया गया। नरसिंहम समिति ने अपनी रिपोर्ट को संसद में दिसम्बर, 1991 में प्रस्तुत किया तथा सरकार ने इसकी अधिकतर सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया और उन्हें ही वित्तीय क्षेत्रक के सुधारों का आधार माना गया है । लेकिन इसी दौरान घरेलू आर्थिक एवं संस्थागत परिदृश्य में भारी परिवर्तन हो गए तथा वित्तीय सेवाओं के भूमंडलीय (Global) एकीकरण की दिशा में प्रगति हुई है । अतः बैंकिंग प्रणाली को बदलते परिदृश्य में प्रभावी ढंग से प्रतियोगी होने के लिए सक्षम होना आवश्यक हो गया। सरकार ने इस बात को ध्यान में रखते हुए एम. नरसिंहम की अध्यक्षता में बैंकिंग क्षेत्रीय सुधारों के विषय में एक समिति का गठन किया जिसने अप्रैल 1998 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। जिससे बैंकिंग प्रणाली में सुधार हेतु स्वीकार का लिया गया। वित्तीय क्षेत्रक में सुधार हेतु निम्नलिखित कार्य किए गए है:-

1. वैधानिक तरलता अनुपात और नकद कोष अनुपात पर उचित सामंजस्य स्थापित करते हुए इन्हें सन्तुलित स्तर पर स्थिर करने का प्रयास किया गया। 1980 के दशक में वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) तथा नकद कोष अनुपात (CRR) निरंतर बढ़ते गए थे। रिजर्व बैंक द्वारा इन्हें ऊपर उठाने का मुख्य उद्देश्य बजटीय घाटों से उत्पन्न मुद्रास्फीतिक दबावों पर रोक लगाना था। लेकिन इससे बैंकों की लाभ प्रदत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ा। वित्तीय क्षेत्र में सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत पिछले कुछ वर्षो में SLR और CRR को कई चरणों में कम किया गया है । 25 अक्टूबर, 1997 को प्रभावी वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) 25 प्रतिशत कर दिया गया 08 नवम्बर 2008 को इसे घटाकर 24 प्रतिशत कर दिया गया। नवम्बर 2009 मे पुनः बढ़ाकर एक बार फिर 25 प्रतिशत कर दिया गया, परन्तु 18 दिसम्बर 2010 से एक बार फिर 24 प्रतिशत कर दिया गया। वर्तमान में वैधानिक तरलता अनुपात 21.5 प्रतिशत है । नकद कोष अनुपात (CRR) 14 जून 2003 को 4.5 प्रतिशत कर दिया गया। लेकिन अर्थव्यवस्था में तरलता की मात्रा को नियंत्रित करने के उद्देश्य से इसमें नियमित रूप से बढ़ाते हुए 30 अगस्त 2008 में 09 प्रतिशत के स्तर पर पहुँचा दिया गया। 2008-09 के उत्तरार्द्ध में विश्व-व्यापी आर्थिक मंदी के कारण देश में उत्पन्न आर्थिक

शिथिलिता की स्थिति से निपटने के उद्देश्य से इसे 17 जनवरी 2009 को इसे कम करके 5.0 प्रतिशत के स्तर पर निर्धारित कर दिया। अब यह 4.0(31 March, 2017) प्रतिशत के स्तर पर है।

2. रिजर्व बैंक ने आय की पहचान (Income Recognition) परिसम्पत्तियों के वर्गीकरण अशोध्य ऋणों(bad debits) के लिए प्रावधान और पूँजी पर्याप्तता के बारे में नए विवेकपूर्ण मानदण्ड निर्धारित किए है । बेसल समिति द्वारा निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप न्यूनतम पूंजी मानदंड तय किए गए है। इसके तहत बैंकों को अपनी पूंजी और जोखिम भारित परिसंपत्तियों के बीच अनुपात 08 पतिशत रखना आवश्यक तय किया गया जिसे बैंकिंग क्षेत्रीय सुधार समिति की सिफारिशों पर बढाकर 09 प्रतिशत कर दिया गया। मार्च 2014 के अंत में बैंकों की पूंजी पर्याप्तता अनुपात 13.0 प्रतिशत तक पहुँच गया। अब सभी बैंकों की पूंजी पर्याप्तता अनुपात न्यूनतम वैधानिक आवश्यकता 09 पतिशत से काफी अधिक है

3. जो बैंक अप्रैल 1992 तक पूंजी पर्याप्तता मानदंडो और विवेकपूर्ण लेखा मानको को प्राप्त करने में सफल हो गए थे उन्हें रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना ही नवीन शाखा खोलने का अधिकार दिया गया। बैंक अब अपने शाखातंत्र का विवेकीकरण कर सकते है। इस दृष्टि से वे शाखाओ का फिर से स्थान निर्धारित कर सकते है, विशिष्ट सेवा प्रदाता शाखा खोल सकते है तथा नियंत्रण कार्यालयों की स्थापना कर सकते है, इत्यादि।

4. रिजर्व बैंक ने निजी तथा विदेशी क्षेत्र में बैंक स्थापित करने के लिए कुछ निदेशक सिद्धान्तों की घोषणा की है । ये बैंक वित्तीय दृष्टि से सक्षम होने चाहिए और इन्हें साख के केन्द्रीयकरण और औद्योगिक गृहों के साथ वित्तीय मामलो में आपसी फंसाव से बचना चाहिए। इसके अतिरिक्त इन बैंकों को प्राथमिकता क्षेत्रों के लिए निर्धारित साख के लक्ष्यों को अन्य बैंकों की तरह ही प्राप्त करना होगा।

5. बैंक ऋणों पर 1989-90 में लगभग 20 विभिन्न ब्याज दरें होती थी जिन्हें 1994-95 के वित्तीय वर्ष से घटाकर 02 कर दिया गया। ब्याज दर ढाँचे को एकीकृत करने के इस प्रयास का उद्देश्य बैंकिग प्रणाली में अन्योन्य अर्थ – सहायता (Cross- Subsidy) के अंश को कम करना है।

6. रिजर्व बैंक के उप- गवर्नर की अध्यक्षता में वित्तीय निरीक्षण के लिए नए बोर्ड का गठन से रिजर्व बैंक की निरीक्षण व्यवस्था को ज्यादा समर्थ बनाया गया है । इस बोर्ड का प्रयास होगा कि साख प्रबंध, परिसम्पति वर्गीकरण, आय की पहचान (income recognition), पूंजी पर्याप्तता पूर्वोपाय और राजकोष प्रचालन से संबंधित नियमों को विधिवत लागू किया जाए।

7. बैंकों के प्रबंध और उनकी निष्पति को सुधारने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक और सार्वजनिक बैंकों के बीच मध्य समझौते किए गए है। इस दृष्टि से प्रबंध सूचना प्रणाली और आन्तरिक लेखा- परीक्षण एवं नियंत्रण तंत्रों का काफी महत्त्व है।

8. बैंकों तथा दूसरे वित्तीय संस्थानों की बीते वर्षों में ऋण- वसूली असंतोषजनक रही है। अतः 1993 में एक अधिनियम बनाया गया है जिसके अंतर्गत ऋणों को सहज बनाने के लिये 'विशेष वसूली अधिकरण' (Special Recovery Tribunals) की स्थापित किए गए है।
9. अधिकतम अनुज्ञेय (Permissible) बैंक वित्त के निर्धारण के लिए निर्देशित सिद्धांतों को अधिक लचीला बना दिया गया है। अब बैंकों को ऋणीयों की कार्यशील पूंजी सम्बन्धी और स्थानीय आवश्यकताओं के प्रति उचित ढंग से व्यवहार करने के विषय में ज्यादा स्वतंत्रता होगी।
10. बैंकों में विदेशी पूंजी की भागीदारी की सीमा 50 प्रतिशत तक कर दी गई।
11. विदेशी निवेश संस्थाओं (एफ.आई.आई.) तथा व्यापारी बैंकों, म्युचुचल फंड और पेंशन कोष आदि को भी अब भारतीय वित्तीय बाजारों में निवेश की अनुमति मिल गई है।

3. कर सुधार (Taxation Reforms)

इन सुधारों का सम्बन्ध सरकार की कराधान और सार्वजनिक व्यय की नीतियों से है, जिन्हें सामूहिक रूप से राजकोषीय नीतियाँ भी कहा जाता है। भारत सरकार ने 29 अगस्त, 1991 को प्रत्यक्ष व् अप्रत्यक्ष करों की संरचना का अध्ययन करने के लिए राजा जे. चैलया की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया था। चैलया समिति ने अपनी रिपोर्ट में कर प्रणाली के सुधार के लिए व्यापक सुझाव दिए है। प्रत्यक्ष करों के क्षेत्र में आय-व्यय के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण सुझाव कर सीमा से छूट की राशि को बढ़ाना, कर दरों में कमी करना तथा कई कर रियायतो को समाप्त करना है। चैलया समिति की सिफारिशों बुनियादी दर्शन यही है कि आयोजन काल के शुरू चार दशकों में संकीर्ण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कर प्रणाली में जो अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी उसे तोडना और कर व्यवस्था को कार्यकुशल बनाकर सरकार के लिए पर्याप्त मात्रा में आय प्रदान करने वाले तंत्र के रूप में तैयार करना। सरकार ने इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया, और उसने चैलया सिफारिशों को विभिन्न चरणों में लागू करने का निर्णय कर लिया जो कि निम्नलिखित है :-

(i) प्रत्यक्ष कर (Direct Taxes) :-

आय कर के ढाँचे का पुनर्गठन किया गया है। नई आय –कर व्यवस्था में कर की दरे नीची है , कर निर्धारण के लिए अब तीन स्लैब (Slabs) है , कर –मुक्त आय की सीमा ऊँची है और बचतो से जुडी हुई कर से छूटें थोड़ी है। व्यावसयिक फर्मो की आय को कराधान के युक्ति संगत बनाया गया है और इस दृष्टि से अब पंजीकृत और गैर-पंजीकृत फर्मो में भेद नहीं किया जाता। साझेदारी फर्मो की आय पर दर कर की दर घटाकर 30 प्रतिशत कर दी गई है। निगम कर की व्यवस्था में अभी विशेष सुधार नहीं किए गए है लेकिन इस कर की दर को भी घटाकर 30 प्रतिशत कर दिया गया है। पूंजी-लाभ कर की व्यवस्था में भी ज्यादा सुधार नहीं किए गए है। लेकिन इतना हुआ है कि अब केवल वास्तविक मूल्य वृद्धि के कारण होने वाले पूंजी लाभ पर ही कराधान है। तात्पर्य यह है कि अब मुद्रास्फीति के कारण परिसम्पति की लागत में समायोजन करने के बाद ही पूंजी लाभ मालूम किया जाता है। दीर्घावधि पूंजी-लाभ पर अब समान-दर से ही कर लगाया जाता है। अब सम्पति

कर में भी सुधार किए गए है । अब सम्पति कर का आधार सम्पति न होकर अनुत्पादक परिसम्पति है।

(ii) परोक्ष कर (Indirect taxes):- इस क्षेत्र में सुधारों के लिए सीमा शुल्क को प्रारम्भ से ही नाजुक क्षेत्र माना गया है । अतः इनमें पिछले कुछ वर्षो में भारी कमी की गई है । आयात शुल्क की ऊँची दरों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से 2007-08 के बजट में आयात शुल्क की सबसे ऊँची दर 10 प्रतिशत कर दी गई है । सीमा शुल्क व्यवस्था और कराधान व्यवस्था को सरल बनाने के उद्देश्य से पृथक पूरक शुल्क (Auxiliary duty) को मुख्य सीमा शुल्क में ही मिला दिया गया है । उत्पादन शुल्क सुधार में जिन बातों का ध्यान रखा गया है उनमें:- शुल्क दरों को सरल बनाना, आम उपभोग की वस्तुओं पर कर में रियायत देना, घरेलू पूँजी -पदार्थ उद्योग की सहायता करना जिससे उनकी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी शक्ति में सुधार हो, मांग में मंदी से प्रभावितउद्योगों की सहायता करना और लघु उद्योगों को राहत देना। 2000-01 में उत्पादन शुल्क में विवेकीकरण करने की दृष्टि से एक ही दर पर केन्द्रीय मुल्य संवर्धन कर (CENVAT) लगाया गया।

1 अप्रैल 2005 से सभी राज्यों/ संघ राज्य क्षेत्रों ने वैट लगाना शुरू कर दिया है । इस कर की मूलतः दो दरें हैः- 04 प्रतिशत और 12.5 प्रतिशत । इसके अलावा, एक छूट प्राप्त श्रेणी है कुछ खास मदों के लिए 01 प्रतिशत की विशेष दर है । वैट लागू करने से राज्यों को जो हानि हुई है, केन्द्र सरकार ने उसकी भरपाई के लिए क्षतिपूर्ति पैकेज भी राज्यों को वितरित किए है ।

(iii) सेवा कर (Service Tax) :- सेवा कर पहली बार 1994-95 में शुरू किया गया जब तीन सेवाओं (टेलीफोन, साधारण बीमा और शेयर दलाली) पर इसे लगाया गया । समय के साथ और सेवाओं को भी इस कर में शामिल किया जाता रहा है । 2015-16 के बजट में सेवाकर की दर 12 प्रतिशत से बढ़ाकर 14 प्रतिशत कर दी गई है । दिसम्बर 2015 में इसे बढ़ाकर 14.5 प्रतिशत कर दिया गया था। वर्ष 2013-14 में केन्द्र सरकार के कुल कर राजस्व में सेवा कर का हिस्सा 13.6 प्रतिशत था जबकि इसी अवधि में जी.डी.पी. सेवा क्षेत्र का 59 प्रतिशत हिस्सा था इसे देखते हुए सेवा कर ओर अधिक विस्तार किया जाना अपेक्षित है ।

(iv) केन्द्रीय बिक्री कर सुधार (Central Sale Tax; Reforms) :- आमतौर पर यह माना गया है कि क्योंकि केन्द्रीय बिक्री कर मूल-आधारित (Origin –Based) छूट न देने वाला (non-rebate able) कर है इसलिए यह वैट की अवधारणा के साथ मेल नहीं खाता है और इसे समाप्त करने की आवश्यकता है । राज्यों की अधिकार प्राप्त समिति में विचार-विमर्श के बाद अब इसको एक चरणबद्ध तरीके से समाप्त करने की कार्य-योजना तैयार कर ली गई है । इसके अन्तर्गत 01 अप्रैल 2007 से केन्द्रीय बिक्री की दर को 04 प्रतिशत से प्रति वर्ष घटाते हुए चरणबद्ध तरीके से पूर्णतया समाप्त करने का एक प्रावधान है । केन्द्रीय बिक्री कर को समाप्त करने में एक महत्वपूर्ण मुद्दा ऐसी समाप्ति के बाद राज्यों को होने वाली राजस्व हानि की क्षतिपूर्ति से संबंधित है । इसके लिए केन्द्रीय सरकार ने एक क्षतिपूर्ति योजना तैयार की है ।

(v) माल एवं सेवा कर शुरू करने की योजना (Plan to introduce Goods and Service Tax):- केन्द्रीय बिक्री कर (CST) के समाप्त होने पर वैट की संकल्पना के आधार पर 01 अप्रैल, 2011 से राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त माल एवं सेवा कर (G.S.T.) आरंभ करने की योजना थी परन्तु राजनीतिक गतिरोध के चलते जी.एस.टी. बिल अभी तक संसद में पास नहीं हो सकता है । इस कर के अन्तर्गत पिछले लेन-देन के हर चरण पर अदा किए जा चुके कर पर आगत कर क्रेडिट (input tax credit) मुहैया कराएगा। इसमें वस्तुओं एवं सेवाओं पर लगे अनेक राज्य और केन्द्रीय स्तर के परोक्ष करों को शमिल करके एक तर्कसंगत व्यवस्था बनाने का प्रयास जाएगा। आशा करते है कि यह वर्ष 2017 के अंत तक यह कर जम्मु व कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू किया जा सकेगा ।

4. व्यापार और पूँजी प्रवाह सुधार (Trade and Capital Flows Reforms)

जुलाई 1991 से सरकार ने व्यापार क्षेत्र में अनेक सुधार कार्य-क्रम लागू किए है जिनसे भारतीय अर्थव्यवस्था, विश्व अर्थव्यवस्था के साथ ज्यादा अच्छी तरह से जुड़ सकेगी। इन सुधारों में जुलाई 1991 में रूपये का अवमूल्यन और इसके उपरान्त विश्व के विभिन्न औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों की मुद्राओं के साथ रूपये की विनिमय दर में गिरावट; रूपये की पहले व्यापार खाते में और फिर भुगतान सन्तुलन के चालू खाते में पूर्ण परिवर्तनीयता आयातों का उदारीकरण, सीमा शुल्क दरों में कमी और निर्यातों को प्रोत्साहन देने के लिए विभिन्न उपाय विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

जुलाई 1991 से पूर्व अनेक वस्तुओं के आयात और निर्यात सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों के द्वारा ही होते है । लेकिन सुधार अवधि में काफी वस्तुओं के आयात और निर्यातों पर से ये प्रतिबन्ध हटा लिए गए है । हाल के वर्षो में अनेक वस्तुओं के आयात और निर्यात पर सरकारी एजेन्सियों के एकाधिकार की समाप्ति विदेशी क्षेत्र में उदारीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है । इसके अलावा, निर्यात प्रोत्साहन के लिए बहुत से कदम उठाए गए है जिनमें प्रमुख कदम हैः कृषि तथा उससे सम्बद्ध क्षेत्रों से निर्यात संवर्धन के लिए निर्यात उन्मुख इकाइयों की स्थापना, सेवा क्षेत्र के लिए पूँजीगत माल निर्यात संवर्धन योजना को लागू करना, निर्यात गृहो । व्यापार गृहों को मान्यता देने के लिए सरल मानदण्ड निर्धारित करना, निर्यात प्रोसैसिंग क्षेत्रों के कार्यक्षेत्र को विस्तृत करना, विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना करना, इत्यादि। भारतीय निर्यातों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के लिए भी बहुत से कदम उठाए गए है।

सरकार ने विदेशी क्षेत्र में सुधारों के अन्तर्गत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के रूप में विदेशी पूँजी के अन्तःप्रवाह को बढ़ावा देते हुए उदारीकरण को अपनाया है । इस सम्बन्ध में किए गए महत्वपूर्ण उपाय हैः-

1. 51 प्रतिशत तक विदेशी ईक्विटी भागीदारी और ऊँची प्राथमिकता वाले उद्योगों में विदेशी प्रौद्योगिकी सहयोग का स्वतः अनुमोदन (automatic approval) होगा।
2. सेवा क्षेत्रों में 51 प्रतिशत तक ईक्विटी भागीदारी की स्वीकृति प्रदान करना।

3. प्रौद्योगिकी चयन में लोच पैदा करने की दृष्टि से प्रौद्योगिकी अंतरण को ईक्विटी निवेश से अलग करना।
4. उन सभी पूँजीगत वस्तुओं के आयातों के लिए स्वतः अनुमोदन देना जब विदेशी विनिमय का प्रवाह विदेशी ईक्विटी के रूप में हो।
5. विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम (FERA) में संशोधन द्वारा इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाली कम्पनियों और दूसरी अन्य भारतीय कम्पनियों को परिचालन दृष्टि से समान स्तर पर ले आना। विदेशी कम्पनियाँ अब अपने ट्रेड मार्क इस्तेमाल कर सकती है और जन-साधारण से राशि प्राप्त कर सकती है तथा मुनाफे को स्वदेश भेज सकती है । तकनीकी अथवा प्रबंधकीय सलाहकार के रूप में नियुक्ति स्वीकार कर सकती है।

29.5 निजीकरण (Privatisation)

इसका तात्पर्य है, किसी सार्वजनिक उपक्रम के स्वामित्व या प्रबंधन का सरकार द्वारा त्याग। सरकारी कम्पनियों को निजी क्षेत्रक की कम्पनियों में दो प्रकार से परिवर्तित किया जा सकता हैः (क) सरकार का सार्वजनिक कम्पनी के स्वामित्व और प्रबंधन से बाहर होना तथा (ख) सार्वजनिक क्षेत्रक की कम्पनियों को सीधे बेच दिया जाना।

किसी सार्वजनिक क्षेत्रक के उद्यमों द्वारा जनसाधारण को इक्विटी की बिक्री के माध्यम से निजीकरण को विनिवेश कहा जाता है । सरकार के अनुसार, इस प्रकार की बिक्री का मुख्य ध्येय वित्तीय अनुशासन बढ़ाना और आधुनिकीकरण में सहायता देना था। साथ यह भी अपेक्षा की गई थी कि निजी पूँजी और प्रबंधन क्षमताओं का उपयोग इन सार्वजनिक उद्यमों के निष्पादन को सुधारने में प्रभावोत्पादक सिद्ध होगें। सरकार को यह भी आशा थी कि निजीकरण से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अन्तर्वाह को भी बढ़ावा मिलेगा। निजीकरण की प्रक्रिया को सार्वजनिक उपक्रमों में सुधार के रूप में देखा जा सकता हैः

1. सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार (Public Sectors Reforms) :-

सार्वजनिक क्षेत्र के विषय में यह सोचा गया था कि यह स्वपोषित (Self-Sustained) आर्थिक संवृद्धि के इंजन के रूप में काम करेगा। यहीं नहीं, वह औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी विकास के लिए भी महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करेगा। इन भूमिकाओं को पूरा करने के लिए यह आवश्यक था कि सार्वजनिक क्षेत्र समुचित मात्रा में निवेश के लिए पूँजी-साधन उत्पन्न करे । इसमें सन्देह नहीं है कि औद्योगिक आधार के विस्तार में सार्वजनिक क्षेत्र ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । औद्योगिक ढ़ांचो मे विविधता पैदा करने की दृष्टि से भी सार्वजनिक क्षेत्र का बहुत योगदान है । तथापि और अधिक विस्तार के लिए सार्वजनिक क्षेत्र पर्याप्त मात्रा में आन्तरिक साधन जनित करने में असमर्थ रहा है जिसका परिणाम यह हुआ है कि यह क्षेत्र आर्थिक संवृद्धि के लिए एक बड़ी बाधा बन गया है । ढ़ांचागत सुधारों के अन्तर्गत सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों को ज्यादा प्रबंधकीय स्वायत्तता देने का निर्णय लिया है जिससे इनके लिए कुशलतापूर्वक काम कर पाना संभव हो। सार्वजनिक उपक्रमों

की कार्यविधि में सुधार लाने के लिए उसके साथ निजी क्षेत्र को प्रतियोगिता करने का अवसर दिया जाएगा।

इसके अलावा कुछ चुने हुए उद्योगों में आंशिक रूप से ईक्विटी विनिवेश का कार्यक्रम अपनाया गया है जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक उद्यमों के शेयर वित्तीय संस्थाओं, निजी क्षेत्र तथा आम जनता को बेचे जा रहे है । इस नीति के अन्तर्गत 1991-92 से 15 अप्रैल 2015 तक सार्वजनिक उद्यमों के शेयरों की बिक्री से सरकार को कुल 1,78,729 करोड़ रूपये की राशि प्राप्त हुई है । प्रारम्भ में सरकार का यह कहना था कि केवल उन सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के शेयर बेचे जाएंगें जो हानि उठा रही है तथा बेहतर निष्पादन करने वाली इकाइयों को और अधिक प्रबंधकीय स्वायत्तता देकर उन्हें विकास के अधिक अवसर प्रदान किए जांएगें ताकि वे विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धा कर सकें। परन्तु वास्तव मे इस तरह के प्रयास नहीं किए गए। सरकार द्वारा सार्वजनिक उद्यमों के शेयर बेचने का एकमात्र उद्देश्य इन शेयरों की बिक्री से प्राप्त राशि द्वारा बजट घाटों का पूरा करना रहा है ।

29.6 वैश्वीकरण (Globalisation)

वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों का परिणाम है । यद्यपि वैश्वीकरण किसी अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण के रूप में जाना जाता है, जो एक जटिल परिघटना है । सरल शब्दों में, वैश्वीकरण से आशय है कि भारतीय अर्थव्यवस्था को वस्तु, सेवा, पूँजी और निवेश के सन्दर्भ में शेष विश्व की अर्थव्यवस्था के लिए खोलना, ताकि वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं के समेकन के जरिए एक भूमण्डलीकृत अर्थव्यवस्था आकार ग्रहण कर सकें और भारत के आर्थिक हितों को सुनिश्चित किया जा सकें। इसके तहत विनिमय-दर को चरणबद्ध तरीके से बाजार बनाने की कोशिश की गई और चरणबद्ध तरीके से रूपये की परिवर्तनीयता की ओर कदम बढ़ाया गया। पूँजी के अंत-प्रवाह एवं बर्हिप्रवाह के सन्दर्भ में धीरे-धीरे छूटें प्रदान की गई। विदेशी व्यापार पर आरोपित मात्रात्मक प्रतिबन्धों को समाप्त कर गुणात्मक प्रतिबन्धों में ढ़ील दी गई।विस्तृत अर्थ में वैश्वीकरण के अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक और भौगोलिक सीमाओं के अतिक्रमण की गतिविधियों और नेटवर्क का सृजन होता है । वैश्वीकरण ऐसे संपर्क सूत्रों की रचना का प्रयास है, जिससे मीलो दूर हो रही घटनाओं के प्रभाव भारत के घटनाक्रम पर भी स्पष्ट दिखाई देने लगे । यह समग्र विश्व को एक बनाने या सीमायुक्त विश्व की रचना करने का प्रयास है ।

29.7 आर्थिक सुधारों का मूल्यांकन (An Appraisal of Economic Reforms):-

भारत में आर्थिक सुधार जुलाई 1991 में कांग्रेस सरकार द्वारा जिसके प्रधानमंत्री श्री पी.वी.नरसिम्हा राव थे, लागू किए गए । राजनैतिक दलों में आर्थिक सुधारों के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में लगभग एकमत थे । सुधार प्रकिया ने 25 वर्ष पूरे कर लिए है और यह समय अवधि इतनी छोटी नहीं कि सुधार प्रक्रिया के प्रभाव का मूल्यांकन न किया जा सके । अतः सुधार प्रक्रिया की

उपलब्धियां और खामियों का पुनर्निरीक्षण करना चाहिए ताकि यह सोचा जा सके कि क्या देश सही दिशा में चल रहा है । अन्यथा, इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि 1990 के दशक में चलायी गई सुधार-प्रक्रिया में सुधार होना चाहिए । समष्टि आर्थिक स्थिरीकरण तथा ढांचागत दोनों प्रकार के सुधारों के मिले-जुले प्रभाव सामने आए है जिन्हें हम निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत समझा सकते है :-

1. **सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि दर:-** इसमें संदेह नहीं है कि आर्थिक सुधार के परिणाम स्वरूप सकल घरेलु उत्पाद (G.D.P.) की सापेक्षतः उच्च वृद्धि प्रोन्नत हुई । पहले दो वर्षों अर्थात् 1991-92 और 1992-93 की आरंभ कठिनाइयों के पश्चात 1993-94 से 1997-98 के दौरान वृद्धि दर 7 प्रतिशत थी । इसके बाद वर्ष 2004-05 से 2009-10 की अवधि में 8.7 प्रतिशत तक पहुँच गई । 1991-1992 से 2013-2014 तक की 22 वर्षों की अवधि में यह वृद्धि दर 6.3 प्रतिशत वार्षिक रही है जो अभिनंदनीय है ।
2. **अन्तर्राष्ट्रीय साख में वृद्धि:-** अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का भारतीय अर्थव्यवस्था में विश्वास बढ़ा है । इसी वजह से भी विदेशी पूंजी का भारत में अंतर्गमन तेजी से बढ़ा है जिससे हमारे विदेशी विनिमय कोष 18 मार्च 2016 तक 355.95 अरब डालर हो गए है । पहले विदेशी विनिमय के अभाव की समस्या थी बाद में इसके आधिक्य की समस्या बन गयी थी । 2001-02 से 2003-04 तक तीन वर्षों में चालू खाते में आधिक्य की स्थिति रही थी , लेकिन हाल में चालू खाते में घाटा रहने से आर्थिक समस्या जटिल हो गई है , क्योंकि उसकी वितीय व्यवस्था विदेशी पूंजी के आगमन से करनी होती है, जिसका प्रवाह आवश्यकता से कम हो रहा है ।
3. **भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलेपन में वृद्धि:-** उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के रूप में प्रारंभ आर्थिक सुधारों की अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ाव बढ़ा है । वस्तुओं व सेवाओं को मिलाने पर इनका अनुपात जी.डी .पी. में 2001-01 में 29.2 प्रतिशत से बढ़कर 2006-07 में 48 प्रतिशत हो गया था । इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में काफी खुलापन आया है । हाल में रुपये की डॉलर में विनिमय दर लगभग 45 रुपये प्रति डॉलर से 25 मार्च 2016 को 66 रुपये प्रति डॉलर के स्तर तक जा पहुंची है जिसके चलते एक और भारत के आयात महंगे हो गए है जबकि दूसरी और वैश्विक बाजारों में मंदी के कारण भारत के निर्यात वर्धन के रूप में वांछित लाभ नहीं मिल पाया है । इस प्रकार विनिमय दर के मूल्य ह्रास से हमारी कठिनाई बढ़ी है ।
4. **अपेक्षाकृत नीची मुद्रास्फीति की दर: -** प्रस्तावित अवधि में हेडलाईन मुद्रास्फीति की दर (थोक मूल्यों के सूचकांको के आधार पर) लगभग एक अंक में नीची रही थी, अर्थात् ये इकाई में रही थी, जो 2008 के प्रारंभ में एक बार 04 प्रतिशत के स्तर पर आ गई थी, लेकिन 2008-09 में मुद्रास्फीति की दर 8.05 प्रतिशत रही । 2009-10 में यह 3.8 प्रतिशत आंकी गई,लेकिन 2010-11(अप्रैल –जनवरी की अवधि में) यह 9.55 प्रतिशत एवं 2011-12 (अप्रैल-जनवरी की अवधि में) 9.11 प्रतिशत आंकी गई है , जो एक चिंता

का विषय है आम जनता में एक भारी असंतोष का विषय बन गया हैं। सरकार इसको नियंत्रित करने के लिए राजकोषीय, मौद्रिक व पूर्ति पक्ष के उपाय अपनाने का प्रयास कर रही हैं। निस्संदेह यह एक नई चुनौती हैं । विश्व में खाद्य, ईधन व धातु के मूल्यों में वृद्धि भी हमारे देश में महंगाई को बढ़ाने में सहायक मानी जा सकती है । इसीलिए भारत में मुद्रा स्फीति को "आयातित मुद्रा-स्फीति" भी कहा जाने लगा हैं। जुलाई-अगस्त 2012 की स्थिति के अनुसार अब मुद्रास्फीति विनिर्मित-वस्तुओं के क्षेत्र में प्रविष्ट होने लगी हैं।

5. बचत तथा निवेश दरों में वृद्धि :-

भारत में हाल के वर्षों में बचत तथा निवेश की दरों में अभूत पूर्व वृद्धि हुई हैं । सकल घरेलू बचत की दर सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में 2001-02 में 24.9 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2014-15 में 29.3 प्रतिशत तथा निवेश की दर इसी अवधि में 24.3 प्रतिशत से 34.8 प्रतिशत हो गई है । 2003-04 से सार्वजनिक क्षेत्र की बचतों का ऋणात्मक से धनात्मक होना एक बड़ा अनुकूल परिवर्तन हैं। इनमें 2007-08 में वृद्धि जारी रही और बचत की दर 36.8 प्रतिशत तथा निदेश की दर के 38.1 प्रतिशत रहने का अनुमान लगाया गया था। वर्द्धमान पूंजी-उत्पादन-अनुपात (ICOR) के लगभग 4.0 आंके जाने पर अब भारत में 09 प्रतिशत की विकास दर पहुँच से बाहर नहीं मानी जा सकती है। यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के उज्जवल भविष्य की ओर संकेत करता हैं।

6. राजस्व तथा राजकोषीय घाटों को नियंत्रित करने में सफल :-

आर्थिक सुधारों की अवधि में केन्द्र व राज्यों के राजस्व घाटों व राजकोषीय घाटों में सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में कमी आई हैं । केंद्र का राजस्व घाटा 2001-02 में जी.डी.पी. का 4.4 प्रतिशत था जो 2015-16 के संशोधित अनुमानों में 2.5 प्रतिशत तथा राजकोषीय घाटा 6.2 प्रतिशत से घटकर 3.9 प्रतिशत आंका गया हैं । आर्थिक सुधारों ने कर प्रणाली को अधिक सरल तथा अधिक उदार बनाया गया हैं। कहने का आशय यह है कि आर्थिक सुधारों की अवधि में बजट के घाटों को कम करने की दिशा में प्रगति हुई हैं। कई राज्यों की वित्तीय स्थिति में भी सुधार हुआ है, उनमें भी FRBM act पारित किए गए है, और कुछ राज्यों का राजस्व घाटा राजस्व आधिक्य में परिवर्तित हुआ हैं। लेकिन अभी आगे भी प्रगति जारी रखनी होगी।

7. रोजगार के अवसरों का सृजन:-

आर्थिक सुधारों की अवधि में देश में राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे के 61वें दौर से पता चलता है कि 1999-2000 से 2004-05 की अवधि में 4.7 करोड़ रोजगार के अवसर सृजित किए गए थे। इस अवधि में रोजगार में वृद्धि दर 2.6 प्रतिशत रही, लेकिन श्रम शक्ति प्रति वर्ष 2.8 प्रतिशत कि दर से बढ़ी जिससे बेरोजगारी की दर 1999-2000 में 7.3 प्रतिशत से बढ़कर 2004-05 में 8.3 प्रतिशत पर पहुँच गई थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त अवधि में देश में रोजगार के अवसर तो बढ़े है लेकिन सभी काम

चाहने वालों को पूरी तरह काम नहीं मिलने के साथ में बेरोजगारी भी बढ़ती गई हैं। अत: चालू दैनिक स्थिति (सी.डी.एस.) दृष्टिकोण के आधार पर गणना किए जाने पर 2004-05 में बेरोजगारी की दर में थोड़ी वृद्धि आंकी गई थी, हालाँकि सामान्य प्रमुख व सहायक स्थिति (यू.पी.एस.एस.) के आधार पर बेरोजगारी की दर 2004-05 में 2.5 प्रतिशत ही हांकी गई थी।

8. आर्थिक सुधार और गरीबी में कमी:-

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 61 वें दौर के आधार पर, योजना आयोग ने समान-स्मरण-अवधि (Uniform recall period) के आधार पर 1993-94 से 2004-05 के दौरान गरीबी अनुपात का अनुमान लगाया, जिसमें समग्र गरीबी अनुपात जो 1993-94 में 36 प्रतिशत था कम होकर 2004-05 में 27.5 प्रतिशत हो गया 11 वर्षों की अवधि में 8.5 प्रतिशत की कमी इसमें देखी गई। इसके साथ ही इन 11 वर्षों की अवधि के दौरान गरीबी में औसत वार्षिक कमी 0.74 प्रतिशत की दर से हुई हैं। एक बात यहाँ आवश्यक रूप से ध्यान देने योग्य है जहाँ 1993-94 में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले व्यक्तियों की संख्या 32 करोड़ आंकी गई थी जबकि 2004-05 में यह 30 करोड़ थी। गरीबों की कुल संख्या में कमी सुधार उपरांत काल में बड़ी धीमी गति से हुई हैं।

9. सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का निष्पादन:-

अत्यंत निन्दनीय केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के बारे में उपलब्ध सुचना से पता चलता है कि इनके निष्पादन में लगातार सुधार हो रहा हैं। 1993-94 और 2004-05 के दौरान इनका निष्पादन बेहतर रहा और प्रयुक्त पूंजी (Capital employed) पर इन की सकल प्रत्याय-दर (Gross Rate of Return) जो 1993-94 में 11.6 प्रतिशत थी, बढ़कर 2004-05 में 21.5 प्रतिशत हो गयी। यही परीस्थिति शुद्ध लाभ की प्रवृति में अनुभव की गयी जो 1993-94 में 2.84 प्रतिशत से बढ़कर 2004-05 में 13.0 प्रतिशत हो गया। इस स्थिति में सरकार के लिए आवश्यक हो गया है कि इनके विनिवेश कि नीति को त्याग कर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के निष्पादन को उन्नत करने के उपाय किए जाए। इनके निष्पादन मूल्यांकन से यह पत्ता चलता है कि 102 में से 44 अति-उत्तम (Excellent) आंके गए, 36 बहुत अच्छे और 14 अच्छे। यदि 102 में 94 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में सुधार के संकेत प्राप्त हुए हैं, तो इनके निष्पादन को उन्नत करने के उपाय खोजने होंगे, इसकी बजाय इन्हें बुरा नाम देकर, इनको फांसी दे दी जाए।

10. आधार सरंचना के विकास कि प्रवृति:-

विक्रय इस्पात तथा सीमेंट उद्योगों में सुधार अवधि के दौरान वृद्धि दरें, सुधार-पूर्व अवधि की अपेक्षा अधिक रही है इस्पात में, उत्पादन के सूचकांक में 1993-94 से 2010-11 के दौरान 8.1 प्रतिशत थी वृद्धि हुई जबकि सुधार-पूर्व अवधि 1980-81 से 1990-91 में यह केवल 4.9 प्रतिशत थी। इसी प्रकार सुधार-उपरांत काल में सीमेंट के उत्पादन में 8.3 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई जबकि यह सुधार-पूर्वकाल में केवल

04 प्रतिशत थी । किन्तु अन्य आधारभूत उद्योगों-बिजली, कोयला, पेट्रोलियम और पेट्रोलियम परिष्कृत उत्पादों ने सुधार उपरान्त काल में अच्छी प्रगति नहीं दिखायी । बिजली के जनन में जहाँ 1980 के दशक में वृद्धि दर 9.1 प्रतिशत थी, वहाँ 1990 के दशक में यह केवल 5.5 प्रतिशत थी । इसी प्रकार कोयले के उत्पादन में यह 6.4 प्रतिशत से घटकर केवल 4.0 प्रतिशत रह गयी । पेट्रोलियम परिष्कृत उत्पादों में स्थिति और भी खराब थी । पेट्रोलियम के उत्पादन की वृद्धि दर जो 1980 के दशक में 12.2 प्रतिशत थी, 1993-94 से 2010-11 के दौरान एक दम गिर कर 1.5 प्रतिशत हो गई । जबकि राज्य ने आधार सरंचना क्षेत्र में निवेश करने में अपने हाथ पीछे खिंच लिए, निजी क्षेत्र-भारतीय एवं विदेशी इस रिक्ति को भरने में विफल रहा । अत : सुधार उपरान्त काल में, निजी क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता के परिणामस्वरूप बहुचर्चित एवं इच्छीत परिणाम प्राप्त न हो सकें ।

11. विदेशी निवेश:-

सुधार अवधि के प्रथम 20 वर्षों अर्थात् 1991-92 से 2010-11 के दौरान 352 अरब डॉलर का विदेशी निवेश भारत में किया गया जिसमें 210.3 अरब डॉलर (59.7 प्रतिशत) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के रूप में और 141.7 अरब डॉलर पोर्ट फोलियों निवेश के रूप में किया गया । जहाँ 1991-92 में 12.9 करोड़ डॉलर प्रत्यक्ष निवेश तथा 0.4 करोड़ डॉलर पोर्टफोलियो निवेश भारत में किया गया था वह क्रमश: 2010-11 में बढ़कर 2702.4 करोड़ डॉलर तथा 3147.1 करोड़ डॉलर पर जा पहुंचा । यह इस बात का प्रतीक है कि सुधार अवधि के दौरान भारत में विदेशी निवेश के प्रवाह में आशातीत वृद्धि हुई हैं ।

29.8 आर्थिक सुधारों की सीमाएँ :- (Limitations of Economic Reforms):-

ढांचागत सुधारों की इन मिली-जुली उपलब्धियों के बावजूद आर्थिक सुधारों की काफी आलोचनाएँ हुई । इकोनौमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली रिसर्च फाउन्डेशन ने लिखा है, "नई आर्थिक नीति अपनी संकल्पना में ..... विषय वास्तु में, दृष्टिकोण एवं युक्ति और कुछ अन्य बातों में दोषपूर्ण हैं ।" इसकी सीमाओं को निम्नांकित बिंदुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :-

1. **स्पष्ट विकास युक्ति का अभाव:-**

आर्थिक सुधारों की अवधि में सारा ध्यान उद्योगों में प्रतियोगी वातारण, जिसमें उघम सम्बंधी सम्पूर्ण निर्णय न केवल बाजार-शक्तियों पर आधारित हो, तैयार करने पर रहा हैं । सरकार द्वारा औद्योगिक विकास के लिए कोई स्पष्ट औद्योगिक नीति नहीं अपनाई गई । इसके विपरीत पिछले तीन दशकों में दक्षिण-पूर्व एशिया के जिन देशों में तेजी के साथ औद्योगिक विकास हुआ है, उनके लिए विकास की सुनिशिचत रूपरेखाओं और बाजार के महत्वपूर्ण हस्तक्षेपों के आधार पर ही ऐसा कर पाना संभव हुआ हैं । दक्षिण कोरिया में औद्योगिकीकरण इसका प्रमुख उदाहरण है जिसमे विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कड़े विरोध के बावजूद भारी और रासायनिक उद्योगों के विकास की नीति का दृढनिश्चय के साथ पालन किया । इस प्रकार यह कहा जा सकता औद्योगिक विकास मुख्यता उपभोक्ता वस्तुओं पर आधारित विकास मुख्यता अपभोक्ता वस्तुओं पर आधारित रहा, जहाँ तक आधारभूत-सरंचना का प्रश्न है, तो इस क्षेत्र का भी अपेक्षित विकास नहीं हो पाया ।

इसके अतिरिक्त औद्योगिक सुधारों में भी लघु उद्योगों एवं कुटीर उद्योगों से सम्बंधित सुधार हाशिए पर बने रहें। सक्षेंप में इन आर्थिक सुधारों ने असंतुलित औद्योगिक विकास को जन्म दिया।

2. **सुधारों का गलत क्रम –**

सुधारों के गलत क्रम की वजह से आर्थिक प्रबंधन में अनेक विकृतियाँ पैदा हो गई हैं। सुधारों के गलत क्रम के तीन स्पष्ट उदाहरण हैं। प्रथम, राजकोषीय, राजस्व तथा बजटीय घाटों में भारी कमी के लिए पहले गैर विकास व्यय में कटौती और कर आधार का विस्तार करना जरुरी हैं, परन्तु सरकार ने वित्तीय सुधार कार्यक्रम करों की दरों में कमी करके और पूंजीगत व्यय में कटौती के द्वारा प्रारम्भ किया। द्वितीय सुधारों के दोषपूर्ण क्रम का और अधिक स्पष्ट उदाहरण यह है कि सरकार ने बिना यह सुनिश्चित किए ही, कि निजी क्षेत्र और विदेशी निदेशक निवेश की मात्रा बढ़ाएंगे, सरकारी पूंजीगत व्यय में कटौती कर डाली। सुधारों के त्रुटिपूर्ण क्रम का तीसरा उदाहरण यह है कि घरेलू पूंजीगत पदार्थ क्षेत्र में प्रद्यौगिकी के विकास की योजना तैयार किए बिना ही पूंजी गत वस्तुओं के आयात में उदारीकरण की नीति को कार्यान्वित कर दिया गया।

3. **सुधारों लागु करने में अनावश्यक जल्दबाजी:-**

सुधारों को लागु करने में अनावश्यक जल्दबाजी का कारण भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था का शीघ्रातिशीघ्र अंग बनाने का विवादास्पद लक्ष्य था। इकनौमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली रिसर्च फाउन्डेशन ने स्पष्ट किया है कि औद्योगिक संवृद्धि में तेजी के साथ गिरावट, पूंजी पदार्थ उद्योगों कि संवृद्धि में कमी, निर्यातों में सापेक्ष रूप से निर्मित माल के महत्व में कमी और औद्योगिक रोजगार के विस्तार में बाधा तेजी के साथ सुधारों के कुछ स्पष्ट प्रभाव हैं। इन सुधारों ने भारतीय उद्योगों को न तो संभलने का अवसर दिया और न ही रोक और संतुलन की उपयुक्त व्यवस्था की।

4. **कृषि की उपेक्षा:-**

आर्थिक सुधारों का मूल दोष कृषि की उपेक्षा हैं। आंकड़ों से ज्ञात होता है कि खाद्यान्न उत्पादन जो 1980-81 में 1296 लाख टन था बढ़कर 1990-91 में 1764 लाख टन हो गया। इस प्रकार सुधार-पूर्व के दशक में खाद्यान्नों में 3.1 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई, परन्तु आर्थिक सुधारों के दो दशकों की अवधि के दौरान खाद्यान्न उत्पादन जो 1990-91 में 1764 लाख टन था से बढ़कर 2008-09 में 2340 लाख टन हो गया अर्थात् इसमें 1.6 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई जो कि जनसँख्या की वृद्धि दर से कम थी। इस प्रकार कृषि क्षेत्र की उपेक्षा का भीषण परिणाम आने वाले दशकों में देखने को मिल सकता हैं। सुधार प्रक्रिया ने विनिर्माण और सेवा क्षेत्र के विकास पर ही बल दिया है और कृषि की उपेक्षा की है सुधार अवधि के 25 वर्षों में हम अपने कृषि क्षेत्र में विकास के लक्षित 4.0 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहें हैं। इस अवधि के दौरान कृषि क्षेत्र में निम्न निवेश का स्तर, सिंचाई व्यस्थाओं के विस्तार में न्यून सुधार तथा कमजोर ग्राम आधार सरंचना आदि कृषि क्षेत्र के प्रति आर्थिक सुधारों की उपेक्षा को प्रदर्शित करते हैं।

5. **क्षेत्रीय असमानताओं को बढ़ावा:-**

आर्थिक सुधारों का मुख्य उद्देश्य विकास की गति को तीव्र करना था ऐसा विकास जो क्षेत्रीय असमानताओं को कम करें। इस उद्देश्य हेतु सुधार पूर्व की अवधि के दौरान राजकीय नीतियों को पिछड़े क्षेत्रों की सहायता करने के लिए ढाला गया। यह राशियों के हस्तातंरण का भी एक आधार था कि पिछड़े राज्यों को अधिक आवंटन (Allocation) किए गए ताकि क्षेत्रीय विषमताएँ कुछ हद तक कम की जा सकें।

इसके विपरीत आर्थिक-सुधारों की अवधि में बाजार-शक्तियों के प्रयोग द्वारा स्वाभाविक रूप से निवेश को ऐसे क्षेत्रों में बढ़ावा दिया गया जो आर्थिक तथा वित्तीय दोनों प्रकार की आधार सरंचना में अधिक विकसित रही हैं। वे क्षेत्रीय असंतुलन की ओर कोई ध्यान नहीं देती हैं। सुधार-उपरान्त काल में निवेश-प्रस्तावों का दो-तिहाई से भी अधिक अग्रगामी राज्यों में संकेन्द्रित रहा और यही स्थिति अखिल भारतीय वित्त संस्थानों द्वारा वितरित वित्तीय सहायता की थी। इन संस्थानों द्वारा कुल वित्तीय सहायता का 67.3 प्रतिशत 31 मार्च 1997 तक अग्रगामी राज्यों को उपलब्ध कराया गया। 09 अग्रगामी राज्यों में से चार राज्यों अर्थात् महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु तथा आंध्र-प्रदेश कुल सहायता का 51 प्रतिशत भाग हथियाने सफल हो गये। यह विश्लेषण इस बात को स्पष्ट करता है कि आर्थिक सुधारों की अवधि में निवेश प्रस्तावों की स्वीकृति एवं वित्तीय सहायता में अग्रगामी राज्यों के साथ पक्षपात किया गया जिससे देश के विभिन्न राज्यों के मध्य असमानताओं की खांई बढ़ी हैं।

6. अधिकतर आधारभूत उद्योगों के विकास की अनदेखी:-

सुधार-प्रक्रिया के दौरान केवल इस्पात और सीमेंट जैसे आधार-भूत उद्योगों को छोड़ दें तो यह स्पष्ट होता है कि अन्य सभी उद्योगों के विकास में कोई उत्साहजनक परिणाम दिखाई नहीं पड़ता हैं। इसके विपरीत आर्थिक सुधारों की अवधि में बिजली, कोयला और पेट्रोलियम परिष्कृत उत्पादों की कोई अच्छी प्रगति नहीं दिखाई देती हैं। इसके पीछे यह तर्क दिया जाता है कि सरकार द्वारा आधार संरचना क्षेत्र में निवेश में अपने हाथ खिंच लेने और तथा निजी क्षेत्र भारतीय एवं विदेशी द्वारा इस भारी निवेश की आवश्यकता को पूरा करने की विफलता के चलते ऐसा हुआ हैं। अत: आधार संरचना के विकास के लिए निजी क्षेत्र पर अत्याधिक निर्भरता के परिणामस्वरूप बहुचर्चित एवं इच्छित परिणाम प्राप्त न हो सके।

7. आर्थिक सुधार और श्रम प्रभाव:-

सुधार प्रक्रिया ने श्रम पर भी दुष्प्रभाव ही डाला हैं। इसका प्रमाण इस तथ्य से मिलता है कि सुधार-पूर्व काल में ताला-बन्दियों (Lockouts) के परिणामस्वरूप मानव दिनों की हानि 46.0 प्रतिशत थी परन्तु सुधार-उपरान्त काल में यह एकदम छलांग लगाकर 60 प्रतिशत हो गई। यह परिस्थिति 2001-06 के दौरान और खराब हो गयी और मानव-दिनों की हानि और बढ़कर लगभग 75प्रतिशत हो गई। इसके अतिरिक्त कारखानों को बन्द (Closures) करने और जबरी घुटी (Lay off) की प्रक्रिया में भी वृद्धि हुई हैं। इसके साथ-साथ आकस्मिक श्रमिको (Casual Labourers) का अनुपात जो 1988 में 31.2 प्रतिशत था बढ़कर 1998 में 37 प्रतिशत हो गया। सुधारों की

अवधि के दौरान श्रमिको को संगठित क्षेत्र से धकेलकर असंगठित क्षेत्र में भेज दिया है अर्थात् सुरक्षित रोजगार से असुरक्षित रोजगार की और ।

विदाई नीति (Exit policy) के तहत कई प्रकार से श्रमिको को निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में स्वैच्छित सेवा-निवृति योजना के तहत छटनी की जा रही हैं।

8. **युक्ति के अभिन्न अंग के रूप में मानव विकास लक्ष्यों का अभाव:-**

भारत में अधूरे ढांचा गत्त परिवर्तनों, व्यापक गरीबी, मानव विकास के नीचे स्तर और शिक्षा व स्वास्थ्य के क्षेत्र में संपन्न वर्गों के पक्ष में विकृत सरकारी व्यय की पृष्ठ-भूमि में स्थिरीकरण एवं ढांचागत सुधारों का कार्यक्रम लागू किया गया । इन निराशा जनक स्थितियों और आर्थिक संवृद्धि की नीची दर के होते हुए ढांचागत सुधारों को मानवीय चेहरे के साथ किया जाना चाहिए । अभिप्राय यह है कि मानव विकास के लक्ष्य ढांचागत समायोजनों की युक्ति के अभिन्न अंग होने चाहिए । लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि भारत में ऐसा कुछ भी नहीं किया गया हैं ।

9. **समावेशी विकास की प्राप्ति से दूर:-**

2008 में जारी ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में भी इस बात को स्वीकार किया गया है कि सुधार-अवधि में होने वाली संवृद्धि की प्रक्रिया समावेशी (Inclusive) नहीं रही है जहाँ एक ओर दसवीं पंचवर्षीय योजना में 7.7 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त की गई, वहीँ दूसरी ओर अभी भी बहुत से लोगों के पास अच्छे जीवन यापन के लिए न्यूनतम आवश्यक पोषण सामग्री, न्यूनतम शिक्षा व मूल चिकित्सा सुविधाओं, जल आपूर्ति व मल-निर्यास जैसी लोक सेवाओं का नितांत अभाव हैं। समाज कमजोर वर्गों तथा अल्प संख्यको को जितना लाभ मिलना चाहिए था उतना नहीं मिल पाया हैं । विभिन्न राज्यों के मध्य तथा एक ही राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के बीच असमानताओं में वृद्धि हुई हैं । अत: यह कहा जा सकता है कि सुधार-प्रक्रिया के दौरान प्राप्त उच्च संवृद्धि की दर समावेशी प्रकार की नहीं हो सकी हैं।

10. **बेरोजगारी एवं निर्धनता में वृद्धि:-**

सुधारों की अवधि में रोजगार के अवसरों में वृद्धि तो हुई है परन्तु रोजगार सजृन की दर, श्रमिको में वृद्धि दर की अपेक्षा कम रही है जिससे इस अवधि के दौरान बेरोजगारों की एक बड़ी फौज तैयार हो गई है जो कि देश के लिए एक विकट समस्या है चूँकि भारत जंनाकीकीय लाभांश की स्थिति वाला युवा देश है अत: इस स्थिति में बेरोजगारी की समस्या देश के समुख सबसे भीषण व ज्वंलत समस्या हैं।

सुधार अवधि के दौरान सापेक्ष गरीबी तो घटी है जहाँ 1993-94 में समग्र गरीबी अनुपात 36 प्रतिशत था वह कम होकर 2004-05 में 27.5 प्रतिशत तथा 2011-2012 में 26.1 प्रतिशत हो गया है परन्तु निरपेक्ष गरीबी 1993-94 में जहाँ 32 करोड़ थी वह 2011-2012 में भी 30 करोड़ के आस-पास बनी हुई है अत: जिसे कम करना एक चुनौती हैं ।

29.10 द्वितीय चरण के आर्थिक सुधार

1991 में आर्थिक सुधारों की जिस प्रक्रिया का सूत्रपात किया गया है, उसे प्रथम चरण के आर्थिक सुधार की संज्ञा दी गई। इसकी पहल केन्द्र सरकार के द्वारा की गई और इन्हें मुख्यत: कार्यपालिका के आदेशों के द्वारा क्रियान्वित किया गया। जब ये आर्थिक सुधार अपेक्षित परिणाम देने में विफल रहे और धीमे-धीमे इनकी सीमाएँ उभरने लगी तो द्वीतीय चरण के आर्थिक सुधारों की चर्चा शुरू हुई। ऐसा माना गया कि द्वीतीय चरण के आर्थिक सुधार, सुधारों के अपेक्षित परिणाम तक ले जाने में सहायक साबित होंगे।

29.10.1. द्वितीय चरण के आर्थिक सुधारों से आशय:-

आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया को आगे ले जाते हुए विकास के तमाम अवरोधों को दूर करना। द्वितीय चरण के आर्थिक सुधारों को परिभाषित करने के लिए अवसर अंग्रेजी के इस पदबंध का सहारा लिया जाता हैं :- Widening and Deepening the Input of Liberalisation अर्थात् उदारी करण के प्रभाव को व्यापकता और गहराई प्रदान करना। आशय यह है कि जिन क्षेत्रों में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया का सूत्र पात पहले ही हो चुका है, उन क्षेत्रों में और गहरे स्तर पर जाकर सुधारों को क्रियान्वित करना हैं। साथ ही, उन क्षेत्रों में भी आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया का सूत्रपात करना, जिन क्षेत्रों तक अब तक इसकी पहुँच संभव नहीं हो पाई हैं। ये सुधार प्रथम चरण के आर्थिक सुधार से इस मायने में अलग हैं कि इन सुधारों में राज्यों की महत्वपूर्ण भूमिका अपेक्षित हैं। स्पष्ट है कि द्वितीय चरण के आर्थिक सुधारों में केंद्र के साथ-साथ राज्यों की महत्वपूर्ण भूमिका हैं। साथ ही, इसके लिए विधायिका से पहल अपेक्षित हैं। ऐसा तक तक संभव नहीं है, जब तक सुधारों के प्रश्न पर राजनीतिक आम-सहमति कायम न हों। इसे पिछले एक दशक के दौरान सुधारों हेतु प्रस्तावितपहलुओं के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है, जहाँ राजनीतिक मतभेदों ने आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया को अवरूद्ध किया हैं।

29.10.2 द्वितीय-चरण के आर्थिक सुधारों की शुरुआत:-

जहाँ तक प्रथम द्वितीय चरण की कालावधि का प्रश्न है, तो दोनों के मध्य विभाजक-रेखा खीचना मुश्किल कार्य हैं। कारण यह है कि द्वितीय चरण का आर्थिक सुधार, प्रथम चरण के आर्थिक सुधार का ही विस्तार और विकास हैं। इसीलिए यह मानने का कोई अभिप्राय नहीं है कि द्वितीय चरण के आर्थिक सुधार की शुरुआत के साथ प्रथम चरण के आर्थिक सुधारों का अन्त हो गया हैं। इसकी शुरुआत 1998-99 से मानी जा सकती है और यह अब तक जारी हैं। विशेष रूप से 2004 से मानवीय चेहरे के साथ आर्थिक सुधार पर जोर द्वितीय चरण के आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में तेजी का संकेत देता हैं।

द्वितीय चरण के आर्थिक सुधार

औद्योगिक नीति	राजकोषीय नीति	पूंजीगत बाजार नीति	व्यापार नीति	कीमत नीति	अन्य क्षेत्र

1. औद्योगिक नीति:-

(i) लघु उद्योगों से सम्बधित सुधारों को प्राथमिकता

(ii) श्रम सुधार

(iii) औद्योगिक निकास नीति का विकास और अन्तर्रष्ट्रीय मानदण्डों के अनुरूप दिवालिया कानून का निर्माण

(iv) सार्वजनिक उपक्रमों के सन्दर्भ में विनिवेश और निजी कारण की प्रक्रिया को त्वरित करना, विशेष रूप से राज्य-नियंत्रित सार्वजनिक उपक्रमों में सुधार हेतु।

(v) आर्थिक और सामाजिक आधारभूत संरचना के विकास को प्राथमिकता और इसके लिए सार्वजनिक-निजी भागीदारी को सुनिश्चित करना।

(vi) निवेश-प्रक्रिया की जटिलता को दूर करते हुए निवेश हेतु अनुकूल माहौल तैयार करना और इससे सम्बंधित मामलों का त्वरित निष्पादन।

2. राजकोषीय नीति:-

(i) राजकोषीय सुधारों की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना विशेष रूप से राज्यों के स्तर पर राज्यकोषीय सुधारों की प्रक्रिया का सूत्रपात करते हुए उसे क्रियान्वित किया जाना।

(ii) वस्तुओं और सेवाओं के लिए एक समान कर प्रणाली का विकास जी.एस.टी. द्वारा लागू करना।

(iii) जारी राजकोषीय रियायतों और अन्य अतिरिक्त करों को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करना।

(iv) व्यय प्रबंधन को सर्वोच्य प्राथमिकता प्रदान करना

(v) राजकोषीय लेखांकन प्रक्रिया को पारदर्शी बनाना तथा सभी प्रकार के सरकारी लेंन-देंन को इसके अंतर्गत शामिल करना।

(vi) करारोपण के क्षैतिज सिद्धांत (सभी क्षेत्रों पर करों का का समानुपातिक बोझ) के अनुपालन को सुनिशिचत करते हुए कर ढाँचे के सरलीकरण और विवेकीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना।

3. पूंजीगत बाजार नीति:-

(i) मौद्रिक और पूंजी बाजारों के सन्दर्भ में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाना।

(ii) बैंकिंग सुधारों को आगे बढ़ाते हुए विलय एवं अधिग्रहण की अनुमति, ताकि अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में समक्ष वित्तीय ढाँचे का निर्माण संभव हो सके।

(iv) बीमा-सुधारों को आगे ले जाना।

4. व्यापार नीति:-

(i) पूंजीगत खाते में रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता।

(ii) रुपये के विनियम दर के सन्दर्भ में बाजार कारको को पूर्ण स्वंतत्रता।

(iii) सीमा-कर की दरों को आसियान देशों के स्तर पर लाया जाना।

5. कीमत-नीति:-

(i) सब्सिडी विशेष रूप से नान मेरिट सब्सिडी को कम से कम किया जाना।

(ii) यूजर-चार्जेज की अवधारणा को अधिक से अधिक लागू किया-जाना।

6. **अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र:-**

कृषि क्षेत्र में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया का प्रभावी तरीके से क्रियान्वयन ताकि उदारीकरण के लाभों को ग्रामीण क्षेत्रों और किसानों तक पहुँचाया जा सके।

29.10 आर्थिक सुधारों की भावी दिशा

(i) अगले चरण में आर्थिक और सामाजिक आधारभूत सरंचना के विकास को प्राथमिकता दिए जाने की बात की गई है और इसके लिए सार्वजनिक-निजी भागीदारी (Public Private Partnership –PPP) का नारा दिया गया।

(ii) औद्योगिक सुधारों में लघु औद्योगिक सुधारों को महत्व दिया जाना है, ताकि आर्थिक संवृद्धि के अनुरूप रोजगार अवसरों का सृजन हो सके तथा आर्थिक कुशलता और प्रतिस्पर्धात्मकता में वृद्धि के जरिये निर्यात-संभावना का विस्तार हो सके।

(iii) विदेशी निवेश के अंत प्रवाह में तेजी लाने के लिए निवेश-प्रक्रिया की जटिलता को दूर करते हुए निवेश हेतु अनुकूल माहौल का सृजन किया जाना हैं। इसके लिए श्रम-सुधारों पर जोर रहेगा। साथ ही, औद्योगिक निकास नीति और अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डो के अनुरूप दिवालिया कानून का निर्माण अपेक्षित हैं।

(iv) द्वितीय चरण के आर्थिक सुधारों के दौरान करारोपण प्रणाली को औद्योगिक क्षेत्र के साथ-साथ आर्थिक विकास के अनुकूल बनाया जाना हैं। इसके लिए अधिक से अधिक सेवाओं को सेवा-कर के दायरे में लाते हुए वस्तुओं और सेवाओं पर एक समान कर प्रणाली को अपनाया जाना आवश्यक हैं। इस हेतु वस्तु एवं सेवा कर बिल पिछले 05 वर्षों से राजनीतिक गतिरोध के चलते संसद में विचारधीन है जिससे शीघ्रतिशीघ्र पारित किया जाना आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त कृषि-क्षेत्र को भी आयकर के दायरे में लाये जाने की संभावना हैं।

(v) जहाँ तक बैंकिग और वित्तीय सुधारों का प्रश्न हैं, तो इसमें भी तेजी आने की संभावना हैं। बैंकिग ढाँचे में निजी क्षेत्र के साथ-साथ विदेशी बैंकों की भूमिका में भी विस्तार की संभावना हैं। साथ ही बीमा क्षेत्रों में सुधार के साथ-साथ रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता की दिशा में कदम अपेक्षित हैं।

(vi) अंत में मुख्य ध्यान कृषि क्षेत्र और सेवा क्षेत्र में सुधारों पर रहने की संभावना है क्योंकि प्रथम चरण के आर्थिक सुधारों के दौरान कृषि क्षेत्र में पूंजी निर्माण की दर के साथ-साथ सार्वजनिक निवेश की दर में कमी आई, जिसके कारण कृषि विकास की दर घटकर आधी रह गई। जैसा कि 12 वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में कहा गया है कि बिना 4% के कृषि विकास

दर को पाये द्विअंकीय आर्थिक संवृद्धि दर को हासिल करना और उसे बनाए रखना मुश्किल होगा।

(vii) आर्थिक संवृद्धि को मानव-विकास में परिणत करना नितांत आवश्यक हैं। भारत वासियों के बहुत बड़े वर्ग को पोषण, शिक्षा, चिकित्सा तथा सफाई सुविधाएँ लोक सेवाओं के माध्यम से व्यापक पैमाने पर उपलब्ध करना आवश्यक हैं। तभी समावेशी विकास का यह नारा "सबका साथ सबका विकास" सफल हो पाएगा।

29.11सारांश

उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों के माध्यम से वैश्वीकरण के भारत सहित अनेक देशों पर सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रभाव पड़े हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि वैश्वीकरण को एक सुअवसर की भांति देखा जाना चाहिए क्योंकि विश्व बाजारों में बेहतर पहुँच तथा तकनीकी उन्नयन द्वारा विकासशील देशों के बड़े उद्योगों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण बनने का अवसर प्राप्त हुआ हैं।

दूसरी ओर आलोचको का मत है कि वैश्वीकरण के माध्यम से विकसित देश विकासशील देशों के घरेलू बाजारों पर आधिपत्य स्थापित करने में सफल हुए हैं। भारत के सन्दर्भ में सुधार-प्रक्रिया अपने विकास-सम्बंधी लक्ष्यों को पूर्णतया प्राप्त नहीं कर सकी, क्योंकि निजी क्षेत्र का सरोकार तो केवल लाभ-प्रेरणा से होता हैं। जहाँ पर कि सुधार प्रक्रिया ने सार्वजनिक क्षेत्र का कार्यभार कम कर दिया है, वहीँ सार्वजनिक क्षेत्र के हट जाने से पैदा हुए रिक्त स्थान को, निजी क्षेत्र ठीक से भर नहीं पाया हैं। साथ ही सुधार प्रक्रिया ने देश के आर्थिक विकास के साथ-साथ क्षेत्रीय तथा सामाजिक असमानताओं को बढ़ाया है जिससे निपटना हमारे लिए एक बड़ी चुनौती हैं इसी चुनौती के सन्दर्भ में भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने अपना विचार व्यक्त किया हैं कि "हम विकास के अर्थशास्त्र को समता और समाजिक न्याय (Equity and social Justice) के अर्थशास्त्र से जोड़े। हमारे पास दो पैरों पर चलने के सिवा कोई दूसरा विकल्प नहीं हैं।"

बोधगम्य प्रश्न

1. नई आर्थिक नीति से आप क्या समझते है ? उन परिस्थितियों का वर्णन करें जिनके चलते इन्हें अपनाया गया।
2. नरसिंह राव मनमोहन सिंह विकास युक्ति को समझाए।
3. विभिन्न प्रकार के स्थायित्वकारी उपायों का वर्णन कीजिए।
4. विनिवेश का क्या अर्थ है ? इसे क्यों अपनाया गया ?
5. 1991 से भारत में किये गये विभिन्न ढांचागत सुधारों को संक्षेप में लिखिये।
6. भारत में कर सुधार पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
7. 1991 के बाद भारत में संपन्न वित्तीय क्षेत्र सुधारों को संक्षेप में बताये।
8. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये

i. राजकोषीय समायोजन
ii. भुगतान संतुल न में समायोजन
iii. व्यापार एवं पूंजी प्रवाह में सुधार

9. उदारीकरण से क्या अभिप्राय है? भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभावों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
10. निजीकरण से आप क्या समझते हो ? इसके विभिन्न माडलो को समझाइए।
11. वैश्वीकरण का क्या अर्थ है ? भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभावों का आलोचनात्मक मूल्याकंन कीजिए।
12. आर्थिक सुधारों की उपलब्धियों और सीमाओँ का वर्णन कीजिए।
13. द्वितीय चरण के आर्थिक सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

इकाई–30

भारतवर्ष में बहुराष्ट्रीय निगम

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य

30.1 प्रस्तावना

30.2 बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषतायें

30.3 बहुराष्ट्रीय निगमों में प्रवेश में बाधायें

30.4 व्यवसाय विधि तथा तकनीकी

30.5 अमेरिका की दशा बिगड़न

30.6 पूंजीगत तकनीकी

30.7 कनाडा तथा भारत के अनुभव

30.8 सारांश

30.9 शब्दावली

30.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

30.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

30.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- जान सकेंगे कि बहुराष्ट्रीय निगम किसे कहते है?
- इनके प्रवेश में क्या बाधाएं आती है?
- समझ सकेंगे कि इस सम्बन्ध में भारत के अनुभव कैसे है?

30.1 प्रस्तावना

आज हम ऐसे युग में रह रहे है जिसमें तकनीक के विकास ने विभिन्न राष्ट्रों के बीच की दूरी को घटाकर अत्यधिक कम कर दिया है तथा कोई भी राष्ट्र पूर्ण रूप से स्वावलम्बी होने की बात भी नहीं सोच सकता। एक प्रकार से एक राष्ट्र की दूसरे पर निर्भरता बढ़ गई है । आज की सरकारों का कार्य साधारण व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि करना है । अत: विकासशील राष्ट्रों की सरकारें अपने आर्थिक विकास तथा देशवासियों की भलाई के लिये बहुराष्ट्रीय निगमों से तालमेल बनाये हुए है।

बहुराष्ट्रीय निगम की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि यह एक ऐसी संस्था अथवा निगम है जिसमें, एक या एक से अधिक देश का अधिपत्य होता है । परन्तु इसका उत्पादन अथवा सेवायें. विभिन्न राष्ट्रों को भेजी जाती है, जो मुख्य रूप से विकासशील देश है । इसमें लगी हुई सम्पत्ति उन्हीं राष्ट्रों द्वारा लायी जाती है जिनका इन पर आधिपत्य है । इस निगम में कार्य करने वाले लोगों का चयन पूर्णरूपेण योग्यता पर आधारित होता है । भले ही वे उस देश के न हों जहां पर ये निगम कार्य कर रहे हों। इस प्रकार ये बहुराष्ट्रीय निगम राष्ट्रीय फर्म अथवा निगम से भिन्न होते है।

30.2 बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषतायें

बहुराष्ट्रीय निगमों की कुछ प्रमुख विशेषतायें है जो इन्हें स्थानीय निगमों या राष्ट्रीय निगमों से अलग करती है, वे इस प्रकार से है :–

1. यह निगम शोध नथा विज्ञापन पर अधिक व्यय करती है, उन कम्पनियों की तुलना में जिनका कार्य क्षेत्र इतना व्यापक अथवा अन्तर्राष्ट्रीय नहीं है । उदाहरण के लिये अमेरिकी बहुराष्ट्रीय निगमों को लिया जा सकता है।
2. इसी प्रकार यह निगम जिनमें मुख्य रूप से अमेरिकन कम्पनी आती है, अधिक बड़े होते है तथा उनकी उत्पादन पद्धति में विभिन्नता अधिक होती है । इनका विशेष जोर निर्यात पर होता है तथा यह अपने कार्यकर्ताओं को अधिक मजदूरी देते है।
3. यह निगम मुख्य रूप से अपने दृष्टिकोण में अन्तर्राष्ट्रीय होते है । हालांकि जापानी बहुराष्ट्रीय निगम जो कि मुख्य रूप से तकनीकी विस्तार पर आधारित है, अपने दृष्टिकोण में इतने व्यापक नहीं है।
4. यह निगम समस्त बाहर से आने वाली रायल्टी, फीस तथा लाभ के 90% भाग के उत्तरदायी है
5. इन निगमों के द्वारा जो प्रत्यक्ष विनियोग अन्य राष्ट्रों में हो रहा है उसके कारण विभिन्न राष्ट्रों में एक प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा आ गई है तथा विभिन्न औद्योगिक राष्ट्रों में समानता की प्रवृति भी इसी कारण से आयी है । बहुराष्ट्रीय निगम वर्तमान औद्योगिक राष्ट्रों के विकास का प्रतीक है । वर्तमान समय में यह वाद–विवाद का विषय बन गया है । प्रथम, इनका आकार बहुत बड़ा होता है । द्वितीय, यह निगम जिन व्यापारिक गतिविधियों में निपुण होते है उन्हीं पर जोर देते है । भले

ही यह गतिविधि राष्ट्रीय हित से मेल न खाती हो। तृतीय, इनके नियन्त्रण तथा प्रबन्ध की जो विधि है वह अलग है।

हालांकि यह नहीं समझना चाहिये कि ये निगम सदैव राष्ट्र के हित में कार्य नहीं करते। इनसे विकासशील राष्ट्रों को कई प्रकार के लाभ भी प्राप्त हुये है, मुख्य रूप से तकनीक के क्षेत्र में।

30.3 बहुराष्ट्रीय निगमों मे प्रवेश में बाधायें

बहुराष्ट्रीय निगमों को कई प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है । प्रथमत : इन निगमों का संगठन अत्यंत विकसित होना चाहिये ताकि यह आने वाली जटिल समस्याओं को सही प्रकारसे संभाल सके। मुख्य रूप से ये क्षेत्र है, डिजाईन, उत्पादन सम्भव करना जिसके लिये उत्पादित वस्तु का चयन अति आवश्यक है, और फिर उत्पादित वस्तु को बाजार में सफलता से बेचना। यहाँ पर यह बात विदित है कि कुछ–विकासशील राष्ट्रों में इनका विरोध होता रहा है । इसमें सन्देह नहीं कि अपने बड़े आकार के कारण इन निगमों को मेहमान देश में अपना समान बेचने में उस देश के उत्पादको की अपेक्षा कई प्रकार के लाभ प्राप्त होते है । जैसे, तांबा, ऐल्यूमीनियम. तथा वाहन उद्योग आदि में देखा गया है । इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पादको के हित में तथा 'बहुराष्ट्रीय निगमों में विरोध होता रहता है । इसी प्रकार से कुछ अन्य बाधाओं का भी सामना करना पड़ता है, जैसे लाइसेन्स नीति तथा बाजार में पुराने चलने वाले पेटेन्ट या नाम।

बहुराष्ट्रीय निगम प्राय : विभिन्न प्रकार के उत्पादन में व्यवसाय करते है इससे उनकी प्रबन्ध सम्बन्धी समस्यायें तो बंट ही जाती है साथ ही यह बाजार में उनकी प्रतिस्पर्धा की शक्ति को बढ़ाकर दृढ़ता भो प्रदान करता है । किसी वस्तु की मांग की कमी या धीमेपन की दूसरी वस्तु की मांग बढ़ाकर पूरा किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त वह क्षेत्र जिसमें यह निगम कार्य करती है तुलनात्मक रूप से बड़ा होता हैं जिससे भी इसे लाभ प्राप्त होता है । प्रारम्भ में यह निगम अति सतर्कता से नई दशा के बाजार में प्रवेश करती है। परन्तु जब एक बार इनके पैर इस क्षेत्र में जम जाते है तो यह बहुत तेजी से बढ़ते है

30.4 व्यवसाय विधि तथा तकनीकी

बहुराष्ट्रीय निगमों का क्षेत्र जहां तक औद्योगिक विकास का प्रश्न है, वाद–विवादात्मक रहा है । इन निगमों का महत्व तकनीकी उत्थान तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में पर्याप्त माना जाता हैं, परन्तु इस बारे में कभी–कभी शंका भी व्यक्त की गयी है । इसमें सन्देह नहीं कि ये निगम, नये–नये उत्पादन बाजार में रखने में सफल हुये है । जिनमें अधिक मात्रा में धन की आवश्यकता होती है और उत्पादन काल भी अधिक होता है । बहुराष्ट्रीय निगमों की सफलता के कारण कभी–कभी इन निगमों तथा स्थनिय उद्योंगों अथवा सरकारों में खींचातानी होने लगती है । कभी–कभी ऐसा सोचा जाता है कि इन निगमों

के कारण देश के आर्थिक विकास व तकनीकी के सृजन में बाधा उत्पन्न हो रही है और देश विदेशी तकनीकी तथा पूंजी पर अनावश्यक रूप से निर्भर होता जा रहा है।

बहुराष्ट्रीय उद्योगों को प्राय : स्थानीयकरण सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है । ये समस्यायें तीन प्रकार की हो सकती है । प्रथम, कहां पर उत्पादन प्रबंधित का कार्य किया जाये, द्वितीय कहां पर वस्तु निर्माण किया जाये, तथा तृतीय कहां उत्पादित वस्तु को बेचा जाये। बहुराष्ट्रीय निगमों के लिये नये उत्पादन की बिक्री में परीक्षण करना अपने ही देश में अधिक सरल व लाभकारी है दूसरे देशों की तुलना में। वास्तव में शोधकार्यों 'से ऐसा पता चला है कि वे वस्तुएं अथवा उत्पादन जिनकी स्थानीय खपत अथवा मांग होती है उनके बारे में अन्वेषणात्मक सफलता अधिक सरल हें। उदाहरणार्थ तकनीकी सिद्धान्त अथवा वैज्ञानिक सिद्धान्त चाहे कहीं भी विकसित हुआ हो, परन्तु जय उसको उत्पादन में बदला जाना है तो स्थानीय स्वीकृति तथा पर्याप्त मांग आवश्यक हो जाती है । ये बात जापान के छोटे–छोटे टेलिविजन व रेडियो सेट के सम्बन्ध में सही उतरती है । जो जापान के सरल रहन–सहन के हिसाब से अधिक. उपयुक्त थे।

निम्नलिखित तालिका में विभिन्न. देशों में हुए विभिन्न प्रकार की अन्वेषणात्मक सफलतायें दिखाई गयी है जो विभिन्न कारको पर आधारित है।

तालिका 30.1

बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा अपनाई गई पद्धति

अन्वेषण के उद्देश्य	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका		इंग्लैण्ड		द्वीप यूरोप		जापान	
तथा स्वरूप	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
I. अन्वेषण की प्रक्रिया								
1. पदार्थ अथवा सामान की बचत	58	18.8	122	47.8	95	3.7	12	48.0
2. श्रम की बचत	189	61.1	66	25.9	32	18.1	04	15.0
3. पूंजी की बचत	58	18.8	61	23.9	43	24.3	07	28.0
4. विविध बचतें	04	1.3	06	2.4	07	3.9	02	8.0
कुल योग	309	100.0	255	100.0	177	100.0	25	100.0

II. उत्पादन अन्वेषण

1. पदार्थ अथवा सामान की बचत	117	22.6	127	40.3	100	50.3	20	29.0
2. श्रम की बचत	142	27.5	13	4.1	09	4.5	20	2.9
3. नवीन फलन	106	20.5	50	15.9	33	6.6	12	17.4
4. अन्य	152	29.4	125	39.7	57	28.6	35	50.7
कुल योग	517	100.0	315	100.0	199	100.0	87	100.0

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अन्वेषण स्थानीय मांग से प्रभावितहोता है । उदाहरण के, लिये अमेरिकन अन्वेषण का आधार श्रम की खपत को व्यय करना था, क्योंकि – अमेरिका में श्रम अभाव तथा अन्य अधिक थी। इसके विपरीत अन्य क्षेत्रों में अन्वेषण का उद्देश्य सामान की बचत है

इन कारको की सफलता में अन्तत : मुख्य बात तकनीकी. कुशलता न रहकर उत्पादन लगान तथा उस वस्तु की अमुक बाजार में कितनी मांग है ।. इस पर निर्भर करती है । सत्यता यह है कि विकासशील राष्ट्र में अधिकतर जनसंख्या की आय कम है और उनमें आर्थिक तथा सामाजिक पिछड़ापन है जिसके कारण प्राय:वे कम लागत का सामान मांगते है । बहुराष्ट्रीय निगमोंकेप्रमुख राष्ट्रों को यह बात समझना चाहिये कि सफलता के लिये उनके सहयोगी राष्ट्रों के आर्थिक वातावरण की अध्ययन अति आवश्यक है । समस्त अन्वेषण इन्हीं बातो को ध्यान में रखकर किये जा रहे है । एक सफल उत्पादन को बाजार में रखने के लिये कई प्रकार के परीक्षण करने पड़ते है और उनको 'कई अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है । यदि दो प्रतिस्पर्धात्मक उत्पादनों के बीच में चयन करना है तो इस सम्बन्ध में निर्णय बहुत छानबीन से करना पड़ता है । और इस बात का अध्ययन करना पड़ता है कि उपभोक्ता इनमें से किसका चयन करेंगे तथा किन कारणों से वह अमुक उत्पादन को इस्तेमाल करना चाहेंगे। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय निगमों के उपभोक्ता की मांग से सम्बन्धित शोध कार्य निरन्तर करना पड़ता है । नयी उत्पादन इकाई कहां पर रखी जायेगी। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि जिन देशों में इनकी खपत होगी वहां की व्यापार नीति तथा आयात कर संरचना किस प्रकार की है । हवाई जहाज के निर्माण तथा कपड़ा उद्योगों में ऐसा पाया गया कि बदलती आवश्यकताओं व मांग के कारण अतिशीघ्र उत्पादन मांग के बाहर हो गया है, इस कारण बहुराष्ट्रीय निगम यह विचार करने पर विवश हो गये कि यदि कोई नया उत्पादन विचार किया जाये तो वह घरेलू बाजार तथा परिस्थितियों से अलग नहीं होना चाहिये।

30.5 अमेरिका की दशा बिगड़न

उदाहरण स्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध से संयुक्त राष्ट्र, अमेरिका का बाजार पर अधिपत्य बना हुआ है तथा शोध कार्य में भी अमेरिका अत्यधिक आगे है । इस बात का प्रमाण इससे भी मिलता है कि नोबेल पुरस्कार विजेता विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में अधिकतर, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के ही है, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रमुख रूप से 1970 के पश्चात संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का उत्पादन तथा उसके निर्यात जापान एवं अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में घटे है । मुख्य रूप से यह कमी दूरदर्शन, प्लास्टिक सामान, दवाइयां, रेफ्रिजिरेशन सम्बन्धी सामान तथा यांत्रिक उपकरणों के क्षेत्र में आई है । मोटर गाड़ी के उद्योग के क्षेत्र में भी संयुक्त राष्ट्र अपनी बढ़त को बनाये रखने में असफल रहा है । 1970 के बाद एक समय ऐसा आया जबकि जापान तथा अन्य यूरोपीय देशों की सस्ती तथा अधिक उपयोगी गाड़ियों ने अमेरिका के कार उद्योग में मंदी की प्रवृतियां उत्पन्न कर दी। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में इस समय कार बनाने के उद्योग में जो मंदी आई थी उसका मुख्य कारण अमरीकन उद्योगपतियों की उपभोक्ता की मांग का सही विश्लेषण नहीं करना था। वास्तव में उपभोक्ता के अधिमान में परिवर्तन होता रहता है और इसका अध्ययन अति आवश्यक होता है! यदि कोई भी उद्योग इसकी अवहेलना करेगा तो उसे हानि उठानी पड़ेगी। इस सबके बावजूद कुछ अन्य क्षेत्रों में अमेरिकन उद्योग उत्तरोत्तर वृद्धि करता है । जैसे – लोहा इस्पात, अल्युमीनियम, रसायनिक तथा मुख्य रूप से औद्योगिक विद्युत उपकरण तथा कम्पयूटर उद्योग। इन क्षेत्रोंकेअलावा लेसर जैसे तथा खान सम्बन्धी उपकरण व अंतरिक्ष उपकरण भी सम्मिलित थे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का इन क्षेत्रों में सफलता का कारण न केवल संयुक्त राष्ट्र के बाजार का बड़ा आकार था वरन् मुख्य रूप से यह बात भी थी कि सरकार ने स्वयं इस कार्यक्रम को बड़े स्तर पर चलाया और सहायता दी। इस सहायता में अनुदान भी सम्मिलित था उसका लगभग 50% सरकारी धन था।

विकसित राष्ट्रों की इस प्रगति की तुलना में जब हम प्रगतिशील राष्ट्रों थे देखते है तो हम ये पाते है कि वहाँ तकनीकी विकास के बारे में इस प्रकार की उत्सुकता नहीं है कुछ प्रगतिशील राष्ट्र तो केवल पाश्चात्य विकसित तकनीक को ज्यों की त्यों अपनाना चाहते है तथा अपना रहे है । इनमें मुख्य रूप से कुछ रसायनिक मशीन उपकरण तथा विद्युत मोटर सम्मिलित है, जबकि कुछ विकसित राष्ट्र तकनीक की अपनी आवश्यकताओं तथा हालात के अनुसार बदलकर अपनाने की चेष्टा कर रहे है । इस प्रयास को बीच की तकनीक कहा जा सकता है जो न अत्यधिक पूंजीगत है, न श्रमगत। इस सम्बन्ध में हम ये पाते है कि कुछ तकनीक विकास सबकी प्रमुख सामान्य विशेषतायें इस प्रकार है : जैसे, अधिकतर इस प्रकार की तकनीकी खोज विकसित औद्योगिक राष्ट्रों में हुई, परन्तु इसको लागू करते समय आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जाना ही विकासशील राष्ट्रों के हित में है । मैक्सिको, ब्राजील तथा भारतवर्ष में विभिन्न क्षेत्रों में जो प्रयास हुए है वे विकासशील राष्ट्रों के लिये अधिक उपयोगी है, जापान तथा यूरोपीय तकनीक की तुलना में।

विकासशील राष्ट्रों में समस्या न केवल कभी–कभी अनुपयुक्त उत्पादन की है वरन् वहां पर एक महान समस्या अत्यधिक उत्पादन की किस्मों की है । जिसके कारण उपभोक्ता को निर्णय लेने या चयन करने में कठिनाई उत्पन्न होती है । अभाग्यवश कई प्रसाधन वस्तुएँ, खाने की वस्तुएँ, सिगरेट आदि का उत्पादन, छोटे–छोटे स्तरों पर विभिन्न प्रकार की किस्मों में किया जा रहा हें और विज्ञापनों द्वारा उनको विभिन्न प्रकार मे उपभोक्ताओं तक पहुंचाने का प्रयत्न किया जा रहाहै । प्रत्येक वस्तु का विज्ञापन अपनी वस्तु को श्रेष्ठ या सर्वश्रेष्ठ बताता हे। निश्चय ही आम आदमा के लिये यह जानना कठिन हो जाता है कि कौन सी वस्तु अधिक उत्तम है ।

30.6 पूंजीगत तकनीकी

बहुराष्ट्रीय निगम भी किसी हद तक इस प्रकार की स्थिति के लिये जिम्मेदार है जो न केवल नवीन उत्पादन वरन् नवीन तकनीक को सामने लाती जा रही है ।

बहुराष्ट्रीय निगम का उतादन बड़े स्तर पर होता है जिसके कारण बड़े स्तर की मितव्ययताऐं प्राप्त होती है ।और उत्पादन लागत घट जाती है । अत : इन कम्पनियों में श्रम लागत उत्तरोत्तर बढ़ रही है और एक प्रकार से पूंजीगत लागत तुलनात्मक रूप से घट रही है । बहुराष्ट्रीय उद्योगों के उत्पादन पर यह रोक लगाई जाती है कि ये अत्यधिक पूंजीगत है और वे उन्हीं उद्योगों में केन्द्रित है जो पूंजी अधिक प्रयोग करते है जहाँ पर बहुराष्ट्रीय निगमों के सहायक देशों के उद्योग घरेलू उद्योग के साथ कार्य करते है अथवा प्रतिस्पर्धा करते है वहां पर ऐसा पाया गया है कि ये उद्योग बहुत बड़े आकार के होते है जिनके कारण उनकी उत्पादन क्षमता भी अधिक होती है । घरेलू उद्योगों को इनसे प्रतियोगिता में कठिनाई उत्पन्न होती है । इसी कारण आम जनता ये समझती है कि समस्त बहुराष्ट्रीय उद्योग अत्यधिक पूंजीगत उद्योग होते है । इस सम्बन्ध में कभी–कभी ऐसा भी देखा गया है कि यदि इन उद्योगों को घरेलू बड़े आकार के उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है तो बहुराष्ट्रीय उद्योग ऐसी तकनीक का चयन करते है जो अधिक विकसित तथा अधिक पूंजीगत होती है । विकासशील राष्ट्रों में बहुराष्ट्रीय निगम इन परिस्थितियों में अपनी उत्पादन लागत का अनुमान ध्यानपूर्वक करते है ताकि वे वहां पर प्रतिस्पर्धा कर सकें, परन्तु जब वे इन्हीं राष्ट्रों में अपने उत्पादन को अन्तर्राष्ट्रीय ब्रांड के अन्तर्गत बेचते है तो लागत पर इतना ध्यान नहीं देते क्योंकि उस समय उत्पादक विदेशी वस्तु के नाम या धोखे से खरीदता है ।

30.7 कनाडा तथा भारत के अनुभव

ये एक वास्तविकता है कि इस प्रकार की बहुत सी तकनीक तथा उतादन विकसित राष्ट्रों के लिये उत्पन्न की गई थी वे विकासशील राष्ट्रों में भी बहुत उपयोगी पाई गई। दूसरे वो तकनीकें जिनमें श्रम की बचत होती है, एक प्रकार से पूंजी की भी बचत सम्भव कराती है । श्रम–प्रधान तकनीक में जो पूंजी बचत उसे अन्यत्र लगाकर विकास प्रक्रिया को बढ़ाया जाता है, तथा अधिक रोजगार का सृजन किया जा सकता है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि यहां उत्पादन लागत कुछ अधिक होती है ।

परन्तु लागत ही विचार में रखी जाये तो लागत तकनीक का चयन ही करना होगा। वर्तमान समय में कभी–कभी ऐसा देखने में आया है कि भारत केवल बहुराष्ट्रीय तकनीक को चुपचाप सहन कर रहा है और केवल इसीलिये इसका विरोध नहीं कर रहा है कि कहीं पाश्चात्य देश नाराज न हो जायें।

यह देखना रुचिकर होगा कि इस सम्बन्ध में भारत और कनाडा के अनुभव क्या–क्या है? सच्चाई तो ये है कि दोनों ही देश एक दूसरे से कुछ न कुछ सीख सकते है।

कनाडा मुक्त व्यापार नीति को अपनाये हुऐ है और इस कारण कनाडा में विदेशी तकनीक तथा सामान, मुख्य रूप से अमेरिका का, स्वतंत्र रूप से आ रहा है। इससे कनाडा– की अर्थव्यवस्था का कई दिशा में विकास हुआ है, राष्ट्रीय उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय बढ़ी है, रोजगार बढ़ा ने– और साथ ही साथ विदेशी ऋण से कनाडा बचा है तथा कनाडा को अपना भुगतान सन्तुलन ठीक रखने के लिये बड़ी मात्रा में सोना आदि बाहर नहीं देना पड़ा है, परन्तु साथ ही साथ हम में भी देखते है कि इस प्रकार कनाडा विदेशी तकनीक तथा व्यापार पर अत्यधिक निर्भर हो गया है और उसकी स्वयं की तकनीक का विकास रुक गया है। इसके विपरीत भारतवर्ष में विदेशी सामान तथा तकनीक पर रोक लगाई जिसके कारण हमें विदेशों से न केवल बड़ी मात्रा में ऋण तथा तकनीक ऋण के रूप में लेनी पड़ी जिससे देश को अत्यधिक नुकसान पहुंचा है।

निश्चय ही बीच का रास्ता दोनों राष्ट्रों के लिये अधिक उत्तम होगा।

भारतवर्ष में जो कठिनाइयों उत्पन्न हुई है वो इस प्रकार से है –

1. देश विदेशी ऋण जाल में फंसता जा रहा है।
2. बाहर से ली हुई तकनीक को आधुनिकतम बनाने के लिये विदेशियों पर निर्भरता और अधिक ऋण।
3. हमें विदेशी तकनीक के धारको पर अधिक निर्भर करना पड़ा है जिन्होंने हमें पर्याप्त मात्रा में सहायता नहीं की।
4. विदेशी वित्तीय संसाधनों पर निर्भरता जिनका मिलता हुआ धन अनार्थिक सार्वजनिक उद्योगों पर खर्च किया गया है। हालांकि इनसे कुछ सामाजिक लाभ उत्पन्न हुए।
5. विदेशी विनियोग उन उद्योगों में लगाया गया जहां पूंजी निर्माण कम हुआ और देश के विकास में बाधा आई।
6. देश में स्वयं की तकनीक पर अपर्याप्त विनियोग, अत : इससे लाभ कम हुआ।
7. आयात तथा आयात–प्रतिस्थापन पर अधिक जोर दिया गया परन्तु अपनी स्वयं की तकनीक के विकास पर उतना ध्यान नहीं दिया गया।

बोध प्रश्न – 1

1. बहुराष्ट्रीय निगम किसे कहते है? उदाहरण सहित स्पष्ट करिये।

2. बहुराष्ट्रीय निगमों की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करिये।
3. बहुराष्ट्रीय उद्योगों के प्रमुख उद्देश्यों का उल्लेख करिये।
4. क्या आप के विचार में बहुराष्ट्रीय निगमों से विकासशील राष्ट्र जैसे भारत देश को लाभ पहुंचा है? प्रमुख लाभों को केवल बिन्दुओं में लिखिये।
5. बहुराष्ट्रीय निगमों से विकासशील देशों को क्या–क्या हानि पहुंची है,? केवल बिन्दुओं में उत्तर लिखिये।
6. क्या आप के विचार में बहुराष्ट्रीय निगमों की कार्यविधि पर रोक लगाये जाने की आवश्यकता है? संक्षेप में लिखिये।
7. तकनीकी–हस्तान्तरण तथा बहुराष्ट्रीय निगम पर एक टिप्पणी लिखिये।

30.8 सारांश

इस प्रकार हम ये देखते है कि बहुराष्ट्रीय निगम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के ऊपर एक ऐसा प्रयास है जिसके द्वारा विकसित राष्ट्र तथा विकासशील राष्ट्र एक दूसरे से तालमेल करके उन कम्पनियों का अथवा निगमों को अपने देश में कार्य करने की स्वीकृति देते है जो कई राष्ट्रों द्वारा मिला–जुला कर बनाई जाती है । सामान्यतया इनकी तकनीक अधिक उत्तम होती है तथा इनके वित्तीय स्रोत भी अधिक होते है । इनकी प्रबन्ध क्षमता व्यापक तथा आधुनिक होती है और इनका क्षेत्र लगभग अन्तर्राष्ट्रीय होता है । इन निगमों के कारण कोई राष्ट्र बिना प्रत्यक्ष विदेशी सहायता अथवा तकनीक के बगैर विकास कर सकता है । पूंजी विनियोग जो महत्वपूण समस्या है उसका हल हो जाता है । विदेशी नई तकनीक जो उसके पास नहीं है, वह प्राप्त हो जाती है, देश में रोजगार बढ़ता है । वास्तव में आज की अवस्था में तकनीक इतनी विकसित हो गई है और दूरसंचार इतना व्यापक तथा क्षमतापूर्ण हो गया है कि संसार की दूरी सिकुड़कर बहुत कम हो गई है । समस्त संसार ही एक कुटुम्ब बन गया है । अब ये कहना कि बहुराष्ट्रीय निगम सदैव देश के हित में नहीं होतें है उपयुक्त न होगा। वास्तव में यदि इनका भली प्रकार से नियंत्रित किया जाये और इनसे होने वाले लाभों तो अधिकतर उन्हीं देशों में पुन : लगाया जाये जहां ये उत्पन्न हो रहे है तो इसमें कोई संदेह नहीं कि राष्ट्रीय निर्माण का यह सरल तरीका है । प्राय : ऐसा देखा गया है कि इन निगमों के अभाव में विकासशील देशों को बड़ी मात्रा में विदेशी ऋण तथा तकनीक लेनी पड़ी है जिससे नाना प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न हुई है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुराष्ट्रीय निगमों की कार्य विधि में कई दोष भी है यह निगम अधिकतर लाभ देश से बाहर ले जाते है तथा देश के लोगों के कल्याण का उतना ध्यान नहीं देते, जितना कि देना चाहिये। (जैसे भोपाल गैस त्रासदी) कभी–कभी ऐसा भी समझा जाता है कि ये अपनी तिरस्कृत तकनीक को अन्य देशों पर थोपते है । और इस प्रकार यह तकनीक जिस देश में लगाई जा रही है उसकी परिस्थितियों के अनुकूल नहीं होती। निश्चय ही देश को लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है । प्राय : ऐसा भी कहा जाता है कि निगमों के माध्यम से पाश्चात्य देश नये देशों पर अपना आधिप्रत्य बनाये रखना चाहते है । इस प्रकार दासता अथवा उपनिवेशवाद का यह एक नया स्वरूप है ।

30.9 शब्दावली

1. **श्रम प्रधान तकनीक : –** यह तकनीक मुख्य रूप से विकासशील राष्ट्रों में, प्रयोग की जाती है इसमें श्रम का प्रयोग अधिक होता है, परन्तु उत्पादकता कम होती है । इसमें रोजगार अधिक होता है।
2. **पूंजी प्रधान तकनीक :–** यह पाश्चात्य तकनीक है, इसमें अधिक पूंजी लगाई जाती है । इसका आधार आधुनिक मशीन तथा उपकरण होता है । उत्पादकता अधिक होती है परन्तु रोजगार घट जाता है।
3. **उपयुक्त तकनीक : –** यह तकनीक ऊपर की दोनों तकनीको के बीच का मार्ग है, इसमें स्थानीय बातो को ध्यान में रखा जाता है तथा परिस्थितियों के अनुसार इसे श्रम–प्रधान या पूंजी–प्रधान बनाया जाता है । जोर इस बात पर होता है कि पर्याप्त रोजगार इससे उत्पन्न हो तथा उत्पादन भी ठीक हो। इसी को राष्ट्रीय तकनीक अथवा देशी तकनीक भी कह सकता है।
4. **आविष्कार –** आविष्कार का अर्थ सैद्धान्तिक रूप से किसी नयी चीज का जन्म देना है जिसका आधार विज्ञान तथा तकनीक होता है।
5. **अन्वेषण : –** इसका यह तात्पर्य है कि अविष्कार को उत्पादन कार्य में प्रयुक्त करके व्यापारिक प्रयोग किया जाये।
6. **अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संस्थायें :–** ये संस्थायें मुख्य रूप से दो प्रकार की है –

   (अ) **विश्व बैंक:–** जो विकास कार्यो के लिये ऋण देता है।

   (ब) **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष –** जो भुगतान सन्तुलन को सही रखने के लिये ऋण देता
7. **व्यापार–सन्तुलन:–** इसमें केवल वस्तुओं के आयात–निर्यात को ही रखा जाता है।
8. **भुगतान सन्तुलन :–** इसमें समस्त दृश्य अ अदृश्य चीजों को सम्मिलित? किया जाता है जिसमें पूंजी आदि का हस्तान्तरण भी सम्मिलित है।
9. **आयात–प्रतिस्थापन:–** इसके अन्तर्गत आयात की जाने वाली वस्तु के देश के अन्दर ही उसका विकल्प ढूंढा जाता है जिससे विदेशी मुद्रा की बचत हो।
10. **लाभ को बाहर भेजना:–** बहुराष्ट्रीय निगम होने वाले लाभ को अपने देशों को भेजती है जिनका अनुपात भिन्न–भिन्न होता है।
11. **मुक्त व्यापार:–** इसके अन्तर्गत व्यापार पर किसी प्रकार की रोक–टोक नहीं होती।

30.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की हेन्डबुक ऑफ एअरलाइन्स स्टेटिस्टिक्स, 1975
2. सांख्यिकी वार्षिक पुस्तक, 1972 – (पेन्सि–यूरेस्को 1973)

3. बुलेटिन ऑफ द सोसाइटी फॉर लेटिन अमेरिका कन्ट्रीज, नं० 26 मार्च 1976
4. आर० एफ० कुट्रेल: एग्रीकल्चरल ट्रैक्टर कैम्ब्रिज : 1973
5. नेशनल काउन्सिल फॉर एपलाइड इकोनोमिक रिसर्च विदेशी तकनीक तथा विनियोग न्यू देहली. 1971

30.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बहुराष्ट्रीय निगम ऐसे निगम होते है जो कई राष्ट्र मिलकर बनाते है पर इनका कार्यक्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय होता है । मुख्य रूप से ये विकासशील राष्ट्रों में कार्य करते है । इनमें मुख्य रूप से अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी के द्वारा बनाये गये निगम होते है।
2. ये निगम अधिक पूंजीगत उद्योगों में पैसा लगाते है तथा इनका अधिक जोर तकनीक के विकास और शोधकार्य पर होता है । साथ ही साथ इनका आकार बहुत बड़ा होता है । और उत्पादन में विभिन्नता अधिक होती है । ये अधिक मजदूरी देते है । प्रबन्ध होता है, तथा विज्ञापन पर भी जोर देते है।
3. इनका मुख्य उद्देश्य विकसित तकनीक को अन्य देशों तक पहुंचाना है । साथ ही नये–नये उत्पादन को इन देशों को देना होता है।
4. यह प्रश्न विवादात्मक है क्योंकि एक प्रकार से इन निगमों से भारतवर्ष लाभ पहुंचा है जैसा कि उपसंहार में बताया गया है।
5. बहुराष्ट्रीय निगमों से विकासशील राष्ट्रों को कई प्रकार की कठिनाइयां महसूस हुई है । इनका भी उल्लेख उपसंहार में कर दिया गया है।
6. वास्तव में इन निगमों पर सम्पूर्ण रोक लगाने की जरूरत नहीं है । क्योंकि देश में पूंजी की कमी है और हमारी औद्योगिक नीति के अनुसार अधिकाधिक विदेशी पूंजी की जरूरत है । परन्तु इस बारे में सतर्कता आवश्यक है । हमें अपनी परिस्थिति अनुसार भी करना चाहिये ताकि स्वदेशी तकनीक को बढ़ावा मिले।
7. जैसा उपसंहार में बताया जा चुका है । तकनीकी हस्तान्तरण से नये देशों को लाभ हुआ है । परन्तु इस बारे में हमें यह देखना चाहिये कि इस तकनीक से हमारी राष्ट्रीय तकनीक के विकास पर किसी प्रकार का बुरा असर नहीं पड़ता।

परिशिष्ट

जुलाई 1991 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा के बाद भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रति उदारवादी नीति अपनाई गई। जिससे भारत में विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग में काफी वृद्धि हुई। जिसे निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका 30.2

प्रत्यक्ष विनियोग की राशि मे पिछले वर्षों में हुई वृद्धि

(करोड़ डालर में)

वर्ष	1990–91	1991–92	1992–93	1993–94	1994–95	1995–96
विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग (शुद्ध राशि)	6.8	15.0	34.1	58.6	131.4	213.3

इकाई 31

विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र : एक अवलोकन

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य
31.1 प्रस्तावना
31.2 भारत में सेज
31.3 विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों के लाभ
31.4 सेज से जुड़े मुद्दे व इनके प्रति आपत्तियां
31.5 विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र अधिनियम 2005
31.6 सेज - एक विफल होता हुआ प्रयोग
31.7 सेज के प्रति सही नीति क्या हो -
31.8 निष्कर्ष
31.9 संदर्भग्रंथ

31.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- जान सकेंगे कि विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र के क्या लक्ष्य रहे है?
- भारत में विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में कहा तक सफल रहा है?
- विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों का भारत में वितरण किस प्रकार का है?

31.1प्रस्तावना

विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र, किसी देश के भीतर एक ऐसे भौगोलिक क्षेत्र को प्रदर्शित करता है जिन्हें आयात, निर्यात, उत्पाद शुल्क आदि के संबंधमें कुछ ऐसी सुविधायें तथा रियायतें प्राप्त है जो गैर विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र को नहीं अनुमन्य है । विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र का अग्रेंजी रूपान्तर Special Economic Zone (SEZ)है अत: इस कारण लघुकृत्त नाम सेज भी है । जैसा कि ऊपर बताया गया है कि सेज को अनेक अनुमन्य सुविधाएं प्राप्त है इसी कारण इसे देश मे स्थित विदेशी क्षेत्र कहा जाता है। इनका प्रमुख उद्देश्य निर्यात उत्प्रेरण तथा संर्वधन है।

31.2 भारत में सेज

विश्व में विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र की अवधारणा हमारे पड़ोसी देश चीन से उद्भूत हुई है । जबकि भारत में सबसे पहला कान्डला में 1965 में निर्यात प्रोत्साहित करने के लिए निर्यात-प्रसंस्करण क्षेत्र

(Export Processing Zone- EPZ) खोला पर EPZ मॉडल बहुत अधिक प्रभावी नहीं रहा, इसलिए इसकी कमियों को ध्यान में रखते हुए इन्हें दूर करने हेतु भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय ने सन् 2000 में सेज मॉडल लागू किया। यह मॉडल निजी क्षेत्र की भागीदारी पर आधारित है । इसे उच्च कोटि की अवसंरचना तथा केन्द्र व राज्य सरकारों से राजकीय प्रोत्साहन, न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप तथा नियमन पर उपलब्ध है।

इसके अतिरिक्त पहले से स्थापित निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों में (EPZs) को भी अब विशेष आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तित किया जा रहा है । इस प्रकार कांडल एवं सूरत (गुजरात), सांताक्रूज एवं मुम्बई (महाराष्ट्र), फाल्टा (प. बंगाल), चैन्नई (तमिलनाडु) विशाखापटनम (आंध्र प्रदेश) और नोएड़ा (उत्तर प्रदेश) में स्थित निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों (EPZs) को विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों (SEZs) में परिवर्तित कर दिया गया है।

सेज की स्थापना के उद्देश्य –

1. विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना के लिए मुख्य तर्क कुछ चुने हुए क्षेत्रों में संसाधनों के संकेन्द्रण द्वारा निर्यात को बढ़ावा देना है । यह नीति अप्रैल 2000 में चालू की गयी ताकि निर्यात के लिए अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से प्रतिस्पर्धी और असुविधा मुक्त वातावरण कायम किया जा सके।
2. इन इकाइयों की स्थापना विनिर्मित वस्तुओं (Manufactured goods) या सेवाओं को उपलब्ध कराने के लिए की जा सकती है।
3. विशेष आर्थिक क्षेत्र में स्थापित इकाई को शुद्ध विदेशी मुद्रा अर्जक (Net Foreign Exchange Earner) का कार्य करना है, परन्तु इस पर ऐसी कोई शर्त नहीं लगाई जाएगी कि उसे अपने कुछ उत्पादन का विशिष्ट अनुपात निर्यात करना होगा।
4. भारत मं विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना के पीछे प्रमुख कारण निर्यातों के माध्यम से तीव्र औद्योगिकीकरण को प्रोत्साहन देना है । इस प्रकार सेज की प्रणाली को भारत में औद्योगिकीकरण की नई नीति के रूप में स्वीकार किया गया है।

विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र (सेज) को प्राप्त विशेष अधिकार -

1. विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र के लिए भूमि के बड़े भाग सरकार द्वारा अधिग्रहण कर निगमों अथवा विकास कर्ताओं (डेवलपर्स) को उपलब्ध कराए जाएंगे। एक मूल शर्त यह होगी कि विशेष आर्थिक क्षेत्र का 25 प्रतिशत क्षेत्र निर्यात से संबंधित क्रियाओं के लिए इस्तेमाल किया जाएगा और शेष 75 प्रतिशत क्षेत्र का प्रयोग आर्थिक एवं सामाजिक संरचना के लिए इस्तेमाल किया जाए। विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र (सेज) लिए उपलब्ध लाभों एवं रियायतों की उपलब्धि समग्र क्षेत्र के लिए होगी।
2. सेज के अन्तर्गत लगने वाली इकाइयों/निगमों को करों में राहत दी जाती है, जैसे आयकर में प्रथम पांच वर्षों के लिए 100 प्रतिशत की छूट, अगले पांच वर्षों के लिए 50 प्रतिशत की छूट और यदि आगे उद्यमकर्ता अपने आधे मुनाफों को अपने उपक्रम में ही लगाते हैं तो पुन: आयकर की 50 प्रतिशत छूट अगले तीन वर्षों के लिए जारी रखी जा सकती है । इस

प्रकार सेज की इकाइयों को काफी मात्रा में राजकीय छूट मिल जाती है । आयकर के अलावा सेज में विकासकर्ताओं व उत्पादक - इकाइयों को अन्य प्रकार के करों में भी राहतें दी जाती है, जैसे सीमा-शुल्क, उत्पाद-शुल्क, मूल्यवर्धित कर (वैट), डेवलपपर्स के लिए न्यूनतम वैकल्पिक कर (मैट) व कम्पनी लाभांस वितरण कर से छूट दी गई है । डेवलपर्स को सीमेन्ट, इस्पात, विद्युत के साज-सामान आदि पर भी करों में रियायत दी जाती है, ताकि उनको निर्माण कार्य में सुविधा रहे और कम लागत पर काम करवाया जा सके। उनको कर की छूटें 10 वर्ष तक की अवधि के लिए दी जाती है।

3. विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र (सेज), सरकारी क्षेत्र, गैर-सरकारी क्षेत्र, या सयुक्त क्षेत्र में या किसी राज्य सरकार के साथ सहयोग से निगमों द्वारा कायम किए जा सकते है।
4. विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र विकास के शुल्क-मुक्त एन्वलेव हैं जिन्हें व्यापार, शुल्कों एवं प्रशुल्कों के लिए विदेशी क्षेत्र समरूप जाता है । यह नीति इन क्षेत्रों के विकासको (Developers) जो इन इलाको में अपनी इकाइयां स्थापित करेंगे बहुत से राजकोषीय एवं विनियामक प्रोत्साहन प्रदान करती है।
5. विशेष आर्थिक क्षेत्रों को श्रम कानूनों के पालन से छूट दी गयी है ताकि वे औद्योगिक इकाइयां स्थापित करने के लिए उद्यमकर्ताओं को आकर्षित कर सकें। श्रम-आयुक्त (Labour commissioner) को विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र (सेज) के निरीक्षण का अधिकार नहीं होगा, यह अधिकार बचाव और पर्यावरण के मानदण्डों को लागू करने के लिए उपलब्ध नहीं होगा। विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों (सेज) में सभी औद्योगिक इकाइयों एवं प्रतिष्ठानों को सार्वजनिक उपयोगिता सेवा (Public utility services) घोषित किया जाएगा जिनमें हड़ताल गैर-कानूनी होगी। इसका अभिप्राय यह कि विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र औद्योगिक विवाद कानून (1947) के प्रावधानों का पालन करने के लिए प्रतिबद्ध नहीं होगा। उन्हें किसी भी सीमा तक ठेका-मजदूर (Contact Labour) काम पर लगाने की स्वतंत्रता होगी। ठेका मजदूर (विनियमन एवं उन्मूलन) कानून का भी कुछ बाह्य क्रियाओं के लिए संशोधन किया जाएगा।
6. क्षेत्र-विशेष इकाइयों के लिए अतिरिक्त क्रियाओं की भी इजाजत होगी जिनमें होटल, स्कूल, शैक्षणिक एवं तकनीकी संस्थान शामिल है । बहु-उत्पाद क्षेत्र को बन्दरगाहों, हवाई अड्डों एवं गोल्फ कोर्सिस की भी इजाजत होगी।
7. विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र (सेज) में 7500 मकानों, 100 कमरे का होटल, 25 बिस्तर के अस्पताल, स्कूलों एवं शैक्षणिक संस्थानों और 50000 वर्गमीटर के मल्टी प्लैक्स की भी इजाजत होगी। एक अति उत्पाद के लिए आवंटित विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र के लिए 25000 मकानों 250 कमरों का होटल, 100 बिस्तरों का अस्पताल और 200000 वर्गमीटर के मल्टी प्लैक्स की इजाजत होगी।

विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र संबंधी नीति- चीनी अनुभव से प्रेरित

सेज की स्थापना के लिए प्रारंभिक प्रेरणा चीन में इनकी प्रगति व सफलता से मिली है । चीन ने 1980 में 14 समुद्री-तटीय शहरों में विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र कायम किए। वहां शेन्जेन व शंघाई में सेज की वजह से तीव्र आर्थिक उत्थान देखने को मिला। चीन में सेज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य इन क्षेत्रों को दोहरा कार्यभार सौंपना था ताकि वे विदेश उन्मुख अर्थव्यवस्था के लिए ''खिडकी'' का कार्य कर सकें जिसके परिणास्वरूप वे निर्यात को बढ़ावा देकर विदेशी मुद्रा जनित कर सके और उन्नत टेक्नोलॉजी का आयात करें। परिणामत: विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र (सेज) आर्थिक विकास को त्वरित करने का माध्यम बन सकें। इन क्षेत्रों में विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए, सीमा शुल्क और आयकर समाप्त कर दिए गए जिसके चलते चीन को अपने समुद्र तटीय क्षेत्रों को उन्नत करने और इन क्षेत्रों के आर्थिक विकास को त्वरित करने में सहायता मिली। सेज नीति के माध्यम से चीन विदेशी - वित्त पोषित उद्यमों को आकर्षित कर 30 अरब डॉलर निवेश प्राप्त करने में सफल हुआ। इसके अतिरिक्त लगभग 5000 से अधिक घरेलू कम्पनियों द्वारा 20 अरब चीनी युआन का निवेश इन क्षेत्रों को प्राप्त हुआ। इसके परिणामस्वरूप चीन में छ: आधारभूत उद्यागों का बड़े पैमाने पर विस्तार तथा विकास संभव हो सकता था जैसे - ओटोमोबाइल और उनके पार्टस, माइक्रो-इलेक्ट्रानिक्स और कम्प्यूटर, घरेलू विद्युत उपकरण, जैव दवाईयों, ऑप्टिकल एवं बिजली के उत्पाद।

इस प्रकार चीन में सेज नीति के द्वारा जहां एक ओर समुद्र तटीय क्षेत्रों के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास को बड़ी तीव्र गति प्राप्त हुई, वहीं दूसरी ओर चीन के आन्तरिक क्षेत्रों को इसका लाभ प्राप्त न हो सका इस प्रकार इस नीति ने विकास के दृष्टिकोण से क्षेत्रीय विषमताओं की खाई को चौड़ा कर दिया। अत: सेज नीति तटीय क्षेत्रों तथा चीन के आन्तरिक प्रदेशों के भी एक विभाजक के रूप में बनकर उभरी। इसके साथ साथ चीनी सरकार द्वारा समुद्री तटीय क्षेत्रों तथा अन्य आन्तरिक क्षेत्रों में उभरी इस असमानता की समस्या संबंधीगलती को स्वीकार कर 2006 में 11वीं पंचवर्षीय योजना में सेज नीति में कई परिवर्तन किए।

भारत में विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों की वर्तमान स्थिति -

सेज नीति को भारत में प्रभावी बनाने के उद्देश्य से सरकार ने विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र अधिनियम 2005 पारित किया। यह अधिनियम फरवरी 2006 को लागू हुआ। लगभग दस वर्षों में 07 दिसम्बर 2016 तक देश में 405 SEZs के लिए औपचारिक मंजूरी दी जा चुकी है । इसके अतिरिक्त 07 दिसम्बर 2016 तक देश में 33 SEZs को सैद्धान्तिक मंजूरी दी जा चुकी है । जबकि निर्यातक SEZS (जिनमें केन्द्रीय सरकार+राज्य सरकार/निजी सेज + अधिसूचित सेज अधिनियम 2005 के तहत) कुल 20 है । देश में विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों का राज्यवार वितरण निम्न सारणी में दिया हैं –

क्र.सं.	राज्य/सं.शा. प्रदेश	औपचारिक	सैद्धान्तिक	अधिसूचित	निर्यातक

		मंजूरी	मंजूरी		सेज
1	आंध्र प्रदेश	29	04	24	19
2	चण्डीगढ़	02	00	02	02
3	छत्तीसगढ़	02	01	01	01
4	दिल्ली	02	00	00	00
5	गोवा	07	00	03	00
6	गुजरात	28	04	24	18
7	हरियाणा	23	03	20	07
8	झारखंड	01	00	01	0
9	कर्नाटक	02	00	41	25
10	केरल	29	00	25	16
11	मध्यप्रदेश	09	01	05	02
12	महाराष्ट्र	55	11	50	26
13	मणिपुर	01	00	01	00
14	नागालैण्ड	02	00	02	00
15	उड़ीसा	07	00	05	03
16	पुड्डुचेरी	01	01	00	00
17	पंजाब	05	00	03	02
18	राजस्थान	09	01	08	04
19	तमिलनाडु	48	04	46	36
20	तेलंगाना	52	00	46	27
21	उत्तर प्रदेश	24	01	19	11
22	पश्चिम बंगाल	07	02	05	07
	सकल योग	**405**	**33**	**331**	**206**

(स्रोत 'रिपोर्ट SEZs in India, उद्योग व वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार link, www.sezindia.gov.in)

इस प्रकार पहला सेज जो गुजरात राज्य के कांडला में प्रारंभ किया गया था वहीं औपचारिक रूप से स्वीकृत सेज के मामले में प्रथम व द्वितीय स्थान क्रमशः कर्नाटक तथा महाराष्ट्र को प्राप्त है । वहीं दूसरी ओर अधिसूचित सेज के मामले में प्रथम स्थान पर महाराष्ट्र द्वितीय स्थान पर संयुक्त रूप से तमिलनाडु तथा तेलंगाना है ।

30 जून 2015 तक सेज में कुल निवेश 348983 करोड़ रूपये था जबकि 2014-15 में निर्यात 463770 करोड़ रूपये के थे। सेज में कुल 15.004 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त हैं। इनमें से 13.69 रोजगार अवसर 2006 में सेज नियमों को लागू करने के बाद उपलब्ध कराए गए है । देश में कुल 206 सेज निर्यात कर रहे है । जिसमें सर्वाधिक सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित है । सेज अधिनियम

2005 के अन्तर्गत सेज में स्वचालित मार्ग के माध्यम से 100 प्रतिशत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति है।

31.3 विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों के लाभ

- सेज की स्थापना से आवश्यक न्यूनतम आधारित संरचना का विकास बड़ी आसानी से संभव हो पाया है । अब उद्योगों के लिए आवश्यक सभी आधारित संरचना को विकसित करने में किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं है।
- औद्योगिक विकास के संबंध में सेज की भूमिका महत्वपूर्ण है जिसके चलते त्वरित औद्योगिक विकास संभव हो पाया है।
- सेज की स्थापना से रोजगार के नए अवसर सृजित हुए है जो भारत जैसे युवा तथा जनाकिंकीय लाभ वाले देश के लिए किसी औषधि से कम नहीं है।
- इनकी स्थापना से निवेश के नए अवसर प्राप्त हुए तथा सेज अधिनियम 2005 के तहत शत-प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को लागू करने से इस क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में पूंजी निर्माण का कार्य हो पाया है।
- सेज की स्थापना में देश के आर्थिक विकास की गति में भी परिवर्तन आया है पिछले डेढ़ दशक में हमारे देश की आर्थिक संवृद्धि का स्तर अन्य देशों की अपेक्षा का उच्च रहा है।
- सेज की स्थापना तथा निर्यात सेज के चलते भारत के विदेशी व्यापार खासकर निर्यात क्षेत्रों में उत्साह वर्द्धधक प्रगति देखने को मिली है।

31.4 सेज से जुड़े मुद्दे व इनके प्रति आपत्तियां

हाल ही के वर्षों में सेज द्वारा तीव्र आर्थिक विकास के विरूद्ध कई प्रकार के सवाल उठाए गए हैं तथा इनकी तीखी आलोचना भी की गई है जिनमें से कुछ निम्नलिखित है -

1. भूमि अधिग्रहण

सेज की स्थापना के लिए बडी मात्रा में भूमि की आवश्यता रहती है जिसके चलते भूमि अधिग्रहण जिसमें कृषिगत भूमि के अधिग्रहण का मुद्दा सर्वाधिक विवादास्पद रहा है कई प्रदेशों में तो इस मुद्दे के चलते भारी राजनीतिक संघर्ष भी देखने को मिलें है । इस संदर्भ में प्रमुख सवाल यह उठते है कि भूमि अधिग्रहण का कार्य कौन करें? सरकार करें या स्वयं निजी निगमित क्षेत्र के द्वारा सीधे कृषको से की जाए। दोनों द्वारा अधिग्रहण करने से अपने अपने लाभ तथा दोष है । इसी संदर्भ में इस महत्वपूर्ण प्रश्न आता है कि मुआवजा कैसे तय किया जाए ? जिस से कि किसानों तथा भू-स्वामियों के हितों की संरक्षा के साथ साथ निगमों के हितों का भी ध्यान रखा जा सकें। तीसरा प्रश्न आता है कि मुआवजा देने की व्यवस्था कैसे की जाए? जिससे कि सही व्यक्तियों के पास मुआवजे की राशि पहुंच सके। कई बार पूर्व के अनुभवों जैसे किसी क्षेत्र विशेष में बांध, सड़क

अथवा खान परियोजनाओं के संबंधमें सरकार द्वारा किए मुआवजे के भुगतान वायदों का समय पर पूरा नहीं करने से किसानों में सरकार के प्रति अविश्वास तथा भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । स्थानीय व राज्यस्तरीय नेता, अनेक बिचौलिए व भूमाफिया कई बार स्थिति को और अधिक भ्रामक तथा जटिल बना देते हैं और भूस्वामी अथवा कृषक कई प्रकार की अफवाहों का शिकार हो जाते हैं। इसलिए सरकार मुआवजे की पारदर्शी व स्पष्ट प्रक्रिया अपनानी चाहिए और भूमि हथियाने वालों के प्रति पूरी सावधानी बरतनी चाहिए।

2. विस्थापितों के पुनर्स्थापन की समस्या

सेज के लिए आवश्यक भूमि का अधिग्रहण जिन किसानों से किया जाता है उनको मौद्रिक मुआवजा देना ही पर्याप्त नहीं माना जाता है । मंजूरी प्राप्त सेज की स्थापना के लिए लगभग 200000 हेक्टर से अधिक भूमि की आवश्यकता होगी। इसके कारण इतनी बड़ी मात्रा में भूमि अधिग्रहण करने के लिए बहुत से लोगों को विस्थापित करना पड़ेगा। इतना ही नहीं उपजाऊ तथा सिंचित भूमि के अधिग्रहण की स्थिति में उन बंटाईदारों तथा खेतिहर मजदूरों के लिए वैकल्पिक आय के साधन उपलब्ध कराना आवश्यक है हाल ही में जो इन भूखण्डों पर कृषिगत कार्य करके अपना जीवनयापन का कार्य करते थे। यदि सेज के लिए बंजर भूमि या व्यर्थ भूमि का प्रयोग किया जाता है तो यह समस्या उत्पन्न नहीं होती है । परन्तु खेती के लिए उपजाऊ तथा सिंचित भूमि का अधिग्रहण किया जाता है तो किसानों, बदाईदारों तथा खेतिहर मजदूरों के सामने रोजी रोटी का जटिल प्रश्न खडा हो जाता है, जिसका समाधान रोजगार के वैकल्पिक साधनों को विकसित करने से ही संभव है ।

विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित हुए लोगों के पुन:स्थापित एवं पुर्नवास हेतु यू.पी.ए. सरकार ने 11 अक्टूबर 2007 में नई पुनर्वास एवं पुन: स्थापन की नीति जारी की जो पूर्व की 2003 की नीति का प्रतिस्थापन करेगी। इस नीति का उद्देश्य ऐसा संतुलन कायम करना है जो विकास क्रियाओं के लिए भूमि की आवश्यकता और भू-स्वामियों तथा अन्य ऐसे व्यक्तियों के हितों की सुरक्षा करना है जिनकी आजीविका प्रभावित हुई है । नयी नीति के लाभों में शामिल है : -

भूमि के बदले भूमि प्रत्येक परिवार के कम से कम एक व्यक्ति के लिए रोजगार, प्रभावित परिवारों के सदस्यों की शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियां, प्रभावित व्यक्तियों को ठेका या प्रोजेक्ट परिसर में अवसरों या इसके इर्द गिर्द सहकारी समितियां कायम करने में प्राथमिकता, प्रभावित परिवारों को दुकान, वर्किंग शैड़ परिवहन लागत, अस्थायी रहने का मकान और इसके साथ व्यापक आधार संरचना सुविधाओं को उपलब्ध कराने जैसी बातें शामिल है । इन सभी लाभों को उपभोक्ता कीमत सूचकांक से जोड़ा गया है ।

3. खाद्यान्न उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव

एक सेज के लिए आवश्यक भूमि का अधिग्रहण यदि उपजाऊ या सिंचित भूमि से किया जाता है तो इससे कृषि के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर संकट उत्पन्न हो जाता है जैसे - अलवर (राजस्थान) के नीमराना तथा नोएडा क्षेत्र में अधिग्रहण की

गई भूमि अत्यन्त ही उपजाऊ तथा सिंचित श्रेणी की होने से उन क्षेत्रों में खाद्यान्नों के उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

4. सेज बाजार मैत्रीपूर्ण नहीं है -

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री नीतीन देसाई का मत है कि सेज बाजार मैत्रीपूर्ण (मार्केट फ्रैण्डली) नहीं है, हालांकि ये व्यवसाय मैत्रीपूर्ण (बिजनेस - फ्रैण्डली) अवश्य है । इसका अर्थ यह है कि सेज की स्थापना से व्यवसायियों के हितों का ध्यान रखा हैं जो कि इनको प्राप्त होने वाली रियायतों से स्पष्ट झलकता है जैसे - कर संबंधी रियायतें, श्रम-कानूनों में रियायतें देना तथा अनुदान संबंधी रियायतें आदि। परन्तु ये आर्थिक सुधारों व उदारीकरण की मूल भावना के अनुकूल नहीं है, जिसके तहत प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया जाता है और किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता है इसलिए सेज से राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों व व्यवसायियों को अनुचित लाभ उठाने का अवसर मिलता है । नीतीन देसाई के अनसार सेज की व्यवस्था भेदभावपूर्ण होने के कारण उतना लाभ नहीं पहुंचा पाएगी। जितना लाभ इसने चीन में पहुंचाया है।

5. राजस्व घाटे में वृद्धि -

सेज की स्थापना से सरकार की भारी मात्रा में राजस्व घाटा उठाना पड़ा है । पूर्व वित्त मंत्री पी.चिदम्बरम ने अनुमान प्रस्तुत किया था कि सेज में लगभग 3.60 लाख करोड़ रूपये का कुल निवेश होना, जिस पर कुल राजस्व हालि लगभग 1.74 लाख करोड़ रूपये की होगी। सार्वजनिक वित्त व नीति के राष्ट्रीय संस्थान, नई दिल्ली के फेलो आर. कविता ने भी अपने अनुमानों में बतलाया था कि से लाभ कम और हानि ज्यादा होगी। उनके अनुमानों के अनुसार प्रत्यक्ष करों व परोक्ष करों के रूप में कुल क्षति का वर्तमान मूल्य सृजित किए गए आधार संरचना के मूल्य से तिगुना होगा। इस प्रकार उनके अनुसार सेज की स्थापना से समग्र निवेश में विशेष वृद्धि नहीं हो पाएगी। नवम्बर 2014 में जारी, कैग रिपोर्ट के अनुसार 2006-07 से 2012-13 के मध्य सेज की 83,104 करोड़ रूपये की कर रियायते दी गई है (55158 करोड़ रूपये प्रत्यक्ष करों तथा 27,496 करोड़ रूपये अप्रत्यक्ष करों पर रियायत के रूप में) । इसके अलावा 1150 करोड़ रूपये की रियायतें अपात्र कंपनियों को दी गई तथा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कर प्रशासन में 27130 करोड़ रूपये की कमियां पाई गई।

6. छोटे/सूक्ष्म भू-स्वामियों को हानि

असमान आर्थिक शक्ति के कारण सूक्ष्म अथवा छोटे कृषको की अपनी भूमि का सही मूल्य नहीं मिल पाता हे, क्योंकि उनकी मोल भाव करने की क्षमता अत्यन्त न्यून या न के बराबर होती है । इसलिए सरकार को उनके हितों की रक्षा करनी चाहिए और उन्हें उचित मुआवजा दिलाया जाना चाहिये।

7. क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि

सेज के संबंध में अभी तक कुल जितना निवेश हुआ है उसका 83 प्रतिशत केवल पांच राज्यों में केन्द्रित है ऐसा अनुमान है कि अधिकतर निवेश देश के मात्र 20 जिलों तक केन्द्रित है इस प्रकार इसकी बहुत संभावना है कि सेज, उन राज्यों में स्थापित किए जाएंगें जिनमें पहले से ही विनिर्माण तथा निर्यात आधार अत्यन्त मजबूत है और हुआ भी यही जिसके चलते क्षेत्रीय असमानता और बढ़ गई। यही नहीं बहुत से क्षेत्र केवल सूचना प्रौद्योगिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी से सम्बद्ध सेवाओं के क्षेत्र में स्थापित किए जाने से भी असमानता उत्पन्न हुई क्योंकि विनिर्माण में सेज की संख्या अत्यन्त ही कम रही है।

8. नवीन अथवा शुद्ध निवेश पर विपरीत प्रभाव

सेज में करों की रियायतें व अन्य प्रेरणाएं दी गई हैं उनसे आकर्षित होकर गैर सेज की इकाइयां सेज में हस्तान्तरित हो गई है या होने के लिए तत्पर है जिसके चलते नवीन अथवा शुद्ध निवेश में वृद्धि की संभावना अत्यन्त न्यून हो गई है। गैर सेज की इकाइयों उन रियायतों, सुविधाओं, व प्रोत्साहनों को मांगने लगी है जो सेज की उत्पादन इकाइयों की प्राप्त हैं। अत: सेज व गैर सेज की इकाइयों में राजकोषीय लाभों को लेकर भेदभाव करना कठिन होता जा रहा है। केवल उत्पादन इकाई का स्थान मात्र बदलने से ही निवेश में वृद्धि नहीं हो जाती है।

31.5 विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र अधिनियम 2005 -

सेज नीति को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से सरकार ने विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र अधिनियम 2005 पारित किया। यह अधिनियम 2005 में पारित किया तथा फरवरी 2006 में लागू हुआ ।

सेज नियम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित है -

1. अभिशासन - इस अधिनियम की खास बात यह है कि इसमें सेज में शामिल सभी सहभागियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यापक सेज नीति ढांचा तैयार किया गया है। इस अधिनियम की एक और खास बात यह है कि निर्णय जल्द लिए जा सके तथा विभिन्न सरकारी विभागों से अनुमति लेने में अनावश्यक देरी न हो, इसके लिए एक ही जगह से सभी अनुमति प्रदान की जाने की व्यवस्था की गई है। इसे एकल खिड़की स्वीकृति के नाम से भी जाना जाता है। सेज को प्रोत्साहन देने तथा उनका क्रमबद्ध व सही विकास सुनिश्चित करने के लिए केन्द्र सरकार बोर्ड ऑफ अप्रूवल का गठन करेगी।

2. प्रेरणाएं (Incentives) - इस अधिनियम में आकर्षक राजकोषीय प्रेरणाएं प्रदान की गई है जैसे

1. सेज का विकास करने वाले तथा सेज में कार्यरत इकाइयों को सीमा शुल्कों, केन्द्रीय उत्पाद-शुल्कों, सेवा कर, केन्द्रीय बिक्री कर तथा प्रतिभूति लेने देन कर से छूट।

2. 15 वर्षों तक कर से छूट

- पहले 05 वर्ष तक 100 प्रतिशत छूट

- अगले 05 वर्ष तक 50 प्रतिशत छूट
- उससे अगले 05 वर्षों में पुन: निवेशित निर्यात लाभों के 50 प्रतिशत के बराबर छूट

सेज के विकासकर्ताओं को 15 वर्षों में से 10 वर्षों में आय कर से 100 प्रतिशत छूट।

3. आधारभूत संरचना -

विश्वस्तरीय आधारभूत संरचना के निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए बहुत से कदम उठाए गए है जिससे भारत विश्व का महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र बन सके। इस संदर्भ में मुक्त व्यापार व भंडारण क्षेत्र तथा व्यापार संबंधित विश्वस्तरीय अधारित संरचना का विकास को सर्वाधिक महत्व दिया जा रहा है । सेज में अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सेवा केन्द्र व बैंक भी होंगे जो विश्वस्तरीय वित्तीय सेवाएं प्रदान करेगी। आधारभूत संरचना के विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र की साझेदारी होगी। इसके अलावा केन्द्र सरकार के प्रत्येक सेज में सेज प्राधिकरण का गठन किया जाएगा जो नई आधारित संरचना का विकास करेगा तथा विद्यमान आधारित संरचना की मजबूत बनाएगा।

10 विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र पर सरकारी निर्णय, अप्रैल 2007 (GoM Decision on SEZs, April 2007) पश्चिमी बंगाल में नन्दीग्राम और सिंगूर में सरकार और जनता के मध्य संघर्ष के फलस्वरूप केन्द्र सरकार से आग्रह किया गया कि वह नयी सेज नीति जारी करें। राज्यों ने किसानों की भूमि का अधिग्रहण करने जो व्यापक विरोध किया गया उसके परिणामस्वरूप भारत सरकार ने 22 जनवरी 2007 के विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों पर रोक लगा दी जिसे केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों के समूह ने 05 अप्रैल 2007 की बैठक में समाप्त कर किया। इस बैठक के निर्णय निम्नलिखित रहे -

1- 83 सेज की मंजूरी दी गई।

2- सरकार ने किसी भी सेज प्रस्ताव के लिए 5000 हैक्टेयर की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी राज्य सरकारें, चाहे, तो इससे भी कम अधिकतम सीमा निर्धारित कर सकती है ।

3- प्रसंस्करण क्षेत्र के लिए कुल क्षेत्रफल के कम से कम 50 प्रतिशत था प्रयोग अनिवार्य कर दिया। जो आरंभ में 25 प्रतिशत था जिसे बाद में बढ़ाकर 35 प्रतिशत कर दिया गया था वह अब 50 प्रतिशत कर दिया गया।

4- भूमि अधिग्रहण अधिनियम के अधीन अब सरकारें अनिवार्य रूप से भूमि पर अधिग्रहण नहीं कर पाएंगी। केवल उन क्षेत्रों को छोड़कर जिन पर सरकारें स्वयं सेज स्थापित करना चाहती है निजी विकासकर्ताओं को विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना के लिए स्वयं अपने अपने बूते पर किसानों तथा अन्य लोगों से जमीन खरीदनी पड़ेगी।

5- जिन लोगों को सेज की स्थापना के कारण जमीन से विस्थापित किया जाएगा उनके लिए पुर्नवास की पूरी व्यवस्था की जाएगी। यह शर्त रखी जाएगी कि प्रत्येक विस्थापित परिवार के कम से कम एक व्यक्ति को वहीं सेज में रोजगार की गारण्टी दी जाए।

31.6 सेज - एक विफल होता हुआ प्रयोग

चीन में 1980 में 14 समुद्री - तटीय शहरों में विशेष आर्थिक क्षेत्र कायम किए। जिनका उद्देश्य इन क्षेत्रों को दोहरा कार्यभार सौंपना था ताकि वे विदेश उन्मुख अर्थव्यवस्था के लिए खिड़की का कार्य कर सकें जिसके परिणामस्वरूप वे अपने निर्यात को बढ़ाकर विदेशी मुद्रा अर्जित कर सके और उन्नत तकनीक का आयात करें। नतीजतन विशेष आर्थिक क्षेत्र ने आर्थिक विकास को त्वरित करने का माध्यम बनते हुए सम्पूर्ण विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। जिसके परिणामस्वरूप भारत सहित कुछ देशों ने अनुसरण करना प्रारंभ कर दिया। जिस प्रकार चीन में विशेष आर्थिक क्षेत्रों के विकास ने 06 आधारभूत उद्योगों तथा समुद्री तटीय 14 शहरों के विकास के माध्यम से क्षेत्रीय असमानता को बढ़ावा दिया उसी भांति भारत की सेज नीति के अधीन विनिर्माण समूहों के स्थान पर वास्तविक परिसम्पत्ति के निर्माणकर्ताओं बोलबाला रहा है जिन्होंने सेज विकासकर्ताओं का मुखौटा पहन रखा है वास्तव में 2005 के सेज अधिनियम में यह प्रावधान रखा गया कि अधिकृत भूमि के केवल 25 प्रतिशत, बाद में जिसे बढ़ाकर 35 प्रतिशत किया गया पर ही उत्पाद गतिविधियों की अनिवार्यता होगी जिसे अप्रैल 2007 में बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया गया। शेष भूमि का उपयोग घरों, मकानों, होटलों, व व्यावसायिक कार्यालयो के निर्माण के लिए किया जा सकता है । इस प्रावधान के कारण सेज विकासकर्ताओं को भवनों इत्यादि के निर्माण में बड़े पैमाने पर पैसा कमाने का अवसर दिखाई दिया।

परन्तु देशों के भीतर अनेक राज्यों तथा स्थानों पर किसानों ने सेज विकासकर्ताओं के इन प्रयासों का भरसक विरोध किया। पश्चिमी बंगाल में नन्दीग्राम तथा सिन्गूर में हिंसात्मक प्रदर्शन, गोवा में सेज के खिलाफ प्रदर्शन तथा महाराष्ट्र में ''महामुम्बई-परियोजना''का विरोध इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि सेज संबंधी नीति स्वीकार्य नहीं है भूमि अधिग्रहण की कठिनाइयों के चलते कई कंपनियों ने अपनी परियोजनाओं के पुनर्गठन की या समय सीमा बढ़ाने की तथा कुछ कम्पनियों ने अपनी परियोजनाओं का पूर्णतया परित्याग करके सेज स्थापना की अपनी जिम्मेदारी से मुक्ति पाने की चेष्टा की है ।

भूमि अधिग्रहण की कठिनाइयों के अलावा सेज विकास कर्ताओं के उत्साह को कम करने वाले अन्य कारण है - विश्वव्यापी मंदी जिससे निर्यातों पर बुरा असर पड़ने की संभावना है, प्रत्यक्ष कर नियमावली (Direct Tax code) के लागू होने का डर जिससे आय कर अधिनियम में इस प्रकार के व्यापक परिवर्तन हो सकते है जिनसे छूटों व रियायतों में कमी हो जाए, लाल-फीताशाही (Red tapism) इत्यादि।

योजना को लागू करने में आने वाली कठिनाइयों का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 436 अनुमोदित सेज में से केवल 347 को अधिसूचित किया जा सकता है तथा केवल 199 चालू है । CAG की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2006 से 2013 के दौरान सेज के लिए 60375 हेक्टर भूमि का अधिग्रहण किया गया था परन्तु 31886 हेक्टर (अर्थात् 53 प्रतिशत) भूमि का उपयोग नहीं किया जा सकता है । सरकार स्वयं इस बात को स्वीकार करती है कि निर्यात ढांचा सही नहीं है, विनिर्माण गतिविधयों का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है, क्षेत्र के फैलाव, असमतल है, अर्थात् क्षेत्रीय असमानताएं अत्याधिक रूप से विद्यमान है । क्योंकि यह इस बात से स्पष्ट होता है कि 83 प्रतिशत सेज केवल 05 राज्यों में स्थित है यही नहीं कार्यरत सेज की संख्या कम तथा सेज के आसपास का क्षेत्र पहले की भांति अविकसित रह गया है तथा अनेक विकास के लिए सेज ने कोई योगदान नहीं दिया है । वस्तुत: सच तो यह है कि वैश्विक आर्थिक मंदी तथा अस्थिर सरकारी नीतियों के परिणामस्वरूप सेज का पूरा अस्थिर सरकारी नीतियों के परिणामस्वरूप सेज का पूरा प्रयोग से अपने अन्त के कगार पर पहुंच रहा है । आज, जिस मंत्रालय ने सेज के विचार को पेश किया या तथा सेज की स्थापना के लिए कदम उठाए थे, वही मंत्रालय अब पीछे हट रहा है तथा सेज के स्थान पर 'राष्ट्रीय निवेश तथा विनिर्माण क्षेत्रों (National Investment and Manufacturing Zones) की स्थापना पर जोर दे रहा है, जिसकी सिफारिश नवम्बर 2011 में घोषित 'राष्ट्रीय विनिर्माण नीति (National Manufacturing policy) में की गई थी। विशेषज्ञों के अनुसार राष्ट्रीय निवेश तथा विनिर्माण क्षेत्रों के प्रयास सेज की गतिविधियों में आई शिथिलता की क्षतिपूर्ति करने के लिए हैं हालांकि इस संदर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जहां सेज में केवल निर्यातों पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है वहीं NIMZs का उद्देश्य घरेलू क्षेत्र में विनिर्माण गतिविधियों को प्रोत्साहित करना है ।

31.7 सेज के प्रति सही नीति क्या हो -

पश्चिमी बंगाल में सिंगूर व नंदीग्राम, महाराष्ट्र में ''महा मुम्बई परियोजना का विरोध तथा गोवा में सेज के खिलाफ प्रदर्शन की घटनाओं की देश में पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। इससे भारत की साख को विदेशों में भी भारी क्षति पहुंची है । इसमें कोई दो राय नहीं है कि सेज की स्थापना से आधुनिक किस्म के औद्योगिकीकरण को निर्यातों से जोड़ने में अत्यधिक मदद मिलेगी। लेकिन अब तक के देश विदेश में सेज के अनुभवों से हमें निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए ताकि हम इनकी स्थापना से सर्वाधिक लाभ प्राप्त कर सकें।

1 भूमि अधिग्रहण संबंधीसुझाव –

भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को पारदर्शी स्पष्ट व प्रत्येक दृष्टि से सकारात्मक बनाया जाना चाहिए। इस संबंध में प्रभावितकृषक वर्ग को पूर्ण विश्वास में लिया जाना चाहिए, उन्हें सरकारी सहयोग से भूमि का उचित मूल्य, क्षतिपूर्ति की राशि पुनर्वास की व्यवस्था व स्थापित उपक्रमों में उनकी शेयर होल्डिंग की न्यायोचित व्यवस्था आदि का लाभ दिया जाना चाहिए।

2 व्यावहारिक तथा व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाना –

सेज का आकार क्या है? इस संबंध में सरकार द्वारा व्यावहारिक तथा व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाया जाना आवश्यक है जैसे - सेज का आकार मल्टी प्रोजेक्ट इकाइयों के लिए आवश्यकतानुसार 5000 हैक्टेयर से अधिक रखा जाना चाहिए। इसी प्रकार सेज के निर्यात प्रोत्साहनों के अतिरिक्त विनिर्माण तथा विदेशी के क्षेत्रों पर भी ध्यान देकर इसे अपेक्षाकृत अधिक व्यावसायिक तथा व्यावहारिक बनाया जा सकता है।

3 सेज की गुणवतता पर ध्यान केन्द्रित करना

भारत में सेज की इकाइयों की संख्या बढ़ाने की अपेक्षा चीन की भांति उनकी संख्या को सीमित रखते हुए उनकी गुणवत्ता व कार्य कुशलता पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए जिससे कि इनसे अपेक्षित परिणाम निर्यात विनिर्माण तथा निवेश के क्षेत्र में प्राप्त हो सके।

4 सम्पूर्ण विकास आधारित होना चाहिए –

सेज की इकाइयों की सफलता के लिए डेवलपर्स व निगमों के हितों पर ध्यान देने के साथ साथ सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा, अभिनव विधियों व अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग को बढ़ाने पर भी बल दिया जाना चाहिए ताकि सेज बाजार - मैत्रीपूर्ण, सुधार - मैत्रीपूर्ण व समग्र विकास मैत्रीपूर्ण बनकर उभर सके। केवल व्यावसायिक प्रेरणाएं देकर, करों में छूटें देकर श्रम कानूनों को उदार बनाकर सरकार को संतोष नहीं करना चाहिए। उन्हें भेदभावों से दूर रख कर सम्पूर्ण विकास का प्रबल साधन बनाया जाना चाहिए।

5 क्षेत्रीय असमानतों में कमी करना -

सेज का केन्द्रीकरण कुछ स्थानों तक ही सीमित रहा है। इसके अन्तर्गत किए गए निवेश का 83 प्रतिशत भाग केवल 05 राज्यों तक सीमित रहा है और अधिकतर निवेश देश के 20 जिलों तक ही सीमित है जिससे क्षेत्रीय असमानता की समस्या उभरी है। सेज की स्थापना के संबंधमें भावी नीति इस प्रकार की हो जिससे औद्योगिक रूप से अपेक्षाकृत पिछड़े क्षेत्रों में इनकी स्थापना अधिक से अधिक हो सके तथा सेज का विकेन्द्रीकरण संभव हो सकें। इतना ही नहीं सेज उद्देश्य केवल निर्यात तक सीमित न रहकर इसे प्राथमिक क्षेत्र, विनिर्माण तथा निवेश क्षेत्र तक भी बढ़ाया जाना आवश्यक है।

31.8 निष्कर्ष

विशेष आर्थिक क्षेत्र के दृष्टिकोण पर जिससे औद्योगिकीकरण और निर्यात प्रोन्नति को बढ़ावा दिया जा रहा है, पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। इन क्षेत्रों तथा शेष देश के बीच विभेदक कराधान के कारण देश को 175000 करोड़ रूपये के कर राजस्व का नुकसान होने का सरकारी अनुमान है। इसकी तुलना में पिछड़े इलाको में नयी औद्योगिक इकाइयों को स्थापित करने की नीति न्यायोचित थी क्योंकि इससे उनकी अतिरिक्त लागत की भरपाई होती थी। परन्तु विशेष आर्थिक क्षेत्रों की इकाइयां तो महानगरों के इर्द-गिर्द स्थापित की जा रही है या की जा चुकी है। इस प्रकार भारत के सुदुर स्थित क्षेत्र या पिछड़े इलाको की हालत में कोई सुधार इस नीति से नहीं झलकता हैं।

इसके अतिरिक्त, चीन के अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चीन के पिछड़े इलाके बहुत ही पिछड़ गए है अब इनकी दूरी समुद्र-तटीय शानदार क्षेत्रों से ओर भी बढ़ गई है।

चाहें 11वीं तथा 12वीं पंचवर्षीय योजनाओं में, भारत में –"तीव्र विकास के साथ अधिक समावेशी विकास'' प्राप्त करने का लक्ष्य तय किया गया, वहां व्यवहार में विशेष आर्थिक क्षेत्रों की नीति के परिणामस्वरूप विकास के 'असमतापूर्ण एन्कलेव'' कायम कर रहे हैं जिनका परिणाम समावेशी विकास के विपरीत अपवर्जी विकास के रूप में व्यक्त हुआ है।

श्री राहुल बजाज, अध्यक्ष, बजाज ऑटो लि. विशेष आर्थिक क्षेत्रों की नीति की आलोचना करते हुए उल्लेख करते हैं ''मेरा विश्वास है कि वर्तमान नियमों के आधार पर कुल मिलाकर विशेष आर्थिक क्षेत्रों के कानून के आधार पर देश को कोई महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त नहीं होगा। जैसे ये इस समय हैं, ये विशेष आर्थिक क्षेत्र की इकाइयों को राष्ट्र को संभावितलाभ की तुलना में अनुपात से अधिक प्रोत्साहन उपलब्ध करा रहे हैं। (इक्नोमिक्स टाइम्स, अक्टबर 04, 2006)

अन्त में इस बात की ओर ध्यान देना होगा, कि निर्यात बढ़ाने के लक्ष्य की तरजीह देते हुए हम देश में खाद्य स्वावलम्बिता (Food Self-sufficiency) को कमजोर न कर दें। इस संबंधमें श्री मंगल राय, कृषि अनुसंधान की भारतीय परिषद के महानिदेशक ने उल्लेख किया है, चूंकि भू-क्षेत्र सीमित है और कृषि भूमि सबसे अधिक मूल्यवान है, हमें इस संबंधमें बहुत सावधानी बरतनी होगी। हमें देश की खाद्य सुरक्षा करना होगा। खाद्य सुरक्षा राष्ट्रीय सुरक्षा का अनिवार्य अंग है ।'' इसके साथ ही आशा है कि 13वीं सप्तवर्षीय या पंचवर्षीय योजना (2017-2023, 2017-2022) में सेज औद्योगिकीकरण के सबल व सहाय माध्यम के रूप में उभर सकेंगे और चीन की भांति भारत भी औद्योगिकीकरण के मार्ग पर तेज गति से आगे बढ़ सकेगा।

रिलायन्स इण्डस्ट्रीज, ओमेक्स व डी.एल. एफ. सेज के अन्तर्गत बड़े प्रोजेक्ट लगाना चाहते हैं। इसके लिए वे सेज के लिए अधिग्रहण की सीमा को 5000 हेक्टेयर से अधिक बढ़ाना चाहते है । चीन में बड़े आकार के सेज स्थापित होने से उनकी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति अधिक हुई है । भारत में छोटे आकार के सेज स्थापित करने से अधिक सफलता नहीं मिल पा रही है । 2011-12 के बजट मैं मैट (MAT) जो कुल प्रोफिट पर लगाया जाता है, को सेज के डेवलपर्स व उनमें स्थापित इकाइयों पर भी लगा दिया गया था। जुलाई 2017 में अपेक्षित वस्तु व सेवा कर (GST) तथा भविष्य में अपेक्षित प्रत्यक्ष कर सहिंता (DTC) की नई व्यवस्था लागू होनी है । जिसमें यह देखना है कि उनमें सेज की इकाइयों के संबंधमें क्या निर्णय लिये जाते हैं। अब समय आ गया है जब सरकार लेने होंगे ताकि सेज व गैर - सेज की इकाइयों के मध्य का भेदभाव कम किया जा सकें, ओर सेज की इकाइयों को अधिक प्रतिस्पर्धात्मक, सक्षम व सबल बनाया जा सके ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण की ओर प्रगति अधिक तेज गति से हो सके।

31.11 संदर्भ ग्रंथ

1- वी.के. पुरी एवं एल.के. मिश्रा, भारतीय अर्थव्यवस्था, 20th Revised edition, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई

2- दत्त एवं सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द्र 2005 कम्पनी लि., नई दिल्ली
3- लक्ष्मीनारायण नाथूरामका, भारतीय अर्थव्यवस्था, कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर
4- वित्त मंत्रालय, भारत सरकार आर्थिक समीक्षा 2012-13, 2013-14 एवं 2015-16, नई दिल्ली
5- आर्थिक समीक्षा 2012-13, 2013-14 एवं 2015-16, नई दिल्ली
6- भारत में सेज की रिपोर्ट, उद्योग एवं वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार।

.

इकाई 32

भारतवर्ष की समानान्तर अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य

32.1 प्रस्तावना

32.2 कालेधन की परिभाषा, स्रोत तथा क्षेत्र

32.2.1 परिभाषा तथा धारणायें

32.2.2 काले धन की उत्पति के स्रोत

32.3 काली आय के अनुमान

32.4 काले धन को रोकने के उपाय

32.5 काले धन में वृद्धि के प्रभाव

32.6 सारांश

32.7 शब्दावली

32.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

32.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

32.0 उद्देश्य

आपने देश के आर्थिक विकास में बहु राष्ट्रीय निगमों के स्थान का अध्ययन किया तथा बाह्य व आन्तरिक ऋणों के अर्थ व्यवस्था पर होने वाले प्रभावों का अध्ययन किया है।

इस इकाई में हम भारत वर्ष में चल रही समानान्तर अर्थ व्यवस्था का अध्ययन करेंगे। इसे समझने के बाद आप निम्न बातो को भली प्रकार समझेंगे :

- समानान्तर अर्थव्यवस्था के अर्थ को समझना इसका कारण (काला धन) और किन बातो की वजह से यह उत्पन्न होती है।
- काले धन के सोतो तथा उसके मुख्य क्षेत्र जहां यह प्रचलित है को भली भांति समझना
- देश में मौजूद काले धन की मात्रा तथा आकार; तथा
- इसके निवारण के लिए उठाये गये कदम की जानकारी।

इसके अध्ययन द्वारा अनियमित बढ़ते हुये काले धन की समस्या को भली प्रकार समझ सकेंगे कि किस प्रकार यह भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रभावितकर रही है।

32.1 प्रस्तावना

आपने बहुराष्ट्रीय निगमों का अध्ययन 21 वीं इकाई में किया और ये देखा कि इन निगमों के क्षेत्र में आने से हमारी अर्थव्यवस्था तथा आंतरिक उत्पादन पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

वर्तमान इकाई में आप देश में बढ़ते काले धन की समस्या तथा समानान्तर अर्थव्यवस्था के बारे में अध्ययन करेंगे। काले धन की समस्या में सौदों का आदान प्रदान छुपकर किया जाता है ताकि कानून के दायरे से ये सौदे बाहर रहें और इनसे होने वाली आय से सरकार को जो अंश मिलना चाहिए उससे वंचित हो जागी है, इसी को काले धन की समस्या कहते है। इसके विपरीत श्वेत धन वो धन होता है जिसका लेन देन खुले रूप से होता है ताकि कानूनी तौर पर जो अंश सरकार को प्राप्त होना है वह वह उसको मिल जाये। काले धन की समस्या के लिए कुछ बातें जिम्मेदार है। काला धन एक निश्चित क्षेत्र में उत्पन्न होता है और उसको चोरी छिपे ही खर्च किया जाता है। काले धन के "इस क्षेत्र को समानान्तर अर्थव्यवस्था का नाम दिया जाता है, क्योंकि यह श्वेत धन के साथ साथ चलती है। इसका कुप्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर कितना पड़ता है उसको उसी समय समझा जा सकता है जब हम ये जानें कि देश में काला धन कितनी मात्रा में है। जब काला धन श्वेत धन के साथ साथ चलता है और इसकी मात्रा बढ़ती जाती है तो इससे देश को अत्यधिक हानि होती है और इस प्रकार काले धन को रखने वाले सरकारी निर्णय को भी प्रभावितकरने लगते है। अत : ऐसे कदम उठाये जाने चाहिये कि जिससे इस प्रकार के प्रभाव को जहां तक संभव हो समाप्त किया जा सके। हमें सह समझना चाहिये कि इस समस्या से देश में वित्तीय सोतो की कमी आ जाती है और विकास कार्यो के लिए धनाभाव हो जाता हैं।

दूसरे इससे समाज के विभिन्न वर्गो में आय विषमता बढने के कारण समाज के विभिन्न वर्गो में संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है, जिसके कारण कुछ असामाजिक तत्व देश के धन के एक बड़े भाग को अनुचित रूप से हथिया कर बैठ जाते है।

32.2 काले धन की परिभाषा, स्रोत तथा क्षेत्र

32.2.1 परिभाषा तथा धारणायें: काला धन, काली आय अथवा छिपाई हुई आय का प्रयोग उस आय अथवा धन के लिए किया जाता है जिसको कानून की नजर से बचाकर रखा जाता है। इसको चुरा छिपा कर रखा जाता है तथा इस पर कर नहीं दिया जाता। अत: इसका विकास तेजी से होता है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि इस प्रकार श्वेत अर्थव्यवस्था के साथ–साथ समानान्तर अर्थव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है।

काले धन का उदय द्वितीय युद्ध काल में हुआ जबकि बाजार में वस्तुओं की कमी हो गई थी और व्यापारियों ने वस्तुओं को अधिक दाम पर बेचने के लिए उसका संग्रह करना शुरू कर दिया।

इससे वस्तु आम आदमी को प्राप्त नहीं होती थी पर वही वस्तु अत्यधिक दाम पर चारी छिपे धनी वर्ग को बेची जाती थी। इस प्रकार से प्राप्त आय को व्यापारियों ने चोरी छिपे रखना शुरू कर दिया ताकि वे कानून की नजर से दूर रहें और उस पर किसी प्रकार के कर के भुगतान से बचा जा सके।

32.2.2 कालेधन की उत्पत्ति के स्रोत: काला धन तीन प्रकार से उत्पन्न होता है।

1. कर वंचन
2. कर न देना
3. श्वेत धन का चोरी–छिपे इस्तेमाल!

इन तीनों ही से कर योग्य आय को छिपाया जाता है और सरकार को कर से वंचित रखा जाता है। धन सरकार को न मिलकर गलत तरीके के व्यापारियों के हाथ में जाता है, जो उसका अनुचित प्रयोग करते है तथा सरकार पर गलत असर डाल सकते है। इस प्रकार का लाभ कभी–साथ बड़े–बड़े सरकारी अधिकारी भी ले भागते है। अर्थात् वे सरकारी संगठनों अथवा उद्योगों के धन को चुरा–छिपाकर अपने कब्जे में कर लेते है।

1. **कर वंचन :** कर वंचन का अर्थ यह है कि इसके द्वारा कर देने वाला खातो में हेर–फेर करके कर कम देता है या कर देने से बच जाता है। कर वंचन के अनेक तरीके हो सकते है, जैसे बही खाते में हेर–फेर करना अथवा कई प्रकार के बही खाते रखना अथवा कृत्रिम नाम से खाते खोलना जिसे बेनामी खाता कहते है। इसी प्रकार ठेके अथवा व्यापार कृत्रिम नाम से करना, व्यापारिक लेन–देन को खाते में न दिखाना, सम्पत्ति का कम मूल्य आंकना तथा विदेशी विनिमय के साथ हेर–फेर करना। इस प्रकार व्यापारी तथा काले धन का धंधा करने वाले समाज तथा सरकार को धोखा देते है। कभी–साथ तो वे कई खाते विभिन्न बैको में खोलते है ताकि आयकर अधिकारी को उसकी सही आय का पता न लग सके। हमारी बैंकिग पद्धति कुछ इस प्रकार है, कि हम खाता खोलने वालों के बारे में पूरी जानकारी नहीं प्राप्त करते। विभिन्न बैको में प्रतिस्पर्धा के कारण भी ऐसा होता है कि किसी पार्टी के बारे में संदेह होने पर भी बैंक चुप्पी साध लेते है अथवा पार्टी इतनी प्रभाव शाली होती है कि वह उसके बारे में कुछ पूछ ताछ या तो करता नहीं और यदि करता भी है तो उसे सही बात का पता नहीं चलता। कभी–2 ठेके विभिन्न नामों से लेकर ठेकेदार आयकर बचा जाता है। इसी प्रकार सम्पत्ति का मूल्य कम दिखाकर आयकर अधिकारियों को धोखा दिया जाता है। कभी–साथ जमीन तथा मकान की बिक्री का एक ही भाग श्वेत धन के रूप में दिखाया जाता है और शेष चोरी छिपे दे दिया जाता है। उपर्युक्त केवल कुछ उदाहरण ही कर वंचन के है।

2. **कर न देना:** इसका अर्थ ये है कि व्यापारी तथा सरकारी कर्मचारी कानून के अन्तर्गत अपनी आय को इस प्रकार दिखाता है कि उस पर या तो बहुत थोड़ा कर पड़ता है अथवा कर से वो पूरी तरह मुक्त हो जाता है। यहां पर व्यापारी आयकर कानून की कमियों से फायदा उठाता है अत. उसे प्राय: गैर कानूनी या अनैतिक नहीं समझा जाता। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार से है, जैसे धार्मिक ट्रस्ट खोलना, पति–पत्नी की आय को एक साथ न दिखना। उपहार कर, मृत्यु कर इत्यादि से

बचना। वैसे तो समाज में गरीबों के लिए, यतीमों के लिए, असहाय औरतो तथा बच्चों के लिए या धर्म कर्म के लिए धन व्यय करना, बहुत अच्छा माना गया है परन्तु अभाग्यवश आजकल इस प्रकार की संस्थायें चलाने के पीछे समाज सेवा का उद्देश्य उतना नहीं है जितना कि सरकर तथा समाज को धोखा देना। समाज के ठेकेदार तथा धर्मात्मा इसका प्रयोग कर से बचने के लिए कर रहे हैं कभी–कभी कर से बचने के लिए निजी कम्पनियां बनाई जाती है जिससे बीबी–बच्चे तथा दूसरे परिवार के लोग सदस्य या अंश धारक बना दिये जाते है । इस प्रकार के बहुत से कार्य करके व्यक्ति कर से बच जाता है।

3. **श्वेत धन का चोरी छिपे प्रयोग :** यहां पर हम ये देखेंगे कि किस प्रकार से जब बड़े–बड़े ठेके दिये जाते है तो उसमें अत्यधिक भ्रष्टाचार छिपा रहता है जैसे ठेका सही दाम पर न देना, अत्यधिक कमीशन अथवा लेना। अत : श्वेत धन का प्रयोग सरकारी अधिकारियों को देकर ठेकेदार ठेके अथवा खाते के मूल्य बढ़ा देता है इससे सरकार को नुकसान होता है और सरकारी अधिकारी तथा ठेकेदार को लाभ होता है । हम सब जानते है कि ये पद्धति अत्यधिक प्रचलित है पर इसको रोकने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया जार रहा है । इसी में सामान की तस्करी तथा सामान का संग्रह व चोर बाजारी भी शामिल है । निम्नलिखित कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनके द्वारा काले धन का जन्म होता है।

(i) मूल्यवान धातुओं तथा विलासिता की वस्तुओं की तस्करी,

(ii) आम उपभोग की वस्तुओं का संग्रह,

(iii) सट्टा मुनाफाखोरी तथा काला बाजार पद्धति,

(iv) रिश्वत तथा कमीशन के द्वारा

(v) शहरी क्षेत्रों में चल तथा अचल सम्पत्ति में विनियोग

(vi) बेनामी खाते तथा बेनामी व्यापार

(vii) धार्मिक तथा सामाजिक सेवा ट्रस्ट

(viii) धनी वर्ग का विलासितापूर्ण रहन सहन।

बोध प्रश्न – 1

(1) समानान्तर अर्थव्यवस्था का अर्थ बतायें? भारत वर्ष के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में इसका महत्व क्यों अत्यधिक है?

(2) काले धन के प्रमुख स्रोतो का उल्लेख कीजिये? उन क्षेत्रों को भी बताइयें जहां काला धन प्रचलित है?

32.3 काले धन का अनुमान

भारत वर्ष में कितना काला धन है इसका केवल एक ही अनुमान लगाया जा सकता है । क्योंकि इसकी सही मात्रा को जानना सरल नहीं। काले धन का लेन–देन चोरी छिपे होता है अत: इसे सही तरीके से आकड़ा संभव नहीं। काले धन को सफेद में परिवर्तित किया जाता है और सफेद को फिर काले में परिवर्तित कर लिया जाता है । कभी–कभी तो केवल वस्तु विनिमय से ही लेन–देन हो जाता है । ऐसा इसलिये सम्भव है कि अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनका पूरी तरह से मौद्रिकरण नहीं है और न कच्चे माल के उत्पादन से अन्तिम उत्पादन तक की विभिन्न अवस्थाओं को समन्वित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार हमें मुख्य रूप से ये समझना है कि काले धन का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर किस प्रकार से पड़ता है? भारत में जहां प्राय : आवश्यक वस्तुओं का अभाव हो जाता है वहां इसके महत्व को आसानी से समझा जा सकता है।

1. **मैलकौम अथिशिसयया का अनुमान:** इनके अनुसार कुल राष्ट्रीय उत्पादन वर्तमान मूल्य पर यदि लिया जाये तो इसका लगभग 40% काले धन के रूप में है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के एक सर्वेक्षण के अनुसार काला धन वर्तमान मूल्य पर राष्ट्रीय उत्पादन का 50% है।

निमलिखित तालिका में काले धन का अनुमान दिया गया है :

तालिका 32.1 : वर्ष 1981– 82 से 1985– 86 के बीच
पाँच वर्षों का काले धन का अनुमान

(रू करोड़ों में)

वर्ष	कुल राष्ट्रीय उत्पादन वर्तमान मूल्य साधन लगन पर	% वृद्धि पिछला वर्ष	काला धन आशिसिय्य 40% (GNP) (रू. करोड़ मे)	% वृद्धि पिछला वर्ष 50% (GNP)	IMF अनुमान	% वृद्धि पिछला वर्ष
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
1981–82	103763	–	41505	–	51882	–
1982–83	145280	40	58112	40	72604	40
1983–84	171713	7	68685	18	85857	18
1984–85	189417	10	75767	10	51882	10
1985–86	213553	13	85421	13	72604	13
योग	823726	70	329491	81	85857	81

उपर्युक्त तालिका से निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते है :

1. 1981–82 के कई वर्षो में कुल राष्ट्रीय उत्पादन की सकल वृद्धि दर 70% है । परन्तु इसी काल में काले धन की सकल वृद्धि दर दोनों ही अनुमान में 81% है।
2. इसका अर्थ ये हें कि काले धन की वृद्धि की दर कुल राष्ट्रीय आय की वृद्धि से अधिक है। जिसको रोकना आवश्यक है।

काले धन के कुछ अन्य अनुमान :– काले धन के प्रमुख स्रोत कर वंचन है । अत: इसके आकड़ों से भी काले धन की मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है । इसमें संदेह नहीं कि इस सम्बंध में विभिन्न अनुमानों में पर्याप्त अन्तर है।

कोल्डर के अनुसार कर वंचन की मात्रा 1956–57 में लगभग 200–300 करोड़ थी।

वांचू कमैटो के अनुसार (1971 रिपोर्ट) 1961–62 में इसकी मात्रा 700 करोड़ थी, 1965–66 में 1000 करोड़ तथा 1968–69 में 1400 करोड़ थी।

डॉ. रगनेकर के अनुसार, 1961–62 मे इसकी मात्रा 1150 करोड़, 1965–66 में 2350 करोड़, 1968–69 में 2833 करोड़ और 1969–70 में 3080 करोडू थी।

सूरज बी.गुप्ता के अनुमान के अनुसार वर्ष 1987–88 में काली मुद्रा की मात्रा 1 ,49,297 करोड़ रुपये थी जो GNP का 50.7 प्रतिशत थी वित्त पर संसदीय स्टेन्डिग कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1994–95 में चालू मूल्यों पर काली मुद्रा की मात्रा 11,00,000 करोड़ थी जबकि इस वर्ष GNP 843294 करोड़ थी। इस प्रकार काली मुद्रा GNP का 130 प्रतिशत थी अर्थात् GNP से भी अधिक हमारे देश में काली मुद्रा प्रचलित थी। 2007 की एक रिपोर्ट के मुताबिक कालेधन की अर्थव्यवस्था 74600 अरब रूपये की थी । स्वयं स्विस बैंक ने 2008 के लिए जारी आकडें में अपनी जमा राशि 3.35 खरब डॉलर बतलाया ।इसमें 1.92 खरब अमेरिकी डॉलर की राशि विदेशियों द्वारा जमा की गई । डॉ. सुरजीत एस. भल्ला ने 2009 में देश की जीडीपी के 1.5%(एक करोड़ लाख रूपये) कालेधन के सृजन का अनुमान लगाया। लेकिन ग्लोबल फाईनेंसियल इंटिग्रिटी के अनुमानों के औसर या जीडीपी का 7.5%(5 करोड़ लाख रुपये) है ।2010-12 में सी.बी.आई. प्रमुख प्रमुख ने 500 बिलियन अमेरिकी डॉलर के कालेधन का अनुमान लगाया ।

उपर्युक्त अनुमानों से यह विदित है कि देश में काले धन की समस्या अत्यंत विकराल है।

32.4 काले धन को रोकने के उपाय

काले धन को रोकने की दो विधियाँ है

(1) प्रथम विधि अनुसार काले धन रखने वाले लोगों को प्रोत्साहन देकर काले धन को बाहर निकालना। इसे नरम पद्धति भी कहा जा सकता है।

(2) दूसरी पद्धति के अनुसार कानून के द्वारा सख्ती करके काले धन को बाहर निकालना इसे दृढ़ पद्धति भी कहा जा सकता है।

नरम पद्धति : इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार से है–

(i) स्वेच्छा से काले धन को बताने की योजना,

(ii) धारक बॉडस द्वारा काले धन को बाहर निकालना,

(iii) काले धन को सही दिश में प्रयोग के लिये प्रोत्साहित करना,

(iv)समझौते से काले धन को बाहर निकालना।

स्वेच्छा से काले धन की मात्रा को बताने की योजना काफी उत्साहवर्धक सिद्ध हुई है क्योंकि इसमें यह नहीं पूछा जाता कि व्यक्ति काला धन कहां से लाया है, अभाग्यवश इसमें अन्त में अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऐसा ही धारक बॉड योजना में है । इसमें भी कोई खास सफलता नहीं मिली। इसके असफल होने के मुख्य कारण ये हो सकते है कि पहले तो इसमें व्याज की दर बहुत कम है । दूसरे लोगों को डर था कि इस प्रकार उन्हें अन्तत : कर के जाल में फंसा लिया जायेगा। इसी प्रकार काले धन को अन्य सामाजिक रूप से लाभदायक स्रोत जैसे सड़क तथा पुल बनाना आदि की योजना भी असफल हो गई क्योंकि इसमें लाभ कम और जोखिम अधिक था, समझौता योजना भी सफल न हो सकी क्योंकि बड़े–बड़े कर दाता अन्तत : कर के जाल में नहीं आना चाहते।

दृढ़ उपाय : इस प्रकार के उपाय मुख्य रूप से काल्डर ने सुझाये थे जैसे, एक न्यूनतम आय के ऊपर वाले कर दाताओं के खातो की अनिवार्य जांच करना।

प्रत्येक कर दाता के लिए स्थायी खाता संख्या देना, कर अधिकारियों की शक्ति को बढ़ाना तथा बही खातो के निरीक्षण में अथवा उनके जब्त कर लेने में पूर्ण छूट देना तथा उन व्यक्तियों पर जो दोषी पाये जायें जुर्माना लगाना और उनका आम जनता में प्रचार करके अन्य लोगों को डराना इत्यादि।

इसी प्रकार की सिफारिश बाबू कमैटी ने की थी। इन दीनों के ही अनुसार एक निश्चित आय के ऊपर वाले करदाताओं के खातो का अनिवार्य रूप से निरीक्षण किया जाना चाहिये। अथवा ये निरीक्षण तथा आडिट चार्टड एकाउन्टेन्ट के द्वारा किया जाना चाहिये इस सम्बंध में न्यूनतम आय की सीमा एक लाख से पांच लाख तक सुझाई गई थी।

इस प्रकार के प्रयास किये गये थे कि जो चार्टड एकाउनटेन्ट इस कार्य में मदद करेगें उन पर बड़े–बड़े करदाताओं का प्रभाव न पड़े और इसी लिये सरकार ने उनको दिये जाने वाले पारिश्रमिक का एक भाग स्वयं वहन करने की घोषणा की। काल्डार का ये विचार था कि भारी जुर्माने और जनता में बदनामी का असर करदाताओं पर अत्यधिक पड़ेगा। और कर की चोरी करने वाले कर देने को तैयार हो जायेंगे। परन्तु इसके लिए कर अधिकारियों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिये। उनमें कर की चोरी करने वालों पर छापा मारने की क्षमता तथा हिम्मत होनी चाहिये। साथ ही साथ उनमें एक सीमा तक ईमानदारी भी होनी चाहिये, इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि इस कार्य को ईमानदारी से किया जाये तो पर्याप्त काला धन बाहर लाया जा सकता है और समस्या का समाधान किया जा सकता है । परन्तु

जैसा की हम जानते है कि वर्तमान परिस्थितियों में जहां कर अधिकारियों की कार्य–क्षमता तथा ईमानदारी का स्तर नीचा है वहां पूर्ण सफलता मिलने में कठिनाई होती है । अभाग्यवश राजनीतिज्ञ भी इसके भागी हो जाते है और इस प्रकार वे भी इस योजना के असफल होने के जिम्मेदार है । शायद लोक आयुक्त की नियुक्ति से तथा हर सरकारी अधिकारी की आय व सम्पत्ति का ब्यौरा लेकर इस क्षेत्र में कुछ किया जा सकता है ।

मनी लाऊड्रिंग प्रिवेशन एक्ट , 2002

मनी लाऊड्रिंग प्रिवेशन एक्ट , 2002 एक जुलाई 2005 से लागु हुआ । गैर कानूनी तरीके से अर्जित पैसे को देश में लाने की प्रक्रिया को मनी लाऊड्रिंग कहा जाता है इस अधिनियम के अंतर्गत सभी बैंकों और वित्तीय संस्थाओ को 10 लाख से अधिक की नकदी के लेन देन की जानकारी विदेशी मुद्रा के सम्बन्ध में वर्ष भर के भीतर 10 लाख से अधिक लेन देन तथा शेयरों के सन्दर्भ में भी लेन देन एवं हस्तान्तरण की जानकारी देना अनिवार्य कर दिया गया। इस अधिनियम के तहत मनी लाऊड्रिंग में दोषी पाए जाने पर लोगो को 10 वर्ष तक की सजा एवं 5 लाख रुपये तक जुर्माने का प्रवधान किया गया है ।

मनी लाऊड्रिंग प्रतिषेद (संशोधन) बिल , 2011

मनी लाऊड्रिंग प्रतिषेद (संशोधन) बिल , 2011लोकसभा में पेश किया गया । प्रस्तावित विधेयक को संसद की वित्त संबंधी स्थाई समिति को सौपा गया जिसमे 18 अनुशंषाएं के साथ अपनी रिपोर्ट सौपी। सरकार ने इन अनुशंषाओं को स्वीकार कर संशोधित प्रारूप को दिसम्बर 2012 में लोकसभा में पुनः पेश किया ।

बोध प्रश्न – 2

नोट : अपने उत्तर को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलायें।

(1) काले धन के अनुमान किन प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते है?
(2) आपके विचार में कर वंचन रोकने का कौन सा तरीका सर्वोत्तम है?

32.5 काले– धन की वृद्धि के प्रभाव

काले धन से होने वाले वित्तीय : ये होते है कि विभिन्न राज्यों या सरकार की आय घट जाती है और इनके विकास कार्यो के लिए धनाभाव हो जाता है इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र जिसका महत्व अत्यधिक है उसके लिए भी धनाभाव हो जाता है । इस प्रकार देश महत्वपूर्ण सेवा योजनायें को पूरा नहीं कर पाना अथवा कुछ आवश्यक पूंजीगत वस्तुयें प्राप्त नहीं करता। इसका कुप्रभाव आधुनिक तकनीक पर भी पड़ता है । एक प्रकार से हम इसी कारण दूसरे देशों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लेने के लिए बाध्य हो जाते है ताकि आवश्यक विनियोगों के लिए धन की कमी को पूरा किया जा सके। अभाग्यवाश हमारे निर्यात इतने नहीं है कि हम विदेशी कुण के भार को

आसानी से वहन कर सकें। अत : विदेशी ऋण भार हमारी अर्थव्यवस्था पर दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । और ऋण जाल की समस्या उत्पन्न हो गई है । इस कमी को पूरा करने के लिए आधुनिक तकनीक के आयात के लिए छूट देनी पड़ी। इसका भी प्रभाव देश में बहुत अच्छा नहीं पड़ा। और इस सम्बंध में काफी वाद–विवाद उत्पन्न हो गया कि बाहरी तकनीक को हम किस हद तक बढ़ावा दें। एक और प्रभाव इसका ये हुआ कि हमारे सार्वजनिक उद्योगों की लागत बढ़ गई है और हमारी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति घट गई है ।

कर चोरी के कारण सरकार को आंतरिक प्रशासन के लिए भी धनाभाव हो जाता है जिसके कारण सरकार को आंतरिक ऋण लेना पड़ता है । और इस प्रकार इससे उत्पन्न होने वाली कई प्रकार की बुराइयों को झेलना पड़ता है जैसे जब इस धन का प्रयोग अनुत्पादक कार्यो के लिए किया जाता है तो देश में मुद्रा स्फीति की दर बढ़ने लगती है । यदि एक प्रकार से देखा जाये तो मुद्रा स्फीति का एक प्रमुख कारण काला धन है ।

नियोजन की प्राथमिकता पर प्रभाव : हमारे नियोजन का प्रमुख उद्देश्य आय विषमता को दूर करके गरीबी तथा बेकारी की समस्या को सुलझाना है । इसके लिये सरकार को पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है ताकि आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन किया जाये और नये– 2 रोजगार के स्रोत खोले जायें। परन्तु जब देश में धन का एक बड़ा भाग चोरी छिपे कुछ लोगों के हाथ में है जो उसे अपनी व्यक्तिगत विलासिता पर व्यय करते है तो निश्चय ही राष्ट्र के पास अपनी उपर्युक्त योजनाओं के लिए धनाभाव हो जाता है । काले धन से धनाभाव बढता है तथा मुद्रा स्फीति भी। कुछ लोग बड़े–2 बंगलों में विलासिता की जिंदगी गुजारते है जबकि करोड़ लोग आवश्यक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते।

राजनैतिक ढाँचे में भष्टाचार : काले धन के कारण देश के राजनैतिक ढाँचे में भी भ्रष्टाचार उत्पन्न हो जाता है क्योंकि ये बड़े– 2 धनवान राजनीतिक को तो खरीद लेते है या उन पर अत्यधिक प्रभाव बना लेते है । अभाग्यवश हमारे राजनीतिक अपने ईमानदारी के स्तर को एक निश्चित स्तर तक बनाये रखने में असफल रहे है । यही नहीं ऐसा भी देखा गया है कि कभी–2 तो कानून के रखवालों को भी इनके सामने झुकना पड़ता है । पैसे में बड़ी शक्ति है और ये लोग इसे समझते है कि इससे किसी को भी अपने वश में किया जा सकता है और इन में ये लोग किसी हद तक सफल भी हुये है ।

इस प्रकार काले धन के प्रभाव अत्यंत विनाशकारी है ।

बोध प्रश्न – 3

नोट : अपने उत्तरों का मिलान येत में दिये गये उत्तरो से करिये–

1. काले धन का राज्य के आर्थिक स्रोतो पर क्या प्रभाव पड़ता है?।
2. योजना की प्राथमिकताओं में काला धन किस प्रकार बाधक है?
3. काला धन देश में आय विषमताओं को बढ़ाता है ऐसा कहा जाता है । काला धन इसे किस प्रकार बढाता है?

32.6 सारांश

समानान्तर अर्थव्यवस्था उस क्षेत्र का नाम है । जिसमें गैर कानूनी तरीके से कमाया हुआ काला धन आता है । इसका मुख्य स्रोत कर वंचन तथा कर देने को बचाना है । काले धन के कारण सरकार के निर्णय को प्रभावित किया जा सकता है । काले धन का अनुमान सरल नहीं है परन्तु विभिन्न अनुमानों के अनुसार कुल राष्ट्रीय आय का 40% से 50% है । काले धन से बचने के मुख्य उपाय दो है– प्रथम, कर की चोरी करने वालों को प्रोत्साहन देकर काले धन का बाहर लाना, द्वितीय, ऐसे व्यक्तियों को कड़ी सजा देना और दृढ़ तरीको से कर की रोकने के उपाय करना जैसे, खातों की अनिवार्य जांच इत्यादि। कर की चोरी से राज्य के लाभ तथा आय कम हो जाती है और राज्य द्वारा किये जाने वाले विनियोग घट जाते है । इस प्रकार राज्य की कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक योजनायें अधूरी रह जाती है ।

32.7 शब्दावली

बहु अथवा विभिन्न खाते	:	किसी विनियोग पर अर्जित की गई कुल या वास्तविक आय को छिपाने के लिए एक से ज्यादा खाते रखना।
विदेशी विनिमय	:	विदेशी मुद्रा जिससे विदेशी उतादको की वस्तुयें खरीदी जा सकती है । इसे निर्यात द्वारा कमाया जाता है ।
आय को मिला देना	:	दो या दो से अधिक व्यक्तियों की आय को मिलाना।
चोरी छिपे लेन–देन	:	गलत तरीको से लेन–देन करना।
सीधा समन्वय	:	इसके अन्तर्गत उत्पत्ति प्रक्रिया में कच्चे माल लेकर उत्पादन की अंतिम अवस्था तक हर कड़ी को एक साथ जोडकर अध्ययन किया जाता है ।
सकल राष्ट्रीय उत्पाद	:	कुल उत्पादन जो बिना घिसावट को निकाले मुद्रा में गिना जाताहै ।
समझौता कार्यप्रणाली	:	एक ऐसी प्रणाली जिसमें कर दाता को यह अधिकार होता है कि वे अपने कर से सम्बन्धित झगड़े को किस प्रकार तय करें।
प्राथमिक सूचना	:	जिनका आधार प्रथम प्राप्त सूचना सामग्री से होता है ।
बाजारी ब्याज की दर	:	किसी समय पर दिया गया ब्याज जो फंड की मांग और पूर्ति पर निर्भर होता है ।
अतिरिक्त उत्पादन शक्ति	:	वह उत्पादन शक्ति जो उस उत्पादन शक्ति से ज्यादा होती है जो वास्तव ने उत्पादन में प्रयोग की जाती है ।
मुद्रा स्फीति स्थिति	:	ऐसा समय जब मूल्य बढ़ रहे होते है ।
योजना की प्रथमिकताए	:	पंचवर्षीय योजनायें जो कार्य को एक क्रम में करने के लिये बनाई जाती है । उदाहरण के लिये सातवीं पंचवर्षीय योजना में कार्य,

भोजन और उत्पादकता को प्राथमिकता गई है।

जन उपभोग की वस्तुयें : वे उत्पादन जो देश के सब भागों में उपभोग किये जाते है।

32.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. केबरा, के. एन. — भारतीय काले धन की अर्थव्यवस्था–समस्यायें नीतियां
2. मेहता, वी. एल. — बेरोजगारी, असमानतायें, समानान्तर– एक समाधान
3. कॉल्डर, एन. — भारतीय कर व्यवस्था, आर्थिक मामलों का विभाग, वित्तमंत्रालय, भारत सरकार (1956)
4. भारत सरकार वित्त मंत्रालय — प्रत्यक्ष कर निरीक्षण कमैटी की रिपोर्ट (1971)
5. दत्ता, एन. सुन्दरम — भारतीय अर्थव्यवस्था, घाठ 52 एस० चांद एंड कम्पनी दिल्ली

32.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. सामानान्तर अर्थव्यवस्था सकल अर्थ व्यवस्था का वह भाग है जहां व्यापारिक कार्य विधि कानून की निगाह से बचकर चोरी छिपे की जाती है। वर्तमान समय में सह समस्या अत्यधिक बढ़ गई है तथा इसका कुप्रभाव सामान्य अर्थव्यवस्था पर पड़ा है और इसी कारण इसका महत्व बढ़ गया।
2. काले धन के तीन प्रमुख स्रोत है। कर की चोरी, कर न देना अथवा बचाना तथा। सही अथवा स्वच्छ मुद्रा का चोरी छिपे प्रयोग करना। काले धन के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र इस प्रकार है। तस्करी, मकानों तथा भवनों में रूपया लगाना, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों के लिए ट्रस्ट बनाना।

बोध प्रश्न – 2

1. काला धन तेजी से बढ़ रहा है। यह भारत के समस्त राष्ट्रीय उत्पादन का 50% है। उपर्युक्त वातावरण मिलने पर यह तेजी से बढ़ रहा है।
2. कर की चोरी से बचने के दो तरीके हो सकते है – दृढ़ तरीका तथा मुलायम तरीका, काले धन को बाहर लाने की स्वेच्छिक योजना जो प्रोत्साहन आधारित है कि साथ–साथ कर की चोरी करने वाले के विरूद्ध सख्त कदम उठाये जाने चाहियें और इस सम्बंध में हर महीने कार्यवाही की जानी चाहिए।

बोध प्रश्न – 3

1. कर की चोरी तथा कर से बचना का प्रभाव राज्य के आय को कम करता है । जिससे राज विनियोग के लिए धन की कमी हो जातीं है।
2. देश की पंचवर्षीय योजनाऐं कुछ सामाजिक उद्देश्यों को ध्यान में रख कर वनाई जाती है जैसे – आर्थिक तथा सामाजिक असमानता को कम करना, रोजगार देना। जब काला धन अधिक हो जाता तो देश में इन मदों पर खर्च करने के लिए धन की कमी हो जाती है।
3. काला धन उन मदों में लगाया जाता है जहां शीघ्र तथा अधिक लाभ कमाया जा सके। क्योंकि इस धन पर कर नहीं दिया जाता अत: इसके कारण देश में असमानता बढ़ जाती है।

इकाई 33

भारत का भुगतान सन्तुलन

इकाई की रूपरेखा

33.0 उद्देश्य

33.1 प्रस्तावना

33.2 भुगतान सन्तुलन का अर्थ

33.3 भुगतान सन्तुलन की मदें

33.4 स्वतंत्रता के पूर्व भुगतान सन्तुलन

33.5 स्वतंत्रता के उपरान्त भुगतान सन्तुलन

- 33.5.1 प्रथम योजना
- 33.5.2 दूसरी योजना
- 33.5.3 तीसरी योजना
- 33.5.4 वार्षिक योजनाएं
- 33.5.5 चौथी योजना
- 33.5.6 पांचवी योजना
- 33.5.7 छठी योजना
- 33.5.8 सातवीं योजना

33.6 भुगतान सन्तुलन में घाटे के कारण

33.7 भारत सरकार द्वारा प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन के समाधान हेतु उपाय

33.8 भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के उपाय

33.9 सारांश

33.10 शब्दावली

33.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

33.12 अभ्यासों के उत्तर

33.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको भारत की भुगतान सन्तुलन स्थिति से अवगत कराया जायेगा। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- भुगतान सन्तुलन का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे,
- भुगतान सन्तुलन की मदों को बता सकेंगे,
- स्वतंत्रता के पूर्व भुगतान संतुलन की स्थिति बता सकेंगे,
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भुगतान की स्थिति की व्याख्या कर सकेंगे,
- भुगतान सन्तुलन में घाटे के विभिन्न कारण पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के लिए सरकार द्वारा किये गये प्रयासों का वर्णन कर सकेंगे,
- भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के सुझाव दे सकेंगे।

33.1 प्रस्तावना

भुगतान सन्तुलन एक आर्थिक बेरोमीटर है । इससे किसी भी देश की आर्थिक स्थिति का पता लगाया जा सकता है ।

आपको यह बताया जायेगा कि भुगतान सन्तुलन की स्थिति का अर्थ क्या है और व्यापार सन्तुलन से वह भिन्न किस प्रकार है? आपको फिर भुगतान सन्तुलन में शामिल की जाने वाली मदों की जानकारी दी जायेगी। आपको यह स्पष्ट किया जायेगा कि विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भुगतान सन्तुलन की स्थिति क्या रही है और क्यों रही है? भारतीय सरकार ने भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के लिये जो भी उपाय किये है, उनकी चर्चा की जायेगी। अन्त में आपको भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता दूर करने के लिए सुझाव दिये जायेंगे।

33.2 भुगतान सन्तुलन का अर्थ

किसी भी देश का भुगतान सन्तुलन एक निश्चित काल में उस देश की अन्य देशों के साथ कुल लेनदारी और देनदारी का एक लेखा–जोखा होता है । इसमें प्राय : आयात और निर्यात के मद सबसे महत्वपूर्ण होते है । पर इन मदों के अतिरिक्त पूँजी, ऋण, ब्याज और भुगतान से सम्बन्धित सभी मदों को भी शामिल किया जाता है ।

पी टी. एल्सवर्थ ने कहा है कि "भुगतान सन्तुलन एक देश के निवासियों और शेष विश्व के बीच किये गये समस्त लेन–देनों का लिखित विवरण है । यह किसी दिये हुए समय साधारणत : एक वर्ष के लिये होता है।''

बेनहम ने भुगतान की परिभाषा करते हुए कहा है कि "सम्पूर्ण और सही भुगतान सन्तुलन में वे सभी भुगतान शामिल होते है, जो एक निश्चित अवधि में विदेशियों द्वारा एक देश के निवासियों को और उस देश के निवासियों द्वारा विदेशियों को किये जाते है । इनमें प्रथम भुगतान को जमा भुगतान और दूसरे भुगतान को नाम भुगतान कहते है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि एक निश्चित अवधि में एक देश को विदेशों से जो भुगतना मिलता है और जो भुगतान करना होता है, उसके क्रमबद्ध विवरण को भुगतान सन्तुलन कहते है।

व्यापार सन्तुलन से किसी देश की वास्तविक आर्थिक स्थिति का पता नहीं लगता है, क्योंकि इसमें केवल आयातों और निर्यातों को सम्मिलित किया जाता है । भुगतान सन्तुलन में आयातों और निर्यातों के अतिरिक्त पूंजीगत लेन–देन भी शामिल होते है । वास्तविकता तो यह है कि व्यापार सन्तुलन भुगतान सन्तुलन का ही एक भाग है। यदि हम सूत्र के रूप में व्यक्त करें–

भुगतान सन्तुलन = व्यापार सन्तुलन + पूंजीगत लेन–देन

भुगतान सन्तुलन के दो भाग होते है –

(i) चालू खाते का भुगतान सन्तुलन

(ii) पूंजीगत खाते का भुगतान सन्तुलन।

इन दोनों खातों का सन्तुलन ही भुगतान सन्तुलन है । चालू खाते के भुगतान सन्तुलन में वस्तुओं और सेवाओं का लेन–देन और एक पक्षीय हस्तान्तरण जैसे कि अनुदान, भेंट को शामिल किया जाता है । पूंजीगत खाते के भुगतान सन्तुलन में पूंजीगत मदों जैसे कि विदेशों से ऋण लेना और देना, विदेशों में प्रतिभूतियाँ और परिसम्पत्तियाँ खरीदना और बेचना आदि को शामिल किया जाता है।

इस प्रकार भुगतान सन्तुलन = चालू खाते का भुगतान सन्तुलन + पूंजी खाते का भुगतान सन्तुलन।

एक देश में विदेशी विनिमय कोष में होने वाले परिवर्तनों को पूंजी खाते में शामिल किया जाता है । भुगतान खाते का, चालू खाता सन्तुलन की दशा मे नहीं होता है । यह अनुकूल (+) अथवा प्रतिकूल (–) होता है । जब चालू खाते का सन्तुलन प्रतिकूल होता है तो उसे पूंजीगत खाते के परिवर्तनों से साम्य में लाया जाता है । दूसरे शब्दों में विदेशों से ऋण लेकर कुछ देनदारियों को निपटाया जाता है । इस तरह चालू खाते की स्थिति ही भुगतान सन्तुलन की स्थिति को बताती है । भारत के भुगतान सन्तुलन की स्थिति देश के विदेशी विनिमय कोष में हुए परिवर्तनों से ज्ञात की जा सकती है।

33.3 भुगतान सन्तुलन की मदें

भारत के भुगतान सन्तुलन को जानने की लिए उससे सम्बन्धित मदों की जानकारी कर लेना ठीक रहेगा। प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन का अर्थ होता है कि चालू खाते और पूंजी खाते में भुगतान की राशि प्राप्तियों से अधिक है । प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन होने पर ऋण का चिन्ह लगाया जाता है । पर भुगतान सन्तुलन सन्तुलित ही होना चाहिये। अत : इसके प्रतिकूल होने पर उतनी ही राशि विदेशी सहायता, अनुदान या अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से लेकर इसे सन्तुलित किया जाता है।

विकासशील देशों का भुगतान संतुलन अधिकतर प्रतिकूल रहता है । ये देश विकास के लिये पूंजीगत वस्तुओं और तकनीको का आयात करते है और कुछ वर्षों में विदेशों से प्राप्त सभी ऋणों का भुगतान करने में समर्थ हो सकते है । इसलिए यदि कुछ वर्षों तक ही भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल रहता है तो चिन्ता का कोई बड़ा कारण नहीं है । पर यदि भुगतान सन्तुलन लम्बे समय के लिए प्रतिकूल रहता है तो अवश्य ही चिन्ता का कारण है । भुगतान सन्तुलन की मदों को तालिका से इस प्रकार दिखाया जा सकता है –

भुगतान सन्तुलन की मदें

मद	प्राप्तियां (I)	भुगतान (II)
1 – चालू खाता		
(अ) दृश्य मदें	निर्यात	आयात
(ब) अदृश्य मदें		
(I) पर्यटन	विदेशी पर्यटको का आना	भारतीय पर्यटको का विदेश जाना
(II) परिवहन	जहाज–भाड़ा की प्राप्ति	जहाज–भाड़ा क भुगतान
(III) बीमा	बीमा प्रीमियम की प्राप्तियां	बीमा प्रीमियम का भुगतान
(IV) लाभांश	प्राप्तियां	भुगतान
(V) अन्य	प्राप्तियां	भुगतान
चालू खाते का सन्तुलन I – II		
2 - पूंजीगत खाता		
(I) निजीनिवेश	विदेशी पूंजी का भारत मे निवेश	भारतीय पूंजी का विदेशों में निवेश
(II) ऋण–निजी क्षेत्र	प्राप्तियां	ऋणों का भुगतान
(III) ऋण–सार्वजनिक	प्राप्तियां	ऋणों का भुगतान
(IV) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से रूपये की खरीद	–	भुगतान
(V) बैंकिग पूंजी	प्राप्तियां	भुगतान
पूंजीगत खाते का सन्तुलन I –II		

33.4 स्वतंत्रता के पूर्व भुगतान सन्तुलन

स्वतंत्रता के पूर्व भारत का भुगतान सन्तुलन अनुकूल था। अंग्रेजों के आने तक यूरोप और पश्चिम एशिया के अनेक देशों से व्यापार था। भारत निर्मित वस्तुओं का निर्यात करता था। आयातों की तुलना में निर्यात अधिक होते थे। भारत को इसलिए स्वर्ण में भुगतान मिलता था।

अंग्रेजों के पराधीन भारत का व्यापार सन्तुलन अनुकूल था। पर यह अनुकूलता अब निर्मित वस्तुओं के निर्यात के कारण नहीं थी बल्कि कच्चे माल के निर्यात के कारण थी। निर्मित वस्तुओं का अब विशेषकर ब्रिटेन से आयात होता था। विदेशी विनिमय निर्यात अधिक होने के कारण प्राप्त तो अवश्य होता था पर यह विदेशी विनिमय ब्रिटेन को गृह पत्रों (Home Expenses) की पूर्ति के लिए देना पड़ता था और यह भी स्थिति आती थी कि जब विदेशी विनिमय की प्राप्तियां गृह–व्ययों को चुकाने के लिये पर्याप्त नहीं हुआ करती थी तो फिर इन व्ययों की पूर्ति के लिए स्वर्ण का निर्यात करना पड़ता था।

भारत की स्थिति दूसरे महायुद्ध से परिवर्तित हुई। ब्रिटेन को अपनी युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारत से बहुत अधिक आयात करना पड़े जिससे निर्यात में बहुत वृद्धि हुई और दूसरी तरफ माल की कमी और परिवहन सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण आयात कम हो गये। इस सबका परिणाम यह हुआ कि भारत का व्यापार संतुलन पौंड पावनों (sterling balance) के रूप में एकत्रित हो गया। अनुमान है कि पौड पावमों के रूप में एकत्रित यह राशि 1,733 करोड़ रुपये थी। भारत ने इस राशि का उपयोग स्वट्टंत्रता के बाद व्यापार घाटों को पूरा करने के लिए किया।

बोध प्रश्न 1

1. भुगतान सन्तुलन से आप क्या समझते है?।
2. भुगतान सन्तुलन और व्यापार सन्तुलन में क्या अन्तर है?
3. भुगतान सन्तुलन में किन मदों को शामिल किया जाता है?

33.5 स्वतंत्रता के उपरान्त भुगतान सन्तुलन

1948 से 1951 तक भारत का भुगतान सन्तुलन विपक्ष में था। भुगतान सन्तुलन में 260 करोड़ रुपये का घाटा था। इस घाटे के अनेक कारण थे जैसे कि विभिन्न प्रकार के नियन्त्रण, देश का विभाजन, खाद्यानों और कच्चे माल की कमी। 1949 में रुपये का अवमूल्यन किया गया था। पर इस अवमूल्यन से भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने में कोइ, विशेष सहायता नहीं मिल सकी थी।

33.5.1 प्रथम योजना (1951 – 56)

पहली योजना में भुगतान सन्तुलन केवल 42 करोड़ रुपये से ही प्रतिकूल था। भुगतान सन्तुलन पर प्रमुख रूप से तीन बातो का प्रभाव पड़ा था –

(I) 1950 में कोरिया युद्ध के कारण भारत के निर्यात बढ़े,

(II) अमरीका में 1953 की मन्दी का भारत पर अनुकूल प्रभाव रहा,

(III) देश में अनुकूल मानसून के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, आयातों पर नियन्त्रण रखा गया।

प्रथम योजना में भुगतान सन्तुलन की स्थिति की एक तालिका से स्पष्ट किया जा सकताहै –

तालिका 33.1

पहली योजना में भुगतान सन्तुलन

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान सन्तुलन
1951–52	–232.8	+70.2	+462.6
1952–53	–31.1	+91.3	+60.2
1953–54	–52.1	+99.5	+47.2
1954–55	–93.1	+99.1	+6.0
1955–56	–132.8	+139.5	+6.7
कुल	–541.9	+499.6	–42.3

तालिका से पता लगता है कि योजना के प्रथम वर्ष को छोडकर अन्य वर्षों में भुगतान सन्तुलन में आधिक्य की स्थिति थी। प्रत्येक वर्ष व्यापार घाटा तो रहा पर शुद्ध अदृश्य मदों के धनात्मक होने के कारण भुगतान संतुलन की प्रतिकूलता 42 करोड़ रूपये ही थी।

33.5.2 दूसरी योजना (1956 – 61)

इस योजना में भुगतान सन्तुलन में भारी घाटा था। इस घाटे के कारण विदेशी विनिमय का संकट उतना हुआ। जहां प्रथम योजना में भुगतान सन्तुलन का घाटा मात्र 42 करोड़ रूपये था वह दूसरा योजना में बढ़कर 1725 करोड़ रूपये हो गया। यह तालिका से इस प्रकार दिखाया जा सकता है–

तालिका 33.2

दूसरी योजना में भुगतान सन्तुलन

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान संतुलन
1956–57	–467	+154	–313
1957–58	–639	+132	–507
1958–59	–453	+126	–327
1959–60	–305	+119	–186
1960–61	–475	+83	–392
कुल	–2339	+614	–1725

घाटे के प्रमुख कारण थे–

विकास कार्यों के लिए आयातों में तेजी से वृद्धि हुई थी। मेहलानोबिस के मॉडल का इस योजना में प्रयोग किया गया था। इस मॉडल में आधारभूत उद्योगों को प्राथमिकता दी गई थी। इन उद्योगों में बड़ी मात्रा में पूंजीगत साज–सामान का आयात हुआ था।

योजना अवधि में विशेषकर अंतिम वर्ष में खाद्यान उत्पादन में कमी के कारण भारी मात्रा में खाद्यान्नों का आयात हुआ था क्योंकि कृषि उत्पादन में आवश्यक वृद्धि नहीं हुई थी।

निर्यातों में वृद्धि नहीं हुई थी बल्कि निर्यात प्रथम योजना काल से भी कम हुए थे।

देश में मुद्रा प्रसार जैसी परिस्थितियों के कारण से भी निर्यात में कमी और आयातों में अधिकता थी।

33.5.3 तीसरी योजना (1961 – 66)

इस योजना अवधि में भुगतान शेष 1961 करोड़ रुपये से प्रतिकूल था। योजना की अपेक्षा घाटा अधिक था।

तालिका 33.3

तीसरी योजना में भुगतान सन्तुलन

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
61–62	–338	+31	–306
62–63	–416	+62	–354
63–64	–443	+64	–349
64–65	–620	–168	–452
65–66	–567	+77	–490
कुल	–567	+432	–1952

तालिका से स्पष्ट है कि तीसरी योजना में दूसरी की तुलना में अदृश्य मदों शुद्ध प्राप्ति में काफी कमी आई थी जिसका मुख्य कारण व्याज भुगतान की बढ़ती हुई राशि। जहाँ तक व्यापार सन्तुलन का प्रश्न है खाद्यान्न समस्या और भारी तथा आधारभूत उद्योगों की आवश्यकता पूर्ति के लिय आयातों में लगातार वृद्धि होती रही।

33.5.4 वार्षिक योजनाएं (1966–69)

तीन वार्षिक योजनाएं बनी थी, तीनों में भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल था। तीनों योजनाओं में व्यापार सन्तुलन का कुल घाटा 2,067 करोड़ रुपये था। अदृश्य मदों से 51.7 करोड़ रुपये का लाभ था। इस प्रकार भुगतान संतुलन का घाटा 2,067 – 58.0 = 2,015 करोड़ रुपये था।

तालिका 33.4

वार्षिक योजनाओं में भुगतान सन्तुलन

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1996–67	–905.8	+59.9	–845.9
1967–68	–782.2	–16.1	–804.3
1968–69	–373.1	+7.2	–365.2
कुल	–2061.1	+51.0	–2015.4

33.5.5 चौथी योजना (1969–74)

इस योजना में भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल था। 1969–70 में कृषि उत्पादन में वृद्धि से खाद्यान्नों का आयात कम हुआ था और निर्यातों में वृद्धि हुई थी, जिससे व्यापार सन्तुलन का घाटा कम हुआ था। यह घाटा 178 करोड़ रुपये का था।

तालिका 33.5

चौथी योजना में भुगतान सन्तुलन

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1969–70	–178	–39	–217
1970–71	–318	–14	–332
1971–72	–438	+37	–401
1972–73	251	–01	–252
1973–74	–379	–1680	+1301
कुल	–1564	+1663	+99

1971–72, 1972–73 में स्थिति काफी बिगड़ गयी थी। इन वर्षो में व्यापार सन्तुलन का घाटा 438 करोड़ रुपये और 251 करोड़ रुपये रहा था। इन वर्षों खाद्यान्न आयातों में वृद्धि हुई थी और खनिज तेल की कीमतें बढ़ गई थी जिससे आयात भी काफी बढ़ गया था।

1973–74 में अदृश्य मदों की प्राप्ति के कारण भुगतान सन्तुलन1301करोड़ रुपये से अनुकूल था। पर यह अनुकूलता असामान्य थी क्योंकि इस अनुकूलता का कारण अमरीकी सरकार के साथ पी.एल. 480 और दूसरी रुपया राशियों के भुगतान की छूट का निर्णय था। भारत को इस छूट के कारण 1,664 करोड़ रुपये अदृश्य मदों से प्राप्त हुए थे।

33.5.6 पांचवी योजना (1974–79)

यह योजना 1979 में समाप्त होने वाली थी, पर इसे एक वर्ष पहले ही 1978 में समाप्त कर दिया गया।

इस योजना के प्रथम दो वर्षो, 1974–75 और 1975–76 में निर्यात, तेजी से बड़े थे पर निर्यातों कइा? वृद्धि से अधिक आयातों में वृद्धि हुई थी। परिणाम स्वरूप कापार घाटा 977 करोड़ रुपयों और 566 करोड़ रुपये ही था। 1973–74 में जबकि यह आटा केवल 379 करोड़ ने ही था।

1976–77 में व्यापार संतुलन 316 करोड़ रुपये से रुक्ष मैं था। योजना के अंतिम वर्ष में व्यापार घाटा आयातित पेट्रोलियम पदार्थों के मूल्यों में नुड़ि के कारण बहुत अधिक बढ़ गया था।

1975–76, 1976–77 और 1977–78 में अदृश्य मदों में भारी द्ध से चालू खाते में भुगतान संतुलन में अतिरेक की स्थिति आ गई थी। यह अतिरेक +294 करोड़, +1,525 करोड़ और+1734 करोड़ रुपये था।

तालिका 33.6

पांचवी योजना में भुगतान शेष

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1974–75	–977	333	644
1975–76	–566	860	294
1976–77	+316	1209	1525
1977–78	–107	1842	1734
कुल	–1334	+4245	+2910

तालिका से स्पष्ट है कि व्यापार सन्तुलन में घाटा था पर अदृश्य मदों प्राप्ति बहुत थी। अदृश्य मदों की प्राप्ति में निरन्तर वृद्धि के कई कारण थे –

(i) विश्व की अधिकांश मुद्राओं के मूल्यों में काफी उतार–चढ़ाव हो रहे थे, पर भारतीय रुपये के मूल्य में अपेक्षाकृत स्थिरता थी।

(ii) तस्करी और अवैधानिक भुगतानों के विरूद्ध कठोर कदम उठाये! गये थे।

(iii) विदेशों को रोजगार के लिए बड़ी संख्या में भारतीय चले गये थे। इन प्रवासी भारतीयों ने भारत को बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा भेजी थी।

(iv) पर्यटन उद्योग को बढ़ावा मिला था जिसके कारण विदेशी पर्यटको की संख्या में वृद्धि हुई थी।

पांचवीं और छठी योजना के बीच एक वर्ष के अन्तराल 1979–80 में व्यापार घाटा 3,374 करोड़ रुपये का था और अदृश्य मदों से 3,140 करोड़ रुपये की शुद्ध प्राप्ति हुई थी जिससे पुरातन सन्तुलन में 234 करोड़ रुपये का घाटा था।

33.5.7 छठी योजना (1980–85)

इस योजना के प्रत्येक वर्ष व्यापार सन्तुलन में भारी घाटा था जिसके कारण भुगतान सन्तुलन में भी घाटा था।

तालिका 33.7

छठी योजना मे भुगतान सन्तुलन

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	व्यापार सन्तुलन	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1980–81	–5,967	+4,310	–1,657
1981–82	–6,121	+3,804	–2,317
1982–83	–5,776	+3,480	–2,296
1983–84	–5,871	+3,809	2,262
1984–85	–6,781	+3,869	–2,852

तालिका से स्पष्ट है कि व्यापार सन्तुलन में भारी प्रतिकूलता के कारण, अदृश्य मदों से काफी प्राप्ति के होते हुए भी, भुगतान सन्तुलन में घाटे की गम्भीर स्थिति बनी रही थी। इस स्थिति का सामना करने के लिए सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के विशेष आहरण योजना के अन्तर्गत राशि निकालनी पड़ी थी और अपने संचित विनिमय कोष का प्रयोग करना पड़ा था।

33.5.8 सातवीं योजना (1985–90)

इस योजना के प्रथम वर्ष 1985–86 में व्यापार सन्तुलन का घाटा 9,586 करोड़ रुपये था, इतना घाटा कभी भी किसी वर्ष नहीं रहा था। अदृश्य मदों से प्राप्ति 3,630 करोड़ रुपये थी जिसके कारण भुगतान सन्तुलन का घाटा 5,956 करोड़ रुपये था।

33.6 भुगतान सन्तुलन में घाटे के कारण

भारत के भुगतान सन्तुलन में हमेशा ही घाटा रहा है और यह घाटा बढ़ता ही रहा है । भुगतान सन्तुलन में घाटे के कारण विदेशी विनिमय की समस्या बनी रही है । भुगतान सन्तुलन में घाटे के कारण है

(1) **आयातों में वृद्धि –** आयातों में वृद्धि के कई कारण रहे है –

(i) देश में कृषि और उद्योगों के विकास के लिए यंत्रों और उपकरणों का भारी आयात किया गया है। वर्तमान में भी यंत्र और उपकरण भारत के आयातों की प्रमुख मद है।

(ii) जनसंख्या में वृद्धि के कारण खाद्यान्नों का भारी मात्रा में आयात करना पड़ा है।

(iii) आयात प्रतिस्थापन योजनाओं को भी कोई विशेष सफलता नहीं मिली है।

(2) निर्यातों में आयातों की अपेक्षा कम वृद्धि –

निर्यातों में वृद्धि आयातों की तुलना में कम रही है। निर्यातों में अपेक्षित वृद्धि न होने के कई कारण रहे है –

(i) निर्यातों की माँग बेलोचदार है। निर्यातों का आधा भाग आज भी परमार है। परम्परागत वस्तुओं में चाय, काफी बूट की वस्तुएं, सूती वस्त्र और कृषिगत वस्तुएं आती है। इन वस्तुओं की विदेशी बाजार में कठिन प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। इन वस्तुओं में निर्यात बढ़ाने में सफलता नहीं मिली है।

(ii) निर्यात संवर्धन के लिए तीसरी योजना से ही प्रयास किये गये है पर कोई विशेष सफलता नहीं मिला है।

(iii) घरेलू माँग में निरन्तर वृद्धि से निर्यात के लिए उत्पादन का कुछ ही अंश शेष रहता है।

(iv) मुद्रा स्फीति का दबाव बने रहने से उत्प लागत अधिक रहती है, जिससे विदेशी बाजारों में भारतीय वस्तुएं महंगी पड़ती है।

(v) विदेशी सरकारों के प्रतिबन्धों के कारण भी निर्यात बढ़ाने में कठिनाई होती रही है।

(3) **विदेशी ऋण –** भारत ने विकास कार्यो के लिए भारी मात्रा में ऋण लिए है। इन ऋणों पर ब्याज और मूलधन लौटाने के लिए विदेशी विनिमय व्यय किया गया है।

(4) **पेट्रोलियम के मूल्यों मे वृद्धि –** तेल उत्पादन देश पेट्रोलियम पदार्थों के मूल्य बढ़ाते रहे है और इन पदार्थों की खपत भी देश में बढ़ती रही है जिससे इनके आयात के लिए व्यय में भारी वृद्धि होती रही है।

(5) **अदृश्य मदों का भुगतान –** –अदृश्य मदों के अन्तर्गत भारत की देनदारी की अपेक्षा लेनदारी काफी समय तक अधिक रही है, पर फिर भी अदृश्य मदों से प्राप्त शुद्ध आय बहुत कम रही है। इस कारण से भुगतान सन्तुलन के घाटे को सीमित मात्रा में ही कम किया जा सका है। यही नहीं विदेशी ऋणों की अदायगी ब्याज भुगतान की बढ़ती मात्रा के कारण अनेक वर्षो अदृस्य मदों में भी घाटा रहा है।

(6) **विदेशी ऋण और व्यापार के मध्य सम्बन्ध का अभाव –** भारत को विदेशी से जो अधिकांश ऋण मिलते रहे है, उनका व्यापार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहा है। ऐसी स्थिति में उन ऋणों को लौआने से भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता रहा है। कुछ देशों से जैसे कि रूस से जो

ऋण मिलते रहे है, उनका व्यापार से सीधा सम्बन्ध रहा है । दूसरे शब्दों में ये देश ऋण के बदले भारत में निर्मित वस्तुएं स्वीकार करते है। इस प्रकार के ऋणों का भुगतान निर्यातो से होता रहता है।

(7) **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से रूपये की खरीद –** भारत ने बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा ऋण के रूप में ली है । ये ऋण' रुपये देकर लिए जाते है । इन ऋणों के भुगतान के लिए फिर से विदेशी मुद्रा देकर रुपये वापिस क्रय किये जाते है । भारत को भारी मात्रा में मुद्रा कोष से रुपये की खरीद करनी पड़ती रहती है जिससे भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल हो जाता रहा है।.

(8) **आय प्रभाव और कीमत प्रभाव –** आय प्रभाव से अर्थ आय में वृद्धि के कारण व्यापार पर पड़ने वाले प्रभाव से है । सरकार जब बड़ी मात्रा में विनियोग करती है तो जनता की आय में वृद्धि होती है जिसके कारण आयात की जाने वाली विलासिता की वस्तुओं कीं माँग बढ़ जाती है और साथ ही घरेलू वस्तुओं की माँग भी बढ़ जाती है, जिससे निर्यात के' लिए वस्तुओं की मात्रा कम हो जाती है। इस तरह आय प्रभाव भुगतान सन्तुलन में प्रतिकूलत उत्पन्न करता है।

भारी मात्रा में विनियोग केवल आय प्रभाव हीं नहीं उतन करते अपट्टि कीमत प्रभाव भी उत्पन्न करते है । अधिकतर विनियोग दीर्घकाल के बाद ही फलदायक होते है । पर जनता की आय में वृद्धि विनियोगों के साथ ही हो जाती है । परिणामस्वरूप मूल्य स्तर बढ़ जाता है । मूल्य स्तर में वृद्धि की जो व्यापार पर प्रभाव पड़ता है उसे कीमत प्रभाव कहते है । मूल्यों में वृद्धि से आयातों में वृद्धि होती है और निर्यात कम हो जाते है।

बोध प्रश्न 2

1 योजनाकाल में भारत की भुगतान सन्तुलन स्थिति की संक्षेप में बताइये?

2 भारत के भुगतान संतुलन के प्रतिकूल होने के क्या कारण थे?

33.7 भारत सरकार द्वारा प्रतिकूल भुगतन संतुलन अथवा विदेशी विनिमय संकट दूर करने के उपाय

भारत सरकार के लिए प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन हमेशा ही एक चिन्ता का विषय रहा है । समय–समय पर सरकार ने इस समस्या की सुलझाने के लिए कई उपाय किये है। ये उपाय है।

1. **नोट निर्माण प्रणाली में परिवर्तन –** भारत सरकार ने 1956 में नोट निर्गमन प्रणाली परिवर्तित कर दी। अनुपातिक कोष प्रणाली (Proportional Reserve System) के स्थान पर न्यूनतम् कोष प्रणाली (Minimum Reserve System) अपना ली गई। इस प्रणाली में 200 करोड़ रुपये का न्यूनतम कोष रखना जरूरी कर दिया गया। इस प्रणाली में 115 करोड़ रुपये का स्वर्ण रखा जाता है जो पूर्व प्रणाली के समान ही था, पर इसके साथ 85 करोड़ रुपये की विदेशी प्रतिभूतिया रखी जाती है, जबकि पूर्व प्रणाली में 400 करोड़ रुपये की विदेशी प्रतिभूतिया रखी

जाती थी। इसका उद्देश्य यह था कि शेष विदेशी विनिमय का प्रयोग विकासात्मक आयातों के लिए किया जा सके।

2. **प्रतिबन्धात्मक आयात नीति –** सरकार ने समय–समय पर आयातों पर कड़े प्रतिबन्ध लगाये है जिससे विदेशी मुद्रा का प्रयोग केवल आवश्यक वस्तुओं के आयात पर किया जा सके।
3. **निर्यात प्रोत्साहन –** तीसरी योजना के आरम्भ से ही निर्यात संवर्द्धन के लिए सरकार ने प्रयास किये। इन प्रयासों को सफलता भी मिली पर सफलता जितनी मिलना चाहिये थी उतनी नहीं मिली।
4. **आयात प्रतिस्थापन –** सरकार ने आयात प्रतिस्थापन की नीति अपनायी जिससे कि आयातों पर निर्भरता कम हो सके। इस नीति के अर्न्तगत उन वस्तुओं का उत्पादन किया गया जिन्हें विदेशों से आयात किया जाता था।
5. **अधिक विदेशी सहायता –** सरकार ने समय–समय पर भुगतान सम्बन्धी कठिनाइयों को हल करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विदेशी सरकारों से विदेश मुद्रा में ऋण लिए। इन ऋणों से अल्पकालीन समस्या ही हल हुई पर यह समस्या का कोई हल नहीं है । ऋणों को लौटाना और उन–पर ब्याज तो देना ही पड़ता है । आज विदेशी ऋणों का अत्यधिक भोर हमारी अर्थ–व्यवस्था पर हो गया और इन ऋणों पर ब्याज देना ही एक बड़ी समस्या बन गया है ।
6. **विदेशी विनिमय अधिनियम –** सरकार ने विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम 1973 में पारित किया। यह अधिनियम 1974 में लागू किया गया। इस नियम के अन्तर्गत विदेशों में रह. रहे भारतीयों ने रिजर्व बैक के माध्यम से धन भारत भेजा जिससे हमारे विदेशी मुद्रा कोष में वृद्धि हुई।
7. **स्थगित भुगतान पद्धति –** विदेशी विनिमय के अल्पकालीन मात्र को। दूर करने के लिए स्थगित 'भुगतान पद्धति को लागू किया गया। नई परियोजनाओं के लिए आयात लाइसेन्स इस शर्त पर दिए गए कि आयातों का प्रबन्ध स्थगित भुगतान के आधार पर किया जाना संभव होना चाहिये।
8. **सरकार की स्वर्ण नीति –** सरकार ने स्वर्ण आकर्षित करने के लिए तथा निजी प्रयोग में स्वर्ण के आकर्षण को समाप्त करने के लिए स्वर्ण नीति बनाई जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार है : –

   (i) स्वर्ण बांड जारी किये जिन पर 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज था और ये बांड 15 वर्षीय थे।

   (ii) स्वर्ण की सट्टेबाजी को रोकने के लिए स्वर्ण के अग्रिम व्यापार पर रोक लगा दी गई।

   (iii) स्वर्ण नियन्त्रण कानून लागू किया जिसके अन्तर्गत केवल 14 कैरट की शुद्धता वाले स्वर्ण आभूषण ही बनाये जा सकते थे और स्वर्ण किसी अत रूप में नहीं रखा जा सकता था।

(iv)स्वर्ण आभूषण के निर्यात को प्रोत्साहन दिया गया। स्वर्ण नीति में समय–समय पर सुधार करने पर भी सरकार को अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी। स्वर्ण की तस्करी बड़े पैमाने पर होती रही और विदेशी विनिमय का दुरुपयोग होता रहा।

33.8 भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के सुझाव

(1) **निर्यात प्रोत्साहन –** विदेशी विनिमय संकट को दूर करने के लिए आवश्यक है कि निर्यातो को बढ़ाने का हर संभव प्रयास किया जाना चाहिये। सरकार ने प्रयास तो किये है पर प्रयास अब और आक्रामक ढंग से किये जाने चाहिये।

(2) **घरेलू मांग की सीमित करना –** उच्च आय वर्ग द्वारा प्रयोग की जाने वाली अनावश्यक और प्रदर्शन मात्र की उपभोग वस्तुओं की मांग पर नियन्त्रण लगाया जाना चाहिये और निर्यात अतिरेक (Export Surplus) का निर्माण किया जाना चाहिये जिससे कि निर्यातो में वृद्धि की जा सके।

(3) **आयातों में कमी –** भारत को अपने आयातों में कमी करनी चाहिये इसके लिए (1) आयात करों में वृद्धि करना चाहिये जिससे आयतित वस्तुएं महगी पडे और उनकी मांग कम हो तथा (2) लाइसेन्स कोटा प्रणाली का पूरा सहयोग लेना चाहिये।

(4) **आयात प्रतिस्थापन –** जिन वस्तुओं का आयात किया जाता है उनके प्रतिस्थापन की व्यवस्था की जानी चाहिये। इसके लिए घरेलू उत्पादन बढ़ाना चोहिये तथा नये उद्योग स्थापित करना चाहिये। इससे आयात कम होंगे और भुगतान संतुलन पर दबाव कम होगा।

(5) **मूल्यों में स्थिरता** – निर्यात बढाने के लिए मूल्यों में स्थिरता चाहिये। यह आवश्यक है कि विदेशी बाजारों में भारतीय वस्तुएं मंहगी न पड़े और प्रतिस्पर्धा में टिक सकें। दूसरे शब्दों में मुद्रा प्रसार की प्रवृलि को नियन्त्रण में रखना चाहिये।

(6) **भारत मूल के व्यक्तियों को सुविधा –** विदेशों में रह रहे भारतीयों को भारत धन भेजने के लिए पर्याप्त सुविधा और प्रलोभन देना चाहिये जिससे कि वे अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा भारत भेजें।

(7) **विदेशी पर्यटको को प्रोत्साहन** – देश में विदेशी पर्यटको के लिए विशेष सुविधाओं की व्यवस्था करना चाहिये जिससे कि अधिक संख्या में भारत भ्रमण के लिए आयें और भारत को विदेशी मुद्रा प्राप्त हो सके।

आर्थिक नियोजन से भुगतान सन्तुलन में घाटा होता ही है । पर घाटा इतना अधिक नहीं होना चाहिये जितना कि हुआ है । घाटा एक सीमा तक ही उचित ठहराया जा सकता है । विदेशों से घाटे की पूर्ति के लिए ऋण लिये जा सकते है पर ऋण लेकर घाटा पूरा करना समस्या का कोई हल नहीं है । घाटे की समस्या का हल तो आयात प्रतिस्थापन आवश्यक आयात और निर्यात संबर्द्धन से

ही हो सकता है । आज भूमण्डलीकरण के दौर में ये सुझाव महत्वहीन हो गए है । अब हमें निर्यातो की गुणवत्ता बढ़ाकर विदेशी बाजारों में प्रतिस्पर्द्धा करनी है ।

बोध प्रश्न, 3

1 विदेशी विनिमय संकट दूर करने के लिए सरकार द्वारा क्या प्रयास किये गये थे?

2 भुगतान सन्तुलन की कठिनाई को दूर करने के लिए आपके क्या सुझाव है?

33.9 सारांश

भुगतान सन्तुलन से अर्थ एक देश के निवासियों का अन्य देश के निवासियों से हुए उस मोद्रिक लेन–देन है, जो एक निश्चित अवधि में हुए हों।

व्यापार सन्तुलन में केवल दृश्य मदों को रखा जाता है जबकि भुगतान सन्तुलन में दृश्य व अदृश्य दोनों को व्यापार सन्तुलन भुगतान सन्तुलन का ही भाग है । भुगतान सन्तुलन के दो भाग है : – (1) चालू खाता (2) पूंजीगत सौदे।

योजनाकाल में भारत का भुगतान सन्तुलन हमेशा ही प्रतिकूल रहा है । भुगतान सन्तुलन का घाटा प्रत्येक योजना में बढ़ता गया है । दूसरी योजना से घाटे की प्रवृत्ति बढ़ने की रही है ।

भुगतान असन्तुलन के अनेक कारण है – आयातों में निरंतर वृद्धि, निर्यातो में आयातों की तुलना में कम वृद्धि, विदेशी ऋणों पर व्याज का भुगतान और ऋणों का भुगतान, पेट्रोलियम के मूल्य और खपत में वृद्धि, अदृश्य मदों में शुद्ध आय की कम प्राप्ति, विदेशी ऋणों से व्यापार के सम्बन्ध का न होना, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से रुपये की खरीद, बड़ी मात्रा में विनियोगों के कारण पड़ने वाला आय और कीमत प्रभाव।

भारत सरकार ने समय–समय पर प्रतिकूलता को दूर करने के उपाय किये है । ये इस प्रकार है – न्यूनतम नोट निगर्मन प्रणाली को अनुपातिक कोष प्रणाली के स्थान पर अपनाना, आयातों पर प्रतिबंध लगाना, निर्यातो को प्रोत्साहन करना, आयात प्रतिस्थापन की नीति अपनाना, विदेशों से अधिक सहायता प्राप्त करा, विदेशी अधिनियम 1973 पारित करना, स्थगित भुगतानों के आधार पर लाइसेन्स देना और स्वर्ण नीति बनाना।

भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के लिए सुझाव इस प्रकार है :– निर्यातो को और अधिक प्रोत्साहन देना, घरेलू मांग को कम करना, आयात प्रतिस्थापन पर बल देना जिससे आयात की आवश्यकता और कम हो सके, मूल्य स्तर में स्थिरता लाना, प्रवासी भारतीयों को भारत धन भेजने के लिए प्रेरित करना और पर्यटन उद्योग को विकसित करना जिससे और अधिक पर्यटक भारत आने के लिए उद्दत हों।

33.10 शब्दावली

आयात प्रतिस्थापन (Import Substitution)	विदेश, से आयातित वस्तुओं का उतादन।
निर्यात संवर्द्धन (Export Promotion)	इसके अन्तर्गत उद्योगों को निर्यात करने के लिए अनेक उपायों द्वारा' प्रोत्साहित किया जाता है।
अवमूल्यन (Devaluation)	देश की मुद्रा के बाह्य मूल्य को कम करना।
विशेष आहरण अधिकार (Special Drawing Rights)	भुगतान शेष के दावों का निपटारा करने का अदभुत साधन, इसके द्वारा स्वर्ण का सहाय लिये बिना, विदेश पुगतानों के लिए, परिवर्तनशील मुद्राएं प्राप्त की जानी है । यह योजना 1970 से लागू हुई थी।
विनिमय प्रतिबंध (Exchange Control)	भुगतान शेष की कठिनाइयो को हल करने के लिए एक वैकल्पिक व्यवस्था जिसका अर्थ सरकार द्वारा विदेशी विनिमय बाजार की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करना है।
मॉडल (Model)	किसी आर्थिक प्रोग्रामिंग के विश्लेषण का एक व्यवस्थित क्रम है।

33.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

लक्ष्मी नारायण नाथूरामका, भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा

सी.एस. बरला और आर.सी. अग्रवाल, भारतीय अर्थशास्त्र. रतन प्रकाशन मंदिर, देहली

एल.एस. राय, भारतीय अर्थशास्त्र, नव विकास प्रकाशन, पटना।

हरिशचन्द्र शर्मा और आर.एन. सिंह, भारतीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा

डा. चतुर्भुज मामोरिया और डा. एस.सी. जैन, भारत की आर्थिक समस्याएं, साहित्य भवन आगरा।

ए.एन अग्रवाल, भारतीय अर्थ–व्यवस्था, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि, नई दिल्लो

A.N.Agarwal, Indian Economy, Wilsey Eastern ltd New Delhi

P.C.Dhimgra, Indian Economy, Sultan Chand & Sons New Delhi

Rudra Datt and K.P.M. Sundhram, Indian Economy, S. Chand & Co. (Pvr.) Ltd. New Delhi.

S.K.Mishra and V.K. Puri Indian Economy, Himalava Publishing House, Bombay.

33.12 अभ्यासों के त्तर

बोध प्रश्न 1

1. एक निश्चित अवधि में एक देश को विदेशों से जो भुगतान प्राप्त होता है और जो भुगतान करना होता है उसके क्रमबद्ध विवरण को भुगतान संतुलन कहा जाता है । यदि प्राप्ति अधिक होती है तो भुगतान सन्तुलन का आधिक्य और यदि भुगतान अधिक होता है तो भुगतान सन्तुलन का घाटा कहा जाता है।
2. व्यापार सन्तुलन में आयात निर्यात का विवरण रहता है जबकि भुगतान सन्तुलन में आयात निर्यात के साथ–साथ सेवाओं, पूंजी, और स्वर्ण आदि के आयात व निर्यात को शामिल किया जाता है।
3. भुगतान सन्तुलन के दो भाग है:
   (1) चालू खाता – इसमें व्यापार सतुलन, अदृश्य मदें, गैर मौद्रिक स्वर्ण की गतिशीलता से शामिल किया जाता है।
   (2) पूंजीगत वादे – इसमें निजी प्राप्तियां व निजी भुगतान सरकारी प्रप्तियां और सरकारी भुगतान, विदेशी ऋणों के व्याज व मूलधन का भुगतान, अन्तर्तष्ट्रीय मुद्रा कोष से रुपये की खरीद, बैकिंग पूंजी की शुद्ध राशिया शामिल है।

बोध प्रश्न 2

1. योजनाकाल में भारत का भुगतान सन्तुलन सदैव ही प्रतिकूल रहा। पहली योजना में घाटा43 करोड़ रुपये था। इस योजना में कोरिया युद्ध, अमरीका में मंदी, अनकूल वर्षा का भुगतान सन्तुलन पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। दूसरी योजना में घाटा बढ़कर 1725 करोड़ रुपये हो गया क्योंकि भारी मात्रा में मशीनरी का आयात किया गया था और निर्यात बढ़ नहीं सके थे। तीसरी योजना में घाटा दूसरी से भी अधिक 1951 करोड़ रुपये हुआ क्योंकि पूंजीगत में भुगतन सन्तुलन 99 करोड़ रुपये से अनुकूल था यह अनुकूलता अमरीका से रुपया राशियों में छूट के कारण थी। पांचवी और छठी योजना भी भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल रहा।
2. भारत के भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल होने के कारण थे – आयात में वृद्धि, निर्यात में अपेक्षितवृद्धि नहीं, आय प्रभाव और मूल्य प्रभाव विदेशी ऋण और व्यापार में सम्बन्ध का अभाव, विदेशी ऋणों पर व्याज और उनकी अदायगी, पेट्रोलियम मूल्यों में वृद्धि।

बोध प्रश्न 3

1. विदेशी विनमय संकट को दूर करने के लिए सरकार के प्रयास इस प्रकार है –
   (i) मुद्रा प्रणाली में परिवर्तन,
   (ii) प्रतिबन्धात्मक आयात नीति,
   (iii) निर्यात् प्रोत्साहन,
   (iv) अधिक विदेशी सहायता,
   (v) आयात प्रतिस्थापन,
   (vi) विदेशी विनिमय अधिनियम,
   (vii) स्थगित भुगतान पद्धति और
   (viii) स्वर्ण नीति का निर्माण।
2. भुगतान संतुलन की कठिनाई दूर करने के लिए सुझाव इस प्रकार है–
   (i) निर्यात प्रोत्साहन,
   (ii) घरेलू मांग को कम करना,
   (iii) आयातों में कमी,
   (iv) आयात प्रतिस्थापन,
   (v) मूल्य स्तर में स्थिरता,
   (vi) प्रवासी भारतीयों को धन भेजने के लिए आकर्षण,
   (vii) पर्यटन उद्योग का विकास।

परिशिष्ट – (इकाई 23)

विभिन्न योजनाओं में भुगतान सन्तुलन की

सातवीं योजना मे भुगतान सन्तुलन

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1985–86	–9586	+3630	–5956
1986–87	–9354	+3524	–5830
1987–88	–9296	+3003	–6293
1988–89	–13555	+1975	–11580
1989–90	–12413	+1025	–11388
कुल	–54204	+13157	–471047

वार्षिक योजनाओं 1990–91, 1991–92 में भुगतान सन्तुलन

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1990–91*	–16934	–435	–17369
1991–92*	–6945	+4258	–2237
*प्रस्तावित			

आठवीं योजना के प्रथम दो वर्षों 1992–93 व 1993–94 में व्यापार शेष क्रमशः–14101 करोड़ रुपये व –7484 करोड़ रु. रहा। 1992–93 में शुद्ध अदृश्य मदें 1337 करोड़ रु. व 1993–94 में 3848 रु. रहा।

भुगतान शेष घाटा 1992–93 में –12764 रु. व 1993–94 में – 3636 करोड़ रु. रहा।

इकाई 34

निर्यात सम्बर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन

इकाई की रूपरेखा

34.0 उद्देश्य

34.1 प्रस्तावना

34.2 निर्यात–सम्बर्द्धन का अर्थ

34.3 निर्यात–सम्बर्द्धन की आवश्यकता

34.4 निर्या सम्बर्द्धन के मार्ग में बाधाएं

34.5 निर्यात–सम्बर्द्धन के लिए सरकारी प्रयत्न

34.6 निर्यात–सम्बर्द्धन के लिए सुझाव

34.7 आयात–प्रतिस्थापन का अर्थ

34.8 आयात–प्रतिस्थापन में प्रगति

34.9 आयात–प्रतिस्थापन से लाभ

34.10 आयात–प्रतिस्थापन से हानियां

34.11 आयात–प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में सुझाव

34.12 सारांश

34.13 शब्दावली

34.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

34.15 अभ्यासों के उत्तर

34.0 उद्देश्य

आप पिछली इकाई में भुगतान सन्तुलन की स्थिति का अध्ययन कर चुके है । इस इकाई में आपको निर्यात–सम्बर्द्धन और आयात–प्रतिस्थापन से परिचित कराया जायेगा। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

- निर्यात–सम्बर्द्धन और आयात–प्रतिस्थापन को परिभाषित कर सकेंगे
- निर्यात–सम्बर्द्धन की आवश्यकता प्रतिपादित कर सकेंगे,

- निर्यात–सम्बर्द्धन के मार्ग में बाधाओं का वर्णन कर सकेंगे,
- निर्यात–सम्बर्द्धन के सम्बन्ध में सरकार द्वारा किए गये प्रयत्नों पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- निर्यात–सम्बर्द्धन के लिए सुझाव दे सकेगे,
- आयात–प्रतिस्थापन का अर्थ समझा सकेगे,
- आयात–प्रतिस्थापन में प्रगति का उल्लेख कर सकेंगे,
- आयात–प्रतिस्थापन से लाभ और हानियों की व्याख्या कर सकेंगे,
- आयात–प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में सुझाव दे सकेंगे।

34.1 प्रस्तावना

पिछली इकई में आपने भारत की भुगतान सन्तुलन स्थिति के सम्बन्ध में पढ़ा है । अब इस इकाई में आप निर्यात सम्बर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन के विषय में पढ़ेंगे। भारत जैसी किसी भी विकासशील अर्थ–व्यवस्था के लिए निर्यात सम्बर्द्धन और आयाम–प्रतिस्थापन का विशेष महत्व है ।

यहां आपको बताया जायेगा कि निर्यात–सम्बर्द्धन तथा आयात–प्रतिस्थापन का अर्थ क्या है? आपको यह स्पष्ट किया जायेगा कि भारत के लिए निर्यात सम्वर्धन की आवश्यकता क्यों है? आपको निर्यात सम्वर्द्धन के मार्ग में आने वाली बाधाओं से अवगत कराया जायेगा और यह भी बताया जायेगा कि निर्यात सम्वर्द्धन के लिए सरकार ने क्या प्रयल किये है? साथ ही निर्यात प्रोत्साहन के लिए सुझाव भी दिये जायेंगे। आयात–प्रतिस्थापन भी देश की अर्थ–व्यवस्था के विकास के लिए अत्याधिक महत्वपूर्ण है । इसकी प्रगति के बारे में आपको जानकरी दी जायेगी। आयात प्रतिस्थापन के लाभ और हानियों का विश्लेषण भी किया जायेगा। साथ ही आपको आयात प्रतिस्थापन के लिए सुझाव भी दिये जायेंगे।

34.2 निर्यात सम्वर्द्धन का अर्थ

निर्यात सम्वर्द्धन से तात्पर्य निर्यात प्रोत्साहन से है जिसमें निर्यात वृद्धि के लिए निर्यात उद्योगों को अधिक से अधिक निर्यात बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है । इसके लिए नकद सहायता (Cash Subsidy) दी जाती है, बैको से रियायती दर पर ऋण दिये जाते है निर्यात के आधार पर आयात की अनुमति दी जाती है, निर्यात की वस्तु पर रेल–भाड़े और जहाज भाड़े में छूट दी जाती है और निर्यात करने वाले फर्म को आयकर में छूट दी जाती है ।

34.3 भारत के लिए निर्यात सम्वर्द्धन की आवश्यकता

भारत जैसे विकासशील देश के लिए निर्यात सम्वर्द्धन की आवश्यकता कई कारणों से है–

1. प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन ठीक करने के लिए – स्वतंत्रता के बाद भारत का भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल रहा है जिससे विदेशी विनिमय की समस्या ही नहीं केवल बनी रही है बल्कि पंचवर्षीय योजनाओं को जिस ढंग से बनाना चाहते थे बनाने में भी कीइनाई हुई है।

2. विदेशी ऋण–भार कम करने के लिए – भारत का विदेशी व्यापार असन्तुलित रहा है । व्यापार घाटा हमेशा ही बढ़ा है । आर्थिक योजनाओं के लिए धन की कमी बनी रही है । सरकार ने भुगतान सन्तुलन के घाटे को पूरा करने के लिए और योजनाओं को चलाने के लिए भारी मात्रा में विदेशों से और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लिए है । विश्व बैक के अनुसार भारत पर विदेशी ऋणों का भार 1988 के अंत में 76,000 करोड़ रुपये होने का अनुमान है। इन ऋणों क्टे चुकाने और ब्याज के भुगतान के लिए निर्यात वृद्धि की जरूरत है।

3. विकास योजनाओं की सफलता के लिए – विकास योजनाओं को सफलतापूर्वक चलाने के लिए पूँजीगत वस्तुओं के आयात जरूरी है। इन आयातों के लिए निर्यात वृद्धि आवश्यक है।

4. अर्थ–व्यवस्था को आत्म–निर्भर बनाने के लिए – विदेशी सहायता यर दीर्घ काल के लिए. निर्भर रहना देश के लिए घातक है इसके बहुत से दुष्परिणाम है । इनसे देश को मुक्त रखने के लिए निर्यात वृद्धि जरूरी है।

5. विश्व के कुल निर्यात व्यापार में भागीदारी बढ़ाने के लिए – विश्व के कुल निर्यात तेजी से बढ़े है पर कुल निर्यात में भारत की भागीदारी कुछ कम हुई है । जहां 1950 में विश्व के कुल निर्यात में भारत का भाग 2.1 प्रतिशत था वह घटकर 1974 में केवल 0.5 प्रतिशत हो गया है । भारत की विश्व के कुल निर्यात में भागीदारी बढ़ाने के लिए निर्यात प्रोत्साहन जरूरी है।

6. बढ़ती हुई आयात आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए – भारत की आयात आवश्यकताओं में आगे चलकर वृद्धि ही होना है । हाँ, यह वृद्धि विकास की प्रक्रिया को मंद करके अवश्य ही रूक सकती है । कई बार तेल की कीमतो में वृद्धि ने समस्या को और भी उलझा दिया है । तेल आर्थिक क्रियाओं के लिए एक आवश्यक उत्प्रेरक (Catalyst) है । इसकी खपत को एक सीमा तक ही नियंत्रित किया जा सकता है । भारत की तेल आवश्यकताओं में तो वृद्धि ही होना है जिसकी पूर्ति के लिए तेल को आयात बिल तो बढ़ना ही है । इसके अतिरिक्त भारत में ही तेल के उत्पादन को बढ़ाने के लिए भी विदेशी पूँजी की आवश्यकता पड़ेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि तेल का आयात करने और तेल क्षेत्र का विकास करने के लिए भारी मात्रा में विदेशी पूँजी की आवश्यकता पड़ेगी इसलिए निर्यात–सम्वर्द्धन जरूरी है।

7. ऋणों पर ब्याज भुगतान की समस्या – ऋणों पर ब्याज भुगतान की समस्या ने गंभीर मोड़ ले लिया है और यह कहा जा रहा है कि ब्याज भुगतान की समस्या और गंभीर बन सकती है । यह

तो किसी दशा में ठीक नहीं होगा कि ऋणों पर ब्याज चुकाने के लिए ऋण लिये जायें। अच्छा तो यही होगा कि निर्यात–सम्वर्द्धन द्वारा भुगतान की व्यवस्था की जाये।

8. उत्पादों के विक्रय के लिए – अनेक क्षेत्रों में उत्पादन के लिए उन्नत तकनीक का प्रयोग करना पड़ता है जिसके कारण उत्पादन का पैमाना बड़ा रहता है । बड़े पैमाने पर उत्पादन होनें से घरेलू बाजार पर्याप्त नहीं रहता है, इसलिए विदेशी बाजार खोज लेने की आवश्यकता है।

9. उपभोक्ता वस्तुओं के व्यापार के लिए – देश में उपभोक्ता वस्तुओं जैसे कि खाद्य तेल, शक्कर, खाद्यान्न की कई बार कमी पड़ जाती है । इनकी कमी से अर्थ–व्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है । भविष्य में इन वस्तुओं की कमी पड़ सकती है । निर्यात वृद्धि से आय में वृद्धि हो सकेगी और इन उपभोक्ता वस्तुओं का भी आयात किया जा सकेगा है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि देश की सुरक्षा के बाद निर्यात का ही स्थान है (Second only to defence) निर्यात–सम्वर्द्धन की अत्याधिक आवश्यकता व्यक्त होती है।

34.4 निर्यात–सम्वर्द्धन के मार्ग में बाधाएं

निर्यात–सम्वर्द्धन के लिए अनेक प्रयत्न करने पर भी जितनी सफलता मिलनी चाहिए थी नहीं मिली और व्यापार सन्तुलन हमेशा ही प्रतिकूल रहा है । निर्यात वृद्धि के मार्ग में अनेक बाधाएं है ।

1. ऊँचे मूल्य – भारत की अधिकांश वस्तुओं के मूल्य अधिक होते है, जिसें कारण विदेशी बाजारों में इनकी मांग कम होती है । हम जूट की वस्तुओं, सूती वस्त्र चीनी इत्यादि के सम्बन्ध में विदेशी उत्पादको के सामने नहीं टिक पाते है । कई वस्तुओं का निर्यात करने पर उत्पादका को हानि होती है, जिसका पूर्ति सरकार करती है। ऊँची कीमत होने के तीन कारण है –

   (i) मुद्रा प्रसार के कारण भारत में कमितो का स्तर दूसरे देशों की तुलना मे काफी ऊँचा है,

   (ii) भारतीय उद्योगों की कुशलता कम हैं

   (iii) भारतीय उत्पादक लागत के प्रति सचेत नहीं है।

2. विदेशी प्रतियोगिता – निर्यात की अनेक वस्तुएं विदेशी प्रतियोगिता के कारण बिक नहीं पाती है । सूती वस्त्र में जापान और चीन, चाय में श्रीलंका और जूट की वस्तुओं में बांग्ला देश ने हमारे विदेशी बाजारों को सीमित कर दिया है।

3. आयातों पर सीमाएं और ऊँचे कर – हमारी अनेक निर्यात वस्तुओं पर विदेशी सरकारों ने ऊँचे आयात कर लगा रखे है और आयात सीमाएं निश्चित कर रखी है जिससे कम मात्रा में वस्तुओं का निर्यात हो पाता है । सूती वस्त्र, तम्बाकू, चाय, जूट के सामान, चमड़े के सामान, साईकिलों आदि के निर्यात में ऊँचेकर और मात्रा की सीमाएं बाधक है।

4. निम्न स्तर की वस्तुएं – निर्यात वस्तुओं का स्तर घटिया है, जिससे प्रतिस्पर्धा में ये ठहर नहीं पाती है। इसके दो मुख्य कारण है: आधुनिकीकरण और तकनीकी ज्ञान की कमी।

5. भारतीय व्यापारियों की नीतियां – भारतीय व्यापारियों की नीतियां दोषपूर्ण है । वे नमूने के अनुसार वस्तुएं निर्यात नहीं करते है । रुस को एक बार जूतो का निर्यात किया गया था, पर जूते नमूने के अनुसार नहीं थे, इसलिए लौटा दिये गये। इसी तरह अमरीका को काली मिर्च का निर्यात किया गया था। उसमें गिलावट पाई गई, इसलिए अमरीका ने लौटा दी। व्यापारियों की इन दोषपूर्ण नीतियों के कारण विदेशों में भारतीय वस्तुओं की साख कम हो गई है।

6. सीमित बाजार – भारतीय वस्तुओं का बाजार संकुचित है । यदि विदेशी बाजार में मांग कम हो जाती है तो हमारे निर्यात भी कम हो जाते है । यदि ब्रिटेन में चाय की मांग कम हो जाती है तो चाय का निर्यात भी मांग के अनुसार कम हो जाता है।,

भारत के निर्यातो में परम्परावादी वस्तुओं का महत्वपूर्ण स्थान है । चाय, जूट की वस्तुएं, सूती वस्त्र का कुल निर्यात में हिस्सा 50 प्रतिशत है । यदि इन वस्तुओं की मांग कम होती है तो निर्यात भी कम हो जाते है।

7. स्थानापन्न वस्तुओं का प्रभाव – स्थानापन्न वस्तुओं के कारण निर्यात कम हो रहे है । जूट और सूती वस्त्र का स्थान स्थानापन्न वस्तुओं ने ले लिया है जिससे इनकी मांग कम हुई है।

8. प्रचार की कमी – भारतीय वस्तुओं का प्रचार विदेशों में धन की कमी के कारण कम होता है, जिससे निर्यात वृद्धि आशाजनक नहीं है।

9. आयात–प्रतिस्थापन उन्मुख विनियोग नीति – निर्यात–सम्वर्द्धन के मार्ग में आयात प्रतिस्थापन उन्मुख विनियोग नीति बाधक है । इस नीति के कारण उत्पादक को देश में ही, आयातों पर प्रतिबन्धों के कारण, एक संरक्षित बाजार मिल जाता है और उन्हें आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं के उत्पादन से शीघ्र और लाभ मिल जाता है । ऐसे में ये उत्पादक मिर्यात का जोखिम नहीं उठाना चाहते है, क्योंकि विदेशी बाजारों में इन्हें कठिन प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है।

बोध प्रश्न 1

1. निर्यात–प्रोत्साहन से आप क्या समझते है?

2. भारत में निर्यात सम्वर्द्धन की आवश्यकता किन कारणों से है?

3. निर्यात सम्वर्द्धन के मार्ग में कौन–कौन सी बाधाएं है?

34.5 निर्यात–प्रोत्साहन के लिए सरकारी प्रयास

भारतीय सरकार निर्यात वृद्धि के लिए हमेशा ही प्रयत्नशील रही है । सरकार के द्वारा अनेक प्रयास भी किये गये हैं, जो इस प्रकार है –

1. **संस्थागत व्यवस्थाएं –** निर्यात सम्वर्द्धन के लिए विभिन्न संगठनों का निर्माण किया गया है–

(i) व्यापार मंडल (Board of Trade) – इस बोर्ड का लाभ व्यापार के सभी पक्षों पर विचार करने के बाद सरकार को सलाह देना है । यह बोर्ड अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि विशेषकर निर्यात में वृद्धि के लिए प्रयत्न करता है । इसने निर्यात सम्बन्धी अवसरों से परिचित कराया है । उत्पादन व्यय में कमी, साख की सुविधा और जहाज–भाड़े की समस्या पर सुझाव भी दिये है।

(ii) निर्यात सम्बर्द्धन निदेशालय (Export Promotion Directorate) – इसका काम निर्यातको को आवश्यक सूचनाएं और सहायता देना है । यह व्यापार मंडल के निर्देशों और सुझावों को लागू करता है। इसके चार क्षेत्रीय कार्यालय दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता औंर चेनई में है।

(iii) निर्यात सम्वर्द्धन सलाहकार परिषद (Export Promotion Advisory Council) यह परिषट सरकार को आयात और निर्यात नीति की समीक्षा करती है और सरकार को परामर्श देती है।

(iv) क्षेत्रीय निर्यात–सम्वर्द्धन सलाहकार समितियां (Regional Export Promotion Advisory) देश के विभिन्न क्षेत्रों में निर्यात सम्मावनाओं और समस्याओं पर ये समितियां विचार करती है और अपने अपने क्षेत्रों की समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान – आकर्षित करती है।

(v) निर्यात सम्वर्द्धन परिषद (Export Promotion Council) – इनमें उद्योग, व्यापार और सरकार तीनों के प्रतिनिधि होते है । ये निर्यात वृद्धि के लिए परामर्श देती है । आज इस तरह की अलग अलग वस्तुओं जैसे काबू, सूती वस्त्र, हाथ–करघा, जवाहरात, मसाले की अनेक परिषदें है।

(vi) वस्तु मंडल (Commodity Board) – ये मंडल अपने से सम्बन्धित वस्तु के उत्पादन, विकास और निर्यात का काम करते है । कई वस्तुएं जैसे कि चाय, तम्बाकू, रबर, काफी, मसाले के मंडल स्थापित किये गये है।

(vii) निर्यात साख और प्रत्याभूति निगम (Export Credit and Guarantee Corporation) – यह निगम निर्यातको को उन अनिश्चिताओं के लिए बीमा सुविधा देता है, जोकि सामान्य बीमा कम्पनियों द्वारा नहीं दी जाती है । इसके द्वारा जारी नियति साख प्रत्याभूति पालिसी (Export Credit Guarantee Policies) आधार पर बैक निर्यातको को ऋण देते है।

(viii) राजकीय व्यापार निगम (Stare Trading Corporation) – तथा अन्य निगम – निर्यातो की वृद्धि करना और आवश्यक आयातों की व्यवस्था करना निगम का मुख्य उद्देश्य है।

इस निगम की सहायता के लिए कुछ और निगम गठित किये गये है – परियोजना और उपकरण निगम (Project and Equipments Corporation), खनिज और धातु व्यापार निगम (Minerals and Metals Trading Corporation) हस्तशिल्प और हथकरघा निगम Handicrafts and handloom Export Corporation), भारतीय काजू निगम (Cashew Corporation of India), रसायन और मेषण निगम (Chemistry & Pharmaceuticals Corporation)

(ix) निर्यात निरीक्षण परिषद – (Export Inspection Council) – इसका कार्य किस्म नियंत्रण और जहाज में मल लदान के पूर्व निरीक्षण व्यवस्था द्वारा निर्यात प्रोत्साहित करना है।

(x) भारतीय पैकेजिंग संस्थान (Indian Institute of Packaging) – इसका मुख्य उद्देश्य विदेशी बाजारों में भारतीय वस्तुओं की प्रतियोगी क्षमता को बढ़ाने के लिए पैकेजिंग में सुधार करना और अनुपयुक्त पैकेजिंग के कारण होने वाली हानियों ले कम करना है। यह पैकेविग तकनीक में प्रशिक्षण भी देता है और सलाहकार का काम भी करता है।

(xi) भारतीय विदेशी व्यापार संस्थान (Indian Institute of Foreign Trade) – इसका काम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मेलों और विदेशों में भारतीय प्रदर्शनियों का आयोजन करना है जिससे कि भारतीय वस्तुओं का प्रचार किया जा सके।

2. संरचनात्मक सुविधायें (Infra– structure Facilities):

(i) निर्यात सदन (Export–House) – सरकार ने कुछ व्यवसायिक फर्मो को निर्यात सदन की मान्यता दी है। सरकार ने यह निर्यात व्यापार में विशिष्टीकरण के लिए किया है। इन सदनों को निर्यात व्यापार के सम्बन्ध में विशेष सुविधाएं दी जाती है।

(ii) व्यापारिक सदन (Trading House) – फर्मे जो कि निर्यात व्यापार कुशलता से कर रही है उन्हें सरकार ने व्यापारिक सदन की मान्यता दी है। इन्हें निर्यात सदनों की तुलना में अधिक सुविधाएं दी जाती है।

(iii) निर्यात प्रक्रियन क्षेत्र (Export Processing Zone)– इलैक्ट्रानिक उपकरणों के निर्यात–सम्वर्द्धन के लिए सान्ताक्रुज में यह क्षेत्र बनाया है। इस क्षेत्र में निर्मित वस्तुओं को निर्यात करना जरूरी है। इसी तरह के क्षेत्र चेन्नई, फाल्टा, कोचीन और नोएडा में भी स्थापितहै।

(iv) कान्दला मुक्त व्यापर क्षेत्र (Kandla Free Trade Zone) – इस क्षेत्र में निर्यात प्रधान इकाइयों को स्थापित किया है। इस क्षेत्र में स्थापित इकाइयों को विशेष सुविधाएं दी जाती

3. रजकोषीय सुविधाएं (Fiscal Measures) –

(i) रोकड़ क्षतिपूर्ति सुविधाएं (Cash Compensating Support) – कुछ वस्तुओं के लिए रोकड़ क्षतिपूर्ति सहायता विदेशी बाजारों में उनकी प्रतिस्पर्धा शक्ति बढ़ाने के लिए दी जाती है।

(ii) कर वापसी योजना (Drawback of Duties) – निर्यात वस्तुओं के लिए उत्पादन में प्रयोग किए गये कच्चे माल और उपकरणों पर वसूला गया उत्पाद और आयात शुल्क वापिस किया जाता है।

(iii) विपणन विकास सहायता (Marketing Development Assistance) – इस योजना में निर्यातको को विदेशी, बाजारों का विकास करने के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है।

4. अन्य सुविधाएं–

(i) शत–प्रतिशत निर्यात उन्मुख इकाइयों को सुविधा (Hundred Percent Export Oriented Units) – शत प्रतिशत उत्पादन का निर्यात करने वाली इकाइयों को बढ़ावा देने की व्यवस्था की गई है । सुन इकाइयों को एक बिन्दु से ही औद्योगिक लाइसेन्स, विदेशी सहयोग, पूँजीगत और कच्चे माल के आयात की स्वीकृति दी जाती है।

(ii) व्यापारिक प्रतिनिधि (Trade Representative) – सरकार ने विदेशों में व्यापारिक प्रतिनिधि नियुक्त किये है जो निर्यात वृद्धि की संभावनाओं का अध्ययन करते है और पता लगाते है कि भारत से केन वस्तुओं का निर्यात किया जा सकता है।

(iii) व्यापारिक समझौते (Trade Agreements) – सरकार ने द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापारिक समझौते निर्यात वृद्धि के लिए किए है । अनेक समझौते रूपया भुगतान पर आधारित है।

(iv) निर्यात आयात बैंक (EXIM Bank) – यह बैंक विदेशी व्यापार की वित्तीय व्यवस्था करता है

34.6 निर्यात–सम्वर्द्धन के लिए सुझाव

सरकारी उपायों के कारण से निर्यात व्यापार के क्षेत्र में अच्छे परिणाम निकले है । निर्यात में वृद्धि हुई है । यह वृद्धि बहुत बड़ी सीमा तक गैर–परम्परावादी वस्तुओं– खनिज लोहा, लोहा और इस्पात, इन्जीनियरी का सामान, चमड़ा, चीनी, मोती, हीरा, जवाहरात कपड़े, रसायन इत्यादि में हुई है। कुल निर्यात में गैर–परम्परावादी वस्तुओं का अनुपात बढ़ गया है।

यद्यपि अभी तक के प्रयत्नों के परिणाम सन्तोषजनक है, पर पर्याप्त नहीं है । योजनाओं के लिए मुद्रा की मांग तेजी से बढ़ रही है । इस दशा में निर्यात वृद्धि आवश्यक है । निर्यात वृद्धि के लिए सुझाव इस प्रकार है

1. उत्पादन में वृद्धि – यह जरूरी है कि उत्पादन के लक्ष्य पूरे किये जायें क्योंकि ऐसा करके ही निर्यात के योग्य बचत में वृद्धि की जा सकती है।

2. प्रतिस्पर्द्धा शक्ति में वृद्धि – भारतीय वस्तुएं विश्व बाजारों की प्रतिस्पर्द्धा में टिक सकने योग्य होनी चाहिये। इसके लिए कुछ कदम उठाना जरूरी है –

   (i) घिसे–पिटे पुराने संयत्र हटाये जाना चाहिए। नये आधुनिक संयंत्रलगाये जाना चाहिएं।

   (ii) वे वस्तुएं जिनके निर्माण मे श्रम अधिक लगता है ऐसे देशों को निर्यात की जाना चाहिए जहां कि श्रम मंहगा है।

   (iii) ऊपरी परिव्यय और लाभ की मार्जिन कम की जाना चाहिए। मूल्यों में स्थिरता का प्रयास किया जाना चाहिये। जापान और पश्चिमी जर्मनी ने मूल्य' स्थिरता के द्वारा ही निर्यात क्षेत्र में अद्युद् सफलता प्राप्त की है।

3. विपणन अनुसंधान – यह हमेशा पता लगाते रहना चाहिये कि विदेशों में किन–किन वस्तुओं की मांग है जिससे कि उसी तरह की वस्तुओं का उत्पादन और निर्यात किया जा सके।

4. अधिक प्रचार – विदेशों में भारतीय वस्तुओं का विज्ञापन और प्रचार करना चाहिये जिससे कि वस्तुओं की मांग उत्पन्न हो सके।

5. निर्यात के लिए उत्पादन – कुछ इकाईयों की स्थापना केवल निर्यात के लिए ही की जानी चाहिये। ऐसी इकाइयों को करो में छूट और मशीने आयात करने की छूट मिलनी चाहिए। इन्हें पूँजी भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए और स्थानीय अधिकारियों सहयोग भी भी मिलना चाहिए।

   इन इकाइयों में उत्पादन के लिए कुछ ऐसी वस्तुओं का चुनाव कर लेना चाहिए जो कि तुलनात्मक लागत की दृष्टि से लाभप्रद है – यह चुनाव साधनों की के आधार पर किया जा सकता है । फिक्की (FICCI) ने कुछ इस तरह की वस्तुएं बताई है जैसें कि हैन्ड टूल, निर्मित खाद्यान मशीन टूल्स, व्यापारिक गाड़ियां, चमड़े वस्तुएं तैयार कपड़े इत्यादि।

6. सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका – सार्वजनिक क्षेत्र को भी निर्यात व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। यह क्षेत्र बड़े आकार की विदेशी फर्मों और समाजवादी देशों से प्रभावी ढंग से व्यापार कर सकता है ।

7. निर्यात वस्तुओं में सुधार – निर्यात वस्तुओं में गुणात्मक सुधार करना। इससे वस्तुओं की प्रतिस्पर्द्धा करने की शक्ति बढ़ेगी। कुछ समय पूर्व सरकार ने गुण नियंत्रण (Quality Control) और जहाजों में लदान के पूर्व निरीक्षण (Pre–shipment Inspection) जैसी व्यवस्थाएं की है । पर अच्छा तो यह होगा कि उत्पादन की वस्तु की गुणवत्ता में वृद्धि करते रहें और घटिया प्रकार की वस्तुओं का निर्यात करने का प्रयत्न न करें।

8. व्यापारिक समझौते – निर्यात वृद्धि द्विपक्षीय समझौते, जैसा कि अमरीका कर रहा है, तीसरी दुनिया के देशो और समाजवादी देशों के साथ करना चाहिए। अफीका और एशिया के विकासशील देशों के साथ व्यापार के अवसर अधिक है और इन देशों के साथ व्यापार शर्तें अधिक अनुकूल भी रहती है ।

9. धनात्मक प्रेरणाएं – विदेशी बाजारों में प्रतियोगिता बहुत है । ऐसी दशा में धनात्मक प्रेरणाएं विशेष महत्व रखती है । निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा का एक निश्चित अंश निर्यातको को मुक्त रूप से व्यय करने की छूट दी जानी चाहिए। यह छूट और अधिक निर्यात करने के लिए प्रोत्साहन दे सकती है ।

10. साख सुविधाएं – निर्यात वस्तुओं के निर्यातको और उत्पादको को साख की सुविधाएं दी जानी चाहिये। साख सस्ती और यथा शीघ्र दी जानी चाहिये। सरकार ने इस, दिशा में काफी कुछ किया भी है ।

बोध प्रश्न 2

1. भारत में निर्यात को प्रोत्साहन करनें के लिए कौन–कौन से उपाय किये है?
2. भारत का निर्यात व्यापार बढ़ाने के लिए आप क्या सुझाव देंगे?

34.7 आयात–प्रतिस्थापन का अर्थ

व्यापार सन्तुलन की प्रतिकूलता को कम करने के लिए आयात में कमी करना आवश्यक है । आयात में कमी करने के लिए आयात–प्रतिस्थापन जरूरी है । आयात–प्रतिस्थापन का अर्थ है कि जिन वस्तुओं को हम विदेशों से आयात करते है उनका उत्पादन देश में ही जहां सम्भव हो किया जाये जिससे उस वस्तु के आयात की जरूरत ही न रह जाये या फिर बहुत कम आयात से ही उसकी जरूरत पूरी हो जाये। आयात–प्रतिस्थापन नीति के दो मुख्य उद्देश्य है । पहला तो यह है कि विदेशी मुद्रा को अधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं के आयात पर खर्च किया जाये और दूसरा यह है कि अधिक से अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध में देश आत्म–निर्भर बन जाये।

नियोजन के आरम्भ से ही यह नीति प्रारम्भ की गई थी और आज भी चल रही है । इस नीति का रूप परिवर्तित होता रहता है । प्रारंभ से तो इसका अर्थ यही था कि विदेशी उपभोग वस्तुओं के स्थान पर स्वदेशी उपभोग वस्तुओं का प्रयोग किया जाये। पर फिर इसका अर्थ बदला और यह हुआ कि पूँजीगत वस्तुओं की प्रतिस्थापक वस्तुएं तैयार की जायें। आज इसका अर्थ यह है कि देशी तकनीक का विकास किया जाये और विदेशी तकनीको पर आत्मनिर्भरता कम की जाये।

34.8 आयात– प्रतिस्थापन में प्रगति

आयात–प्रतिस्थापन के कारण आयात का ढांचा बदल गया है । अनेक ऐसी वस्तुएं जिनका कि पहले आयात होता था आज उनका आयात होता ही नहीं है । सरकार को आयात–प्रतिस्थापन नीति में पर्याप्त सफलता मिली है । इस नीति के फलस्वरूप ही निर्माण उद्योग, इंजीनियरिग उद्योग, रसायन उद्योग, इलैक्ट्रानिक उद्योग विकसित हुए हे। इन उद्योगों ने करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत की है । आयात प्रतिस्थापन की वृद्धि को एक तालिका से दिखाया जा सकता है । यह तालिका कुल आन्तिरक पूर्ति में आयातों का अंश दिखाती है ।

तालिका 34.1

कुल आपूर्ति में आयात का प्रतिशत

क्रमांक मदें	प्रथम योजना का प्रारम्भ 1950–51	प्रथम योजना का अंत 1955–56	द्वितीय योजना का अंत1960–60	तृतीय योजना का अंत 1965–66	वार्षिक योजना का अंत1968–69	चतुर्थ योजना का अंत 1973–74	पंचम योजना का अंत 1977–78	1983–84
1. खाद्यान्न	5.9	1.7	4.7	9.5	56	4.3	0.2	4.0
2. लोहा और इस्पात	25.5	39.9	35.7	16.7	9.3	18.5	1.1	6.0
3. मशीनरी	68.9		40.1	27.8	24.6	17.0	15.3	18.0
4. पेट्रोलियम	92.5	41.0	94.6	76.6	66.2	70.8	63.1	33.6
5. नत्रजन खाद	72.5	93.8	80.3	58.3	60.9	38.3	27.5	1.0
		39.8						

इससे यह तो स्पष्ट है कि पंचवर्षीय योजनाओं में आयात–प्रतिस्थापन सफल रही है । पहली योजना के प्रारम्भ में कुल स्वदेशी पूर्ति में आयातों का योग खाद्यानों के 59 प्रतिशत, लोहा और इस्पात के लिए 25.2 प्रतिशत, मशीनरी के लिए 68.9 प्रतिशत, पेट्रोलियम के लिए 92.5 और नत्रजन खाद के लिए 72.5 प्रतिशत था। 1983–84 मे इन सभी वस्तुओं कुल आपूर्ति में इनके आयातों का अंश घटकर 4.0 प्रतिशत ही रह गया। इस तरह पेट्रोलियम को छोड़कर अन्य वस्तुओं के आयात–प्रतिस्थापन में विशेष सफलता मिली है । आवश्यकता इस बात की है कि पेट्रोलियम के उत्पादन को देश में बढ़ाने के भरसक प्रयत्न किये जायें।

34.9 आयात–प्रतिस्थापन से लाभ

आयात–प्रतिस्थापन अत्यधिक महत्वपूर्ण और लाभप्रद है; इसके लाभ इस प्रकार है –

1. भारत की औद्योगिक संरचना का विविधीकरण हुआ है । आज हमारे देश की संरचना एक विकसित देश के समान है ।

2. भरत जैसे विशाल देश में मूलभूत और पूँजीगत उद्योगों का होना है । ये उद्योग देश की सुरक्षा की दृष्टि से भी आवश्यक है । आज भारतीय औद्योगिक ढ़ांचे में इन पूँजीगत उद्योगों का विशेष स्थान है । जलील अहमद ने कहा है कि 1950–5 से 1965–66 के मध्य समस्त औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का लगभग एक–चौथाई पूँजीगत माल के उत्पादन मे वृद्धि का लगभग आधा आयात–प्रतिस्थापन का है।

3. मध्य–वस्तुओं के उद्योगो का पर्याप्त विकास हुआ है।

4. स्वनंत्रता के पूर्व औद्योगिक उत्पादन की दर 2 प्रतिशत थी, आज यह दर बहुत सन्तोषजनक नहीं है पर फिर भी लगभग 6 प्रतिशत है।

5. आयात संरचना आज बदल गई। निर्मित वस्तुओं के आयात का महत्व कम हो गया है । हमारी आयात सूची से अनेक निर्मित वस्तुएं गायब हो गई है । आज 75 प्रतिशत आयात कच्ची सामग्री और मध्य वस्तुओं के होते है । पूँजीगत वस्तुओं के आयाम तो कम होकर कुल आयातों का 16 प्रतिशत ही रह गये है। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है –

तालिका 34.2

प्रयोग के अनुसार वर्गीकृत भारत के मुख्य आयात

(प्रतिशत अंश)

प्रयोग के अनुसार वर्गीकरण	1950–51	1955–56	1960–61	1965–66	1970–71	1975–76	1986–87
उपभोक्ता वस्तुएं	26.2	91.6	23.9	22.8	13.0	25.3	3.5
कच्चा माल और मध्यं वस्तुएं	53.6	51.4	46.6	19.8	54.6	54.4	77.8
पूँजीगत वस्तुएं	20.2	28.7	29.5	45.5	24.7	18.3	15.0

निर्यात वस्तुओं में अब अनेक ऐसी वस्तुएं शामिल हो गई है जिनका पहले कभी निर्यात होता ही नहीं था। कुछ निर्यात की वस्तुएं जैसे कि इन्जीनियरी का सामान और रसायन तो अति आधुनिक वस्तुएं है।

6. भारत के विदेशी व्यापार में घाटे को कम करने में सहायता मिली है । आयातों की मात्रा और मूल्यों में कमी हुई है।

7. व्यापार संतुलन के घाटे को कम करने के लिए यह उपाय निर्यात प्रोत्साहन से अधिक सरल और अच्छा है । निर्यात–सम्वर्द्धन की सफलता तो निर्यात वस्तुओं की विदेशी बाजारों मांग और प्रतियोगिता में ठहरने की क्षमता पर निर्भर करते है जबकि आयात प्रतिस्थापन की सफलता घरेलू मांग और उत्पादन के प्रयत्नों पर निर्भर करती है।

34.10 आयात–प्रतिस्थापन से हानियां

आयात प्रतिस्थापन नीति की सफलताओं के साथ कुछ हानियां भी है :–

1. आयातों में प्रतिबंध के कारण जो मांग उत्पन्न हुई थी लगता है कि अब समाप्त हो गई है । पर्याप्त घरेलू मांग न होने के कारण औद्योगिक विकास गति मंद पड़ गई है । बीमार इकाईयों की बढ़ती हुई संख्या भी इस बात की सूचक है।
2. अनेक उद्योग संरक्षण के कारण अकुशल है । उनकी अकुशलता ऊँची लागत, निम्न उत्पादकता, औद्योगिक बीमारी और पुरानी तकनीक के सूचको से स्पष्ट हो जाती है । पूँजीगत उद्योग भी समय के साथ उत्पादन तकनीक में परिवर्तन नहीं कर पाये है । आयातों से प्रतियोगिता न होने कारण इन उद्योगों ने अपनी कुशलता बढ़ाने का प्रयास नहीं किया है।
3. उपभोक्ताओं का शोषण हुआ है । उन्हें ऊँचे मूल्यों पर घटिया किस्म की वस्तुएं खरीदनी पड़ी है । टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के आयात पूर्णत : बन्द रहने से इन वस्तुओं का बाजार विक्रेता बाजार में बदल गया है।
4. आयात प्रतिस्थापन के कारण कुछ लागतें तो ऋणात्मक ही है । दूसरे शब्दों में इस नीति के कुछ परिणाम अच्छे नहीं है। ऋणात्मक लागतें इस प्रकार है –
   (i) संरक्षरण के कारण श्रम प्रधान और कुशल फर्मों के स्थान पर पूँजी प्रधान और अकुशल फर्मो की स्थापना होती है
   (ii) सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि होती है जिसके कारण निर्यातो में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पाती है,
   (iii) निर्यात उद्योगों की अपेक्षा अधिक साधन, आकर्षक घरेलू बाजार के कारण, आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं के निर्माण में लगा दिये जाते है, इससे विदेशी मुद्रा की हानि और साधनों का अपव्यय होता है।
5. आयात प्रतिस्थापन और आयात नियंत्रण से उत्पादन व्यवस्था विकृत हुई है । संरक्षण की छाया में नए उद्योग स्थापित हुए है, जिससे देश उत्पादन साधनों पुनआवंटन हुआ है । यह पुन : आवंटन ठीक से नहीं हुआ है । भारत में आय के वितरण में भारी असमानता आई है और सत्ता पर सम्पन्न वर्ग का नियंत्रण है । विलासिता वस्तुओं के आयात पर रोक लगते ही इन वस्तुओं का उत्पादन बहुत बढ़ा है । अनावश्यक प्रदर्शन उपभोग और विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों का तेजी से विकास हुआ है । भारत जैसे देश के लिए ऐसे उद्योगों की स्थापना की अवसर लागत बहुत ऊँची है।

34.11 आयात प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में सुझाव

आयात प्रतिस्थापन को प्रभावी बनानेकेलिए सुझाव इस प्रकार है

(1) आयात प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में विवेक से काम लेनाचाहिये और अविवेकपूर्ण दौड़ से बचना चाहिये। संरक्षण सभी उद्योगों को अंधा–धुंध नहीं देना चाहिये और जिन उद्योगों को दिया जाये वह उतने समय तक ही देना चाहिए, जब तक कि आश्यक है । संरक्षण भी इस तरह का होना चाहिये जिससे प्रतियोगिता भी समाप्त न हो और उत्पादन लागते घटाने का प्रयास किया जाता रहे। कृषि और उद्योग दोनों में ही कुछ वस्तुओं का आयात प्रतिस्थापन संभव है । खाद्य तेलों का आयात उचित नियोजन के द्वारा 1200 करोड़ रुपये प्रति वर्ष से कम किया जा सकता है और घरेलू खाद्यान तेल की मांग को पाम की खेती से पूरा किया जा सकता है ।

(2) जिन क्षेत्रों में विदेशी विनिमय की आवश्यकता नहीं है उन क्षेत्रों में लाइसेन्सिग और नियंत्रण को हटा देना चाहिये।

(3) उद्योगपतियों और सरकार को आयात प्रतिस्थापन से सम्बन्धित अनुसंधान और विकास पर ध्यान देना चाहिये। इसके लिए यदि कर भी लगाना पड़े तो भी को संकोच नहीं करना चाहिये।

(4) आयात प्रतिस्थापन की लागत पर ध्यान देना चाहिए।

(5) आयात प्रतिस्थापन के सम्बन में जो भी व्यक्ति आविष्कार करते है,उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिये।

(6) संरक्षण केवल उन्हीं उद्योगों को देना चाहिये जो बाद में अपने पैरों पर खड़े हो सकते है ।

(7) संरक्षण देने के लिए तटकर या राजकोषीय नीति का उपयोग किया जाना। आवश्यक होने पर ही कोटा प्रणाली के रूप में संरक्षण देना चाहिये।

(8) संरक्षण एक सीमित अवधि के लिए ही दिया जाना चाहिये और बहुत होने पर ही बढ़ाया जाना चाहिये।

बोध प्रश्न 3

1. आयात प्रतिस्थापन से क्या आशय है?
2. आयात–प्रतिस्थापन में कहां तक वृद्धि हुई है?
3. आयात प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में आपके क्या सुझाव है?

34.12 सारांश

भारत के आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने के और व्यापार संतुलन की प्रतिकूलता को सुधारने के लिए निर्यात सम्वर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन महत्वपूर्ण आवश्यकताएं है निर्यात सम्वर्द्धन के अन्तर्गत सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्यात बढ़ाने के लिए तरहतरह के प्रोत्साहन दिये जाते है ।

प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन के समाधान, नये उत्पादों के लिए बाजार, विकस योजनाओं की सफलता और स्वावलम्बी अर्थ–व्यवस्था के लिए निर्यात सम्वर्द्धन की आवशयकता है।

उच्च मूल्य स्तर, विदेशी प्रतियोगिता, आयातों पर सीमायें और ऊँचे कर, निम्न स्तर का माल, व्यापारीयों की दोषपूर्ण नीति, सीमित बाजार, स्थानापन्न वस्तुएं प्रचार और प्रसार की कमी आदि ऐसी बाधाये जो निर्यात सम्वर्द्धन पर विपरीत प्रभाव डालती है।"

निर्यात की मात्रा में वृद्धि के लिए सरकार ने अनेक प्रयास किये है। सरकार ने संस्थागत कई व्यवस्थाएं की है, संरचनात्मक सुविधाओं का निर्माण किया है, राजकोषीय और अन्य सुविधाएं प्रदान की है।

निर्यात वृद्धि के लिए लागतो में कमी, वस्तुओं की किस्म में सुधार, व्यापारिक समझौते विपणन अनुसंधान की जरूरत है और साथ ही निर्यातको को निर्यात के लिए प्रेरणाएं तथा वित्तीय सुविधाएं देने की भी आवश्यकता है।

आयात प्रतिस्थापन का तात्पर्य विदेशों से मंगाई जाने वाली वस्तुओं के स्थान पर देशी वस्तुओं का उत्पादन करने और प्रयोग करने से होता है।

आयात–प्रतिस्थापन में पर्याप्त प्रगति हुई है। अनेक वस्तुओं का आयात समाप्त हो गया है और अनेक का कम हो गया है। कई उद्योगों का विकास हुआ है और आयात की संरचना भी बदल गई है।

आयात प्रतिस्थापन के फलस्वरूप औद्योगिक ढांचा विकसित देश के समान हो गया है मूलभूत और पूँजीगत उद्योगों का विकास हुआ है, औद्योगिक उत्पादन की दर में वृद्धि हुई है विदेशी व्यापार के घाटे को कम करने में सहायता मिली है और आयातों का स्वरूप बदल गया है।

आयात–प्रतिस्थापन के कुछ दुष्परिणाम भी सामने आये है। संरक्षण और आयातों पर प्रतिबंध के कारण उत्पादको ने लागतें कम करने और वस्तुओं की किस्म सुधारने का प्रयत्न नहीं किया है। उनके द्वारा तकनीकी विकास पर ध्यान नहीं दिया गया है और विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया है। उपभोक्ताओं का शोषण किया गया है। विदेशी बाजारों की प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए उनके द्वारा साधनों को निर्यात वस्तुओं के उत्पादन में नहीं लगाया है अपितु आयात–प्रतिस्थापक वस्तुओं के उत्पादन में लगाया है।

आयात–प्रतिस्थापन को प्रभावी बनाने के लिए विवेक से काम लेना चाहिये। संरक्षण भी सभी उद्योगों को नहीं देना चाहियें। संरक्षण भी सीमित समय के लिए ही देना चाहिये और उन उद्योगों को देना चाहिये जो अपने पैरों पर खड़े हो सकते है।

34.13 शब्दावली

संरक्षण (protection) : सरकार की नीति जिसके अन्तर्गत विदेशी

		प्रतिस्पर्धा से गृह–उद्योगों की रक्षा के लिए आयात व्यापार पर प्रतिबंध लगाये जाते है।
आर्थिक विकास (Economic Development)	:	ऐसी प्रक्रिया जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थ–व्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।
उपरिपरिव्यय (Overheads cost)	:	परिवहन, संचार, शक्ति बीमा बैंकिग आदि परव्यय।
श्रम प्रधान तकनीक (Labour Intensive Technique)	:	श्रम की अधिक मात्रा और पूँजी की कम मात्रा का प्रयोग होता है।
पूँजी प्रधान तकनीक (Capital Intensive Technique)	:	पूँजी का अधिक और श्रम का कम उपयोग होता है।
स्वतंत्र व्यापार (Free tread)	:	विभिन्न देशों के मध्य वस्तुओं और सेवाओं का स्वतंत्र आदान प्रदान।
आयात कोटा (Import Quotas)	:	सरकार द्वारा विभिन्न वस्तुओं के अधिकतम कोटे निश्चित करना और कोटों से अधिक मात्रा में आयात न करने देना।

34.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ए.एन.अग्रवाल, भारतीय अर्थ व्यवस्था: प्रकृति और समस्याएं, वाइली ईस्टर्न लिमिटेड नई दिल्ली।

रूद्र दत्त और सुन्दरम, भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चंद, एण्ड नई दिल्ली।

एल. एम. राय, भारतीय अर्थ व्यवस्था, नव– विकास प्रकाशन,पटना।

श्रीधर पाण्डेय, भारतीय अर्थ व्यवस्था प्रकृति और समस्याएं, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

एल एम. राय, भारत का आर्थिक समस्याएं, नव–विकास प्रकाशन,पटना

कृष्ण सहाय सक्सेना और के एल. गुप्ता, भारत का आर्थिक विकास, साहित्य सदन, आगरा।

A.N. Agarwal, Indian Economy, Wiley Eastern Ltd. New Delhi

I.C. Dhingra, The Indian Economy, Sultan Chand & Sons, New Delhi.

S.K. Mishra and V.K. Puri, Indian Economy, Himalaya Publishing House, Bombay.

Rudra Dutt and Sundhram, Indian Economy, S. Chand & Sons, New Delhi.

24.15 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. निर्यात प्रोत्साहन के अन्तर्गत सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के निर्यात बढ़ानेके अनेक प्रकार के प्रोत्साहन दिये जाते है । जैसे– निर्यात प्रधान उद्योगो को निर्यात कर से छूट दी जाती है, निर्यात की वस्तुओं का उत्पादन कर मुक्त कर दिया जाना आदि।
2. निर्यात सम्वर्द्धन की आवश्यकता व्यापार सन्तुलन की प्रतिकूलता थे कम करने, विकास योजनाओं की सफलता, नये उत्पादको के लिए बाजार और अर्थ–व्यवस्था को स्वावलम्बी बनाने के लिए है ।
3. निर्यात सम्वर्द्धन के मार्ग मे भारतीय वस्तुओं की ज्यादा कीमतें, उनका घटिया स्तर, विदेशी वस्तुओं से प्रतियोगिता, निर्यातको को नमूने के अनुसार माल न भेजने की नीति और विदेशी सरकारों द्वारा भारतीय वस्तुओं पर ऊँचे कर जैसी अनेक बाधाएं हैं।

बोध प्रश्न 2

1. भारतीय सरकार ने समय–समय पर निर्यात सम्वर्द्धन के लिए अनेक प्रयास दिये है जो कि विस्तृत रूप से चार भागों में विभाजित किये जा सकते है :–

   (1) संस्थागत (2) संरचनात्मक (3) राजकोषीय (4) अन्य।
2. भारतीय निर्यात व्यापार को बढ़ाने के लिए सुझाव उत्पादन लागत में कमी, निर्यात वस्तुओं की किस्म में सुधार, निर्यातको को रचनात्मक प्रेरणाएं, वित्तीय सुविधायें और विपणन अनुसंधान।

बोध प्रश्न 3

1. आयात–प्रतिस्थापन का अर्थ है' कि आयात की जाने वाली वस्तु का उत्पादन देश में ही किया जाये जिससे कि उसका आयात न करना पड़े।
2. आयात प्रतिस्थापन की प्रगति सन्तोष जनक है । अनेक वस्तुओं का आयात भारत अब नहीं करता है और अनेक का आयात कम कर दिया है ।

3. उद्योगों को संरक्षण सोच–समझकर देना चाहिये, संरक्षण की अवधि सीमित रखना चाहिये, उन्हीं उद्योगों को संरक्षण देना चाहिये जो कि आगे चलकर अपने आप खड़े रह सकते है और संरक्षण के कारण प्रतियोगिता भावना समाप्त नहीं होना चाहिये।

परिशिष्ट 1 (इकाई 24)

जुलाई 1991 से निर्यात बढ़ाने के लिए किए गए उपाय

1. रुपए का अवमूल्यन – जुलाई 1991 में सरकार ने दो बार रुपए का लगभग 18% अवमूल्यन किया जिससे निर्यात बढ़ाए जा सकें।

2. एक्जिम स्क्रिप (EXIM Scrip) नीति का उपयोग – सरकार ने 1991 में निर्यात वस्तुओं पर 30% एक्जिम स्क्रिप नीति लागू करके निर्यात बढ़ाने का प्रयास किया। इसके अनुसार निर्यातक अपनी कुल निर्यात आमदनी का 30% खुले बाजार में प्रीमियम पर बेच सकते थे अथवा सीमित इजाजत की आयात सूची के अनुसार स्वंय आयात कर सकते थे।

3. रुपए की आशिक परिवर्तनीय – 1992–93 में रुपए को निर्यात बढ़ाने के उद्देश्य से आंशिक रूप से परिवर्तनीय कर दिया। इसके अन्तर्गत दोहरी विनिमय दर प्रणाली को अपनाया गया।

इन उपायों के फलस्वरूप 1993–94 में निर्यातों में 20% की वृद्धि हुई (डालर में)1994–95 में यह लगभग 18.4% रही।

नई निर्यात नीति (1992–97)

31 मार्च, 1992 को आठवीं पंचवर्षीय योजना के अनुरूप यह नीति घोषित की गई। इसकी अवधि पाँच वर्ष रखी गई जबकि इससे पूर्व त्रिवर्षीय आयात–निर्यात नीति घोषित की जाती थी। इस नीति की प्रमुख बातें निम्न है –

1. इस नीति में विदेशी व्यापार को काफी मात्रा में मुक्त कर दिया गया है । लेकिन आयातों व निर्यातों के लिए एक नकारात्मक सूची रखी गई।

2. आयातों की नकारात्मक सूची को दो भागों में बाँटा गया –

(i) निषेधात्मक मदें: टाइलो, पशु रैनिट व अवनिर्मित, हाथी दांत इन तीन मदों' के आयात की पूर्ण मनाही थी।

(ii) प्रतिबंधात्मक मदें: ये मदें लाइसेन्स सें ही आयात की जा सकती थी। इसमें ग्यारह उपभोक्ता वस्तुए रखी गई। तथा 70 अन्य प्रकार की वस्तुएं रखी गई है ।

3. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित मदों (Canalised list) की श्रेणी 8 मदें रखी गई!

4. निर्यातों की नकारात्मक सूची को भी दो भागों में बाँटा गया।

(i) निषेधात्मक सूची – इसमें 7 मदें है जिनके निर्यात की सख्त मनाही।

(ii) (a) 51 मदे ऐसी थी जिनका निर्यात लाइसेन्स से ही संभव हैं।

(iii) (b) 11 मदें ऐसी थी जिनके निर्यात पर मात्रात्मक सीमा लगा दी।

5. 10 मदें जैसे अभ्रक वेस्ट, प्याज, घी, खनिज अयस्क आदि का सार्वजनिक एजेन्सियों की मार्फत किया जाएगा।

6. 46 मदें ऐसी थी जिनका निर्यात कुछ शर्तें पूरी करने के बाद बिना लाइसेन्स के ही निर्यात किया जा सकेगा।

7. अग्रिम लाइसेन्सों के अर्न्तगत शुल्क मुक्त आयातों का क्षेत्र बढ़ा दिया।

8. निर्यात घरानों, ट्रेडिंग व स्टार घरानों को अग्रिम लाइसेन्स स्कीम के तहत स्व सर्टिफिकेशन की इजाजत दी गई।

9. पूँजीगत वस्तुओं के आयात को उदार बनाया गया।

10. 100% निर्यातोन्मुख इकाइयों व मुक्त व्यापार तथा प्रोसेसिंग क्षेत्र में इकाइयों को अधिक सुविधाएं प्रदान की गई।

एक वर्ष के अनुभव के पश्चात् 31 मार्च 1993 को इस (1992–97)आयात निर्यात नीति में व्यापक संशोधन किए गए। जिनका उद्देश्य विदेशी व्यापार नीति को उदार बनाना व निर्यातों में तेजी से वृद्धि करना था।

30 मार्च 1994 को वाणिज्य मंत्री श्री.प्रणव मुखर्जी ने एक्जिम नीति में उदारीकरण की घोषणा की।

परिशिष्ट 2 (इकाई 24)

निर्यात सम्वर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन

नई निर्यात–आयात नीति (1997–2002)

1997–2002 की अवधि के लिए वाणिज्य राज्य मंत्री श्री बी. बी. रमैया ने 31 मार्च 1997 को नई आयात–निर्यात नीति की घोषणा की। इसकी अवधि नवी पंचवर्षीय योजना के अनुरूप रखी गई है। इसके निम्न उदेश्य है।

1. देश की अर्थव्यवस्था को विश्वोन्मुख व गतिमान बनाना।

2. विकास की दर में स्थिरता रखने के लिए कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुएं कल–पुर्जे व पूंजीगत मात्र उपलब्ध कराना ताकि उत्पादन वृद्धि सुचारू रहे।

3. भारतीय कृषि, उद्योग तथा सेवा क्षेत्र की तकनीकी क्षमता को बढ़ाना।

4. उपभोक्ता वर्ग को उचित कीमत पर उत्तम किस्म की वस्तुएं सुलभ कराना।

इस नीति की मुख्य बातें इस प्रकार है –

1. मात्रा आधारित लाइसेन्स स्कीम जारी रखी गई है । यह निर्यातको को प्रोत्साहन देने के लिए है । लेकिन मूल्य आधारित अग्रिम लाइसेन्स स्कीम व पास बुक स्कीम समाप्त कर उसके स्थान पर शुल्क अधिकार पास बुक स्कीम लागू की गई है । इससे निर्यातको को शुल्क मुक्त इनपुट आयात करने का अवसर मिलेगा।

2. निर्यात प्रोत्साहन–पूँजीगत माल स्कीम के अन्तर्गत पूंजीगत मात्रा के आयात पर शुल्क की दर 15% से घटाकर 10% की गई। शून्य शुल्क स्कीम के अर्न्तगत कृषिगत व सहायक पदार्थों के लिए आयात राशि की सीमा 20 करोड़ रुपए से घटाकर 5 करोड़ रु. कर दी गई।

3. प्रतिबन्धित सूची में 542 मदों को स्पेशल आयात लाइसेन्स (SIL) व खुले सामान्य लाइसेन्स (OGL) की सूची में हस्तान्तरित कर दिया।

4. कृषिगत क्षेत्र को बढ़ावा देनों के लिए निर्यात घराने व व्यापार घराने की स्टेटस पाने के लिए कृषिगत निर्यातों के लिए दोहरे वजन (Double Weighting) की व्यवस्था की गई। कृषिगत व सहायक क्षेत्र अपने उत्पादन का 50 प्रतिशत मात्रा घरेलू प्रशुल्क क्षेत्र में बेच सकेंगे।

5. पावर क्षेत्र के अलावा तेल व गैस क्षेत्र को भी निर्यात लाभ (Deemed export profit) दिया जाएगा।

6. स्वर्ण–आभूषणों से निर्यात को बढ़ावा देने के लिए MMTC, STC, SBI व HHEC आदि एजेन्सियों के अतिरिक्त अन्य एजेन्सियों को भी इनका स्टॉक रखने की अनुमति दी जाएगी।

7. लघु पैमाने के उद्योग के माल के निर्यात पर स्पेशल आयात लाइसेन्स की मात्रा एक प्रतिशत से बढ़ाकर दो प्रतिशत कर दी गई है ।

8. जिन निर्यात का के पास ISO 9000 अथवा IS/ISO 9000 का सर्टिफिकेट होगा उनके लिए स्पेशल आयात लाइसेन्स की सुविधा 204 से बढ़ाकर 5% कर दी गई है । सॉफ्टवेयर कम्पनियों को भी निर्यात के लिए विशेष सुविधाएं दी जाएंगी।

9. निर्यात घराने, व्यापारिक घराने, स्टार व्यापारिक घराने व सुपर स्टार व्यापारिक घराने की श्रेणी प्राप्त करने के लिए पिछले तीन वर्षों के औसत निर्यात की राशि क्रमश: 20 करोड़ 100 करोड़, 500 करोड़ तथा 1500 करोड़ रुपए की गई पर 1997 में इन्हें घटाकर क्रमश: 12.5 करोड़, 62.5 करोड़, 312.5 करोड़ व 937.5 करोड़ रुपए कर दिया गया।

10. राशिपतन (Dumping) के खिलाफ संस्थागत व्यवस्था व सुरक्षा के उपाय सुदृढ़ किए गए ताकि देशकेउद्योगों को क्षति ना पहुँचे।

इकाई -35

भारत में सार्वजनिक व्यय का उदभव, वृद्धि, प्रवृत्तियाँ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

35.0 उद्देश्य

35.1 प्रस्तावना

35.2 भारत में सार्वजनिक व्यय का उदभव

35.3 भारत में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारण

35.4 भारत में सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियाँ

35.5 मूल्यांकन

35.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

35.7 शब्दावली

35.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

35.0 उद्देश्य

सार्वजनिक वित्त में सार्वजनिक व्यय की अवधारणा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जिस प्रकार अर्थशास्त्र के अध्ययन में उपयोग महत्वपूर्ण है ठीक उसी प्रकार लोकवित्त के अध्ययन में सार्वजनिक व्यय ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है इसलिए सार्वजनिक व्यय की अवधारणा की जानकारी आवश्यक है । समाज कल्याण, आर्थिक प्रगति तथा नागरिको की सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए केन्द्रीय, राज्य एवं स्थानीय सरकारों द्वारा किये जाने वाले व्यय को सार्वजनिक व्यय कहते है। भारत में सार्वजनिक व्यय का उदभव के अध्ययन का उद्देश्य उन परिस्थितियों को व्यक्त करता है जिनमें भारत में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि को अध्ययन का उद्देश्य उन कारणों को व्यक्त करना है जिनकी वजह से भारत में सार्वजनिक व्यय निरन्तर बढ़ा है। भारत में सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियों के अध्ययन का उद्देश्य यह बताना है कि किन मदों पर कितना व्यय किया जाता है और किन मदों में अधिक और किन मदों पर कम सार्वजनिक व्यय करने की प्रवृति है।

35.1 प्रस्तावनाः-

वर्तमान कल्याणकारी राज्यों के लिए सार्वजनिक व्यय अनिवार्य है। भारत की स्वतंत्रता उपरान्त सार्वजनिक व्यय ने अर्थव्यवस्था को कठिनाइयों की स्थिति से निकालने के लिए महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। सार्वजनिक व्यय आर्थिक गतिविधियों को नियमित करता है तथा आर्थिक विकास के दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता करता है। यही कारण है कि भारत सरकार की आय और व्यय में निरन्तर वृद्धि की प्रवृत्ति है। वास्तव में सरकार सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में जितनी जल्दी सम्भव हो सके आर्थिक वृद्धि के लिए अपनी गतिविधियों का विस्तार करना चाहती है। अतः जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर की बढ़ती हुई गतिविधियों की धारणा भारत के सार्वजनिक व्यय की वृद्धि में झलकती है।

35.2 भारत में सार्वजनिक व्यय का उद्भवः-

भारत का आकार सघनाकार है तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से यह एक बड़ा देश है जहाँ पर प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता पायी जाती है परन्तु यहाँ पर कृषि अपनी पिछड़ी अवस्था में है, औद्योगिक दृष्टि से भारत का विकास कम हुआ है। प्रति व्यक्ति आय कम है तथा जीवन स्तर भी गिरा हुआ है। स्वतंत्रता से पूर्व सरकार मुख्य उद्देश्य देश में सुरक्षा एवं शान्ति बनाये रखना था इसलिए सार्वजनिक व्यय का अधिकांश भाग सुरक्षा पर ही व्यय कर दिया जाता था। व्यय का थोड़ा सा भाग ही विकास कार्यो पर व्यय किया जाता था। 1939-40 में सरकार का सुरक्षा कार्यो पर व्यय 49.54 करोड़ रू. था जो बढ़कर 1944-45 में 458.22 करोड़ रूपये हो गया था। 1939-40 में सामाजिक सुरक्षा पर 18.5 करोड़ रू. व सार्वजनिक निर्माण कार्यो पर 29.6 करोड़ रू. था। अतः प्राकृतिक साधनों के विदोहन करने, कृषि एवं उद्योग का विकास करने, लोगो के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने, देश में आन्तरिक शान्ति व बाह्य सुरक्षा की व्यवस्था करने तथा आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में उन्नति हेतु देश में सार्वजनिक व्यय का उदभव हुआ और उसमें वृद्धि हुई।

35.3 भारत में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारणः-

स्वतंत्रता के बाद भारत के सार्वजनिक व्यय में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है जिसके लिए आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक कारण उत्तरदायी है जैसेः

1. भारत में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के आर्थिक कारणः-

1. **योजना बद्ध आर्थिक विकास पर भारी व्ययः-** स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए योजनाबद्ध विकास कार्यक्रमों पर सार्वजनिक क्षेत्र किया गया। जहाँ पहली पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 1960 करोड़ रूपये का व्यय हुआ वहाँ 1990-91 में 98272 करोड़ रू. व्यय हुआ। 2010-11 में यह व्यय बढ़कर 11,08749 करोड़ रू. हो गया।

2. **सार्वजनिक ऋणों पर बढ़ता ब्याज भुगतानः-** देश के विकास कार्यो के लिए सरकार ने बड़े पैमाने पर आन्तरिक व बाह्य ऋण प्राप्त किये जिन पर प्रतिवर्ष पर्याप्त मात्रा में ब्याज की राशि चुकानी पड़ती है। 1950-51 में सार्वजनिक ऋणों पर केन्द्र सरकार का ब्याज भुगतान 37 करोड़ रू. था जो बढ़कर 1990-91 में 21498 करोड़ रूपये हो गया। वर्ष 2009-10 में इस मद पर 2,11,643 करोड़ रूपये किये गये वर्ष 2010-11 में यह व्यय 2,48,664 करोड़ रूपये तक बढ़ गया।
3. **आर्थिक सहायता में वृद्धिः-** केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों जैसे उद्योग, व्यापार , कृषि , परिवहन,सार्वजनिक वितरण प्रणाली, खाद्य, ईधन, शिक्षा आदि के लिए आर्थिक सहायता व अनुदानों में भारी वृद्धि हुई है। केन्द्र सरकार की कुल आर्थिक सहायता 1990-91 में 9581 करोड़ रूपये थी जो बढ़कर 2009-10 में 1,23,396 करोड़ रूपये हो गयी।
4. **मूल्य स्तर में वृद्धिः-** कीमतों में वृद्धि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का कारण है। स्वतंत्रता के बाद वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हुई है। कीमतों में वृद्धि के कारण वस्तुओं की पूर्ववत् मात्रा खरीदने के लिए सरकार को पहले से अधिक व्यय करना पड़ता है फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हुई है। कीमतो में वृद्धि के कारण उपभोक्ता मूल्य सूचकांक बढ़ जाता है जिसे फलस्वरूप के वेतन-भत्तों में वृद्धि करनी पड़ती हैं जिसके फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय में और वृद्धि हो जाती है।
5. **आर्थिक सेवाओं पर व्यय में निरन्तर वृद्धिः-** स्वतंत्रता के बाद भारत में आर्थिक सेवाओं पर अत्यधिक व्यय बढ़ा है। आर्थिक सेवाओं में कृषि विकास, उद्योग विकास यातायात, सिंचाई, विद्युत, रसायन व उर्वरक आदि सम्मिलित है। सन् 1986-87 में आर्थिक सेवाओं की गतिविधियों पर लगभग 104 करोड़ रू. व्यय हुआ। सन् 1990-91 में यह व्यय 754 करोड़ रू. हुआ। 2000-01 में यह 1941 करोड़ तथा 2010-11 में आर्थिक सेवाओं पर सार्वजनिक व्यय 336107 करोड़ रूपये हो गया।
6. **राष्ट्रीय आय में वृद्धिः-** देश की राष्ट्रीय आय में पिछले वर्षो में निरन्तर वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय आय वृद्धि के बदले में अपने व्यय को बढ़ाने के लिए सरकार सक्षम है जो कर राजस्व और अन्य आय के माध्यम से सरकार को आर्थिक राजस्व में हुई है। उदाहरण के लिए 1980-81 से 2007-08 के लिए प्रति व्यक्ति आय में 5.7 की दर से वृद्धि हुई है। इसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है।
7. **गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमः-** भारत में सरकार गरीबी उन्मूलन और रोजगार सृजन कार्यक्रमों पर धन की एक अच्छी रकम खर्च कर रही है। इप कार्यक्रमों में मुख्य है- स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, इन्दिरा आवास योजना आदि।
8. **सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना पर व्ययः-** देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए सुदृढ़ आधारभूत सरंचना तैयार करने हेतु भारत सरकार तथा राज्य सरकारो ने कई भारी व्यय किया है। जहाँ 1950-51 में केन्द्र सरकार के उपक्रमों की संख्या 5 थी व उन में पूंजी

निवेश केवल 29 करोड़ रूपये था वहीं 9 वीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के दौरान केन्द्र सरकार के उपक्रमों की संख्या 234 तक पहुँच गयी और उनमें पूंजी निवेश 330649 करोड़ रूपये पर पहुँच गया। राज्य सरकारों ने भी अपने सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना और संचालन में काफी व्यय बढ़ाया है।

35.4सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के सामाजिक कारणः-

1. **समाजिक सुरक्षा सेवाओं पर बढ़ता व्ययः-** भारत में गरीबी बेकारी, भूखमरी आदि के कारण सामाजिक सुरक्षा सेवाओं जैसे वृद्धावस्था पेंशन, निशुल्क शिक्षा, चिकित्सा सुविधाएँ, लोक निर्माण कार्य, राहत कार्यक्रम आदि की व्यवस्था पर एक कल्याणकारी राज्य के रूप में केन्द्र और राज्य सरकारों को करनी पड़ती है फलस्वरूप भारत के सार्वजनिक व्यय में निरन्तर वृद्धि हो रही है।
2. **जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धिः-** भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि हुई है। जहाँ 1851 में भारत की जनसंख्या केवल 36.1 करोड़ रुपये थी वह 2001 में 102.9 करोड़ रुपये और 2011 में बढकर 121.02 करोड़ रुपये पर पहुँच गयी। जहां एक और जनसंख्या नियंत्रण हेतु परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों पर भारी व्यय करना पड़ता है वहाँ बढ़ती जनसंख्या के लिए शिक्षा, चिकित्सा, बुनियादी सुविधाओं, सब्सिड़ी, समाज कल्याण, सामाजिक सुरक्षा आदि कार्यो पर भारी व्यय करना पड़ता है। योजनाबद्ध विकास के वर्षो में परिवार नियोजन पर अत्यधिक व्यय किया गया है।
3. **समाज कल्याण, शिक्षा व चिकित्सा सुविधाओं पर बढ़ता व्ययः-** कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा शिक्षा, चिकित्सा, समाज कल्याण, सफाई, जलपूर्ति, शहरी विकास आदि कार्यो पर भारी व्यय करना पड़ता है परिणामस्वरूप सार्वजनिक व्यय में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

35.5 सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के राजनैतिक कारणः-

I. **प्रतिरक्षा पर बढ़ता व्ययः-** केन्द्र सरकार के प्रतिरक्षा व्यय में वृद्धि हुई है। 1950-51 में प्रतिरक्षा पर कुल व्यय 168 करोड़ रूपये था जो बढ़कर 1990-91 में 10,874 करोड़ रू. 2000-01 में 49622 करोड़ रूपये तथा 2009-10 में 90668 करोड़ रूपये हो गया। इसके प्रमुख कारण कश्मीर समस्या, भारी स्थल सेना, उच्च सैनिक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना, युद्ध के सामान हेतु कारखानों की स्थापना, आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सेना को सुसज्जित करना, पाकिस्तान, चीन व बंगला देश की शत्रुतापूर्ण नीति है।

II. **प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्थाः-** भारत में प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था भी सार्वजनिक व्यय में अप्रत्याशित वृद्धि का एक प्रमुख कारण है। चुनाव, विधानसभाओं, संसद, राष्ट्रपति, भारी मंत्रीमण्डल आदि की व्यवस्था पर बहुत व्यय होता है। सरकार को

कूटनीतिज्ञ सम्बन्ध रखने पड़ते है। विभिन्न सयुंक्त राष्ट्र संघ(UNO) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) , विश्व बैंक आदि की सदस्यता स्वीकार करनी पड़ती है। यह सब खर्चीली व्यवस्था है फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हुई है।

35.6 सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के अन्य कारणः-

I. **पुलिस एवं प्रषासनिक व्यय में वृद्धि** भारत में शान्ति व आन्तरिक सुरक्षा के लिए पुलिस व प्रशासनिक शासन व्यवस्था को चलाने के लिए प्रशासनिक व्यय में तेजी से वृद्धि हुई है। कर्मचारियों एवं अधिकारियों के बढ़ते वेतनमान एवं मंहगाई भत्ता आदि ने भी राजकीय व्यय ये बढ़ाया है। सन् 1950-51 में प्रशासन पर 21 करोड़ रूपये व्यय हुआ था जो सन् 1980-81 में 1603 करोड़ रू., 1990-91 में 7040 करोड़ रूपये और 2008-09 में 97087 करोड़ रूपये हो गया। 1980-81 में पुलिस पर कुल व्यय 1163 करोड़ रूपये हुआ वह 2000-01 में बढ़कर 23006 करोड़ रूपये हो गया।

II. **प्राकृतिक विपदाओं में राहत पर बढ़ता व्ययः-** देश में प्राकृतिक विपदाओं जैसे अकाल, बाढ़, भूकम्प, तूफान आदि से कई बार भारी जनधन की हानि होती है। तथा उनमें राहत पहुँचाने के लिए भारत सरकार को भारी व्यय करना पड़ता है।

III. **कर संग्रहण व्यय में वृद्धिः-** किसी भी सरकार की आय में कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। जहाँ 1950-51 में कर संग्रहण व्यय नाममात्र था। 1980-81 में कर एकत्रित करने पर 504 करोड़ रूपये व्यय हुआ। 1990-91 में 1973 करोड़ रूपये व्यय हुआ जो 2000-01 में 6570 करोड़ रूपये हो गया। सन् 2010-11 में कर संग्रहण व्यय बढ़कर 19093 करोड़ रूपये हो गया।

IV. **आतंकवाद पर नियंत्रण हेतु व्ययः-** जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान प्रेरित आतंकवाद, आंध्रप्रदेश में नक्सली हमलें, नागालैंड, असम मिजोरम में बढ़ती आतंकवादी गतिविधियों पर नियंत्रण हेतु भारी सार्वजनिक व्यय करना पड़ता है।

V. **विस्थापितों के पुर्नवास पर बढ़ता व्ययः-** भारत में शरणार्थियों की समस्या किसी न किसी रूप में सदा बनी रही है। इसके अलावा आतंकवाद से त्रस्त विस्थापितों के पुर्नवास आदि पर सरकार को भारी व्यय करना पड़ता है।

VI. **शहरीकरणः-**शहरीकरण ने नागरिक प्रशासन पर व्यय में वृद्धि करने के लिए प्रेरित किया है। न्यायालय, पुलिस, परिवहन, रेलवे, स्कूलों व कालेजो, सार्वजनिक स्वास्थ्य उपायों, पानी और बिजली की आपूर्ति, सार्वजनिक पार्को पर सरकारी व्यय आदि के कारण सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हुई है।

35.7 भारत में सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियाँ –

विकासात्मक तथा गैर विकासात्मक व्यय की प्रवृत्तियाँ अधिकतर आर्थिक विकास की स्थिति, सरकार का दृष्टिकोण, सरकार की योग्यता तथा देश में वर्तमान आर्थिक स्थितियो पर निर्भर

करती है। सन् 1947 तक भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था तथा विदेशी सरकार ने देश को निर्धनता एवं अनियमितताओं के कुचक्र से निकालने के लिए कोई व्यापक विकासात्मक कार्यक्रम नहीं बनाया। दूसरे विश्वयुद्ध ने बढ़ती सीमा तक सार्वजनिक व्यय को प्रभावित किया। विभाजन में भी इसी प्रकार के प्रभाव थे। देश के स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने पर आर्थिक नीति में तीव्र परिवर्तन आये। सरकार ने देश के आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए साकारात्मक कदम उठाये। योजनाकाल में विभिन्न विकासात्मक योजनाओं पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों का व्यय बहुत बढ़ गया

योजनाकाल में भारत में सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित है:-

1. सुरक्षा व्यय:-

यह भारत सरकार के व्यय की सबसे महत्वपूर्ण मद है। एडमस्मिथ के अनुसार, '' सुरक्षा धन सम्पत्ति से अधिक महत्वपूर्ण है। सुरक्षा, बाहरी आक्रमण तथा आन्तरिक अनियमितताओं के विरूद्ध, राष्ट्रीय सौभाग्य के लिए एक आवश्यक शर्त है। सुरक्षा व्यय निरन्तर बढ़ रहा है। तथा आधुनिक युद्धकला के उपकरण अधिक मंहगें और परिष्कृत हो गये है। यद्यपि भारत का सुरक्षा व्यय सन् 1921 में 8.2 करोड़ रूपये था सन् 1934- 35 में 45 करोड़. रूपयों तक और सन् 1938-39 में 46.18 करोड़ रूपयों तक बढ़ गया। सन् 1944-45 तक यह लगातार बढ़ता रहा और दूसरे विश्व युद्ध के दौरान यह 395.49 करोड़ रूपये तक पहुँच गया। अतः इस सम्बन्ध में लेयटन समिति की रिपोर्ट का कहना है'' भारत मे लोकवित्त का एक विशिष्ट लक्षण है- सुरक्षा दर 62 प्रतिशत का उच्चतम अनुपात है जो कि केन्द्रीय सरकार के कुल व्यय का उच्चतम अनुपात है तथा विश्व के सभी देशों से अधिक है। सन् 1929 में ए.जे. टायनबी ने यह कहते हुए अपने विचार प्रकट किए कि या राष्ट्रों की सूची में, भारत सुरक्षा पर 45.29 प्रतिशत व्यय के साथ सर्वप्रथम स्थान पर है। यू.एस.ए. और यू.के. में इसी वर्ष में यह प्रतिशतता क्रमशः 16.09 और 19.05 प्रतिशत थी। ''इस बड़े व्यय का मुख्य कारण यह था कि भारत ब्रिटेन पर निर्भर था भारत में आन्तरिक उपद्रव तथा राष्ट्रीयता की लहर को रोकने के लिए विदेशी सरकार को भारत मे फौज की आवश्यकता थी जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश अधिकारियों को बहुत बड़े वेतन दिये जाते थे।

व्यय को बढ़ाना आवश्यक हो गया। यह कारण इस प्रकार है-

1. स्वतंत्रता के तुरन्त बाद, देश में विघटनकारी शक्तियाँ थी जिन्हें रोकने के लिए बहुत सावधानी पूर्ण प्रयत्न आवश्यकता थी।
2. कश्मीर युद्ध तथा हैदराबाद भी पुलिस कार्यवाही भी व्यय में वृद्धि का कारण थी।
3. मूल्यों में सामान्य वृद्धि से भी सरकार को निपटना व इस प्रकार सुरक्षा विभाग को हर प्रकार की आधुनिक व नवीनतम सुविधाएँ उपलब्ध करवाकर दृढ़ करने की आवश्यकता थी।
4. चीन के साथ लगातार तनाव के कारण भी सुरक्षा व्यय गुणा बढ़ गया विशेषकर सन् 1962 के बाद चीन के आने के बाद, जब चीन ने भारत की उत्तरीय सीमा पर आक्रमण किया।

5. उत्तर और पश्चिम की ओर से निरन्तर खतरा बढ़ रहा। पाकिस्तान ने सन् 1965 और सन् 1971 मे भाग पर आक्रमण किया।
6. सेना सामग्री के क्षेत्र में भारतीय सेना को आत्म बनाना - जिसके फलस्वरूप सेना के साजो समान के लिए फैक्ट्रियाँ स्थापित की गई।
7. स्वतंत्रता के पश्चात् देश की भूमि सीमाओं में वृद्धि हुई जिसकी हर हालत में सुरक्षा करनी थी।
8. पर्याप्त तथा उच्च सेना प्रशिक्षण उपलब्ध करवाने के कारण भी सुरक्षा व्यय में वृद्धि हुई।
9. अनेक प्रकार की सहायक सैनिक सेवाएँ जैसे नेशनल कैडेट कोर (NCC), टेरीटोरियल आर्य के संगठन पर भी सरकार को काफी व्यय करना पड़ा।

वर्तमान स्थिति:-

राजस्व खाते पर कुल व्यय की प्रतिशतता में सुरक्षा व्यय को अग्रतालिका द्वारा दर्शायी गयी है:-

वर्ष	राजस्व खाते पर कुल व्यय	राजस्व खाते पर सुरक्षा व्यय	प्रतिशत
1950-51	346	164	45
1960-61	926	248	26
1990-91	73516	10874	15
2000-01	277838	37238	14
2010-11	958724	8734	13

उपयुक्त तालिका दर्शाती है कि सन् 1950-51 से 1960-61 सुरक्षा व्यय 33 प्रतिशत था परन्तु सन् 1980-81 के पश्चात् व्यय 15 से 18 प्रतिशत के बीच रिकार्ड किया गया। सन् 1950-51 में राजस्व खाते पर सुरक्षा व्यय 164.13 करोड़ रूपये था जो सन् 1980-81 में बढ़कर 3540.38 करोड़ रूपये हो गया। सन् 2000-01 में 37278 करोड़ रूपये हुआ और 2010-11 में सुरक्षा व्यय 87344 करोड़ रूपये हो गया।

1. प्रतिरक्षा व्यय में वृद्धि के परिणाम:-

सुरक्षा व्यय में अत्यधिक वृद्धि का देश के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि प्रतिरक्षा पर किया गया व्यय गैर विकास व्यय कहलाता है। यदि सुरक्षा पर अधिक व्यय

नहीं करना पड़ता तो अनेक विकासोन्मुख योजनाओं को पूरा किया जा सकता था । कृषि एवं औद्योगिक प्रगति सम्भव होती तो इससे न केवल उत्पादन का स्तर बढ़ता बल्कि देश आत्मनिर्भरता भी हो जाता और जो जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही है, उसे ऊँचा उठाया जा सकता। इस प्रकार सुरक्षा व्यय में अत्यधिक वृद्धि का सीधा अर्थ यही होता है कि विकास कार्यो पर किये जाने वाले व्यय में कटौती हो रही है अर्थात् शिक्षा, स्वास्थ्य, सिंचाई, विद्युत, उद्योग, खनिज, परिवहन के साधन आदि पर किए जा सकते है।

2. विकासात्मक एवं गैर-विकासात्मक व्यय में प्रवृत्तियाँ-

सन् 1980-81 में भारत मे विकासात्मक व्यय 24426 करोड़ रूपये था जबकि देश की स्वतंत्रता के समय (1950-51) यहीं व्यय 208 करोड़ रू. था तत्पश्चात् सन् 1990-91 में इसकी राशि 105922 करोड़ रूपये थी । यह सन् 2000-01 में 317464 करोड़ रूपये हुआ तथा सन् 2009-10 में बढ़कर 1183036 करोड़ रूपये हो गया विकासात्मक व्यय को निम्नतालिका में दर्शाया गया है-

विकासात्मक व्यय

वर्ष	विकासात्मक व्यय
1950-51	208
1980-81	24426
1990-91	105922
2000-01	317464
2009-10	1183036

गैर विकासात्मक व्यय 1950-51 में 320 करोड़ रूपये था जो बढ़कर 1990-91 में 70626 करोड़ रूपये तथा वर्ष 2000-01 के दौरान यह 298194 करोड़ रूपये हो गया और 2009-10 में यह बढ़कर 883416 करोड़ रूपये हो गया विभिन्न वर्षो में देश के गैर विकासात्मक व्यय को निम्न तालिका में दर्शाया गया है-

(राशि करोड़ रूपये में)

वर्ष	गैर-विकासात्मक व्यय
1950-51	320
1980-81	12419
1990-91	70626
2000-01	298194
2009-10	883416

बढ़ती हुई गतिविधियों, आन्तरिक कानून व्यवस्था और चीन के आक्रमण के कारण सुरक्षा व्यय आदि कारणों से थी।

3. प्रान्तीय सरकारों और केन्द्रशासित प्रदेशों को ऋण तथा अनुदानः-

यह भारत की केन्द्रीय सरकार के सार्वजनिक व्यय का (दोनों राजस्व एवं पूँजी खातों पर) महत्वपूर्ण लक्षण है। सरकार अनुदानों और ऋणों के रूप में प्रान्तों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों को सहायता उपलब्ध करवाती है। प्रान्तों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों को दिए जाने वाली अग्रिम राशि तथा ऋण पूँजीगत खाते से लिए जाते है जबकि प्रान्तोऔर केन्द्र शासित प्रदेशों को दिए जाने वाले सहायता अनुदान राजस्व खाते से प्राप्त होते है।

स्वतंत्रता के पश्चात् काल से सहायक अनुदानों एवं ऋणों पर व्यय का चित्रण निम्न तालिका में किया गया है-

(राशि करोड़ रूपये में)

वर्ष	सहायक अनुदानों एवं ऋणों पर व्यय
1950-51	61
1980-81	1810
1990-91	7664
2000-01	42189
2009-10	106004

तालिका में स्पष्ट है कि 1950-51 में इस मद पर 61 करोड़ रू. व्यय किए गये। 1980-81 में यह राशि बढ़कर 1810 करोड़ रूपये, 1990-91 में 7664 करोड़ रू. , 2000-01 में 42189 करोड़ रू. हो गयी। सन् 2009-10 में इस मद पर व्यय 106004 करोड़ रू. हो गया। अतः केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रान्तों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों को दी जाने सहायता अनुदान तथा ऋण की राशि निरन्तर बढ़ी है।

4. सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएँ-

शिक्षा, गृह निर्माण, नागरिक पूर्तियाँ, पुर्नवास, श्रम एवं रोजगार, सार्वजनिक स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, कला एवं संस्कृति को सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएँ, श्रमिको का कौशल और मानवीय साधनों की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होता है। इन सेवाओं पर व्यय तीव्रता से बढ़ रहा है क्योंकि हमारी सरकार प्रजातांत्रिक है तथा कल्याणकारी राज्य स्थापित करने के लिए वचनबद्ध है

5. **आर्थिक सेवाएँ-**

आर्थिक सेवाओं पर व्यय में सम्मिलित है- कृषि एवं सम्बन्धित सेवाएँ, उद्योग, खनिज, जल, विद्युत विकास, विदेशी सेवाएँ आदि जो धीरे-धीरे राष्ट्रीय आय को बढ़ाती है। आर्थिक सेवाओं पर व्यय सन् 1980-81 में 406 करोड़ रूपये था, सन् 1990-91 में यह 754 करोड़ रूपये हुआ जो वर्ष 2000-01 में 1941 करोड़ रू. तब बढ़ गया तथा 2008-09 में यह राशि बढ़कर 7829 करोड़ रू. व 2009-10 में 9041 करोड़ रू. हो गयी। आर्थिक सेवाओं के शीर्षक के अधीन व्यय सन् 1971 से लगातार बढ़ रहा है।

(राशि करोड़ रूपये में)

वर्ष	आर्थिक सेवाओं पर व्यय
1970-71	864
1980-81	406
1990-91	754
2000-01	1941
2008-09	7823

5. **ऋण सेवा पर व्यय:-**

भारत सरकार समय-समय पर देश में विकासात्मक परियोजनाओं के लिए आन्तरिक साधनो से बड़े स्तर पर ऋण लेती है जिसके परिणाम स्वरूप ब्याज के रूप में एक बड़ी राशि देनी पड़ती है। इसलिए इसमें सम्मिलित है- बकाया ऋणों पर ब्याज का भुगतान, तथा हर वर्ष ऋण को

घटाने अथवा छुड़ाने के लिए विनियोजन। यह वर्ष 1950-51 और 1980-81 में क्रमशः 32.4 करोड़ रूपये और 2957 करोड़ रूपये था। सन् 1990-91 में यह व्यय 34371 करोड़ रू. हुआ। सन् 1992-93 में ऋण साधनों का व्यय पर्याप्त मात्रा मे कम होकर 18082 करोड़ रू. हो गया तथा सन् 1996-97 में घटकर 15124 करोड़ रू. रह गया लेकिन 2008-09 में ऋण सेवा पर व्यय बढ़कर 58103 करोड़ रूपये हो गया जिसका आने वाले वर्षो में बढ़ने की सम्भावना है।

6. प्रशासनिक व्ययः-

सरकार को आन्तरिक सुरक्षा एवं कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिए बहुत बड़ी राशि व्यय करनी पड़ती है। संसदीय प्रणाली का कामकाज, विदेशी सम्बन्ध तथा सामान्य प्रशासन आदि पर बहुत व्यय होता है। ब्रिटिश शासनकाल में यह खर्चा सदा उच्च रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने कई कल्याण योजनाएँ आरम्भ की है जिससे प्रशासनिक व्यवस्था पर बोझ रूपये हो गया। सन् 1990-91 में यह 7040 करोड़ रूपये तथा 2000-01 में 35809 करोड़ रूपये तक पहुँच गया। वर्ष 2008-09 में नगरीय प्रशासन पर व्यय 97087 करोड़ रूपये हुआ।

स्वतंत्रता क बाद नगरीय प्रशासन व्यय में वृद्धि को निम्न तालिका में दर्शाया गया है-

(राशि करोड़ रूपये में)

वर्ष	नगरीय प्रशासन पर व्यय
1950-51	21
1980-81	1603
1990-91	7040
2000-01	35809
2008-09	97087

35.8 मूल्यांकन

आधुनिक युग में सार्वजनिक व्यय का उपयोग बढ़ रहा है जिससे एक राष्ट्र का आर्थिक जीवन प्रभावितहोता है। भारत जैसे अल्पविकसित देशों में इसका अधिक महत्व है। रैग्नर नर्कसे का कहना है कि '' विकासशील देश निर्धनता के कुचक्र की पकड़ में होते है'' क्योंकि वहाँ विकास संवर्धन के लिए पर्याप्त साधनों का अभाव होता है। इन विपरीत परिस्थितियों में सार्वजनिक व्यय प्रभावी ढ़ंग से कार्य करता है तथा आर्थिक गतिविधियों को नियमित करता है। अतः ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में सार्वजनिक व्यय आवश्यक हो जाता है। सार्वजनिक व्यय कार्यक्रम की योजना

इस प्रकार की जाये जिससे आर्थिक विकास में दीर्घकालीन एवं लघुकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता मिल सकें।

दीर्घकालीन लक्ष्य-

सार्वजनिक व्यय के दीर्घकालीन लक्ष्यों का उद्देश्य करना नहीं बल्कि दीर्घकाल में उत्पादन का अधिक तीव्र दर प्राप्त करना है। इसलिए यह निम्नलिखित को लक्षित करता है-

1. **आधार-भूत एवं मुख्य वस्तुओं के उद्योग-** दीर्घकालीन अनुदृश्य के सन्दर्भ में यह आधार-भूत तथा मुख्य पूँजीगत वस्तुओं के उद्योग स्थापित करने की नीति का अनुसरण करता है जिससे विकास को प्रोत्साहन मिले तथा भविष्य के निवेश के लिए पर्याप्त बचत हो ।
2. **सामाजिक बन्धे खर्चे -** अल्पविकसित देशों में सार्वजनिक व्यय, रेलवे, सड़कें बान्ध, नौ सेनाएँ, टैलीफोन, बैंक सुविधाएँ, शिक्षा संस्थाएँ तथा स्वास्थ्य सेवाओं आदि के लिए संरचना निर्माण के प्रयास करता है। यह सामाजिक बन्धे खर्चे आर्थिक विकास की मौलिक नींव माने जाते है।
3. **स्वयं-चालित वृद्धि -** अल्पविकसित देशों में सार्वजनिक व्यय की एक और सकारात्मक भूमिका है- आत्म निर्भर एवं स्वयं चलित वृद्धि उत्पन्न करना । यह अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन लाने से ही सम्भव है। सार्वजनिक व्यय, अर्थव्यवस्था के प्रोत्साहन का दायित्व लेकर इसे वृद्धि की स्वयं- उत्पत्ति की स्थिति पर ले जाता है।

सार्वजनिक व्यय के लघुकालीन लक्ष्यों का उद्देश्य देश की अर्थव्यवस्था की तुरन्त आवश्यकताओं की पूर्ति करना। इसके लिए उपलब्ध साधनों का उचित निर्धारण करना। इच्छित परिणामों की प्राप्ति के लिए सार्वजनिक व्यय के लघुकालीन उद्देश्यों को निम्नलिखित की ओर लक्षित करना

1. साधनों का ठीक निर्धारण।
2. प्राथमिकताएँ निश्चित करना।
3. आय व धन की असमानताओं को कम करना।
4. सन्तुलित क्षेत्रीय विकास।
5. केन्द्रीयकरण एवं एकाधिकार प्रथाओं को रोकना।
6. रोजगार क अवसरों की उत्पत्ति।

सरकार का यह दायित्व बन जाता है कि वह निर्धनता के कुचक्र को तोड़ने के लिए कदम उठायें तथा अर्थव्यवस्था को स्वचालित बनाने के लिए प्रोत्साहन उपलब्ध करवाये। इसलिए सार्वजनिक व्यय निस्सदेह अर्थव्यवस्था को पिछड़ेपन और निर्धनता की दलदल से ऊपर उठायेगा तथा मौद्रिक एवं राजकोषीय उपायों से स्वचालित वृद्धि की प्रक्रिया को तीव्र करेगा।

35.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. सार्वजनिक व्यय क्या है। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।
2. भारत के सार्वजनिक व्यय के उदभव पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. भारत के सार्वजनिक व्यय में तीव्र गति से वृद्धि के कारण बताइये।
4. भारत में प्रतिरक्षा व्यय के आकार एवं वृद्धि के कारण बताइये। प्रतिरक्षा व्यय में वृद्धि के परिणाम बताइये।
5. भारत जैसे अल्पविकसित देशों में सार्वजनिक व्यय की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
6. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए:-
   a. विकासात्मक तथा गैर विकासात्मक व्यय।
   b. भारत में सुरक्षा व्यय।
   c. राजस्व खाता।
   d. पूँजीगत खाता।

7. भारत में सार्वजनिक व्यय में तीव्रगति से वृद्धि के कारण तथा सार्वजनिक व्यय की प्रमुख प्रवृत्तियों बताइये।

35.10 शब्दावली

1. सार्वजनिक वित्त
2. राजस्व खाता
3. सुरक्षा व्यय
4. सहायता अनुदान
5. आर्थिक सेवाएँ
6. पूँजी खाता
7. सामाजिक सेवाएँ
8. विकासात्मक व्यय
9. गैर विकासात्मक व्यय
10. प्रशासनिक व्यय
11. ऋण सेवा
12. दीर्घकालीन लक्ष्य
13. लघुकालीन लक्ष्य
14. सामाजिक बन्धे खर्चो
15. स्वयं-चलित वृद्धि

16. निर्धनता कुचक्र

35.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Public Finance by H.L. Bhatia
2. Public Finance by R.K. Lekhi
3. The Theory and working of Union Finance in India by R.N. Bhargava.
4. States' Finances in India. By K. Venkataraman.
5. राजस्व के सिद्धान्त तिलक नारायण हजेला

इकाई -36
नीति आयोग

इकाई की रूपरेखा

36.0 उद्देश्य
36.1 प्रस्तावना
36.2 नीति आयोग
36.3 पृष्ठभूमि
36.4 उद्देश्य
36.5 संरचना
36.6 सदस्य
36.7 नीति आयोग एवं योजना आयोग
36.8 नीति आयोग की उपलब्धियाँ
36.9 सारांश
36.10 शब्दावली
36.11 कुछ उपयोगी संदर्भ
36.12 बोध प्रश्न एवं उनके उत्तर

36.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान सकेंगे कि

यह किन-किन उद्देश्यों को लेकर कार्य कर रहा है? तथा यह योजना आयोग से किस प्रकार भिन्न है एवं अब तक कि नीति आयोग की क्या प्रगति रही है । इन सभी प्रश्नों के हल आपको इस इकाई में पढ़ने को मिलेगें।

36.1 प्रस्तावना

महात्मा गांधी ने कहा था 'सतत विकास जीवन का नियम है और जो व्यक्ति हमेशा हठधर्मिता को बनाये रखने की कोशिश करता है, स्वयं को भटकाव की ओर ले जाता है । इस भावना को प्रदर्शित करते हुए और नये भारत के बदले माहौल में, शासन और नीति के संस्थानों को नई चुनौतियों को अपनाने की जरूरत है और यह अनिवार्य रूप से भारतीय संविधान के मूलभूत सिद्धान्तों, हमारी सभ्यता के इतिहास से ज्ञान के भण्डार और वर्तमान सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों पर आधारित होना चाहिये। भारत के नागरिको को शासन और गतिशील नीति बदलावों में संस्थागत सुधारों की जरूरत है, जिससे अभूतपूर्व बदलाव की रूपरेखा तैयार हो सके और उसका पोषण हो सके। योजना

आयोग का गठन 15 मार्च 1950 को किया गया था। लगभग 65 वर्षों के बाद देश ने खुद में एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था से एक उभरते वैश्विक दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में आमूल-चूल परिवर्तन किया है । पिछले कुछ दशकों के दौरान गरीबी में कमी लाने के प्रयास किया गया तथा शासन में प्रगति एवं बेहतरी लाने की काफी उम्मीदें बंधी है । भारत में विभिन्न भाषाओं, विश्वासों और सांस्कृतिक प्रणालियों वाला एक विविधतापूर्ण देश है । राजनीतिक रूप से भी, भारत ने बहुवाद को व्यापक तरीके से अंगीकार किया है । यहां केन्द्र एवं राज्य, केन्द्र के केवल अनुबंध बनकर नहीं रहना चाहते। वे आर्थिक विकास और प्रगति के शिल्प के निर्धारण में अपना निर्णायक अधिकार चाहते है । एक ही सिद्धान्त वाले दृष्टिकोण जो केन्द्रीय योजना के अन्तर्निहित होता है, में गैर जरूरी तनाव पैदा करने और राष्ट्रीय प्रयास की संपूर्णता को कमत्तर बनाने की क्षमता होती है । डॉ. अम्बेडकर ने दूरदर्शिता पूर्वक कहा था कि 'वहां अधिकारों को केन्द्रीयकृत एकरूपता स्पष्ट रूप से अनिवार्य नहीं है या इसका उपयोग नहीं हो सकता है ।' भारत में बदलाव की गतिशीलता के हृदय मे एक प्रौद्योगिकी क्रांति और सूचनाओं तक बेहतर पहुंच और उन्हें साझा करने की भावना अन्तर्निहित है । इस बदलाव की प्रक्रिया में कुछ परिवर्तनों का, जहां अनुमान लगाया जाता है और योजना बनाई जाती है । उन संस्थाओं की भूमिका को पुनपरिभाषित करने की महत्ती आवश्यकता है ।

36.2 नीति आयोग National Institution for Transforming India

राष्ट्रीय भारत में परिवर्तन संस्थान, भारत सरकार द्वारा गठित एक नया संस्थान है जिसे योजना आयोग का स्थान लिया है एक जनवरी 1915 को इस नये संस्थान के संबंधमें जानकारी देने वाला मंत्रिमंडल का प्रस्ताव जारी किया गया। यह संस्थान सरकार के 'थिंक टैक' के रूप में गतिशीलता प्रदान करेगा। नीति आयोग, केन्द्र और राज्य स्तरों पर सरकार को नीति के प्रमुख कारको के संबधमें प्रासंगिक महत्वपूर्ण एवं तकनीकी परामर्श उपलब्ध करायेगा। इसमें आर्थिक मोर्च पर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आयात, देश के भीतर, साथ ही साथ अन्य देशों की बेहतरीन पद्धतियों का प्रसार करेगा एवं नये नीतिगत विचारों का समावेश और विशिष्ट विषयों पर आधारित समर्थन से संबंधितमामले पर सरकार को सलाह देगा। नीति आयोग ग्राम स्तर पर विश्वसनीय योजना तैयार करने के लिए तंत्र पर विश्वसनीय योजना तैयार करने के लिए तंत्र विकसित करेगा और इसे उत्तरोत्तर उच्च स्तर तक पहुंचायेगा। आयोग राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों, तकनीकी अनुभव वाले प्रेक्टिशनरों तथा अन्य हितकारको के सहयोगात्मक समुदाय के जरिये ज्ञान, नवाचार, उद्यमशीलता सहायक प्रणाली बनायेगा। इसके अतिरिक्त आयोग कार्यक्रमों और नीतियों के क्रियान्वयन के लिए प्रौद्योगिकी उन्नयन और क्षमता निर्माण पर जोर देगा। भारत में बदलाव लाने वाली ताकतों में निम्नलिखित शामिल है तथा इन्हीं मुद्दों एवं परिस्थितियों को ध्यान मे रखते हुए नये संस्थान का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है ।

1- हमारे उद्योग एवं सेवा क्षेत्र का विकास हुआ है और अब उनका वैश्विक स्तर पर संचालन हो रहा है । इस नींव पर निर्माण करने के लिए नये भारत को एक प्रशासनिक बदलाव की जरूरत है, जिसमें सरकार सक्षमकारी हो न कि पहला और आखिरी सहारा। औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्रों में एक कम्पनी के रूप में सरकार की भूमिका का कम किया जाना चाहिये। इसकी जगह सरकार को कानून बनाने, नीति निर्माण करने तथा विनियमय पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

2- कृषि में भारत की पारंपरिक ताकत, प्रौद्योगिक ताकत एवं प्रौद्योगिकी में बेहत्तरी की बदौलत बढ़ी है । हमें अपनी बेहतरी बनाए रखने की जरूरत है और शुद्ध खाद्य सुरक्षा से आगे बढ़कर कृषि उत्पादन के मिश्रण तथा किसानों को उनकी उपज से मिलने वाले वास्तविक लाभ पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिये।

3- हम एक वैश्विक गांव में रहते हैं, जो आधुनिक आवागमन, संचार ओर मीडिया तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों और संस्थानों की आपसी, नेटवर्किंग से जुड़ा है । जहां भारत वैश्विक घटनाओं में योगदान देता है । इस पर हमारी सीमाओं से बहुत दूर घटने वाली घटनाओं का भी असर पड़ता है । वैश्विक अर्थव्यवस्थाएं और भौगोलिक राजनीति लगातार एक दूसरे से जुड़ रही है और निजी क्षेत्र का इसके भीतर के एक घटक के रूप में महत्व बढ़ रहा है । भारत का समान विचार वाले वैश्विक महत्व बढ़ रहा है । भारत को समान विचार वाले वैश्विक मुद्दों, खासकर जिन क्षेत्रों पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है, पर बहसों और विचार-विमर्शों में सक्रिय भूमिका अदा करनी चाहिये।

4- भारतीय मध्यम वर्ग अपने आकार एवं क्रमशक्ति दोनों में ही अनूठा है । यह शक्तिशाली समूह लगातार बढ़ रहा है । यह विकास का महत्वपूर्ण वाहक है । अपने उच्च शैक्षणिक स्तरों, गतिशीलता और देश मे बदलाव लाने की इच्छा की वजह से इसमें बेशुमार संभवनाएं है । यह सुनिश्चित करना हमारे लिए लगातार चुनौती बनी रहेगी कि आर्थिक रूप में जीवंत इस मध्यवर्ग की भागीदारी बनी रहे और इसकी क्षमताओं का पूर्ण दोहन किया जा सके।

5- उद्यमशीलता, वैज्ञानिक और बौद्धिक मानव पूंजी का भारत का भण्डार शक्ति का एक स्रोत है । जो सफलता की असीम ऊँचाईयों को प्राप्त करने में तथा भारतवर्ष का विकास करने में काफी उन्मुक्त है । अत: इनका उपर्युक्त नीतिगत फैसलों के माध्यम से लाभ उठाये जाने की जरूरत है ।

6- प्रवासी भारतीय समुदाय जो 200 से अधिक देशों में फैला है जो भारत की आर्थिक एवं राजनीतिक ताकत है इनके लिए ऐसी नीति बनाई जाए ताकि उनकी भागीदारी को विस्तृत बनाया जा सके।

7- शहरीकरण एक अपरिवर्तनीय रूझान है । इसे गलत मानने की बजाय इसे विकास के लिए हमारी नीति का अंतरंग तत्व बनाना होगा। इससे प्राप्त आर्थिक लाभों का फायदा उठाने के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जाना चाहिये।

8- पारदर्शिता अब 'शासन के लाइसेन्स' के लिए अपरिहार्य हो चुकी है । हम ऐसे डिजिटल युग में हैं, जहां सोशल मीडिया जैसे संचार के उपकरण और तरीके सरकार के विचारों और कदमों की व्याख्या करने तथा साझा करने के ताकतवर माध्यम है । यह रूझान समय के साथ आगे ही बढ़ेगा। शासन में जटिलता और परेशानियों की संभावनाओं को कम करने के लिए प्रोद्यौगिकी का प्रयोग करते हुए सरकार और शासन को उच्च पारदर्शिता के वातावरण में चलाया जाना चाहिये।

9- प्रौद्योगिकी और सूचना की पहुंच ने विविधता में एकता पर जोर दिया है । भारत के विविध रंगों से उत्पन्न होने वाली सृजनात्मक ऊर्जा का लाभ उठाने के लिए विकास मॉडल अधिक सहमति भरा और सहयोगी होना चाहिये। इसमें राज्यों, क्षेत्रों और स्थानीय लागों की विशेष मांगों को समाविष्ट किया जाना चाहिये। राष्ट्रीय विकास के हिस्सेदारी वाले दृष्टिकोण को मानव गरिमा, राष्ट्रीय आत्म सम्मान और समावेशी टिकाऊ पथ पर आधारित होना चाहिये। हम अपनी जनसंख्या या विभिन्न क्षेत्रों के वंचित वर्गों को नजर अंदाज नहीं कर सकते ।

10- अगले कुछ दशकों के दौरान विशाल आबादी का सार्थक रूप से लाभ उठाना होगा। युवाओं, पुरूषों और महिलाओं की क्षमताओ को अनुभव, शिक्षा, कौशल विकास, लिंग भेद समाप्ति और रोजगार के माध्यम से उत्पादक अवसर उपलब्ध कराने के लिए कार्य करना है ।

11- गरीबी उन्मूलन सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा बना हुआ है । प्रत्येक भारतीय को आत्म सम्मान से जीवन जीने का अवसर दिया जाना चाहिये।

12- आर्थिक विकास तब तक अधुरा है जब तक वह प्रत्येक व्यक्ति को विकास के लाभ का आनन्द उठाने के लिए अधिकार उपलब्ध नहीं कराता।

13- गांव हमारे लोकाचार, संस्कृति और जीविका के सुदृढ़ आधार बने हुए है । इन्हें विकास प्रक्रिया में पूर्णरूप से संस्थागत बनाये जाने की जरूरत है ताकि हम उनके उत्साह और ऊर्जा का लाभ उठा सकें।

14- भारत में 50 मिलियन से अधिक छोटे व्यापारी है जो रोजगार जुटाने के मुख्य स्रोत है । यह व्यापार समाज के पिछड़े और वंचित वर्गों के लिए रोजगार के अवसर जुटाने के लिए आवश्यक है । नीति निर्धारक में कौशल, ज्ञान उन्नयन और वित्तिय पूंजी और संबंधित प्रौद्योगिकी तत्व तक पहुंच बनाने के रूप में इस क्षेत्र को आवश्यक सहायता प्रदान करने पर ध्यान दिया जाना चाहिये।

15- विकास के अच्छे वातावरण के लिए हमारा पर्यावरण ही उत्तरदायी होता है । हमारा पर्यावरण एवं परिस्थितिकी परिसंपत्तियां शाश्वत है । इन्हें संरक्षित और रक्षित किया जाना चाहिये।

इस प्रकार राष्ट्रीय उद्देश्यों को हासिल करने में सरकार की भूमिका समय के साथ बदल सकती है । लेकिन वह हमेशा महत्वपूर्ण रहेगी। सरकार ऐसी नीतियां बनाना जारी रखेगी जो देश की आकांक्षाओं और जरूरतों को प्रकट करती हो। सरकार इन्हें इस ढंग से लागू करे कि वह नागरिको के लिए फायदेमन्द हों। दुनिया के साथ राजनैतिक और आर्थिक रूप से तालमेल बिठाने के लिए नीति बनाने के साथ सरकार के कामकाज को भी समाहित करना होगा।

36.3 पृष्ठभूमि

भारत की स्वतंत्रता के 70 वर्षों के पश्चात सरकार का संस्थागत ढांचा विकसित और परिपक्व हुआ है । इससे कार्यक्षेत्र में विशेषज्ञता विकसित हुई है । जिससे संस्थाओं को सौंपे गये कार्यों की विशिष्टता बढ़ाई है । नियोजन की प्रक्रिया के संदर्भ में शासन की प्रक्रिया को शासन की कार्यनीति से अलग करने के साथ-साथ उसे ऊर्जावान बनाने की जरूरत है । शासन की संरचना के संबंधमें हमारे देश की जरूरतें बदली है ऐसे मे, एक ऐसे संस्थान की स्थापना की आवश्यकता है जो सरकार के दिशात्मक और नीति निर्धारक थिंक टैंक के रूप में कार्य करे। नीति आयोग प्रत्येक स्तर पर नीति निर्धारक के प्रमुख तत्वों के बारे में महत्वपूर्ण और तकनीकी सलाह देगा।

इस संस्थान के तहत केन्द्र से राज्यों की तरफ चलने वाले एक पक्षीय नीतिगत क्रम को एक महत्वपूर्ण विकासवादी परिवर्तन के रूप में राज्यों की वास्तविक और सतत भागीदारी में बदल दिया जाएगा। त्वरित गति से कार्य करने के लिए और सरकार को नीति दृष्टिकोण उपलब्ध कराने के साथ साथ प्रासंगिक विषयों के संदर्भ में संस्थान के पास आवश्यक संसाधन, ज्ञान कौशल और क्षमता होगी।

सबसे महत्वपूर्ण यह है कि विश्व के सकारात्मक प्रभावों को अपनाते हुए संस्थान को इस नीति का पालन करना होगा कि भारत के परिप्रेक्ष्य में एक ही मॉडल प्रत्यारोपित नहीं किया जा सकता है । विकास के लिए भारत की नीति स्वयं भारतीय का निर्धारित करनी होगी। देश में और देश के लिए क्या हितकारी है । संस्थान को इस पर ध्यान केन्द्रित करना होगा जो विकास के लिए भारतीय दृष्टिकोण पर आधारित होगा।

इन आशाओं को जीवन्त बनाने के लिए राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्थान (नीति आयोग) का प्रस्ताव राज्य सरकारों, संसद सदस्यों विषय विशेषज्ञों और संबंधित संस्थानों सहित सभी हितधारको के बीच गहन विचार विमर्श के बाद किया गया।

36.4 उद्देश्य

नीति आयोग निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए कार्य करेगा।

1- राष्ट्रीय उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए राज्यों को सक्रिय भागीदारी के साथ राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं क्षेत्रों और रणनीतियों का एक साझा दृष्टिकोण विकसित मुख्यमंत्रियों को राष्ट्रीय एजेंडा का प्रारूप उपलब्ध कराना है ।

2- सशक्त राज्य ही सशक्त राष्ट्र का निर्माण कर सकता है इस तथ्य की महत्ता को स्वीकार करते हुए राज्यों के साथ सतत आधार पर संरचनात्मक सहयोग की पहल और तंत्र के माध्यम से सहयोगपूर्ण संघवाद को बढ़ावा देगा।

3- ग्राम स्तर पर विश्वसनीय योजना तैयार करने के तंत्र विकसित करेगा और इसे उत्तरोत्तर उच्च स्तर तक पहुंचायेगा।

4- आयोग यह सुनिश्चित करेगा कि जो क्षेत्र विशेष रूप से उसे सौंपे गए हैं उनकी आर्थिक कार्यनीति और नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा के हितों को शामिल किया गया है।

5- हमारे समाज के उन वर्गों पर विशेष रूप से ध्यान देगा जिन पर आर्थिक प्रगति से उचित प्रकार से लाभान्वित ना हो पाने का जोखिम होगा।

6- रणनीतिक और दीर्घावधि के लिए नीति तथा कार्यक्रम का ढांचा तैयार करेगा और पहल करेगा। साथ ही उनकी प्रगति और क्षमता की निगरानी करेगा। निगरानी और प्रतिक्रिया के आधार पर मध्यावधि संशोधन सहित नवीन सुधार किये जाएंगे।

7- महत्वपूर्ण हितधारको तथा समान विचारधारा वाले राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय थिंक टैंक और साथ ही साथ शैक्षिक और नीति अनुसंधान संस्थानों के बीच भागीदारी को परामर्श और प्रोत्साहन देगा।

8- राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय विशेषज्ञों, प्रेक्टिशनरों तथा अन्य हितधारको के सहयोगात्मक समुदाय के जरिए ज्ञान, नवाचार, उद्यमशीलता सहायक प्रणाली बनाएगा।

9- विकास के एजेण्डे के कार्यान्वयन में तेजी लाने के क्रम में अंतर क्षेत्रीय और अन्तर विभागीय मुद्दों के समाधान के लिए एक मंच प्रदान करेगा।

10- आधुनिक कला संसाधन केन्द्र बनाना जो सुशासन तथा सतत और न्यायसंगत विकास की सर्वश्रेष्ठ कार्यप्रणाली पर अनुसंधान करने के साथ साथ हितधारको तक जानकारी पहुंचाने में भी मदद करेगा।

11- आवश्यक संसाधनों की पहचान करने सहित कार्यक्रमों, और उपायों के कार्यान्वयन के सक्रिय मूल्यांकन और सक्रिय निगरानी की जाएगी। ताकि सेवायें प्रदान करने में सफलता की संभावनाओं को प्रबल बनाया जा सकें।

12- कार्यक्रमों और नीतियों के क्रियान्वयन के लिए प्रौद्योगिकी उन्नयन और क्षमता निर्माण पर जोर देना।

13- राष्ट्रीय विकास के एजेण्डा और उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अन्य आवश्यक गतिविधियां समाहित करना।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, ''एक विचार ले। उस विचार को अपना जीवन बनाए - उसी के बारे में सोचें, उसका सपना देखें ओर उस विचार को जियें, मस्तिष्क, मांसपेशी, स्नायुतंत्र, अपने शरीर के प्रत्येक भाग को उसी विचार से ओतप्रोत कर दें और दूसरे विचारों को अलग रख दें। यही सफलता की राह है।''

सहकारी संघवाद के प्रति अपनी प्रतिबद्धता, नागरिको की भागीदारी को बढ़ावा देने, अवसरों तक समतावादी पहुंच, प्रतिभागी एवं अनुकूलनीय शासन और विकसित हो रही प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रयोग के जरिए नीति आयोग शासन प्रक्रिया को महत्वपूर्ण दिशा निर्देश और कार्यनीतिक योगदान देगा।

36.5 संरचना

नीति आयोग का गठन इस प्रकार होगा -

1- भारत के प्रधानमंत्री - अध्यक्ष
2- गवर्निंग काउंसिल में राज्यों के मुख्यमंत्री और केन्द्रशासित प्रदेशों के उपराज्यपाल शामिल होंगे।
3- विशिष्ट मुद्दों और ऐसे आकस्मिक मामले, जिनका संबंधएक से अधिक राज्य या क्षेत्र से हो, को देखने के लिए क्षेत्रीय परिवद गठित की जाएगी। ये परिषदें विशिष्ट कार्यकाल के लिए बनाई जाएगी। भारत के प्रधानमंत्री के निर्देश पर क्षेत्रीय परिषदों की बैठक होगी और इनसे संबंधित क्षेत्र के राज्यों के मुख्यमंत्री और केन्द्र शासित प्रदेशों के उपराज्यपाल शामिल होंगे। इन परिषदों की अध्यक्षता नीति आयोग के उपाध्यक्ष करेंगे।
4- संबधित कार्यक्षेत्र की जानकारी रखने वाले विशेषज्ञ और कार्यरत लोग, विशेष आमंत्रित के रूप में प्रधानमंत्री द्वारा नामित किए जाएंगे।
5- पूर्णकालिक संगठनात्मक ढाँचे में निम्न होंगे
    1- अध्यक्ष - प्रधानमंत्री
    2- उपाध्यक्ष - प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त
    3- सदस्य - पूर्णकालिक
    4- अंशकालिक सदस्य - अग्रणी विश्वविद्यालय शोध संस्थानों और संबंधितसंस्थानों से अधिकतम दो पदेन, अंशकालिक सदस्य के आधार पर होंगे।
    5- पदेन सदस्य - केन्द्रीय मंत्रिपरिषद से अधिकतम चार सदस्य प्रधानमंत्री द्वारा नामित होंगें
    6- मुख्य कार्यकारी अधिकारी - भारत सरकार के सचिव स्तर के अधिकारी को निश्चित कार्यकाल के लिए प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त किया जाएगा।
    7- सचिवालय आवश्यकता के अनुसार ।

36.6 सदस्य

वर्तमान में नीति आयोग में निम्नानुसार नियुक्तियां पदस्थापन किया जा चुका है।

अध्यक्ष - श्री नरेंद्र मोदी, माननीय प्रधानमंत्री

उपाध्यक्ष - श्री अरविन्द पंनगढिया

अंशकालिक सदस्य

1 श्री विवेक देबरॉय

पूर्णकालिक सदस्य -

1. श्री वी.के. सारस्वत
2. श्री रमेश चंद

पदेन सदस्य

1- श्री राजनाथ सिंह - गृहमंत्री
2- श्री अरूण जेटली - वित्त मंत्री
3- श्री सुरेश प्रभु - रेल मंत्री
4- श्री राधामोहन सिंह - कृषि मंत्री

विशेष आमंत्रित सदस्य

1- श्री नीतिश गडकरी - सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्री
2- श्री थावर चन्द्र गहलोत - सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री
3- श्री मती स्मृति जुबिन ईरानी - कपड़ा मंत्री

मुख्य कार्यकारी अधिकारी

श्री अमिताभ कान्त

36.7 नीति आयोग एवं योजना आयोग में अन्तर

नीति आयोग

1- इसकी मुख्य भूमिका राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय महत्व के विभिन्न नीतिगत मुद्दों पर केन्द्र और राज्य सरकारों को जरूरी रणनीतिक व तकनीकी परामर्श देना।
2- इस आयोग के उद्देश्यों से यह स्पष्ट नहीं कि पंचवर्षीय योजनाओं की मौजूदा व्यवस्था रहेगी या नहीं।
3- नीति आयोग के बाद राष्ट्रीय विकास परिषद की भूमिका का स्पष्ट उल्लेख नहीं है ।
4- नीति आयोग टीम इंडिया और सहकारी संघवाद के विचार का मूर्तरूप होगा।
5- नीति आयोग में देश भर के शोध संस्थानों और विश्वविद्यालयों से व्यापक स्तर पर परामर्श लिए जायेंगे।
6- नीति आयोग में विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों के प्रतिनिधि भी शामिल किये जाएंगे।
7- सहकारी संघवाद, अवसरों के प्रति समतावदी एवं समावेशी पहुंच, प्रौद्योगिकी का समुचित उपयोग एवं सहभागी शासन पर आधारित आर्थिक विकास पर जोर देते हुए नीति आयोग महत्वपूर्ण दिशा निर्देश एवं सरकार तथा शासन प्रक्रिया को कार्यनीतिक योगदान करेगा।

8- नीति आयोग के तहत केन्द्र से राज्यों की तरफ चलने वाले एकपक्षीय नीतिगत क्रम को एक महत्वपूर्ण विकासवादी परिवर्तन के रूप में राज्यों की वास्तविक और सतत भागीदारी में बदलने का प्रयास किया जाएगा।

योजना आयोग

1- नेहरू युगीन योजना आयोग की प्रकृति केन्द्रीयकृत थी। योजना आयोग देश के विकास का गठन 15 मार्च 1950 को हुआ था।
2- योजना आयोग देश के विकास से संबंधितयोजनाएं बनाने का काम करता था।
3- योजना आयोग ने 12 पंचवर्षीय योजनाएं बनाई।
4- योजना आयोग ने 2000 करोड़ रूपये से पहली पंचवर्षीय योजना 1951 में शुरू की थी।
5- योजना आयोग के अध्यक्ष भी प्रधानमंत्री ही होते थे। लेकिन कभी भी मुख्यमंत्रियों की सलाह नहीं ली जाती थी।
6- योजना आयोग के काल तक मुख्यमंत्री अगर कोई सुझाव देना चाहते थे तो वे विकास समिति को देते थे। जो समीक्षा के बाद योजना आयोग की दी जाती थी।
7- निजी क्षेत्र की भागीदारी योजना आयोग में कतई नहीं थी।
8- योजना आयोग के वित्त आयोग के कोष आवंटन कार्य आयोग कोष आवंटन से संबंधित कोई कार्य नहीं करेगा।
9- योजना आयोग के सदस्यों में सचिव स्तर के एवं सचिवालय के ही अधिकारी सम्मिलित होते थे। जबकि वर्तमान नीति आयोग में केबिनेट मंत्री भी सदस्य के रूप में कार्य करेगे।
10- योजना आयोग 64 वर्षों तक अस्तितव में रहा तत्पश्चात नीति आयोग ने इसके स्थान पर बदलती हुई परिस्थितियों में कार्य करना प्रारंभ किया।

इससे पूर्व योजना को कई नेताओं की आलोचनाओं का भी समाना करना पड़ा।

36.8 नीति आयोग की उपलब्धियां

1 जनवरी 2015 को अस्तित्व में आये राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्थान अथवा नीति आयोग को दो वर्ष पूर्ण हो चुके है हालांकि योजना आयोग के 64 वर्षों की तुलना में नीति आयोग के 2 वर्ष काफी सीमित अवधि है फिर भी इस अवधि के दौरान नीति आयोग के द्वारा सम्पन किये गये कुछ प्रमुख कार्यों का उल्लेख करना आवश्यक है ।

नीति आयोग ने सांगठनिक मोर्च पर प्रारंभ में ऐसे 1255 पदों को बनाए रखा जो पूर्व में योजना आयोग में थे। नये संस्थान को सौंपेगे उत्तर दायित्व के अनुसार इसमें पदों की संख्या को कम करना तथा कुछ नये लोगों को शामिल करना जो कि नये उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपेक्षाकृत रूप से ज्यादा कुशल हो। इसके मद्देनजर नीति आयोग में से बड़ी संख्या में कर्मचारियों को सरकार के दूसरे विभागों में स्थानान्तरित किया और वर्तमान में आयोग के कर्मियों की संख्या 500 रह गई है । इस

प्रक्रिया के तहत कुछ बाहर के कर्मचारियों को भी पदस्थापित किया गया और एक अर्थशास्त्री ने भी कार्यभार ग्रहण कर लिया।

नीति आयोग के अधिदेशों को बेहतर तरीके से पूर्ति के लिए आयोग के स्वरूप को दो बड़े हब में बाटा गया - एक को ज्ञान और नव प्रवर्तन हब और दूसरे को टीम इंडिया का हब नाम दिया गया। ज्ञान और नव प्रवर्तन हब को ज्ञान के सृजन और नव प्रवर्तन से जुड़े एक दर्जन स्तरों पर विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता विकसित करने का कार्य सौंपा गया है जैसे व्यापार और वृहद स्वास्थ्य, कृषि, ग्रामीण विकास, शिक्षा तथा कौशल, विकास टीम इंडिया हब का मुख्य कार्य राज्यों, केन्द्रिय मंत्रालयों और ज्ञान तथा नवप्रवर्तन हब के बीच तालमेल कायम करना है।

नीति आयोग प्रधानमंत्री की इच्छा के अनुरूप ही सहकारितापूर्ण प्रतिस्पर्धी संघवाद की अगुवाई करने के लिए तत्पर है । इसके अन्तर्गत प्रथम शास्ती परिषद् की बैठक में प्रमुख केन्द्रीय पहलुओं का खाका तैयार करके मुख्यमंत्रियों का छोटा समूह बनाकर उनके सुझाव को स्वीकार किया गया। इसी क्रम में नीति आयोग के तहत मुख्यमंत्रियों के तीन समूह बनाने की घोषण की ताकि ये समूह उन्हें केन्द्र प्रायोजित स्कीमों, कौशल विकास तथा स्वच्छ भारत के बारे में सुझाव दे सकें। इसके साथ ही नीति आयोग को दो कार्यदल गठन करने की सलाह दी - एक गरीबी उपशमन हेतु और दूसरा कृषि विकास हेतु। ये दोनों कार्यदल दन दोनों विषयों पर प्रत्येक राज्य और संघ राज्य क्षेत्र में कार्यरत कार्यबल के साथ साथ ही काम करेंगे।

नीति आयोग के उपाध्यक्ष अरविन्द पनगढिया ने अपने एक पत्र में बताया कि मुख्यमंत्रियों के उप-समूह ने कर्मठता से कार्य करते हुए नीति आयोग सहयोग किया तथा अनुवर्ती चर्चाओं में राज्यों के पदाधिकारियों से गहन विचार विमर्श हुआ। इसके अन्तर्गत राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने अपने अपने राज्यों के सीमित हितों के ऊपर उठकर राष्ट्रीय और राज्यों के सामुहिक हितों को तरजीह देते हुए तीन विषयों पर उत्कृष्ट रिर्पोटें तैयार की है और ये रिपोर्टें प्रधानमंत्री को सौंप दी गई है । सीएसएस के तहत केन्द्र सरकार और राज्यों के बीच व्यय के हिस्सेदारी के पैटर्न और 0.5 प्रतिशत स्वच्छ भारत उपकर संबंधीसिफारिशों को क्रियान्वित किया गया।

इसी प्रकार कृषि विकास संबंधिकार्यदल ने राज्यों के साथ परामर्श कर उत्पादकता को बढ़ाने और किसानों के लिए उनकी उपज हेतु लाभप्रद कीमते सुनिश्चित करने संबंधीसुझावों पर कार्य किया।

नीति आयोग से अटल नवोन्मेष मिशन (एआइएम) तथा स्वरोजगार और प्रतिभा का उपयोग (सेतु) के तत्वाधान में नवोन्मेष और उद्यामिता के क्षेत्रों में भी मार्गदर्शन प्रदान करने का आग्रह किया गया। इन विषयों का आगे बढ़ाने के लिए हावर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तरूण खन्ना की अध्यक्षता मे नवोन्मेष और उद्यमिता के संबंध में एक विशेषज्ञ समिति गठित की गई। इस समिति ने कई बैठके आयोजित कर अल्प समय में ही अपनी रिपोर्ट सौंप दी इस समिति की सिफारिशों के अनुसार मिशन निदेशालय और मिशन उच्च स्तरीय समिति का शीघ्र ही गठन किया जाएगा।

इसी प्रकार आयोग ने जलवायु परिवर्तन एवं व्यापार संबंधी वार्ताओं के लिए ठोस आधार प्रदान किया। बारहवीं पंचवर्षीय योजना का मध्यावधि मूल्यांकन पूर्ण कर लिया। थिंक टैंक और उपयोग विशेषज्ञों के साथ व्यापक विचार विमर्श करने के बाद राष्ट्रीय ऊर्जा नीति का प्रारूप तैयार कर मेक इन इंडिया इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद नीति का भी प्रारूप तैयार करने वाले है । नीति आयोग ने कई आधारभूत संरचना परियोजनाओं के अवरोधों को दूर करने का प्रयास किया। इसी प्रकार आयोग ने अहमदाबाद और मुम्बई के बीच हाई स्पीड रेल प्रारंभ करने का मार्ग प्रशस्त किया आदर्श भूमि पट्टाकरण अधिनियम को अन्तिम रूप दिया जाना तथा किसानों के लिए लाभकारी कीमतों के क्षेत्र में कमी संबंधी भुगतानों और ट्रान्सजैनिक बीजों पर चर्चाएं आरंभ करना शामिल है।

36.9 सारांश

मई, 2014 के एन.डी.ए. सरकार के सत्ता संभालने के बाद देश में परिवर्तन लाने के लिए कई कार्यक्रमों की शुरूआत की गई इनमें पूर्व योजना आयोग के साथ पर नीति आयोग की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम माना जा रहा है । भारत में परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय संस्थान (The National Institution for Transforming India) नीति आयोग की स्थापना 1 जनवरी 2015 को एक सरकारी प्रस्ताव के द्वारा की गई थी इसकी नींव निम्न बातों पर आधारित है - सहकारी संघवाद के आधार पर राज्य राष्ट्रीय विकास में समान रूप से भागीदारी होगें यह एक थिंक टैंक के रूप में उत्तम शासन का केन्द्र होकर काम करेगा और प्रगति की देखभाल करेगा, अभावों को दूर करेगा तथा केन्द्र व राज्यों के विभिन्न मंत्रालयों में सहयोग स्थापित करेगा ताकि विकास के लक्ष्य प्राप्त किये जा सकें।

इसके उद्देश्यों में निम्न महत्वपूर्ण बातें शामिल की गई है - यह राज्यों के साथ मिलकर राष्ट्रीय विकास की प्राथमिकताएं व रणनीतियां निर्धारित करेगा, ग्राम स्तर पर विश्वसीय योजनाएं बनाकर उन्हें ऊंचे स्तरों पर एकत्र करेगा, विकास की दीर्घकालीन नीति निर्धारित करेगा, अन्य देशों के थिंक टैंक के साथ सहयोग करके साझेदारी विकसित करेगा, विभिन्न क्षेत्रों व विभिन्न विभागों में परस्पर सहयोग स्थापित करेगा, उत्तम शासन के लिए अनुसंधान में सहयोग देगा, कियान्वयन का मूल्यांकन करेगा प्रौद्योगिकी में उन्नयन में मदद देगी और राष्ट्रीय विकास को आगे बढ़ायेगा।

भारत में प्रधानमंत्री इसके अध्यक्ष होगें। डॉ. अरविन्द पनगढिया को इसका उपाध्यक्ष बनाया गया इसके गवर्निंग काउसिंलिग में सभी राज्यों के मुख्यमंत्री तथा संघीय प्रदेशों के लेफ्टीनेट गर्वनर होंगे। प्रादेशिक परिषद में प्रदेश की विशेष समस्याओं व विषयों पर विचार किया जाएगा।

नीति आयोग के पूर्णकालिक सदस्यों में विवेक देवराय और वी.के. सारस्वत होगें तथा तदर्थ सदस्यों में एवं विशेष आमंत्रित सदस्यों में चार केबिनेट मंत्रियों को लिया गया।

नीति आयोग एवं पूर्ववर्ती योजना में मुख्य अन्तर इस बात को लेकर है कि इसमें केन्द्र से राज्यों की तरफ चलने वाले एकपक्षीय नीतिगत क्रम को एक महत्वपूर्ण विकासवादी परिवर्तन के रूप में राज्यों की वास्तविक और सतत भागीदारी में बदलना है।

नीति आयोग द्वारा किये गये महत्वपूर्ण कार्यों का विवरण इस प्रकार है -

8 फरवरी 2015 को गवर्निंग परिषद की प्रथम सथा में मुख्यमंत्रियों के तीन समूह बनाये गये - पहला उपसमूह केन्द्रचालित स्कीमों में विवेकीकरण के लिए यथा संभव उनमें कमी करने के लिए दूसरा, कौशल विकास के लिए और तीसरा गरीबों से सीधा जुड़ाव है । आधारभूत प्रोजेक्टों को शीघ्रता से पूरा करने के लिए राज्य स्तर पर संयंत्रको सुदृढ़ करने पर बल दिया गया। 14 अप्रैल 2016 को नीति आयोग को 15 साल का दृष्टिकोण पत्र तैयार करने के लिए कार्य सौंपा गया और वह तीन साल का विकास एजेण्डा 2017-18 से 2019-20 तक के लिये भी तैयार करेगा जिसे 14वें वित्त आयोग के 3 वर्षों से जोड़कर तैयार किया जायेगा। इन सभी कार्यों के बावजूद कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि नीति आयोग अभी तक अपना योगदान स्पष्ट नहीं कर पाया है । प्राय: यह प्रश्न पूछे जाते है कि भारत में भावी नियोजन का क्या रूप होगा क्या तेहरवीं पंचवर्षीय योजना 2017-2022 बनाई जाएगी, राज्यों में नियोजन का भावी रूप कैसा होगा? योजना का वित्तिय व्यवस्था केसी होगी। इन सब प्रश्नों का पूरा स्पष्टीकरण शीघ्र ही सामने आना चाहिये। 12वीं योजना का कार्यकाल 31 मार्च 2017 को समाप्त हो जायेगा। इसलिए नीति आयोग के कार्यों के बारे में पूरा स्पष्टीकरण करने का समय आ गया है । कुछ लोगों को विचार है कि नीति आयोग को वर्तमान सरकार के नये कार्यक्रमों को मूर्तरूप देने के लिए वित्तिय प्रावधान दर्शाने, संगठन व प्रबंध के बारे में सुझाव देने और उनके संभावितप्रभावों व प्रश्नों के हल में मदद देने का प्रयास करना चाहिये। ताकि नियोजन को नई दिशा मिल सके।

36.10 शब्दावली

- सी.एस.एस. - केन्द्र समर्थित/संचालित योजना
- नीति - राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्थान
- थिंक टैंक - तार्किक बौद्धिक तथा अनुभवी विशेषज्ञों का सलाहकार मण्डल
- ज्ञान एवं नवप्रवर्तन हब - ज्ञान के सृजन एवं नवप्रर्वतन से जुड़े विशेषज्ञों का दल
- टीम इंडिया - राज्यसों केन्द्रीय मंत्रालयों एवं ज्ञान तथा नवप्रर्वतन हब से समन्वय स्थापित करने वाला दल
- गवर्निंग काउसिंल - इस कांउन्सिल से राज्यसों के मुख्यमंत्री और केन्द्रशासित प्रदेशों के उपराज्यपाल शामिल होंगे।
- क्षेत्रीय परिषद - ऐसे मामले जिनका संबंधएक से अधिक राज्य या क्षेत्र से हो, को देखने के लिए क्षेत्रीय परिषद का गठन किया गया।
- सहकारी संघवाद - राष्ट्रीय विकास में राज्य सरकारों एवं केन्द्र सरकार के मध्य समन्वय।

36.11 संदर्भ ग्रंथ

1- http: niti.gov.in/content/constitution

2- http://pib.nic.in/newsie/windirelease.aspx? Relid = 3296

3- http://hiti.gov.in/hi/content/niti-aayog-one-year

भारतीय अर्थव्यवस्था - लक्ष्मीनारायण नाथरामका परिशिष्ट - 1

36.12 बोध प्रश्न

1- नीति आयोग क्या है ?

2- नीति आयोग के उपाध्यक्ष कौन है ?

3- नीति आयोग योजना आयोग से भिन्न कैसे है ?

4- नीति आयोग की स्थापना का मुख्य औचित्य क्या है ?

5- नीति आयोग के उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

6- नीति आयोग के गठन का प्रारूप समझाइये?

7- नीति आयोग की मुख्य उपलब्धियों पर प्रकाश डालिये।

8- नीति आयोग के पूर्ण कालिक सदस्यों के नाम बताइये।

9- वर्तमान में नीति आयोग के मुख्य कार्यकारी अधिकारी कौन है ?

10- भावी नियोजन में नीति आयोग से क्या अपेक्षाए हैं ?

बोध प्रश्नों के उत्तर

1- भारत परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय संस्थान
(The National Institution for Transforming India

2- श्री अरविन्द पनगढिया

3- नीति आयोग राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के विभिन्न नीतिगत मुद्दों पर केन्द्र और राज्य सरकारें को आवश्यक रणनीतिक एवं तकनीकी परामर्श देना है । इसको टीम इंडिया और सहकारी संघवाद जैसे मुद्दों को मूर्तरूप देना है इसमें देशभर के विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थानों के प्रतिनिधि शामिल होगें। इसके तहत केन्द्र से राज्यों की तरफ चलने वाले एकपक्षीय नीतिगत कम को विकासवादी परिवर्तन के रूप में राज्यों की वास्तविक एवं सतत भागीदारी के रूप मेंबदलने का प्रयास किया जाएगा। जबकि पूर्ववर्ती योजना आयोग का मुख्य कार्य कोष आवंटन करना था तथा विकास के लिए योजनाएं बनाना परन्तु राज्य केवल सलाह ही दे सकते थे उनकी सक्रिय हिस्सेदारी योजना निर्माण में सीमित ही थी।

4- बदलती हुई परिस्थितियों में देश की आकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं के अनुरूप विकास की दिशा तय करने एवं राज्यों की सक्रिय भागीदारी के सुनिश्चित करने के उद्देश्य के लिए नीति आयोग की स्थापना की गई।

5- इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है।

1- राज्यों की सक्रिय भागीदारी के साथ राष्ट्रीय विकास की प्राथमिकता तय करना।

2- ग्राम स्तर पर विश्वसनीय योजनाओं का तंत्र विकसित करना।

3- विकास की दीर्घकालीन नीति निर्धारक करना।

4- विभिन्न क्षेत्रों एवं विभागों में परस्पर समन्वय बनाना।

5- उत्तम शासन के लिए अनुसंधान क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन

6- प्रौद्योगिकी के उन्नयन के मदद एवं राष्ट्रीय विकास के एजेण्डे को आगे बढ़ाना।

1. नीति आयोग में प्रधानमंत्री अध्यक्ष होगें तथा उपाध्यक्ष पूर्णकालिक अशकालिक सदस्य तथा पदेन सदस्यों की नियुक्त प्रधानमंत्री के द्वारा की जाएगी एवं इसके अतिरिक्त एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी होगा।
2. उपलब्धियां - ऊर्जावान एवं उद्देश्यपूर्ति के लिए उपयुक्त अधिकारियों का संगठन तैयार करना, ज्ञान एवं नव प्रर्वतन तथा टीम इंडिया हबों का निर्माण, विभिन्न क्षेत्रिय परिषदों का निर्माण, गरीबी उपशमन एवं कृषि विकास कार्यदलों का गठन इत्यादि प्रमुख है।

पूर्णकालिक सदस्य - 1 श्री विवेक देबरॉय

(3) श्री वी.के. सारस्वत

(4) श्री रमेश चंद

9. श्री अमिताभ कान्त

11- भारत के भावी योजना के लिए तेहरवीं पंचवर्षीय योजना या इसकी वैकल्पिक योजना का प्रारूप तैयार करना वर्तमान सरकार के नये कार्यक्रमों को मूर्त रूप देना उनका मूल्यांकन एवं समीक्षा करना तथा विभिन्न क्षेत्रिय मुद्दों को सुलझाले में आगे आना तथा विभिन्न विभागों के मध्य समन्वय स्थापित करना इत्यादि शामिल है।

इकाई -37
चौदहवें वित्त आयोग की सिफारिशें

इकाई की रूपरेखा

37.0 उद्देश्य
37.1 प्रस्तावना
37.2 वित्त आयोग का गठन
37.3 चौदहवें वित्त आयोग का गठन
37.4 आयोग का दृष्टिकोण
37.5 आयाग की सिफारिशें
37.6 तेहरवें वित्त आयोग की सिफारिशों से तुलना
37.7 चौदहवें वित्त आयोग की सिफारिशों की आलोचना
37.8 सारांश
37.9 शब्दावली
37.10 कुछ उपयोगी संदर्भ
37.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

37.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- जान सकेंगें कि वित्त आयोग की क्या भूमिका है?
- चौदहवें वित्त आयोग की मुख्य सिफारिशें क्या हैं?
- यह तेहरवें वित्त आयोग की सिफारिशों से किस प्रकार भिन्न है?
- चौदहवें वित्त आयोग की सिफारिशों की मुख्य आलोचनाएं कौन-कौन सी है?

37.1 प्रस्तावना

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए जहाँ अभी भी निवेश के लिए पूंजी की कमी का सामना करना पड़ता है तो दूसरी लोकतांत्रिक सरकार का दायित्व अपने नागरिको के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराना एवं उनका उचित विस्तार कर, जनता के हितकारी कदम उठाना भी है । ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि केन्द्र सरकार करों से प्राप्त आय का केन्द्र एवं राज्यों के

बीच में किस प्रकार बंटवारा कर तथा केन्द्र एवं राज्यों की वित्तिय व्यवस्था को सुधारने के लिए कौनसा दृष्टिकोण अपनायें तथा किन सुझावों एवं सिफारिशों को लागू करें ताकि कारों से प्राप्त आय का न्यायसंगत वितरण कर लोकतांत्रिक सरकार अपने दायित्वों का उचित एवं कल्याणकारी निर्वहन कर सकें।

37.2 वित्त आयोग का गठन

संविधान के अनुच्छेद 280 में निर्दिष्ट वित्त आयोग मुख्य अधिदेश ''करों की कुल प्राप्तियों का संघ और राज्यों के बीच वितरण जिन्हें उनके बीच विभाजित किया जाना है, या किया जा सकता है'' किन्तु वित्त आयोग की भूमिका संविधान के 73 वें और 74 वें संशोधनों के पश्चात बढ़ गई है, जिनमें ग्रामीण एवं शहरी निकायों को सरकार का शासन की तीसरी व्यवस्था (टियर) के रूप में मान्यता दी गई है । अत: केन्द्रिय वित्त आयोग संबंधित राज्य वित्त आयोगों की सिफारिशों के आधार पर पंचायतों और नगरपालिकाओं के साधनों के परिपूरक हेतु किसी राज्य की समेकित निधि व वर्धन करने के लिए उपायों की सिफारिशें करने का अधिदेश देता है । इसका गठन प्रत्येक पांच वर्षों की अवधि के लिए राष्ट्रपति द्वारा की जाती है जिसमें एक अध्यक्ष एवं चार सदस्यों की नियुक्ति की जाती है।

37.3 चौदहवें वित्त आयोग का गठन

राष्ट्रपति ने 2015-2020 की अवधि के लिए केन्द्र-राज्यों के राजकोषिय संबंधोंके विशिष्ट पहलूओं एवं सिफारिश करने के लिए 2 फरवरी, 2013 की चौहदवें वित्त आयोग का गठन किया जिसमें डॉ. वाई.की. रेड्डी, भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गर्वनर, अध्यक्ष के रूप में और निम्न लिखित चार सदस्य सम्मिलित किये गये।

1- प्रो. अभिजित सेन - अशंकालिक सदस्य
2- सुश्री सुषमानाथ - सदस्य
3- डॉ. एम. गोविन्दाराव - सदस्य
4- डॉ. सुदीप्तों मुण्डले - सदस्य

इसके अलावा श्री अजयनारयण झा को आयोग का सचिव बनाया गया। तथा इस आयोग को निम्नलिखित विषयों के बारे में सिफारिशें करने के लिए कहा गया।

1- संघ और राज्यों के बीच करों के शुद्व आगमों का वितरण और राज्यों के बीच ऐसे आगमों(Income) के तत्संबंधीभाग का आवंटन करना।
2- भारत की सचिव समिति निधि में से राज्यों के राजस्व में सहायता अनुदान को शाषित करने वाले सिद्धान्तों और उन राज्यों को जिन्हें संविधान के अनुच्छेद 275 के अधीन उनके राजस्वों में सहायता अनुदान के रूप में उस अनुच्छेद के खण्ड (1) के परन्तुक में विनिदिष्ट

प्रयोजनों से भिन्न प्रयोजनों के लिए सहायता की आवश्यकता है, संदत की जाने वाली धनराशियों

3- राज्य के वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर राज्य में पंचायतों और नगरपालिकाओं के संशोधनों की अनुपूर्ति के लिए किसी राज्य की संचित निधि के संवर्धन के लिए आवश्यक उपाय सुझाना।

4- 1971 की जनसंख्या के आकड़ों को आधार बनाने के साथ-साथ बाद के वर्षों में जनांकिकीय परिवर्तनों पर भी ध्यान केन्द्रित करना।

5- सार्वजनिक व्यय प्रणालियों पर विचार करके परिव्ययों को प्रतिफलों से जोड़ने का प्रयास करना।

6- आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के संदर्भ में गठित कोषों के बारे में विचार करके सिफारिशें करना।

7- आयोग की कोषों के आवंटन का आधार स्पष्ट करना होगा और राज्यवार प्राप्तियों व खर्चों के अनुमान भी उपलब्ध कराने होंगे।

37.4 आयोग का दृष्टिकोण

आयोग का दृष्टिकोण मूलभूत सिद्धान्त पर आधारित रहा है । इसमें आयोग के विचारार्थ विषय का सख्ती से अनुपालना करना, संघीय एवं राजकोषीय संबंधों पर व्यापक, अवलोकन करना, संघ, राज्यों और स्थानीय निकायों के विचारों एवं अपेक्षाओं को प्राथमिकता देना, पिछले वित्त आयोग की सिफारिशों को ध्यान में रखकर वर्तमान व्यवस्थाओं और प्रवृत्तियों की यथा संभव समीक्षा करके सिफारिशें देना शामिल है ।

आयोग ने अपने कार्य में सामान्य रूप में आर्थिक प्रबंधन और विशेष रूप से राजकोषीय प्रबंधन में संघ और राज्य की भूमिकाओं को पुन: संतुलित करने की आवश्यकता के विभिन्न मंत्रालयों, ने अपने प्रस्तुतीकरणों में अपनी संबंधित बाध्यताओं को पूरा करे के लिए अधिक संसाधन उपलब्ध कराने की बात रखी। आयोग को संघ सरकार द्वारा बढ़ती अंतराष्ट्रीय बाध्यताओं के बारे में भी बताया गया, जिनके निर्वहन के लिए राज्यों का सहयोग जरूरी है और कुछ हद तक केन्द्रीयकरण जरूरी है । स्थानीय सरकारों के प्रस्तुतीकरण में वस्तुत: अनाबद्ध अनुदानों पर जोर था उन्होंने न केवल संसाधनों के अभाव बल्कि अपर्याप्त प्रशासनिक अवसंरचना तथा कार्य स्वाधिनता का अभाव से राज्यों के मूलभूत, सेवायें उपलब्ध कराने में भी बाध्यता महसूस की। संक्षिप्त में, सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में सरकार और सार्वजनिक उद्यमों, घरेलू एवं वैश्विक अर्थव्यवस्था तथा सरकार के राजकोषीय एवं गैर-राजकोषीय संघटको के बीच संतुलन में गत वर्षों में काफी ज्यादा परिवर्तन हुआ है, जिसमें संघ-राज्य राजकोषीय संबंधोंपर बड़ा प्रभाव होना ही है । इन मूलभूत मुद्दें में से अनेक मुद्दों को आयोग के विचारार्थ विषय (टी ओ आर) में सम्मिलित किया गया अत:

आयोग को वृहत आर्थिक प्रबंधन की नई वास्तविकताओं को ध्यान में रखकर संघ और राज्यों के बीच संबंधोंको इस व्यापक दृष्टिकोण में रखना था।

37.5 चौदहवें वित्त आयोग की सिफारिशें

आयोग की सिफारिशों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जाता है।

37.5.1 संघीय कर राजस्वों की हिस्सेदारी

1- सभी कारको पर विचार करते हुए आयोगग का यह मत है कि विभाज्य पूल में 42 प्रतिशत तक कर अन्तरण की हिस्सेदारी में वृद्धि करने से राज्यों को बिना शर्त हस्तान्तरणों के प्रवाह को बढ़ाने और साथ ही राज्यों को विशिष्ट प्रयोजन वाला हस्तान्तरण करने के लिए संघ के पास पर्याप्त राजकोषीय व्यवस्था रखने के दोनों उद्देश्य पूरे हो जाऐंगे।

2- आयोग ने न्यूनतम गारन्टी अन्तरण पर राज्यों के विचारों पर सहमति नहीं दी है।

3- यद्यपि आयोग का यह विचार है कि पुराने जनसंख्या आकड़ों का उपयोग करना उचित नहीं है फिर भी आयोग द्वारा 1971 की जनसंख्या को 17.5 प्रतिशत की भारिता आवंटित की गई है तथा इसके बाद जनासांख्यिकीय बदलावों को प्रवसन एवं आयु संरचना दोनों के मामले में लेते हुए 2011 की जनसंख्या आंकड़ों को 10 प्रतिशत की भारिता दी गई।

4- क्षेत्रफल के लिए आयोग ने 12 वें वित्त आयोग द्वारा अपनाई गई विधि का अनुपालन किया और छोटे राज्यों के लिए2 प्रतिशत की सतही सीमा रखते हुए क्षेत्रफल को 15 प्रतिशत भारिता आवंटित की।

5- आयोग का यह मानना है कि व्यापक वनक्षेत्र से व्यापक परिस्थितिकीय लाभ मिलते है लेकिन साथ ही अन्य आर्थिक गतिविधियों के लिए उपलब्ध नहीं रहने वाले क्षेत्रफल के संबंधमें एक अवसर लगात भी होती है और यह राजकोषीय असमर्थता का एक महत्वपूर्ण सकेतन है। आयोग द्वारा वन क्षेत्र के लिए 7.5 प्रतिशत की भारिता आवंटित की गई।

6- आयोग ने आय अंतर के संबंधमें राजकोषीय क्षमता को दर्शाने वाली 12वें वित्त आयोग आयोग द्वारा अपनाई गई विधि का पालन करते हुए इसे 50 प्रतिशत भारिता आवंटित की गई।

37.5.2 स्थानीय सरकारें

1- आयोग की यह सिफारिश है कि स्थानीय निकायों को आयोग द्वारा दिये गये अनुदान को केवल मूलभूत सेवाओं, जो कि उन्हें संबंधितविधियों द्वारा सौंपी गयी हों, पर खर्च करने के लिए निर्दिष्ट किया जाए।

2- स्थानीय निकायों द्वारा तैयार की गई लेखा पुस्तिकाओं में अपने करों और गैर करों, हस्तांतरण तथा राज्यों से अनुदान, केन्द्रीय वित्त आयोग से अनुदानों और संघ एवं राज्य सरकारों द्वारा आवंटित किसी अन्य एजेंसी कार्य के लिए अनुदानों से हासिल आय को अलग-अलग दिखाया जाना चाहिये।

3- राज्यों को 90 प्रतिशत भारिता के साथ वर्ष 2011 के जनसंख्या आंकड़ों और 10 प्रतिशत की भारिता के साथ क्षेत्रफल के आकड़ों का उपयोग करते हुए अनुदानों का वितरण किया जाए।

4- आयोग ने विधिवत गठित ग्राम पंचायतों और नगर पालिकाओं के लिए अनुदान को दो हिस्सों में प्रदान किया है - एक मूल अनुदान तथा दूसरा कार्य निष्पादन अनुदान 1 ग्राम पंचायतों, के अनुदान का बटवारा 90 : 10 होगा जबकि नगर पालिकाओं के मामले में मूल एवं कार्य निष्पादन अनुदान में बंटवारा 80 : 20 के अनुपात में होगा।

5- आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अनुदान केवल ग्राम पंचायतों को मिलने चाहिये जो मूलभूत सुविधाओं की आपूर्ति के लिए सीधे तौर पर उत्तरदायी है और इसमें किसी अन्य स्तर के लिए भागीदारी नहीं है । ग्राम पंचायतों के लिए चिन्हित मूलभूत अनुदानों का वितरण संसाधनों के वितरण हेतु संबंधित राज्य वित्त आयोग द्वारा निर्धारित सूत्र का उपयोग कर किया जाएगा।

6- आयोग द्वारा सिफारिश किए गए शहरी निकाय के लिए मूल अनुदान का बंटवारा त्रिस्तरीय हिस्सेदारी में किया जाएगा और उसका वितरण संबंधित राज्य विधि आयोग द्वारा निर्धारित सूत्र का उपयोग करते हुए प्रत्येक स्तर नामत: नगर निगम, नगरपालिका तथा नगर पंचायत के बीच किया जाएगा।

7- आयोग द्वारा निम्नलिखित मुद्दों के समाधान हेतु कार्य निष्पादन अनुदान प्रदान किया जा रहा है । 1. लेखा परीक्षित, लेखा के माध्यम से स्थानीय निकायों की प्राप्तियों एवं व्यय पर विश्वसनीय आंकडें उपलब्ध कराना। 2. अपने राजस्व में सुधार करना, इसके अतिरिक्त शहरी निकायों द्वारा मूलभूत सेवाओं के लिए सेवास्तरीय बैंचमार्कों का निर्धारण करना एवम् उनको प्रकाशित करना।

8- कार्य निष्पादन अनुदानों की पात्रता पाने हेतु ग्राम - पंचायतें को लेखा परीक्षित वार्षिक लेखा प्रस्तुत करने पड़ेंगे जो कि उस वर्ष से दो वर्ष पूर्व से अधिक समय से संबंधित नहीं होंगे।

9- शहरी स्थानीय निकायों को कार्य निष्पादन अनुदान के संवितरण के लिए एक विस्तृत कार्यविधि का डिजाइन, संबंधित राज्य सरकार द्वारा निर्धारित पात्रता मानदंडों को पूरा करते हुए बनाया जाए। कार्य निष्पादन अनुदानों के लिए पात्रता रखने हेतु शहरी स्थानीय निकाय चाहिए जो कि वर्ष में दो वर्ष पूर्व से अधिक समय से संबंधित नहीं होना चाहिये। शहरी स्थानीय निकाय द्वारा पूर्ववर्ती वर्ष में अपने राजस्व में भी बढ़ोतरी दिखाई जानी चाहिये जैसा कि लेखा परीक्षित लेखा में परिलक्षित किया गया हो। इसके अलावा निर्धारित अवधि के लिए प्रत्येक वर्ष मूलभूत शहरी सेवाओं में संबंधित सेवा स्तर के बेंचमार्कों का भी प्रकाशन किया जाए और उसे सार्वजनिक कराया जाए।

10- ये ग्रामीण एवं नगरीय कार्य निष्पादन अनुदानों के संवितरण संबंधी दिशा-निर्देश आयोग की अवार्ड अवधि के लिए लागू रहेंगे।

11- आयोग द्वारा इंगित शर्तों और निर्देशों के अलावा संघ अथवा राज्य सरकारों द्वारा विधियों के निर्गमन हेतु कोई अन्य शर्त अथवा दिशा निर्देश लागू नहीं किया जाए।

12- आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अनुदान का निर्गमन प्रत्येक वर्ष जून तथा अक्टूबर में दो किश्तामें किया जाए। मूल अनुदान का 50 प्रतिशत राज्यों को पहली किश्त तथा शेष मूल अनुदान एवं कार्य निष्पादन अनुदान को दूसरी किश्त के रूप में जारी किया जाए।

13- यदि विधियों के अनुप्रयोग में किसी प्रकार की गड़बड़ी पाई जाती है तब कड़ी कार्यवाही सुनिश्चित की जानी चाहिए।

14- राज्य सरकारें राज्य वित्त आयोगों में सुदृढ़ बनाये। इसमें राज्य वित्त आयोग का उचित समय पर गठन, समुचित प्रशासनिक सहयोग और निर्बाध प्रक्रिया हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध करना तथा राज्य विधानमण्डल के समक्ष राज्य वित्त आयोग की रिपोर्ट तथा उस पर कार्यवाही रिपोर्ट समय से प्रस्तुत करना शामिल है।

15- संपति कर को लगाने संबंधी प्रक्रिया को सहज बनाने के लिए वर्तमान नियमों की समीक्षा एवं संशोधन किया जाना चाहिये तथा छूटों को न्यूनतम किया जाना चाहिए।

16- शहरों की परिधि स्थित पंचायतों द्वारा खाली भूमि पर कर लगो पर विचार किया जाना चाहिए। इसके अलावा, राज्य सरकारों द्वारा नगरपालिकाओं और पंचायतों के साथ भूमि परिवर्तन प्रभारों के एक भाग के हिस्सेदारी की जा सकती है।

17- राज्यों को मनोरंजन कर की समीक्षा करनी चाहिये और नए-नए मनोरंजन माध्यमों को कवर करने के लिए मनोरंजन कर की परिधि को बढ़ाना चाहिये।

18- आयोग व्यावसायिक कर की उच्चतम सीमा को 2,500 रूपयों से बढ़कार 12,000 रूपये प्रतिवर्ष करने की सिफारिश करता है।

19- शहरी स्थानीय निकायों को अपने सेवा प्रभारों में इस प्रकार परिवर्धन करना चाहिए कि स्थानीय निकाय लाभार्थियों से प्रदान की गइ्र सेवाओं की कम से कम प्रचलन एवं रख रखाव की लागत वसूल कर सकें।

20- आयोग का मत है कि खनन स्थानीय पर्यावरण और जनसंख्या पर बोझ डालना है और इसलिए यह उपयुक्त है कि रॉलल्टियों से प्राप्त कुछ आय में स्थानीय निकाय जिसके अधिकार क्षेत्र के अंदर खनन किया जा रहा है, से हिस्सेदारी की जाए।

21- आयोग संघ सरकार से संविधान के अनुच्छेद 275(1) के परन्तुक के अधीन कवर किए गए क्षेत्रों के प्रशासन के अपग्रेडेशन तथा विकास के लिए व्यापक, स्थायी और प्रभावकारी प्रत्यक्ष मध्यस्थता करने पर विचार करने का आग्रह करता है ताकि ऐसे क्षेत्रों को अन्य क्षेत्रों के बराबर लाया जा सके।

37.5.3 आपदा प्रबंधन

1- एनडीआरएफ को वित्तिय सहायता अभी तक अधिकाशत: चयनित मदों पर उपकर लगाकर दी जाती है, लेकिन यदि भविष्य में उप कर को हटा दिया जाता है अथवा उसे वस्तु एवं सेवाकर के तहत सम्मिलित कर दिया जाता है तब संघीय सरकार द्वारा एन डी आर एफ को वित्ति सहायता प्रदान करने के लिए सुनिश्चित स्रोतों पर विचार किया जाए।

2- एन डी आर एफ में विनियोजन के लिए पिछले आउटफ्लों की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए संघीय सरकार को राज्यों को विधियों की समय पर उपलब्धता और निर्गमन सुनिश्चित करें।

3- एन डी आर एफ में निजी योगदान के लिए करों में छूट प्रदान करने पर निर्णय करने में तेजी लाई जाए तथा संघीय सरकार द्वारा एन डी आर एफ को वित्तिय सहायता के लिए इस प्रकार के प्रावधान बनाए जाने में कंपनी नियम, 2014 की अनुसूची 7 का उपयोग करने पर विचार करें।

4- रक्षाबलों की प्रचालन प्रभावशीलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना की जरूरत पर विचार करते हुए आपदा सहायता पर व्यय किए गए खर्च की प्रतिपूर्ति हेतु वर्तमान प्रबंधों की समीक्षा की जाए।

5- संघीय सरकार द्वारा राज्यों की आपदा संवेदनशीलता जोखिम प्रोफाइल के विकास एवं वैज्ञानिक प्रमाणन के कार्य में तेजी लाई जाए।

6- एन डी आर एफ में सभी राज्यों का योगदान 10 प्रतिशत किया जाए जबकि शेष 90 प्रतिशत हिस्सेदारी संघीय सरकार द्वारा की जाए।

7- आयोग वित्त आयोग XIII के विचारों से सहमत है कि डीडीआरएफ की स्थापना का निर्णय राज्य सरकारों पर ही छोड़ना सर्वश्रेष्ठ होगा।

8- राज्य विशेष आपदाओं के संबंध में लचीलेपन की जरूरत पर विचार करते हुए एसडीआरएफ के तहत उपलब्ध 10 प्रतिशत किया जा सकता है जिन्हें राज्यों के स्थानीय संदर्भों में ''आपदा'' माना जाता है और जिन्हें गृह मंत्रालय द्वारा आपदा की अधि सूचित सूची में शामिल नहीं किया गया है।

9- उन आपदाओं के दौरान एनडीआरएफ से निधि की आवश्यकताओं की संगणना करते समय संघीय सरकार द्वारा एसडीआरएफ में किए गए योगदान का समायोजित करने की वर्तमान प्रेक्टिस को जारी रखा जाना चाहिये।

37.5.4 सहायता अनुदान

1- ग्यारह राज्यों को निर्धारित अवधि के दौरान कुल 1,94,821 करोड़ रूपये के राजस्व घाटा अनुदान की सिफारिश की गई है।

2- प्रत्येक राज्य में खर्चों का वांछित न्यूनतम स्तर सुनिश्चित करने के उद्देश्य से बहुत अधिक एक्सटरनेलिटि वाले विशिष्ट क्षेत्रों से जुड़े राज्यों को, व्यय वृद्धि हेतु संघीय सरकार द्वारा

अन्तरण किये जाने का मामला बनता है । अत: जिस किसी क्षेत्र में ऐसे अन्तरण आवश्यक हो, उन क्षेत्रों में ऐसे सभी अन्तरण संस्थागत व्यवस्था के माध्यम से किये जाने चाहिये।

3- राज्यों में न्यायिक प्रणालियों को मजबूत बनाने के लिए कर अन्तरण में उपलब्ध कराये गये अतिरिक्त राजकोषीय संसाधनों का उपयोग करें।

4- राज्य की व्यय संबंधी आवश्यकताओं के निर्धारण में सामान्य प्रशासन व पुलिस दोनों के व्यय के उच्च आधार को ध्यान में रखा गया है ।

5- स्वास्थ्य शिक्षा, पेयजल और सफाई को राष्ट्रीय महत्व की सार्वजनिक सेवायें है अत: इनकी निगरानी के लिए तंत्र स्थापित किये जाने चाहिये।

37.5.5 सहयोगात्मक संघवाद की दिशा में

1- संघ से राज्यों को राजकोषीय अंतरणों की मौजुदा प्रणाली में आवश्यक संस्थागत बदलाव लाने के उद्देश्य से मौजूदा प्रणाली की समीक्षा की जाए।

2- आयोग की सिफारिशों से किए जाने वाले अंतरणों से भिन्न अन्य अंतरणों की आवश्यकता का संबंध है, आयोग का मानना है कि विवेकाधिकार को न्यूनतम करने, अंतरणों की रूपरेखा में सुधार करने, दोहराव से बचने और सहयोगपरक संघीय व्यवस्था को बढ़ावा देने के उद्देश्य से संघ और राज्यों के बीच अंतरणों की मौजूदा व्यवस्था की समीक्षा किए जाने की जरूरत है ।

3- आयोग की यह सिफारिश है कि सहयोगपरक संघीय व्यवस्था को मजबूत बनाने के व्यापक उद्देश्य के अनुरूप एक नई संस्थागत व्यय तैयार करने पर विचार किया जाए जो कि

   1- राज्यों के उन सेक्टरों की पहचान करे जो संघ से राज्यों को अंतरणों के लिए पात्र हो।

   2- राज्यों के बीच वितरण का मानदण्ड दर्शाये

   3- ऐसी योजनाएं तैयार करने में मदद करें जो कि राज्यों की कार्यान्वयन में उपयुक्त लचीलापन प्रदान करें।

   4- क्षेत्र - विशिष्ट अनुदानों का निर्धारण और प्रावधान करें।

4. नई संस्थागत व्यवस्था में पूर्वोत्तर राज्यों में अंतरराज्यी अवसंरचित योजनाओं के लिए संसाधनों के निर्धारण और उनकी सिफारिश से संबंधित मुद्दे उठाने पर भी विचार किया जाए।

5. नई संस्थागत व्यवस्था, निर्णय, निर्माण प्रक्रिया में आर्थिक और पर्यावरण संबंधी सरोकारों के समेकन का ध्यान रखा जाए।

6. अंतर्राज्यीय परिषद की मौजूदा भूमिका का विस्तार किया जाए।

7. संघीय सरकार उपलब्ध राजकोषीय गुंजाइश का उपयोग करेगी ताकि वह राज्यों की जरूरतों और अपेक्षाओं का पूरा कर सकें।

37.5.6 वस्तु और सेवा कर

1- जीएसटी की अभिकल्पना तथा अंग्रिम दर संरचना के संबंध में स्पष्टता के अभाव में आयोग राजस्व निहितार्थों का आकलन करने तथा जीएसटी की शुरूआत के कारण राज्यों को हुई राजस्व हानि के मामले में क्षतिपूर्ति की राशि की मात्रात्मक रूप से पता लगाने में अक्षम है।

2- प्रारंभ में संघ का जीएसटी क्षतिपूर्ति देने के कारण उत्पन्न अतिरिक्त राजकोषीय बोझ का वहन करना होगा। इस राजकोषीय बोझ को निवेश के तौर पर समझा जाना चाहिये। जिससे राष्ट्र को निश्चित रूप से मध्यावधि एवं भारी लाभ प्राप्त होगा।

3- मूल्य वर्धित कर के मामले में तीन वर्षों के लिए क्षतिपूर्ति का प्रावधान किया गया जो कि प्रथम वर्ष में 100 प्रतिशत, द्वितीय वर्ष में 75 प्रतिशत तथा तृतीय वर्ष में 50 प्रतिशत था। आयोग के विचार में सुधार के पैमाने तथा राज्यों द्वारा उठाये गये राजस्व अनिश्चितता संबंधीआशंकाओं के मद्देनजर राजस्व क्षतिपूर्ति पांच वर्ष के लिए प्रदान की जानी चाहिए। आयोग का यह सुझाव है कि प्रथम द्वितीय और तृतीय वर्षों में राज्यों को 100 प्रतिशत क्षतिपूर्ति तथा चौथे वर्ष में 75 प्रतिशत और पांचवें एवं अंतिम वर्ष में 50 प्रतिशत क्षतिपूर्ति का भुगतान किया जाए।

4- आयोग यह सिफारिश करता है कि अस्थायी व्यवस्थाओं के माध्यम से सहज परिवर्तन के लिए आवश्यक प्रावधान करते हुए मध्यावधि से दीर्घावधि मे जीएसटी के सार्वभौमिक अनुप्रयोग की दिशा में जीएसटी के संवैधानिक विधायी एवं संरचनात्मक पहलू परिवर्तन करने में सहजता प्रदान करते हो।

37.5.7 राजकोषीय परिवेश एवं राजाकोषीय समेकन रोडमैप

1- राज्यों की ऋण स्थिति का निर्धारण करते समय वित्तिय रूप से कमजोर सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों की गारंटियों, ऑफ-बजट और संयोजित घाटों से उत्पन्न जोखिमों की महत्ता को ध्यान रखते हए आयोग ने संघ तथा राज्य सरकारों के लिए अपने संबंधित बजटों में बजट दस्तावेज के संपूरक के रूप में कुल विस्तारित सार्वजनिक ऋण के संकलन विश्लेषण और वार्षिक रिपोटिंग के लिए एक टेंप्लेट लागू करने की सिफारिश की है।

2- राजकोषीय समेकन के प्रति आयोग के दृष्टिकोण तथा संघ और राज्य सरकारों के संबंध में आयोग द्वारा किए निर्धारण के माध्यम से विकसित राजकोषीय रौडमैप के आधार पर आयोग संघ एवं राज्यों के लिए नियमों की सिफारिश करता है।

3- संघ सरकार के लिए राजकोषीय घाटे पर उच्चतम सीमा वर्ष 2016-17 से आयोग की अवार्ड अवधि के अंत तक जीडीपी का 3 प्रतिशत होगी।

4- संघ और राज्य सरकारों के लिए सहायक राजकोषीय वातावरण को अनुकूल बनाने हेतु अपनाई जाने वाली साझी उत्तरदायिता की प्रक्रिया के व्यापक प्रसार के लिए संघ

सरकार और आरबीआई द्वारा नियमित रूप से तथा तुलनात्मक आधार पर संघ और राज्य सरकारों के सार्वजनिक ऋण पर एक द्विवार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित की जाए और उसे सार्वजनिक किया जाए।

5- आयोग संघ सरकार से अनुच्छेद, 293(3) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग प्रभावी एवं पारदर्शी तथा उचित प्रक्रिया के अनुरूप जारी रखने का आग्रह करता है ताकि इस अवार्ड अवधि के लिए सुझाये गये राजकोषीय समेकन रोडमेप के अनुरूप राजकोषीय नियमों को लागू किया जा सके।

37.5.8 लोकोपयोगी सेवाओं का मूल्य निर्धारण

1- आयोग यह सिफारिश करता है कि सभी बिजली उपभोक्ताओं के लिए समयबद्ध रूप से 100 प्रतिशत मीटरिंग को पूरा किया जाए जैसा सांविधिक रूप से पहले ही विनिर्धारित कर दिया गया है।

2- वर्तमान में विद्युत अधिनियम 2003 में राज्य सरकारों द्वारा सब्सिडियों के भुगतान में विलम्ब के लिए शास्तियों का कोई प्रावधान नहीं है। आयोग इसलिए यह सिफारिश किया जाए ताकि ऐसी शास्तियों को लगाया जा सकें।

3- आयोग रेल प्रशुल्क प्राधिकरण की स्थापना करने संबंधी पहल पर जोर देता है और रेल अधिनियम 1999 में आवश्यक संशोधनों के जरिए सलाहकारी निकाय को सांविधिक निकाय से शीघ्र प्रतिस्थापित करने पर बल देता है।

4- आयोग यह सिफारिश करता है कि एसआरटीयू में लेखांकन प्रणालियां सब्सिडी के सभी प्रकारों को सुस्पष्ट वर्णन करें जो कि सब्सिडियों के सीमा-निर्धारण के आधार है तथा साथ ही राज्य सरकारों द्वारा प्रतिपूर्ति की सीमा का भी सुस्पष्ट वर्णन करें।

5- आयोग यह सिफारिश करता है कि सभी राज्य चाहे वहां डब्ल्यूआरए हों या नहीं सिंचाई जल के प्रयोग के पूर्ण आयातन माप पर विचार करेगें।

6- आयोग यह सिफारिश करता है कि राज्यों को घरों, व्यवसायिक प्रतिष्ठानों तथा संस्थानों में वैयक्तिक पेयजल कलेक्शन की दिशा में प्रगतिशीलता से 100 प्रतिशत कनेक्शन की मीटरिंग की ओर आगे बढ़ना चाहिये।

37.5.9 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम

1- आयोग यह सिफारिश करता है कि पैरा 16.14 में सीमांकित, नई वास्तविकताओं को राजकोषीय लागतों और लाभों पर पर्याप्त फोक्स के साथ एक समग्र सार्वेजनिक क्षेत्र उद्यम संबंधीनीति को आकार देने और उनका विकास करने हेतु स्वीकार किया जाए।

2- आयोग यह सिफारिश करता है कि गैर वरीयता वाले सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों के अधित्याग के लिए पारदर्शी निलामी प्रक्रिया अपनाई जाए।

3- आयोग यह सिफारिश करता है कि सार्वजनिक क्षेत्रों में किए जाने वाले निवेशों के नए क्षेत्रों से संबंधितएक नीति बनाए। जहां उच्च वरीयता और वरीयता वाले सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों

में मौजूदा पोर्टफोलियो धारिता सरकार के स्वामित्व के वांछित स्तर से कम है । वहां आयोग शेयरों की खरीद की भी सिफारिश करता है।

4- आयोग सभी विनिवेश प्राप्तियां की पूंजीगत व्यय पर उपयोग हेतु समेकित निधि में रखे जाने कि 13 वें वित्त आयोग की सिफारिशों पर बल देता है।

5- आयोग केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों को प्रभावी और प्रतिस्पर्धी बनाने की महत्ता को स्वीकार करता है परन्तु यह सुझाव देता है कि इन उद्यमों की मॉनीटरिंग और उनके मूल्यांकन में ऐसी संस्थागत बाध्यताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिये जिनके भीतर उनकी प्रबंधन व्यवस्थाएं कार्य करती है।

37.6 तेहरवें वित्त आयोग की सिफारिशों से तुलना

तेहरवें वित्त आयोग की सिफारिशों से तुलना (1) 13 वें वित्त आयोग ने करों व अनुदानों की मिलीजुली राशि का अंश केन्द्र की कर राजस्व प्राप्तियों में 39 प्रतिशत (2010-15 की अवधि में) रखा था जिसे 14 वें वित्त आयोग ने बढ़ाकर 47.7 प्रतिशत किया है, लेकिन राज्यों की तरफ केन्द्र की सकल राजस्व प्राप्तियों का हस्तान्तरण अगामी 5 वर्षों में 49.4 प्रतिशत तक ही सीमित रहेगा, जो वर्तमान मे है।

(2) 13 वें व 14 वें वित्त आयोगों द्वारा सुझाये गए क्षैतिज हस्तान्तरण सुत्र में दिए गए भार

	13 वां	14 वां
1- जनसंख्या (1971)	25	17.5
2- जनसंख्या (2011)	0	10
3- राजकोषीय क्षमता/आय-पूरी	47.5	50
4- क्षेत्रफल	10	5
5- वन क्षेत्र	0	7.5
6- राजकोषीय अनुशासन	17.5	0
कुल	100.0	100.0

3- 14वें वित्त आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप केन्द्रीय करों के हस्तान्तरण की राशि में निरपेक्ष रूप से कोई भी राज्य घाटे में नहीं रहा है, हालांकि 13वें वित्त आयोग के द्वारा हस्तान्तरित अंशों की तुलना में 14 वें वित्त आयोग के द्वारा प्रस्तावित अंश कुछ राज्यों के बढ़े हैं और कुछ के घटें हैं।

4- पूर्व बीमार, राज्यों जैसें बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान व उत्तर प्रदेश में ये अंश केवल मध्यप्रदेश के लिए ही बढ़े है जबकि उत्तरप्रदेश, बिहार व राजस्थान के लिए घटे है । परन्तु वास्तव में इन राज्यों को हस्तान्तरित की जाने वाली राशि घटी नहीं है ।

5- राज्यों की तरफ हस्तान्तरण की जाने वाली केन्द्र की राशि के सूत्र में वन क्षेत्र वाले राज्य व 2011 में अधिक जनवृद्धि वाले राज्यों के आर्थिक हितों पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है ।

6- चौहदवें वित्त आोग की सिफारिशों के फलस्वरूप करों व शुल्कों के अंश का अनुपात अनुदानों के अंश के अनुपात की तुलना में 50:50 से बढ़कर 62 : 38 होने का अनुमान है ।

37.7 चौहदवें वित्त आयोग की सिफारिशों की आलोचना

चौहदवें वित्त आयोग की सिफारिशों की आलोचना

1- इस वित्त आयोग से राज्यों का राजकोषीय क्षेत्र में उत्तरदायित्व व प्रबंधन का भार काफी बढ़ जायेगा। उन्हें व्यय का समुचित प्रबंधन करके चलना होगा। इसके लिए उन पर राजकोषीय उत्तरदायित्व व बजट प्रावधान अधिनियम को कड़ाई से लागू करने का भार आ गया ताकि राजस्व घाटा शुन्य पर आ सके और उसी स्तर पर जारी रह सके और राजकोषीय घाटे को जीडीपी के 3 प्रतिशत के स्तर पर लाया जा सके और उसी स्तर पर आगे भी जारी रखा जा सके।

2- 14 वें वित्त आयोग के सदस्य अभिजीत सेन ने अपने विमति पत्र में कहा कि केन्द्र की कुल कर प्राप्तियों में राज्यों का अंश 42 प्रतिशत के बजाय 38 प्रतिशत रखा जाना चाहिये था। आयोग को 11 राज्यों के लिए राजस्व घाटे की अनुदान राशियो को 1.94 लाख करोड़ रू. के बजाय 2-6 लाख करोड़ रू करना चाहिये था।

3- राज्यों में राजकोषीय सुधार की एक मध्यकालीन योजना तैयार रखनी होगी और उन्हें आर्थिक नियोजन की भी नई स्पष्ट रूपरेखा तैयार करनी होगी ।

4- वित्त आयोग की सिफारिशों को लागू करने के लिए एक अन्तर राज्य परिषद के गठन की आवश्यकता होगी, जिसमें केन्द्र व राज्यों के प्रतिनिधि व विषय विशेषज्ञ भाग ले सकेगें।

5- 14वें वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट में सार्वजनिक उपक्रमों व सार्वजनिक उपयोगिताओं में मूल्य निर्धारण, इनमें विनिवेश व नये निवेश जैसे विषयों पर भी प्रकाश डाला है परन्तु इनके लिए कोई नियमावली या फ्रेमवर्क तैयार नहीं किया।

37.8 सारांश

चहदवें वित्त आयोग की सिफारिशों का विस्तृत अध्ययन करने एवं तेहरवें वित्त आयोग से तुलना करने के पश्चात इसके मुख्य सिफारिशों का संक्षिप्त अध्ययन आवश्यक हो जाता है ताकि 14वें वित्त आयोग कि सिफारिशों का मूल भाव जाना जा सके।

1- केन्द्र की शुरू कर प्राप्तियों में राज्यों का अंश 32 प्रतिशत से बढ़ाकर 42 प्रतिशत कर दिया।

2- आयोग ने राज्यों को स्थानीय निकायों के लिए अनुदानों का आधार 2011 की जनगणना को लेने की सिफारिश की है । राज्यों को ये अनुदान ग्रामीण व शहरी जनसंख्या के आधार पर वितरित किये जायेंगे। एक अनुदान ग्राम पंचायतों की जनसंख्या के आधार पर और दूसरा अनुदान नगरपालिकाओं की जनसंख्या के आधार पर।

3- आयोग ने पांच वर्षों (2015-2020 तक) के लिए कुल अनुदान लगभग 2.87 लाख करोड़ रूपये स्वीकृत किये हैं, जिनमेंसे 2 लाख करोड़ रूपये पंचायतों के लिए है लगभग 87 हजार करोड़ रूपये नगरपालिकाओं के लिए है।

4- आपदा-राहत कर राशि 55,097 करोड़ रूपये निर्धारित की गई है । जिसमें से राज्यों का प्रतिशत अंश पहलू जितना ही रहेगा। यह राशि वस्तु व सेवाकर के क्रियान्वयन के बाद ही लागू की जायेगी।

5- 8 केन्द्र संचालित स्कीमों को केन्द्र की सहायता से पृथक कर दिया गया है । कई केन्द्र चालित। समर्थित स्कीमों के वित्तिय पोषण का भार राज्यों को वहन करना होगा। क्योंकि उनकी वित्तिय व्यवस्था का भार राज्यों को वहन करना होगा क्योंकि उनकी वित्तीय व्यवस्था का प्रारूप बदला गया है।

6- चौहदवें वित्त आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप राज्यों को किये जाने वाले हस्तान्तरणों में करों व शुल्कों का अंश बढ़ेगा तथा अनुदानों का अंश घटेगा अर्थात् हस्तान्तरणों पर राज्यों की कर एकत्रण क्षमता एवं उत्पादनशीलता का भी प्रभाव पड़ेगा।

7- 14वें वित्त आयोग ने सरकार के विवेकाधीन होने वाले अनुदानों में कभी करने का मार्ग अपनाकर अनुदानों की कुलराशि में कमी करने का भी प्रयोग किया है।

8- 14वें वित्त आयोग ने सहकारी संघवाद को मूर्तरूप देने का प्रयास किया है । इसकी सिफारिशों से एक साथ दो लक्ष्यों की पूर्ति हो सकेगी - एक राज्यों को केन्द्र की ओर से अधिक वित्तिय साधन हस्तान्तरित किये जायेगें, दूसरा राज्यों को अपनी जरूरतों के मुताबित खर्च करने की विशेष छूट व स्वतंत्रता होगी।

9- आयोग की सिफारिशों के अनुसार प्रारंभ में सघ को जी एस टी क्षतिपूर्ति देनी होगी तथा इसके कारण उत्पन्न अतिरिक्त राजकोषीय बोझ को निवेश के तौर पर समझा जाना चाहिये क्योंकि इसमें राष्ट्र को निश्चित रूप से मध्यावधि के दीर्घावधि लाभ प्राप्त होगें।

10- संघ व राज्य सरकारों के लिए सहायक राजकोषीय वातावरण को अनुकूल बनाने के लिए आयोग ने सुझाव दिया कि संघ सरकार एवं रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा नियमित रूप से तथा तुलनात्मक आधार पर सार्वजनिक ऋण की एक द्वि - वर्षीय रिपोर्ट प्रकाशित की जाए और उसे सार्वजनिक भी किया जाये।

11- लोकोपयोगी सेवाओं के मूल्य निर्धारण के लिए आयोग विद्युत अधिनियम 2003 तथा रेल अधिनियम 1999 में भी आवश्यक संशोधनों के लिए सुझाव दिये।

12- सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के लिए आयोग ने पारदर्शी निलामी प्रक्रिया का सुझाव दिया।

37.9 शब्दावली

1- **शुद्ध कर प्राप्तियां -** सकल प्राप्तियों में से उपकर व सरचार्ज तथा कर वसूली व्यय को घटाने से प्राप्त राशि शुद्ध कर प्राप्तियां कहलाती है।
2- **कार्य निष्पादन अनुदान -** संघ सरकार के द्वारा राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान का एक भाग जिसका निर्धारण राज्य सरकार के कार्य निष्पादन क्षमता द्वारा किया जाता है।
3- **जीडीपी -** सकल राष्ट्रीय उत्पादन - एक वर्ष की समयावधि में उत्पादित समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के बाजार मूल्यों का योग सकल राष्ट्रीय उत्पादन कहलाता है।
4- **राजकोषीय नीति -** संघ सरकार की नीति जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों का निर्धारण तथा सार्वजनिक व्ययों के विभिन्न प्रावधान किये जाते हैं।
5- **सी एस एस -** केन्द्र संचालित/ समर्थित योजना

37.10 कुछ उपयोगी संदर्भ

1- 14वां वित्त आयोग रिपोर्ट, भाग 1, अध्याय - 18, सिफारिशों का स्तर
2- 14वां वित्त आयोग रिपोर्ट भाग 1, अध्याय 8, क्षैतिज हस्तान्तरण का सूत्र
3- आर्थिक सर्वे - 2014-15
4- भारतीय अर्थ व्यवस्था, लक्ष्मीनारायण नाथुराम का
5- www.siumin.nic.in/14fincomm/14th finance commission.htm
6- 13 वें वित्त आयोग की सिफारिशों का सारांश

37.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1- चौदहवें वित्त आयोग के अध्ययक्ष एवं सदस्यों के नाम बताइये?
2- चौदहवें वित्त आयोग के दृष्टिकोण पर टिप्पणी लिखिए।
3- चौदहवें वित्त आयोग ने अपनी सिफारिशों में किस मूल सिद्धान्त का पालन किया?
4- 13वें व 14वें वित्त आयोग में मुख्य अन्तर क्या है?
5- 14वें वित्त आयोग के कारण करों एवं अनुदानों के हस्तान्तरण ढांचें में किस प्रकार के परिवर्तन आये हैं?
6- 14 वें वित्त आयोग की सिफारिशों के कारण किस प्रकार के राजकोषीय सुधारों की संभावनाएं है? किस प्रकार के राजकोषीय सुधारों की संभावनाएं हैं?
7- स्थानीय सरकारों के अनुदानों के संबंधमें 14वें वित्त आयोग की मुख्य सिफारिश क्या है?
8- सहयोगात्मक संघवाद की दिशा में 14वें वित्त आयोग की सिफारिशों का उल्लेख कीजिए?
9- 14वें वित्त आयोग की सिफारिशों में विद्युत, रेल एवं सिंचाई जैसे लोकोपयोगी सेवाओं के मूल्य निर्धारित हेतु क्या सुझाव दिये गये?
10- 14वें वित्त आयोग की सिफारिशों की मुख्य आलोचनाएं क्या-क्या है?

37.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1- 1 अध्यक्ष - डॉ. वाई.वी. रैड्डी
   2 अंशकालिक सदस्य - प्रो. अभिजि सेन
   3 सदस्य - सुश्री सुषमानाथ
   4 सदस्य - डॉ. एम गोविन्दाराव
   5 सदस्य - डॉ. सुदीप्तो मुण्डले

2- आयोग के विचारार्थ विषय पर सख्ती से अनुपालन करना, संघीय एवं राजकोषीय संबंधो पर व्यापक अवलोकन करना तथा संघ, राज्यों और स्थानीय निकायों के विचारों एव अपेक्षाओं को प्राथमिकता देना।

3- 14वें वित्त आयोग ने सहयोगात्मक संघवाद के मूल सिद्धान्त का पालन किया।

चलराशि	13 वां	14 वां
1- जनसंख्या (1971)	25	17.5
2- जनसंख्या (2011)	0	10
3- राजकोषीय क्षमता/आय-पूरी	47.5	50
4- क्षेत्रफल	10	5
5- वन क्षेत्र	0	7.5
6- राजकोषीय अनुशासन	17.5	0
कुल	100.0	100.0

5. 14वें वित्त आयोग के कारण व शुल्कों का अंश 62 प्रतिशत तथा अनुदानों का अंश 38 प्रतिशत रह गया है ।

6. 14 वें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार वित्तिय हस्तान्तरणों से अपेक्षाकृत कम विकसित हस्तान्तरणों से अपेक्षाकृत कम विकसित राज्यों को अधिक राशि मिली है जिससे प्रति व्यक्ति कम आमदनी वाले राज्यों के हिस्से में अधिक धनराशि आयी है । इससे राज्यों के बीच आय व राजकोषीय असमानताएं कम करने में मदद मिलेगी।

7- स्थानीय निकायों को अनुदानों के लिए सिफारिशें दो भागों में की गई है - एक का आधार मूल और दूसरा कार्य सिद्धि। कार्य निष्पादन होगा और मूल व कार्य निष्पादन अनुदानों का परस्पर अनुपात पंचायतों के लिए 90 : 10 होगा एवं नगर पालिकाओं के लिए 80 : 20 होगा।

8- 14 वें वित्त आयोग ने सहकारी संघवाद को मूर्तरूप देने का प्रयास किया है । इसकी सिफारिशों में से एक साथ दो लक्ष्यों की पूर्ति हो सकेगी - एक तो राज्यों को केन्द्र की तरफ से अधिक वित्तिय साधन हस्तान्तरित किये जाएंगें और दूसरी तरफ राज्यों को अपनी जरूरतों के मुताबित खर्च करने की विशेष छूट व स्वतंत्रता होगी। इस नीतिगत परिवर्तन से राज्यों को ऊँची आर्थिक वृद्धि दर प्राप्त करने का अधिक अवसर मिलेगा और उनकी विकास में भागीदारी प्रबल हो सकेगी।

9- विद्युत अधिनियम 2003 में राज्य सरकार द्वारा सब्सिडियों के भुगतान मे विलम्ब के लिए शास्तियों का प्रावधान किया जाए। रेल अधिनियम 1999 में आवश्यक संशोधन के जरिए सलाहकारी निकाय को सांविधिक निकाय से शीघ्र प्रतिस्थापित करने पर बल दिया तथा सिंचाई जल के प्रयोग के पूर्ण आयातन माप पर बल दिया।

10- आलोचनाएं -

1- राजकोषीय उत्तरदायित्व व बजट प्रबंधन अधिनियम को कड़ाई से लागू करना।

2- राजस्व घाटे की पूर्ति के अनुदान राशि की पर्याप्त मात्रा का प्रावधान नहीं करना।

3- अन्तर राज्यीय परिषद का गठन आवश्यक हो गया है ।

4- राज्यों को भी राजकोषीय सुधार के लिए मध्यकालीन योजना तैयार रखनी होगी।